BHUŚUṆḌI RĀMĀYAṆA

PART II (DAKSHINA KHAND)

Edited by :

Dr. B. P. SINGH

Retd. Professor & Head

Department of Hindi

Gorakhpur University.

Co-Editor :

Pt. Ramadhar Shukla

Sahityacharya

संख्या 361

20

अ.सा.म.
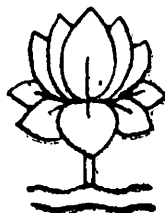
AVADH SAHITYA MANDIR

GORAKHPUR, INDIA
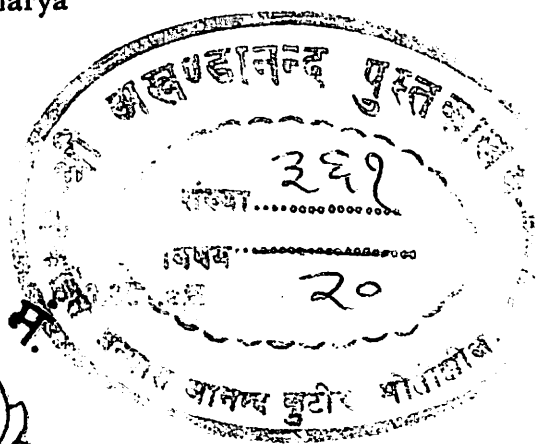
Published by :
Avadh Sahitya Mandir
35, Betia Hata,
Gorakhpur-273001

© **Dr. Bhagawati Prasad Singh**

The book is Published with the financial assistance
from the Uttar Pradesh Sanskrit Academy

Price : Rs 80.00 **Rupees [illegible] only)**

Printed by :
Ratna Printing Works
B 21/42 A, Kamacha, Varanasi.

भुशुण्डि रामायण

द्वितीय भाग (दक्षिण खण्ड)

संपादक

डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह

प्राक्तन आचार्य तथा अध्यक्ष हिन्दी विभाग

गोरखपुर विश्वविद्यालय

सह-संपादक

पं० रामाधार शुक्ल, साहित्याचार्य

अवध साहित्य मन्दिर, गोरखपुर
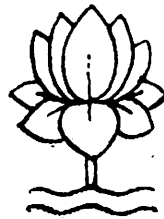
पुरोवाक्

भुशुण्डि रामायण के चार दुर्लभ हस्तलेखों की उपलब्धि के पश्चात् छत्तीस हजार श्लोकों में विस्तृत इस बृहत्काय ग्रन्थ को तीन भागों में प्रकाशित करने की योजना बनाई गयी थी। उसके अनुसार प्रथम भाग (पूर्वखण्ड) १९७५ ई० में प्रकाशित हुआ। प्रसिद्ध प्राच्यविद् तथा रामकथा-मर्मज्ञ डा० वी० राघवन ने उसकी विचारोत्तेजक भूमिका लिखकर भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्वों को प्रतिबिम्बित करने वाली रामायण परम्परा की इस लुप्तप्राय कड़ी का वैशिष्ट्य रेखांकित करते हुए वाल्मीकि-रामायण के परवर्ती रामकथा प्रबन्धों में इसे प्राचीनतम ठहराया। ग्रन्थ की सम्पादकीय प्रस्तावना में संस्कृत तथा देश-भाषाओं में लिखे गये मध्यकालीन रामायणों पर इसके गहरे प्रभाव की प्रमाण-पुरस्सर विवेचना की गई। इससे विद्वत् समुदाय में वैष्णवभक्ति की साम्प्रदायिक परम्परा की इस नवप्राप्त रामायण के प्रति जिज्ञासा जाग्रत हुई।

दैवयोग से इसी वर्ष साहित्य अकादमी, नईदिल्ली के तत्त्वावधान में द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय रामायण विचार गोष्ठी (७ से १२ दिसम्बर, ७५ तक) आयोजित हुई। उसके संयोजक डा० आर० एस० केलकर, सचिव साहित्य अकादमी, ने इन पंक्तियों के लेखक को उक्त गोष्ठी में भुशुण्डि रामायण पर एक निबन्ध प्रस्तुत करने के लिए आमंत्रित किया। Bhushundi Ramayana And Its Infleuence on Medieval Ramayana Literature (भुशुण्डि रामायण और उसका माध्यकालीन रामायण साहित्य पर प्रभाव) शीर्षक लेख इसी प्रेरणा का प्रसाद था। कालान्तर में उक्त विचार गोष्ठी में पढ़े गये निबन्धों के साथ संग्रहीत होकर वह 'RAMAYANA TRADITION IN ASIA' नामक साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ का अंग बना।

दैवयोग से १९७५ के दिसम्बर के प्रथम सप्ताह में मैं हृदयरोग के आक्रमण से शय्याग्रस्त हो गया। किन्तु हृदयेश्वर ने अंततः अपना घर बिगाड़ना ठीक नहीं समझा, इसलिए वह लीला क्षणस्थायी रही और कुछ ही दिनों में स्वस्थ होकर मैं उनके कार्य में पुनः लग गया।

इस घटना के दो वर्ष बाद उत्तरप्रदेश संस्कृत अकादमी ने भुशुण्डि रामायण के प्रथम भाग (पूर्वखण्ड) पर तीन हजार रुपये का पुरस्कार प्रदान कर प्राचीन वाङ्मय के संरक्षण एवं प्रचार-प्रसार के प्रति निष्ठा का परिचय दिया। इस प्रकार भुशुण्डि रामायण के लोकविश्रुत होने का द्वार भगवत्कृपा से अनायास ही अनावृत्त हो गया।

देश के प्रसिद्ध शिक्षा तथा शोधकेन्द्रों ने भी भुशुण्डि रामायण के प्राकट्य की यथोचित अभ्यर्थना की। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने इस पर आधृत शोध-प्रबन्ध पर श्री रामप्रसाद उपाध्याय को पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय तथा बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय ने एक एक शोधार्थी को भुशुण्डि रामायण पर अनुसंधान करने के लिए पंजीयित किया। इस तथ्य के बावजूद कि ग्रन्थ के चार खण्डों में से केवल एक खण्ड प्रकाशित हुआ है, शोध निर्देशक तथा अनुसंधाता उस पर कार्य करने में लोभ संवरण न कर

सके। इसके मूल में रामचरित और उसके अभिनव रूप के प्रकाशक भुशुण्डि रामायण की कथावस्तु तथा भाषा शैली की मार्मिकता एवं विलक्षणता थी।

वातावरण की अनुकूलता से प्रोत्साहित होकर ग्रन्थ के शेष खण्डों के प्रकाशन का विचार मेरे मन में आया। प्रथम खण्ड के प्रकाशक के सामने प्रस्ताव रखा गया, किन्तु उन्होंने निजी विवशताओं के कारण इस कार्य को हाथ में लेने से इनकार कर दिया। ऐसी स्थिति में कुछ समय के लिये प्रकाशन-योजना स्थगित कर देनी पड़ी। बहुत ऊहापोह के बाद अंततोगत्वा रामकाज का भार उन्हीं के बलपर इस जन ने स्वयं वहन करने का निश्चय किया। इसलिये कि उसे हस्तलेख की प्राप्ति के समय १९५५ ई० में किया गया उसके प्रकाशन विषयक अपना संकल्प पूरा करना था।

भगवत्कृपा से शासन तथा विद्वत्समाज द्वारा प्राप्त मान्यता ने भुशुण्डि-रामायण के शेष तीन खण्डों के प्रकाशन के लिए उपयुक्त वातावरणकी सृष्टि की। उत्तरप्रदेश संस्कृत अकादमी ने उसके द्वितीय भाग, दक्षिण खण्ड, के प्रकाशन में आर्थिक सहयोग देकर हमें एक सीमा तक चिंतामुक्त कर दिया। इस उदारता के लिए हम उसकी कार्यपरिषद के आभारी हैं।

प्रारब्धजनित विघ्नबाधाओं को पार कर सुधी पाठकों के करकमलों में भुशुण्डि रामायण का यह द्वितीय भाग अर्पित करते हुए हमें अपार संतोष का अनुभव हो रहा है। इसमें वर्णित रामचरित के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए भूमिका भाग में ग्रन्थकार की मौलिक उद्भावनाओं का संक्षिप्त विवरण दे दिया गया है। इससे प्रस्तुत ग्रन्थ के वैशिष्ट्य तथा परवर्ती रामकथा-प्रबन्धों पर इसके प्रभाव को लक्षित किया जा सकेगा।

ग्रन्थ के सुरुचिपूर्ण मुद्रण एवं साजसज्जा में श्री हरिप्रसाद निगम तथा श्री विनय शंकर पंड्या ने जो आस्था दिखायी है वह व्यवसाय-जीवी के लिये विरल है। उनकी अंतः प्रेरित सदाशयता के लिए मूकभावेन कृतज्ञता-ज्ञापन ही उचित होगा।

रामचरित के समर्पणशील अनुशीलन कर्ताओं और उसके विकासात्मक अध्ययन में दत्तचित्त शोधार्थियों को चिरप्रसिद्ध किन्तु नवोद्धरित रामायण का यह खंड अभीप्सित संतृप्ति प्रदान करेगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

श्रीराम विवाह पंचमी
सं० २०३८
साकेत, बेतियाहाता
गोरखपुर

भगवती प्रसाद सिंह

भुशुण्डि रामायण के कुछ मौलिक कथा प्रसंग

१. भुशुण्डि का ब्रह्मा से रामचरित सुनाने का अनुरोध।

(भु० रा० पूर्वखण्ड, अध्याय ४, ८)

२. गरुड़ का हनुमान के माध्यमसे राम का सामीप्य तथा सेवाधिकार-लाभ।

(भु० रा०, पूर्वखंड, अध्याय ५, ७)

३. बालक राम का गोपप्रदेश में प्रवास और रावण के अत्याचारों से रक्षा।

राम के अयोध्या में अवतरित होने के अनन्तर देवर्षि नारद लंका गये और रावणसे बोले, "देवताओंकी प्रार्थना से तुम्हारा नाशकर्ता उत्पन्न हो गया है। उससे बचनेका शीघ्र उपाय करो नहीं तो शत्रुके बड़े हो जानेपर आत्मरक्षाके तुम्हारे सारे प्रयत्न व्यर्थ हो जायेंगे" इतना कहकर वे ब्रह्मलोक चले गये। रावण इस संवादसे पहले तो अत्यन्त भयभीत हुआ, फिर सारी परिस्थिति पर गंभीरता पूर्वक विचार करके बोला, "मैं शिवके चरणोंपर शीश चढ़ाकर उनके प्रसादसे असीम शक्ति प्राप्त करूँगा। तब वैष्णवोंका मूलोच्छेद करूँगा और देवताओंका सर्वनाश कर उन्हें स्वर्ग से निकाल बाहर करूँगा। देखें विष्णु क्या कर लेते हैं?" अपनी इस योजना को तत्काल कार्यान्वित करनेके लिये उसने राक्षस सेनापतियों को आदेश दिया। उनके अकल्पनीय अत्याचारसे सारा विश्व काँपने लगा। देवता स्वर्गसे भागकर गिरि-कन्दराओंमे जा छिपे, कुछ महाराज दशरथ के पास आये और यह संवाद सुनाया। वृद्धावस्था में प्राप्त चारों पुत्रोंकी सुरक्षा के लिये वे व्यग्र हो उठे। अयोध्या में पुत्रों की रक्षा कदाचित् ही हो सके, यह सोचकर उन्होंने गुप्त रूप से चारों बालकों को सरयू पार कामिका वन में सुखित गोप के घर भेज दिया। उसकी स्त्री मांगल्या उनका बड़े स्नेह से पालन-पोषण करने लगी। वे गोप बालकों के साथ गायें चराते हुए नाना प्रकार की मनोमुग्धकारी क्रीड़ाएँ करते थे। रावण को किसी प्रकार इसका पता चल गया। उसने उन्हें मारने के लिये छद्मवेषधारी अनेक राक्षस भेजे किन्तु राम ने उन सबका बध कर डाला। इन्हीं दिनों एक बार दशरथ ने विष्णुयज्ञ का आयोजन किया। उससे अपनी अवमानना समझ कर इन्द्र कुपित हो गये। उन्होंने अखण्ड जलवर्षा से अयोध्या को बहा देने का संकल्प किया। राम ने मेघावरोधक छत्र धारण कर साकेतपुरी तथा उससे संलग्न गोपप्रदेश की रक्षा की। वयस्क होने के बाद राम चारों भाइयों के साथ गोपप्रदेश से अयोध्या चले आये।

(भु० रा०, पूर्वखंड, पृ० ६३-१८४)

४. रामगीता महोपाख्यान

भुशुण्डि रामायण में रामगीता की योजना पूर्वखण्ड में है। इसके अन्तर्गत ब्रह्म राम द्वारा गोपियों को दिये गये भक्तिज्ञानोपदेश रखे गये हैं। प्रसंग इस प्रकार है—परात्पर ब्रह्म की अवतारलीला के रसास्वादन के निमित्त १६ हजार दण्डकारण्यवासी मुनियों ने पूर्व योजनानुसार ब्रजप्रदेश में गोपीरूपमें जन्म लिया था। उन्होंने राम को वर रूप में प्राप्त करने के लिये घोर तप किया। उनमें नन्दन और राजिनी की पुत्री सहजानन्दिनी सर्वप्रधान

थीं। गोपियों की निष्ठा से प्रसन्न होकर राम ने कहा, 'मैं एक पत्नीव्रत हूँ, अतः तुम लोग सीता की आराधना करके उनके अंशरूप में ही मुझे प्राप्त कर सकती हो।' उन लोगों ने अनन्य भावसे सीता की आराधना कर उन्हें प्रसन्न कर लिया। तब सीता की मध्यस्थता से उन्हें राम की प्रमोदवनलीला में प्रवेश का अधिकार मिला। महारास आरंभ हुआ। इस दिव्यरास का दर्शन करनेके उद्देश्य से शिव कैलाश से अयोध्या आये। किन्तु लीलायोजिका गोपिका ने अनजान में उनकी अवज्ञा कर दी। उससे रुष्ट होकर शिव ने उन्हें शाप दिया कि तुमलोग शीघ्र ही लीलाविहारी राम के वियोग दुःख से पीड़ित होगी। यह कहकर शिव राम के पास गये और उनकी भावपूर्ण स्तुति की। चलते हुए उन्होंने राम से उक्त शापकी बात कह दी और आश्रिताओं को उससे प्राप्त होनेवाले कष्ट के लिए उनसे क्षमा याचना करने लगे। राम ने कहा, 'देवदेव ! तुम्हारा शाप मेरे अवतारकार्य की सिद्धि में सहायक होगा। अतः वह मेरी इच्छा के सर्वथा अनुकूल है।' इसके अनन्तर वे गोपियों को संभावित वियोग-जन्य दुःख से उद्धारका उपाय बताते हुए बोले, "तुमलोग प्रत्यक्ष सम्पर्क के अभाव में भी मुझ से सहज ही तादात्म्य स्थापित कर सकती हो। प्रकृति-पुरुष सब मैं ही हूँ। पूजा और ध्यान के द्वारा तुम मेरी नित्यलीला में अहर्निश लीन रह सकती हो। नित्यधाम परमानन्दमय है। उसमें प्रवेश का अधिकार साधक मात्र को है चाहे वे निर्गुणमार्गी संत हों या सगुणोपासक भक्त। यों तो पंच-भक्ति-भावों में से किसी भी एक का आलम्बन लेनेसे अक्षर-धाम की प्राप्ति हो जाती है, किन्तु रासध्यान सर्वाधिक सुगम साधन है। मेरी लीला-सहायिका षोडश प्रमुख सखियों का आश्रय ग्रहण करने से लीलाभेद तथा लीलारस का तत्त्वज्ञान सहज सुलभ हो जाता है। उनके द्वारा साधना के विभिन्न अंगों एवं स्तरों का भी परिज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।' रामगीता के इन तत्त्वपूर्ण उपदेशों से गोपियों के मानसनेत्र खुल गये और भावी वियोग से उत्पन्न उनकी चिन्ता दूर हो गयी।

(भु० रा०, पूर्वखंड, अध्याय ४३ से ५९ तक)

५. सीता-जन्मकथा

भुशुण्डि रामायण में सीताजन्म की कथा साम्प्रदायिक मतानुकूल वर्णित है। मिथिला-नरेश जनक की पत्नी सुनयनाने परम पुरुष की नित्यसंगिनी सीता को पुत्री रूप में प्राप्त करने के लिये महालक्ष्मी की उपासना की। इसके फलस्वरूप स्वयं महालक्ष्मी चतुर्धा होकर चार पुत्रियों के रूप में वैशाख मास के शुक्लपक्ष में नवमी को अवतरित हुईं। सुवर्ण हल के द्वारा यज्ञवेदी के जोते जानेपर उसमें से निकले स्वर्णकलश से सीता नवधाराओं (त्रिगुणा, कमलेशी, गंडकी, अद्‌यवारिणी, द्युम्ना, घोषवती, वनघोषा, स्वयं लक्ष्मी और कौशिकी) में उत्पन्न हुईं। उन्हीं के साथ उर्मिला, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति का भी आविर्भाव हुआ। सीता और उर्मिला मध्यमें स्थित थीं। माण्डवी सीता के बायें तथा श्रुतिकीर्ति दायें भाग में विराजमान थीं। महाराज जनकके घर पुत्रियोंकी उत्पत्ति का समाचार पाकर मुनि लोग एकत्र हुये। उस समय पृथ्वी ने साक्षात् उपस्थित होकर जनक से सीता का परिचय देते हुए कहा, 'ये स्वयं महालक्ष्मी हैं, जो चतुर्धा होकर आपके घर अवतरित हुई हैं। इनका नाम सीता है। मैं इन्हें आपको प्रदान करती हूँ। आप इनकी रक्षा करें। ये रसिकेन्द्र पुरुषोत्तम राम की प्रिया हैं।' इतना कहकर पृथ्वी अन्तर्धान हो गयीं।

सीताके साथ उत्पन्न धारारूप नव सखियोंने राजा जनकको अपना परिचय दिया। त्रिगुणा ने बताया मैं सीताकी नित्य सखी हूँ। जैसे आप इनके पिता हैं वैसे मेरे भी। कमलेशीने कहा, 'मैं मन्दराचल की कन्या कमलेशी हूँ और इनकी नित्य सखी हूँ। आप मेरे पिता हैं।' गंडकी ने कहा, 'शालग्राम के शिलाक्षेत्र में जो गंडकी महानदी है, मैं वही हूँ और सहजा (सीता) की नित्य सखी होनेके कारण आपकी पुत्री हूँ।' अघवारिणी ने कहा, 'मैं सीता की सखी अघवारिणी नदी हूँ, आप मेरे पिता हैं।' द्युम्ना ने कहा, 'मैं सीता की परासखी द्युम्ना नदी हूँ, आप मेरे पिता है।' घोषवती ने बताया, 'मैं तपन पर्वतकी पुत्री घोषवती नदी हूँ। सीता की नित्य सखी होने के कारण आप ही मेरे पिता हैं।' वनघोषा ने कहा, 'मैं उत्तर शैल की पुत्री वनघोषा नदी हूँ।' लक्ष्मी ने कहा, 'मैं सीतांश से आविर्भूत उनकी नित्यसखी हूँ। राम हम दोनों के पति है।' कौशिकी ने कहा, 'मैं कुशिक राजा की पुत्री और सीताकी सखी हूँ।' इस प्रकार सबने अपने को सीता की नित्य सखी बताया और उसी सम्बन्ध से जनक को अपना पिता स्वीकार किया।

(भु० रा०, पश्चिमखण्ड, अध्याय ६ से १६ तक)

६. अभिशप्त ब्राह्मण सुनीथ का उद्धार।

(भु० रा०, पूर्वखंड, अध्याय २०)

७. सरयू स्नान करते हुए लुप्त दशरथ का राम द्वारा वरुणलोक से आनयन।

(भु० रा०, पूर्वखंड, अध्याय ६२)

८. सीता का पक्षी के द्वारा राम के पास प्रणयसंदेश एवं चित्र भेजना।

(भु० रा०, पूर्वखंड, अध्याय ६५)

९. वल्लरी मोक्षोपाख्यान।

(भु० रा०, पूर्वखंड, अध्याय ८०)

१०. दशरथ के अश्वमेध यज्ञार्थ राम का बैकुंठ से अग्नि लाना।

(भु० रा०, पूर्वखंड, अध्याय ९१)

११. परशुराम लक्ष्मण संवाद।

(भु० रा०, पूर्वखंड, अध्याय ७८)

१२. राम का यौवराज्य

(भु० रा०, पूर्वखंड, अध्याय ९२)

१३. षडगुणोपाख्यान।

(भु० रा०, पूर्वखंड, अध्याय ९३ से ९७, तक ९९)

१४. द्विजगवानयन।

(भु० रा०, पूर्वखंड, अध्याय ९८)

१५. मातुलोद्धारण।

(भु० रा०, पूर्वखंड, अध्याय १००)

१६. दशरथ की तीर्थयात्रा

भुशुण्डि रामायण में दशरथ की तीर्थयात्रा का बड़ा ही विस्तृत वर्णन हुआ है। यह वृतान्त रामायण के पूर्वखण्ड में ४७ अध्यायों (१०१–१४६) में लिखा गया है। भुशुण्डि रामायण की यह कथा सर्वथा नवीन है। चारों पुत्रों के वयप्राप्त करने पर महाराज दशरथने एक दिन रामको बुलाकर कहा, "तुम हर प्रकार से राज्य संचालन में समर्थ एवं योग्य हो, इसलिये राजकाजका भार तुमको सौंप कर मैं सप्तद्वीपों के तीर्थों का भ्रमण करके जीवन सफल बनाना चाहता हूँ। राम ने पिता की इस इच्छा का सहर्ष अनुमोदन किया। दशरथ ने राम पर शासन का भार सौंपकर सेवकों, साधु-संन्यासियों तथा अन्य प्रियजनों की एक विशाल मण्डली के साथ सप्तद्वीपस्थ तीर्थों का दर्शन करने के उद्देश्य से कैकेयी सहित प्रस्थान किया। काशी, मार्कण्डेय महादेव, प्रयाग, गलता, बद्रीनाथ, केदारनाथ आदि तीर्थों का दर्शन करते हुए वे ब्रजप्रदेश में गये। वहाँ शुकदेव ने स्वयं उपस्थित होकर उन्हें मुख्य तीर्थों का दर्शन कराया और उनके महत्त्व को समझाया। उन्होंने ब्रजप्रदेश में राम द्वारा कृष्णावतार में की गयी समस्त मधुर लीलाओं एवं चरित्रों का वर्णन किया और लीलास्थलों का दर्शन कराया। राजा दशरथ ने देखा कि ब्रज में सर्वत्र राम की लीलाओं का गान हो रहा है। वे राम के दिव्य एवं पुनीत चरित्र को सुनकर भावविभोर हो गये। बहुत दिनों तक वहाँ के लोगों के साथ तीर्थों का अवलोकन करते हुए वे उनके माहात्म्य को हृदयंगम करते रहे। इसके बाद पश्चिम और दक्षिण के तीर्थों का पर्यटन करने गये। वहाँ के पुण्यस्थलों से होते हुए वे पूर्वोत्तर भारत में परशुराम का दर्शन करने दण्डक क्षेत्र में गये। इन समस्त तीर्थों में महाराजा दशरथ को व्यापक ब्रह्म राम का साक्षत्कार हुआ। अन्त में समाज सहित रेणुका तीर्थ में स्नान करके वटेश्वर होते हुए वे अयोध्या लौट आये। उनके साथ अत्रि, गौतम, कश्यप आदि ऋषि भी आये। राजा दशरथ ने उनके लिये अयोध्या में रमणीक आश्रम बना दिया और वे सब वहीं पर रहकर तत्त्वचिंतन करते हुए कालयापन करने लगे।

(भु० रा०, पूर्वखंड, अध्याय १०१ से १४४ तक)

१७. राम द्वारा अयोध्या में महर्षियों की संस्थापना

(भु० रा०, पूर्वखंड, अध्याय १४६)

१८. मुनियों का लीला-रहस्य-बोध।

एक बार किशोर राम मुनियों के साथ सरयू स्नान के लिए गये। सरयू में प्रवेश करके मुनियों ने डुबकी लगायी। जल से शिर ऊपर निकालने पर एक अद्भुत दृश्य दिखायी पड़ा। उन्होंने देखा, 'हरा-भरा प्रमोदवन है, उसमें एक कल्पवृक्ष है, उस वनके सरोवरोंमें राजहंस विहार कर रहे हैं। कोटि योजनमें विस्तृत हरे-भरे कुंज हैं। वहाँ रासरस उन्मत्त असंख्य गोपिकायें हैं और उनके मध्य में राम विद्यमान हैं।' इस दृश्यको देखकर सभी मुनि आश्चर्य-चकित रह गये। उन्होंने सरयू में पुनः डुबकी लगाकर जब शिर बाहर निकाला तब उन्हें वही दृश्य फिर दिखायी दिया। इस प्रकार तीन-चार बार डुबकी लगाने के बाद सभी मुनि खड़े होकर उस अलौकिक दृश्यका निर्निमेष दर्शन करते रहे। वे इस स्थिति में बहुत देर तक आश्चर्यचकित हो एक दूसरेको देखते रहे। अन्त में सारा रहस्य उनकी समझ में आ गया और

सब एकस्वर से राम की भावपूर्ण स्तुति करने लगे। मुनियों की स्तुति से प्रसन्न होकर राम ने उन्हें साकेत और अयोध्या की लीला के रहस्य को समझाया, जिसको सुनकर वे आनन्दोल्लसित हो उठे। रामकी रसमयी लीला का साक्षात् दर्शन करके वे सभी मोह-माया से मुक्त हो गये। (भु० रा०, दक्षिणखण्ड, अध्याय ४)

१९. राम द्वारा अग्निकुमारों को वर प्रदान।

दण्डकारण्य पहुँचने पर राम की भेंट अग्निकुमारों से हुई। राम के अपूर्व सौन्दर्य को देख कर वे सभी कामाभिभूत हो उठे और राम से आग्रह किया कि वे उन्हें उसी प्रकार का सुख प्रदान करें जैसा सुख स्त्रीको पुरुष से प्राप्त होता है। अग्निकुमारों की स्त्रीभाव से राम के साथ संभोग करने की इच्छा को देखकर राम ने कहा कि संसार में लोग पुरुष होना अच्छा समझते हैं, स्त्री तो समाज में पराधीन रहती है वह शास्त्रादि के अध्ययन की अधिकारिणी भी नहीं है, इसलिये आपलोग पुंसत्वका परित्याग कर स्त्रीत्व क्यों चाहते हैं?' मुनियों ने कहा, 'इसी भावसे हमें आपके दिव्य रासका सुख प्राप्त हो सकता है।' मुनियों के इस तर्क से प्रसन्न होकर राम ने उन्हें वचन दिया कि मैं अगले (कृष्ण) अवतार में आपलोगों के साथ प्रमोदवन में विहार करूँगा। उसकी अर्हता प्राप्त करने के लिये आपलोग दण्डकारण्य में रहकर तपस्या करें। (भु० रा०, दक्षिणख०, अध्याय १३३)

२०. मंदाकिनीका प्रादुर्भाव।

जिस समय राम चित्रकूट में निवास कर रहे थे, एक दिन सीता अत्रि मुनि के यहाँ गयीं। थोड़ी देर बाद उनको ढूँढ़ते हुए राम भी वहाँ गये और अत्रि मुनि को प्रणाम करके बैठ गये। उन्होंने आश्रम की भूरि-भूरि प्रशंसा की। अत्रि मुनि ने कहा, 'आपकी कृपा से मुझे सब कुछ उपलब्ध हैं परन्तु दो इच्छाएँ अपूर्ण हैं—एक यह कि आप मेरे हृदय में सतत निवास करें दूसरी यह कि मैं नित्य प्रयागराज का दर्शन करना चाहता हूँ परन्तु वृद्धावस्था के कारण जा नहीं पाता। भूलोक में रहती हुई भी गंगाका दर्शन मुझे नहीं प्राप्त होता। यदि आप चाहें तो मेरी ये दोनों इच्छाएँ पूरी हो सकती हैं।' अत्रि की प्रार्थना पर राम ने कहा, मैं आपकी अभिलाषा पूरी करने के लिये गंगा को इसी आश्रम के निकट ला रहा हूँ।

इतना कहते ही सबलोगों के देखते-देखते क्षणमात्र में चित्रकूट पर्वत के मध्य से एक दिव्य जल स्रोत प्रवाहित होने लगा। इच्छापूर्ति हो जाने पर अत्रि मुनि आनन्दमग्न हो राम की स्तुति करने लगे। (भु० रा०, दक्षिणखण्ड, अध्याय ११७)

२१. सरयू की उत्पत्ति।

राजा जनक ने शुकदेव से सरयू की उत्पत्ति विषयक जिज्ञासा व्यक्त करते हुए उनके स्वर्ग से भूमण्डलपर आनेका वृत्तान्त बताने को कहा। इसके समाधानस्वरूप शुकदेव ने उन्हें प्रस्तुत आख्यान सुनाया। 'प्राचीनकाल में रामके परात्पर-स्वरूप के विषय में मुनियोंमें परस्पर मतभेद उत्पन्न हो गया था, जिसका निराकरण करने के लिये बालवेशधारी तत्वज्ञ सनत्कुमार उनके पास गये। मुनियों ने सनत्कुमार से विनयपूर्वक पूछा कि वह एक परात्पर ब्रह्म कौन है जो मुनियों तथा देवताओं दोनों के लिये समानरूप से आराध्य एवं वरेण्य है। सनत्कुमार ने राम और उनकी पराशक्ति सजानन्दिनी के रूप-गुण-लीला-धामका सविस्तर वर्णन किया

जिसको सुनकर वहाँपर समुपस्थित ब्रह्मा, रुद्र, देवता, मुनि तथा अन्य सभासद प्रेम पुलकित हो उठे। उनके नेत्रों से प्रेमवारि बहने लगा। वही प्रेमजल एकत्र होकर एक सरोवर बन गया जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देनेवाली पीयूषप्रवाहिनी सरयू का आविर्भाव हुआ। इसके अनन्तर सरयू ने परम पुरुष से पूछा, मेरा नाम क्या है और मुझे कौन-सा कार्य करना है ?' परम पुरुष ने बताया कि राम के अगाध प्रेम सरोवर से तुम उत्पन्न हुई हो, इसलिये तुम्हारा नाम मैंने सरयू रखा है। जब वशिष्ठ मुनि तुम्हारे तटपर सिद्धि प्राप्त करेंगे तब तुम्हारा नाम वशिष्ठा और जब तुम साकेतलोक में जाओगी तो तुम्हारा नाम रामगंगा हो जायेगा। वैसे तुम्हारे सहस्रों नाम हैं। तुम्हारे प्रेमजल में जो स्नान करेगा उसे रामपद प्राप्त होगा इसलिये तुम रामनगरी अयोध्या को जाओ और वहाँ के निवासियों को तृप्त करो।'

भुशुण्डि रामायण में सरयू उत्पत्तिविषयक एक और कथा दी गयी है। भूमण्डलकी प्रथम राजधानी के रूप में अयोध्या नगर की स्थापनोपरान्त एक दिन मनु ने महर्षि वशिष्ठ से कहा, 'इस अयोध्यापुरी में सब कुछ है परन्तु लोकपावनी गंगा नहीं है। अतः आप अपने तपोबल से उन्हें पृथ्वीपर लाने की कृपा करें। मनुकी इस प्रार्थना पर वशिष्ठजी ने घोर तपस्या की जिसके फलस्वरूप सरयू भूमण्डलपर आयीं। उनके पुण्यजल में स्नान करके सभी भूलोकवासी कृतार्थ होने लगे। (भु० रा०, पश्चिमखण्ड, अध्याय ३५ से ३९ तक)

२२. सीता उर्मिला-संवाद। (भु० रा०, दक्षिणखण्ड, अध्याय ९)

२३. पादुका-राज्य व्यवस्था।

भुशुण्डि रामायण में भरतद्वारा स्थापित 'पादुकाराज्य' का विशद एवं अत्यंत रोचक वर्णन किया गया है। पादुका के शासनकाल में घटित तीन-चार घटनाओं का उल्लेख करके यह प्रमाणित किया है कि भरत ने राम पादुका के प्रभाव से निर्विघ्न तथा कल्याणकारी शासन स्थापित किया था। विवरण इस प्रकार है—

भरत ने चित्रकूट जाकर रामको वापस लाने और उन्हें राज्य सौंपने का उपक्रम किया परन्तु वह सब व्यर्थ गया। अन्त में विवश होकर रामकी पादुकाओं को लेकर वे समाज-सहित अयोध्या लौट आये। वहाँ राम की युगल पादुकाओं को सिंहासनारूढ़ करके वे स्वयं नन्दिग्राम में तपोमय जीवन व्यतीत करने लगे। इस बीच भरत राज्य-संचालन का समस्त कार्य पादुकाओं का आदेश लेकर करते रहे।

एक बार अतिवृष्टि से सारी प्रजा दुखी होकर भरत के पास गयी। अपनी दुर्दशा का समाचार बताते हुए उसने प्रार्थना की कि इस कष्ट से आप हमलोगों को यथाशीघ्र त्राण दिलायें। भरत ने उनसे सविनय कहा, 'इस समय राम की पादुका का राज्य है आपलोग अपने दुखों का निवेदन उन्हीं से करें। इस सम्बन्ध में मैं कुछ भी करने में असमर्थ हूँ। भरत के इस निवेदन के अनुसार प्रजावर्ग ने मिलकर राम पादुकाओं की गलदश्रु स्तुति की। इसके फलस्वरूप मूसलाधार वृष्टि तत्काल रुक गयी और जनमानस आनन्दोल्लसित हो उठा।

इसी प्रकार एक बार अनावृष्टि के कारण अकाल पड़ गया। सम्पूर्ण प्रदेश सूखा के भीषण चपेट में आकर त्राहि-त्राहि करने लगा। प्रजा पुनः भरत के पास गयी और भरत से

कहा—" आप यहाँ के राजा हैं। हर प्रकार से प्रजा की देखभाल करना राजा का धर्म है। आपके राज्य करते प्रजा अनावृष्टि से संत्रस्त है आप कोई उपाय क्यों नहीं करते हैं?' भरत ने उन्हें स्मरण दिलाया कि इस समय उनका राज्य नहीं है, पादुकाओं का राज्य है। अतः आपलोग अपने कष्टों का निवेदन उन्हीं से करें। तत्काल सबलोगों ने पादुकाओं की स्तुति की। तुरन्त आकाशवाणी हुई 'आपलोग संताप-मुक्त हो जायें। शीघ्र ही वर्षा होगी।' कालान्तर में मूसलाधार वृष्टि हुई जिससे सूखता प्रदेश पुनः हरियाली से लहलहा उठा। हताश जनता संकटमुक्त हो राम-पादुकाओं की अपार महिमा का गुणगान करने लगी।

इन प्राकृतिक विपत्तियों से अयोध्यावासियों का उद्धार करने के अतिरिक्त एक बार अयोध्या को आक्रामकों के भीषण अत्याचार से भी पादुकाओं ने बचाया था। नेपाल की ओर से आकर दुर्दान्त शत्रुओं में उत्तरकोशल को घेर लिया और नाना प्रकार के अत्याचार करने लगे। उनके प्रतिरोध के लिए भरत ने सेना भेजी। दोनों दलों में एक महीने तक भीषण युद्ध चलता रहा। फलतः सम्पूर्ण उत्तरकोशल उजाड़ होने लगा। बाग-बगीचे खेत-खलिहान सब नष्ट हो गये। इससे व्यथित होकर सभी अयोध्यावासी महर्षि वशिष्ठ के पास गये और बड़ी आर्तवाणी में उनसे अपना दुःख निवेदित किया। वशिष्ठ जी कोशल की दुर्दशा का समाचार सुनकर अत्यन्त दुखी हुए। वे सबको लेकर भरत के पास आये। उन्होंने भरत से प्रजा की दुदर्शा का वर्णन किया और यह बताया कि राजा का प्रमुख कर्तव्य प्रजा की सेवा और उसकी सुरक्षा करना है। भरत का उत्तर था, इस समय राज्य रामपादुका का है। वही जनता के दुखों का निवारण कर सकती है।' वशिष्ठ जी ने पादुकाओं की स्तुति की। उसी समय आकाशवाणी हुई, "तुमलोगों का कष्ट शीघ्र दूर होगा।" यह सुनकर लोग प्रसन्न मन अयोध्या चले आये। इसके बाद परिस्थित में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ। विचित्र दृश्य उपस्थित हो गया। शत्रुदल पर अस्त्र-शस्त्रों की धुआंधार वर्षा होने लगी। शस्त्रास्त्रों के साथ-साथ चारों तरफ प्रचण्डाग्नि बरसने लगी जिससे शत्रुसेना में भीषण हाहाकार मच गया और वह अग्निवर्षा में जलती-भुनती, प्राणरक्षा के लिए इधर-उधर भागने लगी। देखते-देखते शत्रुसेना युद्धक्षेत्र से पूर्णरूपेण पलायित हो गयी। इस प्रकार राम-पादुका के प्रभाव से कोशलवासियों पर आयी हुई घोर विपत्ति टल गयी।

एक बार एक विप्र की गाय को कोई चुरा ले गया। इससे दुखी होकर वह पादुकाओं के सम्मुख आकर करुण विलाप करने लगा। उसने रो-रोकर कहा, 'प्रजावत्सल! दशरथ की मृत्यु के बाद हमलोगों की देखभाल करने वाला कोई नही रह गया है। राम दुर्भाग्य से वनवासी हो गये, भरत ने उनके वियोग में सन्यास ले लिया, लक्ष्मण राम की सेवा में चले गये, शत्रुघ्न का पता नहीं। राज्य में चोर चाण्डालों का बोलबाला हो गया।' विप्र की इस वाणी को सुनकर शत्रुघ्न धनुष वाण लेकर बाहर आये और तस्करों का पीछा किया। तब तक वे जंगल में पहुँच चुके थे। किन्तु किसी अज्ञात पुरुष द्वारा बन्दी बना लिये जाने के कारण उन्होंने गायों को छोड़ दिया था। शत्रुघ्न ने देखा कि वे सभी चोर सामने बँधे पड़े हैं। उन्होंने पूछा, 'तुम्हें किसने बाँधा है?' चोरों ने उत्तर दिया कि चार भुजाओं वाले, कान में मकराकृत कुण्डल पहने, किरीट और वनमाला धारण किये हुए, शंख-चक्र-गदा-

पद्म से सुशोभित एक श्यामलांग पुरुष ने हमें बाँध दिया है।' चोरों की बात से शत्रुघ्नने समझ लिया कि स्वयं राम ने ही यह सब किया है। वे मन-ही-मन अपने भाग्य को सराहने लगे। उसके बाद उन्होंने चोरों को मुक्त कर दिया और गाय ब्राह्मण को दे दी।

राम पादुकाओं के इस प्रभाव और महिमाको सुनकर रावण तथा बाणासुरने उन्हें चुरा लेने का निश्चय किया। इस उद्देश्य से दोनों एक दिन बहुत रात व्यतीत हो जाने पर चुपके से भरताश्रम में आये। पूजा-कीर्तनोपरान्त जब भरत सो गये तो दोनों ने चुपके से पादुकाओं को उठा ले जाना चाहा। परन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी पादुकाएँ नहीं उठीं। अन्ततोगत्वा हार कर और लज्जित होकर वे लंका वापस चले गये।

इस प्रकार पादुकाराज्य की सुव्यवस्था तथा समृद्धि का वर्णन करके भुशुण्डि रामायण-कार ने रामपादुकाओं के माहात्म्य और तत्कालीन कोशल राज्य की शासन व्यवस्था पर प्रकाश डाला है।

(भु० रा०, दक्षिणखण्ड, अध्याय ४७ से ५८ तक)

२४. गोपसमाज का नंदिग्राम और पालिग्राम से चित्रकूट आगमन।

(भु० रा०, दक्षिणखंड, अध्याय ६३ से ७६ तक)

२५. गोपियों की आविर्भाव कथा।

(भु० रा०, दक्षिणखंड, अध्याय ७७)

२६. समुद्र मंथन और विष्णु का मोहिनीरूप धारण।

(भु० रा०, दक्षिणखंड, अध्याय, ७८ से ९५ तक)

२७. राम का चित्रकूट गिरि विहार।

(भु० रा०, दक्षिणखंड, अध्याय १००)

२८. राम द्वारा सीता का शृङ्गार।

(भु० रा०, दक्षिणखंड, अध्याय १७)

२९. रावण का जन्म और उत्कर्षसाधना हेतु तपश्चर्या।

(भु० रा०, दक्षिणखंड, अध्याय १०१)

३०. सहस्रार्जुन द्वारा रावण का बाँधा जाना।

(भु० रा०, दक्षिणखंड, अध्याय १०६)

३१. सिंहल के राजा शतंजय की कथा।

(भु० रा०, दक्षिणखंड, अध्याय १४९)

३२. सीता की हृदयाशंका।

(भु० रा०, दक्षिणखंड, अध्याय, १५२)

३३. राम और शबरी के निंदापराध से कर्मकांडी मुनियों के आश्रम मंडलों की दुर्गति।

(भु० रा०, दक्षिणखड, अध्याय १६९)

३४. अशोकवाटिका में राम द्वारा रासलीला का आयोजन।

प्रवर्पण गिरिपर निवास करते हुए एक दिन रामने लक्ष्मणसे कहा, 'सुग्रीवने सीता की खोज कराने का वादा किया था परंतु अभी तक उसने कुछ भी नहीं किया। प्रतीत होता हैं कि रूपवती तारा को पाकर वह विलासमग्न हो गया। तुम अभी किष्किन्धा जाकर राज-पद से मदान्ध उस वानर को मेरे पास ले आओ।' राम के आदेशानुसार लक्ष्मण सुग्रीव को बुलाने किष्किन्धा चले गये। लक्ष्मण के चले जानेपर राम दिव्य शरीर से लंका पहुँचे। वहाँ अशोकवाटिका में सीता से भेंट की। सीता ने अपनी शक्ति से अशोकवाटिका में प्रमोदवन का प्रादुर्भाव कराया और रावण द्वारा हरी गयी असंख्य देव, गंधर्व तथा राजकन्याओं के साथ रासलीला का विशाल आयोजन हुआ। इसके पश्चात् वे पुनः प्रवर्पण गिरिपर आ गये।

(भु० रा०, दक्षिणखंड, पत्र-३११)

३५. त्रिजटा की वर प्राप्ति।

(भु० रा०, दक्षिणखंड, अध्याय, पत्र ३७४)

३६. शबरी का दिव्य-लीला-प्रवेश।

(भु० रा०, पश्चिमखंड, पत्र २७)

३७. सहजोपाख्यान।

भुशुण्डि रामायणकार के अनुसार सहजा सीता से अभिन्न राम की आह्लादकारिणी शक्ति हैं। राम उनके साथ नित्य विहार लीलारत रहते हैं। इसलिए प्रस्तुत ग्रन्थ में सहजा चरित का विस्तार से वर्णन किया गया है। पूर्वखंड के ८१ से ८५ तक तथा पश्चिम खंड के ५३ से ६६ तक के अध्यायों में सहजा वृतान्त निरूपित है। वह संक्षेप में इस प्रकार है—

सहजा का जन्म नन्दन नामक गोपेन्द्र के यहाँ हुआ था। उनकी माता का नाम राजिनी था। जब वे उत्पन्न हुईं तब उनका रूप, वय, शील आदि सब सहज सरल था, इसलिये मुनियों के परामर्शानुसार उनका नाम सहजा रखा गया। सहजा अपने अभूतपूर्व लावण्य से सबके आकर्षण का केन्द्र बन गयीं। इससे माता पिता बहुत आह्लादित थे। कुछ बड़ी होने पर उनकी सारी क्रिया शीलता अवरुद्ध हो गयी। वह न बोलतीं, न रोतीं, और न खाती थीं। एकदम जड़ीभूत अवस्था में पड़ी रहती थीं। यह देखकर उनके माता-पिता अत्यन्त चिन्तित हो उठे और सोचने लगे उन्हें कहाँ ले जायें जिससे वे पुनः प्रकृत स्थिति में आ जायँ।

इन्हीं दिनों भगवान् शिव सहजा देवी का दर्शन करने ब्रज पधारे। वहाँ ब्रजांगनाओं के मध्यमें राम सानन्द क्रीड़ा कर रहे थे। शंकरजी ने उनका गुणगान किया और फिर सहजेश्वरी देवी के दर्शन की इच्छा व्यक्त की। राम ने हँसते हुए कहा, 'इसके लिये आप नन्दन गोप के घर जाएँ।' शंकर तत्काल बटुका रूप धारण कर नन्दन गोप के निवास स्थान पालिग्राम पहुँचे। गाँव के सभी लोग उन्हें महासिद्ध पुरुष समझकर गोपराज नन्दन के पास ले गये। गोपराज ने उनका विधिवत् सत्कार किया और फिर अपनी कन्याकी असामान्यावस्था निवेदित की। शंकर ने कहा, 'कन्या को ले आइये तब उसे देखकर हम कारण ज्ञात करेंगे और यथा संभव व्याधिमुक्त करने का प्रयास करेंगे। राजिनी कन्या को गोद में लेकर आयीं। उस समय बालिका के होठोंपर मंद मुस्कराहट थी। रामवल्लभा को देखकर शंकर जी मन-ही-

मने अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले, 'इस बालिका को मेरे पास छोड़ कर आप लोग थोड़ी देर के लिये हट जायें।' उनके निर्देशानुसार नन्दन और राजिनी कन्या को देकर बाहर चले गये। एकान्त पाकर शंकर ने रामवल्लभा सहजेश्वरी की गद्गद कंठ से स्तुति की। तब सहजा ने शंकर को अपना वास्तविक रूप दिखाया। उसके बाद शंकर जी ने पूछा, 'आप इस प्रकार जड़ीभूत होकर क्यों रह रही हैं ?' सहजा ने उत्तर दिया "बहुत दिन हुए, न राम का दर्शन हुआ और न उनके साथ विहार का ही संयोग प्राप्त हुआ। प्रियतम के विरह में ही मेरा शरीर जड़ीभूत हो गया है। किन्तु आपके अनुरोध से अब मैं माता-पिता को इस चिन्ता से मुक्त कर दूँगी।' इतना कह कर सहजा ने पुनः बालरूप धारण कर लिया और बटुकी गोद में किलकारी मारकर हँसने लगी। सब लोग अन्दर आये और सहजा को हँसती-खेलती देखकर बहुत प्रसन्न हुए।

सहजा दिन प्रतिदिन चन्द्रकला की भाँति बढ़ने लगीं। जब वे किशोरवय को प्राप्त हुईं तब उनका मुखमण्डल अत्यन्त आकर्षक और तेजोमय हो उठा। उसे देखकर उनकी माता ने कहा, 'यह तो लक्ष्मी का अवतार है। इसका विवाह भी इतने ही रूपवान वर से होना चाहिये।' गोपेन्द्र ने इसके लिए शाण्डिल्य मुनि को बुलवाया और उनसे सहजा के योग्य वर के विषय में मन्त्रणा की। शाण्डिल्य वर की तलाश में विभिन्न लोकों का भ्रमण करते हुए सुखित गोप के घर पहुँचे। वहाँ सखाओं के साथ राम खेल रहे थे। मुनि ने सुखित से उनके (पोष्य) पुत्र राम के विवाह का प्रस्ताव किया। स्वीकारात्मक उत्तर पाकर वे नन्दन गोप के घर लौट आए और उन्हें बताया कि सुखित गोप का पुत्र ही सहजा के योग्य वर है। नन्दन गोप ने अपनी कन्या का विवाह सहर्ष सुखित गोप के पुत्र के साथ कर दिया। इस प्रकार राम और सहजा लोकाचार की दृष्टि से वैवाहिक सम्बन्ध-सूत्र में बँध गये।

सहजा राम की पराशक्ति हैं। वे रमा, लक्ष्मी, सीता आदि से अभिन्न हैं। प्रमोद वन लीला में वे राम के साथ सर्वदा विहार करती हैं। उनका स्वेच्छया आविर्भाव-तिरोभाव होता रहता है। संसार की सुख शान्ति उन्हीं की इच्छा पर निर्भर है। वे ही भुक्ति-मुक्ति दात्री हैं। भुशुण्डिरामायणकार ने इस प्रकार रामचरित में सहजा की अवतारणा कर माधुर्य लीला का जो स्रोत प्रवाहित किया वह परवर्ती शृंगारी राम भक्तिधारा का मुख्य संबल बन गया। सहजा को रामचरित में वही स्थान मिल गया जो कृष्णलीला में राधा का है। भेद केवल इतना है कि रामावतार में मर्यादा की प्रधानता होने से प्रमोदवन अथवा दिव्यधाम लीला में ही वे राम की नित्य संगिनी के रूप में चित्रित की गयीं व्यावहारिक अथवा लोकलीला में सीता को ही प्रमुखता दी जाती रही।

(भु० रा०, पूर्वखंड के अध्याय ८१-८५ तथा पश्चिमखण्ड के अध्याय ५३-६४,६६)

३८. मुनि परिवारों की सेवा के लिए सीता का पुनः वनगमन।

रावणवध के पश्चात् अयोध्या आने पर राम का राज्याभिषेक हुआ और वे प्रजा को सभी प्रकार से सुख देते हुए शासन करने लगे। कुछ दिन बीत जाने पर सीता को गर्भवती जानकर एक दिन राम ने उनसे एकान्त में कहा, 'प्रिये, तुम्हारी कुछ इच्छा हो तो बताओ, उसे तत्काल पूरी करूँगा। सीता बोलीं, 'आपकी कृपा से मुझे तीनों लोकों में कुछ भी

दुर्लभ नहीं है। केवल एक अभिलाषा शेष है। वनवास के समय जिन मुनि-पत्नियों, मुनि-कुमारों और ऋषि-कन्याओं से सम्पर्क हुआ था, उन्हें विविध प्रकार के वस्त्राभूषण एवं भोज्य पदार्थ देने का मैंने संकल्प किया था। मुझे यह देखकर बहुत दुःख हुआ था कि जंगलों में रहकर साधना करने वाले मुनिपरिवार अत्यन्त अभावपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। उन्हें भोजन वस्त्र के लिए अपार कष्ट उठाना पड़ता है। उनकी सेवा करने की मेरी बलवती इच्छा पूरी करें। मैं अपने साथ सारी सामग्री लेकर जाऊँगी और आश्रमों में उसे वितरित करके तपस्वियों का आशीर्वाद प्राप्त करूँगी। फिर आप के पास आ जाऊँगी।' नित्यसंगिनीके वियोग की सम्भावना से कातर राम को उन्हें वन जाने की अनुमति देते हुए जितना कष्ट हुआ तपस्वियों की सेवा में उनकी रुचि देखकर उतना ही संतोष।

इसके बाद राम ने लक्ष्मण को तत्काल बुलाकर कहा, 'जानकी मुनि परिवारों की सेवा करना चाहती हैं। इस समय इनका संकल्प विशेष रूप से पूरा करना चाहिए। तुम इनकी इच्छा के अनुसार वस्त्र, आभूषण, रत्न, द्रव्य भोज्य पदार्थ तथा अन्य सामग्री प्रचुर मात्रा में गाड़ियों में लदाकर ले जाओ। ये तापस दम्पत्तियों की जिस प्रकार पूजा करना चाहें उसकी व्यवस्था कर इन्हें आप्त-मनोरथ करो। दास-दासियों और सखियों के साथ इनको वहाँ स्थित कर शीघ्र मेरे पास चले आना।' राम के निर्देशानुसार लक्ष्मण ने समस्त अपेक्षित वस्तुओं को बैलगाड़ियों में लदवाया और सेवकों तथा सखियोंसमेत मणि-कांचन मण्डित सीता को सरयू के पार वन प्रदेशस्थ आश्रममण्डल में ले गये। वहाँ उनके आवास की समुचित व्यवस्था कर वे सीता से बोले, "अब आप यहाँ अपनी इच्छा के अनुसार धन, पट, आभूषण और भोजन से ऋषि परिवारों की सेवा-पूजा करें। मुझे आर्य के पास जाने की अनुमति दें। कार्य समाप्त होने पर मैं फिर आकर आपको अयोध्या ले जाऊँगा।' इतना निवेदन कर उन्होंने सीता के चरणों की बन्दना की। तदनन्तर मुनि स्त्रियों को करबद्ध प्रणाम करके उन्हें सीता को सौंप शीघ्रगामी रथ से अयोध्या चले आये।

सीता को आश्रमों में निवास करते हुए बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। उनके आने से मुनि-परिवार अत्यन्त प्रसन्न हुए। ऋषि-मुनि-पत्नियों ने सीता का स्वागत किया और उनसे गर्भ-प्रसवन काल तक वहीं निवास करने का अनुरोध किया। सीता उनके स्तुति पूर्ण शब्दों को सुनकर बोलीं, "हम लोग गृहस्थी की झंझटों में निरन्तर फँसी रहती हैं। आप लोगों का दर्शन पुण्य से होता है। जो काल आपके साथ बीते वही सार्थक है। यह समझ कर ही हमने स्वामी से यहाँ आने की अनुज्ञा प्राप्त की है। इसके पश्चात् सीता ने समस्त तपस्वियों, कन्याओं और ऋषिकुमारों की विधिवत् पूजा की और उन्हें नाना प्रकार के पदार्थ अर्पित करके अपना संकल्प पूरा किया।

(भु० रा०, पूर्वखंड, अध्याय ९७)

३९. अयोध्यावासी चांडाल खिग को दृष्टिदान।

(भु० रा०, उत्तरखंड, अध्याय ४८)

४०. ऋजीष ऋषि का उद्धार।

लीला संवरण के बाद राम अपने परमधाम प्रमोदवन को चले गये। वहीं पर उन्होंने ऋजीष नामक ऋषि का उद्धार किया। शापग्रस्त अंधे ऋषि प्रमोदवन के निकटस्थ सरोवर

के तटपर बैठे थे। जब राम उनके पास गये तो उन्हें दृष्टि मिल गयी और उन्होंने राम का साक्षात् दर्शन किया। राम के लोकमोहक स्वरूप को देखकर वे गद्गद हो उनके चरणों पर गिर पड़े। राम ने कहा, 'उठो! तुम मेरे परम सेवक हो, इसलिए तुम्हें अब किसी प्रकार का भय नहीं करना चाहिये।' उसके बाद उन्होंने राम से पूछा, 'जिस स्वरूप का दर्शन योगी-मुनि कठोर तपस्या और उपासना के बाद भी कदाचित् ही कर पाते हैं उसके दर्शन का सौभाग्य मुझ जैसे क्रूर और पापाचारी को प्राप्त हुआ है। मैंने कोई तपस्या-उपासना नहीं की है। कृपया बतायें कि इस प्रकार की दया मुझपर कैसे हुई? राम ने उनके विगत जीवन की चर्चा करते हुए कहा—

'पूर्व जन्म में जब तुम ऋजीष ऋषि के रूप में तपस्यारत थे तो तुम्हें हमारे प्रति गोपियों के प्रेम-भाव में शंका उत्पन्न हुई थी और तुमने उनके प्रेम की निन्दा की थी। उसके दण्डस्वरूप तुम्हारी तपस्या नष्ट हो गयी और तुम शूकर होकर प्रमोदवन के आसपास विचरण करने लगे। एक दिन दैवयोग से प्रमोदवन के निकटस्थ कासार नामक सरोवर में तुमने स्नान किया। तुम्हारे स्नान करने से पूर्व मेरी एक प्रिया (व्रजांगना) उसमें स्नान करके चली गयी थी। अतः स्नान करते समय उसके चरण की जो धूल सरोवर के जल में घुल गयी थी, वह तुम्हारे शरीर में लग गयी। उसके प्रभाव से तुम पावन होकर शूकर योनि से मुक्त हो गये। तब तुम्हें अपना पूर्वजन्म याद आने लगा। तुम सोचने लगे, 'मैं ऋजीष मुनि था कैसे इस प्रकार की दुर्गति को प्राप्त हुआ?' उसी समय देवर्षि नारद तुम्हारे पास आये और तुम्हारे किये हुए पापों को बताकर उपदेश दिया कि जिस गोपी की चरण धूल के प्रभाव से तुम शूकर योनि से मुक्त होकर मनुष्य हुए हो उसी का ध्यान करो। उसी से तुम्हें परात्पर ब्रह्म राम की प्राप्ति होगी। ऐसा करने पर तुम्हारा पाप नष्ट हो जायगा। तुमने देवर्षि नारद के निर्देशानुसार आचरण किया। कालान्तर में मनुष्य शरीर प्राप्त कर मेरी भक्ति से तुम्हारे पाप नष्ट हो गये और अंधत्व जाता रहा।

(भु० रा०, उत्तरखण्ड, अध्याय ४८-४९)

४१. कालदमनोपाख्यान।

(भु० रा०, उत्तरखंड, अध्याय ४८)

४२. राम द्वारा लक्ष्मण को परालीला का उपदेश।

(भु० रा०, उत्तरखंड, अध्याय ५१)

४३. राम का लीला संवरण।

(भु० रा०, उत्तरखंड, अध्याय ५२)

■

विषय सूची

■

श्रीमदादिरामायणे

दक्षिणः खण्डः

श्रीगणेशाय नमः श्रीरामचन्द्राय नमः श्रीसहजानन्दित्यैनमः ।

प्रथमोऽध्यायः

ब्रह्मविरचितं स्तोत्रम्

दिनकरकुलकेतुः सर्वसौन्दर्यसेतुः त्रिभुवनसुखहेतुर्भूतिकृज्जम्भजेतुः ।
सुरनरनगरामानन्दसन्दोहधामा धृतमणिवरदामा पातु वो रामनामा ॥ १ ॥

दुरितहरणदक्षः [१]साधुवर्यैकपक्षस्त्रिदशरिपुविपक्षः स्वर्गसंपत्तिरक्षः ।
प्रबलनिखिलरक्षःसंहृतौ बद्धकक्षः सकलगुणवलक्षः पातु रामो विचक्षः ॥ २ ॥

नतिनुतिलवमन्ता कालभीत्येकहन्ता परमगहनगन्ता सत्यवाक्यानुमन्ता ।
कुशलनिधिरनन्तानन्दलीलैकरन्ता जयति जय दुरन्तापत्तिहृद्रामचन्द्रः ॥ ३ ॥

परममधुरशीलः प्रावृषेण्याभ्रनीलः सकलसुखदलीलः कृत्तहृच्छोककीलः ।
त्रिभुवनशुभवेशः कोटिकल्याणदेशः कुटिलमसृणकेशः पातु भास्वत्कुलेशः ॥ ४ ॥

सलिलनिधिगभीरः सर्वलोकैकवीरः स्थिरतरमतिधीरः सूर्यवंशैकहीरः ।
सुरभियश उशीरः स्वर्णवर्णाच्छचीरः श्रितविपिनकुटीरः पातु नो रामवीरः ॥ ५ ॥

त्रिभुवनजनपालः सर्वदुष्टैककालः करकृतकरवालः कीर्त्तिलक्ष्मीविशालः ।
समरभुवि करालः सत्तपस्वी जटालः कलयतु रघुबालः संपदं नो रसालः ॥ ६ ॥

मुनिजनकृतभक्तिर्बद्धसीतानुरक्तिः कलितललितशक्तिर्जातसंपद्विरक्तिः ।
कृतसकलविभुक्तिः सच्चिदानन्दभुक्तिर्दितिजहरणयुक्तिः पातु रामः सदुक्तिः ॥ ७ ॥

गुणनिधिरभिरामः सर्वरक्षोविरामः समरभुवि सभामः सौभगश्रीललामः ।
निरवधिशुभधाम श्रीदृशोर्दत्तकामः स्फुटमधुरिमवामः पातु वः सोऽपि रामः ॥ ८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे ब्रह्मविरचित[२]स्तोत्रं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

●

१. साधुवर्गैक०, मथु० । २. विरिंचि०, बड़ो० ।

द्वितीयोऽध्यायः

श्रीभुशुण्ड उवाच

रामो जयति लोकानां नित्यमानन्दवर्द्धनः ।
स्वच्छन्दक्रीडनानन्दी सच्चिदानन्दविग्रहः ॥ १ ॥

तं नमामि रसानन्दरूपिणं रघुवल्लभम् ।
यं भजन्ति सदा भक्ता भक्त्या प्रेमस्वरूपया ॥ २ ॥

रामेण रसरूपेण प्रेमानन्दैकशालिना ।
नित्यलीलानिकेतेन कृतं मे भूरिमङ्गलम् ॥ ३ ॥

तेन साधनभूतेन श्रीरामेण मनोजुषा ।
साधयामि परं कार्यमिति मे निश्चिता मतिः ॥ ४ ॥

परब्रह्मस्वरूपाय रसानन्दैकमूर्तये ।
समर्पयेऽहं सकलं रामाय परमात्मने ॥ ५ ॥

परमानन्दसदनाद्रामाद्रघुकुलोद्वहात् ।
राजीवलोचनाच्छ्यामान्नास्त्यन्यच्छरणं मम ॥ ६ ॥

तस्यैवाखिलसर्वस्वभूतस्य सकलात्मनः ।
रामस्य मे परा भक्तिर्भूयाज्जन्मनि जन्मनि ॥ ७ ॥

श्रीरामे सहजाकान्ते चिदानन्दैकवेश्मनि ।
कृपापीयूषजलधौ मनो मे परिसज्जतु ॥ ८ ॥

नमः सर्वविभक्तीनामाश्रयायाखिलात्मने ।
श्रीरामपरमेशाय रमणानन्दसद्मने ॥ ९ ॥

श्रुतं विस्तरशो ब्रह्मन् रामस्य रमणं मया ।
व्रजवासिजनानन्दमन्दिरं लोकमङ्गलम् ॥ १० ॥

रामस्य रसरूपस्य श्रुतं जन्म च कर्म च ।
महारासात्मकं दिव्यं रमणं निजशक्तिभिः ॥ ११ ॥

राक्षसीहननाद्याश्च बाललीलाः श्रुता विभो ।
याभिस्तन्मयतामेति हृदयं भक्तिभाजनम् ॥ १२ ॥

अयोध्यायां कृता लीलाः परमानन्दवर्द्धिकाः ।
सीतोद्वाहप्रभृतयो ब्रह्मन्नाकर्णिता मया ॥ १३ ॥

[1]षड्गुणाश्च श्रुतास्तस्य स्वयंरामस्य भूपतेः ।
याभिः श्रुताभिर्हृदयं तन्मयत्वाय कल्पते ॥ १४ ॥

---

१. सगुणा०, रीवाँ ।

पौलस्त्यवधरूपं तु तच्चरित्रं महोदयम् ।
श्रोतुमिच्छामि भगवन् भवांश्चेदनुमन्यते ॥ १५ ॥

राज्याभिषेकं संत्यज्य वनवासविधौ विभोः ।
अनुमेने कथं नाम केकयेन्द्रसुता स्वयम् ॥ १६ ॥

कथं च हरणं देव्याः पौलस्त्येन वने कृतम् ।
अतिगर्हितमेतद्धि भक्तस्य प्रतिभाति मे ॥ १७ ॥

स्वयं भगवतः शक्तिः सच्चिदानन्दरूपिणी ।
रावणातिक्रमं ब्रह्मन् कथं सेहे स्वयं च सा ॥ १८ ॥

वने च निवसन् रामो भगवान् जगदीशिता ।
यद्यच्चकार चरितं तन्मे कथय विस्तरात् ॥ १९ ॥

कं कं भक्तजनं दीनं वनवासे रघूद्वहः ।
अभ्युद्दधार कृपया सुघोराद्भवसागरात् ॥ २० ॥

राज्ञो दशरथस्यापि वियोगं मरणान्तिकम् ।
कथं वितीर्णवान् रामो भक्तस्य स्वगतात्मनः ॥ २१ ॥

एतदादयखिलं तस्य चरित्रं रसरञ्जितम् ।
कथयस्व कृपां कृत्वा येन स्यात्तन्मयी मतिः ॥ २२ ॥

कृपासिन्धुर्भगवान् सत्यसन्धो दीनात्मबन्धुर्भुवनैकभर्त्ता ।
यद्यच्चकाराखिलवन्द्यपादस्तत्तद्विधे [1]जनजीवातुभूतम् ॥ २३ ॥

अटित्वा तैर्थिकीं यात्रां यच्चक्रे राजपुङ्गवः ।
तन्मे वद विशेषेण रामचारित्रगर्भकम् ॥ २४ ॥

जानामि यस्य मनुजस्य जनुः प्रयाति श्रीरामचन्द्रगुणकीर्तनया दिनेषु ।
रात्रीषु भावयत एतदपारलीलां जातः स एव गुणवान् भुवने जनन्याः ॥ २५ ॥

वल्मीकवत्तस्य जनस्य कर्णौ शृणोति यो नास्य यशः पवित्रम् ।
दृशौ मयूरस्य च चन्द्रिकाभे लीलास्थलीं तस्य न पश्यतो ये ॥ २६ ॥

वृथैव सा त्वग्नयास्य भक्ता आलिङ्गिताः संसृतितापमोक्षणाः ।
जिह्वा तरोःपल्लववल्ललन्ती वृथा न या मुख्यगुणान् गृणीते ॥ २७ ॥

इति विज्ञाय सततं शीलनीयो रघूद्वहः ।
सर्वेन्द्रियकृतार्थत्वहेतवे सज्जनैर्भवे ॥ २८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे प्रश्नाधिकारो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

---

१. जनजीवनानु०, मथु० ।

तृतीयोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

युक्तः कुमारैश्चतुरैश्चतुर्भिर्वसन्नयोध्यानगरे महीन्द्रः ।
महीतले धर्मतः पालयानो विशेषतोऽसौ मुमुदे तदानीम् ।। १ ।।

प्रत्यहं पूजनान्यासुर्मुनीनामात्मयोगिनाम् ।
बभूवुर्ज्ञानगोष्ठ्यश्च तैः समं तस्य भूपतेः ।। २ ।।

रामस्य पुरतो राज्ञा पूजमाना मुनीश्वराः ।
सलज्जा इव ते जाताः सर्वदेवगरीयसः ।। ३ ।।

रामोऽपि भगवान् नित्यं ब्रह्मण्यानां शिरोमणिः ।
पृथक् पृथक् मुनीन्द्रांस्तानारराध सपर्यया ।। ४ ।।

ते पूज्यमाना रामेण पादप्रक्षालनादिभिः ।
विदन्तोऽस्य परं तत्त्वं तूष्णीमासुर्मुनीश्वराः ।। ५ ।।

एकदा भूपवर्यस्य पुरतो मुनिपुङ्गवाः ।
मुदिता इदमूचुस्ते पूजान्ते जातसंभ्रमाः ।। ६ ।।

मुनय ऊचुः

अहो ते राजशार्दूल भक्त्या परमयानया ।
संतुष्टाः किं वयं लोके ददामोऽभीष्टमद्भुतम् ।। ७ ।।

संपदस्ते परतरा अवाङ्मनसगोचराः ।
कुबेरमतिवर्तन्ते [1]राजराजं निधीश्वरम् ।। ८ ।।

पुत्रस्तवाखिलगुणाकर एष साक्षाद्रामः [2]सुरासुरमहर्षिसमूहभाव्यः ।
अंशांमात्रविभवशाश्रयमस्य लब्धास्तेजस्विनो जगति चन्द्रविभाकराद्याः ।। ९ ।।

तमेवानुगताः शीलवीर्यौदार्यादिभिर्गुणैः ।
सर्वं एते तव सुताः लक्ष्मणाद्याः सुवर्चसः ।। १० ।।

योऽसौ तव सुतो ज्येष्ठो रामाख्यो महसां निधिः ।
तस्याज्ञायां स्थितः कालः कालयत्यखिलं जगत् ।। ११ ।।

मुक्तिस्तव पुरे[3] राजन् पण्यस्त्रीव न गण्यते ।
रामप्रेमरसाविष्टहृदयैरधमैरपि ।। १२ ।।

अथो वयं भूपतिसार्वभौम ददाम किं ते वरमत्यभीष्टम् ।
आराध्यमाना अनिशं महत्या सपर्ययात्यूर्जितभक्तिमत्या ।। १३ ।।

ब्रह्मण्यदेवप्रवरो मनस्वी धर्मिष्ठवर्यः श्रुतिशास्त्रवेत्ता ।
स्वात्मैकनिष्ठो विदिताखिलार्थः स्त्रामीदृशोऽस्यां भुवि धन्य एव ।। १४ ।।

---

१. राजा राज्यं विधीश्वरम्, रीवाँ । २. रामो निखिलसुरर्षि०, मथु० । रामः सुरर्षि०, रीवाँ । ३. पुरो, रीवाँ ।

नित्यानन्दमयी राजन् नगरी तव सर्वदा।
सर्वसौभाग्यसंपन्ना सकलाभीष्टदायिनी ॥ १५ ॥

अस्यां वसन्तो नियतं वयं भूपशिरोमणे।
कृतार्थयामः सततं निजं जन्म महोदयम् ॥ १६ ॥

किं यमैर्नियमैर्वापि किं वा योगेन नः प्रभो।
इदानीं तव पुत्रस्य प्रेमानन्दवशीकृताः ॥ १७ ॥

रमामः सततं लीलारसानन्दमहोदधौ।
ब्रह्मानन्दं समभ्येत्य[1] तिष्ठामः सुमहोदयाः ॥ १८ ॥

यत्कर्मभिर्लभ्यते स्थानमुच्चैः सुराङ्गनासंगमभूरिभोगम्।
विमानवर्यैः परिभूष्यमाणं तत्कालशक्तिग्रसनीयमेव ॥ १९ ॥

[2]यज्ज्ञानिभिर्लभ्यत आत्मयोगात्स्थानं परं ब्रह्ममयं महोर्जम्[3]।
वेद्यानुभूत्या स्वदनेन[4] हीनं तत्कं प्रतीयात् पुरुषार्थभावम् ॥ २० ॥

तत्तदेवोपासनावासनाभिस्तत्तल्लोकाख्यं पदं लभ्यते यत्।
तदन्योन्याधिकसौख्यानुमर्शात्स्पर्द्धाकुलं नैव सतां मनोज्ञम् ॥ २१ ॥

क्षीयमाणानन्दरूपं स्वर्गादि लघुतास्पदम्।
वृहच्च गणितानन्दं ततोऽस्मिन्न रतिः सताम् ॥ २२ ॥

अतो रामे रमणानन्दसिन्धौ, परब्रह्मण्यमिते वाङ्मनोभिः।
अगोचरे सर्वकामानुभोग्ये लब्धवन्तः कतिचित्तोऽत्र सन्तः ॥ २३ ॥

भक्तिभावपुलकौघमण्डितैर्विग्रहैर्विदितमोदसंभवाः।
रामपादकमलानुरक्तयः केऽपि सन्त इह शर्म बिभ्रति ॥ २४ ॥

यस्येदृशी परा भक्तिः पुरुषार्थस्वरूपिणी।
स ते तनुजतां प्राप्तः को नु धन्यस्त्वया समः ॥ २५ ॥

त्वं यत्पूजयसे राजन् मुनीन् भक्त्या समाहितः।
स ते स्वभाव एवायं फलकामविवर्जितः ॥ २६ ॥

ब्रह्मण्यदेवो यस्यात्मा साक्षाद्रामः स्वयं हरिः।
तस्य ते धर्मनिष्ठैव बुद्धिरत्र किमद्भुतम् ॥ २७ ॥

पर्याप्तकामता नित्यं नाश्चर्याय तव प्रभो।
आत्मकामः स भगवान् यस्यालङ्कुरुते गृहम् ॥ २८ ॥

वरं दातुं न शक्ताःस्म संतुष्टा अपि ते वयम्।
यस्य प्रियहितः पुत्रः श्रीरामो वरदेशराट् ॥ २९ ॥

---

१. समग्रंपेत्य, रीवाँ। २. यज्ञादिभिर्, रीवाँ। ३. महोग्रं, रीवाँ। ४. सदनेन, रीवाँ।

तवानुग्रहपात्रत्वं प्रयातुं कामयामहे ।
यत्फलं त्वत्पुरीवासो रामे च परमा रतिः ॥ ३० ॥

सततं रतिसंपन्ना नित्यं येऽस्य प्रिया जनाः ।
तेषामेव प्रसादेन सुलभा तत्पदे रतिः ॥ ३१ ॥

एतद्दुर्लभमस्माकं नानादेशनिवासिनाम् ।
सरयूजलपानं यद्वासश्च सरयूतटे ॥ ३२ ॥

सरयूवातपूतानां नृणां नित्या च संगतिः ।
रामनामसमुच्चारो रामरूपावलोकनम् ॥ ३३ ॥

त्वद्दर्शनोद्भवं राजंस्त्वदनुग्रहणं तथा ।
अनिर्वाच्यमिदं लोके फलमुज्जृम्भतेतराम् ॥ ३४ ॥

यन्तः पूजयते रामो नित्यं भक्त्या सुसंयतः ।
एतद्ब्रह्मण्यदेवत्वं ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ ३५ ॥

न पूजयति चेद्रामो ब्राह्मणान् वेदपारगान् ।
कोऽन्यः पूजयिता लोके तदा स्यान्मोहसंवृतः ॥ ३६ ॥

लोकानुग्रहणार्थाय लोकप्रवर्तनाय च ।
रामस्य कर्मणां वृत्तिरितिनिश्चिनुमो वयम् ॥ ३७ ॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य मुनीनां कोशलाधिपः ।
उवाच स्मितसंलक्ष्यः परमानन्दमण्डितः ॥ ३८ ॥

राजोवाच

नास्य बालतमस्यैव महिमाऽज्ञायि योगिनः ।
कोऽप्येष पुरुषश्रेष्ठो भूम्युद्धारार्थमागतः ॥ ३९ ॥

[१]इत्यहं हि मुहुरात्मधियामुं संविदन्नपि विमुग्धहृदस्मि ।
माययास्य जटितो न किलैनं तत्त्वतः कलयितुं प्रभवानि[१] ॥ ४० ॥

अनुग्रहोऽस्य परमो यमसावुद्दिधीर्षति ।
तस्मै ददाति स्वां भक्तिं लीलानन्दरसाप्तये ॥ ४१ ॥

सुखितो नाम गोपालस्तत्पत्नी च महाशया ।
अन्ये च गोपिगोपाद्याः पशवः पक्षिणस्तथा ॥ ४२ ॥

व्रजे वसन्तः सततं मोदन्ते प्रेमसंपदा ।
तेषां पदरजःप्राप्तुं कामयन्ते शिवादयः ॥ ४३ ॥

कदाचित्तत्र देवर्षिर्नारदः प्रेमगर्वितः ।
इयाय वीणां क्वणयन् भक्त्युत्पुलकविग्रहः ॥ ४४ ॥

१-१. नास्ति, रीवाँ ।

स वीक्ष्य व्रजवास्तूनां ग्राम्याणां प्रेमसंपदम् ।
तृणीकृतात्मा मुमुहे ससंभ्रममना मुनिः ॥ ४५ ॥

व्यलुठच्चिरमेतेषां पादपङ्कजरेणुषु ।
पुनःपुनःस्तुवन् गोपान् गोपीश्चानन्यमानसाः ॥ ४६ ॥

सोऽद्यापि वर्त्तते तत्र संगतो व्रजवासिभिः ।
शीलयन् प्रकृतिं तेषां परप्रेमैकरूपिणीम् ॥ ४७ ॥

कामं सन्तु सहस्रशो विधिशिवश्रीताक्ष्यशेषादयो
भक्ता रामपदाम्बुजप्रणयिनि स्वान्ते रतिं बिभ्रतः
या तेषां व्रजवासिनां विजयते प्रेम्णो दशात्युत्कटा
सात्यन्तं खलु दुर्ल्लभैव भुवने न क्वापि संलक्ष्यते ॥ ४८ ॥

येषां कर्णौ दृशौ जिह्वा करौ पादौ मनोऽसवः ।
सर्वं निर्मन्थनीभूतं श्रीरामचरणाम्बुजे ॥ ४९ ॥

येषां किल क्षणमपि प्रियविप्रयोगे पारे परार्द्धशतसंख्यदिनायमानम् ।
लोकानवेक्ष उत चात्मसुहृद्गृहाप्ता प्राणानपेक्ष उदमी प्रणयश्च येषाम् ॥ ५० ॥

तेषामशेषव्यवहारवर्गोऽप्यशेषलोकोत्तरयास्यरत्या[1] ।
वहत्यनैकान्त्यमिति व्रजस्था न स्वार्थकामाय कदापि मग्नाः ॥ ५१ ॥

ये कर्मतन्त्रक्रियया कुलाशया ये चाप्युपासाविधिकल्पलग्नाः ।
अव्यक्तसद्वस्त्वनुभूतये च ये क्लिष्टाशया भूरियोगादिभाजः ॥ ५२ ॥

[2]ते सर्वेऽध्यासते नैव निःकामानुगतां भुवम् ।
निर्गुणं चापि मुनयो व्रजवासिजनेतरे ॥ ५३ ॥

त एव निःकामपथेन यायिनस्तयेव वा निर्गुणात्मैकनिष्ठाः
ये प्रेमयुक्ता व्रजवासिलोकवद्धृदासुभिर्वर्ष्मभिश्चैकभावाः ॥ ५४ ॥

रामोऽपि तेभ्यो सुलभं स्वरूपं प्रकाशयत्यात्मना भक्तितुष्टः ।
नास्य प्रियः कोऽपि तदन्य ईक्ष्यते येऽनन्यभावेन भजन्ति संततम् ॥ ५५ ॥

एतद्वः कथितं विप्रास्त्रिवेदीपारगामिनः ।
न मया ज्ञानमानेन स्वयं वेत्स्य हि त त्वतः ॥ ५६ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं ज्ञानगोष्ठीभिर्मुनीनां चैव भूपतेः ।
जगाम ससुखं कालो वसतां प्रेमपत्तने ॥ ५७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे महर्षिजनज्ञानगोष्ठ्यां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

१. स्वरत्या, रीवाँ । २. ते सर्वेऽध्यासितेनैव निःकामानुगता, रीवाँ ।

चतुर्थोऽध्यायः

[ब्रह्मोवाच]

एकदा भगवान् रामः स्नातुं नयनजाजले।
जगाम स्वेच्छया सर्वैर्मुनिभिः परिवारितः ॥ १ ॥

तमनु प्राविशन् सर्वे मुनीन्द्रा नयनोद्भवाम्।
यावदन्तर्जले मग्ना अपश्यंस्तावदद्भुतम् ॥ २ ॥

तद्वै दिव्यं प्रमुदविपिनं भूरिकल्पद्रुमाढ्यं
चञ्चच्चिन्तामणिगणमयीं तां भुवं सुप्रकाशम् ॥
प्रेमानन्दप्रवहदुदकं सारवं सुप्रवाहं
क्रीडालोलैर्निगमनिनदैः पूरितैः राजहंसैः ॥ ३ ॥

पारे परार्द्धचन्द्रार्कपावकाभासमुज्वलम्।
सर्वतस्तद्वनं दिव्यं चिदानन्दैकमन्दिरम् ॥ ४ ॥

तन्मध्ये मञ्जुलं कुञ्जं फुल्लवञ्जुलभूरुहम्।
कोटियोजनविस्तीर्णं तावदेव निरीक्षितम् ॥ ५ ॥

तत्र रासरसोन्मत्तं दिव्यगोपालिकाकुलम्।
नित्यज्ञानक्रियातन्त्रकुशलं तडिदुज्ज्वलम् ॥ ६ ॥

तासां मध्ये मञ्जुनीलोज्ज्वलाङ्गं शृङ्गारैकान्तस्फुरन्नाद्यवेषम्।
सालङ्कारं कलिकाढ्यं तमालं सौवर्णीनां वल्लरीणामिवान्तः ॥ ७ ॥

अपश्यन् मुनयः सर्वे श्रीमन्तं रामसुन्दरम्।
सहजानन्दिनीकान्तविस्फुरद्धामविग्रहम् ॥ ८ ॥

पशूंश्च पक्षिणश्चापि द्रुमांश्च लतिकांस्तथा।
सर्वं चतुर्भुजाकारमपश्यन् विष्णुविग्रहम् ॥ ९ ॥

उपास्यमाना अणिमादिभूतिभिः पृथक् पृथङ्मूर्त्तिधरैश्च वेदैः।
दिगीशवृन्दैर्मघवत्पुरोगैर्ब्रह्मादिभिश्चाप्यमितैर्लोकपालैः ॥ १० ॥

यावत्प्रमोदाटविमध्यसंस्थं नानाविधं दृश्यते वस्तु जातम्।
तावत्समस्तं सुमहाविभूतिमन्मुनीन्द्रदृष्ट्याकलितं समन्तात् ॥

उन्मज्य च पुनः सर्वेऽप्यपश्यन् पुरतो गतम्।
रामचन्द्रं भक्तिनम्रकन्धरं प्राकृतोपमम् ॥ १२ ॥

पुनर्निमज्य तेऽपश्यन् हृदा संजातसंभ्रमाः।
तथैव प्रमुदारण्यं तद्विहारिणमप्यमुम् ॥ १३ ॥

अथोन्मज्य पुनः सर्वे मुनयो विस्मिताशयाः ।
अन्योन्यं मुखमैक्षन्त संस्तब्धाखिलवृत्तयः ॥ १४ ॥

किमिदं किमिदं चेति वदन्तस्तर्कवर्जिताः ।
अमुमेव विनिश्चित्य तन्मूलं वाग्भिरस्तुवन् ॥ १५ ॥

मुनय ऊचुः

नित्याप्रमेयमहिमाम्बुधिविग्रहाय स्वात्मानुभूतिमहसैव विभाषिताय ।
स्वाधार एव च नितान्तमधिष्ठिताय श्रीरामविश्वरमणाय नमोऽस्तु तुभ्यम् ॥ १६ ॥

यावद्ध्यशेषनिगमैर्भवतां महित्वं विस्तार्यते सकलमान्तगिरा परेश ।
तत्तावतोऽप्यधिकमुल्लसति प्रकामं त्वत्तोऽन्यथा श्रुतिवचो न भवेन्निवृत्तम् ॥ १७ ॥

यच्चेतसि स्फुरति सन्ततभावनाभिस्तत्त्वं परं समुदितं विदुषां मुनीनाम् ।
तस्मादयि त्वमसि राम परः परात्मा नो चेत् कुतोऽसि मनसामतिवर्त्तिसीमा ॥ १८ ॥

यत्स्वानुभूतिविभवान्तमतुच्छसौख्यं कैवल्यनाम परमं पदमामनन्ति ।
तत्त्वय्यनन्तसुखधाम्नि परापरेशे साक्षात्कृते किमपि न स्पृहणीयमास्ते ॥ १९ ॥

ये त्वत्पदाम्बुतुलसीमकरन्दमिश्रसौरभ्यलाभसुखनिर्धुतसर्वकामाः ।
[1]त्वन्नित्यकेलिकलनामधिगम्य तृप्तास्त्वच्चारुचित्रचरितार्णवराजहंसाः ॥ २० ॥

त्वल्लोचनान्तभरितामृतपूरमग्नदेहास्त्वदेकभजनस्पृहणीयतत्त्वाः ।
द्वित्रास्त एव भुवने ननु कालमायामूर्धस्थपादकमलाः सततं जयन्ति ॥ २१ ॥

दुर्दान्तकालकवलातिगमस्तमायामोहं महामहिमभृन्महनीयमुच्चैः ।
स्वानन्दभोगरसिकैस्तव भक्तवर्यैरास्वादयमानरसमीशभवत्स्वरूपम् ॥ २२ ॥

उच्चैरवाङ्मनसगोचरमस्तनामरूपं निरन्तरमनन्तमखण्डबोधम् ।
तत्त्वं सदेकमखिलेश्वर वैदिकीगीर्यद्वक्ति तत्तव विभूतितयोपसर्गम् ॥ २३ ॥

भक्त्या प्रपूजयसि विप्रवरान् वरेण्य स्वीयं निगूहयसि विश्वपते स्वरूपम् ।
एतत्तवात्यधिप चित्रसमं चरित्रं दृष्ट्वा विमूढहृदयाःस्म तवावबोधे ॥ २४ ॥

कोवेत्ति राम तव को नु चिकीर्षितार्थः किंचालिखेश तव मानस तोषकारि ।
आरम्भं ईश तव साधुफलानुमेयस्त्वाक्लिष्टकर्मकरणेऽभिरतं व्यनक्ति ॥ २५ ॥

याचामहे प्रणतपालक किंनु वाचा त्वामात्मधीविषयसाक्षिणमन्तरात्मन् ।
औदार्यसागर तथापि भवद्गुणेन संप्रेरिता इव रतिं त्वयि भिक्षयामः ॥ २६ ॥

मुक्त्या च राम किमु नः करणीयमस्ति यानादृताधमतरैरपि मानहीना ।
एतत्पुरीपरिसरे परिबम्भ्रमन्ति वीतप्रयोजनतया ननु रोरवीति ॥ २७ ॥

---

१. तन्नित्य·······गम्य तृष्णाः, रीवाँ ।

अभ्यर्थनीयमिदमेव च केवलं नस्त्वत्केलिनित्यरसभाजनतां प्रयामः।
एतादृशी रघुपते[1] रुचिता मतिर्नो भूयात्कृतेष्टहुततप्तमुखैः[2] सुकृत्यैः ॥ २८ ॥
एकापि नाथ तव संप्रणतिर्जनस्य लोके प्रभूततमसौख्यभरं करोति।
यो नाश्वमेधमुखपुण्यसहस्रसाध्यो ज्ञात्वा तदेवमसकृत्प्रणता वयं त्वाम् ॥ २९ ॥
भूयो नताःस्म जगदेकपते भवन्तं कल्याणमन्दिरमनन्तगुणामृताब्धिम्।
एकांशसंभवसमस्तभवप्रकाशमीदृक् सहस्रशतकोटिपरार्द्धकांशम् ॥ ३० ॥

यद्दशांशेन सकलं व्याप्तमेतज्जगत्त्रयम्।
सोऽप्यंशः पुरुषो यस्य तद्बृहत्तावकं महः ॥ ३१ ॥

परिच्छिन्नोऽपीश त्वमलमपरिच्छिन्नविभवो
निरीहोऽपि स्वेच्छाकलितनवलीलानिधिरसि।
निराकारोऽप्यानन्दयसि परमानन्दवपुषा
क इत्थं तत्तत्वं तव किमपि वेत्तुं प्रभवति ॥ ३२ ॥

निरुपाधिदयासिन्धो लीलामृतरसाकर।
सदसत्पर पूर्णात्मन्नित्यं राम नमोस्तु ते ॥ ३३ ॥

त्वन्नामकीर्तनोद्भूतमनन्तं सुकृतं विभो।
न तत्सदृशतां यान्ति वाजिमेधादिकोटयः ॥ ३४ ॥

यथा यथा शुद्ध्यति नाथ चित्तं त्वन्नामसंकीर्तनवारिधारया।
तथा तथा राम तव स्वरूपं भवत्यनुध्यानपथाधिरूढम् ॥ ३५ ॥

न विद्महे नाथ कुतो नु जाताधिकारितेयं तव भक्तिगोचरा।
श्रद्धानुभूतं ननु यत्फलं विभो त्वत्केलिधामाकलनं सुदुर्लभम् ॥ ३६ ॥

अथवा त्वत्कृपानाथ कारणं न समीहते।
दुर्लभो योगिनां यस्त्वं सुलभोऽसि वनेचरैः ॥ ३७ ॥

ब्रह्मोवाच

इति स्तुत्वा चिरं विप्राः सरयूस्रोतसि स्थिताः।
कर्मणा मनसा वाचा जग्मुस्तं शरणं विभुम् ॥ ३८ ॥

ततस्तद्दिनमारभ्य दृष्ट्वा लौकिकवस्तुगम्।
विरहं बिभ्रतश्चित्ते नस्वास्थ्यं क्वापि लेभिरे ॥ ३९ ॥

तदेव धाम ध्यायन्तो यथा दृष्टं निमज्जने।
रामं चापि तदन्तःस्थं भावयन्तः परात्परम् ॥ ४० ॥

नित्यमानन्दिनीशक्तियुक्तं सुन्दरविग्रहम्।
तं चार्थयन्तो मनसा नित्यं तन्मयतां ययुः ॥ ४१ ॥

---

१. तव रते, मथु०। २. कृतेष्टहुतनप्रमुखैः, रीवाँ।

कदाचिदेकान्तचरं चिदानन्दमहोनिधिम् ।
रामं संलक्ष्य मुनयो ययुस्तस्य समीपतः ॥ ४२ ॥

दण्डवत्प्रणतिं सर्वे विधायाञ्जलिपाणयः ।
तस्थुस्तत्सविधे तूष्णीं विरहार्तिदलद्धृदः ॥ ४३ ॥

तेषामभिप्रायविदा प्रभुणा स्मितशालिना ।
ऊचे वचनमानन्दि मनो मोहयता भृशम् ॥ ४४ ॥

जानाम्यहं वो विदुषां मनोगतं यूयं हि मत्संगवियोगतोर्दिताः ।
ते दण्डकारण्यनिवासिनो यथा द्विजाः परामेव बिभर्थ वेदनम् ॥ ४५ ॥

अहो मुनीन्द्रा मम धामचिन्मयं नित्यं परानन्दमयं मनोरमम् ।
नापक्वचित्तोर्जितवासनात्मभिर्नालुप्तकामैश्च जनैरवाप्यते ॥ ४६ ॥

नाप्राप्तविद्यैर्नचाभक्तिवित्तैर्नाप्राप्तमद्वरणैश्चापि लोकैः ।
नमत्स्वामिन्याप्यनङ्गीकृतैश्च न वा प्रारब्धावशेषप्रदिग्धैः ॥ ४७ ॥

तद्वत्सर्वं साधनं जातकल्पं जातः श्रीमत्सरयूवातपूतः ।
शेषं किंचित्साधनं यत्त्वपेक्ष्यं तदप्यशेषीभवितुं मे दृशार्हम् ॥ ४८ ॥

अङ्गीकरिष्यति हि वो मदनुग्रहेण श्रीमत्प्रमोदवनकुञ्जविहारिणी सा ।
मत्स्वामिनी विधिशिवादिसुदुर्लभान्तःसद्यप्रसादविभवा सहजाख्य शक्तिः ॥ ४९ ॥

तामाराधयतां हि वो हितजनाः श्रीमत्प्रमोदाटवी—
नित्येशीं परिणद्धमद्विषयकप्रेम्णां पराख्या रतिः ॥
भक्तिः शक्तिमती विलुप्तविविधावेषा ममाकर्षिणी ।
प्रादुर्भावमुपैष्यति त्रिगुणसंश्लेषेण सा वर्जिता ॥ ५० ॥

ततश्च तस्यां सहजानन्दिन्यां लयमेष्यथ ।
सा मामुपेत्य सहसा लीना स्थास्यति निर्भरम् ॥ ५१ ॥

अहं स्वानन्दरूपिण्यां तस्यामेव सदारतः ।
तदा स्थास्यामात्मनयोपार्जितानन्दवारिधिः ॥ ५२ ॥

आत्मक्रीड आत्मरतिरित्यादि श्रुतिवागवैत् ।
तत्पदं परमं सूक्ष्मं सच्चिदानन्दमात्रकम् ॥ ५३ ॥

विमुक्तभेदविषयं द्वैताद्वैतविवर्जितम् ।
अनिराकारसाकारं तच्च निर्गुणसद्गुणम् ॥ ५४ ॥

विधेर्निषेधतश्चापि उभयस्मात्सदातिगम् ।
अनिर्देश्यमवाच्यं च भेदाभेदविवर्जितम् ॥ ५५ ॥

तद्वै प्रमोदवनमित्यवधारयन्ति नित्यं महोपनिषदानुभवेन चापि ।
प्राप्तुं तदैव कृपया क्वचिदीशिते च केऽपि त्वदङ्घ्रिकमलासवपूर्णकामाः ॥ ५६ ॥

क्रीडित्वाहं चिरं तत्र कालातीते परे पदे ।
पुनरुत्थाय सपदि योगीवासत्समाधितः ॥ ५७ ॥

सौषुप्तानन्दानुभवाद्यद्वच्च प्राकृतो जनः ।
चिन्तयिष्ये सकृत्सर्गं सत्यसङ्कल्पया धिया ॥ ५८ ॥

* तस्मिन् सृष्ट्यादिकाले वै मदिच्छामात्रनोदिताः ।
मदंशांशाश्चेतनाख्या निर्यास्यन्ति सहस्रशः ॥ ५९ ॥

चिदंशसाधूपचिताः सतापन्नोऽणुरूपिणः ।
सदंशेन जडोद्भूतिः पुनरेव भविष्यति ॥ ६० ॥

तत्तेषां भोगायतनं शरीरं व्यपदिश्यते ।
सुखं दुःखं भयं निद्रा बुद्धिरिच्छा स्मृतिर्धृतिः ॥ ६१ ॥

रजस्तमःसत्त्वभवा विकाराः प्रवर्तिष्यन्ते जगन्मूलशक्त्या ।
तेषां साक्षी सच्चिदानन्दरूपः सोऽन्तर्यामी भविता चाहमेव ॥ ६२ ॥*

एवं त्रिधा व्यवहारो यतोऽयं जडो जीवश्चान्तरात्मेति लोके ।
तथाधिभूताध्यात्माधिदैवैस्तस्था भूयो भूर्भुवःस्वक्रमेण ॥ ६३ ॥

एवं प्रपञ्चे प्रसृते ह्यनादौ मच्छक्तिमायाविभवे मद्विनोदे ।
तत्रैवाहं मम चेत्याभिमानः संसारोऽयं जायते जीवनिष्ठः ॥ ६४ ॥

अवस्तुरूपोऽपि दृढं विलग्नोऽध्यासैकमूलश्चिदचिद्वस्तुनो वै ।
तस्योच्छित्त्यै प्रयतन्ते मुनीन्द्रातेषां नश्यन्त्येव स्युष्मादृशानाम् ॥ ६५ ॥

अहं चैवानुकम्पास्थो जीवानुद्धर्तुमादृतः ।
आविर्भावमुपैम्यद्धा लोकेऽस्मिन्प्राकृतोपमः ॥ ६६ ॥

स्वात्ममायां समाश्रित्य क्रीडन्नात्मप्रियैर्जनैः ।
तदाप्यहं भविष्यामि पुष्यानुद्धर्तुमीदृशः ॥ ६७ ॥

मन्मायाविभवे लोके यदा म्लायति धर्मधीः ।
तदैवाहं स्वरूपेण प्रादुर्भूय विभर्मि ताम् ॥ ६८ ॥

कृते विप्राः सर्व एवात्मनिष्ठा योगध्यानप्राप्तपूर्णप्रमोदाः ।
चतुष्पादो यत्र धर्मो ह्यनादिस्तं सेवन्तेऽध्यात्मविद्यां च मुक्त्यै ॥ ६९ ॥

त्रेतायां मां सर्वदेवस्वरूपं क्रियातन्त्रैर्यजमाना अजस्रम् ।
विशुद्धसत्त्वोदितबोधाः कथंचित्कल्पन्ते वै स्वस्वरूपाधिगत्यै ॥ ७० ॥

द्वापरे चावताराद्रिरूपेण बहुधा जनाः ।
अर्चन्ते मां हि कल्पन्ते स्वात्मबोधाय केचन ॥ ७१ ॥

— नास्ति, रीवाँ ।

कलौ मत्कीर्तिगाथानां कीर्तनश्रवणादिभिः ।
शोधयन्तो निजात्मानं भवन्ति ज्ञानशालिनः ।। ७२ ।।

एवं युगानुरूपैर्मां मुनीन्द्राः साधनव्रजैः ।
प्राप्नुवीन्तिः जनाकेचिन्मत्कृपापात्रतां गताः ।। ७३ ।।

तथापि मां को नु लभेत मर्त्यो दुरन्तमायागुणजालबद्धः ।
न चेदहं कञ्चन हेतुमेत्य प्रादुर्भवामि द्दशरूपयुक्तः ।। ७४ ।।

एदद्धि मद्वपुरसंख्यगुणाकरत्वात्कल्याणकोटिफलकल्पतरुप्रतीकम् ।
आश्रित्य केऽपि कृतिनो मनसा च वाचा पारं प्रयांति भवभीषणसागरस्य ।। ७५ ।।

यदा सारस्वतो नाम कल्पो विप्रा भविष्यति ।
तदा षड्विंशके त्रेतायुगे मां समवाप्स्यथ ।। ७६ ।।

मुनय ऊचुः

वयमाराध्य सहजां भवतः स्वामिनीं प्रियाम् ।
तत्रैव लयमाप्स्याम इत्याज्ञप्तं त्वया प्रभो ।। ७७ ।।

सा च त्वय्यात्मरतिगे लीना किं न भविष्यति ।
एवं चेद्वीतभेदानां कथं त्वत्प्राप्तिरस्ति नः ।। ७७ ।।

एतन्नः संशयं राम छिन्धि त्वयि धृतात्मनाम् ।
त्वदन्यो नहि लोकेऽस्मिन् संशयस्यास्य नाशकः ।। ७९ ।।

श्रीराम उवाच

आत्मारामस्यापि मम पृथग्घि रमणेच्छया ।
सच्चिदानन्दिनी साक्षात्सहजाविर्भविष्यति ।। ८० ।।

एकाकिनो मे सहजाप्रियाया वाधिष्यतेऽतीव महान्वियोगः ।
तदाप्तकामत्वमयास्य चात्मारामत्वमत्याकुलतां भजिष्ये ।। ८१ ।।

यथा कामी स्वकामिन्या विरहेणानुपीडितः ।
लभते न दिवारात्रं मनःस्वास्थ्यं कदापि हि ।। ८२ ।।

एवं मे पूर्वजातानुभूतेः प्रियाया मे सहजाया विप्रयोगः ।
आकस्मिकः सर्वधृतिप्रमाथी प्रादुर्भविष्यत्यधिपो रसानाम् ।। ८३ ।।

तदाहमानन्दयितुमत्यधीरमात्मानमत्याकुलितं विप्रयोगात् ।
एकोऽपि सन्नात्मनाऽखण्डरूपी द्विधा भविष्यामि न मोघभावनः ।। ८४ ।।

ततश्च सा कोटिचन्द्रप्रकाशस्मितज्योत्स्नारुचिरास्या प्रकामम् ।
सहार्चिता नामधामस्वरूपसखीजनैर्मत्पुरतो भवित्री ।। ८५ ।।

उपासकाश्च ये येऽस्यां लयं जग्मुः पुराभवे ।
ते ते प्रादुर्भावमिताः सेविष्यन्ते क्रमादिमाम् ।। ८६ ।।

इयं च तैर्भक्तजनैः समेता सेविष्यते मां रतिकेलिपुष्पैः ।
श्रीमत्प्रमोदाटविधामराज्ञी परार्द्धलक्ष्मीर्ललितस्वरूपा ॥ ८७ ॥

एवं हि वो मुनिवर्या मदाप्तिर्भविष्यति प्रेमभक्त्या प्रकामम् ।
तावद् यूयं क्षणवत्कालमेतं मत्कीर्तनश्रवणाद्यैर्नयन्तः ॥ ८८ ॥

भजध्वं मां साधुजनप्रसंगे नित्यं हृदा मोदमानास्त्रिकालम् ।
अर्चन्तो मां तुलसीगंधपुष्पैर्धूपर्दीपैः स्वादुनैवेद्यभोगैः ॥ ८९ ॥

मद्भुक्तशेषं भुञ्जाना गायन्तो मां गतत्रपम् ।
एवं विशुद्धचित्ताश्चेत्सहजां सेवयिष्यथ ॥ ९० ॥

एतद्वः कथितं विप्राः साधनं च फलं महत् ।
नातः परतरं वेद्यमस्ति श्रुतिशिरःस्वपि ॥ ९१ ॥

एवमुक्त्वा मुनीन् रामो ब्रह्मज्ञान् वीतकल्मषान् ।
आवश्यकं चकाराथ विमले सारवे जले ॥ ९२ ॥

मुनयोऽपि महामोदसागरे मग्नमानसाः ।
तमेवानुभवं बुद्ध्या शीलयन्तः ससंभ्रमाः ॥ ९३ ॥

आवश्यकं विनिर्वर्त्य प्रभुदर्शननिर्वृताः ।
अनुज्ञाताश्च तेनैते स्वाश्रमान् समुपाययुः ॥ ९४ ॥

स्वयं च भगवान् रामः कृतार्थीकृत्य तान् द्विजान् ।
इयाय राजभवनं यत्र श्रीजनकात्मजा ॥ ९५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे मुनिजनोद्धरणो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

●

पञ्चमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

एवं स भगवांस्तस्यामयोध्यायां पुरीमणौ ।
निवसन् बुभुजे भोगान् सीतया सह निर्वृतः ॥ १ ॥

लाल्यमानो महाराजकौशल्याभ्यां दिवानिशम् ।
सेव्यमानो मुनिव्रातैः सेवमानः स्वयं च तान् ॥ २ ॥

स्वेच्छया कतिचिद्वर्षान् लीलया सोऽत्यवाहयत् ।
युवराजपदं धाम्नालंकुर्वाणोऽखिलेश्वरः ॥ ३ ॥

दिने दिने देवतानां सपर्या मुनीन्द्राणां वरिवस्याश्च शश्वत् ।
त्रैलोक्यमानन्दयितुं च तस्य दिनेदिनेऽभून्नव उत्सवः प्रभोः ॥ ४ ॥

यद्रामणीयकममुष्य कदापि केनाप्यालोकितं तदपरे दिवसे न तत्स्यात् ।
आधिक्ययुक्तमिव नव्यतया व्यलोकि लोकोत्तराखिलगुणस्य रघूद्वहस्य ॥ ५ ॥

एवं सीता प्रिया चक्षुश्चकोरी पूर्णचन्द्रमाः ।
रेमे निरवधिक्रीड़ानन्दसंदोहसागरः ॥ ६ ॥

अलौकिकैर्लौकिकैश्च विलासैर्विश्वमोहनैः ।
स्फुटसर्वरसानन्दैर्मोदयामास जानकीम् ॥ ७ ॥

त्रैलोक्यं मोदयामासुश्चत्वारो भ्रातरो गुणैः ।
तेषां रामो विशेषेण शरण्यः शरणार्थिनाम् ॥ ८ ॥

सर्वानन्दप्रदः सर्वजनतापनिवारणः ।
सर्वत्र समदृष्ट्यैव करुणामृतसागरः ॥ ९ ॥

लक्ष्मणो भगवान्साक्षात्सर्वासुरभयप्रदः ।
सत्कालकारणीभूतः साधुमार्गप्रवर्त्तकः ॥ १० ॥

भरतो भगवान् सर्वप्रजारञ्जनशीलवान् ।
प्रजानां वृद्धिकरणः सर्वभाग्यविवर्द्धनः ॥ ११ ॥

शत्रुघ्नः सर्वसद्धर्मपालनोर्जितमानसः ।
असद्धर्मनिराशात्मा स्वभावात्साधुधर्मभृत् ॥ १२ ॥

सर्वेऽप्युदारा गंभीरा धीरा वीरा सुखप्रदाः ।
सुदर्शनाः सुवयसः सर्वसंपत्तिपोषकाः ॥ १३ ॥

ब्रह्मण्याः साधुवादैकभाजनाः साधुपालकाः ।
कल्पवृक्षस्वभावाश्च सर्वसौख्यविवर्द्धनाः ॥ १४ ॥

सुशीलाः सर्वलोकानां तापत्रयनिवारकाः ।
चित्रामितचरित्राश्च महामाना महौजसः ॥ १५ ॥

भूभारहरणोद्युक्ताः सर्वासुरभयप्रदाः ।
सतां द्विजानां देवानां धर्मस्यास्य विवर्द्धनाः ॥ १६ ॥

सीतया सहितो रामो लक्ष्मणश्चोर्मिलायुतः ।
माण्डव्या सहितो वीरो भरतश्चारुदर्शनः ॥ १७ ॥

श्रुतकीर्त्या च शत्रुघ्नः सर्वानन्दविवर्द्धनः ।
ज्योत्स्नया सहिताः सर्वे साक्षाच्चन्द्रमसो यथा ॥ १८ ॥

प्रभया सहिताः साक्षात्सूर्या इव सुतेजसः ।
स्वाहास्वधा वषट्वौषड्युक्ता हुतभुजो यथा ॥ १९ ॥

प्रद्योतिनो विशालाक्षाः विनीताः शुद्धविग्रहाः ।
सर्वाप्रधृष्टयवपुषः सर्वविद्याविभूषिताः ॥ २० ॥

सर्वशस्त्रास्त्रविद्यानां पारं प्राप्ताः सुवर्चसः ।
सुधियः सुमुखाः सूग्राः कीर्त्या कान्त्या च मण्डिताः ॥ २१ ॥

मातुः पितुर्गुरूणां च नित्यमाज्ञाभिवाञ्छकाः ।
सर्वदारिद्रदमना जगतां कामपूरणाः ॥ २२ ॥

तानुग्रवीर्यान् पुरुपप्रकाण्डान् संलक्ष्य जातांश्चतुरो वर्द्धमानान् ।
शेषोऽसुरानीकशतोपमर्दितक्ष्माभारखिन्नोपि तदोदसर्पत ॥ २३ ॥

महार्हासनसंरूढान् हारिणो हृदयङ्गमान् ।
महाराजकुमारांस्तान् विप्रो भूत्वा प्रतुष्टुवे ॥ २४ ॥

[शेषोवाच]

जयजयामितकीर्तिविवर्द्धना जनमनोरथदानविचक्षणाः
रघुकुलामलपङ्कजभानवश्चिरमुदञ्चत राजकुमारकाः ॥ २५ ॥

सुवयसां महनीयमहीभृतां भुवनसौख्यकृता जनुषैव वः[१] ।
व्यपगतोऽयमहो ह्यवनीभरो ननु करिष्यथ सच्चरितैर्मुदम् ॥ २६ ॥

त्रिभुवनाद्भुतकारि यशोनिधे जनविलोचनसार्थकताकरान् ।
सकललोकविलक्षणसौभगान् ननु नतोऽस्मि नतोऽस्मि नतोऽस्मि वः ॥२७॥

इदमनर्घ्यतमं भवतामुरःस्थलविभूषणलालसमानसः ।
परमभक्तिभरेण समर्पये सुरुचिरं मणिहारचतुष्टयम् ॥ २८ ॥

दत्तः प्रसादांस्तानेवं नत्वा नत्वा मुहुर्मुदा ।
मणिहारान्समर्प्योच्चैः शेषराजो विनिर्गतः ॥ २९ ॥

अथागमद् दिवानाथः प्रभामण्डललक्षितः ।
स्पृहणीयाकृतीनस्तौत् त्रयीमूर्तिर्मुदान्वितः ॥ ३० ॥

[सूर्य उवाच]

मत्तः साक्षात्प्रभूतं कुलमिदममलं मङ्गलं वः कुमाराः
यस्मिन् सर्वादिवैवस्वतमनुरभवत्पुत्र ऐक्ष्वाकुरस्य ॥
अन्ये मान्धातृमुख्याः सागरनहुषजाद्याश्च सर्वे प्रवीराः
पुण्यश्लोका यशोभिः किमपि भुवमिमां भूषयामासुरुच्चैः ॥ ३१ ॥

तेषां यूयं कीर्तिदाः स्वैश्चरित्रैः सौभाग्यश्रीवर्द्धना धर्मपालाः ।
सर्वैर्दोषानाविलैः सद्गुणौघैः पर्येधध्वं भूतलेऽस्मिंश्चिराय ॥ ३२ ॥

सर्वे भवन्तः पुरुषोत्तमाः स्फुटं लोकोत्तराशेषगुणौघमङ्गलाः ।
चिरञ्जयन्तु त्रिजगन्निजप्रजासुभव्यसौभाग्यसुखैकदायिनः ॥ ३३ ॥

अपूर्वा मम वंशस्य वृद्धिर्वो जन्मना भवत् ।
अहो हि मे महद्भाग्यं कियत्केन निरूप्यताम् ॥ ३४ ॥

---

१. ० कृताजमुखैर्वचः, रीवाँ ।

इमानि मत्कलारूपाण्युच्चैराभरणानि वः ।
समर्पये स्वाङ्गतेजः संकोच्यैनानि वक्ष्यथ ॥ ३५ ॥

इति सम्पूज्य तपनो महाराजकुमारकान् ।
नत्वा स्तुत्वा निर्जगाम मुदोत्पुलकविग्रहः ॥ ३६ ॥

महेन्द्रः सुरवन्दीनां विमुक्त्याशोद्भवं मुदम् ।
असंवृण्वन्समेयाय प्रत्यङ्गपुलकोद्गमैः ॥ ३७ ॥

लङ्केशतनयाक्रान्तमहिमापि मुदान्वितः ।
अस्तौदस्तोभवचनो दृष्ट्वा दशरथात्मजान् ॥ ३८ ॥

जयन्तु नो भाग्यपुपः प्रकर्षान्निजेच्छया सत्कृपयावतीर्णः ।
साक्षाद्भवन्तो भुवने शत्रुघ्नभरतलक्ष्मणरामचन्द्राः ॥ ३९ ॥
यद्ब्रह्मसद्मातिगमद्वितीयं परंप्रधानात्पुरुषाच्च[1] पूर्णम् ।
तद्धाम नित्यं विमलं विशोकं साकेतसंज्ञं परमोत्तमं वः ॥ ४० ॥

विज्ञाय भक्तौघपरावहेलनां महासुरानीककृतां कृपावशाः ।
इहावतीर्णास्त्रिजगद्भवाय कुलेऽमले दाशरथे यशस्कराः ॥ ४१ ॥

करिष्यथ द्यां नियतं महोर्जितप्रमत्तरक्षो[2]भरभाववर्जिताम् ।
स्ववीर्यतः सम्प्रति मोचयिष्यथ स्वर्लोकवन्दीन् निजचित्तदुःसहान् ॥ ४२ ॥

इमाः सदाम्लानतमाः सुगुम्फिता मुदा स्वदासीकरपल्लवाभ्याम् ।
अमन्दमन्दारतरुप्रसूनजाः स्रजः समारोपयत स्वपक्षसि ॥ ४३ ॥

इत्यभ्यर्च्य सहस्राक्षः पीत्वा तद्रूपसारघम् ।
चिरं स्तुत्वा मुहुर्लब्धप्रसादोऽगाद् दिवं प्रति ॥ ४४ ॥

ब्रह्मोवाच

एवं समस्तैस्त्रिदशैः काले काले यथोचितम् ।
निषेव्यमाणा मुमुदुर्मोदयन्तो जगत्त्रयम् ॥ ४५ ॥

यथा यथा दाशरथेः कलोदयः कृष्णेतरे पक्ष इवोडुपस्य ।
तथा तथा कोकवामेव मम्लौ लङ्काधिपोत्तंसविभूषणश्रीः ॥ ४६ ॥

श्रीरामस्य महद्वीर्यमसुरानीकदुःसहम् ।
प्रत्यहं ववृधे भूयः सतां संतोषपोषणम् ॥ ४७ ॥

अनादृत्य राज्याभिषेकं रमेशः सुराणां मुनीनां सतां मङ्गलार्थी ।
वसन्नेव पूर्णे यमादिव्रजान्तर्निजांशेन[3] यातो वनं भक्तकार्ये ॥ ४८ ॥

---

१. पुरुषार्थ०—रीवां । २. रक्षःपरिभाव—मथु०, अयो० । ३. अयो० प्रतिका पाठ खण्डित है ।

इति ते कथयिष्यामि साक्षाद्भगवतो यशः ।
नित्यं धवलितं येन स्वभासा भुवनत्रयम् ।। ४९ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे राज्याभिषेके पञ्चमोऽध्यायः ।। ५ ।।

षष्ठोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ सर्वगुणागारं त्रैलोक्यस्यानुरञ्जनम् ।
साधुसंस्तुत्यचरितं रामं राजीवलोचनम् ।। १ ।।

रमारमणकर्तारं हर्तारं त्रिदशापदाम् ।
जगदानन्दिशीलाढ्यं सर्वशस्त्रास्त्रकोविदम् ।। २ ।।

पालकं सर्वसाधूनां त्रयीधर्माभिरक्षकम् ।
नयाकरं दुर्नयघ्नमनन्तगुणमन्दिरम् ।। ३ ।।

ईतिभीतिसमूहघ्नं यक्षरक्षोभयापहम् ।
चातुर्वर्ण्यहितं देवं श्रुत्याचाराभिरक्षकम् ।। ४ ।।

दुरदृष्टविनाशाय लोके दर्शनदायिनम् ।
सर्वकल्याणभवनं सर्वसौख्यविवर्द्धनम् ।। ५ ।।

लौकिकालौकिकानन्ददायिनं परमाद्भुतम् ।
राजा तंलक्ष्य मनसा मुमुदे परया मुदा ।। ६ ।।

कुलक्रमागते राज्ये प्रजासौख्यविवर्द्धने ।
अभिषेक्तुं तदा राममाचकाङ्क्ष महावयाः ।। ७ ।।

तं देवाः पुरुहूताद्या वशिष्ठाद्या महर्षयः ।
मन्त्रेषु दक्षिणाः सर्वे मन्त्रिणश्चोपतस्थिरे ।। ८ ।।

गते च भरते दूरं कैकेय्याः पितृवेश्मनि ।
सर्वैः सम्मन्त्रयाञ्चक्रे राजा रामहितैषणः (हिते रतः ?) ।। ९ ।।

सभां सुमहतीं चक्रे सहस्रस्तम्भशालिनीम् ।
मूर्त्तिमद्भिर्निधिकुलैः सर्वदा समुपासिताम् ।। १० ।।

यत्र सिंहासनं साक्षात्सूर्यमण्डलभासुरम् ।
महामणिगणोद्द्योति काञ्चनं कमलास्पदम् ।। ११ ।।

मान्धातृप्रमुखैः पूर्वमाक्रान्तं धर्मवित्तमैः ।
अधःस्फाटिकपीठेन युक्तमूर्जस्वलं महत् ॥ १२ ॥

अशेषधरणीपालमौलिमालामणित्विषा ।
नीराज्यमानपीठान्तं वन्द्यमानं कृताञ्जलिम् ॥ १३ ॥

विराजते मणिस्तम्भचतुष्कपरिमध्यगम् ।
यत्र स्थितं मर्त्यमपि साक्षाद् रामः स्वयं विशेत् ॥ १४ ॥

तस्योपरि तपद्भासा सूर्यमण्डलचण्डिमम् ।
छत्रमुद्भाति विमलं स्वयं लक्ष्म्या करे कृतम् ॥ १५ ॥

चामरे वितते चारुचञ्चच्चन्द्रांशुनिर्मले ।
विराजेते वीज्यमाने भूपालैश्छत्रवर्जितैः ॥ १६ ॥

सप्तद्वीपावनीसम्प[1]त्सम्भारैकनिकेतनम् ।
तद् राज्यं रघुवंश्यानां राज्ञां प्रकृतिरञ्जनम् ॥ १७ ॥

न्यस्तुकामः स्वयं राजा रामे सर्वगुणाश्रये ।
मन्त्रिभिर्मन्त्रयाञ्चक्रे वानप्रस्थव्रतोन्मुखः ॥ १८ ॥

राजोवाच

शृण्वन्तु नीतिनिपुणा वृद्धाः सचिवपुङ्गवाः ।
न मेऽधुना पुत्रवतो रोचन्ते राज्यसम्पदः ॥ १९ ॥

धुरंधरेषु पुत्रेषु यस्य राज्योन्मुखी मतिः ।
न तस्य विषयासक्तिरन्तकालेऽपि नङ्क्ष्यति ॥ २० ॥

प्रजानां पालनार्थं हि राज्यं गृह्णन्ति साधवः ।
विषयाणामरत्यापि भोगस्तत्रानुषङ्गिकः ॥ २१ ॥

नहि वैषयिकं भोगमुद्दिश्य रघुवंशजाः ।
राज्यं कर्त्तुं समीहन्तेऽध्यात्मविद्याविचक्षणाः ॥ २२ ॥

चिरं जयन्तु रामाद्यास्तनयाः सूर्यवर्चसः ।
प्रजानां भाग्यसंदोहैरवतीर्णाः स्वयं ह्यमी ॥ २३ ॥

रामं सर्वगुणारामं सौमित्रिरनुवर्तते ।
तथैव भरतं सौम्यः शत्रुघ्नोऽप्यनुवर्तताम् ॥ २४ ॥

रामश्च भरतश्चोभौ विभज्य सकलां भुवम् ।
नित्यं पालयतां वीरौ परस्परहिते रतौ ॥ २५ ॥

अथवा राममेवैते लक्ष्मणाद्याः सुवर्चसः ।
सन्तस्त्रयोऽनुवर्त्तन्तां पुरुषं तद्गुणा[2] इव ॥ २६ ॥

---

१. नीथं यत्–अयो० । २. सद्गुणा–अयो० ।

चत्वारोऽप्यथवा राज्यं चतुःखण्डावनीगतम् ।
अङ्गीकुर्वन्तु साधूनामनुमत्या यथोचितम् ॥ २७ ॥

एतेषु खलु पक्षेषु कतमो वोऽभिरोचते ।
तद्ब्रूत सचिवश्रेष्ठाः प्रजानां हितकाम्यया ॥ २८ ॥

राज्यं निधाय पुत्रेषु प्रजापालनकारिषु ।
मुनीनां वृत्तिमास्थाय स्थास्यामि वनगोचरः ॥ २९ ॥

स्वयं यो भगवान् रामः परमात्मा प्रियः सुहृत् ।
तस्मिन् प्रेम समास्थाय विधास्ये स्वात्मनो गतिम् ॥ ३० ॥

यस्य मे तनयः साक्षाद् रामो राजीवलोचनः ।
विश्वानन्दैकभवनं तस्य किं मे सुदुर्लभम् ॥ ३१ ॥

इत्युक्तं राजवर्येण सभायामवधार्य ते ।
मन्त्रिणः स्वगतं ध्यात्वा जगदुः सर्वमङ्गलाम् ॥ ३२ ॥

नैतवो मनुजेन्द्राणां वैवस्वतमनोः कुले ।
राजर्षीणां पवित्राणां विषयौदास्यमद्भुतम् ॥ ३३ ॥

भवन्तो ह्यखिलं वेत्थ लौकिकं चाप्यलौकिकम् ।
पूर्वं सर्वावनीराज्यहेतवे परमात्मने ॥ ३४ ॥

वंशे धुरन्धरं जातं वीक्ष्य भोगेषु निःस्पृहाः ।
वानप्रस्थोचितां वृत्तिं श्रयन्ति रघुवंशजाः ॥ ३५ ॥

दैवमेवानुकूलं वः सर्वत्र वसतां सताम् ।
गृहे वापि वने वापि क्षेमं प्राप्याधितिष्ठताम् ॥ ३६ ॥

राज्यक्षेपश्च यो राजंस्त्वया चित्ते विचारितः ।
स रामचन्द्र एवोच्चैः सर्वथा शोभतेतराम् ॥ ३७ ॥

यद् गदन्ति स्फुटं वृद्धा ना विष्णुः[1] पृथिवीपतिः ।
स रामः स्वयमेवैष ततोऽन्यः कोऽस्तु भूपतिः ॥ ३८ ॥

शोभते राम एवैतद् राज्यं भूमण्डलस्य यत् ।
तद्भक्तिरेव चान्येषु सर्वकल्याणदायिनी ॥ ३९ ॥

त्वमिवैष स्वयंरामः पृथिवीं पालयत्वलम् ।
प्रजा भद्राणि पश्यन्तु निःसपत्ना निरीतयः ॥ ४० ॥

रामस्य भुजदण्डाभ्यां गुप्तमेतद् धरातलम् ।
सर्वसौख्यान्वितं राजन् पुनर्नवमिवास्तु च ॥ ४१ ॥

लक्ष्मणो भरतश्चैव वीरेन्द्रः शत्रुसूदनः ।
रामभक्तियुता नित्यं कर्मणा मनसा गिरा ॥ ४२ ॥

---

१. नारामः, रीवाँ, मथु० ।

एषामाचरितै राजन् प्रकटं तर्कयामहे ।
राज्यं रामेऽर्पयिष्यन्ति दीयमानमपि त्वया ॥ ४३ ॥

अतोऽभिषिच्यतां राजन् राम एव त्वया भुवः ।
पयोधिमेखलावत्या राज्यपाणिग्रहे विधौ ॥ ४४ ॥

न कनिष्ठश्च राज्यार्हो ज्येष्ठे शक्ते विराजति ।
परिवेत्तेतितं दुष्टं वयोवृद्धाः प्रचक्षते ॥ ४५ ॥

अतोऽचिरेण रामेन्दौ राज्यमेतन्निधीयताम् ।
ततस्तिष्ठ यथेच्छं त्वं वने वा गृह एव वा ॥ ४६ ॥

यौवराज्यं दधद् रामो नित्यं रञ्जितवान् प्रजाः ।
भविष्यति पुनश्चास्य राज्यं ते द्विगुणश्रियै ॥ ४७ ॥

मुनय ऊचुः

त्वया समर्पितं राज्यं रामे सर्वगुणाश्रये ।
शोभिष्यते महीपाल शशिखण्डमिवेश्वरे ॥ ४८ ॥

त्रैलोक्यमपि वीर्य्येण रामः पालयितुं क्षमः ।
आसमुद्रावनीभारं किंनोद्वोढुमसौ क्षमः ॥ ४९ ॥

न तस्य लिप्सा राजर्षे पूर्णकामस्य भुक्तिषु ।
भक्त्या जनैरर्प्यमाणानादत्ते विषयानसौ ॥ ५० ॥

सर्वोत्कृष्टतमः शक्त्या स्वाभाविकमहोनिधिः ।
समस्तावनिराज्यस्य स्वयमेवाधिकार्यसौ ॥ ५१ ॥

इति निश्चितमाकर्ण्य सर्ववर्षीयसां नृपः ।
राज्याभिषेचनं कर्तुं सर्वथैवान्वसज्जत ॥ ५२ ॥

दूरं गतेऽधिवसति भरते मातृबन्धुषु ।
रामभक्तिं विनिर्णीय राजा निःशङ्कतां दधौ ॥ ५३ ॥

सुमित्रातनयौ चापि राम एव सदा रतौ ।
लक्ष्मणश्चापि शत्रुघ्नो भ्रूसंज्ञाज्ञाकरावुभौ ॥ ५४ ॥

न रामात्परतः किंचित्प्रियं वस्तु धरातले ।
त्रयाणामपि तुल्यानां भ्रातृणां दीप्ततेजसाम् ॥ ५५ ॥

इति निश्चित्य मनसा राजा दशरथस्तदा ।
रामे राज्यभरं न्यस्य वने गन्तुमना अभूत् ॥ ५६ ॥

स पुरोधसमाहूय वशिष्ठं सर्वदर्शिनम् ।
उवाच वदतं श्रेष्ठं सर्वविश्वैकमङ्गलम् ॥ ५७ ॥

राजोवाच

भगवन् मुनिशार्दूल सर्वज्ञ तपसां निधे।
पितृपैतामहं राज्यं रामे समभिषिच्यताम् ॥ ५८ ॥
सर्वतीर्थोदकैः स्नानं सर्वमन्त्राभिषेचितम्।
रामं विशतु राज्यश्रीः कन्या वरमिवोर्जिता ॥ ५९ ॥

दशवर्षसहस्राणि भोगान् भुक्तवतो मम।
नेदानीं विषयस्नेहस्त्यक्तुमीहे कलेवरम् ॥ ६० ॥
[1]पलितैर्धवलश्मश्रोर्दशा परिणता मम।
आरोपयति हृद्वृत्तिं श्रीरामचरणाम्बुजे ॥ ६१ ॥

अपि चानुगृहीतोऽस्मि साक्षाद्भगवता मुने।
यो मां पुत्रस्वरूपेण भजते नात्र संशयः ॥६२ ॥
भवदाद्याः सर्वदृशो वर्षीयांसो मुनीश्वराः।
राममेव विजानन्ति सर्वकारणकारणम् ॥ ६३ ॥

स्वतोऽनुग्रहकर्त्तारं रामचन्द्रं रमेश्वरम्।
यास्यामि शरणं ब्रह्मन् कृत्वा भरसमर्पणम् ॥ ६४ ॥
अतोऽभिषिच्यतां ब्रह्मन् सुमुहूर्ते रघूद्वहः।
रामचन्द्रो महाराज्ये पितृपैतामहे पदे ॥ ६५ ॥

वशिष्ठ उवाच

साधु व्यवसितं राजन् दशोचितमिदं त्वया।
सुशको ह्रीन्द्रियजयः शत्रून् जितवतस्तव ॥ ६६ ॥
साधयात्मानमव्यग्रो न्यस्य रामे परां[2] (धरा ?) धुरम्।
एष ते निखिलार्थानां निधिः प्रादुरभूत् कुले ॥ ६७ ॥

रामे जाग्रति राजर्षे सर्ववंशधुरन्धरे।
किं तेऽनुचिन्तयेदानीं राज्यगोचरयामुया ॥ ६८ ॥
न भोगाय रघूणां वो राज्यमेतत् परं भुवः।
प्रजानां पालनायैव तद् रामेण विधास्यते ॥ ६९ ॥

पूर्वमेवोदितो रामः प्रजानां तापमोक्षणे।
अलं राज्यधुरोद्वाहश्रमेण तव सुव्रत ॥ ७० ॥
अभिषेक्ष्यामि रामेन्दुं सर्वथाद्य तवाज्ञया।
प्रजानां भावुकैरेष स्वयं हि प्रकटो हरिः ॥७१ ॥

---

१. पालितैः—रीवाँ। २. धराधुररम्—यह पाठ उचित है।

निरीतयः प्रजाः सर्वाः सर्वोपद्रववर्जिताः ।
बिभ्राणे त्वयि सौराज्यं रामे तु नितरां ततः ॥ ७२ ॥

वर्षीयांसोऽपि तरुणा आत्मनिष्ठाः शठा अपि ।
[1]नरकार्हा अपि स्वर्गार्हा भविष्यन्ति भवे जनाः ॥ ७३ ॥

स्वयं जानासि राजेन्द्र रामचन्द्रं परात्परम् ।
अकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुं कर्त्तुं च नियतं प्रभुम् ॥ ७४ ॥

यस्यांशांशभवा राजन् विधिविष्णुमहेश्वराः ।
स एष भगवान् रामस्तवाद्य तनयोऽभवत् ॥ ७५ ॥

अतः परं किं भाग्यं ते वर्णयाम जनाधिप ।
याह्येनं सर्वभावेन शरणं जगदीश्वरम् ॥ ७६ ॥

सर्वार्पणप्रकारेण यं सेवन्ते सदा बुधाः ।
तस्मै राज्यार्पणं कृत्वा कृतकृत्यो भव प्रभो ॥ ७७ ॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं प्राजापत्यस्य योगिनः ।
राज्याभिषेकसामग्रीं कारयामास सेवकैः ॥ ७८ ॥

जलान्यानाययामास सर्वतीर्थमयानि सः ।
विप्रानामन्त्रयामास ऋत्विग्वरणहेतवे ॥ ७९ ॥

महतीं कारयामास हेमरत्नाश्मनिर्मिताम् ।
शालां भूदेवदेवर्षिराजवृन्दसभोचिताम् ॥ ८० ॥

तत्र वेदीं सुमहतीं कुण्डमण्डपमण्डिताम् ।
कारयामास विधिवन्मन्त्रज्ञैर्ब्राह्मणोत्तमैः ॥ ८१ ॥

क्षत्रियानाजुहावाथ नानादिग्देशवर्त्तिनः ।
ते धनानि समादाय कोसलां सुसमाययुः ॥ ८२ ॥

गजाश्वरथपत्तीनां सम्मर्दः कोसलापुरे ।
समभूदभितो वीन्द्र गच्छतां प्रतिगच्छताम् ॥ ८३ ॥

अलंकृतं पुरं सर्वं पताकध्वजतोरणैः ।
रामं निःस्पृहमप्यन्वक् सेवितुं श्रीरिवागता ॥ ८४ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शक्रः सर्वदेवगणैर्वृतः ।
उन्मना इव लोकेशसंसदं समुपेयिवान् ॥ ८५ ॥

प्रजापतिं नमस्कृत्य हंसासनगतं हरिः ।
उवाच कार्यं देवानां यदर्थं पूर्वमुद्यतम् ॥ ८६ ॥

---

१. इस चरण में ९ अक्षर हैं, जो आर्ष दृष्टि से ठीक ही हैं ।

इन्द्र उवाच

जानासि भगवन् यस्मै[1] स्वयं रामो ह्यवातरत् ।
अनादिनिधनः साक्षाद्भगवान् भास्वतः कुले ॥ ८७ ॥
त्रैलोक्यशल्यमेतद्धि रावणाख्यमनुद्धृतम् ।
सञ्जीविता न मुनयो रक्षोभिर्भक्षिताश्च ये ॥ ८८ ॥
बन्दीर्देवावरोधानां नोद्दधार स्ववीर्यतः ।
न चोद्धरान् विराधाद्यानसुरान् स्वशरैरहन् ॥ ८९ ॥
न चक्रे दण्डकारण्यं क्षेमावासं तपस्विनाम् ।
न च पञ्चवटीं तत्र मुनीनामस्थिभिर्वृताम् ॥ ९० ॥
रक्षोऽनीकशतैः शून्यं न चक्रे दक्षिणापथम् ।
न च भक्ततमान् रामो भव्यैर्योजितवान् बहून् ॥ ९१ ॥
ये तस्य दर्शनाकाङ्क्षानिरताः सुचिराज्जनाः ।
श्रुत्वा श्रुत्वा गुणान् रम्यान् बद्धोत्कण्ठा वियोगिनः ॥ ९२ ॥
वियोगातुरसम्भ्रान्तहृदयाः परमातुराः ।
पुण्डरीकाक्षपद्रेणुप्राप्तिकामनया स्थिताः ॥ ९३ ॥
इहामुत्रार्थविषयाननादृत्य व्यवस्थिताः ।
रामस्नेहगुणैर्बद्धा दृढपाशोपमैश्च ये ॥ ९४ ॥
न तेषां मनसां कामाः पर्याप्ता रामवल्लभे ।
मानिनां दम्भिनां चैव न च दोषा निराकृताः ॥ ९५ ॥
न च भक्तिपथं लेभे प्रतिष्ठां सुगरीयसीम् ।
न च भक्तेषु तत्प्रीतिर्मधिकामविदन् जनाः ॥ ९६ ॥
न च भक्तेषु वश्यत्वं ज्ञातवन्तोऽस्य लौकिकाः ।
न चास्य विहृतिः पूर्णा सीतया सह कानने ॥ ९७ ॥
न च सार्थकतां निन्ये देवान् कम्पितया स्थितान् ।
न चास्य महिमा सर्वोऽप्यसाधारणतां गतः ॥ ९८ ॥
लौकिकैर्नृभिरज्ञायि दुःशका चरणादिभिः ।
न च रक्षोधिपः साकं परीवारैः क्षयं गतः ॥ ९९ ॥
न च युद्धाभिलाषोऽपि पूर्णतामगमत् प्रभोः ।
शस्त्रास्त्रशिक्षा गाधेयी प्रतिष्ठां नालभद्भुवि ॥ १०० ॥
न च मन्मनसः शल्यं मेघनादः क्षयं गतः ।
इत्याद्यनेककार्याणि कर्तव्यानि धनुर्भृता ॥ १०१ ॥

१. राम एवातरत् स्वयं—मथु० ।

न कृतानि कथं सोऽत्र पित्रा राज्येऽभिषिच्यते ।
किं तस्य जगदीशस्य कोदण्डनिवहेशितुः ॥ १०२ ॥

आराध्यस्य स्वयं पूर्णब्रह्मणः परमात्मनः ।
आसमुद्रान्तधरणीराज्येन लघुना भृशम् ॥ १०३ ॥

स्वाभाविकं तस्य चरित्रमद्भुतं जगत्पवित्रीकरणं सुमङ्गलम् ।
गायन्ति धातः परितो जगज्जनाः किं तस्य राज्येन समुन्नतिः परा ॥ १०४ ॥

यस्य श्रिया मण्डितमेतदीक्ष्यते ज्योतिर्मयं चक्रमजस्रमम्बरे ।
यस्यांशभूतिर्ननु वैश्वतेजसी किं तस्य राज्येन परो महोदयः ॥ १०५ ॥

यतोऽखिलं विश्वमिदं प्रसूयते विश्वम्भरो यश्च पिता जगत्त्रये ।
यः स्वेच्छया संहरतेऽखिलं च तत्कोऽन्योऽस्ति राजा त्र ततः परो जनः ॥ १०६ ॥

तस्मात्तस्यैच्छिकी लीला व्याहन्येत यथा न सा ।
तथा कार्यं त्वया ब्रह्मन् किं राज्यं जगदीशितुः ॥ १०७ ॥

अन्यथा त्वखिलं कार्यं देवानां प्रतिरुध्यते ।
इतीन्द्रभाषितं श्रुत्वा पद्मयोनिर्जगाद तम् ॥ १०८ ॥

ब्रह्मोवाच

पुरैव चिन्तितं शक्र मयेदं प्रभुचेष्टितम् ।
तत्र विघ्नोपमं राज्यमवश्यं संनिवार्यताम् ॥ १०९ ॥

मन्थरा नाम कैकेय्या दासी मन्दतमा धिया ।
तस्याः कण्ठे संनिविश्य ब्राह्मी प्रतिविधास्यति ॥ ११० ॥

पुरैव राज्ञा कैकेय्यै वरयुग्मं प्रतिश्रुतम् ।
रामराज्याभिषेके तत् स्मारयिष्यति मन्थरा ॥ १११ ॥

ततस्तद्वचनोद्‌बुद्धा कैकेयी भरतप्रसूः ।
राज्यार्थं निजपुत्रस्य रामं प्रेषयिता वने ॥ ११२ ॥

दैत्यानां देवतानां च युद्धे दशरथः पुरा ।
देवपक्षस्थितोऽयुद्धयद् दितिजैरपरिश्रमः ॥ ११३ ॥

समं पञ्च सहस्राब्दान् निद्रातन्द्राविवर्जितः ।
अजस्रबद्धतूणीरो बाणसंचारणोद्‌धुरः ॥ ११४ ॥

तस्य दक्षकराङ्गुष्ठो धनुर्ज्याकृष्टिधारया ।
लग्नाङ्गुलिव्रणोऽभूत् स तेन व्यथितो भृशम् ॥ ११५ ॥

मुखे निक्षिप्य कैकेय्या जिह्वोत्थामृतविन्दुभिः ।
भृशमङ्गुष्ठपर्वास्य रक्षितं शयनान्तरे ॥ ११६ ॥

तेनैव सुखितः किंचिन्निद्रां निर्व्यथमास्थितः ।
वह्वब्दजागरोद्भूतभूरिनिद्रालुताधरः ॥ ११७ ॥
तदा तेन वरौ तस्यै प्राप्ते काले परिश्रुतौ ।
तावेव स्मारयन्ती सा मन्थरा विघ्नयिष्यति ॥ ११८ ॥
इति धातुर्वचः श्रुत्वा मुदितोऽभूत् पुरन्दरः ।
ज्ञात्वा सिद्धं देवकार्यमातिष्ठत सुरालयम् ॥ ११९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे रामराज्याभिषेके षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ प्रजानां पौराणामन्तःपुरनिवासिनाम् ।
नृणां स्वेषां परेषां च जज्ञिरे सर्वतो गिरः ॥ १ ॥
रामराज्याभिषेकोत्थमङ्गलानन्दिचेतसाम् ।
साधुवादगिरो नृणामश्रूयन्त गृहे गृहे ॥ २ ॥

जना ऊचुः

अहो नो भाग्यसम्पत्तिः किमस्माभिः कियत्तपः ।
अकारि येन द्रक्ष्यामो रामं राजानमद्य वै ॥ ३ ॥
कुलक्रमागतं राज्यं प्राप्य रामो वहन् मुदा ।
चन्द्रमा इव विद्योतं दृशो नः सुखयिष्यति ॥ ४ ॥
येषां च बत नोऽस्माकं राजासौ जानकीपतिः ।
किमलभ्यतमं तेषां पुरुषार्थचतुष्टये ॥ ५ ॥
यद्यदिष्टतमं लोके तत्तदस्य प्रसादजम् ।
प्राप्स्यामः सुकृतेनाढ्या वयं रामेण सेश्वराः ॥ ६ ॥
श्रीरामस्य प्रियायोध्या साक्षाल्लक्ष्मीनिवासभूः ।
आनन्दनगरी चैषा वसतिर्नः परं शुभा ॥ ७ ॥
सुरनार्योऽप्यमुं द्रष्टुं कामयन्ते प्रतिक्षणम् ।
तमेनं[1] मनसा दृष्ट्वा दृशौ सफलयामहे ॥ ८ ॥

---

१. तमेनमसकृद् दृष्ट्वा—गम्॰ ।

दधिदूर्वाक्षतकराः सनिर्मञ्छनपाणयः ।
राज्याभिषेकिनं राममद्य द्रक्ष्यामहे वयम् ॥ ९ ॥

मदच्युत्कुञ्जरगतिर्विलोलचमरालका ।
चलत्सारङ्गनयना मणिविद्रुमभाधरा ॥ १० ॥

पद्माकरमुखश्रीका राजहंसस्खलद्गतिः ।
द्वितीया जानकीवामुं राज्यश्रीरद्य यास्यति ॥ ११ ॥

राज्यश्रीरमणं चैनं दृष्ट्वा दृष्ट्वा जगज्जनः ।
श्रियं मातरमासाद्य महोन्नतिमुपैष्यति ॥ १२ ॥

इत्याद्यनेकधा चित्ताभिलाषभवया गिरा ।
पुरं कोलाहलीचक्रुः पौरा हर्षितमानसाः ॥ १३ ॥

अथ प्राप्ते सुमुहूर्ते वशिष्ठः श्वोभाविन्यामभिषिक्तौ मुनीन्द्रान् ।
सन्मन्त्रविद्याकुशलानाजुहाव पूर्वं चिकीर्षुर्मण्डपस्याधिवासम् ॥ १४ ॥

ते स्वस्तिपुण्याहमुदीर्य विप्रा मन्त्रैर्महाघोषवद्भिः सुभव्यैः ।
आदौ गणेशं वरुणं वास्तुदेवं सम्पूज्य गन्धाक्षतपुष्पदीपैः ॥ १५ ॥

ततोऽधिवासयाञ्चक्रुः सर्वा मण्डपदेवताः ।
वेदीं संस्कृत्य विधिवन्महार्हमणिनिर्मिताम् ॥ १६ ॥

प्रधानदेवतां तत्र स्थापयित्वा विशेषतः ।
साङ्गोपाङ्गां सुविधिभिर्जपस्तोत्रपुरःसरम् ॥ १७ ॥

अकुर्वन्नौदकीं शान्तिं विधिदृष्टां द्विजातयः ।
अग्निं च स्थापयाञ्चक्रुरार्त्विज्यविधिवित्तमाः ॥ १८ ॥

तां निशां सुखतो निन्युर्मन्त्रघोषपुरःसरम् ।
प्रातरुत्थाय जुहुवुस्तिलाज्यैर्जातसम्भ्रमाः ॥ १९ ॥

श्रीमन्त्रनिवहैर्विप्राः कृत्वा माङ्गलिकं स्वरम् ।
ततश्च रामं संस्नाप्य [1]कुशशोभितपाणयः ॥ २० ॥

तीर्थोदकैश्च विविधैर्मन्त्रघोषपुरःसरम् ।
अथासौ मङ्गलक्षौमे परिधाय सुभूषितः ॥ २१ ॥

प्रधानदेवतां नत्वा स्थितो वेद्यां शुभासने ।
यावत्समभिषिच्येत मन्त्रै राज्याभिषेचनैः ॥ २२ ॥

तावदन्तःपुरे राज्ञ उदतिष्ठन्महाध्वनिः ।
रुदत्कैकेयराजेन्द्रतनयाश्वासनोद्भवः ॥ २३ ॥

तं निशम्य नृपो व्यग्रः स्वयं दशरथः क्षणात् ।
सभामण्डपतः सद्यः समुत्थाय ययौ गृहम् ॥ २४ ॥

---

१. सर्वौषधिजलेन ते—अयो०, मथु० ।

सोऽन्तःपुरचरीवक्त्रादाकर्ण्य रघुसत्तमः ।
कैकयेन्द्रसुतावृत्तं सुव्यग्रस्तामुपागमत् ॥ २५ ॥

सा पिधायाञ्चलेनास्यं रुदन्ती करुणावहम् ।
पृष्टापि नैव प्रत्यूचे राजानं धृतचण्डिमा[1] ॥ २६ ॥

अन्तस्तापभरात्युष्मान् मुञ्चन्ती श्वासमारुतान् ।
विशुष्यदधरात्यर्थमन्तःशोकाग्निदीपिनी ॥ २७ ॥

श्वासोष्ममलिनीभूतनासामुक्तामणिद्वया ।
विकीर्णालिकसंदोहरुद्धपार्श्वचरेक्षणा ॥ २८ ॥

अधोमुखी गलन्मुक्ताफलस्थूलाश्रुबिन्दुभिः ।
श्रीखण्डकुङ्कुमालेपं क्षालयन्ती स्तनद्वये ॥ २९ ॥

अनाकर्णितसख्युक्तिरार्त्तस्वरपरायणा ।
रुदन्ती करुणं दीना हतेवात्मधिया मुहुः ॥ ३० ॥

उवाच नृपतिस्तां तु तादृशीं क्रोधनिर्भराम् ।
सुघोरचरितां चण्डीं विस्मृताशेषलौकिकाम् ॥ ३१ ॥

राजोवाच

रामाभिषेकसमये किमेवं रोदिषि प्रिये ।
कारणं नास्य जानामि शोकाग्नेः समुदञ्चतः ॥ ३२ ॥

वादयन्ति शुभनादानि वाद्यानि परितो गृहे ।
गायन्ति चारु गन्धर्वा वीणानिनदमिश्रितम् ॥ ३३ ॥

नृत्यन्ति नर्तकीवृन्दा मुहुर्मङ्गलगीतयः ।
मुदिता नगरी सर्वा सहर्षाः सर्वतो जनाः ॥ ३४ ॥

रामे त्रिभुवनारामे विरामेऽखिलदुर्हृदाम् ।
राज्येऽभिषिच्यमानेऽद्य हर्षितं सकलं जगत् ॥ ३५ ॥

विषीदसि त्वमेवैका कथं राजेन्द्रकन्यके ।
मलिनीकुरुषेऽकस्मात् कथमुज्ज्वलमाननम् ॥ ३६ ॥

निदानमाकस्मिकशोकवह्नेर्ज्ञातुं विशालाक्षि मुहुर्मुहुस्त्वाम् ।
पृच्छामि मूर्छन्नहमप्यमन्दशङ्कासमुद्रोर्मिविगाढचित्तः ॥ ३७ ॥

श्रुत्वा भर्त्तुर्वचश्चण्डी श्वासोच्छ्वासक्रमाकुला ।
उवाच रुदिता व्यक्तस्वरोदीरितदारुणा ॥ ३८ ॥

कैकेय्युवाच

सम्यक् त्वया कृतं राजन् मत्पुत्रः पूर्वमेव यः[2] ।
गृहान्निर्वासितः साधुरपराधविवर्जितः ॥ ३९ ॥

---

१. धृतचण्डिका—रीवाँ । २ यत्-मथु० ।

सपत्न्यास्तनयो नूनं राज्ये समभिषिच्यते ।
सर्वथा हतमानाया नाधुना जीवितं मम ॥ ४० ॥

किं नु स्थास्याम्यहं लोके सपत्न्याः पिण्डभोजिमी ।
सम्यङ्मे फलितं भाग्यं यस्या मे त्वादृशः पतिः ॥ ४१ ॥

जरया लुप्तरूपस्य लोपिता धिषणापि ते ।
सत्यं च लोपितं प्रायस्तादृग्धर्मगुरोस्तव ॥ ४२ ॥

का न्वीदृशं परिभवं भुवने सहेत सापत्न्यतुल्यविभवाप्यधिकात्सपत्नात् ।
तज्जीवितं लघुतृणीकृतमद्य हित्वा लोके मुखं मलिनकान्ति न दर्शयिष्ये ॥४३॥

सर्वथा मे गतो मानस्त्वया पत्या जनाधिप ।
तमहं [१]प्रतिपत्स्यामि त्यक्त्वापि निजजीवितम् ॥ ४४ ॥

त्वयि जीवति हे नाथ करिष्ये सर्वथा द्वयम् ।
प्रवेक्ष्यामि शुचिं दीप्तं पास्यामि गरमेव वा ॥ ४५ ॥

सहिष्येऽनादरं नैव समृद्धाद् बलवत्तरात् ।
सपत्नात्प्राप्तराज्यश्रीजातलोकसमुन्नतेः ॥ ४६ ॥

नाद्यावधि मया नाथ निकर्षः क्वापि वीक्षितः ।
समानत्वभागेन यया वीरः सुतोऽजनि ॥ ४७ ॥

भूत्वापि वीरसूः साहं प्राप्तानल्पं पराभवम् ।
दैवं न प्रतिकूलं मे प्रतिकूलः परं भवान् ॥ ४८ ॥

रामाभिषेकपटहो वादयन् कर्णकटुर्मम ।
प्रोषितात्मजरत्नाया रुजत्यतितरां मम ॥ ४९ ॥

कुर्वन्ति कर्णयोरेते तप्तसूचिव्यथव्यधव्यथम् ।
वीणानिनादद्विगुणा गन्धर्वनिवहस्वराः ॥ ५० ॥

मन्दिरेषु प्रतिद्वारं निबद्धास्तोरणस्रजः ।
असह्यामनलज्वालां पातयन्ति दृशोर्मम ॥ ५१ ॥

नृत्यन्त्य एता नर्त्तक्यो वज्रसङ्घातकर्कशैः ।
मनश्चरणतालैर्मे मर्दयन्ति मुहुर्मुहुः ॥ ५२ ॥

भागिनोऽस्माननतिक्रम्य सपत्नजनपक्षगाः ।
सपत्नीव मया लक्ष्मीरद्य सोढुं न शक्यते ॥ ५३ ॥

जराविलुप्तधिषणः सर्वं विस्मृतवानसि ।
देवदानवयुद्धान्ते किं नु राजन् प्रतिश्रुतम् ॥ ५४ ॥

सत्येन मारुतो वाति सत्येन तपते रविः ।
सत्येन च ज्वलत्यग्निः सत्येनेन्द्रोऽभिवर्षति ॥ ५५ ॥

---

१. प्रतिरोत्स्यामि—अयो०, मथु० ।

सत्येन च चलत्येषा भूराप: सत्यतो द्रवा: ।
सत्येन रोदसी बद्धे सत्युर्धवति सत्यत: ॥ ५६ ॥

सत्येनैव तपस्यन्ति यजन्ते सत्यतो जना: ।
सत्येन फलदं सर्वं सत्यं संस्मर पार्थिव ॥ ५७ ॥

यत्सत्यं राजशार्दूल भवानकथयत् पुरा ।
वरद्वयं प्रतिश्रुत्य तदिदानीं प्रयच्छ मे ॥ ५८ ॥

इत्थं प्रणोदितो राजा कैकेय्या क्रूरचित्तया ।
उवाचाभिरत: सत्ये तामङ्गार्धनिवेशिनीम् ॥ ५९ ॥

राजोवाच

उपसंहर रम्भोरु क्रोधं सापत्नभावजम् ।
यच्चिकीर्षसि चित्तेन तत्सत्येन ददाम्यहम् ॥ ६० ॥

करोमि ते प्रियं तन्वि वरौ दत्त्वा प्रतिश्रुतौ ।
न कदर्थयितव्यं ते बाष्पौघैर्लोचनद्वयम् ॥ ६१ ॥

स्मरामि सम्यक् चित्तेन यत्तुभ्यं मे प्रतिश्रुतम् ।
मा रोदी: करुणं तन्वि कैकयेन्द्रसुते वृथा ॥ ६२ ॥

एतत्तवानुचितमेवमतीवदु:खं कैकेयराजतनये किमु रोदिषीत्थम् ।
सत्ये निबद्धहृदयोऽहमशेषमेव हित्वा प्रतिश्रुतवरौ तव तन्वि दास्ये ॥ ६३ ॥

यथेच्छं मामनसूयापरं त्वं याचस्व दास्यामि यथा प्रतिश्रुतम् ।
प्राप्यान्तिमामीदृशीमप्यवस्थामसत्यवाङ्न भविष्यामि लोके ॥ ६४ ॥

इति स्फुटं साजसुतेन[1] भामिनी समीरिताश्वासनवाक्यपूर्वकम् ।
वमाण भूयश्चिरकामितौ वरौ राज्ञा प्रतिश्रुत्य चिरात्कृताङ्कुरौ[2] ॥ ६५ ॥

कैकेय्युवाच

एवं चेत्तर्हि राजेन्द्र तव स्वर्गो निरन्तर: ।
सत्यादक्षुण्णचित्तस्य नियतं हि भविष्यति ॥ ६६ ॥

अन्यथा तद्विपरीतैव गतिरित्यवधारय ।
यै: सुसंरक्षितं सत्यं प्राणादपि धनादपि ॥ ६७ ॥

तै: किं न रक्षितं लोके स्वेष्टां गतिमुपार्जितै: ।
येषां त्वन्तमितं सत्यं ते शोच्या जगतीतले ॥ ६८ ॥

प्रवासय वनं राजन् रामं प्राणसमं प्रियम् ।
एवमेको वर: सत्यं दत्त: स्यान्मे प्रतिश्रुत: ॥ ६९ ॥

---

१. राजसुतेन—रीवाँ । सा अजसुतेन – दशरथेन । २. कृतौ करौ—रीवाँ ।

द्वितीयस्तु महाराज मत्पुत्रे राज्यमर्पय ।
इत्युक्त्वा क्रूरहृदया तूष्णीमास नृपाग्रतः ।। ७० ।।

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा राजा दशरथो भृशम् ।
बाणेनेवानिवज्रेण बभूव हृदि ताडितः ।। ७१ ।।

चिरं सम्भ्रान्तहृदयो विषण्णहृदयः क्षणात् ।
मेने प्राणाधिकं रामं वियुक्तमात्मना नृपः ।। ७२ ।।

सत्याश्रयेण दोषेण हतश्रीरिव घूर्णितः ।
निश्चिकायात्मनः सोऽन्तं रौद्रतापसशापजम् ।। ७३ ।।

यावन्धौ सुतशोकेन प्रविष्टौ ज्वलनं प्रति ।
तयोः शापस्य समयमुपस्थितमसाववैत् ।। ७४ ।।

तथास्त्विति द्रुतमभिधाय भामिनीं निवार्यतां कुधियमसुव्ययोद्धुराम् ।
विषण्णधीर्विरहहुताशनस्य स ज्वलिष्यतः स्वतनुमवैत्पतङ्गवत् ।। ७५ ।।

मा रोदीः पूर्णकामासि मा च त्वं जीवितं त्यज ।
भरते त्वत्सुते राज्यं रामे च वनवासनम् ।। ७६ ।।

इत्युक्त्वा निर्गतस्तस्मात् कैकेयीभवनान्नृपः ।
तापलज्जामहोद्वेगपर्याकुलितमानसः ।। ७७ ।।

तच्छ्रुत्वा भगवान् रामः कैकेयी हठ भाषितम् ।
राज्ञो वरार्पणं चापि मुदितोऽतितरामभूत् ।। ७८ ।।

राज्यार्पणश्रीः सा रामे पितुः सत्याभिपालनात् ।
नाधिकं मनसः प्रीत्यै इति तूष्णीमिवाभवत् ।। ७९ ।।

अथैकान्ते स्थितो राजा शोकोद्वेगत्रपाकुलः ।
गुरुमामन्त्रयाञ्चक्रे वशिष्ठं सर्वदर्शिनम् ।। ८० ।।

प्राजापत्यो मुनिर्वीक्ष्य विषादविकलेन्द्रियम् ।
उवाच वदतां श्रेष्ठो राजानं बोधयन्निदम् ।। ८१ ।।

वशिष्ठ उवाच

किं शोचसि महीपाल भाग्यं हि बलवत्तरम् ।
पुरुषो दैवनियतः पराधीनतमः किल ।। ८२ ।।

ये भावा भाविनः पुंसः पूर्वमेव विनिर्मिताः ।
न तान् जानाति मनुजो दैवमायावशे स्थितः ।। ८३ ।।

सुखं दुःखं व्ययो लाभो जयोऽभिभव एव च ।
दैवस्येच्छावशे भावाः कथं नान् शोचसि प्रभो ।। ८४ ।।

जगल्लीलामयं ह्यीदं परस्य परमेशितुः ।
तत्रायं स्वाभिमानेन जीवः क्लिश्यति नित्यशः ॥ ८५ ॥

कृतस्य क्रियमाणस्य संचितस्याप्यनेकधा ।
कर्मणां गतिरत्यर्थमनन्ता धरणीपते ॥ ८६ ॥

कर्मपाशशतैर्बद्धो भ्रमन्नेष उपर्यधः ।
आरघट्टघटीतुल्यो लभते विविधा गतीः ॥ ८७ ॥

देहाध्यासैकमूलानि कर्माणि विदधज्जनः ।
तेषां कर्तारमात्मानं मन्यमानोऽतिखिद्यते ॥ ८८ ॥

गुणैर्गुणानारभते हेतून् विविधसंसृतेः ।
गुणमय्या प्रकृत्यैष विद्वानप्यभिभूयते ॥ ८९ ॥

अहं ममेति सततं पुमान् भेदधिया हतः ।
क्रोधद्रोहेर्ष्यासूयाद्यैर्भावैर्मुह्यति तामसैः ॥ ९० ॥

समं विद्वानविद्वांश्च संसरत्यात्मनो गुणैः ।
पूर्वस्य बाधिता वृत्तिः परस्याभाति सत्यवत् ॥ ९१ ॥

महान् विशेषो विदुषो जनादविदुषो ध्रुवम् ।
ज्ञानामृतोक्षितस्तापं शमयत्यात्मनो यतः ॥ ९२ ॥

यतो गुणाः प्रवर्तन्ते भाति यस्य चिदाखिलम् ।
तमीशं सर्वकर्तारं शरणं गच्छ मुक्तये ॥ ९३ ॥

मायामोहमदाविष्टश्चिरं संतप्तमानसः ।
शास्त्रीयज्ञानवान् गच्छेच्छरणं पुरुषं परम् ॥ ९४ ॥

चिरात्संस्मरमाणेऽसौ यावन्नो शान्तिमृच्छति ।
दृढपाशशतैर्बद्धस्तावन्नैवापवृज्यते ॥ ९५ ॥

विविधक्लेशभवनमल्पमात्रसुखास्पदम् ।
परिणामैकविरसं जहि संसारमात्मनः ॥ ९६ ॥

को ह्यपायानपेयस्य पुरा चीर्णस्य कर्मणः ।
फलमापतितं भुञ्जन् न खिद्येत भृशं बुधः ॥ ९७ ॥

यस्य ते सुदृढः स्नेहो यतसे यद्धिताय च ।
स एष भगवान् रामः सर्वत्र समदर्शनः ॥ ९८ ॥

स्पृहा राज्याभिषेकेऽस्य कच्चिन्नेतरलोकवत् ।
न द्वेषो वनवासे च सर्वत्र समदर्शिनः ॥ ९९ ॥

येऽस्य किंचिद्विजानन्ति स्वरूपं तत्त्वतो बुधाः ।
तेषां मानपनामादिसङ्गो नास्य कुतस्तराम् ॥ १०० ॥

को वेत्ति प्राकृतो जन्तुरस्य किं नु चिकीर्षितम् ।
निमित्तमात्रं कैकेयी सर्वं हि कुरुते स्वयम् ॥ १०१ ॥

चिकीर्षितानुसारेण सर्वमस्यैव जायते ।
इति ज्ञात्वा न कस्यापि दोषं मनसि भावय ॥ १०२ ॥

सर्वेषां हृन्निविष्टोऽयं प्रवर्तयति कर्मसु ।
जनः स्वात्माभिमानेन केवलं बद्ध्यते भवे ॥ १०३ ॥

अमुमेव सदा चित्ते भावयन्नखिलेश्वरम् ।
सर्वकर्म समर्प्यास्मिन् निवृत्तभववेदनः ॥ १०४ ॥

विरहेऽप्यमुमेवान्तर्भजन् स्वात्मसमाधिना ।
परिक्षीणाखिलोद्वेगो ब्रह्मभूतः सुखी भव ॥ १०५ ॥

यदखण्डितमैश्वर्यमाज्ञास्थविधिशङ्करम् ।
तदेतस्याल्पकं राजन् किं नु राज्यमिदं भुवः ॥ १०६ ॥

भूभारासुरराजन्यचमूहननहेतवे ।
अवतीर्णो स्वयं साक्षाद् रामो न विदितस्तव ॥ १०७ ॥

कथं स्थास्यति रुद्धोऽयमनया राज्यसम्पदा ।
यस्य कृत्यं न पर्याप्तं धर्मसंस्थापनाभिधम् ॥ १०८ ॥

चरन् कान्तारभूमीषु पादाभ्यां पावयन् जगत् ।
हरन्नसुरयूथानि भक्तानभ्युद्धरन् भवात् ॥ १०९ ॥

करिष्यति विचित्राणि चरित्राणि महीपते ।
तन्मूलमेतत्संजातं कैकयीवाक्यकैतवात् ॥ ११० ॥

अक्लिष्टान्यस्य कर्माणि सुखदानि सतां सदा ।
इति विज्ञाय कैकेयीं न दूषयितुमर्हसि ॥ १११ ॥

इत्युक्तः पृथिवीपालो मुनिना तत्त्वदर्शिना ।
खिद्यमानोऽपि मनसा क्षणं सन्तोषमाय सः ॥ ११२ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे कैकेयीवरप्रदानो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

मन्थरामन्त्रितं श्रुत्वा कैकेयी मन्दधीर्मुधा ।
रामं वने प्रेषयति राज्यं काम्यते सुते ॥ १ ॥

इति कोलाहलं श्रुत्वा साकेतनगरे जनाः ।
निनिन्दुर्भूरि कैकेयीमयशोभिर्मलीमसाम् ॥ २ ॥

अहो अतीव विषमं वनं कमलकोमलः ।
रामो राजकुमारोऽयं कथं गाहिष्यते जनाः ॥ ३ ॥

जगतां प्राणरूपोऽसौ शिरीषसुकुमारकः ।
रामः कथं नु विपिनं पद्भ्यां सेविष्यते मुहुः ॥ ४ ॥

चतुर्दशसमा यावत्कथं वत्स्यति कानने ।
रामो राज्येन्दिराभोगरसिकत्वोचितः स्वयम् ॥ ५ ॥

कैकेयराजदुहितुर्वरमर्थयन्त्या ईदृग्विपाकविषमं विषहं विषाभम् ।
तस्याः कथं नु हृदयं सहसा न दीर्णं किं वाश्मसारसमुदायमयं कठोरम् ॥ ६ ॥

अम्भोजगर्भमृदुलासनसंस्थितेऽप्यायासमञ्चत इवात्यरुणौ यदङ्घ्री ।
सैष प्रकामसुकुमारवपुर्वनान्तभूमीषु पर्यटितुमर्हति नैव रामः ॥ ७ ॥

हंहो विधेरयमतिप्रतिकूलभाव एवंविधेऽप्यवसरेऽतुलमङ्गलाढ्ये ।
एतं सुदीर्घतमशोकनिदानमेवं कैकेयजावचनमीदृशमाविरास ॥ ८ ॥

नीचवाक्यानुरोधेन कैकेयी राज्यकन्यका ।
कथं नु रामचन्द्रस्य प्रतिकूलमुपाचरत् ॥ ९ ॥

कैकेय्या अयशोराशिः सान्द्रध्वान्तमलीमसः ।
अशेषजगति व्याप्तो भविष्यति न संशयः ॥ १० ॥

जाया दशरथस्यैषा भरतस्य प्रसूः सती ।
कथं कलङ्कयामास कैकेयी स्वात्मनो श्रियम् ॥ ११ ॥

जम्बालपुञ्जरूपाणि कैकेय्या दुर्यशांसि च ।
विलिप्य रोदसी नृणां लिपेयुर्हृदयान्यपि ॥ १२ ॥

असावशुद्धिर्हृदयस्य तस्याः कथं नु जाता भरतस्य मातुः ।
रामं सदा सर्वगुणाभिरामं या नैव सेहेऽखिलमङ्गलाढ्यम् ॥ १३ ॥

गुणा दोषैरुपहताः कृतमप्यकृतं ह्यभूत् ।
श्रेयांसि दुष्कृताढ्यानि व्यामोहोऽभूद् विधेरपि ॥ १४ ॥

अहो सर्वज्ञवर्यस्य वशिष्ठस्य महात्मनः ।
आशिषां फलमासीत्किमनृतं तत्क्षणादिव ॥ १५ ॥

इमानि खलु दुःखानि क्व धृतान्यासुरेकतः ।
आविर्भूतानि सहसा कुतश्चैकपदे नृणाम् ॥ १६ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्थमुद्विग्नमनसां जनानामाकुला गिरः ।
उद्वेगं जनयामासुर्विदुषामपि चेतसि ॥ १७ ॥

रामस्तदवधार्याथ धीरतागुणवारिधिः ।
अतीव मुदितो जातो वने क्रीडितुमुत्सुकः ॥ १८ ॥

राजा दशरथश्चित्ते सोद्वेगः समभूत्क्षणात् ।
कथं नु वनवासाय रामं वक्ष्याम्यहं गिरा ॥ १९ ॥

अहो मे दुष्कृतं भूरि कुतः प्रादुरभूदिदम् ।
यत्पश्यतो रामचन्द्रं मध्ये विघ्नो बभूव ह ॥ २० ॥

प्रजाः किं मे नु वक्ष्यन्ति नितान्तं कठिनाशयम् ।
रामेन्दुं वनवासाय प्रेरयन्तं स्वयं गिरा ॥ २१ ॥

यदाहं वचसा ब्रूयां वनवासाय सुन्दरम् ।
रामं राजीवनयनं सुकुमारं मनोहरम् ॥ २२ ॥

तदा तेनैव वचसा साकं पश्चापि मेऽसवः ।
तूर्णं कण्ठाद्विनिर्यन्तु दौर्हार्दसुमलीमसः ॥ २३ ॥

अस्मै दुर्विधये किं नु धात्राहं जीवितश्चिरात् ।
त एव धन्या ये दुःखमभुक्त्वैव दिवं गताः ॥ २४ ॥

दुःखं चापि महत्प्राप्तं सुघोरं प्राणसंकटम् ।
कथं वियुज्य रामेण जीविष्यामि जगत्यहम् ॥ २५ ॥

अहो हि सा महाचण्डी केनेदं शिक्षिता जवात् ।
न जज्ञौ च कथं क्रुद्धा स्वात्मवैधव्यकारणम् ॥ २६ ॥

तपस्वी विकृतः पूर्वं मया तस्य घ्नता सुतम् ।
तस्येदमतिघोरस्य कर्मणः फलमीदृशम् ॥ २७ ॥

मृगया सा ममात्यन्तमीदृग्दोषावहाजनि ।
अतएव विनिन्दन्ति साधवस्तां सुदूरतः ॥ २८ ॥

रामस्य कोटिविधुशीतलतागुणाढ्यमानन्दकारि वदनं सदनं रमायाः ।
सम्पश्यतो मम सुखार्णवमग्नदृष्टेरीदृङ्महोदयमुदीक्ष्य विधिर्न से हे ॥ २९ ॥

रामसुन्दरमुख्यानां चतुर्णां सुखकारिणाम् ।
सुतानां मध्यतः स्थित्वानन्यसौभाग्यवानहम् ॥ ३० ॥

पुरा चीर्णानि पूर्णानि तपांसि हृदि तर्कयन् ।
अखर्वगर्वताशैलो हा हतोऽस्मि विधेर्बलात् ॥ ३१ ॥

इत्थं विचिन्तयन् राजा मनसा मोहसागरे ।
निर्ममज्ज भृशं विद्धः कैकेयीवाक्यशल्यभृत् ॥ ३२ ॥

तं रामः सहसाऽऽगत्य लज्जाशोकभराकुलम् ।
उवाच मुदितोऽत्यन्तं स्मितसंशोभिताननः ॥ ३३ ॥

श्रीराम उवाच

अहो रघूणां प्रवरस्य राजंस्तव स्वभावात्सुकृतोर्जितस्य ।
धन्यं वपुश्चैव जनुश्च नित्यं पुण्येन कीर्त्या च सुनिर्मलं बभौ ॥ ३४ ॥

देशे देशे निखातास्ते ग्रामे ग्रामे पुरे पुरे ।
यूपा अनेकमखजाः शोभन्ते धरणीपते ॥ ३५ ॥

समाणि नित्यमुपजीवति ते द्विजालिर्दारिद्र्यमस्तमितमत्र धनैस्त्वदीयैः ।
यज्ञेषु ते भृशमजस्रममाद्यदिन्द्रः साकं समस्तविबुधैः परिवारभूतैः ॥ ३६ ॥

अभ्यर्थनां त्वयि विधाय न कोऽपि नैव लोको बभूव भुवने ननु पूर्णकामः ।
वाञ्छाधिकप्रचुरदातरि तावकीने वामेतरे जयति दोषि वृथा सुरद्रुः ॥ ३७ ॥

येषां न लौकिके वस्तुन्यपेक्षा ब्रह्मदर्शिनाम् ।
तेऽपि त्वया मुनिश्रेष्ठा भक्त्यैव परितोषिताः ॥ ३८ ॥

संग्रामे च त्वया तात सहायेन मरुत्वतः ।
यूथशो निहता दैत्याः शरैर्भुजजवेरितैः ॥ ३९ ॥

तवोज्ज्वलेन यशसा विष्वक् त्रैलोक्यशोधिना ।
तिथयः पूर्णिमामय्यः कृतास्तात न संशयः ॥ ४० ॥

जनकस्य पुरस्तात मिथिलायां गते मयि ।
यशस्त्वदीयं भगवद्विश्वामित्रमुखाच्छ्रुतम् ॥ ४१ ॥

नभः पथे विमानस्था गायन्तस्त्वद्यशः सुराः ।
तृणाय हृदि मन्यन्ते सुधास्वादभवं सुखम् ॥ ४२ ॥

यशसश्च प्रतापस्य भवान् निधिरभूद् भुवि ।
इति ते सफलं जन्म कृतं सत्सुकृतं त्वया ॥ ४३ ॥

भगीरथ इवान्यस्त्वं ययातिरिव चापरः ।
धन्योऽसि तात धन्योऽसि किमर्थमनुशोचसि ॥ ४४ ॥

यद्यत्त्वया सुकृतमर्जितमासमुद्रभूमण्डलप्रथितमिन्द्रपुरेऽपि गीतम् ।
तत्तन्न केन च भूपतिपुङ्गवेन कार्यं कृतं क्रियत एव च वा जगत्याम् ॥ ४५ ॥

अपूर्णकामता तात न क्वापि तव दृश्यते ।
भाविन्यर्थे बलवति किमर्थमनुशोचसि ॥ ४६ ॥

आजन्म सत्यशीलस्य तव सूर्यकुलोद्वह ।
सत्यं यथाल्पेनार्थेन नोपहन्येत तत्कुरु ॥ ४७ ॥

अपि तात कियत्कार्यं मयि राज्याभिषेचनम् ।
भवान् यस्यानुरोधेन सत्यमप्यति [1]वर्तते ॥ ४८ ॥

न मे राज्ये स्पृहा राजन् नाहं तुष्यामि भोगतः ।
कानने वा गृहे वापि समानं मम वर्त्तनम् ॥ ४९ ॥

दीयतां भरते राज्यं पाल्यतां सत्यभाषितम् ।
मम राज्येन कैकेयी मा बिभर्त्तु रुषं हृदि ॥ ५० ॥

आहूयतां भरतो मातुलेभ्यः स शास्तुभूमिं नयधर्मनिष्ठः ।
भवान् यथेच्छं श्रयतादात्मयोगं गृहं वनं वापि समानमेव ॥ ५१ ॥

अहं तात त्वद्गिरां सप्रयत्नं सत्यस्यते पालानार्थं क्षणेन ।
शिरोऽपि स्वं वीतशोकस्त्यजेयं किं नाम राज्यं भुव एतदल्पम् ॥ ५२ ॥

यथा पितुः स्वर्गपदान्निपातो भवेन्न सत्यातिक्रमाद जस्रम् ।
तथा कार्यं ननु पुत्रेण लोके विपर्या सश्चेन्न स पुत्रः सुपुत्रः ॥ ५३ ॥

भावी चार्थोऽतिबलवान् राजन्निर्दिष्ट एव ते ।
प्राजापत्येन मुनिना वशिष्ठेन [2]तपस्विना ॥ ५४ ॥

मा शुचस्त्वं हृदा तात भाव्यर्थममुमीदृशम् ।
अवधाय वने गन्तुं मामद्य क्षिप्रमादिश ॥ ५५ ॥

श्रुत्वा मुदितचित्तस्य कौसल्या नन्दनस्य सत् ।
वाक्यं सत्यकथोपेतमुवाच रघुसत्तमः ॥ ५६ ॥

राजोवाच

रामचन्द्राभिरामे त्वन्मुखचन्द्रे दृशौ मम ।
चिराय रूपलावण्यपानासक्ते बभूवतुः ॥ ५७ ॥

तं त्वां विहाय कैकेयीवागुत्थामितपातकः ।
किं न्वहं जगतीदानीं प्राणान् धारयितास्म्यहो ॥ ५८ ॥

त्वद्वियोगानलज्वालामालाकवलितायुषः ।
मम त्वया पुनर्योगः कथं राम भविष्यति ॥ ५९ ॥

त्वयि वेश्माधिवसति सत्यमुच्छिद्यते मम ।
वनं च याति रामेन्दौ प्राणोच्छित्तिर्भविष्यति ॥ ६० ॥

---

१. वर्तयेत्—मथु० । २. मनस्विना—अयो०, मथु० ।

पटेनाप्यन्तरं तात दुःसहं त्वन्मुखस्य मे ।
केवलं जीवितान्ताप वियोगस्तस्य तेऽधुना ॥ ६१ ॥

शून्यं जगदिदं राम शून्याश्च सकला दिशः ।
शून्या भूः सदनं शून्यं प्राणदेन त्वया विना ॥ ६२ ॥

स त्वं विहाय मां राम प्रस्थातास्यधुना वनम् ।
नितान्तं जीवलोके मे तमोलिप्तो भविष्यति ॥ ६३ ॥

शुभं ममेह रामत्वन्मुखचन्द्रावलोकनम् ।
स एव परमानन्दस्तदेव जनुषः फलम् ॥ ६४ ॥

तेनादद्य विधुरः सोऽहं न वत्स्यामि महीतले ।
इति मे विप्रियं कर्त्तुं कैकेय्युद्‌वमद् विपम् ॥ ६५ ॥

उद्वान्तगरलासादद्य नागीवैष्यति निर्वृतिम् ।
न शोचयति वैधव्यममर्षविकलीकृता ॥ ६६ ॥

क्व गच्छेयं किं नु कुर्यामनर्थोऽयमुपस्थितः ।
असह्यस्तव विश्लेषो मरणादपिराघव ॥ ६७ ॥

इत्यधीरहृदं रामः पितरं रघुपुङ्गवम् ।
आत्मतत्त्वोपदेशाय संक्षिप्येदमवोचत ॥ ६८ ॥

श्रीराम उवाच

कातर्यमवलम्ब्यालं चिरं विद्वन्निषेविणा ।
भवता राजशार्दूल ज्ञानैकमवलम्ब्यताम् ॥ ६९ ॥

अथ कः केन सम्बन्धः कः कस्य प्रीतिमञ्चतु ।
स्वाज्ञानरचितं विश्वं हित्वा स्वात्मानमाश्रयः ॥ ७० ॥

यावद्विगुणसम्पर्कस्तावन्नानात्वमात्मनः ।
ततश्चाहंममेत्याख्यापराधीनत्वमप्युत ॥ ७१ ॥

तावदेव भयं पुंसः परस्माद् भेदकल्पितात् ।
तच्छान्त्यै साधनानीह तावदेव वितन्वते ॥ ७२ ॥

अतः स्वात्मैकत्वधिया छिन्धि नानात्मधीतरुम् ।
सततं वीत तं कल्पो निःसङ्गः ससुखं चर ॥ ७३ ॥

यावन्न ज्ञायते तात स्वात्मतत्त्वमखण्डितम् ।
तावदेव भवत्यस्य धीरनेकार्थगोचरा ॥ ७४ ॥

यान्यत्रविषयेतात तर्षा[1] (तृषा) नदद्यम्बुवेगिनी ।
लब्धे स्वात्मसुखे सा तु तत्क्षणादेव शाम्यति ॥ ७५ ॥

१. तृषा—पाठ भी हो सकता है ।

अन्वेष्य ज्ञानालोकेन निधिमात्मगुहागतम् ।
चिरात्प्राप्य गुरुक्त्यैनं मोदते सततं बुधः ॥ ७६ ॥

यावदानन्दसंदोहवारिधिं पूर्णमच्युतम् ।
अनन्तमात्मनमात्त्वं ज्ञात्वा किं न सुखी भवेः ॥ ७७ ॥

वीततर्षश्चिरं तिष्ठ स्वात्मानन्दपयोनिधिः ।
किमर्थं भेदधीर्ग्लानो वृथैवं परितप्यते ॥ ७८ ॥

कृतस्य चापि तपस्य विज्ञातस्य च भूपते ।
एतदेव फलं सारं यत्स्वात्माभिरतिर्भवेत् ॥ ७९ ॥

कृतं च क्रियमाणं च सञ्चितं कर्म तत्क्षणात् ।
छिन्धि ज्ञानासिवेगेन संस्कारेणविशुद्धिभृत् ॥ ८० ॥

ततः प्रारब्ध शेषान्तामविघ्नां जीवितावधि ।
बिभ्रदासादिताशेषपरमार्थश्चिरं जय ॥ ८१ ॥

एकं यथा ज्योतिराग्नेयमुच्चैर्दीपे दीपे वर्तियोगादनेकम् ।
एवं ब्रह्मान्तःकरणोपदिग्धं नानाभावोपगतं दृश्यतेऽद्धा ॥ ८२ ॥

अनेकानि शरीराणि प्राप्यैकः पुरुषः स्वराट् ।
भासयत्यात्मचैतन्यसमुद्भिन्नाखिलेन्द्रियः ॥ ८३ ॥

यस्तं जानाति नृपते शब्दात्स्वानुभवादपि ।
स तीर्त्वा मोहजलधिं निर्भयः किं न जायते ॥ ८४ ॥

असोढो विरहक्लेशो यस्त्वयोक्तः स्वमृत्यवे ।
सोऽप्यज्ञानहृगुद्भूतस्तन्निवृत्तो निवर्त्तते ॥ ८५ ॥

योऽत्यन्तमानन्दसमुद्र एष स्वात्मापरात्मेश्वरभेदहीनः ।
तत्रैव चारोपित एष भाति ससारनामामितमोहवृक्षः ॥ ८६ ॥

इत्थं सामान्यतोराजश्चित्तोपाधिभृतामथ ।
स्वात्मनश्चाखिलद्रष्टुर्निगूढं तत्त्वमीरितम् ॥ ८७ ॥

मयिबध्नन्तिके[1] (ये ?) प्यद्धा सर्वज्ञाः स्नेहमुत्तमम् ।
ते तरन्ति च तेनैव भवसागरमूर्जितम् ॥ ८८ ॥

न त्वहं सर्वभूतानामात्मा प्रियतमः सुहृत् ।
सखा बन्धुर्निरुपधिरस्मि तेषां प्रमोदकृत् ॥ ८९ ॥

लीलारसानन्दनिधिः कल्याणगुणभूषणः ।
शृङ्गारसारसीमा च सर्वदूषणवर्जितः ॥ ९० ॥

आत्मतन्त्रः शरीरादिजडवर्गप्रबोधकः ।
अंशांशेनधृतानेककोटिब्रह्माण्डमण्डलः ॥ ९१ ॥

---

१. यहाँ 'ये' पाठ उचित जान पड़ता है ।

सच्चिदानन्दैक वपुः सर्वभेदविवर्जितः ।
नित्येधाम्नि निजेनित्यं कालमायाद्यगोचरे ॥ ९२ ॥

रममाणः स्थितस्तात पूर्णाभिः स्वात्मशक्तिभिः ।
अशेषभक्तोद्धरणचरित्रनिचयान्वितः ॥ ९३ ॥

य इत्थं मामभिजानाति राजन् पुरातनं पुरुषमद्वितीयम् ।
भक्त्या समर्प्याखिलकर्मधोरणीमपेतकृत्यश्चिरमासीन मत्स्थः ॥ ९४ ॥

न लिप्यते स पापेनं न न पुण्येन कर्मणा ।
भक्त्याखिनं मां विज्ञाय विशल्याशु विविक्तदृक् ॥ ९५ ॥

तत्र भक्तिमये योगे प्रसक्तोमद्वियोगजः ।
न क्लेशाय भवेत्क्लेशस्तापोऽग्नेरिव तापदः ॥ ९६ ॥

भावयानो हृदा लीलाः सम्प्राप्य मदनुग्रहम् ।
कश्चिदेवभवेल्लोके मद्वियोगरसोचितः ॥ ९७ ॥

यावद्धि नार्त्तिरुदयत्यखिलेन्द्रियाणामस्वास्थ्य वेदनविशेषकरी समन्तात् ।
तावन्न वेत्तिदशदिक्षु मदात्मकः सन् मामेकमेव निरुपाधिकृपासमुद्रम् ॥९८॥

इति ते तत्त्वमाख्यातं मत्संयोगवियोगयोः ।
यद्विनिश्चित्य मनसा मन्मयत्वाय कल्पते ॥ ९९ ॥

ब्रह्मोवाच

बहुधा भगवान् रामः समाश्वास्य प्रयत्नतः ।
तस्मिन् क्षणे तु तं चक्रे वीतशोकं वचोऽमृतैः ॥ १०० ॥

अथोदतिष्ठत्स्मितमञ्जुलाननः प्रफुल्लपङ्केरुहचारुलोचनः ।
सौमित्रिणा संगत एष तत्क्षणे विज्ञापितस्तेन विशेषभक्तिना ॥ १०१ ॥

लक्ष्मण उवाच

अधुना किं प्रकर्त्तव्यं तदाज्ञापय मे प्रभो ।
त्वदङ्घ्रिपद्मनिष्ठस्य न मेऽन्या गतिरीक्ष्यताम् ॥ १०२ ॥

श्रीराम उवाच

भ्रातः सत्यगिरं कर्त्तुं राजानं जनकं निजम् ।
वने गन्तास्मि सपदि सन्त्यज्य भवने रतिम् ॥ १०३ ॥

अरण्यचारिणां वृत्तिमास्थितोऽब्दांश्चतुर्दश ।
स्थास्यामि वृक्षमूलेषु कन्दरासु च भूभृताम् ॥ १०४ ॥

जगदुद्वेजनमपि कैकेयीयाचितं वरम् ।
अहं पूरयिता भ्रातः साक्षात्तुल्यप्रियाप्रियः ॥ १०५ ॥

लोके सत्यप्रतिज्ञो मे नान्यथा जनको भवेत् ।
गृहेवने च वसतस्तुल्यमेव हितं मम ॥ १०६ ॥

त्वं च तिष्ठ गृहे भ्रातर्मोदयन् सुहृदः सखीन् ।
भोगांश्च भुञ्जन् विविधान् रममाणो यथोचितम् ॥ १०७ ॥

लक्ष्मण उवाच

नैवं गदितुमर्होऽसि त्वमार्य मयि सेवके ।
यत्र त्वमसि तत्राहं वने वा भवनेऽपि वा ॥ १०८ ॥

आर्य त्वदङ्घ्रिकमलामितमोददायिमाध्वीकपानविलसन्निखिलेन्द्रियस्य ।
को नाम भोगविभवो भुवने च यस्मै त्वां संविहाय भवनेऽभिरतिं करोमि ॥१०९॥

स एव पन्थाः प्रकटः सुपन्थाः स एव गेहश्च सुदर्शनीयः ।
वनं तदेव प्रमुदावहं च यत्र प्रभो त्वन्मुखचन्द्रदर्शनम् ॥११०॥

किं मे गृहेण नगरेण किमाप्तबन्धुजायासुहृत्सखिभिरेभिरशेषलोकैः ।
त्वामेकमन्तरसुखामृतपूरसिन्धुं लब्ध्वाहमार्य जगदेव तृणाय मन्ये ॥१११॥

यस्य प्रसंगात्सुखदानि नित्यं सर्वाणि वस्तूनि मनोरमाणि ।
अमन्दमानन्द भरं प्रपुष्णन् सर्वस्वभूतो मम कोऽपि स त्वम् ॥११२॥

एकं विहाय रघुवंशदिवामणे त्वां सर्वं ममातिविषहं जगदाविभाति ।
प्राप्तोऽस्मि तस्य तव पादसरोजयुग्ममार्यस्य राम रमयापि निषेवितस्य ॥११३॥

निधायांसे चापं कटितटनिबद्धाक्षयमहालसत्तूणीयुग्मः कलितकरवालोद्धुरकरः ।
पुरः पश्चात्पार्श्वे सततमुपनीतात्मवपुषा सदा त्वां सेविष्ये रघुतिलक कान्तरधरणौ ॥११४॥

कायेन मनसा वाचा मम वृत्तिरनेकधा ।
त्वां विहाय कदाप्यार्य नान्यत्र विनिमज्जतु ॥ ११५ ॥

इति कृतनिश्चयं निजपदाम्बुजबद्ध मतिं ।
सपदि स लक्ष्मणं वननिवाससहायतमम् ॥

प्रियतममाससाद निजभक्त मजस्त्ररतं ।
तदनु स तेन सार्द्धंमगमज्जनी सविधम् ॥ ११६ ॥

असकृच्छोचयन्तीं तां वियोगार्तिविवर्द्धनम् ।
प्रवासं रामचन्द्रस्य पुत्रस्य सुमहात्मनः ॥ ११७ ॥

अकस्मान्मग्नमनसं महासंतापसागरे ।
कैकेय्या अयशोध्यान्तैर्मलीमसतमे भवे ॥ ११८ ॥

ईषदप्यात्मनो दृष्टौ प्रकाशमणुमात्रकम् ।
अपश्यन्तीं कुहूरात्रौ चक्रवाकीमिवाकुलाम् ॥ ११९ ॥

पुनः पुनर्मन्थरायाः खलत्वात् ग्लायमानां कैकयेन्द्रस्य पुत्रीम् ।
आवर्त्तयन्तीं मनसा जगद्धिते श्रीरामचन्द्रे प्रतिकूलमानसाम् ॥१२०॥

यथा वने विप्रवासः सुतस्य निवर्त्तते तां युक्तिमुत्थापयन्तीम् ।
सत्यव्रतं तदनुविमृश्य रामं मुहुर्महाशोकभरं वहन्तीम् ॥१२१॥

आसन्नवैधव्यविरुद्धवृत्तिभिः स्फुटाङ्गरागाम्बर भूषणादिभिः ।
न रोचमानामपि सर्वदेवतामयीं विशुद्धोर्जितसत्त्वविग्रहाम् ॥१२२॥

धर्मसम्बद्धधिषणां यशःसौरभसम्भृताम् ।
कौसल्यामात्मजननीं व्यचष्टार्यः ससम्भ्रमाम् ॥ १२३ ॥

दूरादेवानमद् रामः करद्वयकृताञ्जलिः ।
सा दीर्घायुर्भवेत्येनमाशिषा समवर्द्धयत् ॥ १२४ ॥

अथ श्रीरामजननीं सुमित्रासुत आदृतः ।
प्रणनाम स्वभावोदयत्करुणामृततोषिणीम् ॥ १२५ ॥

तमभीष्टं लभस्वेति संतोष्य परमाशिषा ।
उभावपश्यत्कौसल्या प्रीतिकातरया दृशा ॥ १२६ ॥

वनप्रवासोन्मुखचित्तमम्बा श्रीरामचन्द्रं विषहार्तिवत्या ।
दृषाधयन्ती पृथुलाश्रुविन्दुभिश्चकारविघ्नाकुलितेस्वपक्ष्मणी ॥ १२७ ॥

अथ तत्र सुमित्रापि सङ्गताभवदाकुला ।
रामस्य वनवासेन विस्मृताखिलवस्तुधीः ॥ १२८ ॥

नत्वा परमया भक्त्या सुमित्रां रामलक्ष्मणौ ।
तयोर्जनन्योः पुरतो निषण्णौ तौ यथोचितम् ॥ १२९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे
वनगमनोद्यमनेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

विषण्णां मातरं वीक्ष्य कौसल्यां सर्वदेवताम् ।
प्रबोधयञ्छुभैर्वाक्यैरुवाच रघुपुङ्गवः ॥ १ ॥

श्रीराम उवाच

कर्त्तुं सत्यगिरं तातमाजन्मवरधार्मिकम् ।
गन्ताहं काननं मातर्मा विषीदस्व चेतसा ॥ २ ॥
बाल्यादारभ्य भवती यन्मां रक्षितवत्फलम् ।
सा प्रीतिस्त्वां विना मातश्चेतो बाधिष्य ते मम ॥ ३ ॥

अवशः किमयं कुर्याद् दैवमेवाश्रयेत्तराम् ।
भाविनां हि यतोऽर्थानां प्रतीकारो न विद्यते ॥ ४ ॥
अब्दांश्चतुर्दशमितानुषित्वा वनगोचरः ।
पुनर्द्रष्टास्मि ते मातश्चरणौ मङ्गलप्रदौ ॥ ५ ॥

तवैव कृपया मातर्वनेऽपि वसतो मम ।
दुःखानि नैव हृदयं बाधिष्यन्ते महान्त्यपि ॥ ६ ॥
सुदृष्ट्या तव कल्याणदायिन्या जननि ध्रुवम् ।
कृच्छ्राण्यतितरिष्यामि पोतारूढो नदीमिव ॥ ७ ॥

अवश्यम्भाविनार्थेन मा खिद्यस्व हृदासति ।
सत्त्वमेवाश्रयेत्प्राज्ञस्तत्र शोकतमोनुदम् ॥ ८ ॥
नित्यं मोहाकृतैर्जीवैरात्मा स्वाराज्यभाजनम् ।
कदर्थीकृत्य स्वानन्दात्पातितः कर्मणां वशे ॥ ९ ॥

यथा कारयते दैवं तथा कुर्वञ्छुभाशुभम् ।
लिप्यते स पुनस्तेन नीहारेणेव भास्करः ॥ १० ॥
दृष्ट्वा मोहाभिभूतानि भूतान्युच्चावचान्यपि ।
प्राज्ञः स्वयं विरज्येत संसृतेर्घोरकर्मणः ॥ ११ ॥

कैकेयराजतनयानासूयितुमथोचिता ।
अन्यो हि प्रेरकस्तस्या अन्तरस्थो भवस्य यः ॥ १२ ॥
सा त्वं शोकं परित्यज्य भाव्यर्थं सुबृहत्तमम् ।
अजस्रमाशिषाना मां वर्त्तेथा दैवमाश्रिता ॥ १३ ॥

भरतो मे प्रियो भ्राता लप्स्यते राज्यमुत्तमम् ।
पिता मे सत्यवचनात्स्वर्गी नित्यं भविष्यति ॥ १४ ॥

कैकेयी त्वत्समामातर्ममभातृपदेस्थिता ।
सुखं प्राप्स्यति तेनैव सुतराज्यसुखार्थिनी ॥ १५ ॥

देवानां च महत्कार्यं वनेऽपि वसता मया ।
असुरानीकहननं रक्षा च जगतः स्फुटम् ॥ १६ ॥

अनेकाश्रमवास्तूनां महर्षीणां तपस्विनाम् ।
दर्शनं स्पर्शनं प्रश्नः पूजा नित्यं च सङ्गतिः ॥ १७ ॥

आशो वनफलानां च शयनं पल्लवेषु च ।
पुण्यतीर्थावगाहश्च वसतिर्मुनिवेश्मसु ॥ १८ ॥

दर्शनं पुण्यतीर्थानां वनानां फलपुष्पिणाम् ।
किमऽतोपि परं मातर्ममभूयस्तमं हितम् ॥ १९ ॥

भ्राता मे नीतिनिपुणो भरतो भक्तिसत्तमः ।
पोषको ज्ञातिबन्धूनां प्रजानां हितसाधकः ॥ २० ॥

तस्य चेद् राज्यलाभःस्यान्ममैव हितमुत्तमम् ।
कैकेय्यां त्वयि चात्यन्तं मम भेदो न कर्हिचित् ॥ २१ ॥

साचित्सुखवती लोके हितं मे किमतः परम् ।
तेषु घोरेष्वरण्येषु गिरीणां गह्वरेषु च ॥ २२ ॥

तिष्ठन्तो घोरकर्माणः प्रजावित्रासकारकाः ।
हन्येयुरसुरा नूनं वनेषु चरता मया ॥ २३ ॥

देवानां तन्महत्कार्यं हितं मे किमतः परम् ।
अधिज्यं धनुरादाय प्रतिग्रामपुराटवि ॥ २४ ॥

मया पर्यटता नित्यं रक्षितं स्यादिदं जगत् ।
अवाप्नुयुर्जनाः सौख्यं हितं मे किमतः परम् ॥ २५ ॥

महर्षयस्तीर्थपादास्तपसा धूनकल्मषाः ।
पुण्यतीर्थाश्रमजुषो द्रष्टव्याः प्रतिवासरम् ॥ २६ ॥

पूजनीयाः संविधाभिर्वन्याभिः मत्फलादिभिः ।
पृष्टव्यान् भूरि संदिग्धानर्थान् वैदिकलौकिकान् ॥ २७ ॥

निर्वृतिस्तैः सहालापाद्धितं मे किमतः परम् ।
स्नानं पुण्येषु तीर्थेषु तत्रत्यैः पुण्यमूर्तिभिः ॥ २८ ॥

दर्शनस्पर्शनालापैः संगतिः स्यादनुक्षणम् ।
तैरेव सह संवासो हितं मे किमतः परम् ॥ २९ ॥

वन्यैर्यथोपलब्धैश्च पत्रपुष्पफलादिभिः ।
मृगाणां चैव मेध्यानां लब्धैः क्षत्रियधर्मतः ॥ ३० ॥

पललैर्देवताशेषैः षष्ठे काले सु तर्पणम् ।
तपस्विभिर्द्विजैः साकं हितं मे किमतः परम् ॥ ३१ ॥

अनुजानीहि मां मातर्गमनाय वनं प्रति ।
नातः परं क्षणमपि संस्थितिर्नगरे मम ॥ ३२ ॥

पिता मे सत्यवाग् भूयात्तन्मे कार्यं सुनिश्चितम् ।
इति रामवचः श्रुत्वा कौसल्या साश्रुरब्रवीत् ॥ ३३ ॥

कौसल्योवाच

दीर्यते हृदयं वत्स मनो मे परिदह्यते ।
मुखं शुष्यति तापेन बुद्धिर्भ्रश्यति तत्क्षणात् ॥ ३४ ॥

गलन्तीव ममाङ्गानि शोकश्च परिवर्द्धते ।
स्तम्भितुं नयनाश्रूणि न शक्नोमि सुदुःखिता ॥ ३५ ॥

ईदृशं परमं दुःखं नानुभूतिपथं गतम् ।
विधात्रा जीविता किं नु कथं नैवमृतापुरा ॥ ३६ ॥

त्वं वत्स सर्वसौख्यानां दायकः सर्वरक्षकः ।
ज्ञातिबन्धुसुहृत्प्राणजीवातुतम ईदृशः ॥ ३७ ॥

उदयं प्राप्नुवंल्लोके न सेहेऽद्य कथं तया ।
अपि नाम यदर्थे सा प्रतिकूलकरी तव ॥ ३८ ॥

सोऽपि वै भरतः श्रीमांस्त्वयि भक्त्या सदा नतः ।
अस्याः क्रूरचरित्रेण कथं संतोषमेष्यति ॥ ३९ ॥

त्वयि सर्वहिते वत्स मदमत्सरवर्जिते ।
विशुद्धहृदयेऽत्यन्तं सर्वकल्याणकारिणि ॥ ४० ॥

सर्वानुरञ्जके नित्यं जगज्जीवातुवर्ष्मणि ।
नित्यं मन्निर्विशेषेण चेतसा परिपश्यति ॥ ४१ ॥

लोके सर्वजनःप्रेमभाजने मङ्गलात्मनि ।
प्रातिकूल्येन वर्तन्तीं धिक् तां कैकेयपुत्रिकाम् ॥ ४२ ॥

धिक् तस्याः कुत्सितां बुद्धिं क्रूरां कीर्तिविरोधिनीम् ।
जगतः प्राणरूपं त्वां सहते या न दुर्भगा ॥ ४३ ॥

मन्दधीर्मन्दभाग्या च मन्थरावाक्यकारिणी ।
लोकमाङ्गल्यकालेऽपि भूरिदुःखविवर्द्धिनी ॥ ४४ ॥

सर्वलोकजनीनोऽपि कलङ्कभरवर्द्धकः ।
नापवादोऽपि वै तस्या बाधकोऽभवदद्भुतम् ॥ ४५ ॥

किं मां वक्ष्यन्ति मनुजा अस्थाने शोकवर्द्धिनीम् ।
स्वार्थं विनिहताशेषपरमार्थां सुदुर्धियम् ॥ ४६ ॥

प्रस्तोष्यन्ति कथं वा मां पुण्यशीला दयालवः ।
साश्रवः शुद्धहृदयाः कथयिष्यन्ति किं नु माम् ॥ ४७ ॥

इत्थं भूरिविचारेण लज्जया च विवर्जिता ।
सा जीवति जगद्दुःखहेतुभूता खलाशया ॥ ४८ ॥

धिक्[1] तस्या जीवनं लोके यात्यन्तं बहुदुःखकृत् ।
तां जुगुप्सितकर्माणमनुबध्नाति किं नृपः ॥ ४९ ॥

नेदृश्या वचनं राज्ञाप्यङ्गीकर्त्तुमिहोचितम् ।
जाने तस्यापि जरया बुद्धिर्नाशमुपागमत् ॥ ५० ॥

अनुज्ञां याचसे वत्स वनवासाय मां कथम् ।
कथं मया मुखाद्वाच्यं वनं गच्छेति दुर्वचः ॥ ५१ ॥

त्वां विना चेह वर्त्तन्त्याः किं मे जीवितमीदृशम् ।
धन्यास्त एव भुवने भाग्यवन्तः सुकर्मभिः ॥ ५२ ॥

अदृष्ट्वैव हि ये दुःखं पूर्वमेव मृतिं गताः ।
तेषां लोकजनैर्दुःखं दृष्ट्वा न क्रियते घृणा ॥ ५३ ॥

त्वद्वक्त्रचन्द्रपरिदर्शनलालसाहं दूये पटान्तरगतापि वितान्यदक्षा ।
सा लोकमङ्गल चतुर्दशसंख्यवर्षान् यावत्त्वया विधुरिता किमु शर्म वक्ष्ये ॥ ५४ ॥

कैकेयिकारसनया किल कालसर्प दुर्दान्तयाऽवमि विषं वचनच्छलेन ।
या शेषलोकजनमानसमोहमूर्च्छाहेतुत्वमेत्य नितरां भयदाऽविरासीत् ॥५५॥

भवतोर्दीप्तमहसोःकृतविश्वप्रकाशयोः ।
नृदेवपद्मकुमुदसमुल्लासविधायिनोः ॥ ५६ ॥

शस्त्रास्त्रदीधितिगणैर्दैत्यध्वान्तविनाशिनोः ।
तामसानीकद्विषतोः सूर्याचन्द्रमसोरिव ॥ ५७ ॥

वनवासाददृश्यत्वं गतयोरस्ततो यथा ।
कैकेय्या प्रावृषा नूनं जललोचनवारिदैः ॥ ५८ ॥

वर्षन्त्या वाष्पसंदोहधारासारैरखण्डितैः ।
द्रागेवैतत्त्रिभुवनं सान्धकारं भविष्यति ॥ ५९ ॥

कुहूरात्रिसमा ह्येषा भवन्तौ रामलक्ष्मणौ ।
सूर्याचन्द्रमसौ नित्यं सर्वविश्वप्रकाशकौ ॥ ६० ॥

अदर्शयन्ती कैकेयी जगच्छोभां हरिष्यति ।
जगदुद्वेगदा नित्यमकीर्तिध्वान्तमेचका ॥ ६१ ॥

---

१. धिक्कृतं जीवनम्—अयो० । धिक् तज्जीवनम्-मसु०-इस पाठ में छन्दोभंग है ।

यदर्थं मानवा लोके म्रियन्ते रणमूर्द्धनि ।
तां कीर्तिमिह कैकेयी लोपयामास किं स्वयम् ।। ६२ ।।

इत्युक्त्वा भूरिनिःश्वस्य कौसल्या विश्वमङ्गलौ ।
निभालयन्ती चक्षुर्भ्यां प्रवत्स्यन्तौ क्षणेन तौ ।। ६३ ।।

रुरोद करुणं देवी निमग्ना दुःखसागरे ।
कैकेयीक्रूरचारित्रजाततशोकनिमीलिता ।। ६४ ।।

तस्या आर्त्तस्वरं श्रुत्वा वैदेही विश्वमङ्गला ।
सीता चैवोर्मिलोद्विग्ना तयाजग्मतुरुत्त्वरे ।। ६५ ।।

अथ रामो लक्ष्मणश्च जनन्यौः शोकमीलिते ।
आश्वासयामासतुर्वै वचोभिरमृतोपमैः ।। ६६ ।।

रामलक्ष्मणावूचतुः

अलं जनन्यौ शोकेन किं दैवं कस्यचिद्वशे ।
यथा नियुज्यते जन्तुः करोत्येष तथावशः ।। ६७ ।।

जीवन् पश्यति भद्राणि भूरीणि भुवने जनः ।
मृतस्यास्य पुनर्नैव भविष्यति समागमः ।। ६८ ।।

मरणं जीवनं चैव वियोगो योग एव वा ।
सुखं दुःखं लाभहानीजयां वापि पराजयः ।। ६९ ।।

सर्वं दैवेन नियतं लभते मानुषोऽवशः ।
किं तत्र शोकमोहाभ्यामात्मा केवलमात्मना ।। ७० ।।

व्याकुलीक्रियते मूढैः शोचन्नर्थेदुरत्यये ।
ये तु ज्ञानामृतरसै रुक्षन्त्यात्मानमात्मना ।। ७१ ।।

तेषां न वाधकौ मातः शोकमोहौ भविष्यतः ।
अथो चतुर्दशैवाब्दान् प्रवासोनौ भविष्यति ।। ७२ ।।

ततः परं तु जननि तीर्त्वा पदमनुत्तमम् ।
कृत्वा सत्यगिरा तातं स्वर्गिणं निरुपद्रवम् ।। ७३ ।।

पुनरप्यागमिष्यावो (आगमिष्यामः ?) नगरीं भूरिमङ्गलाम् ।
भवतीं सुखयिष्यावो हृतशत्रुबलौवलात् ।। ७४ ।।

पितृपैतामहं राज्यं करिष्यामो[१] वयं ध्रुवम् ।
मा शुचः क्षणवन्मातर्गमिष्यन्ति दिनानि ते ।। ७५ ।।

इति विज्ञाय नात्यन्तं शोके मज्जय मानसम् ।
इत्थमाश्वास्य जननीं तौ वीरौ धैर्यसागरौ ।। ७६ ।।

क्षौमाम्बरे समुत्तार्य बध्नतुर्वल्कलाम्बरे ।
वनवासोचितं वेशं कल्पयामासतुः क्षणात् ।। ७७ ।।

---

१. करिष्यावः—अयो०, मथु० ।

सीतोर्मिला च तौ दृष्ट्वा प्रवत्स्यन्तौ वनं प्रति ।
स्वयमप्यन्वमज्जेनां वनयानोचितां क्रियाम् ॥ ७८ ॥

अथ रामः प्रियां दृष्ट्वा मन्वरं वाक्यमब्रवीत् ।
त्वं गृहे तिष्ठनैवासि वनवासोचिता प्रिये ॥ ७९ ॥

साक्षाद्विदेहराजस्य तनया सुखभाजनम् ।
शिरीषसुकुमाराङ्गी पद्भ्यां पद्मदलोपमा ॥ ८० ॥

क्व सा महत्यरण्यानी दर्भगर्भक्षमातता ।
क्व ते वपुः सौकुमार्यं तस्मात्त्वं तिष्ठवेश्मनि ॥ ८१ ॥

त्वं भीरुः पद्मपत्राक्षि स्वभावादेव भामिनि ।
क्व तद्वनं भयकरं सिंहव्याघ्रादिभिर्वृतम् ॥ ८२ ॥

श्वश्रूं परिचरन्तीह तस्मात्त्वं तिष्ठ वेश्मनि ।
किं नो वक्ष्यन्ति राजानो येषामन्तःपुरे स्थिताः ॥ ८३ ॥

दाराः सौख्यानि दधते पश्यन्ति न दिवाकरम् ।
वयं तु पुरुषा भीरु सर्वं कर्तुं क्षमा भुवि ॥ ८४ ॥

स्वभावादेव कठिनाः किमस्माननुवर्त्तसे ।
स्त्रीधर्माननुवर्त्तन्ती तस्मात्त्वं तिष्ठ वेश्मनि ॥ ८५ ॥

कुर्वन्तो मृगयावृत्तिं क्षत्रिया वनगोचराः ।
स्वैरं भ्रमन्ति वैदेहि न स्त्रियोऽनुव्रजन्ति तान् ॥ ८६ ॥

स्त्रीष्वेव नियतं वासः स्त्रीणामिति मतिर्मम ।
कुटुम्बमनुवर्त्तन्ती तस्मात्त्वं तिष्ठ वेश्मनि ॥ ८७ ॥

क्व तद्व्रतं सुविषमं मुनीनां वनवासिनाम् ।
कन्दमूलफलाहारं क्व च तेनापि वर्जितम् ॥ ८८ ॥

क्व च त्वं पद्मपत्राक्षि शिरीषमृदुविग्रहा ।
राजहंसगतिस्तन्वी तस्मात्त्वं तिष्ठ वेश्मनि ॥ ८९ ॥

मृगान् समनुधावन्तं बद्धतूणं धनुर्धरम् ।
ग्रीष्मातपे पर्यटन्तं श्राम्यन्तं शरकर्मणा ॥ ९० ॥

कठिनं बद्धनिस्त्रिंशं कथं मामनुवर्त्स्यसि ।
शिरीषादपि मृद्वङ्गी तस्मात्त्वं तिष्ठ वेश्मनि ॥ ९१ ॥

वचःकरी सदा पत्युर्बन्धुचित्तानुरञ्जिनी ।
श्वश्रूं परिचरन्ती या सा वधूः कुलदीपिनी ॥ ९२ ॥

आत्मानं स्त्रियमाज्ञाय तस्मात्त्वं तिष्ठ वेश्मनि ।
इत्युक्ता प्राणनाथेन रामेण जनकात्मजा ॥ ९३ ॥

अन्तर्विषादमलिनाननचन्द्रकान्तिर्निःश्वासधूममलिनीकृतनस्यभूषा ।
अत्याकुला भृशमसह्यवियोगतापसम्भावनाकृशतनुर्निजगाद सीता ॥ ९४ ॥

सीतोवाच

पत्यौ वने विप्रवसत्यङ्गीकृतमुनिव्रते ।
स्वयं तिष्ठन्ति भवने ता अन्या एव योषितः ॥ ९५ ॥

पत्यौ वल्कलचीरादिवनवासोचितव्रते ।
स्वयं बिभ्रति चीराणि ता अन्या एव योषितः ॥ ९६ ॥

पत्यौ वनं पर्यटति दर्भगर्भावनिस्थलम् ।
स्वयं वसन्ति सौधेषु ता अन्या एव योषितः ॥ ९७ ॥

पत्यौ शिलामधिष्ठाय वीतनिद्रे विवर्तनैः ।
उज्जागरपरे दृग्भ्यामनिवाह्य यति क्षपाः ॥ ९८ ॥

स्वयं तल्पानधिष्ठाय पद्मपत्रसुकोमलान् ।
स्वपन्ति निद्रया स्वस्थास्ता अन्या एव योषितः ॥ ९९ ॥

पत्यौ मार्गाटनश्रान्ते ताम्यति ग्रीष्मभानुना ।
छायामध्यास्य तिष्ठन्ति ता अन्या एव योषितः ॥ १०० ॥

पत्यौ भृशं परिक्लिष्टे मृद्यमाने महापदा ।
स्वयं च भुञ्जते भोगान् ता अन्या एव योषितः ॥ १०१ ॥

पत्यौ वनेषु दुर्जीवक्रूरशब्दान् विश्रृण्वति ।
स्वयं वीणाध्वनिरतास्ता अन्या एव योषितः ॥ १०२ ॥

अहं वैदेहराजस्य तनया युक्तचेतसः ।
समानसुखदुःखस्य तुल्यनिन्दास्तुतेर्मुनेः ॥ १०३ ॥

ममापि तादृशी वृत्तिः पत्युरेवानुरोधतः ।
भोगं दधामि नियतं न तु स्वार्थाय कर्हिचित् ॥ १०४ ॥

किं मे गृहेण किं सौख्यः किं धनेन च बन्धुभिः ।
यस्मै प्रियं तत्सकलं सद् व्रजति काननम् ॥ १०५ ॥

किं मयात्रामिवस्तव्यं भीषणेन विरोधिना ।
सर्वथैवाभिगन्तव्यं सार्थ एव न संशयः ॥ १०६ ॥

लौकिकैर्वैदिकैश्चापि विधिभिर्यत्करेकृता ।
तस्य सार्थे वनं यान्त्याः शोभा मे किमतः परम् ॥ १०७ ॥

द्रक्ष्यामि भूरितपसस्त्यक्तलोकसुखादरात् ।
मुनीनां योगिनां दारान् पर्यटन्ती शुभाश्रमान् ॥ १०८ ॥

द्रक्ष्यामि पुण्यतीर्थानि स्नान्ती पुण्यतमाः स्थलीः ।
प्राणप्रियेण संयुक्ता सुखं मे किमतः परम् ॥ १०९ ॥

तेषु तेषु मनोज्ञेषु स्थानेषु पतिसंगता ।
स्थास्यामि रक्ष्यमाणा च देवरेण मनीषिणा ।। ११० ।।

पर्णशालाः शुभास्नास्तास्तरुपल्लवनिर्मिताः ।
काननेष्वधितिष्ठन्ती न स्मरिष्यामि मन्दिरम् ।। १११ ।।

इति निश्चित्य मनसा वनं गन्तुं समुत्सहे ।
अतो मे प्रियकृत्कश्चिन्न निरोधं करोत्वतः ।। ११२ ।।

इत्युक्त्वा निश्चितं तूष्णीं वर्त्तमानां विदेहजाम् ।
उर्मिलानुजगादोच्चैः पतिमीषद्विलोक्य तम् ।। ११३ ।।

उर्मिलोवाच

सत्यं वदसि मज्ज्येष्ठभगिनि त्वं सदेदृशी ।
पातिव्रत्यं तवातुल्यं विदितं धरणीतले ।। ११४ ।।

पत्युः सुखं तथा दुःखं या नित्यमनुवर्त्तते ।
सैव सत्कुलजा योषित्पूज्यते दैवतैरपि ।। ११५ ।।

यथा त्वया मतं साध्वि ममापि मतमीदृशम् ।
आवां सहैव वत्स्यावो वनेषु पति सार्थगे ।। ११६ ।।

तत्रैव नियतो भोगस्तत्रैव च सुखं महत् ।
तत्रैव सुहृदः सर्वे गृहं तत्रैव आविनि ।। ११७ ।।

तत्रैव भूतयः सर्वास्तत्रैवाप्ताश्च बन्धवः ।
तत्रैव दास्यो दासाश्च सख्यश्चाज्ञावशस्थिताः ।। ११८ ।।

यत्रैव प्राणनाथेन सङ्गः स्यात्सकलेष्टदः ।
विना च तेन भगिनि शून्यमेवाखिलं जगत् ।। ११९ ।।

अतः प्रकाशरहिते सर्वमङ्गलवर्जिते ।
गृहे न स्थेयमावाभ्यां स्वयं वदति चेद् विधिः ।। १२० ।।

इत्युक्त्वानुगता सीतामुर्मिलाप्यन्वसज्जत ।
तां लक्ष्मणो महावीर आत्मनो धर्मचारिणीम् ।। १२१ ।।

भ्रूसंज्ञयैव सहसा पर्यषेधन्महाव्रतः ।
सा पत्या प्रतिषिद्धान्तरतप्यत भृशं सती ।। १२२ ।।

ततस्तां दुःखितात्मानं दीनां प्रियवचःकरीम् ।
उवाच सान्त्वनगिरा सीता शीतांशुहासिनी ।। १२३ ।।

सीतोवाच

यथाऽऽज्ञापयते साध्वि पतिस्ते विदितव्रतः ।
तदेव कर्तुं योग्यासि स्त्रियो हि पतिदेवताः ।। १२४ ।।

मया त्ववश्यं गन्तव्य पत्या साकं वनं प्रति।
राज्याभिषेके विघ्नोऽस्य मया साकमभूद्यतः ॥ १२५ ॥

अहमेवाभविष्यं च महिषी राज्यसम्पदि।
अहमेव भविष्यामि वनेऽपि सहचारिणी ॥ १२६ ॥

पत्या सहस्त्री नियतं भाजनं सुखदुःखयोः।
मा विषीदोर्मिले नित्यं श्वश्रूं परिचरिष्यसि ॥ १२७ ॥

माण्डव्या श्रुतिकीर्त्या च सार्धं धर्मपरायणा।
गुरुदेवार्चनरता कालं कञ्चिन्नयिष्यसि ॥ १२८ ॥

इत्युक्त्वासाभवत्तूष्णी पातिव्रत्यपरायणा।
गन्तुं कृतमतिः सीता प्रियस्य निहितेक्षणा ॥ १२९ ॥

ब्रह्मोवाच

अथ मातरमानम्य पादयोः रामलक्ष्मणौ।
सुमित्रां भृशमापृच्छ्य भक्तियुक्तौ प्रणेमतुः ॥ १३० ॥

तयोरनु ततः सीताश्वश्र्वाः पादप्रणामिनी।
उवाच वचनं सौम्या निमिवंशाब्धिचन्द्रिका ॥ १३१ ॥

अनुजानीहि मां श्वश्रूः पत्या निर्विशतीं वनम्।
शुभवत्या त्वया स्थेयं न नश्चिन्ताविधीयताम् ॥ १३२ ॥

कष्टं ते समनुप्राप्तं सुखकालेऽपि भाविनि।
यत्ते प्रियसुहृत्पुत्रो वियोगं समुपैष्यति ॥ १३३ ॥

कैकेय्या दुश्चरित्रेण सर्वं व्याकुलितं जगत्।
नागीव रसना चास्या उद्ववाम वचोविषम् ॥ १३४ ॥

तत्किं नु कं प्रति जनं प्रतिवाच्यमद्धा दैवं हि साधुफलति ध्रुवमप्यसाधु।
नो चेदिमौ दशरथस्य सुतौ प्रियौ च प्रेष्ठौ कथं नु वनवासविधिं लभेताम् ॥१३५॥

संततं नाम्ब कुर्वीथाश्चिन्ता जर्जरितं मनः।
चिन्ता हि ग्रसते प्राणान् जीवन्ती ईक्ष्यसे सुखम् ॥ १३६ ॥

गत[1] राजेन्द्रपुत्री सा घोरं वनमिति स्मृतिम्।
विधाय मनसः खेदं न कुर्यास्त्वं त्रिराय च[1] ॥ १३७ ॥

रामभक्तं च भरतं नान्यथा द्रष्टुमर्हसि।
स वै वीरो महाबाहुर्विनयी प्रश्रयानतः ॥ १३८ ॥

दयावान् सत्यसन्धश्च महोदारो महाधनः।
नासौ दुष्यति धर्मात्मा कैकेय्याः क्रूरकर्मणा ॥ १३९ ॥

---

१. १. नास्ति—बड़ो०।

इत्युक्त्वा वाष्पपूर्णाक्षीरवश्र्वा अङ्घ्री पुनः पुनः।
वाष्पैः प्रक्षालयाञ्चक्रे तस्याः स्नेहेन मोहिता ॥ १४० ॥

पुनरूचे समुत्थाय श्रीमती जनकात्मजा।
मोहेन वा प्रमादेन वालया त्वाविनीतया ॥ १४१ ॥

अपराद्धं मया किंचित् कदाचिद् यदि भाविनि।
तत्क्षन्तुमर्हसि हृदा त्वं सदा करुणावती ॥ १४२ ॥

वनेऽपि निवसन्त्या मे कृपया तव सुव्रते।
भविष्यति सुखं नित्यं सुभगाभ्यां निरन्तरम् ॥ १४३ ॥

आभ्यां संरक्ष्यमाणायाः किं मे कष्टं वने भवेत्।
गृहं शून्यतमं भाति विनाऽऽभ्यां भूरिकण्टकम् ॥ १४४ ॥

कैकेयी कुरुतां राज्यं तत्सुतो भरतोऽपि वा।
वयं वने निवत्स्यामो नाभ्यसूयात्र चेतसः ॥ १४५ ॥

इत्युक्ता सीतया देव्या प्रवत्स्यन्त्या वनं प्रति।
शोकसागरनिर्मग्ना कौसल्या पुनरब्रवीत् ॥ १४६ ॥

हा हतास्मि चिरं सीते कैकेय्या वचसा भृशम्।
या मां वियोजयामास पुत्रेण स्नुपयापि च ॥ १४७ ॥

रामः सर्वगुणारामः सर्वशास्त्रार्थवित्तमः।
सर्वलोकानुरागैकभाजनं यशसां निधिः ॥ १४८ ॥

अनसूयापरो नित्यं धर्मात्मा सर्वसम्मतः।
प्राणाधिकश्च सर्वेषां कैकेय्या नैव सह्यते ॥ १४९ ॥

अपराद्धं किं नु तस्यास्तादृक् पिशुनकर्मणः।
रामेण मम पुत्रेण निर्विशेषधियाचमत् ॥ १५० ॥

सर्वलोकानुरक्तेन सर्वप्राणप्रियेण च।
न यद्यपि विशेषोऽस्य वने वा गृह एव वा ॥ १५१ ॥

अहं तु दीर्घशोकार्ता मरिष्ये तद्दृशं विना।
वियुक्ता निजवत्सेन गौरिव क्लेशपीडिता ॥ १५२ ॥

नूनं कैकेयि ते नष्टः परलोकः कुकर्मणा।
इह चाकीर्तिसंदोहमलिना त्वं वभूव ह ॥ १५३ ॥

रघूणां त्वं कुलवधूर्जननी भरतस्य च।
कैकेयि कथमेवासि प्राप्ता दुर्बुद्धिमीदृशीम् ॥ १५४ ॥

भवत्यापकृता नूनमहमेव न केवलम्।
सर्वेषामेव लोकानां त्वया ननु हृतं सुखम् ॥ १५५ ॥

विलपन्त्य स क्रन् पौराः सस्त्रीपुत्रकुटुम्बकाः ।
येषां प्राणप्रियो रामस्त्वया सम्प्रेषितो वनम् ॥ १५६ ॥

सौजन्यं रामचन्द्रस्य गायन्ति भुवनत्रये ।
तत्रैवाकीर्तिसंदोहं तव कैकेयि निर्भरम् ॥ १५७ ॥

विनापराधं कैकेयि दण्डयन्त्याः सुदारुणम् ।
विना वैरं च सुजनं जिघांसन्त्या भृशं तव ॥ १५८ ॥

स्वभाव एव दुष्टोऽयं दुश्चरित्रोपबृंहितः ।
मातुः स्तनं प्रपिबतो वत्सानाच्छिद्य रुन्धसि ॥ १५९ ॥

स्वैरं तृणं भक्षयन्तीं गां च भूयोऽनुकर्षसि ।
दौर्जन्यमेकतश्चास्तां त्वया पापं न गण्यते ॥ १६० ॥

इत्याद्यनेकमाक्रोश्य कौसल्या दीनमानसा ।
अरोदीत्करुणं भूयो वीक्षमाणा सुताननम् ॥ १६१ ॥

तामाह राम आश्वास्य लक्ष्मणश्च महामनाः ।
मा रोदीः करुणं मातर्मा च भर्त्सय केकयीम् ॥ १६२ ॥

मा च शोकातुरं चित्तं कुरुष्वार्थेन भाविना ।
दैवमेवाश्रयतरां धीरा भव महाशये ॥ १६३ ॥

इत्यावेद्य विनिर्यातो राजाज्ञामनुयाचितुम् ।
रामो लक्ष्मणमाहेदं भृशं मुदितमानसः ॥ १६४ ॥

श्रीराम उवाच

अनुजानीहि मां तात गच्छामि मुदितो वनम् ।
भवान् सत्यवचा भूपः कैकेयी सुखमृच्छतु ॥ १६५ ॥

गृहं वनं च मे तुल्यमप्रमादेन वास्तवे ।
त्रिवर्गपालने तुल्ये प्रीये धर्मेण केवलम् ॥ १६६ ॥

नीतिरेव मनस्तुष्ट्यै न राज्यवहनाद्धुरः ।
स्वभावसिद्धमेतन्मे न यशांसि न वा गुणाः ॥ १६७ ॥

मा विषीद त तश्चित्ते भरते राज्यमर्पय ।
नीतिमान् स हि धर्मज्ञः प्रजापालनयत्नवान् ॥ १६८ ॥

निर्दोषगुणसंदोहसंश्रयः शास्त्रवित्तमः ।
प्रजानां रञ्जनश्चैव सर्वेषां दुःखनाशकः ॥ १६९ ॥

ममापि प्रेमविषयः प्राणादप्यधिकश्च मे ।
न स्वात्मभोगाय गृही धर्मायैव च संयतः ॥ १७० ॥

स पालयिष्यति भुवं प्रकृतिं रञ्जयिष्यति ।
'पालयिष्यति वै राज्यं धर्मायैव न मुक्तये'[1] ।
इत्यालप्य स्थिते रामे भक्तिसंनतकंधरे ।। १७१ ।।
उवाच राजा दीनात्मा रामविश्लेषकातरः ।
प्रभूतप्रेमसंजातकण्ठगद्गदिताक्षरः ।। १७२ ।।

राजोवाच

धिङ्मां दुर्दैवनिहतं संरूढदुरिताङ्कुरम् ।
कैकेय्या दुष्टतमया वार्द्धकं लघुतां गतम् ।। १७३ ।।
मलीमसानि पापेन पलितानि कृतानि मे ।
ईदृग्दशां दृशा द्रष्टुं विधिना जीवितः किमु ।। १७४ ।।
कथं न्वहं सहिष्यामि विरहं तव सम्प्रति ।
नूनं श्रोष्यसि मां वत्स धर्मराजपुरातिथिम् ।। १७५ ।।
त्वादृशं नीतिभवनं सर्वभूतिनिकेतनम् ।
नयनानन्ददं पुत्रं रघुवंशयशोनिधिम् ।। १७६ ।।
प्रवास्य घोरं विपिनमपराधविवर्जितम् ।
नूनं नरकवासस्य गमिष्याम्यधिकारिताम् ।। १७७ ।।
बोध्यमानापि कैकेयी वचो न मम मन्यते ।
दुर्दैवेनाभिपन्नस्य जाया मे दुर्मतिं गता ।। १७८ ।।
प्रतिकूले विधौ सर्वं प्रतिकूलं बभूव मे ।
भुक्त्वा सुखानि भूरीणि परिणामेऽस्मि दुःखितः ।। १७९ ।।
राजीवलोचनं स्निग्धं त्वादृशं प्राणसम्मितम् ।
अपश्यतः सुतं शूरं धर्मिष्ठं दानकोविदम् ।। १८० ।।
महाघोरेण तमसा दृशौ मे परिनङ्क्ष्यतः ।
द्रक्ष्यामि लग्नदावाग्निदीप्यमाना दिशोदश ।। १८१ ।।
हा वत्स मां परित्यज्य वनं गन्तुं सुसंयतः ।
इदानीं मे दृशौ दग्धे त्वद्वियोगादरिन्दम ।। १८२ ।।
कदा नु मन्मनस्तुष्ट्यै भविता तवदर्शनम् ।
अथवा मृत एवाहं क्व नु ते दर्शनं विभो ।। १८३ ।।
इति मुह्यन्तमाज्ञाय पितरं रघुवंशजम् ।
दर्शयामास परमं स्वं धाम जगदीश्वरः ।। १८४ ।।
ददौ दिव्यां दृशं तस्मै गुणसङ्गविवर्जिताम् ।
रामस्य परमं धाम यया पश्यन्ति सूरयः ।। १८५ ।।

---

१. १. नास्ति—मथु०, बड़ो ।

ततः स परमया भक्त्या प्रमोदविपिनं तु वै ।
अपश्यत्सर्वतो व्याप्तं सत्यं ज्ञानमनन्तकम् ॥ १८६ ॥

तत्रायोध्यापुरीं दिव्यां दिव्यकाञ्चनभूमिगाम् ।
रत्नप्राकारमध्यस्थां कल्पद्रुमवनावृताम् ॥ १८७ ॥

प्रेमामृतप्रवाहाढ्यसरयूतीरसंश्रिताम् ।
परमानन्दसंदोहमयीं कौतूहलान्वितम् ॥ १८८ ॥

दिव्यपार्षदसंदोहसंकुलां सुमहोत्सवाम् ।
मणिस्तम्भशताकीर्णे तत्र प्रासाद उत्तमे ॥ १८९ ॥

दिव्यसिंहासनासीनमपश्यत्परमोत्सवम् ।
आत्मानं परमानन्दं सर्वमङ्गलभाजनम् ॥ १९० ॥

आत्मनः परितः पुत्रां श्चतुरो विश्वसुन्दरान् ।
रामादीन् विश्वरमणान् रमाकामितविग्रहान् ॥ १९१ ॥

रामसत्तापरिव्याप्तं सर्वं च समपश्यत ।
न तत्र कालगमनं न च मायाप्रवेशनम् ॥ १९२ ॥

कुतस्तद्गुणसम्बन्धस्तत्र सम्भावितो भवेत् ।
अनुभूय परानन्दं स तस्मादुदतिष्ठत ॥ १९३ ॥

दृष्ट्वा पुरोगतं रामं प्रवत्स्यन्तं वनं प्रति ।
समवोचद् दशरथो राजा विस्मितमानसः ॥ १९४ ॥

राजोवाच

जानामिरघुशार्दूल त्वामहं परमेश्वरम् ।
सर्वहेतुं सर्वरूपं स्वतन्त्रं सर्ववस्तुषु ॥ १९५ ॥

तवैव माया विश्वात्मन् यया मोहयसे जगत् ।
यथेच्छसि तथा लीलां विस्तारयसि संततम् ॥ १९६ ॥

न ते रूपं विजानन्ति तत्त्वतो विश्वदैवत ।
विश्वेशिवविरञ्च्याद्या मुनयो नारदादयः ॥ १९७ ॥

नाहं तां तत्त्वतो ज्ञातुं प्रभवाम्यखिलेश्वर ।
समक्षं यत्प्रपश्यामि तद्विजानामि वासव ॥ १९८ ॥

सामान्यतस्त्वां जानामि परब्रह्मस्वरूपतः ।
न शक्नोमि विशेषेण निर्देष्टुं महसां निधे ॥ ९९ ॥

तथापि खलु मुह्यामि पुत्रभावनयाप्लुतः ।
वात्सल्योपहता बुद्धिर्न त्वां स्पृशति तत्त्वतः ॥ २०० ॥

निर्दहामि वियोगेन विपिनं ते प्रवत्स्यतः ।
न च शक्नोम्यहं कर्त्तुं यथेच्छसि तथाकुरु ॥ २०१ ॥

ब्रह्मोवाच

ततः स भगवान् रामः पादयोर्न्यपतत्पितुः ।
उत्थाय संस्थितस्तावल्लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ।। २०२ ।।
यत्रैव रामो नृपते तत्रैवाहं न संशयः ।
अनुजानीहि तस्मात्त्वं सह रामेण मामपि ।। २०३ ।।
वनाय गन्तुमद्याहं संयतोऽस्मि मुदान्वितः ।
इत्युक्त्वा संस्थितं राजा लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ।। २०४ ।।
कथं लक्ष्मण मामद्य दुरदृष्टवशानुगम् ।
कैकेयीवाक्यनिर्दग्धं त्यक्तुमिच्छसि सुव्रत ।। २०५ ।।
पुरैव मातुलागारं प्रेषितौ तौ कुमारकौ ।
युवां प्रव्रसतोऽद्य दह्येते नयने मम ।। २०६ ।।
कं वत्स पुत्र मामेहीत्युक्त्वा यास्यामि निर्वृतिम् ।
जानामि दुर्नयं मात्र को नु शिष्टो न संत्यजेत् ।। २०७ ।।
रामेणाद्य विनिर्मुक्तः पापोऽहं विधिना कृतः ।
यन्मां विहाय त्वमपि वत्स गच्छसि लक्ष्मण ।। २०८ ।।
इत्युक्त्वा व्यरुदद्भूयो मुक्तास्थूलाश्रुविन्दुभिः ।
ततः प्रणम्य सौमित्रिस्त्वरितं पादयोः पितुः ।। २०९ ।।
अन्वगात्प्रस्थितं रामं वनवासाय सत्यधीः ।
धनुष्मान् कवची खड्गी बद्धतूणीर उत्सुकः ।। २१० ।।
अथ राजा सुमन्त्राख्यं मन्त्रिणां प्रवरं बुधम् ।
शीघ्रमाज्ञापयामास विषादग्रस्तमानसः ।। २११ ।।

राजोवाच

रामं प्रयान्तं वनवासहेतवे भवान् सुमन्त्रत्वरितोऽनुगच्छतु ।
संयोज्य दीप्तं कनकावृतं रथं सदस्ववर्यैरथ संनिवेदय ।। ११२ ।।
तत्र रामं समारोप्य लक्ष्मणं चानुगामिनम् ।
तदेकानुगतां साध्वीं सीतां च कुलमङ्गलाम् ।। २१३ ।।
अहानि पञ्च वा सप्त रमयित्वा पुराद् बहिः ।
वनेषु फुल्लवासन्तीपरागौघसुगन्धिषु ।। २१४ ।।
पुनरानय शीघ्रं तं रामं मे प्राणवल्लभम् ।
सीतासौमित्रिसहितमयोध्यानगरीमिमाम् ।। २१५ ।।

ब्रह्मोवाच

स इत्थमादाय वचो नृपस्य ययौ सुमन्त्रस्त्वरितं सदश्वैः ।
युक्त्वा महार्हं रथमेत्य रामं न्यवेदयत्सप्तमगोपुरस्थम् ।। २१६ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे
रामप्रस्थानं नाम नवमोऽध्यायः ।। ९ ।।

दशमोऽध्यायः

सुमन्त्र उवाच

पुरीं विहाय विपिनं गच्छतस्ते परंतप ।
कथं निवेदये राम सज्जोऽयं रथ आस्यताम् ॥ १ ॥

राज्ञो विशिष्टकामस्य बुद्धिरेषा गरीयसी ।
यत्त्वां विहाय कैकेय्या वचनेऽभिरतिं दधौ ॥ २ ॥

इत्युक्तः स सुमन्त्रेण सौमित्रिमिदमब्रवीत् ।
गच्छ लक्ष्मण दोलायां समारोपय जानकीम् ॥ ३ ॥

तस्यां हि दोलारूढायां पुत्र्यां जनकभूपतेः ।
आवां स्यन्दनमारुह्य गच्छावः पुरतो वनम् ॥ ४ ॥

स तद्वचनमादाय त्वरितो जनकात्मजाम् ।
गत्वाब्रवीद्वचो देवि दोलामारोह सम्प्रति ॥ ५ ॥

आर्यः स सप्तमीं कक्षां समलंकुरुतेऽधुना ।
त्वय्यारूढस्वयानायामार्य आरोक्ष्यते रथम् ॥ ६ ॥

सा तस्य वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य महात्मनः ।
सर्वाः श्वश्रूः समामन्त्र्य प्रणम्य च मुहुर्मुहुः ॥ ७ ॥

अन्याश्चान्तःपुरचरीः पृष्ट्वा साधु प्रसन्नधीः ।
रुदतीरेव ताः सर्वा विहाय पतिदेवता ॥ ८ ॥

आरुरोह शुभां दोलां मुदिता जनकात्मजा ।
तदा कश्चिन्निजा आलीः कमलेशीमुखाः स्वयम् ॥ ९ ॥

पश्यतो वाष्पनेत्रस्य अन्तःपुरजनस्य सा ।
आत्मन्येव तिरोभावं निनाय गमनक्षणे ॥ १० ॥

अथैकामवरोधस्थामुवाच स्मितशालिनी ।
भगिन्यौ मे पितुर्गेहे जनकस्य महीपतेः ॥ ११ ॥

पतिभ्यां स्थापिते पूर्वमलं मत्प्रीतिकातरे ।
सम्बोधनीये सततं भवत्या वचनान्मम ॥ १२ ॥

न सीताविषये साध्व्यौ भवत्यौ शोकमृच्छताम् ।
इति चान्यच्च वक्तव्यमत्र आश्वासनं तयोः ॥ १३ ॥

अथ लक्ष्मण आगत्य रामं प्रियसुहृत्तमम् ।
आरुह्यतां रथं शीघ्रमित्युवाच स तन्मनाः ॥ १४ ॥

तस्मिन् कालेऽवरोधस्थाः प्रयान्तं राममीक्षितुम् ।
शिरांस्यारुरुहुस्तूर्णं सौधानां दर्शनातुराः ॥ १५ ॥

पुरे नराश्चनार्यश्च सर्वेऽप्याकुलमानसाः ।
अनुगन्तुं तदा राममसज्जन्त मुदान्विताः ॥ १६ ॥

ऊचुरन्तःपुरजना रामसौहार्दतोषिताः ।
लालप्यमानाः सर्वेऽपि कीर्त्तयन्तश्च तद्गुणान् ॥ १७ ॥

किमकारि बतास्माभिः पुण्ये कर्मणि दुष्कृतम् ।
यल्लब्धोऽपि मनोहारी रामो द्रष्टुं न लभ्यते ॥ १८ ॥

त्रैलोक्यमोहनो रामः स्वभावान्मधुराकृतिः ।
दयावान् सत्यसन्धश्च महोदारो महामनाः ॥ १९ ॥

नयनानन्दजननादासेचनकविग्रहः ।
चिरं निपेयश्चक्षुर्भ्यामन्तरायं चिराद्गतः ॥ २० ॥

युगकोटिसमानानि क्व वर्षाणि चतुर्दश ।
क्व चासोढवियोगानां दर्शनातुरता दृशाम् ॥ २१ ॥

असावपुण्यराशिर्नो युगपत्प्रकटोऽभवत् ।
यदभूदेष विश्लेषो रमणीयेन वस्तुना ॥ २२ ॥

राजानं बोधयामः किं सर्वाः संहृत्य संगताः ।
रामं सर्वगुणारामं विप्रवासयसे कथम् ॥ २३ ॥

अथवा मूढ कैकेयीवाक्यवश्यो जनाधिपः ।
अतीतलोकदुर्वादो मानयेत्किमु नो वचः ॥ २४ ॥

हा हताःस्म वयं नूनं रामे प्रवसति प्रिये ।
प्राणाधिके गुणैराढ्ये जीवा तौ जीवदातरि ॥ २५ ॥

न जीवितुमतो युक्तमस्माकं क्लिष्टचेतसाम् ।
यासां सर्वस्वभूतोऽसौ वने वत्स्यति राघवः ॥ २६ ॥

अवधीरितसाधूक्तिः कैकेयीवशमागतः ।
नूनं हि लप्स्यते दुःखं रघूणामधिपो भृशम् ॥ २७ ॥

चक्षुषी परितप्येते दीर्यन्ते हृदयानि नः ।
विगलन्ती व चाङ्गानि विनिर्गच्छति राघवे ॥ २८ ॥

किं कुर्मः कं प्रति ब्रूमः कथं तिष्ठति राघवः ।
प्रतिकूले विधौ सर्वं प्रतिकूलमिवाभवत् ॥ २९ ॥

स्वभावदारुणां बुद्धिं धिक्कैकेयि तवेदृशीम् ।
रमणीयतमे रामे प्रतिकूल्यं गतासि किम् ॥ ३० ॥

हा देवि रामदयिते निमिचन्द्रकुलोद्भवे ।
सखि भूमिसुते सीते कथं स्थास्यसि कानने ॥ ३१ ॥

अशेषलोकसाम्राज्यमहिषीपदभाजनम् ।
सीतां वने प्रवत्स्यन्तीमद्य पश्यामहे वयम् ॥ ३२ ॥

धिक्[1] चक्षुषी धिग्जनुः क्लिष्टं धिगायुर्धिक् च कर्म नः ।
या सां प्राणप्रियो रामः सदारो याति काननम् ॥ ३३ ॥

अयं कमलपत्राक्षो लक्ष्मणः शुभ लक्षणः ।
अस्माकं दुष्कृतेनैव राममेवानुगच्छति ॥ ३४ ॥

अयं सर्वात्मना वीरो रामेण सदृशौ गुणैः ।
आर्त्तानां नः शत्रो हन्तुं किं नास्था स्यदिहैव हि ॥ ३५ ॥

अथवा सर्वथार्त्तानां प्रतिकूलोऽद्य नो विधिः ।
उभावपि विनिर्यातौ राघवौ प्राणजीवनौ ॥ ३६ ॥

इत्थं खलु वदन्तीनामवरोधस्थयोषिताम् ।
मनांस्यादाय सहसा मुदितो रामचन्द्रमाः ॥ ३७ ॥

आरुरोह रथं दीप्तं भ्रात्रा सह विचक्षणः ।
पार्श्वस्थजनचित्तानि सकृत्सम्मोहयन् दृशा ॥ ३८ ॥

अथाश्वान् प्रेरयामास सुमन्त्रस्तान् मनोजवान् ।
तत्पश्चाज्जानकीयानमूह्यमानं नरैर्ययौ ॥ ३९ ॥

चैतन्यं भृशतप्तायाः कौसल्याया महाशुचः ।
कैकेय्याश्चैव सौजन्यं सुमित्रायास्तथात्मजम् ॥ ४० ॥

प्राणितव्यं पितुश्चैव प्रजानां च मनःसुखम् ।
मनांसि मुनिवर्याणामाप्तानां वपुषो रुचिम् ॥ ४१ ॥

अयोध्यायाः श्रियं चैव सौभाग्यं राजवेश्मनः ।
देवानां च हितं कार्यं समादाय स्वयं तदा ॥ ४२ ॥

दर्शयन्नात्मनो मोहं प्रतस्थौ रामचन्द्रमाः ।
तमनुप्रययुः सर्वे जनाः पुरनिवासिनः ॥ ४३ ॥

यावत्संदृश्यते दूराद्ध्वजो रामरथस्यसः ।
तावत्सौधवराग्रेषु स्थितोऽन्तःपुरिको जनः ॥ ४४ ॥

दूरं गते रथेकेतौ संजाते दृष्ट्यगोचरे ।
पश्चान्निववृते शोकान्मुक्तवाष्पं रुदन् भृशम् ॥ ४५ ॥

तं पौरा रथपर्यन्तयायिनो भृशदुःखिताः ।
अग्रे कृत्वा द्विजवरान् विहिताञ्जलयो मुहुः ॥ ४६ ॥

---
१. इस पाद में छन्दोभंग है ।

अयाचन्त समुद्विग्ना मा गच्छ विपिनं प्रभो ।
नो चेत्वा मनुयास्यामः सर्वथा प्राणजीवनम् ।। ४७ ।।

स तथा याच्यमानोऽपि जनैः पुरनिवासिभिः ।
पितुः सत्येन भगवान् वनमेवान्वरोचत ।। ४८ ।।

रामोऽनुयायिनः पौरान् दूरं प्राप्ता ननु व्रतान् ।
प्रीणयन् दृष्टिपातेन जगाद स्निग्धमानसः ।। ४९ ।।

निवर्तन्तां जनाः पौराः पितुः सत्यं विभर्म्यहम् ।
भवतां भाग्यवृन्देन भ्राता मे भरताभिधः ।। ५० ।।

चिरं जीवतु धर्मिष्ठः पुण्यकर्मा यशोनिधिः ।
मम प्राणप्रियोवीरः सत्यसन्धोदयाकरः ।। ५१ ।।

कल्याणगुणसंदोहः कैकेय्याः प्रीतिवर्द्धनः ।
ज्ञानवान् गुणसम्पन्नो धीरः प्रकृतिरञ्जनः ।। ५२ ।।

स्वभावमधुरो वाग्मी महोदारो महाशयः ।
साधयिष्यति वो नूनं हितानिविधिवत्सदा ।। ५३ ।।

यूयं तेन सदा भूरि शुभानि समवाप्स्यथ ।
अतो मयीव वस्तस्मिन् प्रीतिः सम्परिवर्द्धताम् ।। ५४ ।।

प्रीणयिष्यति वः प्राज्ञा मनांसि भरतो बुधः ।
योग्य एव हि वो राज्ञा स वै भर्ता समीहितः ।। ५५ ।।

तदाज्ञा वः सदा कार्या राज्ञः प्रियचिकीर्षुभिः ।
एतदेव प्रियं पौरा ममापि सुसमीहितम् ।। ५६ ।।

बोध्यमानोऽपि रामेण चातुर्वर्ण्यजनो भृशम् ।
गुणैराकृष्टहृदयो रथमेवान्वगच्छत ।। ५७ ।।

रामः पौरजनस्नेहाल्लक्ष्मणश्च दयानिधिः ।
वाष्पोदरुद्धनयनौ बभूवतुरुभावपि ।। ५८ ।।

अथ प्रशान्तमेवैनं दृष्ट्वाप्रकृतिरञ्जनम् ।
रामं लक्ष्मणसीताभ्यां सहितं लोकमङ्गलम् ।। ५९ ।।

तपोयशःप्रतापाढ्यं ब्राह्मणाः संन्यवारयन् ।
अये सुमन्त्र नयसे क्व च नः प्राणजीवनम् ।। ६० ।।

कृतं नृपेण दुर्बुद्धिकैकेयीवशवर्त्तिना ।
परावर्त्तयसे किं न विपरीतगनीम् हयान् ।। ६१ ।।

इत्थमार्त्तद्विजोदीर्णां गिरं श्रुत्वा ससम्भ्रमः ।
अवतीर्यरथात्तूर्णं भक्तिसन्नतकन्धरः ।। ६२ ।।

पद्भ्यामेव ययौ रामः सीतालक्ष्मणसंयुतः ।
कथमग्रे चलेदेष हित्वा ब्राह्मणसत्तमान् ॥ ६३ ॥
इत्यवेक्ष्य चिरं पश्चात्सादरं पर्यवस्थितः ।
रामस्य सन्निधिं प्राप्य समवोचन्त ते द्विजाः ॥ ६४ ॥
अन्तःसंतापविकलानस्मान् हित्वा निरागसः ।
क्व नु गच्छसि धर्मात्मन् वयं त्वामनुयायिनः ॥ ६५ ॥
साग्निहोत्राः सपत्नोका न निवर्त्स्याम निश्चितम् ।
जानीमस्त्वां धर्ममूर्त्ते न त्यक्ष्याम कथंचन ॥ ६६ ॥
सदधीतैर्वेदमन्त्रैर्यज्ञैश्च सदनुष्ठितैः ।
इदमेकं विजानीमो भजामस्त्वां सदा वयम् ॥ ६७ ॥
[1]वने त्वामनुयास्यामस्त्वद्गुणैर्विश्वमङ्गलैः ।
आकृष्टचित्ताः स्थास्यामो नैवात्र नगरे वयम् ॥ ६८ ॥
साम्राज्यदीक्षालब्धानि सितछत्राण्यमूनि नः ।
तव त्यक्तातपत्रस्य छायार्थं बिभृमो वयम् ॥ ६९ ॥
यथा राजकुमार त्वामङ्गैः कमलकोमलम् ।
मध्यंदिनार्कविद्योतो न ग्लापयति दुःसहः ॥ ७० ॥
धर्मोऽयमेव चास्माकं त्वयि धर्माभिरक्षके ।
नो चेद् वृद्धैर्द्विजैः पौरैर्याच्यमानः प्रजाहितः ॥ ७१ ॥
निवर्तस्व वनाद् राम कैकेयी तप्पतां चिरम् ।
जनेषु तव भक्तेषु भक्तिं कुरु महामते ॥ ७२ ॥
किं ते भक्तजनत्यागो विहितो भक्तवत्सल ।
अर्द्धानुष्ठितयज्ञानां जातार्द्धगृहकर्मणाम् ॥ ७३ ॥
वनात्वयि निवृत्तेऽद्य सम्पूर्णाःस्युर्मनोरथाः ।
अमीपक्षिरवैर्वृक्षाः कुर्वन्ति करुणस्वरान् ॥ ७४ ॥
रोरुवन्ति चिरं क्लिष्टाः खगा वृक्षेष्ववस्थिताः ।
सरःसु गुञ्जद्भ्रमरा यामिन्यो विरुवन्ति च ॥ ७५ ॥
अर्द्धावलीढघासास्याः पशवः कृच्छ्रमासते ।
इत्थमापतितं कष्टं त्वयि सम्प्रस्थिते वनम् ॥ ७६ ॥
इति विक्रोशमार्त्तानां द्विजानां दीनचेतसाम् ।
शृण्वं स्तूष्णीं जगामैष कथंचिन्न न्यवर्त्तत ॥ ७७ ॥
अपश्यत्तमसामग्रे तरङ्गभुजवेगिनीम् ।
वारयन्तीमिवात्मानं गद्गदस्वरघोषिणीम् ॥ ७८ ॥

---

१. वनम्–अयो०, मथु० ।

तस्यास्तीरे तरोर्मूलमाश्रित्य रघुनन्दनः ।
सहसौमित्रिसीताभ्यामवात्सीत्प्रथमां निशाम् ॥ ७९ ॥

अथाह लक्ष्मणं रामः सोद्वेग इव लक्षितः ।
पश्येमां तमसां भ्रातर्मध्येमार्गमुपस्थिताम् ॥ ८० ॥

तरङ्गभुजवल्लीभिर्वनाद् वर्जयतीवमाम् ।
पश्य पुण्यान्य रण्यानि शून्यानि परितः सखे ॥ ८१ ॥

जानेऽस्माकं दशां द्रष्टुमशक्ताः पशुपक्षिणः ।
इतो देशान्तरं याताः कः पश्येत्स्वामिनः शुचम् ॥ ८२ ॥

स्थावरा जङ्गमाश्चाद्य रुदन्त्यस्मत्कृते स्फुटम् ।
प्रथमेयं निशास्माकं गृहात्प्रवसतां वनम् ॥ ८३ ॥

अद्यायोध्यापुरी भ्रातः कां दशां लप्स्यते शुचा ।
आबालवृद्धस्त्रीलोकजनशब्दविवर्जिता ॥ ८४ ॥

पितरौ परिशोचामि यौ रुदन्तौ समुज्झितौ ।
शोकाब्धिलहरीवृन्दैर्नोद्यमानौ विचेतसौ ॥ ८५ ॥

त्वया मयाच्च रहितौ कथं खलु भविष्यतः ।
जातो नूनमहं पित्रोः केवलं दुःख हेतवे ॥ ८६ ॥

तरिर्भरत एवाद्य ततुं शोकोदधिं तयोः ।
आश्वासनाय शक्तोऽस्त्रावशेषपुरुषार्थभूः ॥ ८७ ॥

मत्कृते तप्तमनसोर्मत्पित्रोर्दुःखहारिणा ।
तेनैव हृदि नैश्चिन्त्यं किंचिदाप्नोमि लक्ष्मण ॥ ८८ ॥

त्वया च महितो भ्रातर्वनवासेऽपि नोद्विजे ।
जाने कुटुम्बमध्यस्थमात्मानं सुसहायिनम् ॥ ८९ ॥

वैदेहीरक्षणे कार्ये मुक्तचिन्तो बभूव ह ।
अद्भिरेवाद्य वर्त्तिष्ये फलवत्यपि कानने ॥ ९० ॥

सम्पश्यन् विहितं धर्ममिति मे सम्मता मतिः ।
इति सौमित्रिराकर्ण्य सुमन्त्रश्च प्रभोर्वचः ॥ ९१ ॥

सावधानतया तस्थौ सेवासंपतमानसः ।
सुमन्त्रोऽथ विमुच्याश्वान् पाययित्वोदकं शुचि ॥ ९२ ॥

आशयत्स्वादुयवसं ततः प्रभुमसेवत ।
मुहूर्तं पश्चिमां सन्ध्यामुपास्यारुणमण्डलाम् ॥ ९३ ॥

विलोक्य यामिनीं प्राप्तामुद्भिन्नोडुगणप्रभाम् ।
प्रभवे व्यस्वत्तल्पं नवपल्लवमञ्जुलम् ॥ ९४ ॥

सुमित्रासुत आर्यस्य चरणौ पल्लवारुणौ ।
अविनिज्यकृताहारे तस्मिन् केवलमम्बुना ॥ ९५ ॥

अङ्गीचक्रेनु वैदेह्याः स्वयमप्युदकं बुधः ।
ततः सुप्ते महाराजकुमारे सीतया सह ॥ ९६ ॥

सुप्ताःप्रकृतयः सर्वास्तमसातीरकानने ।
रामप्रवासनोद्वेगशोकमोह भरातुराः ॥ ९७ ॥

जाग्रदेव स्थितो वीरः सौमित्रिः सारथिं प्रति ।
कथयामास रामस्य गुणांस्त्रिभुवनाद्भुतान् ॥ ९८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे तमसातीरनिवासो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

●

एकादशोऽध्यायः

लक्ष्मण उवाच

जानासि किं नु जगदीशमिमं सुमन्त्र रामं त्रिलोकरमणीयगुणाभिरामम् ।
एष स्वयं स भगवानखिलात्मभूतो यं नेतिनेति विभृतं निगदन्ति वेदाः ॥ १ ॥

भूभारकारिविविधासुरवाहिनीनामेष क्षयं कलयितुं कृपयावतीर्णः ।
श्रीमत्प्रमोदवननित्यनिकुञ्जकेलिबद्धादरः सहजया स्वभुजोपगूढः ॥ २ ॥

तन्मण्डलं विजयतेस्य महाविलासनित्यास्पदं कनकरत्नमयंमनोज्ञम् ।
लक्ष्मीसहस्रशतकेलिकलासमेतं संगीतनृत्यबहुगानविधानयुक्तम् ॥ ३ ॥

तत्र स्वयं सहजयाश्रितवामपार्श्वः संफुल्लहेमलतयेव तमालवृक्षः ।
शृङ्गाररसारसुविहार भरप्रकारसंशोभितारमणिहारधरो विभाति ॥ ४ ॥

यावद्व्रजप्रणयिनीगणसाभिलाषचक्षुश्चकोरपरिपोषणपूर्णचन्द्रः ।
आनन्दवृन्दमकरन्दकरामिताङ्घ्रिमन्दारजस्तबकमोहितभक्तभृङ्गः ॥ ५ ॥

नित्योत्सवप्रमुदिताखिलपार्षदौघसंसेव्यमानकमनीयतमस्वरूपः ।
वर्हावतंसपरिपृक्तमहामणीन्द्रमार्त्तण्डकोटिकिरण प्रकराव कीर्णः ॥ ६ ॥

प्रत्यक्षलक्ष्यविरहातुरदिव्यकान्तासंदोहसंगत उदारगुणाम्बुराशिः ।
वृन्दावनावनिपुरंदरसंगतात्मसत्ताविजृम्भितमहामहनीयभावः ॥ ७ ॥

बैकुण्ठनाथवसतौ परमेऽन्तरिक्षे गोलोकधाम्नि महसामयने परस्मिन् ।
क्षीरार्णवस्य पुलिने रविमण्डलान्तर्वृन्दारकप्रवरसद्मसुतेषु तेषु ॥ ८ ॥

स्वाराज्यसम्पदि सदामृतभोगवत्यां साम्राज्यसम्पदि महीनलभोगदायाम् ।
अस्यांशवैभवकलामधिगम्य नित्यमानन्दयोगणिहृदेति विशेपपूर्णा ॥ ९ ॥

सोऽयं प्रमोदवनकेलिकलाविलासी सर्वात्मकः सकलभूरपि सर्वशक्तिः ।
रामो रमाकरनिषेवितपादपद्मः श्रीमान् स्वयं स्वपिति भूमितले वनान्तः ॥ १० ॥

जानाति को भगवतोऽस्य चिकीर्पितानि तत्त्वं च वेदशिरसाकलितं कथंचित् ।
रामस्य शासनवशान्निमिपामयोगो ब्रह्माण्डकोटिकलनाकुशलोऽयमेति ॥ ११ ॥

काले जगन्ति निखिलानि चराचराणि निःशेपमेककवलेन सभूतसूक्ष्मम् ।
संहृत्य रन्तुमयमात्मनि नीयतेऽन्तःस्वानन्दभोगरमिकोऽखिलयोगशक्तिः ॥ १२ ॥

यावन्न सावधिपदार्थविरक्तचेता ज्ञात्वास्य निर्गुणतनोर्महिमानमित्थम् ।
भक्त्योपसन्नधिषणः शरणं प्रयाति तावन्न कालभयतः परिमुच्यतेऽसौ ॥ १३ ॥

नो कर्मणा न तपसा न समाधिना च न ज्ञानतोऽस्य महिमानमवैति किंचित् ।
यावन्न कम्पपुलकाश्रुमुखात्युदीर्णभावाञ्चितास्य हृदये समुदेतिभक्तिः ॥ १४ ॥

वन्दे स्वसाधुजनमानसराजहंसं चञ्चन्महर्षिजनचित्तमिलिन्दपद्मम् ।
आनन्दवृन्दमकरन्दभरं दधानं कल्पद्रुमस्तबकसौरभमङ्घ्रिमस्य ॥ १५ ॥

ब्रह्मोवाच

एवमालपतस्तस्य गुणान् भक्तजनप्रियान् ।
सुमन्त्रं प्रति सौमित्रेर्जगाम सकला निशा ॥ १६ ॥

तां रात्रिं भगवान् रामो महायोगेश्वरेश्वरः ।
रतवान् तमसातीरगोकुलस्था वराङ्गनाः ॥ १७ ॥

तत्राभीरकुले जातास्त्रिदशाः स्त्रीस्वरूपिणः ।
चिराय रामचन्द्रस्य गुणश्रवणमोहिताः ॥ १८ ॥

ता यूथशोमृगदृशः सदनेषुसुतान् बन्धून् सुहृत्पतिकुटुम्बजनान् विहाय ।
देहांश्च तान् गुणमयान् सहसा विसृज्य शुद्धात्मना रघुकुलोद्वहमेनमीयुः ॥१९॥

विलासवटमूले स सीतया स्वात्मरूपया ।
आनन्दशक्त्या संयुक्तो रेमे गोकुलदारकैः ॥ २० ॥

तां रात्रिं तत्र रामेन्दुपूर्णचन्द्रप्रभासिताम् ।
उत्फुल्लकुमुदामोद माद्यन्मधुकरस्वराम् ॥ २१ ॥

त्रिबिधानिलसांदोलमन्दारतरुकोरकैः ।
आत्मशक्त्या समुत्फुल्लैः प्रसरत्सौरभाञ्चिताम् ॥ २२ ॥

समुल्लसन्नीपतरुपुष्पसौरभशालिनीम् ।
गुञ्जद्भ्रमरसंजुष्टां कोकिलाकलकूजिताम् ॥ २३ ॥

तमसानीरकल्लोलकौतूहलसमन्विताम् ।
तत्तीरवालुकाभूमिविस्तीर्णकनकासनाम् ॥ २४ ॥
ताभिर्वेणुकलध्वानमोहिताभिः सुकान्तिभिः ।
शुद्धभक्तात्मरूपाभिः कामिनीभिः सहस्रशः ॥ २५ ॥
रेमे श्रीमान् सीता(रमा)कान्तः सुखैर्निधुवनोद्भवैः ।
समुद्धार ताः सर्वाः कालमायावशाद् भवात् ॥ २६ ॥
दृढामात्मरतिं दत्त्वा मुनीनामपि दुर्लभाम् ।
स्वरूप मात्रासक्ताश्च कृत्वा सर्वात्मना प्रभुः ॥ २७ ॥
चिररात्रे तथैवात्र सुप्तः समुपलक्षितः ।
ततः स्वयं जजागार वैदेह्या सहितः प्रभुः ॥ २८ ॥
चिरं विमृश्य मनसा सुप्तान् पौरजनान् वने ।
आत्मना सह संक्लिष्टान् विषण्णान् वनवासतः ॥ २९ ॥
उवाच लक्ष्मणं रामो भ्रातरं प्राणसम्मितम् ।
पश्य भ्रातरिमे पौरा मदर्थे क्लिष्टमानसाः ॥ ३० ॥
त्यक्तसौख्यास्त्यक्तवासा वनवासाय चोद्यताः ।
अतो यावदिमे सुप्ता नोत्तिष्ठेयुः समन्ततः ॥ ३१ ॥
निवर्तयेयुर्न च नो[1] वचोभिर्दीनमानसाः ।
तावदास्थाय सहसा स्यन्दनं तुरगैर्युतम् ॥ ३२ ॥
शीघ्रगं शब्दरहितं गच्छामः पुरतो वनम् ।
एवमेते जना अस्मांस्त्यक्ष्यन्ति पुरवासिनः ॥ ३३ ॥
स्वपन्ति वृक्षमूलेषु मत्प्रीतिकलिताशयाः ।
क्लिष्टेष्वेतेषु महती जायते मम वेदना ॥ ३४ ॥
न तथा वनवासेन मनो मे परिदूयते ।
अस्मत्कृते कथं पौराः प्राप्नुयुर्दुःखसंहतिम् ॥ ३५ ॥
एतेह्यनुगता भ्रातः सर्वे सर्वात्मनैव माम् ।
गच्छन्तु स्वस्वभवनं प्राप्नुवन्तु परां मुदम् ॥ ३६ ॥
इत्युक्तो रामचन्द्रेण लक्ष्मणो बुद्धिसत्तमः ।
प्रत्यूचे वचनं सम्यगार्याय सुमहात्मने ॥ ३७ ॥
यद् विचारयसि प्राज्ञ तत्तथैव मतं मम ।
शीघ्रमारुह्यतामार्य स्यन्दने वेगगामिनि ॥ ३८ ॥
ततः सुमन्त्रः संयोज्य रथं जात्यैस्तुरङ्गमैः ।
प्राञ्जलिः श्रीमते तस्मै न्यवेदयदुपस्थितः ॥ ३९ ॥

१. मां—मथु० ।

सुप्ताः पौरजना एते न जानीयुर्यथा प्रभो ।
तथा भवान् गन्तुकामः सज्जोऽयं सुमहान् रथः ॥ ४० ॥

ततो व्यामोह्य भगवान् पौरान् सुप्तांश्च जाग्रतः ।
आस्थाय स्यन्दनवरं ततार तमसां नदीम् ॥ ४१ ॥

मनोज्ञं काननं प्राप तस्या अपरपारगम् ।
महर्षिजनसंवीतं विशुद्धाश्रममण्डलम् ॥ ४२ ॥

निष्कण्टकतरुस्तोमसंवितं सर्वतस्ततम् ।
पुष्पिताच्छ लताजालवेष्टितोन्नतभूरुहम् ॥ ४३ ॥

दुर्जीवरहितं नित्यमभयं फलपुष्पवत् ।
तमसातीरनीरोर्मिसमीरणसुशीतलम् ॥ ४४ ॥

प्रातः पौराः सहसा प्रतिबुध्य निरीक्ष्य व्यामोहार्थं कल्पितमभिपुरि रथयानम् ।
श्रीमानेष पुरीमनुगत इतिहृदि हृष्टाः सर्व युगपत्साकेतपुरीमनुजग्मुः ॥४५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे
पौरजनव्यामोहनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

ते गत्वा नगरीं पौरा अपश्यन्तो रघूद्वहम् ।
रुदन्तो वाष्पनयनाः पतिताः शोकसागरे ॥ १ ॥

मृतेषु पतिपुत्रेषु हृतेषु धनराशिषु ।
न तथास्ति नृणां शोको यथा रामे प्रवासिनि ॥ २ ॥

रुग्णा इवातिरोगेण ग्रस्ता इव महापदा ।
निकृत्वा इव चाङ्गेषु दुःखमूहुः पुरीजनाः ॥ ३ ॥

आसने शयने प्रापुः भोजने भाषणे तथा ।
रामेति मग्नमनसो न क्षणं स्वस्थतां ययुः ॥ ४ ॥

पुत्रे जाते विवाहे वा रोगहानौ द्विरागमे ।
नोत्सवं चक्रिरे पौराः क्लिष्टा रामप्रवासतः ॥ ५ ॥

रामं विहाय सम्प्राप्तान् जगर्हुर्वनिताः पतीन् ।
यावकाञ्जनसिंदूरभूषणादिविवर्जिताः ॥ ६ ॥

मलिनाङ्ग्योऽतिदुःखार्त्ता भृशं मलिनमानसाः ।
अपश्यन्त्यो जनकजां ददृशुस्तामसं जगत् ॥ ७ ॥

तमसालिप्तनयनाः सर्वं च तमसावृतम् ।
मेनिरे विपदं प्राप्ता अयोध्यापुरयोषितः ॥ ८ ॥
पतिपुत्रकुटुम्बादीनाप्तस्वजनबान्धवान् ।
गृहान् देहान् धनं प्राणानसह्यं हृदि मे निरे ॥ ९ ॥

यासां प्राणाधिकः प्रेयान् प्रोषितो रघुनन्दनः ।
तासां किं भुवने प्रीत्यै विरहग्रस्तचेतसाम् ॥ १० ॥

ऊचुः परस्परं गेहेष्वशेषारम्भवर्जिताः ।
स एव सुकृतीलोके लक्ष्मणो दुःखवर्जितः ।
यो वै सर्वात्मभावेन सीतारामौ निषेवते ॥ ११ ॥

धन्यास्ताः सरितो यासां तोयं पिबति राघवः ।
अध्वश्रमपरिश्रान्तो या सु मज्जति स स्वयम् ॥ १२ ॥

येषां फलानि सोऽश्नाति धन्यास्ते पादपा वने ।
धन्यास्ते पर्वता येषु पद्भ्यां चरति राघवः ॥ १३ ॥

रामस्य गमनान्नूनं वन एवाद्य मङ्गलम् ।
धन्यास्त आश्रमावासा येषु वत्स्यति राघवः ॥ १४ ॥

धन्या महर्षयो येषां श्रीराममुखदर्शनम् ।
अहो किमत्र नो भव्यं यास्यामो रघुनन्दनम् ॥ १५ ॥

अनन्यान् शरणं प्राप्तान् रामो वः पालयिष्यति ।
अस्मांश्च परमोदारा रक्षिष्यति विदेहजा ॥ १६ ॥

सर्वात्मना नो निर्वाहं वन एव करिष्यतः ।
त्रैलोक्यमङ्गलोदारौ सीतारामौ महाशयौ ॥ १७ ॥

नूनं रामस्य विश्लेषाद् राजा प्राणान् विमोक्ष्यति ।
कैकेय्या वशगं राष्ट्रमधर्मोऽभिभविष्यति ॥ १८ ॥

पुत्रं प्रव्राजयामास या रामं लोकसुन्दरम् ।
तां निर्दयां न कैकेयीं भजिष्यामो वयं ध्रुवम् ॥ १९ ॥

इत्थं विलप्य बहुधा रुरुदुर्बाष्पलोचनाः ।
अयोध्यानगरीसंस्था नरा नार्यश्च दुःखिताः ॥ २० ॥

रामश्चाभ्युदिते सूर्ये प्रातःसन्ध्यामुपास्य वै ।
ययौ दिव्यरथारूढो वेगात्सन्तीर्य गोमतीम् ॥ २१ ॥

पश्यञ्छुभान्यरण्यानि पुष्पितानि विशेषतः ।
शृण्वन् ग्रामेषु लोकानां कैकेय्या दुर्यशोभरम् ॥ २२ ॥

वेदस्मृतिं नदीं तीर्त्वा दक्षिणाभिमुखो जवात् ।
अनुस्मरन् पितुः सत्यं वनवासैकमानसः ॥ २३ ॥

कथयन् मधुरावार्त्ताः सूनं सौमित्रिमेव च ।
सायंकाले परिप्राप्ते तपने लोहितायति ॥ २४ ॥

शृङ्गवेरपुरस्योच्चैः सन्निधिं प्राप राघवः ।
सस्नौ पुण्यजलां तत्र सरयूं चिरसेविनीम् ॥ २५ ॥

तत्रास्य देशवास्तव्या जना ज्ञातप्रवृत्तयः ।
पृष्ठलग्ना दीर्घतरं रुदन्तः करुणस्वरम् ॥ २६ ॥

आश्वास्य मधुरैर्वाक्यैस्ते रामेण विसर्जिताः ।
नत्वा नत्वातिशोकार्ताः श्वसन्तो बाष्पलोचनाः ॥ २७ ॥

कथंचिदपि कष्टेन त्यक्तवन्तो रथं प्रभोः ।
अथो ददर्श भगवान् गङ्गां सागरगामिनीम् ॥ २८ ॥

कल्लोललोलसलिलां जगतः कलिलापहाम् ।
आत्मपादोदकीं पुण्यां महोर्मिगणसंकुलाम् ॥ २९ ॥

स्वर्गमार्गैकनिःश्रेणीं पीयूषाच्छप्रवाहिनीम् ।
राजहंसगणाकीर्णां चक्रसारससेविताम् ॥ ३० ॥

भुवः शाटीमिव सितां शरज्ज्योत्स्नाविजित्वरीम् ।
शीतलां चन्दनक्षोदसदृशीं तापहारिणीम् ॥ ३१ ॥

कर्पूरपूररुचिरां त्रिजगत्पाविनीं पराम् ।
अशेषतीर्थसाम्राज्यपदभाजं महोन्नताम् ॥ ३२ ॥

तां दृष्ट्वा सुमहावर्त्तगम्भीरजल वेगिनीम् ।
सुमन्त्रं चैव सौमित्रिमामन्त्र्य यशसां निधिः ॥ ३३ ॥

तीरावनिवने रम्ये शीतलानिलसेविते ।
इंगुदीतरुमालक्ष्य तन्मूले वासकामुकः ॥ ३४ ॥

रथादवततारैष सीतासौमित्रिसंगतः ।
सुमन्त्रोऽश्वान् समुन्मोच्य प्राञ्जलिः समुपस्थितः ॥ ३५ ॥

निषादराजस्तत्रामुं स्वदेशे प्राप्तमीश्वरम् ।
आजगाम गुहो नाम भाग्यवान् पुण्यवान् बुधः ॥ ३६ ॥

सजातीयैर्जनैर्युक्तो वृद्धैश्च बहुदर्शिभिः ।
तं सामात्यं परिष्वज्य रामः सौमित्रिसंगतः ॥ ३७ ॥

जग्राह बहुमानेन मानदोऽनन्यचेतसाम् ।
इत्थं सम्मानितः सम्यगुवाच गुहः ईश्वरम् ॥ ३८ ॥

भवानेकः शरण्योऽत्र शरणं त्वामुपेयुषाम् ।
अयमात्मा कुटुम्बश्च नगरं चेदमीश्वरम् ॥ ३९ ॥

भूरियं सकलाराम तवाङ्घ्योरर्पिता मया ।
देहि मां¹ (मे ?) शरणायातं कोमले ते पदाम्बुजे ॥ ४० ॥

चिरेण रघुशार्दूल चेतसानन्यगामिना ।
चिन्तितोऽसि जगन्नाथ स मे कामोऽद्य पूरितः ॥ ४१ ॥

चिरेण प्रार्थिते राम तवैव चरणाम्बुजे ।
मयाद्य समनुप्राप्ते न मोक्ष्याम्यधुना त्विमे ॥ ४२ ॥

ततो विधाय पाद्यार्घौ सुप्रसन्नमना गुहः ।
उवाच सीतासौमित्रिसहितं रघुपुङ्गवम् ॥ ४३ ॥

अन्नं चतुर्विधं नाथ स्वादु सद्यो विनिर्मितम् ।
गन्धपुष्पाङ्गरागादिशयनान्यासनानिच ॥ ४४ ॥

निवेदयामि तत्तुभ्यं स्वागताय महात्मने ।
महीं चैवा खिलामेतां यथेच्छं वस मद्गृहे ॥ ४५ ॥

अहं ते प्रेष्य एवास्मि भव मे शरणं विभो ।
आज्ञापय यथेष्टं मे करिष्यामि रघूद्वह ॥ ४६ ॥

अद्य मे सफलं जन्म सफलं चाद्य मे कुलम् ।
अद्य मे सफलो देहः सफले मम चक्षुषी ॥ ४७ ॥

नापेक्षितं मे लोकेश पुरं राज्यं तथा धनम् ।
एकमेवापेक्षितं मे तव पादनिषेवणम् ॥ ४८ ॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य गुहस्य जगदीश्वरः ।
प्रत्यूचे भगवान् रामः स्मितमञ्जुतमाननः ॥ ४९ ॥

सर्वंकृतं त्वया सम्यग् यद्यदिष्टतमं मम ।
भाग्येन त्वां प्रपश्यामि सर्वसम्पत्समन्वितम् ॥ ५० ॥

अपि त्वं कुशली नित्यं देहगेहसुहृद्युतः ।
कुशलं ते चिरं देशे पुत्रबन्धुधनादिभिः ॥ ५१ ॥

यत्त्वया मम संतुष्ट्यै प्रीत्या मह्यं निवेदितम् ।
तत्सर्वमेव विधिवन्मनसारक्षितं मया ॥ ५२ ॥

प्रतिग्रहीतुमेतत्ते न त्वयं समयः सखे ।
अशनं फलमूलादि वासो मे हरिणाजिनम् ॥ ५३ ॥

आसनं वल्कलैश्चापि शयनं मे महीतलम् ।
वृत्तिस्तापस्यवृत्यैव वासो मे गह्वरे वने ॥ ५४ ॥

घासो मे दीयतां सम्यगश्वेभ्यस्तन्ममार्चनम् ।
अमी दशरथस्याश्वा राज्ञः प्रियतमा भृशम् ॥ ५५ ॥

एतेषु दत्तभोज्येषु पूजितोऽहं विशेषतः ।
एवमुक्तः स रामेण निषादाधिपतिर्गुहः ॥ ५६ ॥

अनुरुध्य प्रभोराज्ञां रामस्य परमात्मनः ।
अश्वानां यवसं दत्त्वा बद्धाञ्जलिरुपस्थितः ॥ ५७ ॥

रामो जह्नुसुतातीरे धरण्यां कल्पिता सनः ।
जलं प्राश्यस्थितो धीमान् धर्मात्मा सत्यसागरः ॥ ५८ ॥

पादौ समुपवाह्यास्य लक्ष्मणो भक्तितत्परः ।
ततो नत्वा सभार्यं तं स्थितो वृक्षतले निशि ॥ ५९ ॥

सौमित्रिश्च सुमन्त्रश्च गुहश्च पुरुषर्षभः ।
त्रयो जाग्रत एवामी बद्धतूणा धनुर्धराः ॥ ६० ॥

यशांसि रामचन्द्रस्य गायन्तश्चरितानि च ।
अन्योन्यं दर्शयन्तश्च रामभक्तिमनुत्तमाम् ॥ ६१ ॥

तस्थुस्तरुतले वीराः कथयन्तः शुभाः कथाः ।
कैकेयीदुश्चरित्रेण पश्चात्तापभृतो हृदि ॥ ६२ ॥

रामस्य भूमौ जनकेन्द्रकन्यया साकं शयानस्य सुखोचितात्मनः ।
कुत्राप्यदृष्टेदृशदुःखसंहते रात्रिर्व्यतीयाय सुखेन सा ततः ॥ ६३ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे
इङ्गुदीतरुतलवासो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

गुहेन चिरमुक्तोऽपि लक्ष्मणः सुमहाव्रतः ।
न शिश्ये वरशय्यायां क्लृप्तायां स्वस्य हेतवे ॥ १ ॥

तमेव चात्मनोधर्मं गुहाय समदर्शयन् ।
दुःखं च सुमहत्प्राप्तं सर्वेषां समवर्णयत् ॥ २ ॥

ततः प्रभातकल्पायां रजन्यां नमसिक्षते ।
भास्करस्योदये सूतं सौमित्रि चाब्रवीदिदम् ॥ ३ ॥

उत्थीयतामितो भ्रातः सुमन्त्रायोज्यतां रथः ।
श्रूयते पक्षिणां शब्दः कोकिलः कुरुते रवम् ॥ ४ ॥

अरुणस्य प्रभा ताम्रा रञ्जयत्यखिलां भुवम् ।
काश्मीरक्षोदसलिलैः काननं परिरञ्जितम् ॥ ५ ॥

अधुना जह्नुतनयां तरिष्यामोः दिवो नदीम् ।
जगतः पावनीं रम्यां स्रोतसा दीर्घवेगिनीम् ॥ ६ ॥

ततः सुमन्त्रसौमित्रिगुहा बद्धाञ्जलीपुटाः ।
अग्रतः संस्थिता रामं गुहो नावमथानयत् ॥ ७ ॥

ततस्तौ बद्धतूणीरौ बद्धखड्गौ महारथौ ।
धनुष्मन्तौ महावीरौ सुधीरौ सीतया सह ॥ ८ ॥

त्रैलोक्यपाविनीं गङ्गां मुदा समुपजग्मतुः ।
रामः सुमन्त्रमुद्दिश्य वचनं समवोचत ॥ ९ ॥

गच्छाधुना सुमन्त्र त्वमयोध्यां सुखदायिनीम् ।
अतः परं निवर्त्तस्व गमिष्यामो वयं वनम् ॥ १० ॥

पद्भ्यामेवोचितः पन्था गन्तुमस्माकमुत्तमः ।
इति तेनाभ्यनुज्ञातः सारथिर्दीनमानसः ॥ ११ ॥

तद्वचो निष्ठुरं मत्वा प्रत्युवाच स्खलन्मनाः ।
अहोते पुरुषव्याघ्र धर्मनिष्ठा किमद्भुता ॥ १२ ॥

शास्ता त्वं सर्वलोकानां धर्मस्य च महामते ।
त्वया वियुज्य धर्मात्मन् किं सुखं भुवने नृणाम् ॥ १३ ॥

भवान् सौमित्रिसीताभ्यां वनेऽपि निवसन् प्रभो ।
प्राप्तासि परमं सौख्यं कुर्वन् विश्वस्य मङ्गलम् ॥ १४ ॥

वयं तु त्वां विना वीर निहताः स्म स्वकर्मणा ।
कैकेय्या दुश्चरित्रेण सर्वेषां दुःखमुत्थितम् ॥ १५ ॥

यत्र यत्र भवान् राम निवत्स्यसि महाव्रत ।
तत्र तत्रैव नियतं विजयो मङ्गलं श्रियः ॥ १६ ॥

अस्माकं तु महावीर न किं चिज्जीवतां फलम् ।
कैकेय्या वशगा भूत्वा प्राप्स्यामः परमां शुचम् ॥ १७ ॥

पदे पदे महद्दुःखमापदश्च पदे पदे ।
त्वया विवर्जिते नाथ नगरे नः शुभं गतम् ॥ १८ ॥

एवमुक्त्वा भृशं सूतो रुरोद बहुदुःखितः ।
तं सान्त्वयित्वा भगवान् बिलुप्ताश्रुं चकार ह ॥ १९ ॥

उवाच च भृशं तस्य दुःखेन परितापितः ।
मा वोचः करुणं प्राज्ञ पुरीं गच्छ मुहृत्तम ॥ २० ॥

त्वमस्माकं कुलस्यामि चिरेण हितकारकः ।
आश्वासय महीपालं वृद्धं मद्विरहातुरम् ॥ २१ ॥

यथा स नानुतप्येत वर्षीयान् धरणीपतिः ।
तथाऽऽश्वासय तं गत्वा मद्वाक्येन गरीयसा ॥ २२ ॥

प्रजानां पालनार्थाय भरतो धर्मतत्परः ।
मम प्राणप्रियो भ्राता मुख्यं राजा विश्रीयताम् ॥ २३ ॥

समानसुखदुःखस्य समगेहवनस्य च ।
मम दुःखेन भूपालो नानुतप्येत्तथा कुरु ॥ २४ ॥

समाश्वासय कैकेयीं सुमित्रां च विशेषतः ।
तथैवान्याश्च मे मातृः शोको नाभिभवेद् यथा ॥ २५ ॥

तां च सौभाग्यसम्पन्नां मदर्थे भूरिवेदनाम् ।
सुखदायिसुतां भूयः कौसल्यां च विशेषतः ॥ २६ ॥

आश्वासय महाप्राज्ञ भूयसा वचसा मम ।
प्रजाश्च दुःखसंतप्ताश्चिरमाश्वास यिष्यसि ॥ २७ ॥

पुनः पुनश्च राजानं बोधयिष्यसि मद्गिरा ।
रामे त्वया न संतापः कर्तव्य स्त्वद्वचो वशे ॥ २८ ॥

सहस्रवर्षपर्यन्तं वसेद् रामो वनालये ।
न च खिद्येत सत्येन तव वाक्यानुरोधतः ॥ २९ ॥

कियच्चतुर्दशाब्दं च वने वासोऽस्य दुःखकृत् ।
पितुराज्ञां त्यजेद्यस्तं[1] धिक् तं पुत्रं सुखार्थिनम् ॥ ३० ॥

पितुः सत्यं तथा स्वर्गो येन नैव व्यपेक्ष्यते ।
अलं तेन प्रजातेन पुत्रेणापुत्रता वरम् ॥ ३१ ॥

अकार्यमपि कुर्वेऽहमशक्यमितरैर्जनैः ।
न तत्कार्यं मया येन वचनीयं पितुर्भवेत् ॥ ३२ ॥

सर्वाश्च मातरो वाच्याः शुभं मद्विषये महत् ।
पादाभिवन्दनं कार्यं मातॄणां नृपतेश्च मे ॥ ३३ ॥

त्वरितं च नृपो वाच्यो भरतानयनं प्रति ।
यौवराज्याभिषेकेण सत्कार्यश्च विशेषतः ॥ ३४ ॥

---

१. यहाँ 'तु' पाठ ठीक जंचता है ।

मम प्राणप्रियो भ्राता भरतो नीतिमान् बुधः ।
एवं कृते पितुर्दुःखं मत्कृते न भविष्यति ॥ ३५ ॥

इत्येते मम संदेशाः पितुर्वाच्यास्त्वया भृशम् ।
भरतोऽपि चिरं सूत संदेष्टव्यो गिरा मम ॥ ३६ ॥

वर्तस्व न्यायतो राजन्यपि सम्पालय प्रजाः ।
सर्वासुचाविशेषेण वर्त्तेथा वत्स मातृषु ॥ ३७ ॥

विशेषान्मद्वियुक्तायां कौसल्यायां दयां कुरु ।
इत्यादि सर्वबन्धुभ्यः संदिदेश रघूद्वहः ॥ ३८ ॥

अथ रामं समालोक्य लक्ष्मणः सूतमब्रवीत् ।
कैकेयीं प्रति सामर्षो निःश्वासैः पूरिताननः ॥ ३९ ॥

भृकुटीकुटिलापाङ्गः क्रोधारक्तविलोचनः ।
भुवं विलोकयन् वीर उवाच पितरं प्रति ॥ ४० ॥

इदं ममापि वाक्येन संदेष्टव्यो महीपतिः ।
चिरं राजन् प्रणामोऽयं लक्ष्मणस्यातिखिद्यतः ॥ ४१ ॥

सम्यक्कृतं महीपाल रामः प्रव्राजितो वनम् ।
विनापराधं मे भ्राता कैकेय्या वचनात्त्वया ॥ ४२ ॥

इदं ते दुष्कृतं राजन् गास्यन्ति भुवने जनाः ।
त्रैलोक्यरञ्जनो रामः कीर्त्तिमान् धर्मतत्परः ॥ ४३ ॥

शान्तिनिष्ठस्तपोनिष्ठस्त्वयि प्रीतिविवर्द्धनः ।
किमागः कृतवान् रामो यद्वने निरवासयः ॥ ४४ ॥

यत् पुत्रेण प्रकर्त्तव्यं तद् रामेणाखिलं कृतम् ।
यशस्यं धर्मयुक्तं च त्रैलोक्ये प्रथितं महत् ॥ ४५ ॥

पित्रा तु यत् प्रकर्त्तव्यं पुत्रस्नेहेन भूपते ।
न तत्त्वया कृतं किंचिद् द्वयोस्तुल्ये कृताकृते ॥ ४६ ॥

निःस्नेहत्वे च पारुष्ये दुष्कृते च महीपते ।
न किंचिदवशिष्टं ते कैकेय्या वचनाद् भृशम् ॥ ४७ ॥

प्रमादरूपिणीं तात निपीय मदिरामिमाम् ।
अलं ते परितापेन शोके न च महीयसा ॥ ४८ ॥

स्वयमेवेदृशं कर्म यशोधर्मविवर्जितम् ।
विधाय परितप्यन्ते न तु जातु भवादृशाः ॥ ४९ ॥

इत्यादि क्रोधरक्ताक्षश्चिरं संदिश्य सारथिम् ।
तूष्णींमास विलोक्यार्थं वारयन्तं महाभुजम् ॥ ५० ॥

ततोऽब्रवीत्स्वयं रामो लक्ष्मणेन रुषोदितम् ।
न वाच्यः परुषं राजा दुःखी मद्विरहाद् भृशम् ॥ ५१ ॥
सद्यः परुषमाकर्ण्य त्यजेत्प्राणानपि क्वचित् ।
न निःस्नेहो महाराजः सत्यसंयुक्त एव सः ॥ ५२ ॥
मातरं पितरं चैव स्वर्गं कीर्तिं सुखानि च ।
सत्येन संत्यजन् पुत्रं परमं धर्ममाप्नुते ॥ ५३ ॥
लुप्यते न मयि स्नेहो राज्ञः सत्यं हि रक्षतः ।
अतः क्रुद्धस्य मे भ्रातुर्लक्ष्मणस्य वचस्त्वया ॥ ५४ ॥
न वाच्यं पृथिवीपाले भृशं ह्यसि विचक्षणः ।
प्रियमेव सदास्माभिर्वाच्यं तस्मिन् प्रियोचिते ॥ ५५ ॥
अपि नैतत्क्वचिद् दृष्टं यत्स्वपुत्रं निरागमम् ।
पिता त्यजेत्स्त्रीवाक्येन विनैवार्थं तु भाविनम् ॥ ५६ ॥
इत्यादिभिर्वचोरूपैरमृतैः परिबोधितः ।
सुमन्त्रो रामविश्लेषशोकादतिनिपीडितः ॥ ५७ ॥
उवाच दीनहृदयो रामं कमललोचनम् ।
क्व मां निवर्त्तयस्येवं नगर्यां किं धृतं मम ॥ ५८ ॥
सर्वस्वमसवस्त्वं मे वनं व्रजसि राघव ।
त्वया विना पुरे किं मे न गन्तुं तत्र रोचये ॥ ५९ ॥
वन एव गमिष्यामि त्वया सह महामते ।
न निवर्त्तय मां राम शून्ये तत्र पुरे त्वया ॥ ६० ॥
कथं त्वया विरहितं रथमास्थाय राघव ।
गमिष्यामि पुरीं किं मां वक्ष्यन्ति पुरवासिनः ॥ ६१ ॥
प्रसीद रामचन्द्र त्वं वने गन्तुं त्वया सह ।
अग्रेसरस्तव वने भविष्यामि रघूद्वह ॥ ६२ ॥
तव सेवापरो नित्यं परांगतिमवाप्नुयाम् ।
त्वां प्रवास्य वने पापभागिनो नृपतेरहम् ॥ ६३ ॥
संनिधिं न भजिष्यामि विहाय त्वं सुधार्मिकम् ।
वनवासं व्यतिक्रम्य त्वया सह पुनः प्रभो ॥ ६४ ॥
अनेनैव रथेनाहं नेष्यामि त्वां शुभां पुरीम् ।
क्षणवन्मम यास्यन्ति त्वत्सगेऽब्दाश्चतुर्दश ॥ ६५ ॥
अन्यथा न क्षपयितुं शक्तोऽहं शतवर्षवत् ।
भक्तोऽस्मि तव दासोऽस्मि न मां त्यक्तुं त्वमर्हसि ॥ ६६ ॥

त्वया त्यक्तो न जीविष्ये प्रवेक्ष्ये ज्वलिते शुचौ ।
मयि वन्ध्या कथं चास्तु भक्तवत्सलता तव ॥ ६७ ॥

एवं विलप्य बहुधा सुमन्त्रो भूरि दीनवाक् ।
निपत्य पदयोस्तस्य चिरमास महात्मनः ॥ ६८ ॥

ततस्तं करुणासिन्धुर्भगवान् रघुपुङ्गवः ।
उवाच बाष्पनयनः सान्त्वयन् कलया गिरा ॥ ६९ ॥

अवश्यमेवगन्तव्यं सुमन्त्र नगरीं प्रति ।
कैकेय्याः प्रत्ययार्थाय नूनं रामो वनं गतः ॥ ७० ॥

इति निःशङ्कहृदया यास्यते महतीं मुदम् ।
ज्ञास्यते स्वात्मना नूनं तातं नः सत्यवादिनम् ॥ ७१ ॥

अन्यथा जातु शङ्केत मिथ्यावादीति भूपतिम् ।
यदर्थं सकलो यत्नो मया सम्यगनुष्ठितः ॥ ७२ ॥

जानामि ते परां भक्तिं मय्यनन्यमना असि ।
कुरु मद्वचनं सम्यक् सुमन्त्र नगरीं व्रज ॥ ७३ ॥

इत्युक्त्वा रघुशार्दूलः खिद्यन्तं तं पुनः पुनः ।
सान्त्वयामास भूपश्च वाष्पोदपि हिताननः ॥ ७४ ॥

ततश्चाज्ञापयामास गुहं सुहृदमात्मनः ।
समानय वटक्षीरं लेपयिष्यामि मूर्द्धजान् ॥ ७५ ॥

वनवासोचिताः सम्यक् करिष्यामि जटाः सखे ।
स तदाज्ञाकरः क्षिप्रं तथा चक्रे गुहः सुहृत् ॥ ७६ ॥

रघुनाथो जटाश्चक्रे लक्ष्मणस्य तथाऽऽत्मनः ।
आजानुबाहुरुचिरौ जटाघोरणिशालिनौ ॥ ७७ ॥

तेजसा त्वेन दीव्यन्तौ तापसोत्तमवेशिनौ ।
भ्रातरौ तुल्यवयसौ नीलमेघमनोहरौ ॥ ७८ ॥

अशोभतामुभौसम्यगनुभावविशेषतः ।
अथोवाच गुहं रामः स्मयमानो मुदान्वितः ॥ ७९ ॥

सदा त्वं कुशली भूया निजं राज्यभरं वहन् ।
निषादाधिपते नित्यं मम मैत्रीं न विस्मरेः ॥ ८० ॥

अप्रमत्तोऽखिलाङ्गेषु प्रजाः समनुपालय ।
इत्यनुज्ञाप्य सहसा गुहं काकुत्स्थसत्तमः ॥ ८१ ॥

पूर्वं लक्ष्मणमाज्ञाप्य नावारोहणकर्मणि ।
ततः सीतां समारोप्य स्वयं नावमथारुहत् ॥ ८२ ॥

अभिवीक्ष्य पुनश्चैष प्रसन्नतमया दृशा ।
सुमन्त्रं च गुहं चैव सामात्यं भक्तमात्मनः ॥ ८३ ॥

अथ सम्प्रेरयामास नाविकान् रघुसत्तमः ।
तैः प्रेरिता तु नौः शीघ्रं कर्णधारैः प्रवाहगा ॥ ८४ ॥

वभूव वायुवेगेन परपारोन्मुखी ततः ।
मध्येगङ्गा परिप्राप्ता तुष्टाव जनकात्मजा ॥ ८५ ॥

अयि देवि पुरारिकपर्दिचरीं नवमौक्तिकमालिकया तुलिताम् ।
सुरलोकतरंगिणि सिन्धु वधू प्रणमामि चिरं भवतीं जननि ॥ ८६ ॥

सुरभूरुहपुष्पवराञ्जलिभिस्तव पूजितमम्वु सुरर्षिगणैः ।
सुविभाति सदा सुधया सदृशं भृशमञ्चितसौरभसारमिदम् ॥ ८७ ॥

त्रिविधान्तरतापविनाशकरी त्रिदशालयमञ्जुलवीथिचरीम् ।
विलसत्परमामृतपूरझरी भववारिनिधेस्तरणाय तरी ॥ ८८ ॥

त्वमनन्तशुभोदयमोदनिधिर्विधिविष्णुशिवादिसुरौद्यनुता ।
जयसि प्रसभं जनपापहरा धरणीतलशोभिवलक्षरुचिः ॥ ८९ ॥

प्रसादयामि जाह्नवि त्वमीश्वरी शुभं कुरु ।
पुनस्त्वया समागमो ममास्तु निर्धुतापदः ॥ ९० ॥

गङ्गे तव प्रसादार्थं घटोघ्नीर्गाः सहस्रशः ।
सकल्पयामि मनसा शीघ्रं कुरु ममोदयम् ॥ ९१ ॥

जवेनविपदं तीर्त्वा पत्या साकं महात्मना ।
कदा द्रक्ष्यामि देवि त्वां गङ्गे त्रैलोक्यमङ्गलाम् ॥ ९२ ॥

इति संस्तूय सा गङ्गां मध्येस्रोतसि संस्थिता ।
समीरजवया ना वा परं पारमुपागमत् ॥ ९३ ॥

दक्षिणं तीर्थमासाद्य जाह्नव्या लोकपावनम् ।
सीतासौमित्रिसहितः कृतकार्यांतरीं जहौ ॥ ९४ ॥

ते गङ्गां लोकशुभदां प्रणम्य नतकन्धराः ।
ततो विसर्जयामासुर्नाविकान् भक्तिसंनतान् ॥ ९५ ॥

रामं त्यक्तुमनिच्छन्तो नाविका विरहातुराः ।
सान्त्वयित्वा चिरं तेन मुक्तास्तीरावनौ स्थिताः ॥ ९६ ॥

चक्षुःपथादतिक्रान्ते रामे त्रैलोक्यसुन्दरे ।
विषण्णहृदयः सूतो गुहश्चापि न्यवर्त्तत ॥ ९७ ॥

प्रसादं बहुलं प्राप्य रामस्याच्युतकर्मणः ।
मैत्रीं सौमित्रितुल्यां च कृतकार्योऽभवद् गुहः ॥ ९८ ॥

पुरः सुमित्रातनयस्तत्पश्चाज्जनकात्मजा ।
तस्याः पश्चात्पथं रक्षन् धनुष्पाणिः स्वयं ययौ ॥ ९९ ॥

महान्तं मार्गमभ्येत्य सीतया सहितावुभौ ।
ततः पुष्करिणीं दिव्यां भ्रातरौ समपश्यताम् ॥ १०० ॥

राजहंसशताकीर्णां फुल्लकह्लारमण्डिताम् ।
पद्मकैरवसंदोहसंशोभिविमलोदकाम् ॥ १०१ ॥

दर्शनीयशुभाकारां चक्रसारसनादिताम् ।
कारण्डवकुलध्वाननादिताशेषकाननाम् ॥ १०२ ॥

दर्शयामास वैदेह्यै तां रामो जातसम्भ्रमः ।
पश्य प्रिये शुभामेतां सरसीं त्वामिवोज्ज्वलाम् ॥ १०३ ॥

उत्फुल्लपद्मवदनां फुल्लेन्दीवरलोचनाम् ।
भ्रमरावलिसंजातलोलालकलतारुचिम् ॥ १०४ ॥

राजहंसकुलोन्नादिमञ्जीरध्वनिमञ्जुलाम् ।
उत्तुङ्गपुलिनारोहनितम्बद्युतिशोभिताम् ॥ १०५ ॥

चलत्तरङ्गसंदोहतारुण्यमदविभ्रमाम् ।
समीरवेगजातोर्मित्रिवलीचारुविग्रहाम् ॥ १०६ ॥

मिथुनीभूतचक्राह्ववक्षोजद्वयशोभिताम् ।
मृणालकाण्डदोर्लग्नकरपङ्कजभूषिताम् ॥ १०७ ॥

ततः पद्मपरागौघदिव्यांशुकविराजिताम् ।
निशम्य पत्युर्वचनं वैदेही सत्रपाभवत् ॥ १०८ ॥

अलं प्रिय मृषोद्येनेत्युक्त्वा तां सुमदैक्षत ।
तस्यास्तीरे महोत्तुङ्गं न्यग्रोधतरुमाश्रितौ ॥ १०९ ॥

भ्रातरौ सीतया युक्तौ तां रात्रिं तौ व्यतीयतुः ।
लक्ष्मणो जानकीप्रीत्यै पद्मानि समुपाहरत् ॥ ११० ॥

पद्महस्ता तु सा रेजे साक्षाल्लक्ष्मीरिवाद्भुता ।
त्रिरात्रं ते जलं प्राश्य तस्थुर्घोरतरे वने ॥ १११ ॥

चतुर्थीं तां निशं प्राप्य फलान्यादुर्महाव्रताः ।
हत्वा च चतुरो मेध्यान् सायं न्यग्रोधमास्थिताः ॥ ११२ ॥

त्वरितास्तत्र सम्प्राप्तास्त्रिरात्रेणबुभुक्षिताः ।
उपास्य पश्चिमां संध्यां प्राणावृत्तिमकल्पयन् ॥ ११३ ॥

लोकवृत्तमधिष्ठाय विललापचिरं वटे ।
सौमित्रिसहितो रामः कैकेयीं समनुस्मरन् ॥ ११४ ॥

देशाद्विनिष्क्रान्तवतोऽस्य सा निशा विना सुमन्त्रं प्रथमान्वपद्यत ।
घोरे वने जाग्रत एव तत्र ते न्यग्रोधमूले विजनेऽधितस्थिरे ।। ११५ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे न्यग्रोधतरुतलवासो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।। १३ ।।

चतुर्दशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथोदिते दिवानाथे नदत्पक्षिगणस्वरैः ।
विनीतनिद्राः प्रोत्थाय ततः स्थानात्प्रतस्थिरे ।। १ ।।
संफुल्ल चित्रपुष्पोद्यान् गुञ्जद् भ्रमरनादितान् ।
पश्यन्तः पादपान् रम्यान् लताश्च कुसुमान्विताः ।। २ ।।
नानावर्णा मनोज्ञाश्च नवपल्लवभूषिताः ।
देशांश्च विविधान् पद्भ्यां विगाहन्तो दृढव्रताः ।। ३ ।।
कल्याणतरमध्वानं प्राप्य कौतूहलान्विताः ।
प्रजग्मुः सम्प्रमुदिताः प्रसन्नमनसो भृशम् ।। ४ ।।
रक्तायमाने तपने भरद्वाजाश्रमं ययुः ।
यत्र गङ्गामनुगता यमुना भूरिवेगिनी ।। ५ ।।
तयोः सन्धि समासाद्य स्थिता यत्र सरस्वती ।
यत्रत्यक्त्वा तनुं मर्त्या ब्रह्मज्योतिर्विशन्ति हि ।। ६ ।।
वसन्ति मुनयो यत्र भरद्वाजमनुव्रताः ।
तपस्विनो वीतरागाः परापरविदुत्तमाः ।। ७ ।।
तेषां सम्पठतां नित्यं ब्रह्मघोषो दिवानिशम् ।
प्रवर्तते मुखरयन् वनानि च दिशो दश ।। ८ ।।
तत्र दूरात्सुसंलक्ष्य मुनीनामाश्रमेष्वलम् ।
अग्निहोत्रोद्भवं धूमं मुमुदे रघुपङ्गवः ।। ९ ।।
सीतासौमित्रिसंयुक्तः पश्यन्नाश्रमभूरुहान् ।
गङ्गायमुनयोः शृण्वन् मिथः संघर्षजं रवम् ।। १० ।।
अस्तं याति रवौप्राप महर्षेः पुण्यमाश्रमम् ।
तीर्थराजे प्रयागाख्ये प्रतिष्ठिततमं शुभम् ।। ११ ।।

तत्र गत्वा मुनीशानं भरद्वाजं तपोनिधिम् ।
एकान्ते सु समासीनं हुताग्निं शंसित व्रतम् ॥ १२ ॥
दृष्ट्वा ननाम वैदेह्या लक्ष्मणेन च संयुतः ।
स्वात्मानं ज्ञापयामास मुनये रघुनन्दनः ॥ १३ ॥

ब्रह्मन् दशरथस्यावामात्मजौ रामलक्ष्मणौ ।
इयं मेऽनुव्रता भार्या पुत्री जनकभूपतेः ॥ १४ ॥
गृहात्प्रव्राजितं पित्रा मामेषानुगता सती ।
अयं च मेऽनुजो ब्रह्मन् सौमित्रिः कृतनिश्चयः ॥ १५ ॥

स्वयमेवान्वगाद्वीरो वनवासोन्मुखं हि माम् ।
सोऽहं वने चरिष्यामि धर्मं प्रव्रजितो गृहात् ॥ १६ ॥
वन्यै रेव विधास्येऽहं वृत्तिं मूलफलादिभिः ।
इत्युक्तो रघुवर्येण मुनिवर्यस्तपोनिधिः ॥ १७ ॥

सूक्ष्मदर्शी ददौ तस्मै आसनं चार्घमुत्तमम् ।
उदकं च प्रदायास्मै फलमूलैरभोजयत् ॥ १८ ॥
काकुत्स्थः प्रतिगृह्यास्मादातिथ्यमतिथिप्रियात् ।
सूपविष्टः शुभे देशे शुभासनपरिग्रहः ॥ १९ ॥

सीतासौमित्रिसहितो बभाषे मुनिना ततः ।
भवद्भिः पालिते देशे योगक्षेमाद्वसामहे ॥ २० ॥
चिरं तव पितुः प्रीत्यै सरयूतीरमाश्रितम् ।
इदानीमत्र तिष्ठामि स्वाश्रमे मे पुरातने ॥ २१ ॥

गङ्गायमुनयोर्मध्यं पुण्यं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
इयं मे वसतिः पुण्या चिरं तिष्ठात्र राघव ॥ २२ ॥
चिरेणा निःसृतो गेहादिति त्वामनुशुश्रुम ।
कारणं चापि विज्ञातं वनं प्रवसति त्वयि ॥ २३ ॥

इमं देशं समातिष्ठ रघूद्वह मया सह ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये सावकाशमिदं वनम् ॥ २४ ॥
इहैव सीतया सार्धं पुत्र्या जनकभूपतेः ।
सुखं विहर रामेन्दो वर्द्धयन् मद् दृशोः सुखम् ॥ २५ ॥
सौमित्रिश्च तव भ्राता सुखं तिष्ठतु मे वने ।
गङ्गायमुनयोः सन्धो विस्तृते पुण्यतीर्थके ॥ २६ ॥
पत्रमूलफलादीनामिह सौलभ्यमस्ति च ।
अतोऽत्रस्थीयतां राम यदि ते हृदिरोचते ॥ २७ ॥

इत्युक्तस्तेन मुनिना रामो मुदितमानसः ।
उवाच दीर्घतपसं भरद्वाजं स्ववेदिनम् ।। २८ ।।

महदेव भवेद् भाग्यं शुभं च महदेव मे ।
त्वया परावरज्ञेन सह संवसतो वने ।। २९ ।।

किं त्वितो निकटेऽयोध्या भगवन् मा पुरी मम ।
पौरैर्जानपदैर्लोकैः प्रेक्षकैर्मां विशेषतः ।। ३० ।।

करिष्यतेऽत्र सम्मर्द एकान्ते भवदाश्रमे ।। ३१ ।।

अतो नात्र रुचिर्वासे कृपैव तव भूयसी ।
एकान्ते ममवासार्थं क्वचित्स्थानं विमृष्यताम् ।। ३२ ।।

इत्युक्तः सत्यसन्धेन रामेण मुनिसत्तमः ।
सर्वैः कामैरदीनात्मा तस्यां निशि महावसत् ।। ३३ ।।

सुविचित्राः कथाः कुर्वन् मुनिना तत्त्ववेदिना ।
मुमुदे रघुशार्दूलो जानकीलक्ष्मणान्वितः ।। ३४ ।।

पूजितस्तापसवरैर्भारद्वाजाश्रमस्थितैः ।
श्लाघितः संस्तुतश्चैव सुप्रसन्नोऽभवद्भृशम् ।। ३५ ।।

भरद्वाजो मुनिश्रेष्ठः प्रतिपूज्य रघूद्वहम् ।
शुभासनस्थितं पश्चादिदमूचे वचोऽमृतम् ।। ३६ ।।

जानामि त्वां रघुश्रेष्ठ धर्मरक्षण हेतवे ।
संजातं सूर्यवंशस्य भूषणं स्वेन तेजसा ।। ३७ ।।

साकेतनाथो भगवान् पूर्णः सहजशक्तिभिः ।
स्वयं सर्वगुणैराढ्यः स त्वं त्रिभुवनेश्वरः ।। ३८ ।।

कुर्वन्नद्भुतकर्माणि वितन्वन् विशदं यशः ।
विचरिष्यसि धर्मात्मन् वनेषु पुरुषोत्तम ।। ३९ ।।

दर्शनस्पर्शनप्रश्नपादशौचासनादिभिः ।
पावयन् सर्वदेशेषु मुनीनामाश्रमाञ्छुभान् ।। ४० ।।

संहरन्नसुरानीकमुद्धरन्नायुधैर्निजैः ।
शोभयन् धरणीमेतां चरणाङ्कैर्मनोहरैः ।। ४१ ।।

चरिष्यसि हितं कुर्वन् देवानां च द्विजन्मनाम् ।
शाश्वतं पालयन् धर्ममाविर्भूतोऽसि यत्कृते ।। ४२ ।।

प्रस्थास्यमानं त्वां ज्ञात्वा पूर्वमेव मया पुरी ।
परित्यक्ता कृतो यस्यां तव पित्रा ममाश्रमः ।। ४३ ।।

येऽन्ये च मुनयो राम तवपुर्यां निवासिनः ।
ते प्रस्थितं त्वां विज्ञायत्पक्ष्यन्ति वसतिं ध्रुवम् ।। ४४ ।।

न त्वां विहाय किमपि प्रियं नो भुवनत्रये।
येषां हृतं तपश्चैव त्वदर्थे रघुपुङ्गव ॥ ४५ ॥

एवं विचित्रवार्त्ताभिर्मोदयन् रघुवल्लभम्।
निनाय तां निशं तस्य पार्श्वे परमनिर्वृतः ॥ ४६ ॥

अथ प्रभातेऽभ्युदिते दिनेश्वरे प्रणम्य रामो मुनिवर्यमादरात्।
सौमित्रिसीतासहितो महामना निमज्ज्य गङ्गायमुनासमागमे ॥ ४७ ॥

मुनीन्द्रदिष्टेन पथा प्रथीयसा सम्प्रस्थितो धर्मधरो धनुर्धरः।
पुरोनिधायानुजमस्य पृष्ठगां प्रियां पुरोधाय विदेहजां ययौ ॥ ४८ ॥

सन्तीर्यांशुमतीं स लक्ष्मणसमाबद्धप्लवेनाशुगां
कालिन्दीं यमुनांसु[1]तीर्थसलिलां न्यग्रोधमासाद्य च।
वैदेह्या भृशसंस्तुतस्य त्र तले विश्रम्य तस्य क्षणं
गव्यूत्यन्तरमार्गमेत्य च ततश्चक्रे निवासं वने ॥ ४९ ॥

श्रीमान् मनोज्ञे यमुनातटे शुभे जलार्थमायातमपश्यदुद्धतम्।
कुलं मृगाणां विनिहत्य तेष्वसौ कांश्चिन्निवासाय ततो द्रुतं ययौ ॥ ५० ॥

सूर्यात्मजात्रप्रवने सुशीतले तरङ्गसंशीलितवातसेविते।
चिरं विहृत्य प्रिययानुजेन च क्षपागमे सोऽध्य वसन्मुदान्वितः ॥ ५१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे यमुनातीरनिवासो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ प्रभातवेलायां गरुड़ाग्रजरोचिषा।
विलिप्ते कानने तस्मिन् सिन्दूरेणेव रञ्जिते ॥ १ ॥

नवकाश्मीरजरसैः प्रक्षालित इवाद्भुते।
ललत्पल्लवसंदोहशोभाढ्यविविध्रद्रुमे ॥ २ ॥

यमुनावातलहरीवीज्यमानलतागृहे।
सूर्योदयरणच्चित्रपतङ्गकुलनादिते ॥ ३ ॥

---

१. तथाच्छ—अयो०, मथु०।

पुंस्कोकिलगणोद्गीतप्राभातिकसुमङ्गले ।
रामः प्रोत्थापयामास शनैः सौमित्रिमादरात् ॥ ४ ॥

श्रूयतां भ्रातरधुना विचित्रविहगध्वनिः ।
प्राभातिकीं शुभां वेलां पश्य लक्ष्मण सम्प्रति ॥ ५ ॥

अरुणस्य प्रभा शोणा लिम्पतीवाखिलं वनम् ।
पश्य द्विगुणमारुण्यं तरूणां पल्लवेष्विह ॥ ६ ॥

उत्फुल्लकमलामोदीवाति प्राभातिकोऽनिलः ।
अतोऽधुना वयं सर्वे स्नात्वा पाथसि यामुने ॥ ७ ॥

उपास्य प्रथमां संध्यां प्रस्थातुमुचिताः सखे ।
ततः सर्वे तथा कृत्वा पूतात्मानः प्रतस्थिरे ॥ ८ ॥

तद्वर्त्म चित्रकूटस्यनिर्दिष्टं मुनिनापुरा ।
सम्प्राप्य शोभयाञ्चक्रुस्त्रयस्ते विश्वमोहनाः ॥ ९ ॥

अचिरेणैव कालेन ददृशुर्जातकौतुकाः ।
चित्रकूटं महाशैलं गन्धमादनसन्निभम् ॥ १० ॥

विचित्रभूरुहाकीर्णं लतामण्डपमञ्जुलम् ।
विचित्रपुष्पस्तबकरमणीयलताकुलम् ॥ ११ ॥

विचित्रपक्षिसंदोहमधुरध्वनिनादितम् ।
उत्तुङ्गानेकशिखरनानावर्णमनोहरम् ॥ १२ ॥

नानानिर्झरनिर्ह्लादमिश्रझिल्लीगणस्वनम् ।
प्रभूतफलमूलाढ्यं प्रभूतमधुसम्भवम् ॥ १३ ॥

रमणीयं महत्पुण्यं कन्दरामन्दिरान्वितम् ।
स्वधास्वच्छम्बुवाहिन्या मन्दाकिन्या विराजितम् ॥ १४ ॥

नानाकुञ्जरयूथाढ्यं मृगयूथविराजितम् ।
कपालशिरसो नाम्नो महर्षेःस्थानमुत्तमम् ॥ १५ ॥

अन्येषां च मुनीन्द्राणां स्थानभूतं मनोहरम् ।
विकसन्मञ्जुमन्दारपारिजातवनान्वितम् ॥ १६ ॥

कल्पवृक्षद्रुमच्छायाविश्रान्तमुनिमण्डलम् ।
कूजत्कोकिलभृङ्गौघशिखण्डिगणसेवितम् ॥ १७ ॥

झिल्लीझङ्काररमधुरं चकोरीचयनादितम् ।
राजहंसकुलानन्दिसरसीशतसुन्दरम् ॥ १८ ॥

फुल्लकुन्दकदम्बाम्र चम्पकद्रुमसंकुलम् ।
शीतात्ययसुसंफुल्लपद्मशोभिसरोजलम् ॥ १९ ॥

प्रदीप्तकिंशुकाशोकपुष्पकान्तिमनोहरम् ।
भल्लातकवनच्छन्नं बिल्वतिन्दुकसंकुलम् ॥ २० ॥

फलभाररनानेककपित्थपनसद्रुमम् ।
कदलीखण्डसंशोभिगह्वरोन्नादिनिर्झरम् ॥ २१ ॥

स्थले स्थले महातीर्थैस्त्रिजगत्पावनैर्युतम् ।
अतिपुण्यतमानेक शृङ्गोच्छ्रायविभूषितम् ॥ २२ ॥

साक्षात्स्वर्गोपमं दिव्यं सुविस्तीर्णशिलातलम् ।
क्वचिन्मारकतैः शृङ्गैर्गगनं व्याप्य संस्थितम् ॥ २३ ॥

क्वचिद्रत्नमयैः क्वापि स्फाटिकैः सुमहोन्नतैः ।
क्वचिच्चमाणिक्यमयैः क्वचित्स्वर्णमयैरपि ॥ २४ ॥

क्वचित्सिन्दूरपूरेण संध्यातपमिवारुणम् ।
क्वचिन्नवतृणाभासधातुभिर्हरितापितम् ॥ २५ ॥

क्वचिद्धातुरसैः पीतैर्वसन्तमिवकाञ्चनम् ।
अनेकधातुप्रभवमनेकाद्भुतसुन्दरम् ॥ २६ ॥

वीक्ष्य रामो जनकजामब्रवीन्मधुरं वचः ।
रामणीयकमस्याद्रेः पश्य वैदेहि सम्प्रति ॥ २७ ॥

अस्मदागमनोद्भूतसर्वर्तुसुषमाञ्चितम् ।
वनं प्रमोदयति मामध्युपत्यकमूर्जितम् ॥ २८ ॥

इमाः फलभरैर्नम्राः पुष्पवन्त्यो महालताः ।
मन्दानिलेन कम्पन्ते कन्दर्पेणेव योषितः ॥ २९ ॥

पुष्पाञ्जलिमिवादाय स्थिताः पल्लवपाणिभिः ।
फलभारैर्नमच्छीर्षा भक्त्येव प्रयता द्रुमाः ॥ ३० ॥

अनुमन्दाकिनीं पश्य पुलिने पुष्पितान् द्रुमान् ।
वनराजिरियं पुण्या मनो मोदयते भृशम् ॥ ३१ ॥

अत्रेमे तरवः सम्यक् फलभारैः समाकुलाः ।
कामं नः पूरयिष्यन्ति विनाऽऽयासेन जीवनम् ॥ ३२ ॥

नानाविधानि मूलानि स्वादूनि सुरभीणि च ।
फलानि पाकरम्याणि शाकानि विविधानि च ॥ ३३ ॥

उपायोक्ष्यामहे शश्वत्प्राणवृत्त्यै विदेहजे ।
अत्र त्वत्पाणिचरणप्रतीकाशाः प्रभारुणाः ॥ ३४ ॥

दृश्यन्ते तरुवल्लीनां पल्लवाः पश्य तान् प्रिये ।
अत्र कूजन्त्यमी रम्यं पक्षिणः कोकिलादयः ॥ ३५ ॥

अनङ्गवर्द्धनं मन्त्रं पठन्त इव संततम् ।
निषण्णास्तरुशाखासु स्निग्धच्छायासु पल्लवैः ॥ ३६ ॥

सर्वर्त्तुसुखशोभाढ्यं वनमेतद् विलोक्यताम् ।
उपत्यकामनुगिरेर्नीलं पत्रौघ सम्पदा ॥ ३७ ॥

शृणुष्वात्र गिरौ रम्ये गायत्रीर्वनदेवताः ।
मूर्छयित्वा स्वरैर्वीणां पञ्चमोद्गारशालिनीः ॥ ३८ ॥

तासामसूययेवेमाः कूजन्ति वनकोकिलाः ।
रसालशिरसि स्थित्वा नादिताशेषकाननाः ॥ ३९ ॥

इह वैदेहि परमां मनोमुदमवाप्स्यसि ।
निवसन्ती मया सार्धं सुखेन विहरिष्यसि ॥ ४० ॥

इत्येवं वर्णयन् रामो वैदेह्या जनयन् मुदम् ।
पश्यन् मन्दाकिनीं रम्यां पुष्पितोद्देशकाननाम् ॥ ४१ ॥

सौमित्रिसहितः प्राप्तश्चित्रकूटं महागिरिम् ।
वासानुरूपमनिशं विलासोचितमात्मनः ॥ ४२ ॥

ततस्तस्यैकपार्श्वे तौ भ्रातरौ प्रीतमानसौ ।
आवासं चक्रतुर्वीरौ सुस्निग्धौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४३ ॥

लक्ष्मणो जानकीरामप्रीतिसंवर्द्धनीं पृथक् ।
पर्णशालां समातेने मनोज्ञशयनान्विताम् ॥ ४४ ॥

आत्मने च ततश्चक्रे पर्णशालां लघीयसीम् ।
पत्रैर्लतावितानैश्च वेत्रबद्धैः सुदारुभिः ॥ ४५ ॥

वंशैश्च हरितैः सम्यग् विधिना विनिवेशितैः ।
नानापर्णौघसंछन्ने पर्णशाले विरेजतुः ॥ ४६ ॥

सम्मार्जिते चोपलिप्ते संस्कृते च विशेषतः ।
ततश्च मृगमांसेन श्रपयित्वा चरुं शुभम् ॥ ४७ ॥

इध्मैरग्निं परिज्वाल्य जुहुवे रघुसत्तमः ।
देवान् पितृंश्च सम्पूज्य सर्वभूतानि चाहृतः ॥ ४८ ॥

हुतशेषं ततः स्वादु धृत्वा पर्णपुटे प्रभुः ।
परिविष्टं सवैदेह्या सानुजो बुभुजे स्वयम् ॥ ४९ ॥

सीतापि बुभुजे देवी स्वयं लक्ष्मीस्तदाज्ञया ।
तयोः शेषं समादाय स्थित्वैकान्ते शुभाशया ॥ ५० ॥

ततश्च तां पर्णमयीं मनोहरां प्रविश्य शालां रघुवंशाब्धिचन्द्रः ।
विनोदयामास विदेहजां रमां मुदा नदात्मैकरसौ महामनाः ॥ ५१ ॥

लक्ष्मणस्तावुपासीनो दासकृत्यपरायणः ।
आसीद् दूरे समीपे च यथाभिरुचितं तयोः ।। ५२ ।।

ते तत्र शैले विजने वनावृते मनोज्ञनानापशुपक्षिसंकुले ।
फलप्रसूनस्तबकोपशोभितद्रुमाकुले भूरिसुखा विजह्रिरे ।। ५३ ।।

दरीषु रम्यासु वनेषु विस्फुरद्विचित्रवल्लीशतमण्डपेषु च ।
शुभेषु तन्माल्यवतीतटेषु च प्रकाममध्यास्य महामुदं दधुः ।। ५४ ।।

जायापती तौ कृतधातुमण्डनौ विचित्रबर्हस्तबकोपशोभितौ ।
गुञ्जामणिस्रग्वरकान्तिधारिणौ विजह्रतुः शैलवरे यथासुखम् ।। ५५ ।।

रामो रमां रमणीयैर्विलासैः साक्षात्परां सहजानन्दिनीं ताम् ।
प्रमोदया मास यथा प्रमोदवने मनोज्ञे सुखितेन्द्रधाम्नि ।। ५६ ।।

ताः कन्दराः संस्तृतचारुपल्लवा दिव्यौषधीरत्नसमूहदीपिताः ।
अध्यास्य माणिक्यमयीश्च ताः शिलाः सदैव रामो रमयाम्बभूव ताम् ।। ५७ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे चित्रकूटनिवासो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।। १५ ।।

षोडशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

वसन् गिरिवरे रामः सीतया सहितः प्रभुः ।
रसिकेन्द्रः स्वयं रेमे पौलोम्या सुरराडिव ।। १ ।।

प्रियामादाय मुदितामेकान्ते सञ्चरन् वने ।
विजहार विलासाढ्यः सर्वर्तुसुखदे गिरौ ।। २ ।।

उवाच गह्वरे कुञ्जे दर्शयित्वा प्रियां गिरिम् ।
वसन्तागमसंफुल्लमाधवीशतसंकुलम् ।। ३ ।।

प्रिये वैदेहि दृष्ट्वेमं सर्वर्तुसुखदं गिरिम् ।
वनं च फलपुष्पाढ्यं कूजत्कोकिलनादितम् ।। ४ ।।

त्वां चानुकूलधिषणां सततं सुखदायिनीम् ।
न मन्ये मे गतं राज्यं न चापीष्टवियोजनम् ।। ५ ।।

यस्यास्य गिरिराजस्य भ्रातुमन्ति वृहन्ति च ।
शृङ्गानि खमिव व्याप्य स्थितानि जनकात्मजे ।। ६ ।।

केचित्कर्पूरधवलाः केचिद्बालातपारुणाः ।
केचिन्नवतृणाभासाः केचित् काञ्चनसन्निभाः ॥ ७ ॥
पुष्परागोपमाः केचित् केचित्पद्मदलप्रभाः ।
केचिन्नवदलाभासाः केचिच्चित्रैर्विचित्रिताः ॥ ८ ॥
विभान्ति सानवस्तुङ्गा गिरेरस्य महोर्जिताः ।
अयं भुजैरिवामीभिर्दिशोऽष्टौ परिरम्भते ॥ ९ ॥
पश्य प्रियेऽद्य मधुना पशुपक्षिगणेष्वपि ।
मन्मथस्य शरैर्नूनं सुविक्रान्तमिवाद्भुतम् ॥ १० ॥
पश्येमां हरिणीं स्निग्धां मृगेनानुगतां वने ।
शृङ्गकण्डूयनोद्भूतस्पर्शसौख्यनिमीलिताम् ॥ ११ ॥
पश्येमां मल्लिकापुष्पे पिबन्तीं मधु निर्भरम् ।
अलिनीमलिना सार्द्धं झङ्कारकलगायिनीम् ॥ १२ ॥
पश्येमास्तरुभिः सार्द्धं मिलिता ललिता लताः ।
पुष्पमन्दस्मितोद्गाराः प्रोत्तुङ्गस्तवकस्तनीः ॥ १३ ॥
आम्रैर्माधविकाः श्लिष्टाः कलयन्ति परां मुदम् ।
आम्रातकैश्चमाधुर्यः परिरम्भसुनिर्वृताः ॥ १४ ॥
लोध्रैर्मालतिकाः स्निग्धा आलिङ्गनमुपागताः ।
प्रियकैः पृथुदोशाखैरतिमुक्तलता अपि ॥ १५ ॥
ककुभैः कुन्दमन्दारैरक्षोटैः पनसद्रुमैः ।
मधूकैर्बकुलैर्बिल्वैस्तिलकैः कोविदारकैः ॥ १६ ॥
नीपैरामलकैश्चैव बदरैर्बंधुजीवकैः ।
प्रियालैः कर्णिकारैश्च शालैस्तालैस्तमालकैः ॥ १७ ॥
नानाजातिलताः श्लिष्टाः फलपुष्पोपसेविताः ।
अङ्कुरोद्भिन्नवपुषः कलयन्ति कुतूहलम् ॥ १८ ॥
कम्पन्ते किमपि ह्येता मन्दानिलविलोलिताः ।
युक्ताः सात्विकभावेन मनोजशरलक्षिताः ॥ १९ ॥
अपि पश्य मनोज्ञेषु गिरेः प्रस्थेषु किन्नरान् ।
स्वस्वप्रियासमासक्तान् मदनोन्मादशालिनः ॥ २० ॥
विद्याधरीणां पश्यैते क्रीडोद्देशा मनोरमाः ।
जलनिर्झरसंशीताः पुष्पसौरभशालिनः ॥ २१ ॥
अमी सम्मुदिताः[1]सन्ति वरटाभिः सहान्विताः ।
राजहंसाः सरस्तोये पद्मसौरभशालिनि ॥ २२ ॥

१. निर्भयम्—अयो०, मधु० ।

लतावितानच्छन्नानि वनानि विविधैर्द्रुमैः ।
निरातपमनोज्ञानि कुर्वन्ति महतीं मुदम् ॥ २३ ॥

कानिचिद्‌गह्वराण्यत्र निकुञ्जैरतिसंकुलैः ।
परितः सान्धकराणि मध्ये दिव्यौषधित्विषा ॥ २४ ॥

भास्वराणि नदाच्चित्रद्विजालिकुलवन्ति च ।
अन्तरुत्फुल्लपुष्पौघशोभावन्ति विदेहजे ॥ २५ ॥

कुर्वन्ति मनसः प्रीतिं चित्रशालोपमान्यलम् ।
अनङ्गकेलिकारीणि जनयन्ति मनोरुचिम् ॥ २६ ॥

पश्य माल्यवतीमेतां तरङ्गावर्त्तशालिनीम् ।
मन्दाकिनीं तटद्वन्द्वनवशाद्वलशालिनीम् ॥ २७ ॥

अस्यास्तटद्वयेऽप्येषा वनराजी विराजते ।
निरन्तरपयःसेकप्रौढभूरुहसंकुला ॥ २८ ॥

अत्र मे महती चित्ते रतिः सम्परिवर्द्धते ।
तन्वि त्वया सहैकान्ते चरतोऽनन्यचेतसा ॥ २९ ॥

अस्मिन् गिरौ निवसतो वनेषु चरतो मम ।
त्वमेव पद्मपत्राक्षि रक्षित्री कामसायकात् ॥ ३० ॥

इदमेकं फलं लब्धं सुकृतस्य मयाधुना ।
प्राप्तः स्वर्गोपमो वासः शैलेऽस्मिन् यत्त्वया सह ॥ ३१ ॥

रमस्व ननु वैदेहि मया सह गिराविह ।
पश्यन्ती विविधां शोभां कामोद्दीपनकारिणीम् ॥ ३२ ॥

इमाः शैलस्य शोभन्ते विचित्राः शतशः शिलाः ।
हैम्यश्च मारकत्यश्च राजत्यश्चातिशोणिताः ॥ ३३ ॥

आसामुपरि वल्लीनां पुष्पवर्षेण संततम् ।
राजन्ते विपुलाः शय्या मृदुलास्तरणैः स्तृताः ॥ ३४ ॥

इमा औषधयः शोभां दीपिका इव कुर्वते ।
प्रकाशं गिरिराजस्य बाह्याभ्यान्तरतो दिशम् ॥ ३५ ॥

किंस्विदेकशिलाकारः सारोऽयं धरणीधरः ।
एको मणिरिव स्थूलो भित्त्वेव भुवमुत्थितः ॥ ३६ ॥

विहृत्यास्मिन् वने तन्वि विलासैर्मधुमाधवैः ।
विरच्य चम्पकैर्माला नागपुन्नागकेसरैः ॥ ३७ ॥

अतिमुक्तैर्मल्लिकाभिर्वकुलैः किंशुकोद्भवैः ।
अन्यैश्च विविधैः पुष्पैः पद्मैः पद्मदलैस्तथा ॥ ३८ ॥

विधाय भूषाविन्यासं वनश्रियमिवाद्भुताम् ।
रमयिष्यामि तन्वि त्वां यदि त्वमनुमन्यसे ॥ ३९ ॥
अयं हि त्रिविधो वायुरग्रेसर इवातनोः ।
आयाति शासने कुर्वञ्छृङ्गारेकमयं जगत् ॥ ४० ॥
पश्यात्र शैले पद्माक्षि विहृतानां स्ववल्लभैः ।
किन्नरीणामुदोहारा विस्रस्ताः पतिता भुवि ॥ ४१ ॥
पश्येमा मृदिताः शैल पुष्पशय्याः सुकोमलाः ।
रतिमल्लमहायुद्धेऽपविद्धाश्च मणिस्रजः ॥ ४३ ॥
यावकाञ्जनसिन्दूरमणिमुक्तादिवस्तुभिः ।
सम्पन्नः शैलराजोऽयं क्रीडास्थानं मतं मम ॥ ४३ ॥
किं करोमि पुरीवासं किं करोमि नृपश्रियम् ।
किं करोमि गजानश्वान् किं करोमि महीमिमाम् ॥ ४४ ॥
त्वमेका स्पृहणीया मे लोलनेत्रा नितम्बिनी ।
पीनस्तनी दीर्घकेशी पूर्णचन्द्रनिभानना ॥ ४५ ॥
इदं च विपिनं रम्यं गिरिगह्वरगोचरम् ।
प्रमोदवनसंकाशं स्पृहणीयं सदा मम ॥ ४६ ॥
लक्ष्मणश्च प्रियोभ्राता हितकारी वशंवदः ।
अनुकूलः सदा शान्तः स्पृहणीयो विशेषतः ॥ ४७ ॥
इत्यालप्य प्रियां तां परमसहचरीं सर्वभावानुकूलां
कन्दर्पोत्तापसिद्धौषधिमिव रुचिरामाददानः करेण ।
प्रेम्णा संक्षुब्धचित्तः पदि पदि सुखयन् चुम्बनालिङ्गनाद्यै
रेमे सम्यग्विलासी प्रमुदवनगतः प्रेमवत्या यथा प्राक् ॥ ४८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे चित्रकूटगिरिवर्णन नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

●

सप्तदशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ रम्यलतावृक्षवेष्टितोत्तीरभूमिकाम् ।
मन्दाकिनीं पुण्यजलां वीक्ष्य शैलाद् विनिर्ग[1]ताम् ॥ १ ॥

---

१. विनिर्गतः—अयो०, मथु० ।

आभाषत प्रियां रामो राजीवनयनः स्वयम् ।
पश्य प्रिये नदीमेतां सखीमिव तवाद्भुताम् ॥ २ ॥

तीरभूरुहपुष्पौघविचित्रपुलिनद्वयाम् ।
हंससारसचक्राह्वकादम्बशतसंकुलाम् ॥ ३ ॥

वातान्दोलिततीरस्थलताकुसुममण्डिताम् ।
विचित्रफलपुष्पाढ्यां पूजितां तीरभूरुहैः ॥ ४ ॥

क्वचित् कमलकह्लारकैरवादिभिरावृताम् ।
क्वचित् पीतप्रसन्नैशाकुलाध्यासितशाद्वलाम् ॥ ५ ॥

क्वचित् पीतजटाभारैर्वल्कलाजिनधारिभिः ।
कालेऽवगाढसलिलामृषिवर्यैस्तपोरतैः ॥ ६ ॥

आदित्यमुपतिष्ठद्भिर्नियतैरूर्ध्वबाहुभिः ।
क्वचित् संकीर्णपुलिनां मुनिभिः शंसितव्रतै ॥ ७ ॥

क्वचिन्मरुत्समान्दोललुलत्पल्लवशालिभिः ।
पादपैः सेवितोत्तीरप्रदेशां पुष्पसंकुलैः ॥ ८ ॥

क्वचित्करेणुसंलग्नमत्तद्विरदमण्डिताम् ।
महामेघघटाभारं बिभ्रतीमिव संततम् ॥ ९ ॥

पश्यैते विहगाः कूजन्त्यनुमन्दाकिनीवनम् ।
पठन्त इव कामस्य दीपनं मन्त्रमुद्धुरम् ॥ १० ॥

पश्यैते वानरगणाः क्रीडन्ति मुदिता इव ।
पाकरम्यफलास्वादपुष्टाङ्गाः काननेष्विह ॥ ११ ॥

पश्यात्र विपिने तन्वि दृष्ट्वा त्वन्मुखमण्डलम् ।
हृष्यन्ति चापि नृत्यन्ति चकोराश्चन्द्रविभ्रमात् ॥ १२ ॥

एतेभ्यो लग्नदृष्टिभ्यो मम चित्तमसूयति ।
द्विजा इति विचार्याथ मोक्तुमिच्छामि नो शरम् ॥ १३ ॥

अथवात्रावयोरेते चिरात् संवत्सतोर्गिरौ ।
वद्धसौख्याः सख्यमेव कामयन्तो विहङ्गमाः ॥ १४ ॥

अवगाहस्वदयिते पुण्यां मन्दाकिनीमिमाम् ।
सरयूर्निर्विशेषेण रुचिं धत्स्वेह भामिनि ॥ १५ ॥

कञ्जकिञ्जल्कपुञ्जेन रञ्जितां मञ्जुलामिमाम् ।
भजस्व मृगशावाक्षि पुण्यां मन्दाकिनीं नदीम् ॥ १६ ॥

इहावगाह्य सुचिरं शीततोयैर्गतक्लमा ।
पद्मकिञ्जल्कपत्राद्यैर्भूषयस्व तनुं प्रिये ॥ १७ ॥

अयोध्यासदृशं पश्य चित्रकूटमिमं प्रिये ।
विना राज्यभरं तन्वि पुण्येन सुखिनो वयम् ॥ १८ ॥

लक्ष्मणः सन्निधौ भ्राताऽनुकूलो मे वशंवदः ।
त्वं च काञ्चनतुल्याङ्गी काम्यं मे किमतः परम् ॥ १९ ॥

इत्थं संदर्शयन् रामो भार्यायै काननं गिरिम् ।
नदीं तत्पुलिनं चापि ततो निववृते चिरात् ॥ २० ॥

गिरेरुत्तरतः पादे चित्रकूटस्य संचरन् ।
ददर्श कन्दरामेकां रमणीयतमां द्रुमैः ॥ २१ ॥

तां दिव्यरत्नौषधिसुप्रकाशितां विशालमाणिक्यशिलातलासनाम् ।
प्रभूतपुष्पास्तरणैरलंकृतां मरुत्पतत्पल्लवतल्पशोभिताम् ॥ २२ ॥

मनःशिलाद्यैर्गिरिधातुभिः सदा प्रभूतबालातपमञ्जुलारुणाम् ।
सुखप्रचेयद्रुमवल्लरीदलैर्निवारितार्कांशुमहःसमागमाम् ॥ २३ ॥

तां दर्शयित्वा जनकात्मजायै दरीं सुवर्णोपलरत्नरम्याम् ।
सुनिर्जने तत्र वने मनोज्ञे स रन्तुकामोऽवतरन् बभाषे ॥ २४ ॥

पश्यसि प्रिये कन्दरामिमां शैलधातुभिः पूरितान्तराम् ।
विस्फुरल्लतापुष्पमञ्जरीपल्लवादिभिस्तल्पशालिनीम् ॥ २५ ॥

अत्र शंतमे निर्जने वने स्थीयतां प्रिये साधुरम्यताम् ।
विस्मृता इमाः स्फाटिकीः शिला वीक्ष्य कामये त्वां विषज्जितुम् ॥ २६ ॥

भूरिमन्मनःकामतापहृत्सम्भ्रमादिह त्वं भविष्यति ।
त्वादृशीं प्रिये प्राप्य कामिनीं कस्य नो रहः क्षुभ्यते मनः ॥ २७ ॥

अत्र कानने कोकिलारवैः काम उज्जागरो वर्ततेऽनिशम् ।
इत्यहं मुहुस्त्वामनिन्दितां वीक्ष्य दर्शयाम्यात्मनो रुचिम् ॥ २८ ॥

इत्युक्त्वा रसिकेन्द्रोऽसौप्रियामादाय पाणिना ।
रहो विहर्तुं रामेन्दुः शिलां तामुपजग्मिवान् ॥ २९ ॥

सहजानन्दिनी साक्षात्सीला शीतांशु दीधितिः ।
उवाच मृदुहासेन द्योतयन्ती वनं वचः ॥ ३० ॥

दृष्ट्वेमां संविधां नाथ वनेऽपि स्वेष्टकारिणीम् ।
मनो मे प्रीयतेऽत्यर्थं तव संनिधिनिर्वृतम् ॥ ६१ ॥

यदाज्ञापयसि प्रेष्ठ तत्तथैव मतं मम ।
कन्दरामन्दिरं ह्येतद् गन्तुमेवोचितं प्रिय ॥ ३२ ॥

इति ब्रुवाणां वैदेहीं लोकोत्तरगुणान्विताम् ।
स्मितमाञ्जुल्यशोभाभी रञ्जयन्तीं दिशो दश ॥ ३३ ॥

अब्रवीदथिकं चेतो लोभयन् केलिपण्डितः ।
विभूतिरेषा पञ्चेषोः काननेऽस्मिन् प्रसृत्वरी ॥ ३४ ॥

शीतलः सुरभिमन्द आयात्येष समीरणः ।
अग्रेसर इवामन्दशासनः स्मरभूपतेः ॥ ३५ ॥

लतालिङ्गितदोःशाखा अमी हि वन भूरुहः ।
निर्दिशन्ति जयं नित्यमनङ्गस्य प्रसर्पतः ॥ ३६ ॥

इमाः कुसुमिताः शश्वत्फलभारनता लताः ।
तरुण्य इव कम्पन्ते वातेनेव मनोभुवा ॥ ३७ ॥

इति ब्रुवत एवास्य शिलातलनिषादिनः ।
आरुरोहाङ्कमागत्य सीता शिञ्जितनूपुरा ॥ ३८ ॥

रमयामास तां रामो रसिकेन्द्रो रसाकुलाम् ।
चञ्चलामिव चार्वङ्गीं क्रीडन्तीमङ्कमध्यगाम् ॥ ३९ ॥

चिरं विपरिवर्तन्ती तडित्कोटिसमाकृतिः ।
मोदयामास रमणं नवोनमिव मन्मथम् ॥ ४० ॥

चिरं विहृत्य वैदेह्या भगवान् रतिवर्द्धनः ।
अशोभत शिलापृष्ठै पौलोम्येव पुरन्दरः ॥ ४१ ॥

अथ शृङ्गारयामास प्रियां विस्रस्तभूषणाम् ।
चम्पकैर्गुम्फयामास वेणीमलकशालिनीम् ॥ ४२ ॥

अलकेषु ववन्धास्याः केशरस्य सुमान्यलम् ।
चक्रे कमलपत्रैश्च कञ्चुकीं कुचकुम्भयोः ॥ ४३ ॥

सनालैः पङ्कजैश्चक्रे वाह्वोः केयूरयुग्मकम् ।
विचित्र पुष्पस्तबकैर्भूषाः कल्पितवान् पृथक् ॥ ४४ ॥

पञ्चवर्णप्रसूनाढ्यां स्रजं कमलशालिनीम् ।
वक्षसि न्यस्तवान् रामो रमण्याः स वशंवदः ॥ ४५ ॥

हरितालरसैर्मिश्रां सिन्दूरात्कां मनःशिलाम् ।
संघृष्य रमणोऽङ्गुल्या भालेतिलकमातनोत् ॥ ४६ ॥

विभूष्य स्वामिनीमेष स्वयं चाभूषितस्तया ।
रेजाते ताबुभौ तत्र शोभमानौ परस्परम् ॥ ४७ ॥

इत्थं चिरं कन्दरायां चित्रकूटमहीभृतः ।
क्रीडित्वा प्रेयसीयुक्तो निर्जगाम ततः शनैः ॥ ४८ ॥

मध्येमार्गमियं प्राप्ता प्रेयसी प्रेयसान्विता ।
राजहंसगतिः श्यामा रेजे रञ्जितमानसा ॥ ४९ ॥

पश्यन्ती मृगशावाक्षी मार्गे वानरयूथयान् ।
वराहान् महिषांश्चैव मातङ्गान् वनचारिणः ॥ ५० ॥

बिभ्यती तत्र तत्रासौ त्रकितैणाविलोचना ।
परिरेभे प्रियं धन्या वीरमात्तधनुःशरम् ॥ ५१ ॥

रामः प्रियां परीरम्भसुखमीलितलोचनाम् ।
स्वयं च परिरेभे तां द्विगुणोद्भूतमन्मथः ॥ ५२ ॥

भर्त्सयन् वारयन् हिंस्रान् दुर्जीवान् वनचारिणः ।
निनाय प्रेयसीं रामः संफुल्लाशोकवाटिकाम् ॥ ५३ ॥

तत्राशोकतरुप्रसूनविसरैरन्योन्यमाभूषिता-
वन्योन्यं गिरिधातुपल्लवकृताकल्पौ प्रभूतश्रियौ ।
आबद्धातुलबर्हचन्द्रककृतापीडावतंसोज्वलौ
शोभन्त्या वनमालयातिरुचिरौ लोकोत्तरं रेजतुः ॥ ५४ ॥

दर्शयित्वा तु विविधान् देशानद्रौ विहृत्य च ।
उपावर्तत जानक्या सहितो निजमाश्रमे ॥ ५५ ॥

यत्र श्रीमान् सुमित्रा तनय उचितकृच्छुद्धबाणेन हत्वा
मेध्यान् वै कृष्ठासारान् दशभृशमपचद् भूरिभेदान् प्रवीणः ।
कांश्चित्संशुष्यमाणान् शुचिमृदुपललान् पर्यरक्षच्चिरेण
प्राप्तं प्रत्युज्जगाम प्रणिहितधिषणः प्रेयसीयुक्तमार्यम् ॥ ५६ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे चित्रकूट-कन्दराविहारो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

लक्ष्मणेन कृतं कर्म दृष्ट्वा रामो मुदावहम् ।
अनन्ददद्धृदयेऽत्यर्थं प्रेमज्ञो रघुवल्लभः ॥ १ ॥

मेध्यानि मृगमांसानि जानकी भर्तुराज्ञया ।
पक्त्वा स्वादूनि विविधान्युपनिन्ये पुरस्तयोः ॥ २ ॥

देवान् पितॄंश्च सम्पूज्य रामः परमधर्मवित् ।
सह सौमित्रिसीताभ्यां बुभुजेऽखिलयज्ञभुक् ॥ ३ ॥

कदाचिच्चित्रकूटाद्रौ छायामाश्रित्य भूरुहः ।
प्रेयस्या अङ्कमास्थाय सुष्वाप सुरतश्रमात् ॥ ४ ॥

देवदत्तवरः काकः पर्यटन् मेदिनीमिमाम् ।
स्वभावाद्दुष्टहृदयो मैथिलीं पर्यखेदयत् ॥ ५ ॥

भर्त्तुर्निद्राच्युतिभयाद् वारयन्ती शनैः खगम् ।
अत्याकुलीकृता तेन दुष्टेनाधमपक्षिणा ॥ ६ ॥

पक्षतुण्डनखाग्रैस्तां काकः पर्यतुदद् वने ।
ततः सा रोषताम्राक्षी किंचिच्चलितविग्रहा ॥ ७ ॥

दृष्टा भर्त्रा समुत्थाय खेदिता तेन पक्षिणा ।
रामेण वार्यमाणोऽपि न जगाम स वायसः ॥ ८ ॥

ततो रोषं चकारोच्चै राघवः परपक्षभित् ।
काकमुद्दिश्य तत्याजं मन्त्रेणैकामिषीकिकाम् ॥ ९ ॥

इषीकास्त्रेण दुद्राव काकस्त्रिभुवनेऽखिले ।
अथानवाप्तशरणो राममेव गतिं ययौ ॥ १० ॥

अधः कृत्वा शिरः पादौ स्प्रष्टुकामः स वायसः ।
विचार्यास्पृश्यमात्मानं नास्पृशद् दीनमानसः ॥ ११ ॥

आक्रोशमानो विहगो इषीकास्त्रेण तापितः ।
अनन्यशरणं रामं जगाम[1] मतिमान् खगः ॥ १२ ॥

तमुवाच हसन् देवो रघूणां प्रवरः स्वयम् ।
अलं भयेन ते मन्द प्राप्तं दुष्कृतजं फलम् ॥ १३ ॥

प्रियापराधी मे तस्मात्त्वं ताडित इषीकया ।
अथ मे शरणं प्राप्तो रक्ष्योऽसि मतिमन् ध्रुवम् ॥ १४ ॥

अमोघं तु विजानीहि ममास्त्रं वायसोत्तम ।
भङ्क्त्वैकमङ्गं भवतो निवर्त्स्यति न संशयः ॥ १५ ॥

तेनोक्तः स ततः स्वामी भगवन् रघुसत्तम ।
निग्रहं वानुग्रहं वा यथेच्छं कुरु धार्मिक ॥ १६ ॥

मन्येऽनुग्रह एव स्यान्निग्रहोऽपि च ते मयि ।
एकं मे लोचनं नाथ भिनत्त्वस्त्रं तव प्रभो ॥ १७ ॥

एवं सम्प्रार्थिते देवे काकेनामितबुद्धिना ।
एकं चक्षु पपातोर्व्यामस्त्रं निववृते ततः ॥ १८ ॥

ततः काकः प्रणम्यैनं तुष्टाव जनमोक्षणम् ।
सद्यः संजातधिषणो दर्शनेन महौजसः ॥ १९ ॥

---

१. जजान—अयो०, मथु० ।

वायस उवाच

नमस्ते रघुशार्दूल नमो भक्तजनप्रिय।
नमो राजीवनयन नमस्त्रिभुवनेश्वर ॥ २० ॥

अङ्कितोऽहं तवास्त्रेण धन्यस्त्रैलोक्यसुन्दर।
विचरिष्यामि सर्वत्र सर्वथा निर्भयोऽधुना ॥ २१ ॥

यस्ते पुरुषवर्यस्य शरणं भाग्यतो गतः।
न तस्याखिलसंहर्त्ता कालोऽपि भयकृद् भवेत् ॥ २२ ॥

जानामि भगवान् साक्षाद्भवान् प्रकृतिपूरुषौ।
आज्ञापयसि लोकस्य सृष्टि स्थित्यन्तहेतवे ॥ २३ ॥

उदासीनवदेव त्वं संस्थितो निखिलेश्वर।
प्रयोजकोऽसि सर्वेषां कर्तॄणां तव शक्तितः ॥ २४ ॥

नूनं तवाङ्घ्रिकमलोपगतिं विनेश क्षेत्रं न कुत्रचन लोकजना लभन्ते।
इत्थं समस्तकमनीय हृदावधार्य त्वादद्यं पुमांसमुपयामि परं शरण्यम् ॥ २५ ॥

धन्यं महीतलमिदं नरदेवसूनो त्वत्पादपद्मयुगमण्डितमाविभाति।
धन्यं जनुः किमपि नाथ नृणामिदानीं ये त्वां धयन्ति निखद्यविलोचनाभ्याम् ॥ २६ ॥

अपि मामपि राम सुन्दर त्वदिषीकास्त्रकृताङ्कमीदृशम्।
तव भक्तजनेषु केऽपि वै गणयिष्यन्ति कृतातिदुष्कृतम् ॥ २७ ॥

कुरु शर्म मदीयमीश्वर त्रिजगन्न प्रतिलब्धरक्षकम्।
शरणं समुपेतमात्मनो गणयानन्य निजाश्रितेषु माम् ॥ २८ ॥

इति संस्तूय काकोऽसौ परमात्मानमीश्वरम्।
नत्वा निपत्य पदयोर्निर्जगाम यथेप्सितम् ॥ २९ ॥

स चित्रकूटे निवसन् महागिरौ त्रिलोककल्याणददिव्यदर्शनः।
प्रियासमेतो विहरन् दिने दिने निनाय कालं कमनीयविग्रहः ॥ ३० ॥

अधिप्रमोदार्टवियद्वदीश्वरो व्रजेश्वरीप्राणपतिः प्रमोददः।
अनेकभावैर्विजहार राघवः स तद्वदेवात्र गिरौ महाद्भुते ॥ ३१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे काकनयनशातनो नामाष्टदशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ भरतसमागमात्स वीरः किमपि समुद्विजिताशयोऽत्र शैले ।
अतिविजनवनान्तरैकशीली कमपि मुदावहमन्य देशमैच्छत् ।। १ ।।

भुशुण्ड उवाच

मातुलेष्ववसद् वीरो भरतः केकयीसुतः ।
इति श्रुतं पुरा ब्रह्मन् स कदा रामभागतः ।। २ ।।

सर्वं विस्तरतो ब्रूहि भगवच्छृण्वतो मम ।
भरतस्यागमं तत्र प्रस्थानं चेशितुस्ततः ।। ३ ।।

किमब्रवीत्स भरतो मातरं पापकारिणीम् ।
प्रसाद्य च ततो रामं न निनाय कथं बुधः ।। ४ ।।

कथं चावर्त्तत प्राज्ञः प्रोषिते रघुपुङ्गवे ।
प्रजाः कथं रक्षितवान् वृत्तं दशरथं च किम् ।। ५ ।।

एवमाद्याः कथाः सर्वा रघुवीरकथाश्रिताः ।
ब्रूहि संश्रृण्वते मह्यं भक्तिप्रह्वायपद्मभूः ।। ६ ।।

ब्रह्मोवाच

रामे गङ्गां समुत्तीर्णे भरद्वाजाश्रमं गते ।
न्यवर्त्तत सुमन्त्रोऽपि बद्धदृष्टिः प्रभोरनु ।। ७ ।।

निषादराजश्च तदा विषण्णः संन्यवर्त्तत ।
गायन्तौ तद्गुणग्रामं स्मरन्तौ तस्य चेष्टितम् ।। ८ ।।

ध्यायन्तौ तत्पदाम्भोजे वर्णयन्तौ च तं मिथः ।
तन्मनस्कौ तदात्मानौ तत्प्राणौ तन्मयौ च तौ ।। ९ ।।

उभावपि गतौ तत्र श्रृङ्गवेरपुरे ततः ।
सुमन्त्रो गुहमामन्त्र्य रथं संयोज्य वाजिभिः ।। १० ।।

साकेतमगमत्तूर्णं शून्यं रामेण निःसुखम् ।
संसुप्तमिव सर्वत्र निर्दग्धमिव सर्वतः ।। ११ ।।

तूष्णींभूतमिवात्यर्थं रामविश्लेषदुःखितम् ।
विलिप्तमिव कैकेय्या अयशोराशिकज्जलैः ।। १२ ।।

चिरादुद्विग्नहृदयैर्नरनारीगणैर्वृतम् ।
रुदन्निष्कूजसोद्वेगपशुपक्षिगणावधिम् ।। १३ ।।

अस्तंगते सवितरि समुपेतः स सारथिः ।
अयोध्यां रामविश्लेषनिरुत्साहाखिलप्रजाम् ॥ १४ ॥

प्रतिहट्टं प्रतिगृहं प्रतिवीथि प्रतिक्षणम् ।
कैकेय्या दुश्चरित्राणि गदद्भिर्मानुषैर्वृताम् ॥ १५ ॥

रामस्य सत्यशीलत्वं गुणांश्चान्यान् मनोरमान् ।
राज्ञश्च चित्तनैष्ठुर्यं वैदेह्याः साधुवृत्तताम् ॥ १६ ॥

लक्ष्मणस्य व्रतं धैर्यं सख्यं च गदतां नृणाम् ।
रामविश्लेषखिन्नानां गणैः सर्वत आवृताम् ॥ १७ ॥

आर्त्तामिव समुद्भूतदीनस्वरविलापिनीम् ।
निरुत्साहां निरानन्दां प्रशान्ताखिलमङ्गलाम् ॥ १८ ॥

जनैस्त्यक्तगृहारामविहारार्थगतागताम् ।
नारीगणैः परित्यक्तभूपालेपनमज्जनाम् ॥ १९ ॥

रामे गतमनस्काभिर्नारीभिः क्षीणकान्तिभिः ।
सद्यः [1]समुज्झिताशेषपतिबान्धवसत्क्रियाम् ॥ २० ॥

कैकेयीहृतसौभाग्यां सद्यः शोकसमावृताम् ।
वीक्षमाणः पुरीं सूतः प्राविशद् राजमन्दिरम् ॥ २१ ॥

दृष्ट्वा शून्यं रथं पौरा रामस्य वनवासिनः ।
अनुद्रुत्य जवात्सद्यः परावृत्ता बभूविरे ॥ २२ ॥

केचित्स्यन्दननिर्घोषं श्रुत्वा संजातसम्भ्रमाः ।
एकाकिनममुं प्राप्तं दृष्ट्वा खेदसमावृताः ॥ २३ ॥

क्वास्माकं प्राणदो रामस्त्राता दाता सतां मतः ।
ज्ञाता प्रेमलताकन्दः सौहार्दनिधिरीश्वरः ॥ २४ ॥

क्वस्थापितस्त्वया सूत सदा जीवनदः स नः ।
प्राप्तोऽसि कथमेकाकी युङ्क्त्वाशून्यमिमं रथम् ॥ २५ ॥

एवमापृच्छमानास्ते यथावृत्तं निवेदिताः ।
दृढप्रतिज्ञो भगवान् मां भाग्यपरिवर्जितम् ॥ २६ ॥

पुरीं प्रति समाज्ञाप्य स्वयं तापसवेषभृत् ।
श्रीमान् गङ्गां समुत्तीर्य सीतासौमित्रिसंयुतः ॥ २७ ॥

वीक्षितः परतो गच्छन् यावद्दृष्टिपथं गतः ।
तस्मिन् दृक्पथमुल्लङ्घ्य वर्तमाने महाशये ॥ २८ ॥

विश्लेषपरितप्तोऽहं स्थानान्निववृते ततः ।
आर्यः पुनरलंचक्रे भरद्वाजाश्रमस्थलीम् ॥ २९ ॥

---

१. समुद्गिता०—मथु० ।

दृशः कृतार्थयित्वा च तत्रत्यानां तपस्विनाम् ।
महाभागमुनिश्रेष्ठविनिर्दिष्टेन सोऽध्वना ॥ ३० ॥

चित्रकूटमलंकुर्वन्नास्ते इत्यनुशुश्रुम ।
इत्युक्तास्तेन ते लोका वाष्पव्याकुललोचनाः ॥ ३१ ॥

भृशं रुरुदुरुत्तप्ताः संवीता विरहाग्निना ।
प्रस्थापनं सुमन्त्रस्य विमृश्य नगरीं प्रति ॥ ३२ ॥

तस्य तापसवेशं च परतः प्रस्थितिं तथा ।
भृशं सं तप्तहृदया बभूवुः पुरवासिनः ॥ ३३ ॥

अहो गतत्रपोऽयं किं रामं हित्वा वनान्तरे ।
स्वयमत्रागतः सूतो धिगेनं भाग्यवर्जितम् ॥ ३४ ॥

किं कृते खलु वृद्धेन राज्ञापहृतबुद्धिना ।
रामः सर्वगुणारामः प्रवासं प्रापितोगृहात् ॥ ३५ ॥

धिक्कैकयेन्द्रतनयां सर्वेषां प्राणजीवनम् ।
रामं प्रवासयाञ्चक्रे लुब्धात्मैकोदरंभरिः ॥ ३६ ॥

इत्यादीन् दुर्वचः शब्दान् नृणां शुश्राव सारथिः ।
ततोऽसौ राजभवनं गत्वोन्मुच्य तुरङ्गमान् ॥ ३७ ॥

भेजे विलपतो राज्ञः समीपं खिन्नमानसः ।
तत्र शून्यं रथं वीक्ष्य क्रोशन्तीनामितस्ततः ॥ ३८ ॥

सौधाग्रेष्वधिरूढानां विलापं राजयोषिताम् ।
शृण्वन्नार्त्तस्वरोपेतं बभूवातीव दुःखितः ॥ ३९ ॥

रथमारोप्य मे पुत्रं सभार्यं क्व नु नीतवान् ।
अये सुमन्त्र दुर्बुद्धे रथं शून्यं किमानयः ॥ ४० ॥

कष्टंजीवाम्यहं यस्य पुत्रो गेहाद् विनिर्गतः ।
अदर्शयद् भवानास्यं किमेकाकी कुसारथे ॥ ४१ ॥

इत्थं सकरुणा वाचः शृण्वन् सूतः सुदुःखितः ।
राजानं रामविश्लेषशोकमीलितलोचनम् ॥ ४२ ॥

महासंतापकलितं वार्द्धके दुःखभागिनम् ।
चिरात्समनुशोचन्तं पश्चात्तापमुपागतम् ॥ ४३ ॥
[1]विषण्णहृदयं नत्वा प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥

यदस्मै तेन संदिष्टं तरणीमारुरुक्षता ।
तन्निशम्य वचो राजा संदिष्टं ज्येष्ठसूनुना ॥ ४४ ॥

---

१. यह श्लोकार्ध अयो० और मथु० में अधिक है ।

विशीर्णहृदयः सद्यो विसंज्ञः सहसाभवत् ।
सिंहासनात्पपातोर्व्यां वियोगभरमूर्च्छितः ॥ ४५ ॥

नृपं निपतितं दृष्ट्वा मृतकल्पं विचेतनम् ।
हा हताःस्म इति प्राप्ताः प्रोचुरन्तःपुरस्त्रियः ॥ ४६ ॥

अहो रामस्य दुःखेन राजासौ मूर्छितो भुवि ।
न्यपतद् गतसंज्ञश्च कष्टमापतितं महत् ॥ ४७ ॥

एवमुद्यतवाहनां श्रुत्वान्तःपुरयोषिताम् ।
आक्रोशं तत्र कौसल्या प्राप्ता सह सुमित्रया ॥ ४८ ॥

पतिं भूमौ निपतितमुत्थाप्यारोप्य चासने ।
अभिवीक्ष्य च कौसल्या जगादार्त्तमना वचः ॥ ४९ ॥

अयं ते समनुप्राप्तः सूतो रामं प्रवास्य च ।
सभार्यं विपिने घोरे पृच्छस्येनं कथं न च ॥ ५० ॥

इदानीं महिषी सा ते कैकेयी पापकारिणी ।
कथं न निर्वृतिं राजन् प्रयास्यति दुराशया ॥ ५१ ॥

खिद्यसे च किमत्यर्थं कृत्वा स्वमतिपूर्वकम् ।
किं तवानेन खेदेन चिरं नन्दय भामिनीम् ॥ ५२ ॥

ममायमुचितः खेदो यस्याः पुत्रो वनं गतः ।
यदि वा लज्जसे राजन् विधाय नयवर्जितम् ॥ ५३ ॥

तथाप्यलं ते शोकेन संज्ञामेहि महीपते ।
आत्मना यत्कृतं तत्तु भोक्ष्यसे दुष्कृतं चिरम् ॥ ५४ ॥

त्रैलोक्यस्य प्रियं राममपराधविवर्जितम् ।
प्रवास्य घोरं विपिनं भूरिदुःखमवाप्स्यसि ॥ ५५ ॥

किं न पृच्छसि दुर्भाग्यं सूतमेनं महीपते ।
तवादेशकरो रामः किं संदिश्य वनं गतः ॥ ५६ ॥

अथवा मुखदाक्षिण्यात्कैकेय्यास्त्वं न पृच्छसि ।
परोक्षेऽपि भवान् यस्या भयं मनसि मन्यते ॥ ५७ ॥

अहं तु नाथ निर्लज्जा प्राणान् वपुषि धारये ।
यस्याः स तादृशः पुत्रो व्युषितोऽब्दांश्चतुर्दश ॥ ५८ ॥

तत्तादृक् सुन्दरं तस्य मुखं चन्द्राधिकप्रभम् ।
पुत्रस्नेहेन पश्यन्ती नाहं सेहे पटान्तरम् ॥ ५९ ॥

साहं पश्यामि भवनं रहितं तेन सूनुना ।
शून्योऽभूज्जीवलोको मे दुःखं स्यात्किमतःपरम् ॥ ६० ॥

इत्थं विलप्य कौसल्या मूर्छिता न्यपतद् भुवि।
तां तादृशीं नृपं चैव विसंज्ञमतिदुःखतः॥ ६१॥

विलोक्य सर्वा अवरोधयोषितः कृतार्तनादं रुरुदुः सुदुःखिताः।
निशम्य तं नादमशेषमेव तत्पुरं बभूवार्त्तरवेण काहलम्॥ ६२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सुमन्त्रोपावर्त्तनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

विंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां सम्मृज्य नयनद्वयम्।
पश्यंस्तमोवृतं विश्वं राजा सारथिमब्रवीत्॥ १॥

अहो कष्टं सुमन्त्र त्वां पश्याम्येकं गृहागतम्।
विना राममतो नूनं दीर्यते हृदयं मम॥ २॥

तापेन परिदह्येते चक्षुषी मे सुदुर्भगे।
अन्धकारमयं सर्वं पश्यामि भुवनत्रयम्॥ ३॥

क्व गतः प्राणदो रामः क्व चावासं करिष्यति।
एकाकी भार्यया युक्तो भ्रात्रा च लघुनान्वितः॥ ४॥

कथं स्थास्यति मे वत्सः कानने भृशदुर्गमे।
शिरीषसुकुमाराङ्गः कथं पद्भ्यां चलिष्यति॥ ५॥

कियद्यावद् भवांस्तस्य सार्थे समगमः पथि।
कुतो विसर्जितस्तेन भवान् सार्थमनुव्रजन्॥ ६॥

अहो राजकुमारोऽसौ किमत्स्यति वने चरन्।
चिराय यस्य संजातो राजभोगो मुदावहः॥ ७॥

पद्मपत्रोपमैरङ्गैः क्व वा स्वापं करिष्यति।
दुग्धफेननिभाः शय्या यस्यासन् मृदुसंस्तृताः॥ ८॥

गच्छन्तमनुजग्मुर्यं नरेभाश्वरथादयः।
स कथं पद्मतुल्याभ्यां पद्भ्यां वनभुवि व्रजेत्॥ ९॥

दर्भगर्भावनी सा तु पद्भ्यामाक्रम्यतेऽमुना।
यस्याङ्गणेऽपि चरतो नरा यानमुपानयन्॥ १०॥

अहो तद्विपिनं घोरं सिंहव्याघ्रादिभिर्वृतम् ।
सरीसृपकुलाकीर्णं नानादुष्टगजावृतम् ॥ ११ ॥

कथं स्थास्यति तत्रासौ मम वत्सो मनोहरः ।
कोमलानि यदङ्गानि शिरीषकुसुमादपि ॥ १२ ॥

सा च राजेन्द्रतनया साक्षाल्लक्ष्मीरिव स्वयम् ।
राज्यभोगोचिता सीता कथं वत्स्यति कानने ॥ १३ ॥

अहो मे दुष्कृतं भूरि स्त्रीवाक्येन विमुह्यतः ।
व्रजन्तं तनयं योऽहं न हठात्पर्यषेधयम् ॥ १४ ॥

भवान् भाग्यनिधिः सूत यस्तौ धर्मैकविग्रहौ ।
सुपुण्यदर्शनौ वीरौ दृष्टवानसि चक्षुषा ॥ १५ ॥

श्रीरामलक्ष्मणौ साक्षाज्जानामि मुनिवाक्यतः ।
किं मामवोचद् धर्मात्मा स रामः सत्यसागरः ॥ १६ ॥

लक्ष्मणश्च महाबाहुर्दृढव्रत उदारधीः ।
ताबुभौ मां किमब्रूतां स्त्रीजितं न्यायवर्जितम् ॥ १७ ॥

इति पृष्टो नरेन्द्रेण सुमन्त्रः सर्ववृत्तवित् ।
उवाच करुणोद्रेककलिताक्षरया गिरा ॥ १८ ॥

प्रथमेऽह्नि वीरेन्द्रः सीतासौमित्रिसंगतः ।
पौरैः सवाष्पनयनैर्द्विजैरार्त्तस्वराक्षरैः ॥ १९ ॥

निषिध्यमानोऽपि स्वैरं वनमेव द्रुतं ययौ ।
उवास तमसातीरे पौरजानपदैर्वृतः ॥ २० ॥

रात्रौ प्रभातकल्पायां सुप्तांस्त्यक्त्वा प्रजाजनान् ।
व्यामोह्य सर्वान् प्रययौ गुहाश्रममुदारधीः ॥ २१ ॥

ततो गङ्गातटे सद्यो मां विसृज्य महामनाः ।
नावमारुह्य सपदि गुहानीतां मुदायुतः ॥ २२ ॥

परं पारं समुत्तीर्य सभार्यः सहलक्ष्मणः ।
चित्तवृत्तिं ममाच्छिद्य प्रस्थितः पुरतो वनम् ॥ २३ ॥

उवाच कांश्चित्संदेशांस्तान् शृणुष्व नराधिप ।
बद्ध्वाञ्जलिं भुवं स्पृष्ट्वा प्रणतिं त्वां चकार सः ॥ २४ ॥

पप्रच्छ कुशलं चापि तव भक्तिसमानतः ।
मातॄणां चापि सर्वासां कौसल्याया विशेषतः ॥ २५ ॥

स्वविश्लेषपरीतापदुःखितायाः कृपानिधिः ।
इदं संदिष्टवांश्चापि दुःखतप्तां स्वमातरम् ॥ २६ ॥

मद्वियोगपरीतप्तः पिता मे कोसलेश्वरः ।
नातोदनीयो जननि कदापि परुषाक्षरैः ॥ २७ ॥

मत्प्राणशपथं मत्वा ध्यात्वा च पुनरागमम् ।
नित्यमाराधनीयश्च यथा देवः पिता मम ॥ २८ ॥

भरतं च महीपाल संदिदेश महाशय ।
आराधयेथाः पितरं यौवराज्यगतः सदा ॥ २९ ॥

तव शुश्रूषणात्प्रीतो न शोचिष्यति मां नृपः ।
स्निग्धोऽसि मयि चेद्भ्रातर्वर्त्तस्व पितुराज्ञया ॥ ३० ॥

मातृश्च ममभावेन सर्वा द्रक्ष्यसि संततम् ।
इत्यादि कथयन् रामो वाष्परुद्धेक्षणोऽभवत् ॥ ३१ ॥

ततश्च लक्ष्मणः क्रुद्ध इदमूचे नराधिप ।
पितुः प्रणतयो वाच्या ममार्यमनुगच्छतः ॥ ३२ ॥

इदं च वाच्यो नृपतिरनयोऽयं कृतस्त्वया ।
विनापराधं मे भ्राता भवता यत्प्रवासितः ॥ ३३ ॥

नाहं कदाचित्पारुष्याद् भवतो हृदयंगमः ।
भवेयं विप्रवासार्हो न तु रामः प्रियंवदः ॥ ३४ ॥

त्रैलोक्यानन्दजननः साधुशीलः सतां मतः ।
रामस्य लोकारामस्य वद बीजं प्रवासने ॥ ३५ ॥

कैकेय्या वचनादेव प्रमुष्टा धिषणा तव ।
किमीदृग्वरदानं ते लोके कीर्त्तिविनाशनम् ॥ ३६ ॥

अधर्मकरणं चापि वार्द्धके लघुताकरम् ।
एकतः सर्वमेतत्ते स्नेहोऽप्यस्तं गतो नृपः ॥ ३७ ॥

दया लुप्ता हृदयतस्तस्मिंस्त्वयि ममाधुना ।
न स्नेहो विद्यते तात म्रियमाणोऽपगच्छति ॥ ३८ ॥

अधुना मे पिता माता सुहृद् बन्धुर्गुरुः सखा ।
प्राणाः सर्वस्वमेवापि राम एव जगत्त्रये ॥ ३९ ॥

सर्वलोकाभिरामस्य रामस्य त्यागमाचरन् ।
भरतेनापि किं राजा साधु वाच्यो मनीषिणा ॥ ४० ॥

इति ब्रुवाणां सौमित्रिं रामस्त्वद्भक्तिसंनतः ।
उवाच वारयन्नुच्चैः क्रोधरक्तेक्षणं बुधः ॥ ४१ ॥

मैवं वादीः कदापि त्वं ताते प्रियहिते मम ।
सत्यवाक्याश्रितो धर्मस्तेन सम्यगुपाश्रितः ॥ ४२ ॥

मदर्थं मन्त्रिता नैव सत्यात्प्रस्खलितो बुधः ।
अधर्मक्रीतिरता यस्य धर्मात्मा स कथं भवेत् ॥ ४३ ॥

ममापि तत्प्रकर्त्तव्यं सत्यवाक् स यथा भवेत् ।
नैतावता मपि स्नेहो हीयतेऽस्य महामतेः ॥ ४४ ॥

इत्यादि बोधयामास सौमित्रिं क्रोधमूर्च्छितम् ।
दाक्षिण्यविनयाचारसागरस्तनयस्तव ॥ ४५ ॥

वैदेही तु चिरं राजन्निःश्वस्य सुदृढव्रता ।
वाष्पाकुलेक्षणा भूयः पश्यन्ती नृपतेः सुता ॥ ४६ ॥

अदृष्टेदृशदुःखा सा नैव किंचिदवोचत ।
विसृज्यमानं भर्त्रा मां निरीक्ष्याश्रूण्यमुञ्चत ॥ ४७ ॥

ततः प्रणम्याश्रुविलोचनो भृशं त्वदङ्घ्रिपद्मौ मनसा कृताञ्जलिः ।
वियोगतप्तं विससर्ज मां नतं निवेद्यमानोऽपि न खल्वरक्षयत् ॥ ४८ ॥

वदामि भूयोऽपि शृणुष्वभूपते यथा वनं प्रस्थित एव राघवः ।
विधाय तान् स्निग्धशिरोरुहान् जटा वटस्य दुग्धेन महोग्रतापसौ ॥ ४९ ॥

विभूतिलिप्ताखिलचारुविग्रहौ महाभुजौ वल्कलचीरधारिणौ ।
तरीं समास्थाय विदेहजायुतौ जवेन तीर्त्वा विबुधापगां पुरः ॥ ५० ॥

प्रजग्मतुर्घोरतरं घनं वनं रघूद्वहौ तावकसत्यपालनौ ।
प्रपश्यतो मे च गुहस्य चान्तरं हृत्वा प्रयागाभिमुखौ गतावुभौ ॥ ५१ ॥

अग्रे प्रयाति सौमित्रिर्बद्धतूणो धनुर्धरः ।
मध्ये विदेहजा देवी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा ॥ ५२ ॥

पृष्ठतो रघुशार्दूलो रामः कमललोचनः ।
मनांसि खेदयन्नद्धा पश्यतां पशुपक्षिणाम् ॥ ५३ ॥

ततश्चाहं निवृत्तोऽस्मि मन्दभाग्यतयोज्झितः ।
रामेण लोकरामेण श्यामसुन्दरमूर्तिना ॥ ५४ ॥

वाजिनश्च चिरं राममार्गान्वीक्षणकातराः ।
क्रोशन्तो वाष्पनयना ह्रेषमाणा निवर्त्तिताः ॥ ५५ ॥

गङ्गा च लहरिस्तोममुपनीयास्य पादयोः ।
गम्भीरदीर्घनिर्ह्रादा चिरं चुक्रोश भूपते ॥ ५६ ॥

तरवः पक्षिणां रावैर्भृशं रुरुदुरुद्धुराः ।
फलभारनतान् मूर्घ्नः पदोरस्य निकीर्षवः ॥ ५७ ॥

परिम्लानदलाः सद्यो वियोगोत्तापधारिणः ।
क्रोशन्त्य इव नद्योऽपि कवोष्णकलुषोदकाः ॥ ५८ ॥

वभूवुर्म्लानपद्मास्याः पद्मिन्यो गतकान्तयः ।
अर्धावलीढकवलाः खिन्ना हरिणयूथपाः ॥ ५९ ॥

वनं रूददिवाभाति चलद्वायुस्वनाकुलम् ।
पशवः पक्षिणो लोकाः सर्वे कान्तिविवर्जिताः ॥ ६० ॥

पुरे ग्रामे जनपदे शोकाद्वैतमिवाभवत् ।
सर्वे शोचन्ति ते पुत्रं प्रोषितं तव सत्यतः ॥ ६१ ॥

निन्दन्ति मां जनाः पौरा रामं सम्प्रेष्य चागतम् ।
देहलीभवनाट्टालजालस्था वरयोषितः ॥ ६२ ॥

शपन्ति मां क्रूरकर्मा रामं हित्वाऽऽगतो ह्ययम् ।
गलद्वाष्पोदकाः पौरा निरीक्षन्ते पुरीजनाः ॥ ६३ ॥

अस्मत्सर्वस्वमतुलं क्व रामः स्थापितोऽमुना ।
अहं च दग्धहृदयो न जीवन्नस्मि सम्प्रति ॥ ६४ ॥

रामस्य सौहार्दगुणैर्वञ्चितोऽस्मि महीपते ।
सुखं रामेण पौराणां स्वयं प्रवसता हृतम् ॥ ६५ ॥

इति सूतमुखान्निशम्य वाचं करुणार्द्रमतिविक्लवान्नरेन्द्रः ।
विललाप चिरं कृतानुतापः सुभृशं केकयजाकृतेन तप्तः ॥ ६६ ॥

चिरमात्मनः कथितदोषसंहतिगुरुदुःखसागरनिमग्नमानसः ।
विगतासुकल्प उपजातमूर्छनो व्यथितोऽधिभूमि निपपात पार्थिवः ॥ ६७ ॥

करुणं विलप्य नृपतौ ततश्चिरं कृतमौनमासितवति प्रमूढवत् ।
विललाप रामजननी चिरेण तद्द्विगुणां निशम्य खलु सूतभाषितम् ॥ ६८ ॥

तामार्त्तामतिशयशोकशल्यविद्धां कौसल्यां त्रिभुवनमङ्गलैककुक्षिम् ।
संस्मृत्य प्रभुवरवाक्यपदानि भूयस्तपन्तीं किमपि समादधौ सुमन्त्रः ॥ ६९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सुमन्त्रसंदेशो नाम विंशोऽध्यायः । २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथोवाच महीपालो विलप्य बहुदीनवाक् ।
असह्यविरहोद्रेकदुःखसागरमग्नहृत् ॥ १ ॥

धिङ्मां सुमन्त्र जीवन्तं विना रामेण सूनुना ।
लक्ष्मणेन च वीरेण वैदेह्या सुचरित्रया ॥ २ ॥

यत्र तौ सुमहावीरौ लोकोत्तरगुणाद्भुतौ ।
नय मामपि तत्रैव नान्यथा जीवनं मम ॥ ३ ॥

अथवा मद्वियोगार्त्तिं निवेद्य करुणानिधिम् ।
निवर्त्तय वनाद्रामं वैदेहीलक्ष्मणान्वितम् ॥ ४ ॥

हा मया किं कृतं कर्म घोरं धर्मयशोपहम् ।
त्रैलोक्यजीवनो रामः प्रवसन् न निवारितः ॥ ५ ॥

धिङ्मे सत्यवचोनिष्ठां यया रामः प्रवासितः ।
इदानीमपि मे रामं सुमन्त्र परिदर्शय ॥ ६ ॥

इमं मे दुःखदावाग्निं विना रामघनाघनम् ।
कोऽन्यः शमयिता लोके स्वानन्दरसवर्षणैः ॥ ७ ॥

अहो रामवियोगोत्थो दुःखोर्मिः शोकसागरः ।
न मया सुतरः सूत तेन त्यक्ष्यामि जीवितम् ॥ ८ ॥

दूरं गतस्ताडकारिर्भवान् यावत्तमानयेत् ।
तावद्विरहदावाग्निर्मम प्राणान् ग्रसिष्यति ॥ ९ ॥

इत्थं विलप्य भूपालो गतासुरिव तत्क्षणात् ।
मूर्छितः पतितोभूमौ परित्यज्य नृपासनम् ॥ १० ॥

कौसल्या च तथैवार्ता विलप्य करुणं बहु ।
तप्यमानेन मनसा सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ॥ ११ ॥

हा सूत मामपि क्षिप्रं तत्रैव नय कानने ।
यत्र सौमित्रिसीताभ्यां सहितो रामचन्द्रमाः ॥ १२ ॥

तादृक्पुत्रवियुक्ताया धिङ्मे जीवनमीदृशम् ।
अतो रथं समारोप्य नय मां रामसन्निधौ ॥ १३ ॥

यदि मां कृपया साधो न रामं दर्शयिष्यसि ।
तदा विरहदावाग्निर्धक्ष्यत्येव न संशयः ॥ १४ ॥

अथवा मामकं सूत हृदयं भृशकर्कशम् ।
वज्रादपीति मन्येऽहं यन्न शोकेन दीर्यते ॥ १५ ॥

कुत्र मे मरणं सूत महाकठिनचेतसः ।
यमोऽप्यसून् न गृह्णाति रामविश्लेषकल्मषान् ॥ १६ ॥

इत्युक्त्वा रामजननीं शोकमूर्च्छायितां शनैः ।
सुमन्त्रो बोधयामास स्मृत्वा संदेशमीशितुः ॥ १७ ॥

समाश्वसिहि मा तेऽम्ब शोकोऽयं हृदि वर्द्धताम् ।
धैर्यमालम्ब्य वर्त्तस्व नान्यथा विद्यते गतिः ॥ १८ ॥

रामस्तु भुवनारामः कानने विमुदान्वितः ।
सौमित्रिणा सेव्यमानो वर्तते सुखमीश्वरः ॥ १९ ॥

किं चिकीर्षुर्वनं याति तद् वेत्ति स्वयमेव सः ।
त्रैलोक्यमङ्गलार्थाय जातोऽसौ पुरुषोत्तमः ॥ २०

गुहाश्रमगते तस्मिन् संसुप्ते भूमितल्पगे ।
सर्वं मे तत्त्वमाचख्यौ लक्ष्मणस्तद्रहस्यवित् ॥ २१ ॥

स वै पुरुषधौरेयः साक्षात्कारणविग्रहः ।
न तस्य विषये शोकं राज्ञि त्वं कर्तुमर्हसि ॥ २२ ॥

त्रैलोक्यमङ्गला मातर्धन्या ते कुक्षिरूर्जिता ।
श्रोष्यते भवती तस्य गुणान् भुवनमङ्गलान् ॥ २३ ॥

न तस्य विपिने कष्टं परमानन्दवारिधेः ।
नापि तं सेवमानस्य लक्ष्मणस्य महामतेः ॥ २४ ॥

जानकी मुदितात्यर्थं वर्तते स्वामिना सह ।
प्रासादेष्विव खेलन्ती रमते काननेष्वपि ॥ २५ ॥

न दीनहृदया नापि दुःखयुक्ता वनेषु सा ।
समस्तमङ्गला लक्ष्मीर्भासयत्यखिलं वनम् ॥ २६ ॥

पश्यन्ती पुष्पितान् वृक्षान् लताश्च स्तबकान्विताः ।
द्योतयन्ती वनं कान्त्या याति सा स्वामिना सह ॥ २७ ॥

मञ्जुमञ्जीरनादेन चमत्कृतमृगेक्षिता ।
याति संचारिणी साक्षात् काञ्चनी प्रतिमेव सा ॥ २८ ॥

ययोः स्मरणमात्रेण लोके भवति मङ्गलम् ।
क्व तयोर्विपदोः मातः कानने वा गृहेषु वा ॥ २९ ॥

सरस्सु फुल्लपद्मेषु हसन्ती राजहंसकान् ।
विलासाञ्चितया गत्या याति सीता वनान्तरे ॥ ३० ॥

रामं नवघनश्यामं लक्ष्मणं च सुलक्षणम् ।
पश्यन्ती परमानन्दां रमते सा शुभान्विता ॥ ३१ ॥

यथा पुरे राजगृहे क्रीडन्ती काननेऽपि सा ।
शोभते स्मितपीयूषवर्षिचन्द्राद्भुतानना ॥ ३२ ॥

अपूर्वान् कानने वृक्षान् विचित्राश्च लताः सती ।
सरांसि सरितश्चापि दृष्ट्वा पृच्छति वल्लभम् ॥ ३३ ॥

तत्र तत्र प्रियः स्थित्वा भूयो मोदयति प्रियाम् ।
वार्त्ताभिः सुविचित्राभिर्दर्शयन् काननश्रियम् ॥ ३४ ॥

समीरणेन मन्देन शीतलेन सुगन्धिना ।
परागमधुगर्भेण सेव्यमाना सवल्लभा ॥ ३५ ॥

वनेऽपि मुदिता सीता न जहाति तनुप्रभाम् ।
वनश्रीदर्शनोत्कण्ठा द्विगुणोद्भूतकौतुका ॥ ३६ ॥

मोदयन्ती प्रियं रामं लक्ष्मणं चापि सेवकम् ।
वनकुञ्जपथं प्राप्ता रमते सा विनोदिनी ॥ ३७ ॥

पद्मपत्रारुणाभ्यां च चरणाभ्यां महीतलम् ।
रञ्जयन्ती तडित्कान्तिर्याति ते वनवीथिषु ॥ ३८ ॥

न च सिंहगजव्याघ्रभयं तस्या विलोकये ।
अविज्यधनुषोर्मध्ये गच्छन्त्या वीरयोर्द्वयोः ॥ ३९ ॥

त्रैलोक्यरक्षितारौ तौ वीरौ पौरुषभूषणौ ।
विनयन्तौ वने हिंस्रान् गच्छतोऽतिमुदान्वितौ ॥ ४० ॥

न ग्लानिर्न श्रमो नापि खेदो न विपदः क्वचित् ।
तयोः संचरतोः स्वैरमुपनम्राखिलश्रियोः ॥ ४१ ॥

अनुकूलं तयोः सर्वं वनेऽपि वसतोर्मुदा ।
गच्छतोर्यत्र यत्रैव तत्र तत्रैव मङ्गलम् ॥ ४२ ॥

यानाश्रमद्रुमान् रामः सायमाश्रित्य तिष्ठति ।
सम्प्रस्थितेऽपि ते तस्मिन् मुच्यन्ते परयाश्रिया ॥ ४३ ॥

सरस्सु स्वच्छतोयेषु येषु रामोऽवगाहते ।
अकस्मात्तेषु दृश्यन्ते नवपद्मवनश्रियः ॥ ४४ ॥

श्रीरामचरणन्यासात्फलितं पुष्पितं वनम् ।
तदेवान्यदिवाभाति सद्यः संजातया श्रिया ॥ ४५ ॥

शाकमूलफलाहारे धर्मं चरति राघवे ।
प्रभूततमसम्पत्तिर्दृश्यतेऽद्यवनावली ॥ ४६ ॥

तावन्योन्यप्रियालापौ कृतान्योन्यहिताबुभौ ।
वैदेहीं वीक्ष्य मुदितौ वने धर्मपरायणौ ॥ ४७ ॥

अन्योन्यस्नेहसम्बद्धौ भ्रातरौ मुदिताशयौ ।
क्वचिन्न स्मरतो मातः पुरीं वा पुरवासिनः ॥ ४८ ॥

लक्ष्मणस्य पिता माता सखा बन्धुः सुहृद् गुरुः ।
सर्वस्वमसवो रामो नान्यं स स्मरति क्वचित् ॥ ४९ ॥

रामो जनककन्यायाश्चारित्रेणातिमोदितः ।
वनवासेऽपि सानन्दो न कंचिदभि काङ्क्षति ॥ ५० ॥

वैदेही भर्तृपरमा मोदयन्ती मुदान्विता।
सोत्कण्ठा वनवासेन वर्त्तते सुखसम्पदा।। ५१।।

न तेषां विषये शोकः कार्यस्ते जननि क्वचित्।
महानुभावमुख्यानां वनवासे रतात्मनाम्।। ५२।।

अलं खेदेन ते राज्ञि राज्ञः खेदमपाकुरु।
द्रष्टी चतुर्दशाब्दान्ते रामं भार्यानुजान्वितम्।। ५३।।

रामस्त्वद्विषये मातश्चिन्तापूर्वमुवाच माम्।
भृशमाश्वासय क्षिप्रं वियुक्तां मम मातरम्।। ५४।।

उक्तं सशपथं तेन नूनं मामम्ब मा शुचः।
पितुः सत्यात्सनुप्रीतो निवत्स्यामि वने मुदा।। ५५।।

सा त्वं विहाय मनसः शोकं मोहं च दीनताम्।
आश्वासय महीपालं न पुनः परिखेदय।। ५६।।

इत्युक्त्वा वचनमुदारमार्त्तचित्तामाश्वास्य प्रभुवरमातरं सुमन्त्रः।
नत्वोच्चैर्दशरथभूपतिं भृशार्त्तं निर्यातः सपदि स राजकीयसौधात्।। ५७।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे कौसल्यानृपाश्वासनो नामैकविंशोऽध्यायः।। २१।।

द्वाविंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

आश्वासितापि कौसल्या सुमन्त्रेन महात्मना।
रुदती भूरिशोकार्त्ता रामविश्लेषदुःखिता।। १।।

उपालम्भत भर्त्तारं वाक्शरैः पीडयन्त्यलम्।
विललाप च दुःखार्त्ता तस्याग्रे वाष्पलोचन।। २।।

तस्या वाक्य शरवातैरतिसम्पीडितो नृपः।
विश्लेषाद् रामचन्द्रस्य पूर्वमेव विचेतनः।। ३।।

चिरं निःश्वस्य निःश्वस्य मोहसागरमध्यगः।
अपश्यत् तमसा व्याप्तं भुवनं मीलितेक्षणः।। ४।।

सुशोच परमं चित्ते कौसल्यां दुःखभाषिणीम्।
प्रतिवक्तुमशक्तात्मा रुरोद भृशदुःखितः।। ५।।

विसंज्ञ इव संजातो द्विगुणोद्दीप्तशोकहृत् ।
ततश्चिराल्लब्धसंज्ञः कौसल्यामिदमूचिवान् ॥ ६ ॥

सत्यं ते दुःखतप्ताया उपालम्भनमीदृशम् ।
मया क्रूरेण कुधिया कृतास्मि किल दुःखभाक् ॥ ७ ॥

आत्मनः कुत्सितं कर्म शोचाम्यहमभीक्ष्णशः ।
भूयो नैवास्य शोकस्य पारं प्राप्तोऽस्मि सुव्रते ॥ ८ ॥

अलं प्रसादये त्वाहमीदृशैरतिनिष्ठुरैः ।
न भिद्यते वाक्यशरैर्हृदयं मेऽतिनिष्ठुरम् ॥ ९ ॥

इत्युक्त्वा विरते भूपे कौसल्या भर्तृवत्सला ।
परुषाक्षरसम्भाषा जातमागस्तदात्मनः ॥ १० ॥

अक्षामयत्सा नृपतेः कृत्वा पादाभिवन्दनम् ।
मयोक्तं परुषं यत्ते तत् क्षमस्व महीपते ॥ ११ ॥

दुःखिताः किं य भाषन्त इति विज्ञाय चेतसि ।
साहं रामप्रवासेन दुःखितास्मि न संशयः ॥ १२ ॥

धृतिर्मे लुप्यते शोकात् प्रज्ञा च श्रुतमेव च ।
तमोऽभिभूतं पश्यामि शोकेन सकलं जगत् ॥ १३ ॥

तामित्थमात्मपरुषोक्तिभवापराध सम्मार्जनाय नृपतिं प्रतिभाषमाणाम् ।
सम्बोध्य रामजननीं सुमतिः सुमित्रा नीचैरुवाच नृपतौ लघुलब्धनिद्रे ॥१४॥

तनयस्तव कौसल्ये वीरस्त्रैलोक्यरञ्जनः ।
यदि निर्वासितो राज्ञा किं ततस्तस्य हीयते ॥ १५ ॥

स्वाभाविकगुणाढ्यानां पुरुषाणां महौजसाम् ।
गृहे वापि वने वापि सर्वत्र [1]विपुलं यशः ॥ १६ ॥

पितुर्नियोगतो रामः सत्येन प्रोषितो वनम् ।
सर्वत्र कुशली लोके न तं शोचितुमर्हसि ॥ १७ ॥

य एवं धार्मिकाः शूराः प्रज्ञाःकौशलभूषिताः ।
सर्वत्र सर्वदा तेषां विजयश्रीरचञ्चला ॥ १८ ॥

धर्मेण यो वनं यातः पितुः सत्याभिवृद्धये ।
तस्य पौरुषसारस्य शुभं भूरि पदे पदे ॥ १९ ॥

यस्य त्रैलोक्यमखिलं यशसा विमलं बभौ ।
तस्य रामवरेण्यस्य महीराज्यसुखं कियत् ॥ २० ॥

गोपायतः सतां मार्गं वर्त्तमानस्य धर्मतः ।
न त्वं रामस्य विषये कल्याणि कलयेः शुचम् ॥ २१ ॥

---

१. विमलम्–अयो०, मथु० ।

यस्तादृशं महात्मानं धर्मेणैवानुवर्त्तते ।
तस्यापि मम पुत्रस्य विषये मति मा शुचः ।। २२ ।।

भवनं या परित्यज्य धर्मतोऽनुगता पतिम् ।
शुचिस्मितातिमुदिता त्रैलोक्ये यशसां निधिः ।। २३ ।।

विदेहराजकन्यां तां किमर्थमनुशोचसि ।
यस्याः संस्मरणेनाशु पूयते भुवनत्रयम् ।। २४ ।।

लभन्ते मङ्गलं लोका यस्याःसमनुकीर्तनात् ।
शोच्या न सा जनकजा दीनचित्ता यथेतरा ।। २५ ।।

त्वमेव खलु कौसल्ये या शोकेनानुतप्यसे ।
सा राजराजजननी भूयो निर्वृतिमेष्यसि ।। २६ ।।

भविता ते सुतो नूनं धरण्याः पतिरूर्जितः ।
यशःसौरभ्यसंदोहसुखिताखिलविष्टपः ।। २७ ।।

मा वदः करुणां वाचं वीरेन्द्रजननी सती ।
द्रक्ष्यसि त्वं सुतं स्वीयमेकच्छत्रावनीपतिम् ।। २८ ।।

कियश्चतुर्दशाब्दाश्च कियच्च वनवासनम् ।
सर्वे महानुभावानां कष्टमेतन्मतं लघु ।। २९ ।।

यं सेवते वनेऽपि श्रीः साक्षात्सीतभिधापरा ।
तस्य त्रैलोक्यमखिलमनुकूलं विलोकये ।। ३० ।।

किं न राज्यं समस्ताया मेदिन्याः कुरुते सति ।
अद्यापि ते सुतो यस्य राज्यश्रीः सा विदेहजा ।। ३१ ।।

अथ यस्य कृते ननु दुःखशतैरनुशोचसि कोसलराजसुते ।
स विलङ्घ्य चतुर्दशवर्षरुजं भवतीं प्रणमिष्यति हृष्टमनाः ।। ३२ ।।

वनवसतिमुपास्य रामचन्द्रे समुपगते नगरीमिमां सुखाढ्याम् ।
विकसति यदि काञ्चनैः प्रसूनैर्ननु भवती स्मरसि ध्रुवं वचो मे ।। ३३ ।।

ये धीराः प्रकृतिसुवृत्तभाजः सत्येन प्रशमितसर्वपापकृत्याः ।
तेषां तत्कियदिव दुःखमापदुत्थं त्रैलोक्ये दधतिशुभानि ते परेषाम् ।। ३४ ।।

इतीत्थमाश्वास्य वचोऽमृतैस्तां धृतज्वरां कोसलराजपुत्रीम् ।
सुधीरचित्ता शनकैः सुमित्रा जगाम मौनं स्वपति क्षितीन्द्रे ।। ३५ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सुमित्रावाक्यं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।। २२ ।।

त्रयोविंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

रामं प्रवास्य सत्येन जातशोको महीपतिः ।
षष्ठेऽह्नि शोचन्मनसा सम्प्रबुध्य निशीथके ॥ १ ॥

पूर्वकर्मविपाकोत्थं स्वीयं दुष्कृतमस्मरत् ।
स्मृत्वा तापसशापोत्थां मरणान्तं महापदम् ॥ २ ॥

उवाच महिषीं ज्येष्ठां कौसल्यां राममातरम् ।
जागर्षि यदि कल्याणि शृणु मे पूर्वकर्म तत् ॥ ३ ॥

कृत्वा दोष समारम्भं यः काङ्क्षति गुणोदयम् ।
मृषा तस्य मनःकामो दोष एव फलिष्यति ॥ ४ ॥

उप्त्वा कण्टकिनो वृक्षान् भिद्यते किं न कण्टकैः ।
एवं दुष्कृतमारभ्य को वाञ्छेत् पुण्यजं फलम् ॥ ५ ॥

मया खलु पुराऽऽरब्धं दुष्कृतं सुविपत्प्रदम् ।
तच्छृणुष्वाद्य कल्याणि मम कर्म पुरातनम् ॥ ६ ॥

एकदाहं तवोद्वाहात् पूर्वकाले सुदुर्मदः ।
तारुण्यारम्भदुःशीलं मृगयां समशीलयम् ॥ ७ ॥

युवराजपदं प्राप्य तारुण्यमदभावितः ।
धनुरादाय विपिने विचरामि भृतेषुधिः ॥ ८ ॥

निहन्मि महिषान् कोलान् सिंहान् व्याघ्रान् वनेचरान् ।
मातङ्गांश्चापि सम्प्राप्तान्छब्दमात्राद्भिनद्म्यहम् ॥ ९ ॥

शब्दवेधीशरक्रीडादुर्मदो मृगयारतः ।
सरयूतीरमासाद्य क्रीडामि दिवसे निशि ॥ १० ॥

कदाचिज्जलकुम्भस्य पूर्यमाणस्य वेगतः ।
श्रुत्वा शब्दं मुक्तबाणः कंचित्तापसबालकम् ॥ ११ ॥

अन्धयोरात्मनः पित्रोरेकयष्टिसमाश्रयम् ।
पर्यवेध्यमत्युग्रशापसम्प्राप्तिहेतवे ॥ १२ ॥

इषुणा छिन्नहृदयः सोऽन्धतापसबालकः ।
अरोदीत्करुणं भूयस्ताननामपुरःसरम् ॥ १३ ॥

तस्येषुणा विभिन्नस्य प्रोतस्य निजमर्मणि ।
आर्त्तशब्दं समाकर्ण्य तदन्तिसमुपागतः ॥ १४ ॥

दृष्टस्तत्रेषुणा विद्धो घूर्णमानो घटोपरि ।
अन्धतापसयोर्बाल: सोऽनङ्कुरितकूर्चक: ॥ १५ ॥

आ: पापकर्मणा केन हतोऽहमिषुणामुना ।
निर्वैरो विजने नद्यां जलाहरणकार्यकृत् ॥ १६ ॥

सोऽहं तयोस्तापसयोर्मदेकसुतयोर्गति: ।
संन्यस्तदण्डयोर्दण्ड: केन पापीयसा हत: ॥ १७ ॥

अन्धो वृद्ध: सुदीनात्मा वनवासो तपोरत: ।
मत्पिता मां विना कं नु हस्तग्राहं श्रयिष्यति ॥ १८ ॥

कस्याभून्मद्वधे वृद्धि: पापस्योन्मत्तचेतस: ।
किं फलं मम घातेन निर्वैरस्य वनस्थिते: ॥ १९ ॥

मय्यद्य निहते केनाप्युन्मन्तेनाद्यकारिणा ।
कां गतिं खलु गन्तारौ पितरौ हीनचक्षुषौ ॥ २० ॥

जानाति मम माता सा नद्यां क्रीडति मे सुत: ।
सोऽहं पापीयसा केनाप्यसुहीन: कृतोनिशि ॥ २१ ॥

इत्थं भूयो विलपतस्तस्यार्त्तरवमीदृशम् ।
अश्रौषं निर्जने रात्रौ दूरेऽप्यतिसमीपवत् ॥ २२ ॥

ततो भृशं विषण्णोऽहं हत्वा बाणेन तापसम् ।
प्रमादादात्मन: कर्म शोचन्नासंमु दुर्मना: ॥ २३ ॥

हा हा मया हत: कश्चित्तापस: संहतेषुणा ।
ततो गवेषयामास तमहं परपारगम् ॥ २४ ॥

नदीं स्वल्पजलां तत्र तीर्त्वा बभ्राम भूरिश: ।
निशीथे तमसि व्याप्ते नालभं मुनिपुत्रकम् ॥ २५ ॥

ततश्चाभ्युदिते चन्द्रे तं देशमगमं तदा ।
ददर्श सरयूतीरेघूर्णन्तं कलशोपरि ॥ २६ ॥

बालकं प्राप्तकैशोरमनङ्कुरितकूर्चकम् ।
प्रविकीर्णजटाभारं सायकप्रोतविग्रहम् ॥ २७ ॥

क्षतजोक्षितसर्वाङ्गमनर्हमीदृशीं दशाम् ।
शयानं घटमालिङ्ग्य विलप्य विरतं क्षणात् ॥ २८ ॥

अपश्यं चास्य हृदये संलग्नं बाणमात्मन: ।
तथा तस्य दशां दृष्ट्वा विसंज्ञ इव चाभवम् ॥ २९ ॥

ततो मां वीक्ष्य बालोऽसौ तापसो वधकारिणम् ।
उवाच करुणं तादृगार्त्तिप्रस्खलिताक्षरम् ॥ ३० ॥

किं तेऽपराद्धं नृपते मया निर्वैरवृत्तिना ।
एकेनैवेषुणाकस्माद् विद्धोहं कलशं भरन् ॥ ३१ ॥
पितरौ तापसावन्धौ तयोरर्थे जलार्थिनः ।
मम प्राणास्त्वया राजन् गृहीता एकबाणनः ॥ ३२ ॥
ईदृशी मृगया राजंस्तव साधीयसी वने ।
मदसुव्ययकृत् सम्यक् शिक्षिता शब्दवेधिता ॥ ३३ ॥
मृते मयि महीपाल घोरेण तव पत्रिणा ।
मा त्वां दहतु मे तातस्तापसः पुत्रमारिणम् ॥ ३४ ॥
पुत्रशोकसमुद्भूतदुःखेनाकुलमानसः ।
त्वां मेऽसुघातिनं मत्वा शपेन्मम पिता मुनिः ॥ ३५ ॥
सर्वस्यास्त्वं भुवो भर्त्ता त्वयि दुर्गतिमागते ।
अनाथाः किं न शीर्येयुस्त्वदेकशरणाः प्रजाः ॥ ३६ ॥
न चाहं जीविता राजन् दुःखं स्याद्द्विगुणं ततः ।
विज्ञापयाशु गत्वा त्वं नचिरात्पितरौ मम ॥ ३७ ॥
यावन्न शपते क्रुद्धः पिता मे त्वां महीपते ।
तावदात्मकृतं कर्म घोरं तस्मै निवेदय ॥ ३८ ॥
इति वादिन एवास्य बिभ्रतो दीर्घवेदनाम् ।
बाणमाशीविषाकारमहमुत्खातवान् बलात् ॥ ३९ ॥
उत्खाते हृदयाद् बाणे तस्मिंस्तज्जीवनाशया ।
एकया हिक्कया प्राणान् जहौ तापसबालकः ॥ ४० ॥
प्रसारिताङ्घ्रि परिवृत्तलोचनं दृष्ट्वा मृतं तापसबालक तथा ।
विसंज्ञ आसं भृशदुःखितान्तरो मुनेश्च शापेन नितान्त भीतिमान् ॥ ४१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे मुनिपुत्रवधाशंसनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

कथयन्नात्मनः पूर्वं दुष्कर्मधरणीपतिः ।
मुनिपुत्रवधं प्रोच्य ततो जातं यदाह तत् ॥ १ ॥

ततश्चाहमुपादाय कलशं वारिसम्भृतम् ।
वेपमानो हृदातीव गतस्तत्पितुराश्रमम् ॥ २ ॥

यत्र तौ पितरौ तस्य गृह्णन्तौ चरणध्वनिम् ।
पिपासितौ चिरादन्धौ वर्त्तेते स्वसुताशया ॥ ३ ॥

वार्तयन्तौ सुतं स्नेहात्प्रतीक्षन्तौ तदागमम् ।
उत्कर्णौ मत्पदध्वानं श्रुत्वा तावाहतुर्मुनी ॥ ४ ॥

एह्येहि पुत्रकात्यर्थं किमेतावद्विलम्बितः ।
देहि पानीयमानीय पीडितौ स्वः पिपासया ॥ ५ ॥

यज्ञदत्त चिरं तात क्रीडितोऽसि नदीजले ।
त्वदेकगतिका चावां सम्प्रतीक्षावहे चिरात् ॥ ६ ॥

इत्यादि स्निग्धहृदयौ सुतमुद्दिश्य भाषिणौ ।
तावहं भीतहृदयो दुःखाक्तमिदमभ्यधाम् ॥ ७ ॥

वाष्पसंलग्नकण्ठत्वाद् गद्गदाक्षरया गिरा ।
वेपमानः शापभीतो बद्धाञ्जलिरधर्मकृत् ॥ ८ ॥

नाहं तवास्मि तनयः स दूर प्रेषितोमया ।
आगस्कारी क्षत्रियोऽहं युवयोः शापभाजनम् ॥ ९ ॥

नाम्ना दशरथो येन कृतं कर्म सुदारुणम् ।
दुष्टोऽहं मृगयां कुर्वन् सरयूतीरभूमिगः ॥ १० ॥

कुम्भस्य पूर्यमाणस्य तवपुत्रेण साधुना ।
श्रुत्वा ध्वनिं गजभ्रान्त्या मुक्तो घोरः शरो मया ॥ ११ ॥

तेन ते तनयः साधुः सद्यः पञ्चत्वमागतः ।
अतः परं मयि मुने यदिच्छसि कुरुष्व तत् ॥ १२ ॥

सत्यं ते दण्डनीयोऽहं येनेदं दुष्कृतं कृतम् ।
इति घोरतमां वाचं मम श्रुत्वा स तापसः ॥ १३ ॥

उवाच वाष्पनयनो बिभ्यतं मां कृतागसम् ।
हा नृशंस दुराचार किमिदं दारुणं कृतम् ॥ १४ ॥

अन्धस्य ममजीवातुरेकयष्टिः स बालकः ।
निहतोऽद्य त्वया पाप हा हतोऽस्म्यहमेव च ॥ १५ ॥

तत्रैव नय मां क्रूर यत्र मे बालको हतः ।
शेते धरणिमालिङ्‌गच गतप्राणस्तवेषुणा ॥ १६ ॥

द्रक्ष्यामि तं तथाभूतं प्रसारितपदं भुवि ।
प्राणादपि प्रियं पुत्रमेकमेव त्वया हतम् ॥ १७ ॥

ततस्तौ प्रापितौ तत्र मया दुष्कृतकारिणा ।
दृष्ट्वा सुतं भुवि तथा पतितं विगतासुकम् ॥ १८ ॥

प्रकीर्णमूर्द्धजं बालं शोणितोक्षितविग्रहम् ।
मया प्रदर्शितं नद्यास्तीरे जायापती भृशम् ॥ १९ ॥

दीर्घं रुरुदतुर्भूयो विलापरवकारिणौ ।
प्राक्कृतानि चरित्राणि तस्य सेवाः पुरातनीः ॥ २० ॥

स्मारं स्मारं गुणांस्तस्य चक्रतुः करुणस्वरम् ।
हा पुत्र हा यज्ञदत्त हा तापस किमीदृशीम् ॥ २१ ॥

निद्रां भजसि नोत्थाय किमावां परिरम्भसे ।
ब्रूह्यावां दुःखितौ तात करुणा ते न बाधते ॥ २२ ॥

आवां विहाय कृपणौ क्व प्रयातोऽसि पुत्रक ।
हा हतौ दुर्बलौ दीनाबन्धौ न ब्रुवता त्वया ॥ २३ ॥

उत्थीयतामितः पुत्र प्रयाहि निजमाश्रमम् ।
केनेयं शिक्षिता निद्रा भाषस्वोन्मील्य लोचने ॥ २४ ॥

भवानेका गतिर्लोके दीनयोर्हीनचक्षुषोः ।
अनावृत्तिं गतोस्यद्य कमध्वानं प्रयातवान् ॥ २५ ॥

अधीष्व पुत्र स्वाध्यायं सुखयावां विचेतनौ ।
रुदन्तीं मातरं दीनां न ब्रूषे मातृवत्सल ॥ २६ ॥

कोऽपराधो नौ पतितः पुत्र यन्नाद्य भाषसे ।
कथं नु भविता माता त्वय्येवं निष्ठुरे सति ॥ २७ ॥

सुदीर्घतमध्वानं प्रस्थास्यस्यद्य पुत्रक ।
अतः स्नेहातुरावावां पितरौ नैव भाषसे ॥ २८ ॥

निर्वैरः सर्वभूतेषु तापसीं वृत्तिमास्थितः ।
केनेदृशीं दशां पुत्र प्रापितोऽसि सुदुःखदाम् ॥ २९ ॥

इत्थं विलप्य तौ दीनौ विसंज्ञौ दीर्घशोकतः ।
व्यसुकल्पावपततां तस्य देहे सुमूर्च्छितौ ॥ ३० ॥

चिरेण संज्ञामासाद्य तापसो भार्यया युतः ।
पुनरूच्चे वच इवं पुत्रमुद्दिश्य तादृशम् ॥ ३१ ॥

मृतोऽसि घोरबाणेन ताडितो हृदि पुत्रक ।
एहि पुण्यकृतां लोकान् सुकृतेन समेधितः ॥ ३२ ॥

आजन्म कृतवान् नित्यं पित्रोराराधनं भवान् ।
तेन पुण्येन पुत्र त्वं गच्छ स्वर्गमनश्वरम् ॥ ३३ ॥

ये लोका ब्रह्मनिष्ठानां ये लोकाः पितृसेविनाम् ।
ये लोकास्तीर्थनिष्ठानां ये लोका अग्निसेविनाम् ॥ ३४ ॥

स्वाध्यायिनां च ये लोकाः प्रणवाक्षरजापिनाम् ।
ये लोका दीर्घसत्राणां तानाप्नुहि मृतो भवान् ॥ ३५ ॥

राजर्षीणां च ये लोकाः सत्यधर्मसमुद्भवाः ।
यान् लोकानपि गच्छन्ति नैष्ठिका गृहमेधिनः ॥ ३६ ॥

ब्रह्मचर्येण ये लोकाः प्राप्यन्ते भूरितापसैः ।
तांल्लोकान् पुण्यविततान् पुत्र त्वं व्रज सत्वरम् ॥ ३७ ॥

इत्थं सम्प्रोच्य बहुशस्तापसो हीनलोचनः ।
शशाप मां समुद्दिश्य वाष्पोदकभृताञ्जलिः ॥ ३८ ॥

यथाहं पुत्रशोकेन प्राप्तोऽस्मि चरमां दशाम् ।
तथा त्वमपि भूपाल पुत्रशोकान्मरिष्यसि ॥ ३९ ॥

सुतं लालसमानस्त्वं मरिष्यसि कुलाधम ।
यथाहं म्रियमाणोऽद्य पुत्रलालसयान्वितः ॥ ४० ॥

श्रुत्वा तु तापसस्याहं शापं तापैककारणम् ।
प्रत्यूचे तं मुनिश्रेष्ठं विषण्णवदनो भवन् ॥ ४१ ॥

शापोऽपि ते मयि वरो न दृष्टतनयानने ।
किं तु नाहमनर्थस्य पारं पश्यामि तापस ॥ ४२ ॥

अथ तस्य प्रमीतस्य विधाय पारलौकिकम् ।
तापसो भार्यया सार्द्धं प्रददावुदकाञ्जलीन् ॥ ४३ ॥

तस्मिन्नेवान्तरे साध्वि विमानं दिव्यमास्थितः ।
पारिजातसुम[1]स्रग्भिर्दिशः सुरभितां नयन् ॥ ४४ ॥

उपतस्थौ मुनिसुतः पित्रोर्विलपतोः पुरः ।
दिव्यवेशधरो भूत्वा वाचमेतामुदाहरत् ॥ ४५ ॥

भवतोः सम्प्रसादेन चिराच्च परिचर्यया ।
प्राप्तोऽस्मि विरजांल्लोकानशोकान् सुकृतोर्जितान् ॥ ४६ ॥

---

१. यहाँ छन्दो भंग के भय से 'न' का लोप कर दिया गया है ।

प्राप्स्यथः परमं स्थानमचिरेणैव वामपि ।
एवं भाविनि चार्थेऽस्मिन् न मां शोचयतं युवाम् ।। ४७ ।।

न चाप्यतितरां राजा खेदनीयः सुधार्मिकः ।
असन्तं सन्तमर्थं वा भाविनं कोऽन्वतिक्रमेत् ।। ४८ ।।

इत्युक्त्वा स ऋषेः पुत्रो द्योतयन् महसा दिवम् ।
गतो नक्षत्रमार्गेण गीयमानोऽप्सरोगणैः ।। ४९ ।।

तावप्यन्धौ समिद्भारैर्ज्वलयित्वा हुताशनम् ।
पुत्रशोकात्सम्प्रविश्य दिव्यं लोकमुपेयतुः ।। ५० ।।

सोऽहं किमद्य शोचामि कर्म यत्कृतमात्मना ।
जानामि तस्य शापस्य कालो मां समुपागतः ।। ५१ ।।

नान्यथा दुष्टवाचाली वचोदीपितमत्सरा ।
कैकयेन्द्रसुता जातु प्रपद्येतेदृशीं धियम् ।। ५२ ।।

तीर्थानि मम संगेन यया स्नातानि भूतले ।
श्रुतानि तेषु रामस्य यशांसि मुनिमण्डले ।। ५३ ।।

सा कथं केकयसुता दुर्बुद्ध्योपहता भवेत् ।
मुनिशापकृतं मन्ये सर्वमेतन्न संशयः ।। ५४ ।।

सुखितो नाम गोपालस्तत्पत्नी च सुमङ्गला ।
ताभ्यां निरूपितं सर्वं तत्त्वं रामस्य यत्परम् ।। ५५ ।।

शुश्राव सा मयासार्द्धं कैकयेन्द्रसुताखिलम् ।
तीर्थयात्राप्रसङ्गात्तव्रजयात्राविनोदतः ।। ५६ ।।

न जाने क्व गता तस्याः परमार्थोन्मुखी मतिः ।
मन्थरादुष्टवाचाल्या कृतासद्यो यदन्यथा ।। ५७ ।।

नाधुना जीवनं मन्ये रामस्य विरहाद्भृशम् ।
पीड्यमाना मम प्राणा बहिर्निष्क्रमणोत्त्वराः ।। ५८ ।।

हा हन्त क्व नु पश्येयं रामं प्रकृतिसुन्दरम् ।
को मां जीवयितुं शक्तो विना रामं रसालयम् ।। ५९ ।।

पश्यतो रामचन्द्रं मे विदितो न किमप्यसौ ।
प्राणान्तकरणो दाहस्तीव्रो विश्लेषसम्भवः ।। ६० ।।

पश्यामि क्व नु गोपेन्द्रं सुखिताख्यं व्रजेश्वरम् ।
ततः शिक्षामि वा किं नु विरहाभ्यसनं परम् ।। ६१ ।।

बाल्यात्कैशोरपर्य्यन्तमवात्सीद्येषु राघवः ।
ततो वियोगिनः कस्मादजीवन् व्रजवासिनः ।। ६२ ।।

शिक्षयेत्सुखितो गोपो विरहं मे सजीवनम् ।
तावत्कथं नु जीवेयमसवस्त्वरयन्ति माम् ।। ६३ ।।

सुखितेन सुकण्ठेन व्रजे विक्रीडितं विभोः ।
तदेव ध्यानमायातु मरणे समुपस्थिते ।। ६४ ।।

न ज्ञानं न च कर्माणि नोपासनमपि क्षमम् ।
तत्पदप्राप्तये नृणां व्रजविक्रीडितं यथा ।। ६५ ।।

स्मरामि यत्सुखितेनोपदिष्टं तथा सुकण्ठेन च तस्य सख्या ।
महारासे क्रीडनं राघवेन्दोस्तदेव मे चित्तपथं प्रया तु ।। ६६ ।।

इत्यादि कथयन् राजा संस्मरन् राममद्भुतम् ।
ध्यायानस्तस्य चरितं सुकण्ठोक्तं रहस्यकम् ।। ६७ ।।

हा राम हा व्रजवधूरमणैकशील हा पुत्र हा विरहदायक हा रमेश ।
हा गोपतेर्दयित हा शरदिन्दुवक्त्र हा पद्मलोचन नमां त्यज जातु दीनम् ।। ६८ ।।

इत्थं स विलपन्नेव रामरूपो बभौ नृपः ।
योगिनामपि दुष्प्रापे राम एवात्र जल्लयम् ।। ६९ ।।

कौसल्या च सुमित्रा च सुप्तं ज्ञात्वा शनैर्नृपम् ।
तूष्णीं सुषुप्ततुः पार्श्वे विरहक्लेशपीडिते ।। ७० ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे
दशरथलयो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।। २४ ।।

●

पञ्चविंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

रात्रौ जातावसानायां भास्करस्योदयात्पुरा ।
प्रबोधकेषु परितो बोधयत्सु यथाक्रमम् ।। १ ।।

पठत्सु वन्दिलोकेषु गायत्सु विरुदावलीम् ।
कीर्तयत्सु च सूतेषु मागधेषु विशेषतः ।। २ ।।

वंशानुपूर्वीमखिलां श्रावयत्सु समन्ततः ।
उच्चारयत्सु विप्रेषु यथापूर्वं शुभाशिषः ।। ३ ।।

गीयमानासु गाथासु भूयोमाङ्गलिकीगणैः ।
नीयमानेषु परितः पुण्यदर्शन वस्तुषु ।। ४ ।।

छायादर्शनपात्रेषु कल्पमानेषु सेवकैः ।
पठत्सु पञ्जरस्थेषु शुकेषु विहगेषु च ॥ ५ ॥

निष्कुटेषु च कूजत्सु कोकिलानां कलस्वरैः ।
प्रत्युपस्थानकुशलेष्वागच्छत्सु यथा पुरा ॥ ६ ॥

दन्तधावनमादर्शं स्नानीयं च यथाविधि ।
आदाय सज्जमानेषु लोकेषु स्वाधिकारतः ॥ ७ ॥

शब्दश्च सुमहानासीत् प्रबुद्धे राजवेश्मनि ।
सर्वे स्वस्वाधिकारेण यथास्थानमुपस्थिताः ॥ ८ ॥

जातः सूर्योदयोऽप्यद्धा न चचाल च भूपतिः ।
नेङ्गते विगतप्राणः पतितः पाञ्चभौतिकः ॥ ९ ॥

शयनाग्रेसरीणां च जाता वाचः परस्परम् ।
कथमद्य न राजेन्द्रः प्रवुद्धः क्लिष्टमानसः ॥ १० ॥

चिरं रात्रौ जजागार महिषीभ्यां च खेदितः ।
पुत्रविश्लेषदुःखेन वार्तयन् विविधाः कथाः ॥ ११ ॥

एते अपि चिरं सुप्ते महिष्यौ दुःखकर्षिते ।
अथा पराः शङ्कयानाः स्त्रियोभूयो महीपतिम् ॥ १२ ॥

अपश्यन् सविधे गत्वा धाष्टर्यं कृत्वा भयातुराः ।
तावत्ता ददृशुर्भूपं तथावस्थामुपागतम् ॥ १३ ॥

उन्नेत्रसलिलं शान्तं शीतलं सर्वगात्रतः ।
इङ्गालमिव शान्तस्य वन्हेर्निःश्वासवर्जितम् ॥ १४ ॥

अथ प्रचुक्रुशुः सर्वा उत्क्षिप्ताहृतप्राणयः ।
भालेषु चापि वक्षःसु ताडयन्त्यः करद्वयम् ॥ १५ ॥

तासामार्त्तस्वरं श्रुत्वा कैकेयीप्रमुखा जवात् ।
तत्राययुः किं किमिति शङ्कमाना भयोद्धृताः ॥ १६ ॥

तासां कोलाहलं श्रुत्वा पार्श्वस्थे उदतिष्ठताम् ।
कौसल्या च सुमित्रा च पश्यन्त्यौ नृपतेर्दशाम् ॥ १७ ॥

सदयः सम्भ्रान्तनयने स्वापोत्थितससम्भ्रमे ।
हा हार्यपुत्रेत्याक्रुश्य निपेततुरिलातले ॥ १८ ॥

तयोर्भुवि विचेष्ठन्त्योर्भूरेणुविगतात्विषोः ।
कैकेयीप्रमुखाः सर्वानिपेतुरवनीतले ॥ १९ ॥

रुरुदुस्तीव्रशोकेन महोच्चैः शब्दकारिकाः ।
तासां शब्दमुपश्रुत्य रुदतीनां समन्ततः ॥ २० ॥

उत्थायोत्थाय भूपृष्ठे पतन्तीनां मुनिर्भरम् ।
बाहुभिस्ताडयन्तीनां वक्षांसि च शिरांसि च ॥ २१ ॥

निरात्मरक्षं भूपृष्ठे घ्नतीनां कोमलास्तनूः ।
आययुः स्वस्वगेहेभ्यः समस्ता राजबन्धवः ॥ २२ ॥

रुदन्तो रोदयन्तश्च चित्रस्थानपि शोकतः ।
अथासीत् सुमहान् शब्दस्तेषामन्योन्यपातिनाम् ॥ २३ ॥

अन्योन्यमालिङ्ग्यतामन्योन्यं च प्रलापिनाम् ।
सर्वमापूरितं वेश्म नीचैरुच्चैः समन्ततः ॥ २४ ॥

तलध्वनिः प्रतिच्छायाध्वनिश्च सुमहानभूत् ।
हाहाकारो महानासीदन्तःपुरनिवासिनाम् ॥ २५ ॥

शिरोवक्षस्ताडनोत्थः शब्दश्च सुमहान भूत् ।
सर्वा राजमहिष्यश्च विचेष्टन्त्यो महीतले ॥ २६ ॥

नाशोभन्त तदातारा आकाशात्पतिता इव ।
अतीव शोकसंशब्दे जायमाने समन्ततः ॥ २७ ॥

कौसल्या पतिशोकेन विललाप तपस्विनी ।
हा नराधिप हा मित्र सुखदायक हा निधे ॥ २८ ॥

हा शत्रुनारीवैधव्यदीक्षादानविचक्षण ।
हा देवनरनागेन्द्रसर्वस्व यशसां निधे ॥ २९ ॥

हा भूप्रकाश हा नाथ हा वदान्य महाक्रतो ।
हा यायजूक हा सम्राट्प्रवराधिप हा पते ॥ ३० ॥

हा विश्वकान्त हा कान्त क्व गतोऽसि त्वमीदृशः ।
हायोध्यानगरीनाथ हा निजावनपण्डित ॥ ३१ ॥

हा हा असुरसंदोहनिवारणविधिक्षम ।
हा नाथ युधि दैत्यौघान् विजित्य निशितैः शरैः ॥ ३२ ॥

प्रतापाग्निभिरावेष्ट्य सप्तसिन्धुभृतां महीम् ।
नीराजितवपुर्देवकन्याभिर्यशसान्वितः ॥ ३३ ॥

पुनरायास्यसि गृहान् सुखयिष्यसि बान्धवान् ।
हा नाथ किमिमां निद्रां भजसे मीलितेक्षणः ॥ ३४ ॥

पुनरुद्बोधरहितां किमीदृग्व्यसनं तव ।
हा नाथ कस्य पुण्येन पुनस्त्व त्यक्तमीलनः ।
झटित्युत्थाय सुहृदः सुखयेच्छोककर्षितान् ॥ ३५ ॥

हा नाथ कस्या हतमङ्गलाया दुर्बुद्धिजातेन सुतापदेन ।
रामस्य विश्लेषहुताशनेन त्वमत्यजः सर्वहितान् निजासून् ॥ ३६ ॥

हा नाथ दुष्टा रिपवोऽद्य जाताः पूर्णाशिपस्त्वय्यसुहीनदेहे ।
मित्राणि ते जीवित जीवितानि सीदन्ति दुर्दैवविमुष्टभव्याः ॥ ३७ ॥

हा नाथ दुर्दैववशादसोढं वैधव्यमेतत् कथमद्य वक्ष्ये ।
प्राणाविनिर्यान्ति न भूरिघातैराहन्यमाना अपि वक्षसो मे ॥ ३८ ॥

अहो अहं दैवहतादयजाता क्व तादृशोमेऽभ्युदयो व्यतीतः ।
हा हा अकाण्डज्वलनेन दग्धा जीवामि किं नाथ भवत्युदासे ॥ ३९ ॥

वृत्तानि तानि स्मरसे न नाथ त्वया वितीर्णानि शुभानि मह्यम् ।
क्व तानि ते लोकपते वचांसि वितीर्णवान् यैर भयं हितेभ्यः ॥ ४० ॥

अयं कुतः सम्पतितौवियोगस्तवात्मजस्योदितदुर्विपाकः ।
पुत्रस्य पत्युश्च ममातुरायाः विश्लेष आसीदयमेकदैव ॥ ४१ ॥

न जीवनं सम्पति वै ममार्हं तथापि जीवामि विधेर्विपाकात् ।
करोमि किं न ग्रसते ममासून् पुत्रस्य पत्युश्च वियोग एषः ॥ ४२ ॥

सुदुर्धरो मे विरहः सुतस्य त्वद्विप्रयोगाद् द्विगुणत्वमाप ।
सुदुर्भगाहं सुतरां सहामि दुःखोर्मिवन्तं ननु शोकमिन्धुम् ॥ ४३ ॥

हा कैकेयि तवैव दुष्कृतमिदं जागर्ति भूमीतले
भोक्ष्येराज्यमकण्टकं भृशमिति क्रूरे व्यधाः पातकम् ।
वैधव्यापदमीदृशीमगणयन्त्येवं प्रजादुःखदे
मत्पुत्रं मदनात्प्रवासितवती तददुश्चरित्रं तव ॥ ४४ ॥

त्यक्त्वा भर्तृसुखं विधाय च महादुःखं दुराचारिणी
ब्रह्मक्षत्रविडन्त्यजादिसकलक्षोणीतलस्थायिषु ।
का स्त्री स्वात्मसुखार्थिनी वितनुतामेवंविधां क्रूरतां
कैकेयि प्रकृतिप्रकामपरुषे दुष्टाशयां त्वामृते ॥ ४५ ॥

वैधव्यापदमुद्धुरामपयशोध्वान्तादपि श्यामलं
पापं चाप्रतिमं चकार भवती कस्मादिहामुत्र च ।
क्षान्तं सर्वमपि त्वदीयमशुभं कर्मेदृशं केकयि
क्रूरायास्तव किं गतं भृशमहं हा हन्त दीना हता ॥ ४६ ॥

हा हन्त कुब्जावाचालीवाक्यवश्यहृदा त्वया ।
रघूणां संक्षयो जातः शत्रूणां च मनोरथः ॥ ४७ ॥

तव प्रसादनार्थाय राजा सत्यपरायणः ।
रामं प्रवासयामास तस्येदं कर्मणः फलम् ॥ ४८ ॥

हा राम मामद्य हतामनाथां त्वया च पत्या च भृशं विहीनाम् ।
दुःखाप्लुतां पतितां शोकसिन्धौ जानासि नैवं विलपन्तीं सुदीनाम् ॥ ४९ ॥

यत्रासि तत्रासि चराचरस्य शुभं दधानः शुभवान् स्वतश्च ।
मामीदृशागाधतमे नितान्तं शोकाम्बुराशौ पतितां न वेत्सि ॥ ५० ॥

हा साध्वि कल्याणि विदेहराजकुलाचलस्योर्जितसत्पताके ।
धन्यासि पत्यासहिता सुखाब्धौ मग्नासि याहं विलपामि सा हता ॥ ५१ ॥

हा पापकारिणि क्रूरे यदर्थं रचितं त्वया ।
स एव भरतोनूनं त्वां भृशं गर्हयिष्यति ॥ ५२ ॥

सौम्योऽति धर्माचरितः सत्त्ववान् विमलव्रतः ।
तदर्थमेवं कैकेयि किं त्वं क्रूरमुपाचरः ॥ ५३ ॥

हा हातिपापसंकल्पे सुतः पापविवर्जितः ।
सोऽप्येवं कर्मणालोके त्वयाद्य मलिनीकृतः ॥ ५४ ॥

हा हा महाराज महीमहेन्द्र हा हा महाकीर्तिनिधे महा[1]ढ्यं ।
हा हा महाबाहुवरेण्य पुण्यनिधे न मां पश्यसि शोकमग्नाम् ॥ ५५ ॥

हा हा महाबल महामहनीयकीर्त्ते तत्तादृगुज्ज्वलतरं विमलं मनस्ते ।
कैकेयराजसुतयातिनृशंसयातिपापात्मना विकलितं कथमेवमासीत् ॥ ५६ ॥

इदं त्वया स्वात्मविनाशहेतवे सम्पादितं किं विदुषापि तादृशा ।
यद् रामचन्द्रं नितरां निरागसं प्रवासयामास दुरात्मनोगिरा ॥ ५७ ॥

यदि त्वया साकमहं महीपते विशेयमग्नि परितः समेधितम् ।
तदा गमिष्यामि भवत्सलोकतां सत्ये च धर्मे महतीं व्यवस्थितिम् ॥ ५८ ॥

दूरे तु मे तर्हि सुतस्य तस्य वै रामाभिधस्यामृतवर्षिवर्ष्मणः ।
स्याद् ददर्शनंलोकजनाभिकाङ्क्षितं ततो नु शोचामि करोमि किन्वहम् ॥ ५९॥

हा राम निःशेषगुणाभिराम हा लक्ष्मणः क्षेमदलक्षणाढ्य ।
हा मैथिलि ख्यापितसाधुवृत्ते कुत्रस्थ यूयं ननु मां न वित्थ ॥ ६० ॥

हा हा महाराज कुमारकौ वां प्रस्यन्दमानं ननु वामचक्षुः ।
किमद्य नाख्यास्यति दुर्निमित्तं ततोऽपि न स्याद् विपिनान्निवृत्तिः ॥ ६१ ॥

अथवा शुभमेव वां सदा त्रिजगन्मङ्गलदायिदर्शनौ ।
विधिना निहता तु मादृशी सुमहा संकट शोकभाजनम् ॥ ६२ ॥

इत्युच्चैर्विलपन्तीं तां कुररीमिव दुःखिताम् ।
आजगाम सतीमौलिर्भर्त्रा सार्द्धमरुन्धती ॥ ६३ ॥

तामालिङ्ग्य सुदुःखार्त्ता कौसल्या भर्तृशोकिनी ।
विललाप गलद्वाष्पधारासाराभिवर्षिणी ॥ ६४ ॥

हा मातस्त्वं रघुकुलवधूभूरिसौभाग्यकर्त्री
पूर्णां यामाशिषमलमदा मङ्गलैकान्तहेतुम् ।
सा मय्येवंविधपरिणतौ दुर्विधेर्दुर्भगायां
मूकीभावं कथमिव गता भर्तृतः पुत्रतश्च ॥ ६५ ॥

---

१. महायशः—अयो० ।

न खल्वतिशयोद्दीप्तदुर्दैवहतवृत्तिषु ।
देवतानामपि गिरो भवन्तिफलवत्तराः ॥ ६६ ॥

साहमद्य न जीविष्ये भृशं दुर्विधिना हृता ।
ध्रुवमीदृगवस्थायाः श्रेयो मरणमेव मे ॥ ६७ ॥

तां समाधाय शोकार्तां भर्तृवाक्यादरुन्धती ।
व्यवहारविनीताभिर्दासीभिरनयत्ततः ॥ ६८ ॥

तत्स्थानं विजनीकृत्य प्राजापत्यो मुनिर्गुरुः ।
आकार्य मन्त्रिणः सर्वानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६९ ॥

यद्भावि तदभूद्दैवान् करणीयमतः परम् ।
क्रियतां त्वरितं तत्तु धैर्यमालम्ब्य चेतसा ॥ ७० ॥

रामः प्रवासी भरतो मातुलेष्वधितिष्ठति ।
संस्कार्यश्च महीपालः पारलौक्येन कर्मणा ॥ ७१ ॥

न च पुत्रेषु सत्स्वन्यः कर्माधिकुरुतेक्वचित् ।
रामश्च सत्यसम्बद्धो न निवर्त्स्यति सत्पथात् ॥ ७२ ॥

अत आकार्यतां सौम्यो भरतः कार्यहेतवे ।
यदर्थमिदमारब्धं कैकेय्या क्रूरचित्तया ॥ ७३ ॥

तच्च सम्पत्स्यते तस्या अभीष्टं भरतागमे ।
तावद् रक्ष्यमिदं तैले भूपतेः पाञ्चभौतिकम् ॥ ७४ ॥

रघूणां प्रवरो राजा नायं दुर्गतिमर्हति ।
यस्याग्नयोऽश्वमेधीयाः सदा कुण्डेषु जाग्रति ॥ ७५ ॥

येनेष्टं राजसूयैश्च तथान्यैः सुमहामखैः ।
स सम्राड्दीक्षितवर्योऽसौ या यजूकशिरोमणिः ॥ ७६ ॥

संस्कार्यो भरतेनैव सुपुत्रेण मनीषिणा ।
अन्त्येष्ठिकर्मणा चित्या मग्नीनाधाय यज्ञियान् ॥ ७७ ॥

अहं च वामदेवश्च कश्यपो गौतमस्तथा ।
मार्कण्डेयश्च भगवान् मौद्गल्यश्च महातपाः ॥ ७८ ॥

जातूकर्णश्च जाबालिः कात्यायन उदारधीः ।
एते चान्ये च बहवो मन्त्रपूता द्विजातयः ॥ ७९ ॥

सर्वे तमनुगन्तारो नीयमाने नराधिपे ।
देवर्षयो ब्रह्मर्षयस्तथा राजर्षयोऽमलाः ॥ ८० ॥

स सर्वैः सहितः सौम्यो भरतः श्रौतकर्मवित् ।
करिष्यते पितुर्दाहं यज्ञियेष्वेव चाग्निषु ॥ ८१ ॥

वचो वशिष्ठस्य निशम्य सर्वे सारार्थत्वादपरावर्त्तनीयम् ।
श्रीरामचन्द्रे हि गतं समाधिं विलोक्य राजानमितो विनिर्ययुः ॥ ८२ ॥

स्थले स्थले तदायोध्या रुदद्भिर्नागरैर्जनैः ।
नरैर्नारीगणैः कीर्णा शोकाद्वैतमिवाभजत् ॥ ८३ ॥

न शोभन्ती नगरी राजहीना विवर्जिता राजकुमारकैश्च ।
अस्तंगतेऽर्केऽनुदितेन्दुबिम्बा शोच्यामवद्वहुले शर्वरीव ॥ ८४ ॥

न वाद्यघोषो न च गीतनादो नालापशब्दोरुदतां जनानाम् ।
सर्वत्र शोकेन समावृता सा पुरी बभूवाभिभवं गतेव ॥ ८५ ॥

क्वापि घ्नन्ति शिरांसि भूतलशिलाखण्डैरुरांसि स्त्रियो
दृग्भिर्वाष्प परम्परां विदधते कुत्रापि निम्नोन्मुखी ।
कर्णाकर्णिकयन्ति केकयसुतादुष्कर्म कुत्राप्यलं
लिप्तोवान्धतमिस्रराशिभिरभूदूना रघूणां पुरी ॥ ८६ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे दशरथशोको नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

●

षड्विंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

सा रात्रिरतिकष्टेन सर्वेषां पर्वतोपमा ।
कथंचिदत्यगाद् घोरा तापाश्रुपरिदेवनैः ॥ १ ॥

प्रभाते मन्त्रिभिः सार्द्धं वशिष्ठो भगवान् द्रुतम् ।
महर्षिभिः परिवृतः सभामण्डपमाययौ ॥ २ ॥

तत्र ते मन्त्रयाञ्चक्रुः सर्वे राज्याभिषेचनम् ।
यस्य कस्यापि वंश्यस्य वीक्ष्य नीराजकाः प्रजाः ॥ ३ ॥

तानाह भगवानुच्चैः कोऽभिषेचनमर्हति[1] ।
भरते भूमिभारार्हे मातुलेष्वधितिष्ठति ॥ ४ ॥

प्रेष्यन्तां केकयान् दूता द्रुतं गत्वा गिरिव्रजम् ।
आनयन्तु महाभावं भरतं कुलभूषणम् ॥ ५ ॥

भो भो दूतवराः शीघ्रमितो गच्छत मा चिरम् ।
आनेयः केकयान् गत्वा भरतो भूरिविक्रमः ॥ ६ ॥

---

१. कोऽभिषेकमिहार्हति । अयो०, मथु० ।

एवंभूतो विशेषोऽस्य ज्ञापनीयो न कर्हिचित् ।
आख्येयः कुशलं बन्धु देशग्रामपुरादिषु ॥ ७ ॥

आयुष्मंस्त्वयि कुशलिनि कुशलं प्राणिनामिति ।
सामान्यतोऽखिलं वाच्यं विशेषः कोऽपि नोच्यताम् ॥ ८ ॥

आनेय एव चायुष्मान् विज्ञाप्य मम शासनम् ।
इति सम्प्रेषिता दूता यावद्गच्छेयुरुद्धुराः ॥ ९ ॥

अपश्यद्भूरतस्तावद्दुर्निमित्तानि भूरिशः ।
निद्राणोऽतीव दुःस्वप्नान् ददर्श भयदायकान् ॥ १० ॥

सिन्धोः शोषं विधोः पातं गगनादवनीतले ।
दुर्दिनं काममेघौघैस्तमसावरणं भुवः ॥ ११ ॥

व्यचष्ट च महाराजमन्यथा तातमात्मनः ।
[1]पलितं मुक्तत्रिकुरं पतितं चैव शेखरात् ॥ १२ ॥

अगाधेऽतीव कलुषे पङ्कगोमयजे ह्रदे ।
तैलाञ्जलीन् पिबन्तं च पतन्तं च मुहुर्मुहुः ॥ १३ ॥

स्थितं तैलोदनं भुक्त्वा नीचैः स्थापितमस्तकम् ।
तैलाक्तासर्ववपुषं तैलकुण्डावगाहिनम् ॥ १४ ॥

श्यामे लोहमये पीठे निषण्णं श्यामवाससा ।
प्रहसन्तं दशरथं कामिन्यः श्यामपिङ्गलाः ॥ १५ ॥

काकध्वजे खरैर्युक्ते रथे कृत्वा त्वरान्विताः ।
रक्तकृष्णप्रसूनस्रग्धारिण्यो दक्षिणामुखम् ॥ १६ ॥

नयन्ति त्वरयन्त्यश्च प्रेम्णालिङ्ग्य समुत्सुकाः ।
इत्याद्यनेकमुद्वीक्ष्य स्वयं स पुरुषोत्तमः ॥ १७ ॥
जानन्नपि श्रीभरतो बभूवाज्ञवदात्मना ।
अथ प्रातः समुत्थाय महाराजाधिराज भूः ॥ १८ ॥

स्वभावमधुरोदाररसज्ञवरवल्लभः ।
तप्यमानेन मनसात्युदासीन इवात्मना ॥ १९ ॥

स्थितो वयस्यैः सहितो नीयमानोऽपि चान्यतः ।
न तत्याज मनःशोकं भाविसूचनदुर्मनाः ॥ २० ॥

प्रेमालापैः सुरुचिरैर्विचित्रैश्च कथानकैः ।
हास्यैर्गानैस्तथा वाद्यैर्नृत्यैः कौतुककारिभिः ॥ २१ ॥

प्रेक्षणीयैश्च विविधैर्वस्तुभिर्निस्तुलैरपि ।
सखिभिः प्रियचारित्रैश्चेटकैश्चाटुकारिभिः ॥ २२ ॥

१. नास्ति–मथु०, बड़ो०, अयो० ।

गोष्ठीभिर्विविधाभिश्च पदार्थैश्च प्रहर्षणैः ।
गजैरश्वैरथैर्मल्लैश्चित्रयुद्धविशारदैः ॥ २३ ॥

क्रीडाकौतुकवार्त्ताभिस्तथा रत्नैरनेकशः ।
मोदितो रञ्जितश्चैव तैस्तैर्वस्तुकदम्बकैः ॥ २४ ॥

महाराजकुमारोऽसौ प्रससाद न चेतसि ।
ततः कश्चित्प्रियसखो जिज्ञासुस्तन्मनोऽब्रवीत् ॥ २५ ॥

किमद्येदं[1] तवौदास्यं महाराजकुमारक ।
प्रसादहेतुष्वप्येषु कथं वा न प्रसीदसि ॥ २६ ॥

पराजित इवान्येन लक्ष्यसे विनयोर्जित ।
दुश्चिकित्स्यमिव व्याधिं प्राप्तो नित्यनिरामय ॥ २७ ॥

संस्पृष्ट इव पापेन दृश्यसे पुण्यदर्शन ।
उक्तोऽसि वा किमद्य त्वं केनापि कलुषात्मना ॥ २८ ॥

वियुक्त इव चैवासि प्राणतुल्येन केनचित् ।
किमर्थमीदृशीं कष्टामवस्थामेवमास्थितः ॥ २९ ॥

निमित्तं ब्रूहि मे किंचिदार्यस्य तव पृच्छ्यते ।
स शासनीयः कैकेयराजेन खलु दुष्टधीः ॥ ३० ॥

प्रतिकूलवचा यस्ते सर्वलोकानुरञ्जिनः ।
इत्युक्तो भरतोऽवोचत्तं वै प्रियसखं निजम् ॥ ३१ ॥

मयाद्य निशि दुःस्वप्नो वीक्षितो घोरदर्शनः ।
स्मारं स्मारमहं तस्य पारं दुःखस्य न व्रजे ॥ ३२ ॥

ततः सर्वं समाचख्यौ यद् दृष्टमद्यसूचनम् ।
न जानाम्यद्य तातस्य शुभं किमपि वर्त्तते ॥ ३३ ॥

अङ्गानि मे विशीर्यन्ति दीर्यते हृदयं च मे ।
रामस्य वापि वैदेह्या भ्रातुर्वा लक्ष्मणस्य मे ॥ ३४ ॥

नाहमद्य शुभं वीक्षे मम वा घोरदर्शिनः ।
रात्रिशेषे तु यो दृष्टः स्वप्नो घोरतरो मया ॥ ३५ ॥

न तत्प्रतिकृतिं पश्याम्यहं शोकपरिप्लुतः ।
काकुत्स्थस्य वचः श्रुत्वा सुहृदस्तस्य बान्धवाः ॥ ३६ ॥

अवहित्थां समालम्ब्य लीलयैव समादधुः ।
विचिन्तयंस्ततो घोरं दुःस्वप्नमद्यशंसकम् ॥ ३७ ॥

१. मद्यास्ति । अयो०, मथु० ।

उद्विग्नचित्तो भरतस्तां सभामधिनस्थिवान् ।
तावद् दूताः परिप्रापुः कैकयेन्द्रस्य मन्दिरम् ॥ ३८ ॥
देशाननेकानुल्लङ्घ्य वशिष्ठप्रहिता जवात् ।
सप्तरात्रेण सम्प्राप्ताः कथंचिच्छ्रान्तवाहनाः ॥ ३९ ॥
ते समेत्य सभामध्ये कैकयेन्द्रं युधाजिनम् ।
राजानं राजपुत्रं च भरतं च शुचान्वितम् ॥ ४० ॥
ददृशुः पादयोर्नत्वा राजानं श्रमखेदिनाः ।
ऊचिरे भरतं दूता विधेयार्थनिवेदिनः ॥ ४१ ॥
सर्वैस्त्वं कुशलं पृष्टस्तूर्णमाकारितस्तथा ।
पुरोधसा मन्त्रिभिश्च कार्यमत्याहितं त्वयि ॥ ४२ ॥
अतः शीघ्रं विनिर्याहि समामन्त्र्य स्वबान्धवान् ।
भरतेन ततः पृष्टा दूताः सर्वेष्वनामयम् ॥ ४३ ॥
संक्षेपेणैव सम्प्रोचुर्निगूह्यान्तःस्थितां शुचम् ।
दूतांस्त्वरयतो वीक्ष्य भरतः कार्यतत्त्ववित् ॥ ४४ ॥
मातामहमुवाचेदं जवाज्जिगमिषुः पुरीम् ।
आज्ञापयततरामार्यं गच्छामि पितुरन्तिकम् ॥ ४५ ॥
शीघ्रं च पुनरेष्यामि निबद्धप्रणयस्त्वयि ।
ऊचे मातुलकश्चैनं युधाजिद् विरहातुरः ॥ ४६ ॥
सर्वेषु कुशलं वाच्यं पितृमातृमुखेषु ते ।
पुरोधसि वशिष्ठे च तथान्येषु द्विजातिषु ॥ ४७ ॥
स्मरणीया वयं शीघ्रं भवता हृतचेतसा ।
न ज्ञातश्च वसन् पुत्र भवान् प्रकृतिमोहनः ॥ ४८ ॥
आनन्दिता वयं सर्वे पुरं चेदं कृतार्थितम् ।
वियोक्तुं नैव वाञ्छामो भवतानन्ददायिना ॥ ४९ ॥
निबद्धहृदयाः सर्वा इमाः प्रकृतयश्च मे ।
प्रस्थास्यन्तं निशम्य त्वां जाता दुःखनिमीलिताः ॥ ५० ॥
योग एव त्वया भूयान्मा वियोगः कदाचन ।
हता मे शत्रवः सर्वे भूतिश्च महती कृता ॥ ५१ ॥
आनन्दिता भृशं वत्स कं नु शंसामि ते गुणम् ।
एवमेव सदास्मासु विदधत्सुखसम्पदम् ॥ ५२ ॥
सर्वदा दर्शनं देहि लोकानन्दसुधानिधे ।
अथास्मै तुरगान् जात्यान् विचित्रान् जलगामिनः ॥ ५३ ॥

अजिनानि महार्हाणि कम्बलान्यासनानि च ।
वस्त्राणिच्च विचित्राणि तद्देशप्रभवानि च ॥ ५४ ॥

हेमनिष्कसहस्राणि तुङ्गा अश्वतरीस्तथा ।
क्रमेलकान् महाजात्यान् शुनश्च मृगयोद्धुरान् ॥ ५५ ॥

चित्रवर्णान् महाकायान् व्याघ्रतुल्यान् पराक्रमे ।
केकयेन्द्रोऽदिशत्प्रीतः संविधाश्चापि देशजाः ॥ ५६ ॥

अमात्यान् भूरिधिषणान् दासान् दासीश्च मञ्जुलाः ।
वन्दिनो मागधान् सूतान् भूरिकार्यकरान् जनान् ॥ ५७ ॥

आखेटकांश्चेटकांश्च भण्डांश्च प्रियदर्शनान् ।
सभाप्रसादकान् प्राज्ञान् पण्डितांश्च महाकवीन् ॥ ५८ ॥

यद्यद्रुच्यतमं तस्य स्वस्रेयस्य महात्मनः ।
प्रीत्योपपादयाञ्चक्रे तत्तत्केकयभूपतिः ॥ ५९ ॥

धनं बहुतरं प्रादाद्भगिन्यै चित्तरञ्जनम् ।
भूषाश्च रत्नजटिता विचित्राश्चापि शाटिकाः ॥ ६० ॥

रत्नानि च महार्हाणि देश्यानि विविधानि च ।
सत्कृत्य सुबहु प्रादात्स्वस्रेयाय महात्मने ॥ ६१ ॥

सार्थे तस्य ददौ सेनां महतीं चतुरङ्गिणीम् ।
प्रस्थाने भरतस्याथ गिरिव्रजपुरस्त्रियः ॥ ६२ ॥

आत्मानं भूषयाञ्चक्रुर्दूषयाञ्चक्रुरेव च ।
आर्यपुत्रः पुरीमेतीत्यश्रुशोकविवर्जिताः ॥ ६३ ॥

विरहात्तस्य चात्यन्तं वर्द्धयन्त्यः शुचं हृदि ।
नगरं भूषितं सर्वं तस्य संतोषहेतवे ॥ ६४ ॥

आययुर्बलभीतुङ्गवातायनपथेषु च ।
कामिन्यः कामबाणेन ताडिता भरतं प्रति ॥
ऊचुः परस्परं दूना विरहेणास्य भूयसा ॥ ६५ ॥

धन्यास्ताः सखि निवसन्ति कोसलायां
या स्वैरं भरतमुखेन्दुकान्तिसारम् ।
पीयूषादपि रमणीयमास्वदन्त्यः
स्वात्मानं किमपि कृतार्थयन्ति वामाः ॥ ६६ ॥

जानीमः सखि भरतस्य पाणिपद्मे
पौष्पं तद्धनुरुदयत्यमोघवीर्यम् ।
पौष्पैस्तैरिषुभिरसौ ननु त्रिलोकीं
निर्जित्य प्रथयति कीर्तिमिन्दुवर्णम् ॥ ६७ ॥

नापश्यन् वयमिदमीयमेतदास्यं
चन्द्रादप्यधिकगुणं महामनोज्ञम् ।
एतावत्सहवसतावपीह भाग्यै
निर्मुक्ता न किमपि काममासवन्य: ।। ६८ ।।

क्वैतस्य त्रिशतमितेषु योजनेषु
क्षेमाढ्या वसतिरुदेतिपूरयोध्या ।
क्वास्माकं वसतिरियं गतेऽत्र देशे
विश्लेषं मनसि सहामहेऽस्य किं वा ।। ६९ ।।

यास्यामो वयमथवास्य संगलग्ना:
पत्यादीन् सपदि विहाय बान्धवौघान् ।
नि:शङ्कं श्रयतु कुलं कलङ्कभारं
विच्छेदं नदपि सहामहेऽमुना न ।। ७० ।।

इत्थमालपतीनां स मनांस्यादाय सुन्दर: ।
कैकयेन्द्रपुरस्त्रीणां निर्जगाम पुराद् बहि: ।। ७१ ।।
नातिदूरे सन्निवर्त्य स्निग्धं मातामहं नृपम् ।
अयोध्याभिमुखो धीमान् भरत: समवर्त्तत ।। ७२ ।।
सप्तरात्रोषितो मार्गे महत्या सेनया युत: ।
कोविदारध्वजरथ: पुरीं प्राप महायशा: ।। ७३ ।।
स्नात्वा स गोमतीं पुण्यां प्रात: परमधार्मिक: ।
ददर्शाथ रथारूढो दूरात्तां कोसलां पुरीम् ।। ७४ ।।
मनुना निर्मितां पूर्वं महाराजेन श्रीमता ।
प्रसुप्तामिव सर्वत्र हर्षशोभाविवर्जिताम् ।। ७५ ।।
तां तथा दुर्गतां वीक्ष्य राजचिह्नविवर्जिताम् ।
अशोचन्मनसा श्रीमान् भरत: शत्रुकर्षण: ।। ७६ ।।
किमद्य ज्ञापयत्येषा पुरी सुप्तेव सर्वत: ।
न च संश्रूयते घोष: पुरेव तुमुलो महान् ।। ७७ ।।
न च शृङ्गारितास्तुङ्गा दृश्यन्ते मदकुञ्जरा: ।
आगच्छन्तश्च गच्छन्त: पानार्थं विमलोदके ।। ७८ ।।
कृतपल्याणशोभाश्च न न दृश्यन्तेऽत्र वाजिन: ।
उच्छलन्तो महानद्यास्तरङ्गा इव सर्वत: ।। ७९ ।।
न चोद्यानविहारार्थं पुरान्निष्क्रमतां बहि: ।
महाजनवरेण्यानां श्रूयते रथजो ध्वनि: ।। ८० ।।
गानध्वनिश्च नारीणां पुरे न श्रूयते क्वचित् ।
न च दुन्दुभिढक्कादिघोषा माङ्गलिका: क्वचित् ।। ८१ ।।

ध्वजकेतुपताकाश्च नेक्ष्यन्ते पुरवेश्मसु ।
न च माङ्गलिको घोषः श्रूयते चरतां नृणाम् ।। ८२ ।।

प्रसुप्ता इव सर्वत्र दृश्यन्ते सत्त्वजातयः ।
पशवः पक्षिणश्चापि रुदन्त इव सर्वतः ।। ८३ ।।

तिरोभूतेव नो भाति श्रीःप्रासादेषु चापि नः ।
पुरश्रीरपि नष्टेव लक्ष्यते खलु सम्प्रति ।। ८४ ।।

इति शोचन् स मनसा सूतं च कथयत् मुहुः ।
विवेश नगरीं सद्यः सुप्तामिव गतश्रियम् ।। ८५ ।।

म्लानानि तत्र पौराणां मुखानि विसुखानि च ।
वीक्ष्यमम्लौ हृदा वीरः किं भावीति वितर्कयन् ।। ८६ ।।

मलिनान् वाष्पनयनान् दीनान् ध्यानपरान् जनान् ।
पश्यन्नपृच्छमानोऽसौ विवेश भवनं निजम् ।। ८७ ।।

बहून्यनर्थजातानि चिन्तयन् मनसोत्त्वरः ।
पूर्वं ययौ पितुर्वेश्म शून्यं दृष्ट्वा परावृतत् ।। ८८ ।।

ततोऽन्वगान्मातृगृहं स बुद्धिमान्
निशम्य माता स्वसुतं समागतम् ।
महार्हहेमासनतः समुत्थिता
जवेन दृष्टाभिययौ समुत्सुका ।। ८९ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे भरतागमनो नाम षड्विंशोऽध्यायः ।। २६ ।।

सप्तविंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तं यथावन्मिलित्वा सा केकयी स्नेहसंयुता ।
पप्रच्छ कुशलं भ्रातुः स यथा वन्निवेद्य च ।। १ ।।

पप्रच्छ तां विशेषेण पुरे शोकस्य कारणम् ।
पितरं भ्रातरौ चैव मातरं चैव जानकीम् ।। २ ।।

तमुवाचाथ कैकेयी राज्यलुब्धा प्रहर्षिणी ।
प्ररोचयन्ती हृदयं वृत्तं शोकस्य कारणम् ।। ३ ।।

लयं गतस्ते जनको महात्मा भूरिदक्षिणः ।
महामखो धर्मनिधिः परत्रेह च सौख्यकृत् ॥ ४ ॥
एवं स्थितेऽधुना तात भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम् ।
इत्युक्तः स जनन्याथ मूर्छितः पितृशोकतः ॥ ५ ॥
पपात धरणीपृष्ठे स्वश्च्युतश्चन्द्रमा इव ।
उत्थापितः स कैकेय्या दोर्भ्यामादाय यत्नतः ॥ ६ ॥
हा तातेति चिरं शोकाद् रुरोद भरतस्तदा ।
विललाप ततो भूयो गुणान् संकीर्त्तयन् पितुः ॥ ७ ॥
उवाच जननीं पश्चाद् दुःखसम्प्लुतमानसः ॥
समाध्यवसरे तात किमुवाच तदीरय ॥ ८ ॥
कथं समाधिं सम्प्राप्तः पिता मे सर्वशक्तिभृत् ।
इत्युक्ता भरतेनैषा कैकेयी वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥
रामस्य विरहस्तप्तः पिता ते विलयं[1] गतः ।
हा राम राम रामेति विलयन् शोकसंवृतः ॥ १० ॥
उवाच सोऽन्तावसरे तत्पुत्र त्वं निशामय ।
धन्यास्ते पुण्यकर्माणो रामं द्रक्ष्यन्ति ये जनाः ॥ ११ ॥
जानकीं लक्ष्मणं चैव वनवासात् समागतान् ।
तान् ये द्रक्ष्यन्ति मनुजास्तेषां भाग्यं महत्तमम् ॥ १२ ॥
एवं रटन् भवत्तातो निरुच्छ्वासो लयं गतः ।
रामस्तु सह वैदेह्या लक्ष्मणेन च साधुना ॥ १३ ॥
जगाम विपिनं घोरं चरन् धर्ममतन्द्रितः ।
जटाधरश्चीरवासा दिव्यतापसवेषभृत् ॥ १४ ॥
वने वसति धर्मात्मा यस्यशोकान्मृतो नृपः ।
इत्युक्तो भरतो मात्रा भूयस्तामाह दुःखितः ॥ १५ ॥
किं कृतं तेन मे भ्रात्रा यतोऽसौ विपिनं गतः ।
कच्चिन्निहतवान् विप्रमतिचक्राम वा गुरून् ॥ १६ ॥
कच्चित्स परदारान् वा मनसापि समस्पृशत् ।
कच्चिद्वान्यत्कृतं पापं येनार्यो विपिनं गतः ॥ १७ ॥
ततोऽब्रवीत्तं कैकैयी न तेन ब्राह्मणो हतः ।
न वान्यद्विहितं पापं तेन धर्मैकमूर्तिना ॥ १८ ॥
जितेन्द्रियः सदाचारः साधुकर्मा सतां मतः ।
वेदशास्त्रैकविज्ञाता साधुकर्मा रघूद्वहः ॥ १९ ॥

---

१. समाधिम्–अयो०, मथु० ।

ममैव कर्मणा रामो वनं यातः श्रृणुष्व तत् ।
यौवराज्याभिषेकाय रामस्य कृतवान् धियम् ॥ २० ॥

पिता ते साधुहृदयो मुनीनाकार्य मान्त्रिकान् ।
तदा मया कृतो विघ्नस्तव स्नेहेन भूयसा ॥ २१ ॥

प्राग्दत्तमहमस्मार्षं राज्यलुब्धा वरद्वयम् ।
यावत्पञ्चदशाब्दानि रामस्य वनवासनम् ॥ २२ ॥
एकेन याचितवती द्वितीयेन च पुत्रक ।
तव सर्वमहीराज्यं स्नेहात्प्रार्थितवत्यहम् ॥ २३ ॥

इति ते सर्वमुदितं यथा रामो वनं गतः ।
यथा च तद्वियोगेन पिता ते मरणं गतः ॥ २४ ॥
त्वदर्थं सर्वमेवैतन्निष्ठुरं रचितं मया ।
जानन्त्यपिहितं रामं सर्वत्रैलोक्यरञ्जनम् ॥ २५ ॥

महाभावं महाशीलं धर्मनिष्ठं सतां गतिम् ।
त्वयि संस्निग्धमनसा कृतमेतन्मयाखिलम् ॥ २६ ॥
स त्वं शोकं परित्यज्य पितुस्त्रिदिववासिनः ।
भ्रातुश्च सानुजस्यैव सभार्यस्य वनस्थितेः ॥ २७ ॥

पितृपैतामहं राज्यं भुङ्क्ष्व भोगांस्तथोज्ज्वलान् ।
यदर्थं क्षत्रिया युद्धं सज्जन्ते त्यक्तजीविताः ॥ २८ ॥
तत्ते करगतं राज्यमनायासेन पुत्रक ।
भुङ्क्ष्व मद्बुद्धिविहितं भोगयुक्तमकण्टकम् ॥ २९ ॥

निशम्य क्रूरं जननीभाषितं भरतस्तदा ।
करौ संताड्य धरणौ क्लिष्टधीरिदमब्रवीत् ॥ ३० ॥
अयिक्रूरतरे धीरेघोरपातककारिणि ।
किमिदं विहितं घोरं त्वया कुटिलचित्तया ॥ ३१ ॥

रामस्यैवाखिलं राज्यमहं रामस्य सेवकः ।
त्वया स्नेहं विजानन्त्या विप्रियं रचितं मम ॥ ३२ ॥
त्यक्तधर्मा वीतदया निर्लज्जा पापकारिणी ।
पतिहन्त्री घोरकर्मा किमिदं त्वमुपाचरः ॥ ३३ ॥

हा हा हतोऽस्मि पापिष्ठे त्वया कुलकलङ्कया ।
तव बुध्यातिकुटिले ममापि भ्रंशिता गुणाः ॥ ३४ ॥
हा हा हतोऽस्मि दग्धोऽस्मि दूषितोऽस्मि त्वया खले ।
अहं प्राणान् विमोक्ष्यामि मां विनात्वं भविष्यसि ॥ ३५ ॥

किं तेऽपराद्धं पापिष्ठे भर्त्रा तेन महात्मना ।
रामेण वानुकूलेन त्वं तयोर्यत्तथाचरः ॥ ३६ ॥

ब्रह्महत्यां भ्रूणहत्यां गोहत्यां गोहत्यां चातिकुत्सिताम् ।
तथान्यघोरपापानि भवती न चकार किम् ॥ ३७ ॥

प्रवासितवती रामं [1]यस्मात्त्वमनपराधिनम् ।
तद्वियोगेन घोरेण पतिं च समघातयः ॥ ३८ ॥

गन्तासि नरकं घोरं पापेनानेन दूषिता ।
अयं चैव परो लोकस्त्वया नाशित आत्मनः ॥ ३९ ॥

किं मे राज्येन किं भोगैः किं प्राणैः किं पुनस्त्वया ।
प्रवासिते वनं रामे ताते लयगतेऽधुना ॥ ४० ॥

सर्वं मे दुःसहं लोके जीवितुं चापि नोत्सहे ।
पापं कृतवतीमेवं त्वामहं हन्मि निश्चितम् ॥ ४१ ॥

परित्यजेत्तु मां रामो मातृहत्याविदूषितम् ।
तत एव दुराचारे मुञ्चामि त्वां कृतागसाम् ॥ ४२ ॥

ईदृग्विधाघकारिण्या नेक्षिष्ये वदनं तव ।
किमर्थं रक्षिता पापा मम पित्रा त्वमीदृशी ॥ ४३ ॥

व्यालीव गरलोद्गारकारिणी पापचारिणी ।
धिक् त्वामेवंविधयं क्रूरां नृणामत्यधमाधमाम् ॥ ४४ ॥

न त्वं धर्मात्मनः पुत्री कैकयेन्द्रस्य धीमतः ।
पापिष्ठा दुष्टधीः क्रूरा राक्षसस्यासि वीर्यजा ॥ ४५ ॥

त्वं राक्षसी न संदेहः पुत्रघ्नी पतिघातिनी ।
यया वियोजितो रामः कल्याणगुणवारिधिः ॥ ४६ ॥

रामं निवर्तयिष्यामि विज्ञाप्य वनवासतः ।
भक्तिं तस्य करिष्यामि नान्यथा जीवनं मम ॥ ४७ ॥

अविज्ञाय कृतं कर्म मामकं हृदयं त्वया ।
तत्फलं भोक्ष्यसे क्रूरे त्यक्तासि त्वं भृशं मया ॥ ४८ ॥

अहं वत्स्यामि विपिने यावत्पञ्चदशाब्दकम् ।
रामं राज्ये करिष्यामि प्रार्थयित्वा विशेषतः ॥ ४९ ॥

त्वया पातककारिण्या साधुस्नेहः कृतो मयि ।
प्राणेष्वपि च संदेहः पातितो मम यत्त्वया ॥ ५० ॥

---

१. इस चरण में एक अक्षर अधिक हो जाने से छन्दोभंग हो गया है ।

इत्येवं जननीं विगर्हितवता संजातभूयः शुचा
हा तातेति चिरं विलप्य भरतेनातीव तापः कृतः ।
निःश्वस्याश्रुपरीतलोचनयुगेनोत्क्षिप्तहस्तद्वयी
भूयस्ताडितवक्षसा बहुतरं सोत्तापमाक्रन्दितम् ।। ५१ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे
भरतविलापे कैकेयीविगर्हणो नाम
सप्तविंशोऽध्यायः ।। २७ ।।

अष्टाविंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

विगर्हयित्वा जननीं भूयो निश्वस्य शोकतः ।
विललाप चिरं दुःखी भरतः पितृवत्सलः ।। १ ।।

स्मारं स्मारं रामचन्द्रं प्रोषितं मातृकर्मणा ।
भूयोऽपि विललापासौ भरतो भ्रातृवत्सलः ।। २ ।।

निःश्वस्य दुःखसंवीतो रुदित्वा च चिरं तदा ।
मूर्छितो निपपातोर्व्यां शक्रध्वज इवोन्नतः ।। ३ ।।

शत्रुघ्नस्तं समाश्वायदोर्भ्यामुत्थाप्य भूमितः ।
सुचिरं भर्त्सयामास कैकेयीं पापकारिणीम् ।। ४ ।।

हा कैकेयि महत्पापं स्त्रिया खलु कृतं त्वया ।
नीचचेटिकथा प्रोक्तं किमाहृतवती वचः ।। ५ ।।

अन्तःपुरचरीवाक्यान्मन्थरां नीचचेटिकाम् ।
विज्ञाय भरतः श्रीमान् शत्रुघ्नायन्यवेदयत् ।। ६ ।।

सैषा दुर्मन्त्रदा मातुर्नीचा चेटी खलाशयाः ।
सर्वाङ्गभूषिता भूयो मात्रा सम्मानिता च नः ।। ७ ।।

अनर्थमूलमेषैव चेटिका पापकारिणी ।
दूतोऽपसारयैनां त्वं दूरे शत्रुघ्न दुर्मतिम् ।। ८ ।।

वारं वारमियं चक्षुःपथमद्य प्रयाति मे ।
मानयिष्यति मां स्निग्धामिति विज्ञाय दुष्टधीः ।। ९ ।।

मया खलु कृतं राज्यं भरतस्येति सम्भ्रमात् ।
पुनः पुनर्दंशोर्मार्गमियमभ्येति मे खला ॥ १० ॥

मानयैनां यथायोग्यं नीचां चेटीं दुराशयाम् ।
यया नो निहतस्तातो भ्राता चैव वियोजितः ॥ ११ ॥

इतः परं कियन्नाम विप्रियं मे करिष्यति ।
पूजार्हां पूजयैनां त्वमुपानत्पांसुमुष्टिभिः ॥ १२ ॥

निर्दिष्टां भरतेनैवं मन्थरां पापकारिणीम् ।
विचकर्ष बलाद्भूयः शत्रुघ्नो भृशकोपितः ॥ १३ ॥

पातयित्वा महीपृष्ठे पद्भ्यामादाय तां खलाम् ।
आचकर्ष बलादेव निर्भर्त्स्य कुपितान्तरः ॥ १४ ॥

साऽऽकृष्यमाणा दुष्टात्मा शत्रुघ्नेन बलाद् भुवि ।
विचुक्रोश सुदीनात्मा पांसुभिः पूरिता नना ॥ १५ ॥

तामाह दुष्टहृदयां शत्रुघ्नो घोरदर्शनः ।
हा नीचे राजपुत्रीणामेवं दुर्मन्त्रदायिनि ॥ १६ ॥

वधार्हां त्वां हनिष्यामि निर्दयां पापकारिणीम् ।
त्वया हतो महाराजस्त्वया भ्राता वियोजितः ॥ १७ ॥

रघूणां कुलमुत्कृष्टं त्वया नीतं मुलाघवम् ।
असुभिस्त्वां वियोक्ष्यामि महानर्थैककारिणीम् ॥ १८ ॥

त्वमीदृशाय विधये पालितोच्छिष्टभोजिनी ।
शुनीव पिण्डदानेन वर्द्धिता दशनोद्धुरा ॥ १९ ॥

त्वं रासभी भारयोग्या योग्या राजकुलस्य न ।
महाराजकुमारस्य रामस्य भृशवैरिणी ॥ २० ॥

कथं नु त्वं परित्यक्ता तेनार्येण दयालुता ।
त्वद्विधायां नृशंसायां को दयां परिपालयेत् ॥ २१ ॥

मया त्वमधुना पापे नेयासि यमपत्तनम् ।
अद्यत्वं द्रक्ष्यसिखले याम्या दारुणयातनाः ॥ २२ ॥

इदं नः पतितं घोरं दुःखं शोकोर्ज्जितं महत् ।
तदहं त्वयि मोक्ष्यामि वृश्चित्वा ननु ते गलम् ॥ २३ ॥

इत्युक्त्वा कुपितोभूयः कुब्जिकां शत्रुसूदनः ।
विपोथ्य धरणीपृष्ठे विचकर्ष मुहुर्मुहुः ॥ २४ ॥

भरतस्तं तथा क्रुद्धं वारयामास वाक्यतः ।
अवध्यामबलामेनामलं हत्वा महामते ॥ २५ ॥

हन्यामहमिमां पापं कैकेय्या सह किं नहि ।
किंतु धर्मात्मनामग्रयस्त्यजेद्राम इति क्षमे ॥ २६ ॥

इत्युक्तो भरतेनासौ शत्रुघ्नस्तपमानसः ।
चिरं विकृष्यतां पापां पोथयित्वा महीतले ॥ २७ ॥

तत्याजनियनक्रोधो न तु हिंसितवान् रुषा ।
ननस्तौ भ्रातरौ क्रुद्धौ दुःखशोकसमाकुलौ ॥ २८ ॥

परस्परं ममाघ्राय हृदयं भृशमातुरम् ।
कौसल्यां पुत्रशोकार्तां पतिशोकनिमीलिताम् ॥ २९ ॥

द्रष्टुं चैव समाधातुं ततस्तावदतिष्ठताम् ।
तौ दूराद् वीक्ष्य दुःखार्ता रामस्य जननीं तदा ॥ ३० ॥

प्रणम्य भक्तिविनतौ पादयोरभिये ततुः ।
परिष्वज्याथ कौसल्या शत्रुघ्नं भरतं तथा ॥ ३१ ॥

ऊचे दीर्घं विनिःश्वस्य यथावृत्तं विचिन्त्य सा ।
कच्चित्ते पूरितः कामः कैकेय्या स्निग्धचित्तया ॥ ३२ ॥

कच्चित् प्राप्तं महीराज्यं मम पुत्रविवासनात् ।
आनन्दितस्य राज्येन पितृशोकः स किं तव ॥ ३३ ॥

विनापराधं मत्पुत्रश्चीरवासा जटाधरः ।
प्रवासितो वनं घोरं तव राज्यस्य हेतवे ॥ ३४ ॥

अहं तत्रैव यास्यामि यत्र रामः सहानुजः ।
सभार्यश्च वनेचारी तपश्चरति धार्मिकः ॥ ३५ ॥

उचितं बत कैकेयी त्वदर्थमिदमाचरत् ।
चेटिकामन्त्रकथनात् प्रादुर्भूतस्मृतिर्जवात् ॥ ३६ ॥

रामं प्रवास्य विपिने पतिं प्राणैर्वियोज्य च ।
त्वदर्थं बत कैकेयी जगृहे राज्यमूर्जितम् ॥ ३७ ॥

प्राप्त एवाधुना स त्वं भोक्ष्यसे राज्यमूर्जितम् ।
गतो यत्र स मत्पुत्रो नय तत्रैव मामपि ॥ ३८ ॥

भुङ्क्ष्व निष्कण्टकं राज्यं कैकेय्या समुपार्जितम् ।
मृत्वापि तव तातेन तुभ्यं सम्प्रतिपादितम् ॥ ३९ ॥

कौसल्याया वचः श्रुत्वा भरतस्तामथाब्रवीत् ।
मातर्जानामि कैकेय्या मामपृष्ट्वैव यत्कृतम् ॥ ४० ॥

ईदृङ्मम पुनर्बुद्धिर्मा भूत्स्वप्नेऽपि जातुचित् ।
आर्ये महत्कृतं पापं कैकेयातिनृशंसया ॥ ४१ ॥

किं पुनर्मामिदं वृत्तमजानन्तं विगर्हसे।
रामः करिष्यते राज्यं तस्य दास्यऽमहं भजे॥ ४२॥

भूतभव्यभविष्यत्सु मनसा कर्मणा गिरा।
यस्य रामेऽन्यथाबुद्धिः स वै पततु रौरवे॥ ४३॥

यस्य दास्यं परित्यज्य रामे स्यान्मतिरन्यथा।
पापच्यमानः पापेन स वै पततु रौरवे॥ ४४॥

आर्ये यस्य परा प्रीतिर्न रामस्य पदाम्बुजे।
घोरेण पाप्मना ग्रस्तः स वै पततु रौरवे॥ ४५॥

रामचन्द्रमनादृत्य स्वस्य राज्याधिकारिताम्।
स्वप्नेऽपि यो विजानाति स वै पततु रौरवे॥ ४६॥

कैकेय्या यत्कृतं कर्म घोरबुद्ध्या नृशंसया।
तत्र यस्य भवेत्प्रीतिः स वै पततु रौरवे॥ ४७॥

रामस्य चेद्वने वासं राज्यलाभं तथात्मनि।
स्वप्नेऽपि भावितं येन स वै पततु रौरवे॥ ४८॥

वेदशास्त्रपुराणेभ्यस्तस्य[1]स्याद् विमुखी मतिः।
रामस्य यो वने वासं स्वप्नस्थोऽपि विचिन्तयेत्॥ ४९॥

नित्यं पापानुगा बुद्धिस्तस्यास्तु शुभलोपिनी।
रामस्य यो वने वासं स्वप्नस्थोऽपि विचिन्तयेत्॥ ५०॥

ब्रह्महत्या महाघोरा तस्य लिम्पतु विग्रहम्।
रामस्म यो वने वासं स्वप्नस्थोऽपि विचिन्तयेत्॥ ५१॥

तस्य गोवधजात्पापान्मास्तु मुक्तिः कदाचन।
रामस्य यो वने वासं स्वप्नस्थोऽपि विचिन्तयेत्॥ ५२॥

हत्वा मित्रं गुरुं विप्रं तत्क्रियोऽप्यभिपद्यताम्।
रामस्य यो वने वासं स्वप्नस्थोऽपि विचिन्तयेत्॥ ५३॥

तस्य श्रेयस्करी बुद्धिः कदापि समुदेतु मा।
रामस्य यो वने वासं स्वप्नस्थोऽपि विचिन्तयेत्॥ ५४॥

इष्टं दत्तं हुतं तप्तं बन्ध्यं तस्यास्तु सर्वदा।
रामस्य यो वने वासं स्वप्नस्थोऽपि विचिन्तयेत्॥ ५५॥

तस्य श्रेयः सदा मा भूदिह चैव परत्र च।
रामस्य यो वने वासं स्वप्नस्थोऽपि विचिन्तयेत्॥ ५६॥

गोग्रासहृति यत्पापं तत्पापं तं प्रबाधताम्।
रामस्य यो वने वासं स्वप्नस्थोऽपि विचिन्तयेत्॥ ५७॥

---

१. तस्यास्तु—अयो०, मथु०।

अरक्षणात्प्रजानां यत्पापे राज्ञोऽस्तु तस्य तत् ।
गमस्य यो वने वासं स्वप्नस्थोऽपि विचिन्तयेत् ॥ ५८ ॥

विप्रस्य हृत्वा सर्वस्वं पुष्णातु स निजंवपुः ।
गमस्य यो वने वासं स्वप्नस्थोऽपि विचिन्तयेत् ॥ ५९ ॥

स्त्रीवधादग्निदानाच्च गुरुकन्याविदूरणात् ।
मित्रद्रोहाद् गोद्विजातिवह्निनिष्ठीवनात्तथा ॥ ६० ॥

यत्पापं गुर्ववज्ञातस्तत्पापं तस्य लिप्यतु ।
गमस्य यो वने वासं स्वप्नस्थोऽपि विचिन्तयेत् ॥ ६१ ॥

इत्याद्यनेकशपथैरात्मानं शपतामुना ।
आश्वासिता राममाता वाक्यमेतदवोचत ॥ ६२ ॥

जानामि त्वां महाप्राज्ञ शुद्धप्रकृतिमुज्ज्वलम् ।
कैकेय्या दूषणाद् वत्स न त्वं द्रक्ष्यसि कर्हिचित् ॥ ६३ ॥

रामेण सहितस्तात चिरं श्रेयांस्यवाप्नुहि ।
अपीदृशैस्त्वं शपथैर्नूनमुद्वेजयस्ति माम् ॥ ६४ ॥

धर्मात्मा सत्यपरमो वेदार्थनयनो भवान् ।
चिरंधर्मेण वर्द्धस्व रघूणां कुलनन्दनः ॥ ६५ ॥

कदा द्रक्ष्याम्यहं रामं भवता लक्ष्मणेन च ।
सहितं चीर्णतपसं वनवासादुपागतम् ॥ ६६ ॥

राजर्षीणां महर्षीणां पुण्येन विमलात्मनाम् ।
दीर्घमायुश्च लभतां भवान् कुलयशस्करः ॥ ६७ ॥

पुण्यैः समेधितस्तिष्ठ चिरं नृपतिनन्दन ।
यथा रामस्तथैव त्वं ममातिप्रेमभाजनम् ॥ ६८ ॥

दिष्टया त्वमागतः पुत्र भाग्येन नृपतेरिह ।
कुरु संस्कारमन्त्येष्टया प्रमीतस्य पितुर्जवात् ॥ ६९ ॥

तैले निपातितं तत्ते पितुर्दाहोचितं वपुः ।
दह्यतां संस्कृते वह्नौ दीक्षितेन्द्रस्य यज्वनः ॥ ७० ॥

त्वदायत्तमिदं कर्म पितुस्ते पारलौकिकम् ।
कुरु द्विजातिभिः साकं कर्मज्ञैर्मुनिपुङ्गवैः ॥ ७१ ॥

स्वर्गतं पितरं वत्स त्वं प्रीणयितुमर्हसि ।
पिण्डसम्मेलनात्पूर्वैरेकार्थ्यकरणास्तथा ॥ ७२ ॥

कुरु पुत्रोचितं कर्म भवान् कुलधुरंधरः ।
आजानिकं रघूणां हि या दृशं विमलं यशः ॥ ७३ ॥

भूयश्चश्वासितो वीरस्तदा कौसल्यया भृशम् ।
रुरोद भूपतिं स्मृत्वा पितरं भ्रातरं तथा ॥ ७४ ॥

विललापातिकरुणं कौसल्यां वीक्ष्य तादृशीम् ।
विधवां शोकसम्पनां पुत्रेण च विवर्जिताम् ॥ ७५ ॥

तथा विलपतस्तस्य प्रावर्त्तत पितृप्रसूः[1] ।
उष्णंनिःश्वसतः शोकाद् दुःखसंवृतचेतसः ॥ ७६ ॥

ततो रात्रिरुपावृत्ता दुर्नेया पर्वतोपमा ।
शोके वर्षशताकारा त्रियामापि तमोवृता ॥ ७७ ॥

अथ प्रभाते भगवान् वशिष्ठो द्विजातिभिर्मन्त्रिवरैः प्रधानैः ।
समन्वितो राजगृहं सशोकमुपागमत् सर्वविधेयवेत्ता ॥ ७८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे भरतकौशल्यासमागमोनामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

●

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अपश्यन् भरतं सर्वे मन्त्रिणो दुःखकर्षितम् ।
शोकार्त्तं हीनवर्णं च विलपन्तं पुनः पुनः ॥ १ ॥

प्रवासं रामचन्द्रस्य शोकाच्च समाधिं पितुः ।
मातुर्धर्मातिक्रमं च चिन्तयन्तं पुनः पुनः ॥ २ ॥

शोकपारमपश्यन्तं वीक्ष्य निःशरणाः प्रजाः ।
अपापमपि चात्मानं जनन्या दुष्टकर्मणा ॥ ३ ॥

पापिष्ठमिव मन्वानं भृशं सम्मूढचेतसम् ।
प्राणानप्यवहेलन्तं जीवितेऽप्यकृतादरम् ॥ ४ ॥

तादृक्सुखिनमात्मानमकस्माद् दुःखभाजनम् ।
शोचन्तंभृशमुद्विग्नं वनबद्धमिव द्विपम् ॥ ५ ॥

वनेऽपि गत्वा रामस्य पादसंवाहनोत्सुकम् ।
शोकं विनेतुमिच्छन्तं रामवक्त्रेन्दुदर्शनात् ॥ ६ ॥

---

१. "सायं संध्या"—टि०–मथु०, बड़ो० । (षड्विंशो–बड़ो०)

ते तं तथाविधं वीक्ष्य विलपन्तमचेतनम् ।
मन्त्रिणो रुरुदुः सर्वे दुःखार्त्ता अश्रुलोचनाः ॥ ७ ॥

तमुवाच वशिष्ठोऽथ कृत्यज्ञो धीमतां वरः ।
अदय त्वं व्यसनं घोरं शोकेन प्राप्तवानसि ॥ ८ ॥

मा भूर्विमूढहृदयः कृत्यं साधयचोत्तरम् ।
त्वादृशाः पुरुषाधीरा नैवं सीदन्ति ।शोकतः ॥ ९ ॥

तस्मान्निगृह्य त्वं शोकं संस्तभ्य हृदयं तथा ।
धृत्या युक्तः स्वपितरं शीघ्रं निर्हर्त्तुमर्हसि[1] ॥ १० ॥

न त्वां विनास्य संस्कारं कश्चित्कर्तुमिहार्हति ।
त्वां प्रतीक्षद्भिरस्माभिस्तातस्य तव विग्रहः ॥ ११ ॥

तैलंकोष्ठे विनिःक्षिप्तो राममातुर्निकेतने ।
तस्यौर्द्ध्वदैहिकं कर्म भवान् शीघ्रतरं कुरु ॥ १२ ॥

इमाश्च राजमहिषीर्दुःखिताः शोककर्षिताः ।
नोपेक्षतां भवान् वत्स ह्यनाथा नाथ तां गताः ॥ १३ ॥

प्रजाश्चेमा लोकनाथे मृते पितरि तेऽधुना ।
अनाथाः पालयामूषां नाथोऽसि खलु साम्प्रतम् ॥ १४ ॥

स एवमुक्तो मुनिना भरतो धर्मवित्तमः ।
उवाच नितरां क्लिष्टो नीचैः समभिवीक्ष्य तम् ॥ १५ ॥

प्राजापत्य मुनिश्रेष्ठ त्वय्यप्येवं प्रजल्पति ।
दीर्यते शोकशल्ये नान्तःस्थेन हृदयं मम ॥ १६ ॥

दासोऽहं रामचन्द्रस्य भृत्यः प्रेष्यश्च संततम् ।
स एव लोकनाथोऽदय पितर्युपरते मुने ॥ १७ ॥

कोऽहं नाथः सुदीनात्मा मा भून्मे तादृशी मतिः ।
यादृशं विहितं घोरं कैकेय्या बत पातकम् ॥ १८ ॥

यदाह मां त्वं नृपतेः कर्तुं कर्मोर्ध्द्वदेहिकम् ।
शक्यं तत्तु मया कर्तुं दीर्यते हृदयं न चेत् ॥ १९ ॥

श्रुत्वा धर्म्यं वचस्तस्य भरतस्य महात्मनः ।
तस्मै दशरथस्यैते कलेवरमदर्शयन् ॥ २० ॥

तैलकोष्ठस्थितं प्रेतं हीनवर्णं गतत्विषम् ।
ददर्श भरतो राज्ञः कलेवरमनिन्दितम् ॥ २१ ॥

राजावरोधनिबहमग्रे कृत्वाश्रुवर्षणम् ।
रुदन्तं ताडयन्तं च दोर्भ्यां वक्षांसि दारुणम् ॥ २२ ॥

---

१. 'गृहाद्बहिर्निष्कासितुं' टि० - मथु० बड़ो० ।

दृष्ट्वा तु भरतस्तातं प्रमीतं शोकमूर्छितः ।
निपपातमहीपृष्ठे शत्रुघ्नसहितस्तदा ॥ २३ ॥

विलप्य करुणं भूय उवाच पितरं पुनः ।
जीवन्तमिव सम्प्रेक्ष्य भक्तिनम्रः कृताञ्जलिः ॥ २४ ॥

किमिमां दारुणां निद्रां भजसे मीलितेक्षणः ।
उत्थाय पूर्ववत्तात किं परिष्वजसे न माम् ॥ २५ ॥

अयं तव सुतः स्निग्धः परप्रेमैकभाजनम् ।
शत्रुघ्नो रुदते शोकात्किमेतं नाभिभाषते ॥ २६ ॥

आरामक्रीडनादेत्य तवाङ्कमधितिष्ठतः ।
मम मूर्द्धन्युपाघ्राय परिरम्भमदाः पुरा ॥ २७ ॥

सोऽहं चिरान्मातुलेषु प्रोष्योपावृत्त उत्सुकः ।
विनापराधं भवता नाभिभाष्यः कथं कृतः ॥ २८ ॥

समुत्तिष्ठ महाराज दण्ड्यान् दण्डेन योजय ।
अकण्टकं निजं राज्यं भुङ्क्ष्व निद्रां विहाय भोः ॥ २९ ॥

धन्यः स एव धर्मात्मा रामो लक्ष्मण एव च ।
यस्तवाज्ञामुपादाय राज्यं त्यक्त्वा वनं गतः ॥ ३० ॥

हतभाग्योऽस्म्यधन्योऽहं यत्कृते राजसत्तमः ।
कैकेय्या वचनादेवं प्राणानुत्सृष्टवान् भवान् ॥ ३१ ॥

इत्थं भृशं विलपति भरते राजयोषितः ।
अत्यर्थं रुरुदुः सर्वा दीप्तशोकहुताशनाः ॥ ३२ ॥

विलपन्तं मुहुर्वीक्ष्य महाराजकुमारकम् ।
वशिष्ठजाबालिमुखा इदमूचुर्मुनिद्विजाः ॥ ३३ ॥

अलं शोकेन ते भूयः किं शोचसि महीपतिम् ।
येनेष्टं बहुधा यज्ञैरश्वमेधैः शताधिकैः ॥ ३४ ॥

राजसूयैरनेकैश्च सोमैस्तु प्रतिवत्सरम् ।
दत्तानि येन दानानि मेरुतुल्यधनानि च ॥ ३५ ॥

निहता दानवा येन शक्रः स्वर्गेऽधिरोपितः ।
ब्रह्मण्यो बहुदो यज्वा स न शोच्यः कदापि ते ॥ ३६ ॥

भवादृशाः सुता यस्य रामचन्द्रपुरोगमाः ।
सत्यसन्धा महाशूरा ब्रह्मण्या वेदपारगाः ॥ ३७ ॥

श्रद्धावन्तो धर्मनिष्ठाः सूर्यसोमानलोपमाः ।
जीवन्नेव स भूपालः प्रमीतोऽपि महाभगः ॥ ३८ ॥

श्रद्धन्ते नातिशोकं च प्रमीतस्य पुराविदः।
महीयमानो लोकेषु सत्कर्मोपार्जितेष्वथलम् ॥ ३९ ॥

बन्धूनां शोकवाष्पौघैः क्षीणपुण्यः पतेदिति।
नियम्य शोकवाष्पौघं स्वर्गात्प्रच्यावनं पितुः ॥ ४० ॥

कुर्वौर्द्ध्वदैहिकं सम्यक् प्रीयते स्वर्गतो यथा।
अतिशोकेन वाष्पौघैः क्षीणपुण्यः पिता तव ॥ ४१ ॥

स्वर्गात्प्रभ्रंशितः क्रोधान्न त्वां शपतु धार्मिकम्।
पुण्येनोपार्जिता लोकाः पारमेष्ठ्यपदावधि ॥ ४२ ॥

इत्युक्त्वा विरतेष्वेषु मुनीन्द्रेषु महाशयः।
धृत्या शोकं नियम्याशु भरतो मन्त्रिणोऽब्रवीत् ॥ ४३ ॥

आज्ञापितो मुनिश्रेष्ठैर्वशिष्टाद्यैर्महात्मभिः।
करिष्ये देहसंस्कारं यायजूकस्य मे पितुः ॥ ४४ ॥

आनेयाः संविधाः सर्वा यथोदिष्टा मुनीश्वरैः।
और्द्ध्वदैहिककर्मार्हा याभिः संस्करणं पितुः ॥ ४५ ॥

मुक्तशोकः करिष्यामि निदेशेन महात्मनाम्।
इत्युक्ता मन्त्रिणस्तेन तथाचक्रुः प्रणम्य तम् ॥ ४६ ॥

विप्राग्र्यैः कृतमतिभिर्महर्षिमुख्यैः सन्मन्त्रिप्रवरगणैः प्रभाषतोऽस्य ॥
सा घोरा रजनिरवर्त्ततातिशोका दुष्पाराकिमपि सहस्रवर्षतुल्या ॥ ४७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे भरतशोको नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९॥

त्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

प्रातः प्रबोधनार्थाय सूतमागधवन्दिनः।
महाराजकुमारस्य श्रावयन्ति स्म सुस्वरम् ॥ १ ॥

तानुवाचैष भरतस्तूर्यघोषं निवारयन्।
नाहं महीपतिः किंतु यो राजा तस्य सेवकः ॥ २ ॥

किमर्थं मत्प्रबोधाय तूर्यघोषो वितन्वते।
कस्यात्र कुरुथ स्तोत्रं राजा वस्त्रिदिवं गतः ॥ ३ ॥

तत्सुतो राज्यभोगर्हः स इदानीं वनं गतः ।
यस्याहं सेवको भृत्यः प्रेष्यश्चैवास्मि सर्वथा ॥ ४ ॥

इति वर्जितसम्प्राप्तप्रावांधिकजनस्वरः ।
उवाच धर्म वित्तात्मः शत्रुघ्नं प्रति दुःखतः ॥ ५ ॥

अहो शत्रुघ्न पश्येदं कैकेय्या दुश्चरित्रकम् ।
यया मे नाशिता कीर्तिरार्यदास्यसमुद्भवा ॥ ६ ॥

किं करोमि क्व गच्छामि दुःखपारं न दृश्यते ।
इत्युक्त्वा विललापोच्चैर्भरतो भूरिदुःखितः ॥ ७ ॥

विलपन्तमनुक्लिष्टा विलेयुः सर्वयोषितः ।
अवरोधो महान् राज्ञो विललापार्तनादभृत् ॥ ८ ॥

अथागमत्सभामेव शत्रुघ्नसहितो बुधः ।
तत्रैनं मन्त्रिप्रवरा उपासाञ्चक्रिरेऽखिलाः ॥ ९ ॥

सुमन्त्राद्या यथास्थानमुपविष्टाः समन्ततः ।
ततोऽभ्युपेयुः सर्वेऽपि प्रधानाः पुरवासिनः ॥ १० ॥

आगच्छतां राजलोकप्रवराणां महान् ध्वनिः ।
तत्राभवन्सभामध्ये तलध्वनिमहोर्जितः ॥ ११ ॥

उपविष्टेषु सर्वेषु समर्यादं सभान्तरे ।
वशिष्ठो भगवांस्तत्र पुरोहितशिरोमणिः ॥ १२ ॥

उवाच धर्मनिपुणो भरतं मन्त्रिणस्तथा ।
पश्यैते मतिमन् सर्वे प्राप्ता लोकास्तवाज्ञया ॥ १३ ॥

संस्कारद्रव्यमादाय राज्ञो निर्हरणार्थिनः ।
शुष्काणि चन्दनैधांसि देवदारूणि भूरि च ॥ १४ ॥

सुगन्धीनि च तैलानि रालासुरभिजं घृतम् ।
गन्धान् माल्यानि पुष्पाणि धूपान् कालेयनिर्मितान् ॥ १५ ॥

एतैर्द्रव्यैः पितुर्देहमग्नौ संस्कुरु यज्ञिये ।
शिविकायां रत्नमय्यामारोप्य नय तद्बहिः ॥ १६ ॥

सद्गतिं प्रापयतमां धार्मिकस्य कलेवरम् ।
इत्याज्ञप्तो वशिष्ठेन भरतो भूमिभूषणः ॥ १७ ॥

ययौ सर्वजनैः साकं कौसल्यासदनं तदा ।
तत्र तैलगतं राज्ञः समादाय कलेवरम् ॥ १८ ॥

शीघ्रमारोपयामासुः शिविकायां यथोचितम् ।
विभूष्य दिव्यवसनैः कौशेयैर्मणिभूषणैः ॥ १९ ॥

विलिप्य चन्दनैर्दिव्यैः कर्पूरघुसृणादिभिः ।
दिव्यधूपैर्धूपयित्वावकीर्य कुसुमादिभिः ॥ २० ॥
अन्यैश्च सुरभिर्द्रव्यैर्विभूष्य च समन्ततः ।
उत्क्षिप्य शिविकां पश्चादुवाहाश्रुविलोचनः ॥ २१ ॥
शत्रुघ्नसहितः शोकाद् रुदन्नार्तस्वरं मुहुः ।
ऊहुः प्रेष्यजनाः सर्वे शिविकां मणिमण्डिताम् ॥ २२ ॥
पुरस्तात्प्रययौ छत्रं धवलं चन्द्रसन्निभम् ।
परितश्चामरैः श्वेतैर्वीजयन्तः स्थिता जनाः ॥ २३ ॥
निर्जहुर्नृपतिं प्रेष्या रुदन्तः शोकसंयुताः ।
जाबालिप्रमुखा विप्रा अग्निहोत्रं महीपतेः ॥ २४ ॥
हुत्वा पुरस्तादनयन् दीप्यमानं महाद्युतिम् ।
सुवर्णरत्नपूर्णानि शकटानि पुरो ययुः ॥ २५ ॥
औद्ध्र्वदैहिकदानार्थं धनानिसुबहूनि च ।
निन्युःप्रेष्यजना अग्रे विसृजन्तः समन्ततः ॥ २६ ॥
अनाथेभ्यश्च दीनेभ्यो जनेभ्योऽधिपुरं ययुः ।
स्त्रियो वृद्धाःकुमाराश्च सर्वेपौरास्तमन्वयुः ॥ २७ ॥
अग्रे भरतशत्रुघ्नौ रुदन्तावन्वगच्छताम् ।
महाशोकभराविष्टौ वहन्तौ शिबिकां पितुः ॥ २८ ॥
राजदाराश्च कौसल्यासुमित्राकेकयीमुखाः ।
वक्यः प्रकीर्णचिवुरा रुदन्त्यो नृपमन्वयुः ॥ २९ ॥
यूथशः क्रोशमानास्ता नार्यः पङ्कजलोचनाः ।
शरत्सुधांशुवदनाः प्रययुः शोककर्शिताः ॥ ३० ॥
ते तत्र सरयूतीरे विमले सिकतान्मये ।
प्रसन्नशाद्वलचितेशिबिकां निदधुर्जनाः ॥ ३१ ॥
श्रीखण्डैर्मलयोद्भूतैः शुष्कैरगुरुदारुभिः ।
भूयः कर्पूरकस्तूरीकाश्मीरैर्विदधुश्चिताम् ॥ ३२ ॥
पद्मैः पद्ममृणालैश्च कुसुमैः सौरभान्वितैः ।
अलंचक्रुश्चितां राज्ञः सुगन्धद्रव्यराशिभिः ॥ ३३ ॥
चितामारोपयामासुर्नृपं कौशेयवाससम् ।
यज्ञपात्राणि तत्रैव सर्वाणि निदधुर्द्विजाः ॥ ३४ ॥
स्रुक्स्रुवौ च चषालांश्चमुशलोलूखलं तथा ।
अरणीं च पवित्राणि मन्त्रजापपुरःसरम् ॥ ३५ ॥

पवित्रैर्यज्ञपात्राणि ममृजुर्होतृसत्तमाः ।
उपलभ्य पशुं मेध्यं मन्त्रैः संस्कृत्य सुद्विजाः ॥ ३६ ॥

विनियुज्य यथास्थानं सवत्सां गामवासृजन् ।
सुवर्णलाङ्गलैः कृष्टां भूमिं संस्कृत्य यत्नतः ॥ ३७ ॥

चितां तत्र सुसंरच्य विभूष्य कुसुमादिभिः ।
सर्पिःसुगन्धतैलाद्यैः परिषिच्य समन्ततः ॥ ३८ ॥

अग्निहोत्राग्निना तां तु भरतः समदीपयत् ।
प्रदीप्तः सर्वतो वह्निर्ज्वालाजालैः समेधितैः ॥ ३९ ॥

चितास्थितां तनुं राज्ञो ददाह सहसा तदा ।
विधिज्ञैर्ब्राह्मणश्रेष्ठैर्वशिष्ठाद्यैर्मुनीश्वरैः ॥ ४० ॥

सुसंस्कृतो महाराजो भस्मसादभवन् क्षणात् ।
प्रज्वालितः प्रदीप्तेन शुचिना यज्ञियेन सः ॥ ४१ ॥

तथाविधां गतिं राज्ञो दृष्ट्वा सर्वे पुराजनाः ।
चितायाः परितो भूयो विलेपुः शोकसंयुताः ॥ ४२ ॥

भरतः खलु शत्रुसूदनश्च ज्वलता शोकहुताशनेन युक्तौ ।
प्रविलप्य मुहुर्भृशं रुदन्तौ धृतमूर्छौ विनिपेततुर्धरण्याम् ॥ ४३ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे दशरथसत्कारो नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

●

एकत्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

ततः प्रधानप्रवराः समुत्थाप्य महीतलात् ।
नृपात्मजौ ततो निन्युः प्रकर्तुमुदकक्रियाम् ॥ १ ॥

अपसव्येन तौ राज्ञश्चितां गन्धप्रसूनकैः ।
अवकीर्य विनिर्यातौ रुदन्तौ सरयूतटे ॥ २ ॥

अवेक्ष्य पावकं दीप्तं राज्ञः सर्वाङ्गदाहिनम् ।
उद्दिदीपे महान् शोको भरतस्य मनोगतः ॥ ३ ॥

भरतं वीक्ष्य शत्रुघ्नो रुदन्तं शोकसम्प्लुतम् ।
विललाप भृशं क्लिष्टः परिरभ्य परस्परम् ॥ ४ ॥

विलपन्तौ महाराजकुमारौ शोकसंवृतौ।
ममादधुर्वशिष्ठाद्याः मुनयो ज्ञानलोचनाः ॥ ५ ॥

समाहितौ मुनिवरैः शत्रुघ्नभरतौ तदा।
जलक्रियां पितुः कर्त्तुं सरयूमभिजग्मतुः ॥ ६ ॥

तां पुण्यसलिलां स्वच्छां सरयूं सह बन्धुभिः।
सुहृद्भिः स्वजनैः पौरैर्नरनारीकुमारकैः ॥ ७ ॥

अवगाह्य ददौपित्रे प्रेताय सलिलाञ्जलीन्।
तस्य प्रेताय ताताय ददतः सलिलाञ्जलीन् ॥ ८ ॥

सान्निध्यं चक्रिरे सर्वाः सरितो भुवनस्थिताः।
गङ्गा च यमुना चैव गोदा चैव सरस्वती ॥ ९ ॥

नर्मदासिन्धुकावेरीप्रमुखाः पुण्यशंवराः।
विपाशा चन्द्रभागा च शतद्रूप्रमुखास्तथा ॥ १० ॥

तासां जलैः पवित्रैस्तैः सरयूजलमिश्रितैः।
दिवं प्रयातं पितरं भरतः समतर्पयत् ॥ ११ ॥

शत्रुघ्नो मुनयश्चैव वशिष्ठाद्याः पुरोधसः।
पौराश्च सर्वे विधिवद् राज्ञश्चक्रुस्तिलाञ्जलीन् ॥ १२ ॥

शत्रुघ्नभरताद्यास्ते सर्वेपौरजनास्तदा।
विरूपाः क्षौरविधिना कृत्वा राज्ञो जलक्रियाम् ॥ १३ ॥

समाहिता वशिष्ठाद्यैर्मौनेन विविशुः पुरीम्।
सम्प्राश्य निम्बपत्राणि महाशोकपरिप्लुताः ॥ १४ ॥

उवाच भरतः शोकात्प्रविशन् दुर्भगां पुरीम्।
नाहं पुरीं प्रवेक्ष्यामि भ्रात्रा पित्रा च वर्जिताम् ॥ १५ ॥

शून्यां च दुर्भगां जातां मन्मातुः क्रूरकर्मणा।
वन एव निवत्स्यामि शोकदुःखसमाहृतः ॥ १६ ॥

प्रमीते नृपतौ ताते धर्मात्मनि महाक्रतौ।
तदादेशाद् वनं याते ज्येष्ठे भ्रातरि सानुजे ॥ १७ ॥

न भाति नगरीयं मे श्मशानधरणी यथा।
जीवितुं चापि नेच्छामि सुविपन्नोऽहमीदृशः ॥ १८ ॥

कृतमीदृग्विधं कर्म शोचिष्यति चिरं प्रसूः।
किं मे तयातिपापिन्या किं पुर्या मृतनाथया ॥ १९ ॥

सोऽहं न वस्तुमिच्छामि पुर्यामिह हतौजसि।
इत्यादि बहुधा तस्य श्रुत्वा विलपनं मुहुः ॥ २० ॥

अमात्यप्रवरा धीरा वशिष्ठाद्या मुनीश्वराः ।
अन्ये च पौरप्रवरा बोधयाञ्चक्रिरे भृशम् ॥ २१ ॥

निदर्शनैर्ज्ञानवाक्यैर्लोकवृत्तैश्च भूरिशः ।
बोध्यमानो महाराजकुमारः प्राविशत्पुरीम् ॥ २२ ॥

निरानन्दां विनिर्दग्धामिव कान्तिविवर्जिताम् ।
शोकैकबहुलां भूयो रोदनार्त्तरवाकुलाम् ॥ २३ ॥

सानुगः प्रविवेशासौ सप्रजः समुनिव्रजः ।
भूमौ तृणानि संस्तीर्य दशाहमुपविष्टवान् ॥ २४ ॥

चक्रे प्रतिदिनं राज्ञो गात्रपिण्डान् यथाविधि ।
विधाय दशगात्राणि प्रायश्चित्तानि च क्रमात् ॥ २५ ॥

दशमेऽह्नि ततः स्नात्वा सुहृद्बन्धुसमन्वितः ।
ऐकादशाह्निकं कर्म चकार स यथाविधि ॥ २६ ॥

प्राशयित्वा द्विजं पिण्डान् धनमस्मै सुबह्वदात् ।
ततो द्वादशिकं कर्म चक्रे विधिवदूर्जितम् ॥ २७ ॥

अर्घसम्मेलनं कर्म पिण्डसम्मेलनं तथा ।
विधाय विधिवद्विप्रैश्चक्रे दानानि भूरिशः ॥ २८ ॥

शुद्धश्राद्धं विधायाथ पितुः स्वर्गंगतस्य सः ।
सम्प्रीणनाय विप्रेभ्यो दानानि प्रत्यपादयत् ॥ २९ ॥

त्रयोदशाह्निकेश्राद्धे विधिवद्विहिते द्विजैः ।
धनानि भूरि विप्रेभ्यो भरतो विससर्ज ह ॥ ३० ॥

छत्राण्युपानहश्चैव पादुकाः स्वर्णरत्नजाः ।
महार्हाणि च वासांसि रत्नानि विविधानि च ॥ ३१ ॥

गाः सवत्सा रूप्यखुरीः स्वर्णशृङ्गीः सुभूषिताः ।
मुक्तापुच्छीस्ताम्रपृष्ठीः कलशोघ्नीः सुदोहनाः ॥ ३२ ॥

वेश्मानि तुङ्गशृङ्गाणि सुधाढ्यानि महान्ति च ।
पृथक्स्थानानि गोशालमन्दुराविततानि च ॥ ३३ ॥

भूषणानि प्रभाभांजि स्वर्णरत्नमयानि च ।
ग्रामव्रजगृहारामवाटिकाक्षेत्रसंयुताम् ॥ ३४ ॥

वापीकूपसरोयुक्तां महीं कोटिहलोन्मिताम् ।
सरित्प्रवाहसरसां पुण्याश्रमविराजिताम् ॥ ३५ ॥

गजानश्वां स्तथा मुख्यानुष्ट्रांश्च महिषीस्तथा ।
दासान् दासीश्च निष्काढ्या मणिमाणिक्यभूषिताः ॥ ३६ ॥

विहितानि विशिष्टानि दानानि विविधानि च ।
देशे काले च पात्रेभ्यः श्रद्धया विससर्ज सः ॥ ३७ ॥

राजाश्वं राजमातङ्गं राजयानं विशेषतः ।
पात्राय वेदवित्ताय ददौ भरत आदृतः ॥ ३८ ॥

एवं पितरमुद्दिश्य दत्त्वा दानानि भूरिशः ।
दिनेदिनेऽकरोच्छ्राद्धं यावद्वर्षसमापनम् ॥ ३९ ॥

अथो समेताः सर्वेऽपि मन्त्रिणो राजकार्यिणः ।
प्रजा अनाथाः संवीक्ष्य जगदुर्भरतं प्रति ॥ ४० ॥

गतो राजा दशरथः पिता ते समाधिं प्रति ।
अर्धासनं महेन्द्रस्य येनाक्रान्तं पुरैव तत् ॥ ४१ ॥

तस्य ज्येष्ठसुतो रामः सत्यसन्धोऽतिधार्मिकः ।
सानुजः सहभार्यश्च वनेवसति सोऽधुना ॥ ४२ ॥

त्वमेवाद्य महाबाहो प्रदिष्टो विधिना भृशम् ।
प्रजानां पालको नित्यं त्वयि धर्मः प्रतिष्ठितः ॥ ४३ ॥

सराजकं पुरं राष्ट्रं धरणीमण्डलं तथा ।
तापद्भिरभिभूयेत तस्मात्त्वं भूपतिर्भव ॥ ४४ ॥

राज्येऽभिषिच्यतामात्मा पितृपैतामहे निजे ।
कुलक्रमागतं श्रीमद् राज्यं भूषय तेजसा ॥ ४५ ॥

प्राप्तोऽभिषेकसम्भारः प्रजाश्चेमास्तवाखिलाः ।
एतासां रञ्जनं कार्यं त्वया राज्येऽधितिष्ठता ॥ ४६ ॥

इत्युक्तो राजतनयः प्रवरैर्मन्त्रिभिस्तदा ।
राज्याभिषेचनद्रव्याण्युपस्पृश्य शुभाय सः ॥ ४७ ॥

उवाच वचनं विद्वान् धर्मयुक्तमुदारधीः ।
मान्धाता सगरो राजा भगीरथ इलापतिः ॥ ४८ ॥

ययातिनहुषाद्याश्च पुराभूवन् प्रजेश्वराः ।
यावन्नो जनकस्तावज्ज्येऽष्ठो राज्यपदाश्रयः ॥ ४९ ॥

नैतावज्जाग्रतिज्येष्ठे लघिष्ठो राज्यभाजनम् ।
माभूत्स्वप्नेऽपि मे बुद्धिरीदृशी भूतिलोभतः ॥ ५० ॥

रामचन्द्रः स नो राजा गुणवान् श्रीनिकेतनः ।
साक्षात्परात्परो[1] देवः प्रजानां भाग्यमूर्जितम् ॥ ५१ ॥

---

१. नारायणो—मधु० ।

तस्मिन् विराजमानेऽद्य श्रीरामे भूमिभूषणे।
कोऽहं राज्यपदस्यार्हः सेवको भृत्य एव च ॥ ५२ ॥

तमहं प्रणतो भक्त्या विज्ञाप्य बहुभावतः।
आनेष्ये वनवासस्थं भूमिराज्याभिषिक्तये ॥ ५३ ॥

रघूणां महतीं सेनामादाय चतुरङ्गिणीम्।
राज्याभिषेकद्रव्याणि छत्रं चामरयुग्मकम् ॥ ५४ ॥

भवद्भिः सहितो राममभिषेक्ष्यामि मंत्रिणः।
पुरस्कृत्य महावीरमानेष्ये भूरिहर्षितः ॥ ५५ ॥

तस्य शोभिष्यते राज्यमिदं वंशक्रमागतम्।
उपहन्यामहं मातुर्मनोरथमपार्थकम् ॥ ५६ ॥

अहं वने निवत्स्यामि तस्यार्यस्य प्रतिज्ञया।
तमहं स्थापयिष्यामि पितृपैतामहासने ॥ ५७ ॥

राज्यासनस्थः सततं रामो राजीवलोचनः।
पालयानः प्रजाः सर्वा मम प्रीत्यै भविष्यति ॥ ५७ ॥

पुरो गच्छन्तु पुरुषाः कुर्वतां मार्गशोधनम्।
अहं शीघ्रं गमिष्यामि सेनामादाय भूयसीम् ॥ ५९ ॥

अलंकरोति यं देशं रघूणांसोऽधिभूपतिः[१]।
तं देशमहमेष्यामि भक्तिसन्नतकन्धरः ॥ ६० ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मन्त्रिणो हृष्टमानसाः।
अङ्गीचक्रुर्विशेषेण रामे सुप्रीतिभागिनः ॥ ६१ ॥

ततश्च भरताज्ञप्ता मन्त्रिणो बुद्धिसत्तमाः।
सेनां संघट्टयाञ्चक्रुर्गजवाजिसमाकुलाम् ॥ ६२ ॥

भ्रातुरानयनार्थाय भरतो भ्रातृवत्सलः।
प्रस्थास्यतीति संघोषोमिथोऽभूत् कोसलापुरे ॥ ६३ ॥

पुरस्तात् प्रययुर्लोकाः सेनामार्गस्य शोधकाः।
भूमिप्रदेशज्ञातारो नानाकर्मविचक्षणाः ॥ ६४ ॥

खनकाः कूपकर्तारो वर्द्धकाः स्थपतीश्वराः।
मालाकाराः सुधाकारा जलयन्त्रविधायकाः ॥ ६५ ॥

शिविरारोपपटवः सद्यो वेश्मविधायकाः।
पानीयवाहकाश्चैव मार्गवृक्षाधिरोपकाः ॥ ६६ ॥

---

१. अधिभूः प्रभुः—मथु०।

वंशदाराः कर्मकाराः परदेशसुखप्रदाः ।
सर्वेऽपि सज्जा अभवन् पुरुषा उपयोगिनः ॥ ६७ ॥

उष्ट्रपाला अश्वपालाः शिविकावाहकास्तथा ।
महामात्राः पत्तिगणा लोहयन्त्रधरास्तथा ॥ ६८ ॥

धनुर्बाणधराश्चैव खड्गवाहाः पदातयः ।
दोलावहाः पटकुटीरोपकाः पुरुषास्तथा ॥ ६९ ॥

अनेके सज्जिता लोका भरतस्याज्ञया तदा ।
विषमान् समीकुर्वन्तश्छेदयन्तश्च कूलकान् ॥ ७० ॥

पथिद्रुमान् प्रवृश्चन्तो ह्रासयन्तः स्थलानि च ।
समीकुर्वन्त उद्देशानुद्रुजन्त वनानि च ॥ ७१ ॥

प्रकुर्वन्तो नदीघट्टान् पुरस्तात्प्रययुर्जनाः ।
ततश्च महतीं सेनामादाय शुभकर्मणे ॥ ७२ ॥

प्रतस्थौ भरतः श्रीमाननुज्ञातः सुमन्त्रिभिः ।
वाचयित्वा द्विजैः स्वस्तिपुण्याहं मन्त्रवित्तमैः ॥ ७३ ॥

दैवज्ञैर्ज्ञापितेशुद्धे मुहूर्ते शुभवासरे[1] ।
रामस्यानयनोद्भूतहर्षोत्साहवशंवदाः ॥ ७४ ॥

तस्यानुमेनिरे सर्वे प्रधानामन्त्रिणो जनाः ।
वशिष्ठजाबालिमुख्याः सार्थेऽगच्छन्मुनीश्वराः ॥ ७५ ॥

भक्त्या भरतवीरस्य पूजिता बहुमानिताः ।
कौसल्या च सुमित्रा च कैकेयी चान्यगात्ततः ॥ ७६ ॥

तथान्या राजवनिताः प्रतस्थुः शिविकागताः ।
सुहृदो बान्धवाश्चैव रामानयनहर्षिताः ॥ ७७ ॥

प्रतस्थुः कलितोत्साहा भरतेन प्रपूजिताः ।
प्रचेलुर्वारणा मत्ताः कोविदारध्वजान्विताः ॥ ७८ ॥

उच्छलन्तो हयवराः सेनामण्डलभूषणाः ।
स्यन्दनाः कोविदाराङ्काः प्रययुर्वेगवत्तराः ॥ ७९ ॥

पत्तयः कूर्दमानाश्च खड्गचर्मविभूषिताः ।
धनुर्धरा बद्धतूणाः कवचच्छन्नविग्रहाः ॥ ८० ॥

पश्चादग्रे वामदक्षपार्श्वयोश्चम्वर्ज्जिताः ।
निर्ययुर्भरताज्ञप्ता रामानयनसोत्सवाः ॥ ८१ ॥

भरतः श्वेततुरगैर्भूषिते रत्नमालिनि ।
महति स्यन्दनवरेऽधिष्ठितः प्रययौपुरः ॥ ८२ ॥

---

१. वत्तरे—अयो०, मथु० ।

ब्रह्मघोषं प्रकुर्वन्तः प्रययुर्द्विजसत्तमाः ।
मत्स्यमांससुराहस्तास्तस्य वेश्याजनाः पुरः ॥ ८३ ॥

शकुनं सूचयामासुर्मातङ्गाश्च तुरङ्गमाः ।
अन्ये शाकुनिकाचार्या[1] गच्छन्तोऽस्य[2] पुरोऽभवन् ॥ ८४ ॥

पुरोधसो महाप्राज्ञा मन्त्रिणो मन्त्रवित्तमाः ।
तमन्वयुः सभास्ताराः क्षत्रियाः पङ्क्तिभोजिनः ॥ ८५ ॥

सामन्तैर्यौधमुख्यैश्च राजकार्यकरैर्जनैः ।
अमात्यैर्मन्त्रिप्रवरैर्नैगमैश्चाप्यनेकशः ॥ ८६ ॥

सान्विता महती सेना गजवाजिरथाकुला ।
अन्वगाद् भरतं यान्तं रामदर्शनहर्षितम् ॥ ८७ ॥

कोविदारध्वजाङ्कानां रथानां सुमहान् ध्वनिः ।
रोदसी रोधयामास मथ्यमानाम्बुधेर्यथा ॥ ८८ ॥

अश्वका अश्वतर्यश्च वामिकाश्च करेणवः ।
महाद्रव्यभराक्रान्ताः प्रचेलुर्विस्तृते बले ॥ ८९ ॥

नैगमा हट्टपतयो नानावस्तुसमन्विताः ।
अभवन् सार्थगाः कृत्वा हट्टाः पटकुटीमयीः ॥ ९० ॥

पुरोधा भगवांस्तत्र वशिष्ठो मुनिभिर्वृतः ।
अन्यैश्च ब्राह्मणवरैरन्वगाद् भरतार्चितः ॥ ९१ ॥

ततः सेनापतिस्तस्य गङ्गामासाद्य पावनीम् ।
अब्रवीद्भरतं कूले संनिवेशयितुंबलम् ॥ ९२ ॥

सम्प्राप्तेयं त्रिपथगा गङ्गा त्रैलोक्यपावनी ।
अस्याः कूलभुवि श्रीमन् सेनेयं संनिवेश्यताम् ॥ ९३ ॥

इह विश्रम्यतां वीर भवता शत्रुकर्षण ।
दिव्यं पटकुटीवेश्म त्वदर्थमुपकल्पितम् ॥ ९४ ॥

श्वेत्भूते च ततो नौभिः सेनां संतार्य भूयसीम् ।
गन्तुमर्हसि वीरेन्द्र ससुहृत्सखिबान्धवः ॥ ९५ ॥

ततः सेनापतिस्तेन समाज्ञप्तो महामतिः ।
प्रवाहमनुगङ्गायास्तद्बलं संन्यवेशयत् ॥ ९६ ॥

यथास्थानं तु सा सेना गङ्गायां संनिवेशिता ।
रराज मथ्यमानाब्धिघोषकोलाहलान्विता ॥ ९७ ॥

शिविराणि पृथग्रेजुर्मातॄणां राजयोषिताम् ।
उन्नम्रसान्ध्यजलदव्यूहतुल्यानि सर्वतः ॥ ९८ ॥

---

१. काश्चार्थाः—अयो०, मथु० । २. गच्छतो—अयो०, मथु० ।

भरतस्य च शत्रुसूदनस्य प्रथिमोच्छ्रायविराजिते समन्तात् ।
शिविरे व्यतिरेजतुर्घनाभे पटकोट्टामिततुङ्गगोपुराढ्ये ॥ ९९ ॥

महार्हमणिभूषिताद् रथवरात् समुत्तीर्य स
त्रिलोकपरिपाविनीं त्रिपथगां ववन्देबुधः ।
वगाह्य विगतश्रमो निजपितुः प्रमीतस्य च
प्रदाय सलिलाञ्जलीन् शिविरयाविशत्सानुजः ॥ १०० ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे
भरतप्रस्थानो नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तां गङ्गामन्ववसितां निरीक्ष्य महतीं चमूम् ।
निषादाधिपतिर्ज्ञातीन् विमृश्येदमवोचत ॥ १ ॥

भो भो निषादप्रवराः पश्यन्तु महतीमिमाम् ।
रघूणां वाहिनीं भीमां कोविदारध्वजै रथैः ॥ २ ॥

किं कर्त्तुमुद्यता एते पुरुषा रघुवंशजाः ।
किं क्रीडिष्यन्ति मृगयां हरिष्यन्त्यथवा परान् ॥ ३ ॥

गजान् वापि ग्रहीष्यन्ति हनिष्यन्त्यथवापि नः ।
इक्ष्वाकूणाममी वीराः शङ्कनीया विशेषतः ॥ ४ ॥

जानेऽहं भरतो मात्रा रामं प्रव्राज्य कानने ।
लयंगतेऽधुना ताते निःशङ्को राज्यलोभतः ॥ ५ ॥

हन्तुमारब्धवानेष सानुजं वनवासिनम् ।
हा रघूणामियं बुद्धिः कथं जातः क्षयोन्मुखी ॥ ६ ॥

ज्येष्ठो राज्यपदस्यार्हो द्रुह्यतेऽमीभिरुद्धतैः ।
मलीमसा राज्यलक्ष्मीर्यस्यै मन्दाः परस्परम् ॥ ७ ॥

विहाय सौहृदं धर्मं योद्धुमिच्छन्ति हीदृशाः ।
क्व रामस्य मतिर्धर्म्या क्वामीषां धर्मलङ्घनम् ॥ ८ ॥

स मे भर्त्ता प्रभुर्बन्धुः सखा स्वजन ईश्वरः ।
मयि जीवति को न्वेतं नरो गञ्जयितुं क्षमः ॥ ९ ॥

धिङ् मे मैत्रीं च साहाय्यं बन्धुतां दास्यमेव च।
यद्येते मां समुल्लङ्घ्य युद्धयेरन् प्रभुणा मम ॥ १० ॥

मयैव प्रथमं युद्धममीषां दुष्टचेतसाम्।
अहं रामप्रभावेणजेतास्म्येतानधार्मिकान् ॥ ११ ॥

विहाय नगरं राष्ट्रं धरणीं राज्यमेव च।
वने वासी स धर्मात्मा मोढुमेतैर्न शक्यते ॥ १२ ॥

आत्मकोपाग्निना दग्धा यास्यन्त्येते पराभवम्।
यदि रामं साधुवृत्तं द्रोग्धुमिच्छन्त्यमी खलाः ॥ १३ ॥

इति निर्मितमन्त्रोऽसौ निषादानां पतिर्बली।
जगादाज्ञाकरान् दाशान् लोहयन्त्रसहस्रभाक् ॥ १४ ॥

शृण्वन्तु मे वचोदाशा महापौरुषमण्डनाः।
लोहयन्त्रशतैर्गत्वा रुन्धन्तु निखिलां नदीम् ॥ १५ ॥

इक्ष्वाकूणां महाघोरा यथेयं महती चमूः।
नोत्तीर्य सरितं गच्छेद् रामचन्द्रं मम प्रभुम् ॥ १६ ॥

अन्ये च विदिता वीरा भवतां ये महाबलाः।
सेनां संव्यूह्य तिष्ठन्तु ते सर्वे लोहयन्त्रिणः ॥ १७ ॥

सज्जन्तां लोहयन्त्राणि लक्ष्यशः पुरुषा मम।
वेधयन्तु परान् दुष्टान् लोहपिण्डैः सहस्रशः ॥ १८ ॥

शतघ्न्यः परिघाश्चैव भुशुण्ड्यस्तोमरास्तथा।
बाणाः क्षेपणिकाश्चैव सज्ज्यन्तां त्वरितं भटाः ॥ १९ ॥

एकैकं परवीरं च योधयन्तु शतं शतम्।
सन्नद्धा मामका वीरा नानाशस्त्रास्त्रवर्षिणः ॥ २० ॥

ननु प्रथममेतेषां प्रवृत्तिरनुमीयताम्।
यद्येषामभियोगश्चेद् रामचन्द्रे मम प्रभौ ॥ २१ ॥

तदामीभिर्न सुतरा गङ्गेयं मयि जीवति।
नूनं तत्पददास्येन जेतुमिच्छाम्यहं सुरान् ॥ २२ ॥

नास्याः शुभं प्रपश्यामि सेनाया मामकैः शरैः।
गजानश्वान् रथान् पत्तीन् भेत्तास्मि समरे क्षणात् ॥ २३ ॥

इक्ष्वाकूणां भटा एते रामद्रोहमलीमसाः।
स्वत एवाद्य गन्तारो धर्मराजनिकेतनम् ॥ २४ ॥

निमित्तमात्रमेतेषां संक्षये भवितास्म्यहम्।
किंतु नाज्ञातवृत्तेन स्पर्द्धितुं शक्यते मया ॥ २५ ॥

मज्जा भवन्तस्तिष्ठन्तु गच्छामि भरतं त्वहम् ।
प्रवृत्तिं तस्य विज्ञाय कर्त्तुमर्हं यथोचितम् ॥ २६ ॥

इत्युक्त्वा बलवान् वीरः शृङ्गबेरपुराधिपः ।
गृहीत्वोपायनान् दिव्यान् मत्स्यान् पाठीनरोहितान् ॥ २७ ॥

मांसानि मधुकुम्भांश्च फलानि विविधानि च ।
अभ्ययाद् भरतं शूरः सन्नद्धकवचो गुहः ॥ २८ ॥

संस्मृत्य रामचरणौ विन्यस्य निजमूर्द्धनि ।
वृतो ज्ञातिसहस्रेण राजद्वारमुपेयिवान् ॥ २९ ॥

दृष्ट्वा तमभिगच्छन्तं रामस्यानन्यसेवकम् ।
आचख्यौ भरतं प्राज्ञः सुमन्त्रो विनयान्वितः ॥ ३० ॥

एष त्वामेति काकुत्स्थ शृङ्गबेरपुराधिपः ।
रामस्यानन्यभक्तोऽयं गुहो नाम महामतिः ॥ ३१ ॥

महाबलो महाभागो महाविनय ऊर्ज्जितः ।
समृद्धो दण्डकारण्ये रामस्य च सखा महान् ॥ ३२ ॥

वृत्तज्ञश्च मदार्यस्य गृहाण विनयादमुम् ।
इत्युक्तः स सुमन्त्रेण भरतो भूमिभूषणः ॥ ३३ ॥

विनीतहृदयो द्रष्टुमाचकाङ्क्ष तदा गुहम् ।
प्रवेशितः प्रतीहारै रामानुजमियाय सः ॥ ३४ ॥

अपश्यद् भरतं सौम्यं गुणैः श्रीरामसम्मितम् ।
अवन्दत गुहो भक्त्या रामभ्रातरमादृतः ॥ ३५ ॥

उवाच सुप्रसन्नात्मा किंचिच्छङ्कावशेषितः ।
अयं तव गृहारामप्रायोदेशः सुमङ्गलः ॥ ३६ ॥

गङ्गातीरावनीस्थानपुरग्राममनोरमः ।
अल्प एवापि[1] रुचिरो दृश्यतां सुभग त्वया ॥ ३७ ॥

तव दासगृहं चैतत्संक्षिप्तावसथोयमम् ।
इह मूल फलाहारैर्निरास्वादैर्मुनिव्रताः ॥ ३८ ॥

वसन्ति मनुजाः सौम्यास्तेषां त्वं दृक्सुखो भव ।
इहार्द्राणि च शुष्काणि मांसानि विविधानि च ॥ ३९ ॥

उच्चावचमिदं भक्ष्यं भविता वो न संशयः ।
सम्भावयितुमिच्छामि तत्रार्य महतीमिमाम् ॥ ४० ॥

---

१. अति—अयो०, मथु० ।

सेनां पुरुषहस्त्यश्च महोक्षोष्ट्रखगान्विताम् ।
भोज्यान्नयवसैरद्य मां पावयितुमर्हसि ॥ ४१ ॥

मत्प्रभोस्त्वं किल भ्राता प्रभुरेव मतो मम ।
अतोऽर्चितुं त्वामिच्छामि ससुहृद्बन्धुसैन्यकम् ॥ ४२ ॥

इत्थं निषादराजेन प्रार्थितो भरतोऽब्रवीत् ।
सर्वे वयं त्वया वीर मानिताश्चैव पूजिताः ॥ ४३ ॥

ममार्यस्य प्रियं मित्रं ममापि त्वं प्रियः सुहृत् ।
सर्वे मम कृताः कामा भवता सौम्यदर्शन ॥ ४४ ॥

धन्यस्तव हृदुत्साहो यो रामस्य चमूमिमाम् ।
सम्पूजयसि सोत्कण्ठो मम कार्यमिदं त्वयि ॥ ४५ ॥

संदर्शयस्व पन्थानं भारद्वाजाश्रमोपगम् ।
शुभो नः कतरः पन्था भारद्वाजाश्रमं प्रति ॥ ४६ ॥

अविज्ञाते हि देशेऽस्मिन् भवान् विज्ञापकोऽस्तु नः ।
इत्युक्तो भरतेनासौ नृपपुत्रेण धीमता ॥ ४७ ॥

उवाच किंचित्साशङ्को गुहः श्रीरामसेवकः ।
प्राञ्जलिर्विनतस्कन्धो निखिलारण्यदेशवित् ॥ ४८ ॥

सन्तिमे बहवो दासास्तव मार्गनिरूपकाः ।
तैर्युक्तोऽनुगमिष्यामि भवन्तमहमादृतः ॥ ४९ ॥

किं तु ते ज्ञातुमिच्छामि प्रवृत्तिं वाञ्छितं तथा ।
कच्चिन्न रामं व्रजसि राज्येच्छुर्दुष्टयाधिया ॥ ५० ॥

तवेयं महती सेना गजाश्वभटसंकुला ।
सन्नद्धवीरपुरुषा कोविदारध्वजै रथैः ॥ ५१ ॥

संयुक्ता भूरिशस्त्रास्त्रैः शतघ्नीशतसंकुला ।
सर्वतोव्याप्तभूभागा शङ्कां वितनुते मम ॥ ५२ ॥

मलीमसा राज्यलक्ष्मीः पितृभ्रातृनिषूदिनी ।
केषांचिदेव शुद्धानां मनो मोहयते न च ॥ ५३ ॥

सभवान् किं समारब्धुमुद्यतोऽसि बलैर्युतः ।
इति विज्ञातुमिच्छामि रामस्यानुचरोऽस्म्यहम् ॥ ५४ ॥

इत्युक्तो रामभक्तेन गुहेन भरतस्तदा ।
उवाच मधुरं वाक्यं गङ्गावारिसितस्मितः ॥ ५५ ॥

मा भून्ममेदृशी बुद्धिः स्वप्नेऽपि रघुसत्तमे[1] ।
तद्दासदासं मां विद्धि सदाचरणदर्शिनम् ॥ ५६ ॥

---

१. रघुनन्दनै—अयो०, मथु० ।

स नो राजा प्रभुः स्वामी गुरुर्बन्धुः परायणः ।
दहामि तद्वियोगेन मनःप्रीत्यै व्रजामि तम् ॥ ५७ ॥

स मे पितृसमो बन्धुस्तस्यभार्येव भूरियम् ।
तत्पतित्वमहं वाञ्छन् किं न स्यां गुरुतल्पगः ॥ ५८ ॥

मय्यजानति कैकेय्या कृतं यद्गुरु पातकम् ।
सा तेन कर्मणा भूयो विनिर्भर्त्स्य मयोज्झिता ॥ ५९ ॥

श्रीरामचरणाम्भोजदास्यलाभप्रमोदिनम् ।
न मामिति त्वं शङ्केथाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ ६० ॥

धिङ्मासुक्लिष्टजन्मानं यत्कृते स रघूद्वहः ।
मात्रा मे पापकारिण्या नीतो विपिनवासिताम् ॥ ६१ ॥

नाजनिष्यत चेन्माता मामकर्मापराधिनम् ।
नाभविष्यत्तदा ह्येष प्रजानां क्लेशसम्भवः ॥ ६२ ॥

कदा द्रक्ष्याम्यहं तप्तः श्रीराममुखमण्डलम् ।
कदा च विरहोद्रेकदुःखं मे शान्तिमेष्यति ॥ ६३ ॥

अहं वने निवत्स्यामि तस्यार्यस्य प्रतिज्ञया ।
तमुपावर्त्तयिष्यामि जातराज्याभिषेचनम् ॥ ६४ ॥

अमी वशिष्ठप्रमुखा मुनयः शुद्धबुद्धयः ।
एतैः सहित एवाहमभिषेक्ष्यामि तं प्रभुम् ॥ ६५ ॥

अयशः पातितं मूर्द्ध्नि मम मात्रा न संशयः ।
तदहं क्षालयिष्यामि रामदास्यरसोदकैः ॥ ६६ ॥

इत्युक्तं भरते नासौ श्रुत्वा वाक्यं निषादराट् ।
प्रतिपूज्य वचोभिस्तं बभाषे प्रीतमानसः ॥ ६७ ॥

धन्योऽसि त्वं महाबाहो रघूणां कुलभूषणः ।
श्रुत्वा नितान्तं प्रीतोऽहं धर्मार्पितं वचस्तव ॥ ६८ ॥

काकुत्स्थानां कुले जातो धर्मात्मा सत्यभाषणः[१] ।
कथं भवान् प्रवर्तेत न्यायातीतेऽसतां पथि ॥ ६९ ॥

नित्यंतवेदृशी बुद्धिर्वर्त्ततां धर्मवर्त्मनि ।
शोभा रघूणां वंशस्य वर्द्धतां प्रतिवासरम् ॥ ७० ॥

अयत्नोपगतं राज्यं भवान् संत्यक्तुमिच्छति ।
अतस्ते सदृशं लोके न प्रपश्यामि धीनिधे ॥ ७१ ॥

---

१. सत्यभाषितः—अयो०, मथु० । परंतु यह पाठ ठीक नहीं जँचता है । इसके स्थान पर 'सत्यभावितः' हो सकता है ।

पित्रा प्रवासितं रामं यत्त्वमानेतुमिच्छसि ।
तेन ते महती कीर्त्तिर्भुवनेषु भविष्यति ॥ ७२ ॥

एतद्धर्मान्वितंकर्म न चित्रं भरत त्वयि ।
श्रीरामचरणाम्भोजदास्यनिर्मलमानसे ॥ ७३ ॥

तयोः संवदतोरित्थं सूर्यो ऽस्तमगमत्तदा ।
अवर्त्तत निशा घोरा रामविश्लेषदुस्तरा ॥ ७४ ॥

भरतश्चैव शत्रुघ्नो गुहेनोपगतावुभौ ।
पृच्छन्तौ रामवृत्तानि निद्रां नालभतां निशि ॥ ७५ ॥

आक्रान्तो विरहोद्भूतदुःखसागरवारिभिः ।
निषादराजं भरतः पर्यपृच्छत सस्पृहः ॥ ७६ ॥

त्यक्त्वा राज्यमिहागतो रघुपतिः कं देशमध्यूषिवान् ।
किं भोज्यं कृतवान् किमाह वचनं सूतं सुमन्त्रं च सः ॥
मैथिल्या सहितः कथं शयितवान् संस्तीर्यभूमौतृणं ।
गङ्गां लङ्घितवान् कथं कमवहद् देशं च धर्माधिपः ॥ ७७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे गुहप्रश्नो नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

●

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तथोक्तो भरतेनासौ बभाषे स निषादराट् ।
स्मृत्वा रामस्य चरणौ योगिनां ध्यानमङ्गलौ ॥ १ ॥

अयमिंगुदीतरुरुदेति ते पुरो ननु यत्र राघव उवास सीतया ।
धरणीतलेऽम्भुजविनिर्मितं महच्छयनं नवीनदलक्लृप्तमास्थितः ॥ २ ॥

उपनीतमिन्दुसितमादरान्मया शयनं हृदा स विगणय्यधार्मिकः ।
शयितो महीतलरजोभराञ्चिते शयनं स्वबहुमुपधाय मे प्रभुः ॥ ३ ॥

निशि तत्र लक्ष्मण उदारविक्रमो धनुराततज्यमिषुयुक्तमात्मनः ।
करयोर्विधाय कथयन् कथाः शुभाःप्रयतश्चकारविधिवत्प्रजागरम् ॥ ४ ॥

स निजार्यकक्ष्य शयितस्य गुप्तयेऽनलसो विनिद्र इदमीरितोमया ।
ननु जागराम्यहमुदायुधो भवान् शयनेऽधितिष्ठतु मयोपकल्पिते ॥ ५ ॥

स्वजनैश्च बन्धुभिरुपेत आदरादहमत्र न स्वपि मिजागरं दधे ।
स्वपति प्रभौ मम सह स्वभार्यया विजने वने बहुलहिंस्रसंकुले ॥ ६ ॥

तत आह लक्ष्मण इदं मया सखे स्वपितुं न शक्यत इहद्दशापदि ।
स्वपति क्षितौ ममगुरौ रघूद्वहे परिणद्धराज्यमुखभोजनौचिते ॥ ७ ॥

प्रयतास्ततश्च गहने वयं त्रयो भृशमाततज्यशरचापपाणयः ।
रजनीमनैष्म रघुनाथविस्फुरद्गुण[1]वर्णनप्रभवशुद्धबुद्धयः ॥ ८ ॥

अथ वीक्ष्य तां निजगुरोर्वियद्दशामतदर्हदुःखततिभोगभूयसीम् ।
विललाप लक्ष्मण उदीरयन् गिरं करुणाममेयबलवीर्यविक्रमः ॥ ९ ॥

ध्रुवमद्यकोसलपुराधिपः स नो जनकः कथं नु विपदा भविष्यति ।
गहनं गते प्रियहिते निजात्मजे विरहेण नूनमसुभिर्विमोक्ष्यते ॥ १० ॥

अयमिन्दुसुन्दरमुखः सरोरुहच्छदनोपमातिसुकुमारविग्रहः ।
मिथिलाधिराजसुतया सुखार्हया सहितोऽद्य संस्वपिति मेदिनीतले ॥ ११ ॥

ससुरासुरत्रिभुवनेऽतुलप्रभो रजनीशकोटिकमनीयदर्शनः ।
स्वजनेषु सर्वसुखदानशक्तिभृत् कथमीदृशीं नु भजते सुदुर्दशाम् ॥ १२ ॥

जगतामयं प्रणयभाजनं महान् सुमहोदयः सकलचित्तरञ्जनः ।
किमु केकयेन्द्रसुतया नृशंसया सदनात्प्रवास्य विपिनेऽधिवासितः ॥ १३ ॥

रहिता पुरी ध्रुवमनेन कोसला विमुखा श्मशानधरणीव दुर्भगा ।
उदिताश्रुलोचनरुदन्महाजना बहुशोकसागरगताद्य नङ्क्ष्यति ॥ १४ ॥

रघुवंशभूषणउदित्वरःश्रिया विजयी त्रिलोकजनशोकनाशनः ।
अयमार्य उज्ज्वलगुणौघमण्डितः कथमेवमर्हति नितान्तमापदम् ॥ १५ ॥

इति लक्ष्मणो बहु विलप्य तां निशामनयत्ततोऽभ्युदितवत्यहस्करे ।
वटदुग्धदिग्धविलसज्जटाधरौ वनवासयोग्यकुशचीरवाससौ ॥ १६ ॥

धृततापसोचितसुवेशविग्रहावपिकामपि श्रियमतीव बिभ्रतौ ।
पुरतो विधाय जनकात्मजामुभौ त्रिदिवापगां व्यतितरीतुमीयतुः ॥ १७ ॥

रघुवंशसिन्धुतुहिनद्युतिस्तदा प्रणतं सुमन्त्रमथ सं निवर्त्तयन् ।
बहु संदिदेश पितरं च मातरं विनयाद् भवन्तमुपदर्शितार्जवः ॥ १८ ॥

अनुजं सरोषकटुभाषिणं तदा विनिवार्य साधुधिषणस्तमूचिवान् ।
पुरुषं यदाह वचनं ममानुजो न सुमन्त्र तत्कथय मत्पितुः पुरः ॥ १९ ॥

वनवासनेन सततोयलालिते प्रणयो मयि क्षितिपतेर्न हीयते ।
स हि सत्यवाक् पुरुषधोरणीमणिर्न मयापनेतुमुचितः स्वसत्यतः ॥ २० ॥

इति शीतलैरमृतसारसुन्दरैर्वचनैः सुमन्त्रमभिधाय धैर्यभृत् ।
विससर्ज दुःखितमुदश्रुलोचनं सहगन्तुमाहितमनोरथं प्रभुः ॥ २१ ॥

---

१. वृत्तवर्णनविशुद्ध०— मधु० ।

परिपश्यतामलघुवाष्पचक्षुषां स हि नस्तदेक्षणपथं व्यतीयिवान्।
मदुपाहितां ममधिरुह्य तां तरिं जनकात्मजानुजनिषेविताङ्घ्रिकः ।। २२ ।।

स मयोपनीतमधिकं चतुर्विधं रसनीयभोज्यनिवहं न चाददे।
अनुजोपनीतमुदकं मुदायुतो जनकात्मजासहित आग धार्मिकः ।। २३ ।।

नयनाध्वनः परमुपेतवत्सु तेष्वधिकार्तिसिन्धुविनिमग्नमानसौ।
विरहाब्धिवृन्दभृदहं च सारथिः परिमुष्ठशून्यहृदयौन्यवर्त्तताम् ।। २४ ।।

इतीरितं गुहेन संनिशम्य केकयीसुतः।
रघूद्वहं विचिन्तयन् मुमोह भूरिदुःखतः ।। २५ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे
गुहवाक्यं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः । ३३ ।।

●

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

ततस्तमिंगुदीमूलं सोऽन्वगाद् भरतः शुचिः।
यत्र भ्राता शयितवान् भूमौ दयितया सह ।। १ ।।

तत्र शय्यां समुद्वीक्ष्य क्रान्तपूर्वां महात्मना।
संस्तृतां तृणसंघेन मर्दितां परिवर्त्तनैः ।। २ ।।

अपश्यत् पल्लवांस्तत्र परिम्लानांश्चिरास्तृतान्।
श्री रामस्याङ्गसंसक्तान् जानकतनुसौरभान् ।। ३ ।।

बभूव वाष्पनयनो भरतो भ्रातृवत्सलः।
कौसल्याद्या जनन्यश्च स्थानं तद् ददृशुर्दृशा ।। ४ ।।

विललाप पुरस्तासां स दीनः शोकसंवृतः।
महाराजकुमारस्य मन्वानोऽनुचितां दशाम् ।। ५ ।।

सीतां च जनकेन्द्रस्य सुतां दशरथस्य च।
स्नुषां राज्यसुखस्यार्हां सोऽशुचद् वाष्पलोचनः ।। ६ ।।

स्वयं चोषितुकामोऽसौ भ्रातुः प्रतिनिधिर्भवन्।
राज्येऽभिषिच्य चैवार्यमानेतुं कृतनिश्चयः ।। ७ ।।

वाग्भिराश्वासयाञ्चक्रे कौसल्यां शोकपीडिताम्।
इंगुदीतरुमूलस्थां शय्यामार्यस्य वीक्ष्य ताम् ।। ८ ।।

बभूवातितरां तत्र भरतः शोककर्षितः ।
प्रतिजज्ञौ वने स्थातुमार्यं राज्येऽभिषेचितुम् ॥ ९ ॥

देवताः प्रार्थयामास तथाभवितुमुत्सुकः ।
यदि मे प्रार्थितं सम्यगार्यो नाङ्गीकरिष्यति ॥ १० ॥

तदा तत्पादसविधे निवत्स्याम्यहमादृतः ।
एवमाह महाबाहुर्भरतः सत्यभाषणः ॥ ११ ॥

ततश्च निशि जातायां प्राप्तनीडेषु पक्षिषु ।
प्रभोर्भ्रातरमामन्त्र्य ययौ वेश्म निषादराट् ॥ १२ ॥

अथ प्रातः समुत्थाय भरतश्चैव शत्रुहा ।
तारयामासतुः सेनां गुहमाज्ञाप्य नौशतैः ॥ १३ ॥

शतानि पञ्च गङ्गायां तरण्यः समुपस्थिताः ।
आकृष्यमाणाः परितो दाशैराज्ञानुवर्त्तिभिः ॥ १४ ॥

नानावर्णाः पताकिन्यो विचित्रस्वस्तिकाञ्चिताः ।
वितानास्तरणोपेता घण्टाभरणभूषिताः ॥ १५ ॥

द्रोणीभिः क्षेपणीभिश्च शोभमानाजवप्लवाः ।
वेश्मवातायनोपेता व्यरुचन् जाह्नवीजले ॥ १६ ॥

पुरः परमकल्याणीमानन्दरवघोषिणीम् ।
ऊह्यमानां गुहेनैव भरतो नावमारुहत् ॥ १७ ॥

भरतस्य समीपस्थः शत्रुघ्नः शुशुभेतराम् ।
साक्षाच्चन्द्रसमीपस्थो द्वितीय इव चन्द्रमाः ॥ १८ ॥

आरुह्य रम्यतरणीः संतेरू राजयोषितः ।
कौसल्याद्याः पट्च्छन्नवेश्मान्तरसुसंस्थिताः ॥ १९ ॥

पुरोधसो मुनिश्रेष्ठा मन्त्रिणश्च द्विजातयः ।
पृथङ्नावः समारुह्य व्यतरन् स्वर्गनिम्नगाम् ॥ २० ॥

राजदारास्ततस्तेरुरश्वयानसमन्विताः ।
नैगमाश्चापणैः साकमनोभिर्भारवाहकैः ॥ २१ ॥

तरतां चैव तीर्णानां तथा चैव तरिष्यताम् ।
नृणां सम्भारयुक्तानां मिथः[1] कोलाहलोऽभवत् ॥ २२ ॥

स्त्रीगणै राजदासीभिर्दासैर्दासेरकैर्गजैः ।
वाजिभिर्युज्ययानैश्च तरण्यः सर्वतो भृताः ॥ २३ ॥

नानाभाण्डान्विता नावो नानाजनसमाकुलाः ।
दाशैः संतार्यमाणास्ताः पारं जग्मुर्महाजवाः ॥ २४ ॥

---

१. महान्–अयो०, मथु० ।

विचित्रकम्बलास्तत्र विचित्रध्वजशालिनः ।
पर्वता इव दृश्यन्ते विचित्रशिखरा गजाः ॥ २५ ॥

नौकाभिश्च महानौभिः प्लवैश्च सकला चमूः ।
सयानापणलोकौघा संततार नदीं क्षणात् ॥ २६ ॥

ततः सर्वान् समुत्तार्य ज्ञातिभिः सहितो गुहः ।
भरतस्य पुरः सम्यक् प्राञ्जलिः समुपस्थितः ॥ २७ ॥

तमपृच्छत पन्थानं तस्य देशस्य राघवः ।
यस्मिन् देशे वसत्यार्यः सानुजो भार्यया सह ॥ २८ ॥

तमुवाच निषादेशः प्रयागे गम्यतां त्वया ।
पुण्यं तपोवनं यत्र भारद्वाजस्य धीमतः ॥ २९ ॥

गङ्गया यमुना यत्र संगता दीर्घघोषया ।
अन्तस्तयोः सरस्वत्या शोणभासा समागतम् ॥ ३० ॥

निमज्ज्य यत्र मनुजा व्रजन्ति विरजं पदम् ।
तत्र स्नात्वा मुनिश्रेष्ठं नत्वाऽऽतिथ्यं प्रगृह्य च ॥ ३१ ॥

समेधितस्तदाशीर्भिर्यशःसौभाग्यमण्डितः ।
तन्निर्दिष्टेन मार्गेण भ्रातरं द्रष्टुमेष्यसि ॥ ३२ ॥

इत्याकर्ण्य गुहेनोक्तं प्रसन्नहृदयोऽभवत् ।
तं विसृज्य ततोऽगच्छत्प्रयागं सह सेनया ॥ ३३ ॥

मध्येमार्गं महारण्यतरुकोटरवासिनाम् ।
पक्षिणां निनदं शृण्वन् भारद्वाजाश्रमोन्मुखः ॥ ३४ ॥

फलितान् पुष्पितांश्चैव नवपल्लवभूषितान् ।
गुञ्जद्भ्रमरपुञ्जाढ्यान् सम्पश्यन् वनपादपान् ॥ ३५ ॥

ददर्शपुरतो रम्यं प्रयागस्थानमुत्तमम् ।
इतो भागीरथी गङ्गा परतो यमुना तयोः ॥ ३६ ॥

मध्ये नानामरैर्जुष्टमृषिवृन्दैः समाकुलम् ।
नानादेवद्रुमाकीर्णं कल्पवृक्षशतावृतम् ॥ ३७ ॥

कमलाकरसंशोभि शोभितं सरसीगणैः ।
कोटितीर्थसमाक्रान्तं देवतायतनान्वितम् ॥ ३८ ॥

सर्वकालफलोपेतैः पादपैः परिशोभितम् ।
दृष्ट्वा वनं महद्रम्यं सर्वे ते प्रीतमानसाः ॥ ३९ ॥

देवं प्रदक्षिणं कृत्वा प्रजग्मुर्भरतादयः ।
भरतश्चैव शत्रुघ्नो वशिष्ठोऽन्ये द्विजातयः ॥ ४० ॥

कौसल्याद्या मातरश्च देवतायतनं महत् ।
कृत्वा प्रदक्षिणं प्राप्ता महातीर्थेऽवगाह्य च ॥ ४१ ॥

श्रद्धोपेताः प्रविविशुर्मुनेराश्रममण्डलम् ।
भरतः क्रोशतो दृष्ट्वा पद्भ्यामेव प्रतस्थिवान् ॥ ४२ ॥

तदाश्रमं महत्पुण्यं भारद्वाजस्य योगिनः ।
प्रययौ भरतः श्रीमान् संनिवेश्य वलं पृथक् ॥ ४३ ॥

वशिष्ठसहितोऽन्यैश्च द्विजवर्यैः समन्वितः ।
मन्त्रिभिः सहितः शुद्धः स्फीतवासाः सुभाषितः ॥ ४४ ॥

प्रविश्याश्रममद्राक्षीन्मुनिं वह्निसमत्विषम् ।
भरद्वाजं सुतपसं विख्यातब्रह्मवर्चसम् ॥ ४५ ॥

स विलोक्य मुनिश्रेष्ठं प्राजापत्यं महौजसम् ।
वशिष्ठं ब्रह्मविद्वर्यं रघूणां च पुरोधसम् ॥ ४६ ॥

त्यक्तासनः समुत्तस्थौ पाद्यहस्तो महामुनिः ।
यथार्हं तेन संगम्य सत्कृत्य च तमादरात् ॥ ४७ ॥

शत्रुघ्नभरताभ्यां च भक्त्या समभिवादितः ।
यथापूर्वं यथान्यायं सर्वानानर्च सोऽतिथीन् ॥ ४८ ॥

सर्वेष्वङ्गेषु कुशलं पप्रच्छ वदतां वरः ।
ज्ञात्वा प्रमीतं राजानं शुशोच क्षणमातुरः ॥ ४९ ॥

वशिष्ठो भरतश्चैव तं च पप्रच्छतुः शुभम् ।
देहाग्निहोत्रशिष्याप्ताश्रमसत्पशुपक्षिषु ॥ ५० ॥

एवं परस्परं तेषां सम्प्रश्नोऽभून्मनोहरः ।
ततोऽब्रवीद् भरद्वाजो भरतं प्रश्रयानतम् ॥ ५१ ॥

ब्रूहि स्वागमनस्यार्थं वने राज्यवतस्तव ।
पूर्वं प्रव्राजितो रामस्तव पित्रा वनं प्रति ॥ ५२ ॥

स्त्रियाः प्रसादनं कर्तुं धर्मात्मा सत्यसंगरः ।
त्वमिदानीं च किं कर्त्तुं प्रस्थितोऽसि बलान्वितः ॥ ५३ ॥

कच्चिन्न राज्यलोभेन त्यक्त स्नेहो वनेऽपि तम् ।
उद्वेजयितुमुद्युक्तो भवान् कारुण्यवर्जितः ॥ ५४ ॥

एवं चेदत्यनुचितं कर्त्तुमुद्यतवानसि ।
काकुत्स्थानां कीर्त्तिहरं महत्पापमिदं यतः ॥ ५५ ॥

स वै महात्मा धर्मिष्ठो रामः सत्यानतिक्रमः ।
पापदृष्ट्या त्वया नैव द्रष्टव्यो रघुवंशजः ॥ ५६ ॥

त्वदर्थमेव धर्मात्मा गुणवांल्लोकरञ्जनः ।
स्त्रिया वचनमादृत्य रामः पित्रा विवासितः ॥ ५७ ॥

स त्वं वनेऽपि तिष्ठन्तं तं सभार्यं च सानुजम् ।
रामं क्लेशयितुं नार्हो रघूणां वंशजो भवन् ॥ ५८ ॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य भारद्वाजेन योगिना ।
दुःखितो बाष्पपूर्णाक्षः प्रत्युवाच विनिःश्वसन् ॥ ५९ ॥

गद्गदी भूतकण्ठत्वादपरिस्पष्टभाषणः ।
हा हा हतोऽस्म्यहं ब्रह्मन् यदर्येवं माभिभाषसे ॥ ६० ॥

मात्रा मम कृतं पापमहं शोचामि भूरिशः ।
न तं . कालमवाप्नोमि यस्मिन्नार्यः प्रवासितः ॥ ६१ ॥

नामुमर्थमहं जाने मातुलेषु चिराद् वसन् ।
जननीमप्यहं हन्यां यदि रामो न मां त्यजेत् ॥ ६२ ॥

अयं तु मे महान् रोषो यन्मात्रा जनितो भवे ।
मातुरेव च पापेन लिप्तोऽहं पापवर्जितः ॥ ६३ ॥

अधुनाहं व्रजाम्यार्हं रघुवंशविभूषणम् ।
प्रत्यानेतुं वने वासादभिषिच्यनृपासने ॥ ६४ ॥

आभिषेकाणि द्रव्याणि ब्राह्मणांश्चाभिषेचकान् ।
नयामि तत्र यत्रार्यो विद्यते मण्डयन् वनम् ॥ ६५ ॥

मनसा कर्मणा वाचा तस्य दासोऽस्म्यहं मुने ।
न मे राज्यस्पृहा ब्रह्मन् रामसेवाभिकाङ्क्षिणः ॥ ६६ ॥

नान्यथा मयि[1] शंकेथाः प्रसीद भगवन् मयि ।
तवाशिषाभिवाञ्छामि मयिज्येष्ठः[2] प्रसीदतु ॥ ६७ ॥

निशम्य केकयीपुत्रवचनं स महामुनिः ।
प्रससाद हृदात्यर्थं तुष्टाव च मुहुर्मुहुः ॥ ६८ ॥

उपपन्नमिदं मन्ये सर्वं त्वयि महामते ।
राघवे विमले वंशे जातमात्रा हि निर्मलाः ॥ ६९ ॥

न धर्मातिक्रमकरा न खला नापिकामिनः ।
ना कीर्तिभाजनाः केचिददद्यावधि कुले तव ॥ ७० ॥

स एव विमलो वंशो वैवस्वतमनोः किल ।
बभूवुर्धार्मिका यत्र मान्धानृसगरादयः ॥ ७१ ॥

एकैकस्य गुणान् वक्तुं कः शक्नोति जनो भुवि ।
तेषां कीर्तिकरा यूयं सर्वे दशरथात्मजाः ॥ ७२ ॥

---

१. माभि०—अयो०, मथु० ।

मातुः कृत्यमनादृत्य साधु ते मतिरूर्जिता ।
भवान् वर्द्धयिता लोके रघूणां कीर्तिसागरम् ।। ७३ ।।

प्रीयेऽहं केकयीसूनो तव बुद्ध्यातिसौम्यया ।
आर्ये गुणवति ज्येष्ठे त्वया सम्यग्विचारितम् ।। ७४ ।।

त्वाहं निमन्त्रयिष्यामि ससैन्यं ससुहृद्गणम् ।
समन्त्रिणां सभृत्यौघं सद्विजातिमुनिव्रतम् ।। ७५ ।।

सयुग्यवाजिमातङ्गमन्नैः सुस्वादुभोजनैः ।
यथाकामोपपन्नैश्चदधिदुग्धमधुव्रजैः ।। ७६ ।।

चोष्यैर्लेह्यैस्तथा पेयैर्भोज्यैः स्वादूपपादितैः ।
यस्य यावद्यथायोग्यैरश्वानां यवसैस्तथा ।। ७७ ।।

गजानां शर्कराज्याक्तैः पिण्डैर्गोधूमसम्भवैः ।
बन्धूनां सुहृदां चैव मन्त्रिणां च पुरोधसाम् ।। ७८ ।।

स्वादुबह्वन्नसम्भारैमैरेयैर्विविधैस्तथा ।
राजभोज्यैरनेकैश्च सुक्लृप्तैर्बहुसंविधम् ।। ७९ ।।

कन्दैर्मूलैः फलैः शाकैर्भक्ष्यैरन्नैरनेकशः ।
अहं त्वां प्रीणयिष्यामि परिवारगणैः सह ।। ८० ।।

निमन्त्रितोऽसि भरत त्वं मया वन्यवृत्तिना ।
मम प्रीत्यानुजानीहि मद्गृहे भोक्तुमद्य भोः ।। ८१ ।।

किमर्थं बलमुत्सृज्य त्वमेकाकी समागतः ।
किं नेह विस्तृतोदेशः सेनासंवासनोचितः ।। ८२ ।।

स तमाह मुनिश्रेष्ठं प्राञ्जलिर्नम्रकन्धरः ।
सर्वं त्वया कृतं ब्रह्मन् भूयो मत्प्रीतिसाधनम् ।। ८३ ।।

सबलः ससुहृद्बन्धुस्तोषितोऽस्मि न संशयः ।
दूरे संस्थापितं सैन्यमाश्रमोन्मर्दशङ्कया ।। ८४ ।।

शैलोपमैर्गजैस्तुङ्गैर्वाजिभिस्तरलैर्भृशम् ।
बलैरुच्चावचैर्दीर्घैः प्रच्छादितमहीतलैः ।। ८५ ।।

नानाविधजनस्तोमैः सम्मर्दः स्यात्तवाश्रमे ।
तपोनिष्ठाश्च मुनय उद्विजेरन्नुपद्रुताः ।। ८६ ।।

इत्यहं महतीं सेनां दूरे संस्थाप्य भक्तितः ।
पद्भ्यामेवेहसम्प्राप्तस्त्वांद्रष्टुंपावकोपमम् ।। ८७ ।।

स्थानं निर्दिश्यतां तन्मे यत्र रामो विराजते ।
तेनैव महती प्रीतिर्मम स्याद्भोजनाधिका ।। ८८ ।।

आतिथ्यं च त्वया ब्रह्मन् कृतमेव ममाधिकम् ।
तवाश्रमैकोपलभ्यैः कन्दमूलफलोदकैः ॥ ८९ ॥

ततोऽधिकं च ते ब्रह्मन् किं न्यूनं सिद्धयोगिनः ।
आयासाल्लभ्यतेऽस्माभिः सा सम्पत्सहजा तव ॥ ९० ॥

अथाब्रवीन्मुनिश्रेष्ठो भरतं सौम्यदर्शनम् ।
आनयेहाखिलं सैन्यं मयास्यद्य निमन्त्रितः ॥ ९१ ॥

आतिथ्यं मेऽनुजानीहि यथाकामोपभोगतः ।
अद्य भुक्त्वा सुविश्रान्तः ससैन्यस्तिष्ठ मद्‌गृहे ॥ ९२ ॥

द्रष्टासि राममन्येद्युश्चित्रकूटनिवासिनम् ।
तद्वनं सुमहद्रम्यं पुण्यं मन्दाकिनीतटे ॥ ९३ ॥

नितान्तशीतलामोदिमन्दमारुतवीजितम् ।
नानाविधद्रुमाकीर्णं पिकालिशुककूजितम् ॥ ९४ ॥

स भार्यः सानुजो यत्र सुखमास्ते रघूद्वहः ।
गन्तासि श्वः परश्वो वा प्राप्तासि महतीं मुदम् ॥ ९५ ॥

आज्ञप्त इत्थं मुनिना भरतश्चैव शत्रुजित्[1] ।
तथेति सत्वरं चक्रे प्रीतिमान् मुनिवाक्यतः ॥ ९६ ॥

ततः स भगवान् योगी निमन्त्र्य भरतं तथा ।
संविधां कल्पयामास निजवैभवसम्भवाम् ॥ ९७ ॥

अग्निहोत्रगृहं गत्वा सकृदाचम्य सिद्धिमान् ।
आतिथ्यं कर्त्तुकामोऽस्य सर्वं तत्समपादयत् ॥ ९८ ॥

आययौ तस्य सदने विश्वकर्मा सु वैभवः ।
त्वष्टा प्रजापतिश्चैव महाभूतिर्महा धनः ॥ ९९ ॥

इन्द्रादयो लोकपालास्तत्तल्लोकविभूतिभिः ।
गन्धर्वाप्सरसोदेवा नद्यः कामरसस्रवाः ॥ १०० ॥

मुनिराज्ञापयामास योगसिद्धो महातपाः ।
आतिथ्यं कर्तुमिच्छामि भरतस्याद्य सुश्रियः ॥ १०१ ॥

सर्वे भवन्तः कुर्वन्तु संविधा अत्यलौकिकीः ।
महाराजकुमारोऽसौ याभिस्तुष्येन्महामनाः ॥ १०२ ॥

अमू साक्षाद् रामांशौ वै शत्रुघ्नभरतावुभौ ।
मनोरमैर्गुणगणै रामलक्ष्मणसन्निभौ ॥ १०३ ॥

---

१. शत्रुभित्–अयो०, मथु० ।

स्वर्भूपाताललोकेषु भूतयो या मुदावहाः ।
ताः सर्वा उपसीदन्तु ममाश्रमनिकेतने ॥ १०४ ॥

मैरेयाणि मनोज्ञानि भक्ष्याणि विविधानि च ।
दधिदुग्धसितादीनि कल्पयन्तु विशेषतः ॥ १०५ ॥

वासांसि सुमहार्हाणि भूषणानि ज्वलन्ति च ।
आलेपनानि दिव्यानि पुष्पाणि विविधानि च ॥ १०६ ॥

माल्यानि सुविचित्राणि मांसानि च मधूनि च ।
चतुर्विधानि चान्नानि तथा भोगान् पृथग्विधान् ॥ १०७ ॥

कल्पयन्तु ममागारं समेत्य सकलाः सुराः ।
यैरातिथ्यं प्रकुर्वीय भरतस्य महात्मनः ॥ १०८ ॥

इत्याज्ञप्ताः सुराः सर्वे तथेति समपादयन् ।
अलौकिकान् महाभोगान् भूमिजानां सुदुर्लभान् ॥ १०९ ॥

विदधौ भगवान् सोमः स्वाद्वन्नममृतोपमम् ।
चतुर्विधं बहुरसं संविधाभिः समन्वितम् ॥ ११० ॥

चोष्यं लेह्यं च पेयं च भक्ष्यं प्रादुरभूद्बहु ।
मैरेयाण्यसृजन् नद्यो मद्यं बहुविधं तथा ॥ १११ ॥

शीतलानि सुगन्धीनि प्रावहन्नुदकानि च ।
काश्चिदिक्षुरसस्रोतोवहाः काश्चित्पयोवहाः ॥ ११२ ॥

काश्चिन्मधुवहाः काश्चिद्दधिकुल्या घृतस्रवाः ।
तरवः प्रादुरभवन् विचित्रफलपुष्पिणः ॥ ११३ ॥

चन्दनालेपनसृजो दिव्यगन्धरसस्रवाः ।
मधुस्रवा विचित्रस्रग्वासोऽलङ्कारभूषिताः ॥ ११४ ॥

विचित्रमद्यमैरेयस्रवा मांसौघवाहिनः ।
अकस्मान्नन्दनवनगोचरः प्रववौ मरुत् ॥ ११५ ॥

अवर्षन् वारिदास्तत्र पुष्पवृष्टीः समन्ततः ।
सर्वतो देवगन्धर्वा वाद्यानि समवादयन् ॥ ११६ ॥

श्रूयते स्म कलो रम्यः सर्वतो वल्लकीध्वनिः ।
नारदस्तुम्बुरुश्चैव चक्राते वीणया ध्वनिम् ॥ ११७ ॥

विश्वाची च घृताची च मेनका पुञ्जिकस्थला ।
मञ्जुघोषा सुकेशी च रम्भा रामा तिलोत्तमा ॥ ११८ ॥

उर्वश्याद्या अप्सरसो ननृतुर्भरतागमे ।
विश्वकर्माकरोत्सैन्ये स्वं कर्म विविधं ततः ॥ ११९ ॥

इन्द्रनीलमणिच्छन्ना समन्ताद् भूरिदृश्यत: ।
नवशाद्वल संछन्ना कुञ्जपुञ्जसमावृता ॥ १२० ॥

नानाविधाश्च तरव: प्रादुरासन् समन्तत: ।
अवहन् स्वच्छपानीया नद्य: काञ्चनकूलिनी: ॥ १२१ ॥

शुकसारसकादम्बमयूरपिकनादिता: ।
राजहंसरवोपेता: कुञ्जमण्डपशोभिता: ॥ १२२ ॥

लतावितानसंछन्नकाञ्चनोत्तीरभूमय: ।
सरस्वतीमुखा: पुण्या गङ्गागोदारीमुखा: ॥ १२३ ॥

तासां तीरप्रदेशेषु सैन्यमासाम्बभूव तत् ।
विचित्राणि च हर्म्याणि मणिहेममयान्यभु: ॥ १२४ ॥

वलभीजालकोपेता गृहा: स्वर्णविनिर्मिता: ।
चतु:शालानि रम्याणि निवासाश्च पृथग्विधा: ॥ १२५ ॥

गजानां वाजिनां चैव शाला अन्नादिसम्भृता: ।
रत्नप्राकारसद्भित्तिगोपुराजिरमण्डिता: ॥ १२६ ॥

तत्र राजगृहं रम्यं शरन्मेघसुनिर्मलम् ।
सुतोरणं पृथक् स्थानं दिव्याम्बरसमन्वितम् ॥ १२७ ॥

दिव्यास्तरणसम्पन्नं सर्वत: सौरभोर्मियत् ।
शशिशुभ्रमहातल्पसनाथभवनाञ्चितम् ॥ १२८ ॥

सर्वत: सर्वरसवद् दिव्यभोजनसंयुतम् ।
सर्वभोगे सुसम्पन्नं सुमृष्टमणिभाजनम् ॥ १२९ ॥

देवगन्धर्वनादाढ्यं श्रीमत्सर्वसुखान्वितम् ।
प्राविशद् भरत: श्रीमान् महर्षेराज्ञया तु तत् ॥ १३० ॥

पुरोधसा मुनिवरैर्द्विजवर्यैश्च मन्त्रिभि: ।
राजलोकैस्तथा सर्वै: सुहृद्भिर्बन्धुभि: सह ॥ १३१ ॥

तत्र सिंहासनं दिव्यं मणिरत्नविभूषितम् ।
चामरं तालवृन्तं च छत्रं च शशिनिर्मलम् ॥ १३२ ॥

प्रापश्यद् भरत: श्रीमान् प्रणम्यार्यधिया मुहु: ।
प्रणम्य च मुहुर्ज्येष्ठं रामं राजीवलोचनम् ॥ १३३ ॥

सेवां प्रदर्शयामास तत्रार्यस्य यथोचितम् ।
कदाचित्तालवृन्तेन वीजयामास भृत्यवत् ॥ १३४ ॥

कदाचिच्चामरकर: कदाचिच्छत्रपाणिक: ।
पादसंवाहनधिया कदाचिन्मणिपीठके ॥ १३५ ॥

करौ प्रचालयामास भरतो रामसेवकः।
रामेणेवाभ्यनुज्ञातस्तत्रोपाविशदन्तिके ॥ १३६ ॥

उपविष्टाः समर्यादं मन्त्रिणश्च पुरोहिताः।
मिषेविरे च तत्रामुं हाहाहूहूपुरोगमाः ॥ १३७ ॥

गन्धर्वा गायनवरा देवलोकेषु गोचराः।
मृदङ्गान् मुरजान् वीणास्तालान् झर्झरकांस्तथा ॥ १३८ ॥

अवादयन्त पटहान् वाद्यानि मधुराणि च।
ननृतुर्देव नर्तक्यो गन्धर्वाप्रवरा जगुः ॥ १३९ ॥

मूर्च्छनास्वरविस्तारैर्भरतं पर्यरञ्जयन्।
आलेपनैः सुगन्धैश्च कस्तूरीकुङ्कुमादिभिः ॥ १४० ॥

माल्यैर्विचित्रैर्मधुरैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः।
वस्त्रैराभरणैश्चैव पर्यमोदन्त सैनिकाः ॥ १४१ ॥

सर्वे भोगाश्च सर्वेषामिच्छया पर्युपस्थिताः।
शयनान्यासनान्युच्चैर्भूषणान्यम्बराणि च ॥ १४२ ॥

माल्यानि गन्धलेपाश्च स्वादून्यन्नाभ भूरिशः।
फलानि मुखवासाश्च वभूवुः सुलभा नृणाम् ॥ १४३ ॥

ररञ्ज भरतस्यान्तः करणं वीक्ष्य तां श्रियम्।
अहो स्वर्गोऽयमतुल इत्युच्चैरभिनन्दितः ॥ १४४ ॥

उपासाञ्चक्रिरे चैवं दिव्या युवतयः क्षणात्।
कुबेरभवनादेत्य सहस्रं शतमेव च ॥ १५४ ॥

चाम्पेयहेमचपलागौराङ्ग्यो हरिणीदृशः।
सहस्रं च शतं कान्ता आजग्मुः शक्रमन्दिरात् ॥ १४६ ॥

भरतस्योपासनार्थं सर्वाः काञ्चनसुप्रभाः ॥ १४७ ॥

काश्चिज्जगुश्च ननृतुः काश्चिद्वाद्यान्यवादयन्।
काश्चिन्महर्षिणाऽऽज्ञप्ताः परिचेरुः सहस्रशः ॥ १४८ ॥

वृक्षा एव जगुस्तत्र वादित्राणि च दध्वनुः।
इत्यद्भुतं वीक्षमाणा मुमुहुः सर्वतो जनाः ॥ १४९ ॥

या काश्च संविधास्तत्र वाञ्छिताः सैनिकैर्जनैः।
परिधानान्नपानाद्यास्ताः सर्वा ऊहिरेद्रुमाः ॥ १५० ॥

महदद्भुतमालोक्य मुनेरातिथ्यकर्मणि।
विस्मिता मानवाः सर्वे ज्ञात्वा श्रियममानुषीम् ॥ १५१ ॥

ये भोगा दिवि देवानां प्रापुस्तान भुवि मानवाः।
भारद्वाजस्य वचनाद् भरतातिथ्यकर्मणि ॥ १५२ ॥

अनृत्यन् वल्लिकास्तत्र वल्लिका एव चो चोज्जगुः ।
वल्लिका वाद्यधारिण्यो वादयामासुरुच्चकैः ॥ १५३ ॥

सर्वमाश्चर्यमभवत् पश्यतां सर्वतो नृणाम् ।
पीत्वा कादम्बरीं सैन्यास्तरुस्कन्धपरिस्रुताम् ॥ १५४ ॥

रेमिरेस्वर्गवेश्याभिर्दिव्यालङ्कारभूषिताः ।
परे नदीस्वरूपेण वहन्तीं मदिरां पपुः ॥ १५५ ॥

वृक्षस्कन्धस्थितान्यादुर्भक्ष्याणि विविधानि च ।
नदीनां पङ्कप्रायाणि पायसानि च लेभिरे ॥ १५६ ॥

यत्र तत्रैव सुलभा भोगाः समभवंस्तदा ।
मद्यं मांसं च सुस्वादु साधुक्लृप्तं सुपाचितम् ॥ १५७ ॥

इष्यते यस्य यद्यावत्तस्य तत्सुलभं तदा ।
बभूव भरतातिथ्ये महर्षेर्योगसिद्धितः ॥ १५८ ॥

एकैकं पुरुषं तत्र षड्‌ पञ्च च मृगीदृशः ।
उपासाञ्चक्रिरे भूयः स्नापनालेपनादिषु ॥ १५९ ॥

सुवर्णकूलिनीनां च कूलेषु सरितां तदा ।
स्निग्धकल्पद्रुमच्छायाशीतलेषु सुगन्धिषु ॥ १६० ॥

संस्थितान् पुरुषान् नार्यः स्वर्गादेत्य सिषेविरे ।
पादसंवाहनं चक्रुः काश्चिद् दिव्या मृगीदृशः ॥ १६१ ॥

वाजिनो वारणाश्चोष्ट्राः खरा अश्वतरा वृषाः ।
पपुः सुराप्रवाहासु सरित्सु मुदिता इह ॥ १६२ ॥

सैनिकान् भोजयामासुर्भक्त्या दिव्या मृगीदृशः ।
विकारानैक्षवान् रम्यान् लाजापूपान् मधूनि च ॥ १६३ ॥

तृप्ता नैवोपभुक्तास्ते रामकामप्रपूरिताः ।
विसस्मरुरयोध्यामत्यखिलानन्द भोगदाम् ॥ १६४ ॥

नाभिरन्तुं[१] च तेऽन्यत्र जनाश्चक्रमिरे ततः ।
सुतृप्ता मुदिता नैव रामदर्शनलालसाः ॥ १६५ ॥

भरतायाशिषोऽकुर्वन् रामस्य जगतस्तथा ।
ऐरयन् मुदिता वाचं भरतस्यानुयायिनः ॥ १६६ ॥

राजपुत्र चिरंजीव स्वर्गे सम्प्रापिता वयम् ।
अभुञ्ज्महि महाभोगान् मर्त्यलोके सुदुर्लभान् ॥ १६७ ॥

---

१. गन्तुम्—मथु० ।

रामस्य दर्शनं तेऽस्तु सर्वान् कामानवाप्नुहि ।
इति नानास्वरोपेतां गिरं लोका बभाषिरे ॥ १६८ ॥

दिव्यासवरसोन्मत्ता दिव्यभोगोपभोगिनः ।
दिव्यामृतान्नसुहिता दिव्यालङ्कारभूषिताः ॥ १६९ ॥

न तत्र मलिनः कश्चिदासीन्नाभूषितस्तथा ।
नानुद्वर्त्तितदेहश्च नाधौतवसनो जनः ॥ १७० ॥

सर्वेषां पार्श्वगा आसन् वाप्यो मैरेयसम्भृताः ।
नद्यश्चापूपकूलिन्यः पायसप्रवहास्तदा ॥ १७१ ॥

कामधेनुसमा गावः स्वर्गात्तत्रामिपेदिरे ।
तासां क्षीरैः सर्वकाममयैः प्रमुदिता जनाः ॥ १७२ ॥

वितानिन्यो द्रुमाश्चासन् सर्वकामोपभोगदाः ।
अवहन् मांससम्भारान् सुस्वादुमृदुपाचितान् ॥ १७३ ॥

अपश्यंस्तेषु मांसानि नानारूपाणि सैनिकाः ।
मार्गाण्याजानि वाराहाण्याज्याक्तानि मृदूनि च ॥ १७४ ॥

सुगन्धीनि सभोज्यानि मृष्टानि मधुराणि च ।
मयूरतित्तिरिमुखपक्षिमांसान्यनेकशः ॥ १७५ ॥

मत्स्यभेदाननेकांश्च शालिमद्गुररोहिताम् ।
पाठीनपीत[1]शृङ्गाटान् घृताक्तांश्च सुपाचिताम् ॥ १७६ ॥

ददावन्यस्तथान्यस्मै स्वादुस्वादु प्रियं तदा ।
सहस्रशः पाकभेदाः शाकभेदाः सहस्रशः ॥ १७७ ॥

वीक्ष्याभवन् जनास्तत्र विस्मिताः सर्वतस्तदा ।
दधिदुग्धासितादीनि स्वर्णपात्रेषु भूरिशः ॥ १७८ ॥

यथेष्टं लेभिरे लोका भरतातिथ्यभोजने ।
शर्कराः पायसान्युच्चैर्यत्र कुत्रापि लेभिरे ॥ १७९ ॥

सर्वे भोगा अदृश्यन्त वस्त्रालङ्कारलेपनाः ।
उपानहः पादुकाश्च यानानि गजवाजिनः ॥ १८० ॥

अञ्जनीयाः कुञ्जनीयाः कंकाताद्याः सुपेशलाः ।
भाजनानि स्वर्णरूप्यरत्नजानि समन्ततः ॥ १८१ ॥

चन्दनानि विचित्राणि वस्त्राणि कुसुमानि च ।
नारीणां च नराणां च ये भोगाः सुखदायकाः ॥ १८२ ॥

त आसन्नाश्रमे तस्य महर्षेः स्वर्गसन्निभे ।
दर्पणा यावकालेयास्तैलानि सुरभीणि च ॥ १८३ ॥

---

१. मीन०—मधु० ।

उष्णोदकानि दिव्यानि स्वर्णकुम्भभृतानि च ।
शस्त्राण्यस्त्राणि दिव्यानि धनूंषि सुमहान्ति च ॥ १८४ ॥

शयनासनसंव्यानभोजनीयान्यनेकशः ।
लेभिरे तत्र तत्रैव यथेष्टं सैनिका जनाः ॥ १८५ ॥

सोत्पलाः सुजलाः शुद्धाः सपद्मवनराजयः ।
हेमरत्नसमाबद्धनिःश्रेणीसुमनोहराः ॥ १८६ ॥

विरेजिरे ह्रदास्तत्र स्नानार्थं विविधा नृणाम् ।
तेषु स्नात्वा पर्यदधुर्वस्त्राण्याभूषणानि च ॥ १८७ ॥

स्वप्नकल्पं तु तज्जातं नृणां रात्रंदिनं सुखम् ।
मुनिनाकृतमातिथ्यं भरतस्य महात्मनः ॥ १८८ ॥

विलोक्य विस्मिताः सर्वे न ततो यातुकामुकाः ।
अरमन्ताश्रमेतस्य देवा इव हरेः पुरे ॥ १८९ ॥

यैर्नाविकलितः स्वर्गो दिव्यभोगोपबृंहितः ।
तैरेष साक्षात्संदृष्टो महर्षेः कृपया तदा ॥ १९० ॥

क्रीडतां दिव्ययोषाभिर्नराणां मुदितात्मनाम् ।
व्यतीयाय निशा सर्वा भारद्वाजाश्रमे शुभे ॥ १९१ ॥

ततो जातातिथ्ये नरपतिकुमारे कृतसुखे
महर्षेराज्ञातः प्रतिययुरथ स्वर्गविषयाः ।
सगन्धर्वा नार्यो विविधसुखभोगाश्च विबुधाः
क्षणात्ते शक्राद्या द्रुतमहशिमापुः[1] सपदि ते ॥१९२॥

महर्षेरातिथ्यं दशरथकुमारस्य य इदं
शृणोते श्रद्धावानुषसि शुचिरुत्थाय सततम् ।
न तस्यालक्ष्मीः स्यान्नच दुरितसम्भूतिरतुलां
श्रियंलब्ध्वा[2] लोके भजति मुदमारोग्यमपि यः ॥१९३॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे भारद्वाजकृतभरतातिथ्यवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

---

१. दर्शि०—मथु० । २. लब्धा—अयो०, मथु० ।

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ प्राभातिकीं वेलामधिगम्य सुखोषितः[1] ।
भरतः प्रीतहृदयः कृतस्नानार्चनक्रियः ॥ १ ॥

समये मुनिमभ्येत्य हुताग्निं विधिवत्तदा ।
प्राञ्जलिः सन्नतस्कन्धः पुरस्तात्पर्युपस्थितः ॥ २ ॥

तमपृच्छन्मुनिवरो वीक्ष्य कोमलया दृशा ।
कच्चिददद्य सुखं रात्रिर्व्यतीयाय तवाश्रमे ॥ ३ ॥

कच्चित्ते सैनिकाः सर्वे सुखमत्रा वसन् निशि ।
तम ब्रवीत् ततो राजकुमारो भरतस्तदा ॥ ४ ॥

कृताञ्जलिपुटोधीमान् विनतः प्रणयान्वितः ।
प्रणम्य वहुशः प्रीतो दृष्ट्वा सिद्धिमलौकिकीम् ॥ ५ ॥

येर्नाविकलितो ब्रह्मन् स्वर्गलोकः सुखालयः ।
तेऽपीह मामका लोकाः स्वर्गस्था अभवन् निशि ॥ ६ ॥

सभृत्यः सहसैन्यश्च सामात्यः सपुरोहितः ।
त्वया स्वर्गाचितं सौख्यमहमद्य समागतः ॥ ७ ॥

येकेचन महाभोगा मर्त्ये लोकेऽतिदुर्लभाः ।
तेऽभूवन्निहलोकानां मामकानां त्वदाज्ञया ॥ ८ ॥

आश्रमोऽयं महर्षेस्ते स्वर्गो लोकः सुखालयः ।
यथा मुमुदिरे लोकाः सर्वं एव न संशयः ॥ ९ ॥

किं किं नु कथयाम्यद्य नृणां भोगसुखं महत् ।
सर्वे कामा इहैकत्र निवसन्ति तवाश्रमे ॥ १० ॥

स्वर्गस्थानामियं रात्रिर्गतास्माकं महामुने ।
तवानुग्रहमाहात्म्यं किं वाच्यमसकृन्मया ॥ ११ ॥

तृप्ताः कामरसैर्भोगैरपेताध्वश्रमा जनाः ।
नानाभक्ष्यौघसुप्रीताः शयनासनतोषिताः ॥ १२ ॥

आनन्दिता न किमपि वक्तुं शक्ताश्च मामकाः ।
अधुनाऽज्ञापयतु[2] मां गन्तुमार्यस्य सन्निधौ ॥ १३ ॥

---

१. चितः—अयो० । २. आज्ञापयतु—अयो०, मथु० ।

प्रस्थापयाशिषं दत्त्वा लभे तद्दर्शनं यथा ।
एतावन्मे प्रियं ब्रह्मन् सुलभं भवदाशिषा ॥ १४ ॥

केन मार्गेण गन्तव्यं मया ब्रह्मविदां वर ।
तन्निरूपय मे भक्त्या सन्नताय महाशय ॥ १५ ॥

एवमुक्तो मुनिश्रेष्ठो भरतेन तदा व्रज ।
अस्ति तात महान् रम्यश्चित्रकूटो महीधरः ॥ १६ ॥

इतो विदूरेण पथा कान्तिमान् भूरिधातुभिः ।
विचित्रशृङ्गः कनकस्राविपाषाणसंधिभृत् ॥ १७ ॥

अनेकपक्षिसंरावजुष्टकाननमञ्जुलः ।
अनेकविधपश्वौघसेव्यमानदरीगृहः ॥ १८ ॥

गिरेस्तस्योत्तरे पार्श्वे भाति मन्दाकिनी नदी ।
बहुपुष्पभराक्रान्ततरुजुष्टतटद्वया ॥ १९ ॥

हंससारसचक्राह्वकादम्बकुलकेलिनी ।
तथा नानाविधा नद्यश्चित्रकूटाचलोद्गताः ॥ २० ॥

वाल्मीकेराश्रमस्थानं महर्षेस्तत्र शोभते ।
तदन्तरा महापुण्यं[1] पुण्यारण्यनिषेवितम् ॥ २१ ॥

तस्मिन्नचलवर्ये तु बद्ध्वाऽऽश्रमपदं निजम् ।
जानकीलक्ष्मणोपेत एकान्ते वसति स्वयम् ॥ २२ ॥

रामः कमलपत्राक्ष इति भूयः श्रुतं मया ।
तमुपैहि महाभाग द्रक्ष्यसि स्वेष्टपूर्तये ॥ २३ ॥

इतस्त्वं दक्षिणेनैव पथा तत्र गमिष्यसि ।
महत्या सेनया युक्तो विलङ्घ्य यमुनां नदीम् ॥ २४ ॥

ततो गन्तासितं देशं चित्रकूटं मनोरमम् ।
एवमाभाष्यमाणे तु भरते मुनिना तदा ॥ २५ ॥

सम्प्रस्थितायां सेनायां तुमुले भवति ध्वनौ ।
कौसल्याद्या राजदारा मुनेर्दर्शनकाङ्क्षया ॥ २६ ॥

आययुस्तत्र ताः सर्वा भरतेन च दर्शिताः ।
उवाच भरतः श्रीमान् सूचयंस्तां महर्षये ॥ २७ ॥

इयं हि कोसलेन्द्रस्य सुता ब्रह्मन् ययाजनि ।
त्रैलोक्यसुन्दरो रामः सुविक्रान्तगुणोर्जितः ॥ २८ ॥

---

१. महत्–अयो०, मथु० ।

सेयं साध्वी महाशोकवह्निना तप्तमानसा ।
अनर्गलगलद्बाष्पधोतोननविलोचना ॥ २९ ॥

कौसल्या नाम भगवन् निःश्वसन्ती सुदुःखतः ।
विलोक्यतामिह प्राप्ता भवन्तमभिवन्दितुम् ॥ ३० ॥

असौ मगधराजस्य तनया दुःखकर्शिता ।
कौसल्यामनुदीर्घेण संतापेन निमीलिता ॥ ३१ ॥

सुमित्रा नाम यासूत पुत्रौ विक्रमशालिनौ ।
त्रैलोक्यप्रथितप्रख्यौ वीरौ शत्रुघ्नलक्ष्मणौ ॥ ३२ ॥

एनां निरीक्षसे ब्रह्मन् यथामूलमुपार्जितम् ।
शोकस्यायशसश्चैव तथा वीरौ प्रवासितौ ॥ ३३ ॥

श्रीरामलक्ष्मणौ सद्यो राजा चापि मृतिं गतः ।
सर्वानर्थमहीमेनां जानीहि मम मातरम् ॥ ३४ ॥

यया मम यशो लोके हर्तुमारब्धमुग्रया ।
तदहं त्वार्यदास्येन स्थापयिष्यामि निश्चितम् ॥ ३५ ॥

एवमाख्यातवान् मातॄर्भरतः शोककर्षितः ।
सर्वाभिः प्रणतो भूयः स मुनिर्दीर्घदर्शनः ॥ ३६ ॥

उवाचाश्वासयन् विद्वान् भरतं राजनन्दनम् ।
मा वीर दोषदृष्ट्यैनां योजयस्वात्ममातरम् ॥ ३७ ॥

केकयीं भूरिमाव्यर्थानुकूलधिषणावतीम् ।
रामप्रवासनं चैतत्सुखायैव भविष्यति ॥ ३८ ॥

ततोऽभिवाद्य भरतो भरद्वाजं महामुनिम् ।
सम्पूज्य मातरः सर्वास्तेनाश्वासितमानसाः ॥ ३९ ॥

प्रतस्थुः सहितास्तस्य कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम् ।
आमन्त्र्य च महामन्त्रसिद्धं तमृषिमादृतः ॥ ४० ॥

प्रययौ भरतः साकं सेनया दीर्घया तया ।
असज्जन्त गजा अश्वाः स्यन्दनाश्च महाध्वजाः ॥ ४१ ॥

उच्चावचानि यानानि प्रययुः प्रस्थिते बले ।
महान्ति राजयानानि रेजुः स्वर्णपरिच्छदैः ॥ ४२ ॥

ध्वजारोहा गजास्तुङ्गाः सपक्षाः पर्वता इव ।
निर्ययुः सहसा सैन्ये भरतस्याभिगच्छति ॥ ४३ ॥

अश्वाः पल्याणिनो रेजुः स्वर्णरत्नपरिच्छदाः ।
मरुदुत्तालगतयो गच्छन्तो बलमध्यतः ॥ ४४ ॥

दासेरकाः स्वर्णरत्नभारवाहा विनिर्ययुः ।
रथाश्च दीर्घघोषाढ्याः कोविदारध्वजा ययुः ॥ ८५ ॥

शिविकामास्थितस्तत्र भरतः सौम्यदर्शनः ।
रेजे श्रीरामभक्तिश्रीसंदोहेन कृतास्पदः ॥ ८६ ॥

तमनुप्रययौ श्रीमाच्छत्रुघ्नो मधुराकृतिः ।
सर्वे एव रामचन्द्रस्य दर्शनस्पृहयान्विताः ॥ ८७ ॥

मातरो राजदाराश्च प्रययुर्यानमास्थिताः ।
यमुनामतरत्सैन्यं सद्योदक्षिणगामि तत् ॥ ८८ ॥

संहृष्टद्विपवाजियोध्वनिवहव्याप्ता मृगान् पक्षिणः,
संत्रासेन विभीषयन्त्यतितरां क्षुब्धाब्धिनिर्घोषिणी ॥
सा सेना जविनी वनानि परितः सम्बाधमाना गिरी-
नुद्देशांश्च निपातयन्त्यभिययौ श्रीचित्रकूटोन्मुखी ॥ ८९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सैन्यप्रस्थानं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

गर्जमाना महासेना रघूणां सिन्धुसन्निभा ।
मत्तमातङ्गनिवहव्याप्तक्षोणितला ययौ ॥ १ ॥

अश्वैः सिन्धुतरंगाभैरुच्छलद्भिः समन्ततः ।
छादयन्ती महीं मार्गान् वनानि विदिशोदिशः ॥ २ ॥

महतीमटवीं प्राप्य चित्रकूटोपशल्यगा ।
अनालक्ष्याभवत्सेना तरुस्तोमेषुभूरिषु ॥ ३ ॥

तान्यरण्यान्यतिक्रम्य नदीश्च विततोर्मिगाः ।
श्रीमानासादयाञ्चक्रे चित्रकूटमहागिरिम् ॥ ४ ॥

तत्र शुश्राव भरतो झिल्लीगणमुनिःस्वनम् ।
राजतालीवनध्वानं समीरजवसम्भवम् ॥ ५ ॥

भरतो वीक्ष्य तं देशं चित्रकूटसमीपतः ।
उवाच विस्मतः किंचिच्छत्रुघ्नं निकटस्थितम् ॥ ६ ॥

नूनं स एव देशोऽयं शत्रुघ्न मुनिरीक्ष्यते ।
भारद्वाजेन मुनिना यो मे संसूचितः पुरा ॥ ७ ॥

अग्रतो दृश्यतामेष पर्वतो नन्दनोपमैः ।
वनैः संकीर्णविविधाधित्यकोपत्यकावनिः ॥ ८ ॥

अस्यै गण्डगिरिग्रावस्राविणां निर्झराम्भसाम् ।
श्रूयते तुमुलो ध्वानो झिल्लीनिर्घोषसंयुतः ॥ ९ ॥

अमी मयूराः कूजन्ति गिरिकुञ्जनिवासिनः ।
येषां शब्दो दरीमध्यप्रतिशब्देन वृंहितः ॥ १० ॥

अमी तरुशिखाग्रेषु कोकिलाः कलनादिनः ।
शुकालिकोककादम्बध्वनिरापूरयन् वनम् ॥ ११ ॥

अज्जृम्भन्तेऽमितः शैलं पुष्पिताश्च महीरुहाः ।
नानाविधाः स्वसौरभ्यैर्वनमापूरयन्ति च ॥ १२ ॥

अयं मन्दाकिनीवारितरङ्गावलिशीलनः ।
आवाति शीतलस्पर्शो वायुरामोदवर्द्धनः ॥ १३ ॥

नूनमस्मिन् गिरावार्यो भार्यया लक्ष्मणेन च ।
सहितो वसति क्षेममेकान्तसुखिताशयः ॥ १४ ॥

अमी वनमृगाः कामं रामदर्शनसस्पृहाः ।
त्यक्तवाणभया नूनं विश्रब्धा विचरन्त्यहो ॥ १५ ॥

अस्मिन् गिरिवरेभ्रातर्गह्वरे भूरिभूरुहे ।
गवेषणीयो धर्मात्मा ज्येष्ठो नः सत्यपालनः ॥ १६ ॥

विहाय सम्पदो राज्यं पुरीं बन्धु जनांस्तथा ।
वनकुञ्जप्रियो रामः शैलेऽस्मिन् विहरत्यलम् ॥ १७ ॥

इत्युक्त्वा भरतस्तत्र शत्रुघ्नं प्रति सैनिकान् ।
आदिदेश स्वयं भ्रातुः श्रीरामस्य गवेषणे ॥ १८ ॥

गवेषयन्तस्ते तत्र पुरुषा गह्वरे वने ।
विचेरुः शस्त्रकलितास्त्रासयन्तोवनेचरान् ॥ १९ ॥

प्रविश्य विपिनं सान्द्रं द्रुमवल्लीगणाकृतम् ।
मृगया चक्रिरे वीरा भरतस्याज्ञया गिरौ ॥ २० ॥

अग्रे च ददृशुर्धूमलेखां गगनसंसृताम् ।
आगत्यसूत्रयामासुर्भरतं सैनिका जनाः ॥ २१ ॥

गवेषितं वनं सर्वं मुनिवृन्दनिषेवितम् ।
न तत्र दृष्टस्ते भ्राता रामस्त्रैलोक्यरञ्जनः ॥ २२ ॥

एकान्ते तु गिरेर्भागे महागह्वरकानने ।
दृश्यते धूमलेखाभिर्व्याप्तं गगनमण्डलम् ।। २३ ।।

नूनं तत्र तव भ्राता भविष्यति सभार्यकः ।
न तत्र शक्यते गन्तुमस्माभिः कुलनन्दन ।। २४ ।।

वायुस्तत्र प्रभोराज्ञाकारी वचनगोचरः ।
गन्तुं न दत्ते सामान्यान् परावर्तयतीव नः ।। २५ ।।

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां भरतो भ्रातृदर्शने ।
अत्युत्कलिकया युक्तो दूरे संस्थाप्य तां चमूम् ।। २६ ।।

विवेश तं गिरिं घोरं वनावलिसमावृतम् ।
सेव्यमानो मरुद्भिस्तैर्धुतिपङ्कजराजिभिः ।। २७ ।।

सर्वे भवन्तस्तिष्ठन्तु सैनिका इह दूरतः ।
एकोऽहं तत्र यास्यामि यत्रार्यः सह भार्यया ।। २८ ।।

महाभाग्यवता भ्रात्रा सौमित्रेयेण संयुतः ।
शत्रुघ्नश्च सुमन्त्रश्च वशिष्ठाद्याश्च मामनु ।। २९ ।।

आयान्तु रघुनाथस्य तस्य दर्शनहेतवे ।
इत्युक्त्वा प्रययौ श्रीमान् भरतोऽन्यन् निषेधयन् ।। ३० ।।

दिविधूमाग्रमालोक्य हर्षितो वेगवत्तरः ।
जगाम पुलकस्तोमव्याप्तसर्वाङ्गसुन्दरः ।। ३१ ।।

रामस्तु भगवांस्तत्र भार्यया लक्ष्मणेन च ।
सह कुर्वन् कथाः स्फीता मोदते स्म महाभुजः ।। ३२ ।।

तत्र तं वाहिनीशब्दं श्रुत्वावननिवासिनः ।
सिंहाद्याः कन्दरान्तःस्था उत्पेतुः कृतगर्जनाः ।। ३३ ।।

व्याघ्रा निलिल्युः सम्भीत्या कोलाश्चैव विदुद्रुवुः ।
अन्ये च पशवो लिल्युर्यत्र कुत्रापि सम्भ्रमाः ।। ३४ ।।

स्थानं त्यक्त्वा परे चेलुर्भ्रेमुरन्ये भयातुराः ।
परे चकितवच्चासन् महात्राससमावृताः ।। ३५ ।।

एवं संचाल्यमानेषु पशुवृन्देषु पक्षिषु ।
आसीन्महान् परिक्षोभः कानने सैन्यशब्दजः ।। ३६ ।।

दावाग्निनेव सम्भीताः सर्वतः पशुपक्षिणः ।
आर्त्तस्वरयुताश्चक्रुर्भ्रमणां सर्वतो दिशम् ।। ३७ ।।

केचिद्दरीषु विविशुः केचित्कुञ्जेषु लिल्यिरे ।
केचिद्गह्वर देशेषु तस्थुः सातंकमातुराः ।। ३८ ।।

वनचालं समुद्वीक्ष्य लक्ष्मणो भ्रातृवत्सलः ।
सेनागमं विनिश्चित्य भ्रातरं समवोचत ॥ ३९ ॥

आर्य संश्रूयते शब्दः सेनाया इव कानने ।
तन्मूलं ज्ञातुमिच्छामि केयं सेनास्ति कस्य वा ॥ ४० ॥

अथोवाच प्रभुर्ज्ञात्वा सेनाशब्दमुदित्वरम् ।
ज्ञायतां कस्य सेनेयं भ्रातरत्रघनेवने ॥ ४१ ॥

आर्यस्याज्ञामुपादाय लक्ष्मणो बलिनांवरः ।
शैलोद्देशं समारुह्य शालस्कन्धमधिष्ठितः ॥ ४२ ॥

अपश्यन्महतीं सेनां रघूणां सिन्धुघोषिणीम् ।
गजवाजिरथ व्रातसंछादितमहीतलाम् ॥ ४३ ॥

सुगुप्तां वीरपुरुषैः कोविदारध्वजै रथैः ॥ ४४ ॥

ततो देशात् समुत्तीर्य लक्ष्मणो वीर्यवत्तमः ।
अब्रवीदार्यसंविधे त्वरारोषसमन्वितः ॥ ४५ ॥

आर्यजानीहि सेनेयं भरतस्य सुदुर्धरा ।
गजाश्वरथसंछन्ना कोविदारध्वजाङ्किता ॥ ४६ ॥

आवां प्रवास्य विपिने तातं कृत्वा तथागतिम् ।
प्राप्तोऽभिषेकस्तेनैव राज्ये वंशक्रमागते ॥ ४७ ॥

जीवतोरावयोरेष न तथापि मनोरथम् ।
परिपूर्णतमं धत्ते सचिन्तो ज्ञातकण्टकः ॥ ४८ ॥

इति हन्तुं वनेऽप्येष प्राप्तो नौ दुष्टमानसः ।
महत्या सेनया युक्तः साशङ्कं केकयीगिरा ॥ ४९ ॥

दृश्यन्ते परितः शैलं कोविदारध्वजा रथाः ।
वनेऽत्र सर्वतो व्याप्ता रघूणां महती चमूः ॥ ५० ॥

अग्निर्निर्वाप्यतामार्य धूमलेखाभिसूचकः ।
इत एवाभिवर्त्तेरन्न यथा सैनिका भटाः ॥ ५१ ॥

प्रजावती प्रविशतु गिरेर्गुह्यतमां गुहाम् ।
धनुः सज्यं विधायाशु कवचं परिधीयताम् ॥ ५२ ॥

अद्यावां भरतो हन्यादावां वा भरतं रिपुम् ।
एष कालः परिप्राप्तः सपत्नस्य पराजये ॥ ५३ ॥

अद्यार्यः पश्यतुतमां मम चापपराक्रमम् ।
मम बाहुबलोत्क्षिप्ताः शरा विध्यन्तु विद्विषः ॥ ५४ ॥

धर्मश्चैवायमस्माकं वध्यः पूर्वापकारकृत् ।
अस्माभिरेव यत्कार्यं तदनेन स्वयं कृतम् ॥ ५५ ॥

एवं स्थिते तु धर्मेण यदि हन्याव विद्विषः ।
तदा निष्कण्टकं राज्यं नन्वार्यस्य भविष्यति ॥ ५६ ॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्य रामः सत्यभृतां वरः ।
ऊचे सर्वमनःसाक्षी भगवान् कञ्जलोचनः ॥ ५७ ॥

किमर्थमप्रियं ब्रूषे भरते धर्मकारिणि ।
मम प्राणप्रिये तस्मिंस्त्वत्तोऽपि प्रियकारिणि ॥ ५८ ॥

कदा नु भवता दृष्टं भरतेन कृतं मयि ।
अप्रियं तेन नैवं ते शङ्कनीयमतः परम् ॥ ५९ ॥

[1]भरतात्ते न भेतव्यं ममातिप्रियकारिणः ।
तृतीया सा तु मे मूर्तिरन्तर्दृष्ट्यावलोकय ॥ ६० ॥

प्रथमा वासुदेवाख्या सर्वेषां मुक्तिदायिनी ।
संकर्षणाख्या द्वितीया सर्वैश्वर्यनिधिः प्रभुः ॥ ६१ ॥

प्रद्युम्नाख्या स्तृतीयेयं यामवाप्य मतोऽन्यदः ।
चतुर्थी त्वनिरुद्धाख्या य एषा भवतोऽनुजः ॥ ६२ ॥[1]

एवं हि मम प्रियो वै भरतः प्राणसम्मितः ।
दिदृक्षुरेषमाभ्येति परावर्त्तयितुं वनात् ॥ ६३ ॥

भरतं स्वाधिकं विद्धि पुनरेव न वक्ष्यसि ।
द्रक्षस्यनुपदं तस्य मयि भक्तिं महात्मनः ॥ ६४ ॥

सेनेयं तस्य वीरस्य दृश्यतां परितो गिरिम् ।
इमौ तौ वायुजवनौ तुरगौ तस्य धीमतः ॥ ६५ ॥

अयमग्रेसरो हस्ती सेनायाः परिदृश्यते ।
नाम्ना शत्रुञ्जयो घोरः पितुर्मे प्रीतिवर्द्धनः ॥ ६६ ॥

इमौ भरत शत्रुघ्नौ संदृश्येते महाभुजौ ।
सेनामुखं मण्डयन्तौ मम दर्शनवाञ्छिनौ ॥ ६७ ॥

वैदेहीं च विशेषेण दिदृक्षू भक्तिसंयुतौ ।
इत्येवं कथयन् रामो लक्ष्मणं प्रति तद्बलम् ॥ ६८ ॥

ददर्श सीतासहितः प्रान्नुवन्महतीं मुदम् ।
लक्ष्मणस्तु तथोक्तेन ललज्जे विमृशन् हृदि ॥ ६९ ॥

ततश्च भरतः सम्यक् सन्निवेश्य बलं महत् ।
योजनार्द्धाद् गिरेस्तस्य स्थानसम्मर्दशङ्कया ॥ ७० ॥

---

१. श्लोक सं० ६०-६२ नास्ति—बड़ो०, अयो०, मथु० ।

वशिष्ठं च महाभागो मातृरानेतुमादिशत् !
ततो जगाम धर्मात्मा सीतारामदिदृक्षया ॥ ७१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे शैलागमनो नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

●

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाचः

पृच्छ्[1]मानो मुनींस्तस्य चित्रकूटवनालयान् ।
दर्शयन् मन्त्रिणो मान्यान् कौतुकानि च भूरिशः ॥ १ ॥

लक्ष्मणस्य च कृत्यानि वने तस्मिन् विलोकयन् ।
नदीं मन्दाकिनीमारात्सम्पश्यञ्छीतलानिलाम् ॥ २ ॥

फलानि चापि पुष्पाणि पर्णानि विविधानि च ।
रामलक्ष्मणसीताभिरुच्चैरवचितान्यलम् ॥ ३ ॥

कलयन् कलनादांश्च श्रृण्वन् विविधपक्षिणाम् ।
सम्प्राप तं शुभं देशं यत्रार्यः सह सीतया ॥ ४ ॥

लक्ष्मणेन च संयुक्तो मोदते हास्यकेलिभिः ।
अत्युत्कण्ठाभराक्रान्तः पुलकाञ्चितविग्रहः ॥ ५ ॥

प्राप्य मन्दाकिनीं पुण्यां बृहदूर्मिभुजाकुलाम् ।
अब्रवीत्स्वजनांस्तत्र विषादविकलो भवन् ॥ ६ ॥

अद्य. द्रक्ष्याम्यहं भाग्यैर्वीरेन्द्रं धर्मपालकम् ।
मृगाजिनधरं शान्तं वन्यवृत्तिसमाश्रयम् ॥ ७ ॥

पर्णशालास्थितं धीरं कन्दमूलफलाशिनम् ।
धिङ्मां यस्य कृतेत्वार्य एवंगतिमुपागतः ॥ ८ ॥

इत्येवं विलपन् भूयो भरतस्त्रपयाकुलः ।
ददर्श पर्णशालां तां लक्ष्मणेन विनिर्मिताम् ॥ ९ ॥

---

१. आर्ष प्रयोग है ।

वन्यवृक्षदलैर्व्याप्तां विशालां कान्तिशालिनीम् ।
यज्ञवेदिसमां पुण्यां तृणीशरविभूषिताम् ॥ १० ॥

द्योतयन्तीं दिशः कान्त्या दुर्धर्षामितरैर्जनैः ।
वंशस्तम्भयुतां रम्यां श्रीरामेण चिरोषिताम् ॥ ११ ॥

सुवर्णविन्दुशालिभ्यां धनुर्भ्यां च विभूषिताम् ।
असिभ्यां हेममुष्टिभ्यां द्योतमानां स्वभावतः ॥ १२ ॥

गोधाङ्गुलित्रशोभाढ्यां सिंहस्येव गुहां तु ताम् ।
वहिर्वेदीप्रविन्यस्तपावकोज्ज्वलदीपिताम् ॥ १३ ॥

तत्र सीतासहासीनं जटापुञ्जविभूषितम् ।
वल्कलौघकृतावासं कृष्णाजिनधरं प्रभुम् ॥ १४ ॥

चीरवाससमुद्भ्रान्तं सहजेन स्वतेजसा ।
त्रैलोक्यभोगभोक्तारमग्रजं स्वं ददर्श सः ॥ १५ ॥

लक्ष्मणेन सहासीनं सिंहस्कन्धं महाभुजम् ।
प्रसादसुमुखं सौम्यं दीप्तिमन्तं स्वभावतः ॥ १६ ॥

सर्वभूम्येकगोप्तारं सर्वत्रैलोक्यरक्षणम् ।
दृष्ट्वैव दूरतः शोकाद् विललाप सुदुःखितः ॥ १७ ॥

अहो क्वसा सभा नाथ प्रजामण्डलशोभिता ।
क्वेयं वनमृगव्याप्ता पर्णशाला त्वयोषिता ॥ १८ ॥

क्व तानि दिव्यवासांसि महार्हाणि तव प्रभो ।
क्वेमानि मृगचर्माणि वल्कलानि च भूरुहाम् ॥ १९ ॥

क्व तानि सुविचित्राणि माल्यानि सुरभीणि ते ।
क्वेमा जटा भस्मचिताः शिरसा वहसि स्फुटम् ॥ २० ॥

क्व ते यज्ञोद्भवो धर्मो भूरिसौख्यकरः प्रभो ।
क्व चायं वनवासोत्थः शरीरक्लेशसंचयः ॥ २१ ॥

क्व तेऽङ्गरागा विविधाः सुगन्धाश्चन्दनादिभिः ।
मलदिग्धाङ्गता क्वेयं महाराजकुमार ते ॥ २२ ॥

हा हन्त मन्निमित्तं ते दुःखमेतदुपस्थितम् ।
सुखसंवर्द्धितस्योच्चैः श्रीशालिनि पितुर्गृहे ॥ २३ ॥

धिङ्मां नृशंसया जातं मात्रा तादृशकर्मणा ।
तव प्रवासदं यस्य जीवनं लोकगर्हितम् ॥ २४ ॥

इत्युच्चैर्विलपन् दूराद् वाष्पान्धितविलोचनः ।
अप्राप्य पादग्रहणं न्यपतद्दूरतो भुवि ॥ २५ ॥

शोकाभितप्तो रामस्य व्यलुठत्पुरतोरुदन् ।
हा हार्येति सकृत्प्रोच्य न किंचित्पुनरूचिवान् ॥ २६ ॥

वाष्पव्याकुलकण्ठोऽसौ पुनः प्रेक्ष्यार्यमुत्थितः ।
रुदन्नार्येति सम्प्रोच्य वक्तुं किमपिनाशकत् ॥ २७ ॥

रुदस्तथैव शत्रुघ्नो ननाम चरणौ प्रभोः ।
उभौ तौ परिरभ्यार्यो बभूवाश्रुकलान्धितः ॥ २८ ॥

ततः सुमन्त्र आदाय तावुभौ करयोर्दृढम् ।
भक्त्या निवेदयामास रामलक्ष्मणयोः पुरः ॥ २९ ॥

रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरतांस्तत्र संगतान् ।
विलोक्य करुणाभ्यक्ता रुरुदुर्वनवासिनः ॥ ३० ॥

तेऽयोध्यापतितनया गजेन्द्रतुल्या आजानुप्रथितविशालबाहुदण्डाः ।
सिंहांसाः परिपृथुवक्षसस्तदानीं संसक्ता मिथ उदभासयन् वनं तत् ॥ ३१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे भरतसंदर्शनो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

●

अष्टात्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तमाघ्राय शिरस्यार्यः परिरभ्य मुहुर्मुहुः ।
अङ्कमारोप्य दुःखार्त्तं समाधायान्वपृच्छत ॥ १ ॥

क्व नु तात पितास्माकमभवत्पृथिवीपतिः ।
तं विहाय त्वमेकाकी कथं वनमुपागतः ॥ २ ॥

नहि तस्मिन् गुरौ जीवत्यागन्तुमुचितो भवान् ।
चिरायाथ पुरीं त्यक्त्वा मन्ये त्वां दूरमागतम् ॥ ३ ॥

किं च वत्स तवारण्य मुपागन्तुं प्रयोजनम् ॥ ४ ॥

अपि नः कुशली तातः स राजा सत्यपालकः ।
येनेष्टं राजसूयैरप्यश्वमेधैरनेकशः ॥ ५ ॥

स च ब्रह्मसभाश्रेष्ठस्तपस्वी विदिताखिलः ।
उपाध्यायोमतोऽस्माकं विधिवत्पूज्यते त्वया ॥ ६ ॥

अपि नो मातरः सर्वाः कुशलिन्यो यथा पुरा ।
अपि सत्कुरुषे तात यथापूर्वं पुरोधसम् ॥ ७ ॥

वृद्धं वशिष्टं यत्रैव रघूणां धर्म आहितः ।
अपि नः परमाचार्यः सुधन्वा सुखमेधते ॥ ८ ॥

अग्निकार्येषु युक्तो यः सम्यग्धर्म निवेदकः ।
काले काले विधातव्या इष्टीर्यः कुरुते शुभम् ॥ ९ ॥

अपि तान् पुरुषान् शूरान् क्षत्रिया ननु वर्त्तसे ।
अपि तान् मन्त्रिणो मान्यान् वृद्धान् मानयसि स्वयम् ॥ १० ॥

अपि प्रबुद्धयसे काले चिन्तयन्नर्थमात्मनः ।
अपि ते संवृतो मन्त्रः सम्यक् फलति कर्मसु ॥ ११ ॥

अपि त्वमर्थैलघुभिः प्राप्नोषि सुमहोदयम् ।
अथक्रियैव ते दत्ते क्रिया फलमहोदयम् ॥ १२ ॥

अपि स्वयं मन्त्रिभिर्वा बुध्यसे वेद्यमर्थवत् ।
अपि मूर्खाननाहृत्य पण्डितान् मन्यसे शुभान् ॥ १३ ॥

यैरर्थकृच्छ्रं प्राप्तोऽपि राजा कल्याणमश्नुते ।
वशिष्ठवामदेवाद्या ये नो मन्त्रिपुरोहिताः ॥ १४ ॥

अपि तान् मानयन् भक्त्या सभाजयसि धार्मिक ।
अपि ते दुष्कृतं हन्ति सुकृतौद्यैः पुरोहितः ॥ १५ ॥

अप्यमात्यान् यथार्हं त्वं नियोजयसि कर्मसु ।
अयथार्हं नियुक्तास्तु न भवन्ति क्रियाक्षमाः ॥ १६ ॥

अपि नो दण्डयस्युग्रैर्दण्डैर्मन्त्रिकृतैः प्रजाः ।
अपि तात त्वमात्मीयैः कदाचिन्नावमन्यसे ॥ १७ ॥

अपि ते मतिमान् दृष्टः शूरः सेनापतिस्तव ।
अपियोधात् कार्यकरान् दृष्टानाद्रियसे सदा ॥ १८ ॥

अपि दुष्टान् शठान् स्तब्धान् यथावदनुवर्त्तसे ।
अपि राज्यहरान् क्रूरान् नोन्मूलयसि तत्क्षणात् ॥ १९ ॥

अपि मान्यान् यथास्थानं मानयस्यादरादिभिः ।
अपि ते तत्पराः सेनाः सुसज्जाः कर्मकारिभिः[१] ॥ २० ॥

अपि धर्मार्थकामेषु परस्परमबाधयन् ।
विचारयसि नीतिज्ञ सर्वेषामुपबृंहणाम् ॥ २१ ॥

---

१. कारिकाः— मथु० ।

अपि दीनान् दरिद्रांश्च सम्यग्भरसि राष्ट्रके ।
अप्याशिषो द्विजैर्दत्ताः सम्यग्गृह्णासि भक्तितः ॥ २२ ॥

अपि राज्ञां हितां नीतिं शास्त्रदृष्ट्या निरीक्ष्यसे ।
सामदाने भेददण्डौ यथावदनुपश्यसि ॥ २३ ॥

अपि त्वं सफलारम्भोऽस्यपि त्वं सफलागमः ।
अपि त्वं सफलादेशोऽस्यपि त्वं सफलेप्सितः ॥ २४ ॥

अपि ते बन्धवो दाराः सुहृदो मित्रवंशजाः ।
ज्येष्ठाः कनिष्ठाः पुरुषा अनुकूलाः समासते ॥ २५ ॥

अपि मान्धातृमुख्या नः कुलजाः पृथिवीभृतः ।
यामधुस्तां निजां वृत्तिं सम्यक्तातानुतिष्ठसि ॥ २६ ॥

यया नीत्या नृपो विन्देत्परत्रेह च मङ्गलम् ।
तां नीतिमनु तिष्ठंस्त्वं सम्यक् पालयसि प्रजाः ॥ २७ ॥

इत्यापृच्छ्य रघुश्रेष्ठो भ्रातरं भरतं च तम् ।
यावत्तूष्णीं बभूवासौ तावदाह सुसन्नतः ॥ २८ ॥

किं मे राज्येन किं नीत्या राजधर्मेण किं प्रभो ।
नित्यं त्वत्पादयोर्दास्यं सम्प्राप्य सुखितात्मनः ॥ २९ ॥

अपीदृशव्यसनक्रान्तवार्यकुलपांसनः ।
विनिन्द्यजीवितः सोऽहं किं जातो राघवे कुले ॥ ३० ॥

नूनं धर्मविहीनोऽस्मि निन्दितोऽस्मि जगत्त्रये ।
यस्य माता हतभगा तवाप्रियमुपाचरत् ॥ ३१ ॥

त्व मे राजा पतिर्ज्येष्ठः प्रभुर्भव महीपतिः ।
नाहं कनीयान् राज्यार्हः किमेवमभिभाषसे ॥ ३२ ॥

गच्छार्य नगरीं स्वीयामयोध्यापूर्वजैर्धृताम् ।
राज्येऽभिषेचयात्मानं शुभाय च कुलस्य नः ॥ ३३ ॥

त्वं राजेति मतो लोकैर्मया तु परदैवतः ।
धर्मार्थकाममोक्षाणामीश्वरस्त्वं परः पुमान् ॥ ३४ ॥

मयि कैकेयदेशस्थे मातुलेष्वधिवासिनि ।
त्वय्यरण्यं समायाते पिता नो विरहातुरः ॥ ३४ ॥

अगात् समाधिं धर्मात्मा तव शोकेन दुःखितः ।
रटन् रामेति रामेति रामेति करुणस्वरः ॥ ३६ ॥

शत्रुघ्नेन मया चापि न तातस्य हितं भवेत् ।
प्रियस्तु तस्य नृपतेर्भवान् यावन्न यास्यति ॥ ३७ ॥

पितुस्ते प्रेमयुक्तस्य तावत्तृप्तिः कथं भवेत् ।
अतः कृत्वा हितं तस्मै भवान् गच्छतु तां पुरीम् ।। ३८ ।।

त्वां शोचं स्त[१]वदर्शनेप्सुरनिशं त्वय्येवसक्ताशयो
यावत्त्वां विनिवर्त्तयेद्विपिनतो राजानिवर्त्येहितम् ।
तावत्त्वद्विरहानलद्रुततरज्वालावलीढातुर-
प्राणः प्रेमवशात्त्वयीथ विनिश्चा यात्मानमास्थात्परम् ।। ३९ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे राम प्रियाख्यानो नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः ।। ३८ ।।

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

निशम्य भरतेनोक्तां पितुः समाधिमिश्रिताम् ।
अत्यर्थकरुणां वाचं मुमूर्छ रघुवल्लभः ।। १ ।।

पतितं धरणीपृष्ठे रामं शोकौघविह्वलम् ।
दुःखिताः सीतया सार्द्धं सिषिचुर्भ्रातरोऽश्रुभिः ।। २ ।।

ततः संज्ञां परिप्राप्य बभाषे रघुपुङ्गवः ।
हा तात हा सत्यपते हानः परमसंश्रया ।
हा पालक धरानाथ त्वं गतो गतिमीदृशीम् ।। ३ ।।

हा वात्सल्य निधेऽस्माकमाजन्म परिरक्षक ।
हानेकसौख्यदातस्त्वं क्व नु दृश्योऽसि साम्प्रतम् ।। ४ ।।

हा हा बत ममाभाग्यं योऽन्तेऽपि त्वां न दृष्टवान् ।
दुर्जनेन मयातात कर्तव्यं किं नु ते प्रियम् ।। ५ ।।

मृतस्त्वं मम शोकेन त्वयाहं नैव संगतः ।
हा तात तं दुःसमयं यस्मिन् विरहितस्त्वया ।। ६ ।।

समाप्य वनवासं च त्वया हीनां पुरीमहम् ।
कथं द्रक्ष्यामि दुर्भाग्यः शून्यामिव समन्ततः ।। ७ ।।

---

१. स्त्वदर्शनेप्सु०—पाठ उचित जान पड़ता है ।

कदापि ते प्रियं तात न कृतं दुर्हृदा मया।
यथा शोकेन पञ्चत्वं गतोऽसि विलपन् मुहुः ॥ ८ ॥

तानि स्वभावरम्याणि तव वाक्यानि भूपते।
मत्संबोधनयुक्तानि श्रोतुं नार्हे मम श्रुती ॥ ९ ॥

इत्थं विलप्य करुणं रघूणां वल्लभो रुदन्।
भार्यां चानुजमभ्येत्य प्रोवाच कृपणो यथा ॥ १० ॥

वैदेहि तव धर्मात्मा श्वशुरो मरणं गतः।
भ्रातस्त्वं तातहीनोऽसि दुःखं स्यात्किमतः परम् ॥ ११ ॥

ततो लक्ष्मणसीताभ्यां सहितो रघुपुङ्गवः।
अरुदत्करुणं भूयो दुःखवेगसमाकुलः ॥ १२ ॥

धैर्यमालम्ब्य तान् क्लिष्टानूचे केकयिनन्दनः।
उदश्रुनयनः शोकात्सान्त्वयन् कलया गिरा ॥ १३ ॥

अलं दुःखेन ते तस्मिंस्ताते स्वर्गमितेऽधुना।
विलोक्य विलपन्तं त्वां दीर्यते हृदयं मम ॥ १४ ॥

किमेतावद्विलपता मया लब्धं रघूद्वह।
त्वमेव नः पितेदानीं गुरुर्बन्धुः सुहृत्पतिः ॥ १५ ॥

उत्तिष्ठार्योदकं देहि प्रमीतस्यात्मनः पितुः।
शत्रुघ्नेन मया चापि पुरैव विहितं तथा ॥ १६ ॥

रुदतीं जानकीं रामः परिष्वज्य समादधौ।
लक्ष्मणं चाब्रवीदेतद् दुःखिनं भूरिदुःखतः ॥ १७ ॥

भ्रातरानय मे सद्यो बादराण्यैङ्गुदानि च।
तैरहं निर्वपिष्यामि पिण्डान् प्रेतस्य मे पितुः ॥ १८ ॥

आनयस्वोत्तरीयं मे कुर्यां पितुरुदक्रियाम्।
ततस्तेऽन्वगमन् सर्वे पुण्यां मन्दाकिनीं नदीम् ॥ १९ ॥

सुतीर्थां स्वच्छपुलिनां देवगन्धर्वसेविताम्।
सानुजः सहभार्यश्च तत्र स्नात्वा रघूद्वहः ॥ २० ॥

स्वर्गस्थायात्मनःपित्रे प्रददावुदकाञ्जलीन्।
ततस्तीरे समागत्य पिण्डान् निरवपद्भुवि ॥ २१ ॥

बदरैङ्गुदपिण्याकं सुमेध्यं दर्भसंस्तरे।
पुनः पर्णकुटीमीयुर्भ्रातरः सहसीतया ॥ २२ ॥

तस्या द्वारे स्थितो राम उभौ भरतलक्ष्मणौ।
कराभ्यां सुसमादाय रुरोद पितरं स्मरन् ॥ २३ ॥

तेषां प्ररुदतां तत्र वैदेह्या सह दुःखतः ।
उदभूत्करुणः शब्दो हरीणामिव गर्जताम् ॥ २४ ॥

कृत्वोदकं पितुः सर्वे भ्रातरस्तत्र संगताः ।
रुरुदुः करुणां वाचमीरयन्तः परस्परम् ॥ २५ ॥

सैनिकास्तमुपश्रुत्य तुमुलं रोदनध्वनिम् ।
अज्ञासिषुः सहार्येण भरतः संगतोऽधुना ॥ २६ ॥

रुदन्ति पितृशोकार्तास्तेऽमी नश्वरा इति ।
ततः सहस्रं पुरुषा रामदर्शनकाङ्क्षया ॥ २७ ॥

तत्राजग्मुः पर्णकुटीं यत्र श्रीमत आश्रमः ।
तेषामागच्छतामासीद् गजाश्वरथजो ध्वनिः ॥ २८ ॥

समागते बले तत्र गजाश्वरथ संकुले ।
वित्रेसुर्वन्यपशवो वराहमहिषादयः ॥ २९ ॥

सिंहा व्याघ्राश्च गोकर्णा गवयाः सैन्यशब्दतः ।
संत्रस्ताः कन्दरा भेजुश्चित्रकूटमहीभृतः ॥ ३० ॥

शुककोकिलकाकाद्याः कोककारण्डवादयः ।
दात्यूहाः सारसा हंसा नानारूपा विहंगमाः ॥ ३१ ॥

विसंज्ञाः सैन्यनादेन वित्रस्ताःसकलादिशः ।
उत्पेतुर्मण्डलं बद्ध्वा गगनान्तरचारिणः ॥ ३२ ॥

उच्चैः पक्षिगणाकीर्णं गगनं पर्यराजत ।
अधः सैन्यसमूहेन व्याप्तं धरणिमण्डलम् ॥ ३३ ॥

पारिरेभे जनान् कांश्चित्कांश्चिद्रामोऽभ्यवादयत् ।
कांश्चिज्जग्राह दृष्ट्यैव कांश्चित्सम्भाषणादिभिः ॥ ३४ ॥

कैश्चिन्नतः सविनयं कैश्चिदङ्घ्र्योश्च वन्दितः ।
सर्वानादिद्रिये रामः पितृशोकाकुलोऽपिसन् ॥ ३५ ॥

चक्षुर्लज्जानतो मौनं पितृशोकेन विह्वलः ।
आत्मानं मन्यमानश्च पित्रा रहितमातुरः ॥ ३६ ॥

रुरोद भ्रातृभिः सार्द्धं पुनर्नूतनयञ्छुचम् ।
अधोमुखस्तदातिष्ठच्चिन्ताशोकसमाकुलः ॥ ३७ ॥

भूयोरुदञ्छोकनिपातरुग्णः सन्नार्त शब्देन गुहागतेन ।
निनादयन् भूमिघरं समन्ताद् धृत्या न रोद्धुं हृदयं शशाक ॥ ३८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे उदकाहरणो नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

राजदारान् पुरस्कृत्य वशिष्ठो मुनिसत्तमः ।
तं देशमागमच्छीघ्रं पश्यन् मन्दाकिनीं शुभाम् ।। १ ।।

कौसल्या वीक्ष्य तां पुण्यां नदीं मन्दाकिनीं ततः ।
सुमित्रामब्रवीद् वाक्यं तप्यन्तीं सुतशोकतः ।। २ ।।

इतस्ते तनयः साध्वि भ्रातुराहरते जलम् ।
स वीरो राजपुत्रश्च प्राप्तोऽत्यनुचितां दशाम् ।। ३ ।।

[[1]इदमैंगुदिपिण्याकं प्रायो रामेण भूतले ।
निर्वापितं पितुर्दर्भेष्वीक्ष्यते स्वर्गतस्य हि ।। ४ ।।

अहो इदं तस्य भोज्यमुचितं भूरिभोगिनः ।
आसमुद्रक्षितिपतेर्न्युप्तं पुत्रेण ह्यापदि ।। ५ ।।

भुक्त्वा स विविधान् भोगानासमुद्रक्षितीश्वरः ।
इदमापदि पुत्रेण न्युप्तं भोक्ष्यति भोजनम् ।। ६ ।।]

इत्यादि विलपन्ती सा कौसल्या प्रापदाश्रमम् ।
रामस्य पर्णशालां तां दृष्ट्वा तत्र सुदुःखिता ।। ७ ।।

तत्र स्थितं सुतं दृष्ट्वा त्यक्तभोगं जटाधरम् ।
वल्कलाजिनचीरौघैः[2] संवीतामलविग्रहम् ।। ८ ।।

अश्रूण्यमुञ्चदत्यार्त्ता शोकविह्वलमानसा ।
दृष्ट्वैव रामो जग्राह मातॄणां चरणान् पृथक् ।। ९ ।।

तथैव लक्ष्मणो भक्त्या सर्वा मातॄरवन्दत ।
सीता च पादान् श्वश्रूणामग्रहीद् भूरिदुःखिता ।। १० ।।

अश्रुपूर्णाक्षिवदना शोचन्तीश्वशुरं मुहुः ।
तां दृष्ट्वोवाचकौसल्या निःश्वस्य करुणं वचः ।। ११ ।।

हा विदेहनरेन्द्रस्य सुता दशरथस्नुषा ।
वीरेन्द्रस्य वधूर्भव्या कथमेवं सुदुःखिता ।। १२ ।।

इदं ते वदनं कान्तं चन्द्रादपि सुशीतलम् ।
उत्फुल्ल पद्मरुचिरं कथमेवंदशां गतम् ।। १३ ।।

---

१. ये तीन श्लोक अयो० और मथु० की प्रतियों में काट दिये गये हैं ।

२. राद्यैः—अयो० ।

नितान्तमातयक्लान्तं मलिनं वनवासतः ।
दृष्ट्वा तवाद्य कल्याणि हृदयं दीर्यते मम ॥ १४ ॥

ततो रामो वशिष्ठस्य पादौ जग्राह भक्तिमान् ।
अमात्यान् मन्त्रिणः सर्वान् प्रधानान् पुरवासिनः ॥ १५ ॥

आगतान् परिजग्राह परिरम्भेक्षणादिभिः ।
सर्वैः समेत्य विधिवदुपविष्टश्च राघवः ॥ १६ ॥

उपोपविष्टाः सकला भ्रातरो मुनयस्तथा ।
पुरोहिता अमात्याश्च मन्त्रिणो राजमानिताः ॥ १७ ॥

कृताञ्जलिपुटो धीमान् भरतो भक्तिसंनतः ।
पुरो रामस्योपविष्टो विवक्षुः प्रणयान्वितः ॥ १८ ॥

तूष्णींभूताः स्थिताःसर्वे पश्यन्तो भरताननम् ।
किमेष वक्ष्यति बुधो राममानेतुमागतः ॥ १९ ॥

रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरतास्तैः सुहृज्जनैः ।
वृतास्तत्र व्यराजन्त वीक्षमाणाः परस्परम् ॥ २० ॥

निन्युस्तां रजनीं कृत्स्नां ते चिरान्मिलिता मिथः ।
ततःप्रभाते निमज्य मन्दाकिन्यां यथोचितम् ॥ २१ ॥

पर्णशालामुपागच्छन् सर्वे तूष्णींगिरो जनाः ।
भरतोऽथ सुसत्कृत्य रामं भक्तिसुसन्नतः ॥ २२ ॥

पश्यतां सुहृदां मध्ये इदमाह स धर्मवित् ।
नतोऽस्मि रघुवर्यत्वामात्मना दास्यशीलना ॥ २३ ॥

प्रसीद मह्यं नम्राय करुणां कर्त्तुं मर्हसि ।
गच्छायोध्यां निजपुरीं पालयास्मान् स्वसेवकान् ॥ २४ ॥

प्रजाश्च सकला राजन् गोपाय निजधर्मतः ।
भुङ्क्ष्व राज्यं निजं प्राप्तं पितृपैतामहं क्रमात् ॥ २५ ॥

अगाधे नौरिवाम्भोधौ प्रचण्डानिललोलिता ।
त्वां विना राम राज्यश्रीरसौ नाशोन्मुखी क्षणात् ॥ २६ ॥

भवन्तमनुवर्त्तन्तां राज्यासनमधिष्ठितम् ।
प्रजाः प्रकृतयः सर्वास्तारा इव निशाकरम् ॥ २७ ॥

गायन्तु पुरनार्यश्च तवप्रावेशिकं पुरे ।
अन्तःपुरस्थितास्ताश्च सेवन्तां त्वां स्मरोपमम् ॥ २८ ॥

श्रीजानकीं पुरस्कृत्य सहस्रवनिताः पुरे ।
चन्द्राननास्त्वया सार्द्धं लभन्तां भोगमुत्तमम् ॥ २९ ॥

नरनागनगेन्द्राणां कन्या दिग्विजयार्जिताः ।
क्लिश्यन्त्यस्त्वद्वियोगेन पश्यन्तु त्वां गृहागतम् ॥ ३० ॥

नाहमर्होऽस्य राज्यस्य रासभोऽश्वगतेरिव ।
श्वेवहर्यक्षनादस्य काको हंसगतेरिव ॥ ३१ ॥

पितर्युपरतेस्माकमनाथानां गतिर्भवान् ।
त्रायस्व नः स्वपदवीमधितिष्ठन् रघूद्वह ॥ ३२ ॥

इति सम्भाषमाणस्य भरतस्यवचोऽमृतम् ।
अन्वमोदन्त तत्रस्थाः सभ्या नरमुनीश्वराः ॥ ३३ ॥

विलपन्तं मुहुर्वीक्ष्य भरतं रामचन्द्रमाः ।
उवाच धर्मसंयुक्तं धर्मभृत्प्रवरः स्वयम् ॥ ३४ ॥

क्षयिष्णु सकलं मन्ये यद्दृश्यं सदसत्तथा ।
संयुज्य विप्रयुज्यन्ते संयुज्यन्ते वियुज्य च ॥ ३५ ॥

सर्वं मृत्युवशं मन्ये जगदेतच्चराचरम् ।
मूढास्तस्य कृते सत्यं त्यजन्ति किमु कामुकाः ॥ ३६ ॥

इष्ट्वा बहुविधैर्दीर्घैर्मखैः सर्वस्वदक्षिणैः ।
महानुभावस्तातो नो मयि यातो समाधितः ॥ ३७ ॥

तद्वचः सत्यसम्बद्धं कथमुल्लङ्घ्यतां मया ।
स्वर्गतं च्यावये तातं सत्यातिक्रमणादहम् ॥ ३८ ॥

न मया सत्यमुल्लङ्घ्य वर्त्तितव्यं कदाचन ।
नाहं द्विर्भाषितुं जानै व्रतमेतत्परं मम ॥ ३९ ॥

योमेऽनुकूलो बन्धुश्च न निर्बन्धं करोत्विह ।
यद्भावि तद्भूतमिदं को निवर्त्तयितुं क्षमः ॥ ४० ॥

इत्यभिधाय निदेशकरः पितुराहितसत्यवचः परिरक्षं
स्तत्क्षणमेष ततो विरराम नराधिपसूनुरधर्मविपक्षः ।
शृण्वति सर्वमुनिप्रकरे भरतः पुनरेव ततोऽभिवभाषे
चेतसि भूरि विचित्य चिरं रघुनाथनिवर्तनसाध्वभिलाषे ॥ ४१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे रामवाक्यं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

कथं निवर्तयाम्येनमार्यं विपिनवासतः ।
इति युक्तं विचिन्त्यैप भरतस्तमवोचत ॥ १ ॥

क्षुद्रा मे जननी चक्रे यत्पातकमकारणम् ।
मय्यजानति ते दासे मातुलेश्वधितिष्ठति ॥ २ ॥

तदनिष्टमहं मन्ये महदेवात्मनाशनम् ।
त्वद्भयाच्च न धर्मात्मन् मातरं दण्डयाम्यहम् ॥ ३ ॥

ममापकारिणी पापा प्रकृत्या राक्षसी त्वियम् ।
तदुत्पन्नश्च सुतरामहं पापैक सम्भवः ॥ ४ ॥

तथापि न करिष्यामि कर्म गर्हितमात्मना ।
यत्तातेन कृतं तत्तु किं नु गर्हामि सम्प्रति ॥ ५ ॥

मृतो न गर्हितुं योग्यस्तत्रापि जनकः स नः ।
अन्तकालेऽभवत्तस्य मोह एष न संशयः ॥ ६ ॥

यत्कृतं मुह्यता तेन पित्रा नः कर्म गर्हितम् ।
तद्भवान् संशमयतु तस्मिन् स्वर्गमितेऽधुना ॥ ७ ॥

एतदेव च कर्तव्यं सत्पुत्रेण ननु त्वया ।
कैकेय्या यत्कृतं पापं तामेवानुप्रयातु तत् ॥ ८ ॥

त्रायस्व नः कुलपते प्रकृतीश्च विशेषतः ।
सुहृदो बान्धवांल्लोकान् क्लिश्यतस्तव शोकतः ॥ ९ ॥

इदं तेऽनुचितं मन्ये वनवासजटादिकम् ।
आत्मनः कुलधर्मेण व्याहतं किं चिकीर्षसि ॥ १० ॥

ब्रह्मक्षत्रे उभेनित्ये स्वस्वलक्षणलक्षिते ।
विज्ञाय तद्भवान् सर्वमन्यत्कर्तु न चार्हसि ॥ ११ ॥

विपरीतमिदं चार्य यन्मया तेऽनुशासनम् ।
जीवनायात्मनः किं तु त्वां शिक्षितुमहं यते ॥ १२ ॥

शाधि राज्यं स्वधर्मं च धर्मज्ञानां शिखामणे ।
इहैव बन्धुभिः सर्वैरात्मानमभिषेचय ॥ १३ ॥

आभिषेचनिकं द्रव्यं सर्वमेतदुपाहृतम् ।
कृतार्थयतरामार्य कृत्वा त्वं स्वाभिषेचनम् ॥ १४ ॥

मुदिताः सन्त्विमे सर्वे वीक्ष्य त्वामभिषेकिणम् ।
पायाद्रक्षस्व जनकं ज्येष्ठस्यातिक्रमोद्भवात् ॥ १५ ॥

दासस्य मे वचः श्रुत्वा हृदि नाथ कृपास्तु ते ।
तथा सर्वेषु लोकेषु बान्धवेषु दयां कुरु ॥ १६ ॥

परास्य मामथ भवान् यदि गन्ता वनं प्रति ।
तदाहमपि गन्तास्मि पादलग्नः क्व नु व्रजे ॥ १७ ॥

इत्यार्त्तस्य वचो रामः श्रुत्वा तस्य सभान्तरे ।
उवाच शृण्वतां तेषां सर्वेषां धर्मसागरः ॥ १८ ॥

युक्तमेतत्त्वयि सदा यद्धर्मयुतमब्रवीः ।
पुत्रो दशरथस्यासि मम भ्राता शुभाशयः ॥ १९ ॥

पुरा तव प्रसूस्तात तव मातामहान्नृपात् ।
लब्धा राज्यं प्रतिश्रुत्य पित्रा नः सत्यभाषिणः ॥ २० ॥

अथ दैवासुरे युद्धे तव यात्रा पिता स नः ।
वरं सम्प्रार्थितः सत्यं द्वयं तत्राभियाचितम् ॥ २१ ॥

तत्र राज्यं मम पुनर्वने प्रवसनं यथा ।
तन्नः पित्रा भवन्मात्रे सम्यगेव प्रतिश्रुतम् ॥ २२ ॥

सोऽहं चतुर्दशाब्दानि वने वत्स्यामि धर्मतः ।
पितुः सत्याभिरक्षार्थं ससीतः सानुजस्तथा ॥ २३ ॥

कर्त्तुं सत्यगिरं तातं भवांस्तदनुमन्यताम् ।
यास्तु मिथ्यावचास्तातः कैकेयीयाचिते वरे ॥ २४ ॥

त्वं शाधि मतिमन् राज्यं पित्रा दत्तमकण्टकम् ।
सम्मोचय ऋणात्तातं सत्पुत्रोऽसि रघोः कुले ॥ २५ ॥

नरकाद्रक्ष पितरं सत्यवाक्यानुरक्षणात् ।
गच्छायोध्यां प्रजाः पाहि पित्रा तुभ्यं निदेशिताः ॥ २६ ॥

तवराज्येऽस्तु शत्रुघ्नः सहायः समितिंजयः ।
ममारण्यनिवासे च सहायोऽयं तदग्रजः ॥ २७ ॥

त्वं राजापुरवास्तूनां नराणां धर्मशासनात् ।
अहं वनमृगाणां च राजास्मि विधिना कृतः ॥ २८ ॥

त्वं गच्छ प्रयतमते पुरीमयोध्यां गन्ताहं तपसि सुखेन दण्डकांश्च ।
छत्रं ते शिरसि वलक्षमातपघ्नं छाया मे शिरसि मता वनद्रुमाणाम् ॥ २९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे
रामवाक्यनामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तत्सभासंस्थितो विद्वान् जाबालिर्नाम वै मुनिः ।
निवर्त्तयन्तं भरतं राममेतदुवाच ह ॥ १ ॥

भो भो राम महाबाहो धर्मात्मन् सत्यसंगर ।
किं ते मयोपदेष्टव्यं विदुषः सर्ववेदिनः ॥ २ ॥

यज्ज्ञेयमखिलं राम तद्वेत्सि ज्ञानचक्षुषा ।
तवैव ज्ञानदीपेन प्रकाशन्तेऽखिला जनाः ॥ ३ ॥

यद्विशुद्धतमं ज्ञानं प्रकाशयति विश्वतः ।
न त दन्यस्य मर्त्यस्य न चामर्त्यस्य कस्यचित् ॥ ४ ॥

एकस्त्वमात्मा सर्वेषामात्मनां प्रियकृत्प्रियः ।
जाने त्वां ज्ञानदृष्ट्याहं परमं पूरुषं प्रभो ॥ ५ ॥

न ते समोऽन्यः पुरुषः सत्त्वोदार्यगुणादिभिः ।
कुतोऽस्त्वभ्यधिको लोके मर्त्यधर्मणि सर्वतः ॥ ६ ॥

त्वद्भाग्यमुपजीवन्ति ये केचिद्भाग्यसंयुताः ।
तवांशेनाखिलं विश्वं सर्वमेतत्प्रकाशते ॥ ७ ॥

भाग्यवान् पुरुषो लोके यस्तेऽनुग्रहभाजनम् ।
यस्मै कुप्यसि लोकेश न ततो दुर्भगः परः ॥ ८ ॥

लोकाननुगृहाणेमानयोध्यावासिनोऽखिलान् ।
आत्मानमभिषिच्य त्वं शाधि राज्यं सनातनम् ॥ ९ ॥

विधिना त्वं प्रदिष्टोऽसि प्रजानां प्रवरः प्रभुः ।
भजन्नौदास्यमेतासां मनः क्लिश्नासि राघव ॥ १० ॥

सुमहाभ्युदयो लोके त्वयि राज्यं प्रकुर्वत्ति ।
अतोऽभ्युदयिनः कुर्याज्जनानेनान् निजाश्रितान् ॥ ११ ॥

नोदासीः क्षत्रवंशाब्धिप्रमोदनकलानिधे ।
मर्दयित्वा खिलान् विघ्नान् लोकं योजय मङ्गलैः ॥ १२ ॥

अमीषामात्मनाथानां जनानां कुरु रक्षणम् ।
नोदासीः सौभगनिधे भवानेकः समाश्रयः ॥ १३ ॥

पाहि स्वधर्मं धर्मात्मन् नान्यधर्ममुपाचर ।
कार्याकार्ये विजानाति भवान् स्वपरधर्मयोः ॥ १४ ॥

[1]यस्यांशां शकला वै हि सर्वेऽवतारा:[2] कृष्णादय: ।
स वै राम त्वं सर्वेशस्तेषां वै हि नियामक: ॥ १५ ॥

भुङ्क्ष्व निष्कण्टकं राज्यमात्मनो भागमुत्तमम् ।
जनानुद्विजतश्चैतान् स्वस्थान् कुरु महामते ॥ १६ ॥

आत्मनोऽनुचितां विद्धि राजसूनो वनस्थितिम् ।
अयोध्यामावसन् रम्यां भुवं भुङ्क्ष्व स्वधर्मत: ॥ १७ ॥

अथ तं रघुशार्दूल: परावर्तयितुं प्रभुम् ।
उवाच विनयोद्रेकभरतं नतकन्धर: ॥ १८ ॥

भवानप्येवमुन्मार्गगामिप्राकृतबद् ब्रुवन् ।
सत्यं समुच्छेदयसि तत्कं शरणमाप्नुम: ॥ १९ ॥

सत्येन प्रीयते स्वात्मा सत्येन [3]स्वर्गमश्नुते ।
सत्येन देवा अचला: सत्येन नियतं शुभम् ॥ २० ॥

यद्ददाति सुपात्रेभ्यो यद्देवान् यजते पुन: ।
यज्जुहोति समिद्धेऽग्नौ यत्तपस्यति संयत: ॥ २१ ॥

तत्सत्येनैव कुरुते सर्वं कर्मफलोन्मुखम् ।
असत्यभाषिणो मन्ये सर्वमेव निरर्थकम् ॥ २२ ॥

सत्यमेकं महन्मूलं धर्मस्याभ्युदयस्य च ।
क आत्मनोऽशुभं कुर्यादसत्ये पथिवर्त्तिन: ॥ २३ ॥

एको बहूनामर्थाय पातकं कुरुते नर: ।
स्वयं सम्पच्यते घोरे नरके नेतरेऽर्थिन: ॥ २४ ॥

राज्यगृध्नुरहं नैव सत्यमुत्स्रष्टुमुत्सहे !
[किं मे बन्धुजनास्तत्र नरकक्लेशभागिन: ॥ २५ ॥

एक[4] एव विपक्ष्येऽहं नरके घोरदर्शने ।[4]][5]
अत: सत्येज्झितं मार्गं न त्वं शिक्षितुमर्हसि ॥ २६ ॥

कामान्मोहात्तथा लोभान्नाहं सत्यं समुत्सृजे ।
देवता: पितर: स्वर्गा यस्मिन्नेव प्रतिष्ठिता: ॥ २७ ॥

कृतानि तेन सर्वाणि पातकानि न संशय: ।
य: सत्यमनिवर्त्तेत कामत: पुरुषाधम: ॥ २८ ॥

गुरोर्वच: समुत्सृज्य भरतस्य वचो भरन् ।
कथं न कुर्यामधमोगुरूणामतिवर्त्तनम् ॥ २९ ॥

१–१. नास्ति–बड़ो० । २. इस चरण में ९ अक्षर हो जाने से छन्दोभंग है । ३. स्वर्ग आप्यते–अयो०, मथु० । ४–४. नास्ति–बड़ो० । ५. ये दो पङ्क्तियाँ मथु० की प्रति में काट दी गयी हैं ।

इत्यादि बहुधा रामः प्रशंसन् सत्यभाषणम् ।
प्रत्यस्य जाबालिमतं तूष्णीमास्त महाशयः ॥ ३० ॥

जाबालेर्मतमुत्क्षिप्य वशिष्ठस्तमवोचत ।
जाबालिः किं विजानाति लोकयात्रागतागतम् ॥ ३१ ॥

नैवं निवर्त्तनीयस्त्वं युक्तिरेषात्र राघव ।
आसीच्छून्यमिदं विश्वमसदेव ततश्च सत् ॥ ३२ ॥

जलमेवासृजत् पूर्वं पुरुषः स्वापनं महत् ।
ब्रह्माण्डमसृजत्तत्र बीजमुप्त्वा सनातनम् ॥ ३३ ॥

तस्मिन्नजायत पुनः स्वयमेव स पूरुषः ।
उच्चावचानि भूतानि ससर्जाग्रे प्रजापतिः ॥ ३४ ॥

वेदमध्यापयामास तस्मै वरदराड् विभुः ।
लोकयात्रा विधानानि ततो जज्ञे स आत्मवान् ॥ ३५ ॥

मरीचि प्रमुखास्तस्य पुत्रा आसन् मनोभवाः ।
मरीचेः कश्यपस्तस्य समभूदङ्गिरास्ततः ॥ ३६ ॥

प्रचेतास्तत्सुतो जातो मनुर्नाम महीपतिः ।
तस्येक्ष्वाकुरभूद् यो वः कुलज्येष्ठो महान् नृपः ॥ ३७ ॥

तस्य वंशे त्वमभवः साक्षाद्वंशविभूषणः ।
मृतान्मा शोच भो विद्वन् वर्तमानान् प्रपालय ॥ ३८ ॥

प्रत्यक्षं धर्ममातिष्ठ मापरोक्षं च चिन्तय ।
वशिष्ठस्यवचोऽसह्यं मन्वानो रघुपुङ्गवः ॥ ३९ ॥

विगर्हमाणस्तमथो उवाचेदं महायशाः ।
धर्मेण पूर्वे मनुजा जित्वेमं लोकमात्मना ॥ ४० ॥

अमुं लोकमुपातिष्ठन् किं परोक्षं विगर्हसे ।
कथं पित्रा कृतं कर्म हन्यामहमधर्मतः ॥ ४१ ॥

अर्थ गृघ्नुं तु मां मत्वा नाधर्मे सम्प्रवर्तय ।
एतत्तेऽनुचितं वाक्यं रघूणां त्वं यतो हितः ॥ ४२ ॥

ततः कुप्यन्तमाज्ञाय रामं लोहितलोचनम् ।
पुनरूचे स जाबालिरन्यन्मृदुतरं वचः ॥ ४३ ॥

प्रत्यक्षवलमास्थाय कः परोक्षं विगर्हताम् ।
निवर्त्तनायते विद्वन् वयं [1]सर्वेसमागताः ॥ ४४ ॥

निवर्तस्व वनाद् राम मान्यान् मानय सम्प्रति ।
निशम्य जाबालिवचः पुनरूचे रघूद्वहः ॥ ४५ ॥

---

१. ऽभ्युपागताः—अयो०, मथु० ।

यो मे प्रियहितो लोके स नेत्थमभिभाषताम् ।
नाहं द्विर्याषितुं जाते ब्रह्मणापि प्रयोजितः ॥ ४६ ॥

कृत्वा मिथ्या गिरं तातं स्वर्गे लोकेऽपि गर्हितम् ।
नद्यां संस्मृत्य गोत्रादि कस्य देयोऽञ्जलिर्मया ॥ ४७ ॥

सोऽहं सत्यगिरंकर्त्तुं धार्मिकं तातमात्मनः ।
निर्वर्त्तिष्ये वनान्नैव यावद्वर्षांश्चतुर्दश ॥ ४८ ॥

ततो वशिष्ठजाबालिप्रमुखाः परमर्षयः ।
दृष्टान्तदर्शनैर्ज्ञानैर्युक्तिभिश्चाप्यनेकशः ॥ ४९ ॥

न्यवर्त्तयन् वनाद् रामं न तु शेकुर्निवर्त्तितुम् ॥ ५० ॥

सर्वे मुनीन्द्राः प्रकृतिप्रधानाः सन्मन्त्रिणोऽमात्यवराः समन्तात् ।
अरण्यवासाद्विनिवर्त्तयन्तो निर्बन्धमास्थाय चिराय तस्थुः ॥ ५१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे निवर्त्तनवाक्ययोजनो नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

•

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथोवाच वशिष्ठस्तं वृद्धः कुलपुरोहितः ।
वदामि शृणु धर्मात्मन् सर्वथा मामकं वचः ॥ १ ॥

गुरवस्त्रय एवैते लोके धर्मभृतां नृणाम् ।
आचार्यः कुलवृद्धो यः पिता माता च तत्पुनः ॥ २ ॥

तत्राहं कुलपूज्यो व आचार्यो धर्मदर्शकः ।
मद्वचः सर्वथा मान्यं त्वया धर्मात्मना सदा ॥ ३ ॥

मातुश्च वचनं मान्यं वृद्धाया धर्मसंगतम् ।
अतो यद्भरतो ब्रूतेऽभ्यर्थयन् दीनमानसः ॥ ४ ॥

तत्कुरुष्व महाबाहो गुरुवाक्यानुरोधतः ।
ये गुरूनभिवर्त्तन्ते ते नराः शुभकारिणः ॥ ५ ॥

इत्यादि बहुधा तस्य लपतो दीनचेतसः ।
वशिष्ठस्य वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच रघूद्वहः ।। ६ ।।

गुरुर्मे जन्मना नित्यं राजा दशरथः कृती ।
मया यत्संश्रुतं तस्य न तन्मिथ्या भविष्यति ।। ७ ।।

इत्युक्तो भरतस्तेन रामेण सुमहाशयः ।
उवाच सारथिं स्वीयं सुमन्त्राख्यं महाभुजः ।। ८ ।।

भो सूत सुमते सम्यगिहास्य पदपद्मयोः ।
छायामाश्रित्य रचय मदर्थं कुशसंस्तरम् ।। ९ ।।

स्थण्डिलेऽधिशयिष्येऽहमिहास्य पदयोस्तले ।
निराहारो निरम्बुश्च स्थास्यामि कृपणाशयः ।। १० ।।

स्थास्याम्येवं प्रकारेण यावन्न कृपयेत्प्रभुः ।
ततः स तमकुर्वाणं तथा रामाज्ञया विना ।। ११ ।।

वीक्ष्य स्वयं कुशान् भूमावास्तरन्नतिदुर्मनाः ।
उक्तः कमलनेत्रेण रामेण करुणात्मना ।। १२ ।।

किमर्थं कुरुते भ्रातर्भवान् प्रायोपवेशनम् ।
ब्राह्मणस्यैव धर्मोऽयं न राजन्यस्य सुव्रत ।। १३ ।।

उत्थाय पुरुषश्रेष्ठ राज्यं समनुपालय ।
पित्रा दत्तं कुलप्राप्तं न भवांस्त्यक्तुमर्हति ।। १४ ।।

ततः पौरा जानपदाः प्रजाः प्रकृतयोऽखिलाः ।
ऊचिरे भरतं सम्यग्वीक्ष्य रामस्य तद्व्रतम् ।। १५ ।।

एष सत्यधरो रामः करिष्यति पितुर्वचः ।
न निवर्त्स्यति धर्मात्मा तवोपायशतैरपि ।। १६ ।।

को हि व्यावर्तयेदेनं सत्यसन्धं महाव्रतम् ।
अथरामोऽब्रवीद्वाक्यं सर्वेषामनुशृण्वताम् ।। १७ ।।

अहं वने निवत्स्यामि यावद्वर्षाश्चतुर्दश ।
ततो द्रक्ष्यामि नगरीमयोध्यामिनि मे व्रतम् ।। १८ ।।

भरतः प्रत्युवाचैनं शृण्वतां विदुषामिदम् ।
यदि कार्यं पितुर्वाक्यं त्वया धर्मपरायण ।। १९ ।।

अवश्यं वन एवार्य निवत्स्यसि तदा ब्रुवे ।
अहमेव पितुर्वाक्याद् वने वत्स्यामि धार्मिक ।। २० ।।

त्वं राज्यमनुशाधि त्वं कुरु लोकस्य मङ्गलम् ।
निशम्य भ्रातुर्वचनं रामः स्मित्वाऽब्रवीदिदम् ।। २१ ।।

तातेन मे यदादिष्टं जीवता सत्यवादिना ।
न तदुल्लङ्घितुं शक्यं मयाभ्रातस्त्वयापि च ॥ २२ ॥

न त्वां प्रतिनिधीकृत्य वनवासो भवेन्मय ।
अतो न कार्यो निर्बन्धस्त्वया व्रतधरे मयि ॥ २३ ॥

यदुक्तं भवतो मात्रा द्वौ वरौ याचमानया ।
तस्यै दत्तं च यत्पित्रा मया यच्च प्रतिश्रुतम् ॥ २४ ॥

लोके तदन्यथाकर्त्तुं कः शक्तोऽत्र चराचरे ।
जानामि त्वं हितो भक्तः सर्वंकर्त्तुमसि क्षमः ॥ २५ ॥

तथापि मम कल्याणमेतदेव व्रतं मतम् ।
नान्यथा कर्त्तुमर्होऽसि मम सत्यं हितो भवान् ॥ २६ ॥

अनुजेन सहारण्यं प्रवेक्ष्यामि न संशयः ।
सत्यं भवतु कैकेय्यै पित्रा दत्तं वरद्वयम् ॥ २७ ॥

अनृतात्त्राहि पितरं स्वर्गस्थं तं महाव्रतम् ।
एतदेव प्रकर्तव्यं त्वया तात मयापि च ॥ २८ ॥

अथ तं देशमागच्छन् दशग्रीववधैषिणः ।
देवाः सर्षिगणाः सर्वे भरतं सम्प्रबोधितुम् ॥ २९ ॥

ततो देवाश्च गन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः ।
राजर्षयो महान्तश्च भरतं समबोधयन् ॥ ३० ॥

अस्ति वीर महात्कार्यं देवानां जगतां तथा ।
यदर्थं राघवे वंशे समभूद् रामचन्द्रमाः ॥ ३१ ॥

एतस्य स्थानममलं प्रमोदवनमुत्तमम् ।
यत्र नित्यं वसत्येष रमयन्नात्मनो जनान् ॥ ३२ ॥

तत आगमनं त्वस्य महत्यै कार्यसम्पदे ।
नान्यथा तद्भवेत्कार्यमतो वनमुपागतः ॥ ३३ ॥

निमित्तमात्रं जानीहि कैकेयीवचनं प्रभोः ।
सर्वमेव करोत्येष आत्मना वीतसम्भ्रमः ॥ ३४ ॥

प्रमोदवनमेतस्य स्थानं परमशोभनम् ।
यत्र जानन्ति मुनयो न देवा मनुजाः कुतः ॥ ३५ ॥

कोटिचन्द्रप्रतीकाशं कोटिसूर्यप्रतापवत् ।
प्रेमानन्दकदम्बेन परिपूर्णमनुत्तमम् ॥ ३६ ॥

तद्धित्वा रामचन्द्रोऽयमयोध्यां समभूषयत् ।
निमित्तं तत्र जानीमस्त्रैलोक्यस्यैव रक्षणम् ॥ ३७ ॥

अतस्त्वं तात भरत सिद्धार्थः सन्नितो व्रज।
आज्ञां सम्पालयार्यस्य यस्याज्ञावशगाःसुराः ॥ ३८ ॥

इत्युक्त्वा वचनं सर्वे न्यवर्तन्त महर्षयः।
देवाश्चापि सगन्धर्वाः स्वं स्वं स्थानमुपागमन् ॥ ३९ ॥

खिन्नचेतास्तु भरतः पुनर्भूत्वा कृताञ्जलिः।
भक्त्या सुसन्नतस्कन्ध इदमाह रघूद्वहम् ॥ ४० ॥

नमस्ते रघुशार्दूल सर्वभक्तानुपालक।
महोदार महाप्राज्ञ सफलं कुरु याचनम् ॥ ४१ ॥

राजधर्मनिजं वीक्ष्य कुलधर्मं च शाश्वतम्।
देहिमे याचमानाय महोदार महाशय ॥ ४२ ॥

न रक्षितुं मया शक्यं राज्यमेतदनाकुलम्।
न च रञ्जयितुं शक्याः पौरा जानपदाश्च ते ॥ ४३ ॥

न त्वदीयाः प्रजा राम शक्या अन्येन रक्षितुम्।
ज्ञातयो बन्धुसुहृदो मित्राणि विविधा जनाः ॥ ४४ ॥

त्वामेव परितो राम काङ्क्षन्ते सर्वदा प्रभो।
चकोरा इव शीतांशुं तावेतान् सुखयात्मना ॥ ४५ ॥

न मे शक्तिर्महीपाल महीं च परिरक्षितुम्।
अनिशं त्वत्पदाम्भोजभक्तिमेवाभिकामये ॥ ४६ ॥

इत्थमुक्त्वा वचो वीरः पादयोरपतत्प्रभोः।
तमुत्थाप्य ततो रामः करुणानिधिरच्युतः ॥ ४७ ॥

अङ्कमारोपयामास सान्त्वयन् कलया गिरा।
अब्रवीच्च महाबाहुरिदमर्थप्रसाधनम् ॥ ४८ ॥

बुद्धिरेषोपपन्नाते सुस्थिरा कुलनन्दन।
मदाज्ञया समर्थोऽसि पृथिवीमभिरक्षितुम् ॥ ४९ ॥

अमी वृद्धा मन्त्रिवरा अमात्यानः कुलप्रियाः।
एतैः सम्मन्त्र्य सर्वाणि कार्याणि त्वं करिष्यसि ॥ ५० ॥

न पुनर्मत्प्रतिज्ञातं परावर्त्तय धार्मिक।
चलेन्मेरुश्चलेद्भूमिश्चलेदब्धिश्चलेन्नभः ॥ ५१ ॥

अग्निः शैत्यमुपागच्छेच्चन्द्रश्चण्डरुचिर्भवेत्।
चलेत्स्थानाच्च शेषोऽपि न प्रतिज्ञामहं त्यजे ॥ ५२ ॥

इति वादिनि धर्मज्ञे रामचन्द्रे मनीषिणि।
वशिष्ठोऽभ्यवदद् वाक्यं रघूणां यः पुरोहितः ॥ ५३ ॥

जानामि त्वां महाराज धार्मिकं सत्यवादिनम् ।
नहि कृच्छ्रगतस्यापि तव पापोन्मुखी मतिः ॥ ५४ ॥

त्वामाश्रिता अपि न वै रमन्ते पापकर्मणि ।
कुतः पुरुषशार्दूल तव स्यात्तादृशी स्पृहा ॥ ५५ ॥

कुलमेवेदममलमिक्ष्वाकूणां विशेषतः ।
त्वं तत्र प्रकटो राम समग्रं भूषयन् कुलम् ॥ ५६ ॥

अतः परं ते विज्ञाप्यमिदमस्मि महाव्रत ।
प्रदेहि पादुके स्वीये भरतायाभि याचते ॥ ५७ ॥

इमे हि स्वप्रभावेण त्रैलोक्यं पालयिष्यतः ।
अनर्घ्यरत्नजटिते कोटिचन्द्रार्कसन्निभे ॥ ५८ ॥

विश्वं पालयितुं योग्ये तमो हर्त्तुं तथा क्षमे ।
एवमुक्तो वशिष्ठेन रामस्त्रैलोक्यरक्षकः ॥ ५९ ॥

प्रददौ प्रादुके तस्मै भरताय महाभुजः ।
ते गृहीत्वा प्रभोर्वीरः प्रहर्षं किंचिदाव्रजत् ॥ ६० ॥

ततः स रामचन्द्रस्य कृत्वा भक्त्या प्रदक्षिणम् ।
महानागेन्द्रशिरसि पादुके समरोपयत् ॥ ६१ ॥

अथ मर्वान् जनान् राम आनुपूर्व्याभ्यिपूजयत् ।
मुनीन् वशिष्ठप्रमुखान् भरतं च विशेषतः ॥ ६२ ॥

सर्वाः सम्पूज्य मातॄश्चरणविनतिभिर्दुःखिता वाष्पकण्ठीः
क्लिश्यन्तं वाष्पपूर्णेक्षणमथ भरतं रामचन्द्रो विसृज्य ।
सीतासौमित्रियुक्तः कथमपि धृतिमानश्रुपूर्णाकुलाक्षो
वीरस्तां पर्णशालां धरणिधरदरीं केसरीव प्रविष्टः ॥ ६३ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे पादुकाप्रदानो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

●

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

ते पादुके रमेशस्य रामचन्द्रस्य मञ्जुले ।
अनेकमणिमाणिक्य जटितस्वर्णनिर्मिते ।। १ ।।

समस्तसिद्धिसंदोहवदान्ये भुक्तिमुक्तिदे ।
ब्रह्मादिसुरसंदोहसंसेव्यरुचिरप्रभो ।। २ ।।

कोटिचन्द्रार्कविम्बाभे कोटिरत्नसमुज्ज्वले ।
ब्रह्मानन्दरसस्थाने प्रेमानन्दसुखास्पदे ।। ३ ।।

सनकादिमहायोगिसंविभाव्यस्वरूपिके ।
महामाङ्गल्यसंदोह वदान्ये कामधेनुके ।। ४ ।।

चिन्तामणिगणाकीर्णे चिन्तितार्थविधायिके ।
महायोगीन्द्रमूर्द्धन्यसहस्रदलमध्यगे ।। ५ ।।

स्मरणात्सर्वपापौघविनाशनमहोद्भटे ।
कीर्तनात्सर्वकल्याणकोटिकल्पलतोपमे ।। ६ ।।

सर्वसौभाग्यसम्पन्ने सर्वामयविनाशिके ।
सर्वसम्पत्तिसुखदे मनोमोहतमोपहे ।। ७ ।।

अविद्यावरणच्छन्नजीवस्वाराज्यदायिके ।
महोद्योतमहोवृन्दविभूषितमहाप्रभो ।। ८ ।।

सर्वदोषौघरहिते सर्वतो गुणभूषिते ।
कोटिब्रह्माण्डरचनाज्ञप्तकोटिविरञ्चिके ।। ९ ।।

प्रमोदवननिलये चित्तचैतन्यचन्द्रिके ।
सरय्वाः पुलिने रम्ये रत्नमन्दिरसंस्थिते ।। १० ।।

महातिमिरसंदोहसंकुलस्थानभासिके ।
स्थूलसूक्ष्मपराकारे स्थूलसूक्ष्मपरातिगे ।। ११ ।।

शिवे गुरुस्वरूपे च सर्वविद्याविशारदे ।
निर्गुणे अपि भक्तानां कृपयाऽऽत्तगुणद्भुते ।। १२ ।।

नवे नवस्वरूपे च परमार्थप्रदर्शिके ।
सर्वाज्ञानतमोभेदभानुभे चिद्घनप्रभे ।। १३ ।।

सर्वासिद्धौघसिद्धीशे सर्वमङ्गल मङ्गले ।
सर्वसौभाग्यसौभाग्ये सर्वकारणकारणे ।। १४ ।।

सर्वमन्त्रावतरणे सर्वसौख्यमहास्पदे ।
कोटिब्रह्म शिवाराध्यस्वरूपे वचनातिगे ।। १५ ।।

ॐकारपञ्जरान्तःस्थे कलनादसुकोकिले ।
सप्तकोटिमहामन्त्रमहाराज्यसुखासने ।। १६ ।।

सर्वाम्नायसमाराध्ये सर्वासिद्धान्तगोचरे ।
महाकारुण्यकलिते समुद्धृतचराचरे ।। १७ ।।

आसुरानीकसंतप्तधरणीतापमोचिके ।
अखण्डधारपीयूषरसवर्षाविधायिके ।। १८ ।।

महोष्णेऽतिमहोष्णेभ्यः शीतलेभ्योतिशीतले ।
इन्दिरामन्दिरनिभे चन्द्रचन्दनचर्चिते ।। १९ ।।

संसारार्णवनिर्मग्नसमुद्धरणपण्डिते ।
तरणीरमणीयाभे मणीन्द्रगणसुप्रभे ।। २० ।।

चकोरीकृतयोगीन्द्रमानसे चन्द्रनिर्मले ।
श्रेयःफलौघफलिते निष्फले घोरचेतसाम् ।। २१ ।।

आज्ञाकृतमहाराज्ये मुनिदेवेन्द्रवन्दिते ।
मन्दारपुष्पस्तबकपूजिते सौरभाञ्चिते ।। २२ ।।

भूभारक्लिष्टभोगीन्द्रपरमानन्ददायिके ।
तापत्रयपराभूतसज्जनौघसुखप्रदे ।। २३ ।।

सम्प्रदायगुरुज्ञातमाहात्म्ये भूरिगौरवे ।
रहस्ये सुरहस्येभ्यः सर्वशास्त्रौघगोपिते ।। २४ ।।

महागुह्ये ज्ञानगम्ये भक्तिमार्गप्रकाशिके ।
अनुकूलेस्वभक्तानामभक्तप्रतिकूलिके ।। २५ ।।

महामाधुर्यमधुरे मनोमोहनकारिके ।
जगतामीतिभीतिघ्ने प्रीतिरीतिसमर्चिते ।। २६ ।।

उपासनाशास्त्रसारप्रकाशितमहागुणे ।
निर्दोषपूर्णगुणिके स्वतन्त्रे नित्यचेतने ।। २७ ।।

आनन्दमात्ररूपे च परब्रह्मसुखास्पदे ।
सजातीयविजातीयस्वगतद्वैतवर्जिते ।। २८ ।।

चमत्कारविचित्रे च रूपचित्रविचित्रिते ।
दैत्यध्वान्तपराभूतिप्रवीणे प्रगुणास्पदे ।। २९ ।।

स्वशिरोभूषणीकृत्य विन्यस्य गजमूर्द्धनि ।
प्रणम्य जानकीकान्तं स्वप्रभुं पुरुषोत्तमम् ।। ३० ।।

प्रतस्थौ भरतः श्रीमान् शत्रुघ्नेन समन्वितः ।
आस्थाय स्यन्दनवरं पादुकालाभहर्षितः ॥ ३१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे पादुकावर्णनो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

वशिष्ठवामदेवादयैर्जाबालिप्रमुखैर्द्विजैः ।
मातृभिर्भ्रातृस्वजनैः सुहृद्भिश्चैव बन्धुभिः ॥ १ ॥

सहितो भरतश्चक्रे चित्रकूटं प्रदक्षिणम् ।
धातुभिर्मण्डितान्यस्य शृङ्गाणि सुमहान्ति सः ॥ २ ॥

वीक्षमाणो नदीर्दिव्याः शुभ्रा मन्दाकिनी मुखाः ।
गह्वराणिदरीर्दीर्घा निकुञ्जानि वनानि च ॥ ३ ॥

आधित्यका उपत्यकाश्च लताभूरुहभूषिताः ।
विकसत्कुसुमामोदप्रमोदितमधुवृताः ॥ ४ ॥

मधुस्रवैविटपिभिः पल्लवारुणकान्तिभिः ।
शीतलच्छायसुभगैर्वल्ली मण्डपमण्डितैः ॥ ५ ॥

स्रवन्निर्झरसंदोहशीतलानिलसेविताः ।
प्रोद्गारिचन्दनामोदवासिताः सुभगाः स्थलीः ॥ ६ ॥

तीर्थानि च मनोज्ञानि कोटितीर्थमयानि च ।
देवगन्धर्वसंदोहसेवितानि शुभानि च ॥ ७ ॥

अटमानः ससैन्योऽद्रिं मुमुदेभूपतेः सुतः ।
वाल्मीकेराश्रमं द्रष्ट्वा प्रजहर्ष महामतिः ॥ ८ ॥

अनुसूयापतेः पुण्यं स्थानं मन्दाकिनीतटे ।
समागम्य तरून् पश्यन्नुत्फुल्लकुसुमव्रजान् ॥ ९ ॥

गुञ्जद्भ्रमरसंधुष्टान् कोकिलाकाकलीयुतान् ।
अनङ्गदीपनं मन्त्रं पठतीः शुकसारिकाः ॥ १० ॥

पश्यन्नत्यन्तमुदितो न हातुं चकमे गिरिम् ।
स्वादूनि फलमूलानि भुञ्जानो हर्षसंयुतः ॥ ११ ॥

ततः प्रतस्थौ मतिमान् भारद्वाजाश्रमोन्मुखः ।
महत्या सेनया युक्तः कृतार्थो रामदर्शनात् ॥ १२ ॥

श्रीरामपादुकायुग्मसनाथीकृतमस्तकः ।
त्रिवेणीसंगमं प्राप्य भारद्वाजाश्रमं तथा ॥ १३ ॥

रथादवततारैष द्रष्टुं मुनिवरं पुनः ।
अथानमद् रघुश्रेष्ठो मुनेश्चरणयुग्मकम् ॥ १४ ॥

सत्कृत्याभिनतो विद्वान् मन्त्रसिद्धो मुनीश्वरः ।
उवाच तं महाराजकुमारं मारसुन्दरम् ॥ १५ ॥

अपि सिद्धाभिलाषोऽसि रामदर्शनतः सुधीः ।
प्रसन्नस्ते रघुपतिः सीतापतिरुदारधीः ॥ १६ ।

कच्चिन्मनोऽनुकूलं ते प्रजानां चानुकूलकम् ।
साधितं कार्यमार्येण धार्मिकेण मनोषिणा ॥ १७ ॥

इत्युक्तस्तेन भरतो भरद्वाजेन योगिना ।
उवाच तं महाभागो भक्तिश्रद्धासुसन्नतः ॥ १८ ॥

बहुधाभ्यर्थितो ब्रह्मन्नार्यः स गुरुभिर्मया ।
नोररीकृतवान् बद्धप्रतिज्ञो दृढनिश्चयः ॥ १९ ॥

यदूचे तद्वदिष्यामि भवते श्रूयतां मुने ।
पितुराज्ञां करिष्यामि प्रतिज्ञामात्मना कृता ॥ २० ॥

न हास्यामि महाबाहो उपायानां शतैरपि ।
चतुर्दशसमा यावद्वने वत्स्याम्य संशयः ॥ २१ ॥

वचः प्रतिवचश्चासीदावयोस्तत्र भूरिशः ।
आर्यस्य सम्प्रतिज्ञातं विनेतुं कोऽपि नाशकत् ॥ २२ ॥

देवताश्चापि गन्धर्वा मुनयश्च तपोधनाः ।
आर्यमेवान्ववर्त्तन्त स्वार्थसंसाधनोन्मुखाः ॥ २३ ॥

प्रायो दशग्रीवमुखा दुष्टचित्ता निशाचराः ।
जगद्विद्रावकास्तेन हन्तव्या इति निश्चितम् ॥ २४ ॥

एषा प्रवृत्तिरार्यस्य लक्ष्यते वनवासिनः ।
तदिष्टं सर्वजगतामुपहन्तुं क ईश्वरः ॥ २५ ॥

अराजकं च राष्ट्रं तन्नाहं पालयितुं क्षमः ।
अतो वशिष्ठो भगवान् पादुके समयाचत ॥ २६ ॥

ते अहं शिरसि न्यस्य कृतार्थो न्यवृतं ततः ।
करिष्येते महीराज्यं ते एव मम मूर्द्धगे ॥ २७ ॥

सोऽहमार्याभ्यनुज्ञातो गच्छामि किल कोसलाम् ।
गृहीत्वा पादुकायुग्ममार्यस्याखिलमङ्गलम् ॥ २८ ॥

भरतस्य वचः श्रुत्वा भरद्वाजोमहामुनिः ।
साधुवादं पुरस्कृत्य बभाषे मुदिताशयः ॥ २९ ॥

धन्योऽसि भरत श्रीमन् यस्य ते मतिरीदृशी ।
शुभं तव सदा भूयाद् धर्मिष्ठस्य महात्मनः ॥ ३० ॥

रघुवंशेति विमले जाता जातागुणाधिकाः ।
प्रीये तव चरित्रेण रामानुज महामते ॥ ३१ ॥

यथा रामस्तथा वीर भवन्तो भ्रातरस्त्रयः ।
येषां शुभवती वृद्धिर्विभर्ति भुवनं सदा ॥ ३२ ॥

मृतोऽपि ते पिता तात जीव[1]त्येव यशस्तनुः ।
यस्यास्ति त्वादृशः पुत्रो धार्मिकः कुलनन्दनः ॥ ३३ ॥

इत्युक्तो भरतस्तेन तमामन्त्र्य मुनीश्वरम् ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ययाचे गन्तुमुत्सुकः ॥ ३४ ॥

ततो मुनिवरं विद्वान् भक्त्या कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
प्रतस्थौ कोसलां वीरो मन्त्रिभिः परिवारितः ॥ ३५ ॥

पुनर्निववृते सेना गजाश्वरथपत्तिभिः ।
संकुला सर्वतो व्याप्ता छादयन्ती दिशोदश ॥ ३६ ॥

इभानां घोरचीत्कारैरश्वानां प्लवनक्रमैः ।
रथानां घर्घरारावैर्घोषयन्ती समंततः ॥ ३७ ॥

समुत्तीर्य यथापूर्वं गङ्गां तुङ्गोर्मिवेगिनीम् ।
उच्छलद् ग्राहमकरप्रकरैरतिभीषणाम् ॥ ३८ ॥

शृङ्गवेरपुरं प्राय भरतः सहितो बलैः ।
सम्मानितो गुहेनोच्चैरयोध्यां स ततोऽव्रजत् ॥ ३९ ॥

दृष्ट्वा दूरात्पुरीं तां तु शून्यप्रायजनालयाम् ।
आनन्दनादरहितां निरुत्साहजनावृताम् ॥ ४० ॥

अदर्शयत् सुमन्त्राय सूतायाभ्याशवर्त्तिने ।
पश्य सूत पुरीमेतामार्येण रहितां ततः ॥ ४१ ॥

सर्वतस्तिमिरस्तोमव्याप्तामिव कुहूनिशाम् ।
प्रोषितोत्साहविभवां परास्तमुखसम्पदम् ॥ ४२ ॥

---

१. जीवन्नेत्र—अयो०, मथु० ।

दीनां दरिद्रप्रतिमां गतमानामिवाबलाम् ।
राज्ञा राजकुमारेण वर्जितां लुण्ठितामिव ॥ ४३ ॥

नाहमेतां पुरीं सूत सम्प्रति द्रष्टुमुत्सहे ।
अन्यादृशीव मे भाति सर्वतः शोकसंवृता ॥ ४४ ॥

ततस्तां प्राविशद्वीरः पुरीं मलिनदर्शनाम् ।
बहलोलूकमार्जारव्यापृतप्रचुरालयाम् ॥ ४५ ॥

अस्तचन्द्रार्कतारौघां संवर्त्तरजनीमिव ।
प्रालेयपातनिहतां पद्मिनीमिव निष्प्रभाम् ॥ ४६ ॥

ग्रीष्मशुष्कोदकां पङ्कलुठद्बककुलावृताम् ।
सरसीमिव वित्रस्तयादःकुलसमाकुलाम् ॥ ४७ ॥

राहुग्रस्तमिवार्केन्दुमुख्यनक्षत्रमण्डलाम् ।
विशीर्णजीर्णपर्णौघव्याप्तामिव वनस्थलीम् ॥ ४८ ॥

प्रातर्वेलामिवोद्वाहरात्रेरम्बरकन्यकाम् ।
चन्द्रज्योत्स्नामिव प्रातश्चण्डांशुकरसंद्धताम् ॥ ४९ ॥

अदर्शनोचिताकारामुत्सवध्वनिर्वर्जिताम् ।
दैवेनैव हतां विश्वशून्यप्रायाममङ्गलाम् ॥ ५० ॥

चिराय मलिनाकारां मौकुरीं पट्टिकामिव ।
निर्मण्डनैर्निरालेपैर्निष्पानभोजनादरैः ॥ ५१ ॥

समस्तोत्साहरहितैर्जनैः समुपलक्षिताम् ।
मार्जनालेपचित्रादिरहितां रूपवर्जिताम् ॥ ५२ ॥

दर्शयंस्तां सुमन्त्राय प्रोवाच भरत शुचा ।
पश्य निःस्तिमितामेतां पुरीं प्रोत्साहवर्जिताम् ॥ ५३ ॥

न श्रूयते क्वचिन्नारीगीतवादित्रसम्भवः ।
न चोपलभ्यते क्वापि रूपं नेत्रसुखावहम् ॥ ५४ ॥

न च पूर्वमिवावान्ति सौरभाणि समंततः ।
कादम्बरीमदोन्मत्ताः प्रतिकर्मसमुज्ज्वलाः ॥ ५५ ॥

वेश्याजना न राजन्ते पुरेव प्रमुदान्विताः ।
न संचरन्ति वेतण्डा मदमत्ताः समंततः ॥ ५६ ॥

न च संश्रूयते ह्लेषा हयानां सुमनोहरा ।
इत्युक्त्वा प्राविशद् वीरस्तत्पितुर्भवनोत्तमम् ॥ ५७ ॥

विलोक्य भरतो गृहं दशरथेन रामेण च
श्रिया च रहितं तदाध्युषितमाच काङ्क्षेन सः ।
विवर्ण इव दुर्मनाः परमशोकचिन्ताकुलो
वभूव कुलमण्डनः किमपि चेतसा व्याकुलः ।। ५८ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे भरतपुरप्रवेशो नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४५ ।।

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अयोध्यायां प्रविन्यस्य मातृः शोकनिपीडिताः ।
स्वयमुद्विग्नहृदयो वशिष्ठादीनुवाच सः ।। १ ।।

नाहमत्र निवत्स्यामि शून्यप्रायां पुरीं मम ।
राज्ञा च रामचन्द्रेण लक्ष्मणेन च सीतया ।। २ ।।

रहितं राजभवनं न भाति किमपीह मे ।
अतोऽह मधिवत्स्यामि नन्दिग्रामं मनोरमम् ।। ३ ।।

युक्तं सुखितगोपेन व्रजवासिजनैस्तथा ।
श्रीमन्माङ्गल्यकामुख्यव्रजदारजनाकुलम् ।। ४ ।।

दधिमन्थनकालीनगोपीतंगीतमञ्जुलम् ।
नैचिकीचयसंवीतं महावृषनिनादितम् ।। ५ ।।

श्रीरामस्य पुरा स्थानं गोपलीलाविलासिनः ।
नित्योत्सवं नित्यसुखं नित्यमाङ्गल्य मण्डितम् ।। ६ ।।

तत्राहं निवसन्नार्यपादुकार्चनतत्परः ।
विनोदयिष्य आत्मानं गोपालैः सुखिताहिभिः ।। ७ ।।

अन्यथेदं महद्दुःखं मया सोढुं न शक्यते ।
तत्र स्थितो विनेष्यामि कथंचित्कष्टवासरान् ।। ८ ।।

तमब्रुवंस्ततो वृद्धा वशिष्ठाद्याश्च मन्त्रिणः ।
यदुक्तं भवता वीर तद्युक्तमिति गम्यते ।। ९ ।।

भ्रातृवात्सल्यसदृशमुपपन्नमिदं त्वयि।
सर्वैरनुमतं तात यत्त्वया मनसा मतम् ॥ १० ॥

एवमुक्ते तु भरतः सर्वानामन्त्र्य मन्त्रिणः।
सुमन्त्रमब्रवीत्सूत रथं मे योजयेति सः ॥ ११ ॥

यथानुपूर्वं सकला मातृश्चैव गुरूस्तथा।
अभिवाद्य महाबाहुरारुरोह रथोत्तमम् ॥ १२ ॥

शत्रुघ्नसहितो वीरः सहमन्त्रिपुरोहितः।
वशिष्ठाद्यैर्द्विजश्रेष्ठैः प्राङ्मुखैरग्रतः स्थितैः ॥ १३ ॥

सूच्यमानपथः श्रीमांश्चतुरङ्गबलान्वितः।
पुरवासिजनैः श्रेष्ठैः पृष्ठतोऽनुगतस्तथा ॥ १४ ॥

श्रीरामपादुकायुग्मसमुद्भासितमस्तकः।
नन्दिग्राम ययौ रम्यं पुण्यारण्यनिषेवितम् ॥ १५ ॥

सुखिताद्यैः स गोपालैर्दूरादेवातिमानितः।
वन्दितः पूजितश्चैव दधिकुम्भैः सुमङ्गलैः ॥ १६ ॥

तैः संगम्य महास्नेहवश्यैर्गोपालराजकैः।
उवास परमप्रीतो नन्दिग्रामे मनोरमे ॥ १७ ॥

सोऽब्रवीन्मन्त्रिणः सर्वान् वशिष्ठाद्यान् द्विजोत्तमान्।
इदं सुविपुलं राज्यं दत्वा मे रामचन्द्रमाः ॥ १८ ॥

अरण्यं प्राविशद् घोरं सीता सौमित्रिसंगतः।
क्षेमार्थंप्रददौस्वीये पादुके रत्नमण्डिते ॥ १९ ॥

एतयोराज्ञया भूमिं पालयिष्ये सुनिर्भयः।
अनयोरास्थितं राज्यं रामपादुकयोर्ध्रुवम् ॥ २० ॥

रामस्यागमनं यावत् करिष्ये राज्यशासनम्।
आयाते तु प्रभौ रामे कृतराज्याभिषेचने ॥ २१ ॥

अयोध्यायां गमिष्यामि इत्थं मे व्रतमाहितम्।
इत्युक्त्वा सोऽवसद्वीरो नन्दिग्रामे महाव्रजे ॥ २२ ॥

गोपालैर्गोपिकाभिश्च शुभा लीलाः प्रभोः स्मरन्।
बिभ्रज्जटावल्कलादींस्तापसव्रतवेषभृत् ॥ २३ ॥

ससैन्यो न्यवसत्तत्र व्रजं चानुपमर्दयन्।
श्रीरामागमनाकाङ्क्षी पादुकाज्ञापरायणः ॥ २४ ॥

स प्रमोदवने तत्र योगपीठे महोत्तमे।
महासिंहासनवरे तस्य ते पादुके न्यधात् ॥ २५ ॥

तयोरुपरि स छत्रं बालव्यजनमेव च ।
धारयामास भरतो रामभक्तिरसाञ्चितः ।। २६ ।।

रञ्जयन् प्रकृतीः सर्वाः पूजयन् रामपादुके ।
गायंल्लीलागुणग्रामं रामस्य रसनिर्भरम् ।। २७ ।।

कालं चिक्षेप भरतो भ्रातुरागमसस्पृहः ।
विरहाक्तैर्व्रजजनैः सहितो विरहातुरः ।। २८ ।।

इदमधिकपवित्रं पादुकायुग्मदानं दशरथ सुतयोर्यः सादरं संश्रृणोति ।
स भवात कृतकृत्यो रामभक्ति प्रसादादुपचितधनधान्यः श्रीयशःक्षेमयुक्तः ।। २९ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे नन्दिग्राम-गमनो नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४६ ।।

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

रामस्य पादुकायुग्मे यावद्राज्यं प्रशासति ।
न भयं नेतयः काश्चित्प्रजानां न शुचो रुजः ।। १ ।।

न दारिद्रं न दौर्भाग्यं न मृत्युर्नाशुभाधियः ।
न मालिन्यं न पापोत्थं दुःखं नापि धनक्षयः ।। २ ।।

नापदो दौर्मनस्यं न नोद्वेगो न च बन्ध्यता ।
क्वचिदप्यभवल्लोके कोसलायां विशेषतः ।। ३ ।।

यद्येन याचितं सम्यक्[1] तत्तस्मै प्रतिपादितम् ।
पादुकाभ्यां प्रसादेन नालभ्यं विद्यते क्वचित् ।। ४ ।।

परचक्रप्रशमनं ताभ्यां सम्यक् कृतं भुवि ।
शशास विपुलं राज्यं पादुकायुगलं सदा ।। ५ ।।

इन्द्रादयः सुरास्तत्र कल्पवृक्षप्रसूनकैः ।
अवर्षन् यत्र निहितं पादुकायुगलं प्रभोः ।। ६ ।।

---

१. सम्पत्—अयो० ।

अवाद् वायुः सुखस्पर्शः सुगन्धिर्मन्दसुन्दरः ।
अष्टयोजनतस्तत्र यत्र ते निहिते शुभे ॥ ७ ॥

संदिह्यमाने विषये जनो निश्चेतुमागमत् ।
तस्य तेऽतिशुभामाज्ञामादिषातां नभोगिरा ॥ ८ ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु यच्च येनाभियाचितम् ।
तत्तस्मै प्रददावार्यपादुकायुग्ममुत्तमम् ॥ ९ ॥

द्वयोर्विवदतोर्मध्ये एकश्चेहानृतं वदेत् ।
श्रीरामपादुकाभ्याशे ध्रुवं तस्य पराजयः ॥ १० ॥

स्वभासा भूरिमार्त्तण्डभानुमत्या विशुद्धया ।
भुवनं व्याप्य सकलं तस्थतुः पादुके प्रभोः ॥ ११ ॥

त एव गुरुरूपेण मन्त्रतन्त्रप्रकाशिके ।
काले तस्मिन्नवर्त्तेतां महावैभवभूषिते ॥ १२ ॥

भरतः प्रातरुत्थाय कृतशौचो विधानतः ।
निमज्ज्य सारवेवारिण्याप्लुतः शुचिविग्रहः ॥ १३ ॥

उपास्त पादुकायुग्मं सर्वाभयवरप्रदम् ।
गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यकल्पनैः ॥ १४ ॥

तयोर्निवेदितं भोज्यमभुङ्क्त स्वयमादृतः ।
माल्यालङ्कारवस्त्रादि बभार वपुषा स्वयम् ॥ १५ ॥

एवं दिने दिने विद्वान् विधिवत् पादुके प्रभोः ।
उपासीनः पञ्चकालमवर्त्तत सुखान्वितः ॥ १६ ॥

रामस्य शैशवी लीलाः कैशोरीर्व्रजभूमिगाः ।
अगायत् सुखितावासैर्गोपैः सह मुदान्वितः ॥ १७ ॥

व्रजस्त्रीणां मनःप्रेम वीक्षमाणोऽतिवृद्धिमत् ।
दिने दिने सुखस्तोममवहत्सोऽतिविह्वलः ॥ १८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे पादुकाराज्ये सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

कदाचित्कुरुपाञ्चालमगधेषु निरन्तरम् ।
अतिवृष्टिरभूद्घोरा सर्वप्राणिभयंकरी ॥ १ ॥

न्युप्तानि दिव्यक्षेत्रेषु वीजानि हलिकैस्तदा ।
किंचित्प्ररुह्य धरणौ सीदन्ति स्म जलाप्लुतौ ॥ २ ॥

न दृश्यते स्म दिवसो दिननाथे तिरोहिते ।
घनेषु घर्घरारावभीषणेषु समंततः ॥ ३ ॥

वर्षत्सु वारिधाराभिरखण्डाभिर्दिवानिशम् ।
चकम्पिरे जनाः सर्वे शीतार्त्ताः शरणार्थिनः ॥ ४ ॥

जनाः खगा मृगा गावो वातवृष्टिप्रवेपिताः ।
निरन्तरासारपातैरुन्मेषं नैव दध्रिरे ॥ ५ ॥

ऊचिरे केऽपि मनुजा हा हा रामो वनं गतः ।
योऽस्मान् रक्षेदीतिभीतेरनुजौ किं करिष्यतः ॥ ६ ॥

हंहो रघुकुलेज्येष्ठ एतावत्पृथिवीपतिः ।
इदानीं त्वन्यथाजाते को न स्त्राता भवेदिह ॥ ७ ॥

दायादं ज्येष्ठमुत्सृज्य दध्रेदशरथोऽनुजे ।
राज्यं कुलक्रमायातमिति बुद्धिविपर्ययः ॥ ८ ॥

अनीतिरेषा सर्वाणि भूतान्युन्मूलयिष्यति ।
किं कुर्मः किं प्रतिब्रूमः कं यामः शरणं वयम् ॥ ९ ॥

मान्धाता सगरश्चैव पृथुरिक्ष्वाकुरेव च ।
भगीरथोऽथ नहुषो ययातिर्भगवान्मनुः ॥ १० ॥

तेषामिदं महद्राज्यं राज्ञां धर्मयशोभृताम् ।
दिलीपरघुमुख्यानां नष्टं दशरथेन किम् ॥ ११ ॥

यद्गुणाढ्यं सुतं राममतिवर्त्य स्त्रियो गिरा ।
कनिष्ठायातदर्हाय भरताय न्यवेदयत् ॥ १२ ॥

तस्येदं कर्मणः प्राप्तं फलमुग्रं प्रजान्तकृत् ।
विशीर्णानीव लोकानां हृदयानि महीतले ॥ १३ ॥

गतो यदवधिप्रायो वनं रामो महायशाः ।
चौरद् रक्षेद् भयाद् रक्षेद् रक्षेद् यश्चेतिभीतितः ॥ १४ ॥

परेभ्यः सततं रक्षेदापद्भ्यश्च निजाः प्रजाः ।
स एव राजाभ्यधिकं माननीयः सतामिह ॥ १५ ॥

स राम एव भुवने नास्त्यन्यः क्षत्रवंशभूः ।
तस्मिन् विप्रोषितेऽरण्यमनाथाः स्म न संशयः ॥ १६ ॥

क्व स कैकेयिकासूनुर्यस्मै राज्यमयाचत ।
अनादृत्येश्वरं रामं कैकेयी भर्तृसन्निधौ ॥ १७ ॥

किं न रक्षति भूतानि भरतो राज्यसंस्थितः ।
सुलभः खलु भोगोऽस्य कठिनं लोकपावनम् ॥ १८ ॥

इति जल्पत्सु लोकेषु चित्रस्तेष्वतिबृष्टितः ।
प्रजाः पौराश्च ये वृद्धास्तेऽन्वयुर्भरतं प्रति ॥ १९ ॥

हाहाशब्दमुखाः सर्वे रक्ष रक्षेति भाषिणः ।
तेषां मध्यंगताः केचिद्वर्षीयांसो बभाषिरे ॥ २० ॥

त्वं नो राजा राजपुत्र देशानां रक्षकस्तथा ।
त्राता भवादद्य दुर्वृष्टेर्निजवीर्यं प्रदर्शय ॥ २१ ॥

तानुवाच स धर्मात्मा भरतस्त्रपयान्वितः ।
नाहं राजास्मि वो वृद्धाः श्रीरामे वनवासिनि ॥ २२ ॥

तस्येमे पादुके दिव्ये कुर्वाते राज्यशासनम् ।
एतयोरेव विज्ञाप्यं यदर्यार्तिर्भवतामसौ ॥ २३ ॥

हरिष्येते इमे शश्वद्भवतामार्त्तिमुद्गताम् ।
ये ममापि शरण्ये स्तस्तद्वियोगमहापदि ॥ २४ ॥

एवमुक्तास्तु ते लोका वृद्धा वैभववेदिनः ।
रामोऽयमिति विज्ञाय तुष्टुवुः पादुकाद्वयम् ॥ २५ ॥

जय धीर धर्मधारणधुरीण जय कामपूरणैकप्रवीण ।
जय धरणिभारभञ्जनचरित्र जय परमरुचिरगुणगणविचित्र ॥ २६ ॥

जय निगमपथावनबद्धकक्ष जय दितिजनिखिलदैवतविपक्ष ।
जय विविधयज्ञवर्त्तनसुवृत्त जय नीतिपाल दुर्नयनिवृत्त ॥ २७ ॥

जय साधुवादनादितदिगन्त जय विशदयशोराशिभिरनन्त ।
जय लोकवृत्तशोधनसुशील जय दुर्विभाव्यतरभव्यलील ॥ २८ ॥

जय परमपुरुष लक्षणललाम जय देवदनुजमनुजाभिराम ।
जय रमारमणिरमणीयरूप जय निखिललोकरमणानुरूप ॥ २९ ॥

जय दलितदुरितद्रारिद्र्यदाव जय मञ्जुमहिममहनीयभाव ।
जय कोटिरत्नवर्षणपयोद जय निहितनिखिल नरनयनमोद ॥ ३० ॥

जय विप्रधेनुपालनसुवीर जय महिमगरिममधुरिमगभीर ।
जय समरधनुर्धरणैकधीर जय शत्रुमेघमण्डलसमीर ॥ ३१ ॥

जय पूतनासुपानप्रचण्ड जय कुटिलविकटरिपुहृत्यखण्ड ।
जय शमितविकृतवात्यानुभाव जय शापविटपिकृतमुक्तभाव ॥ ३२ ॥

जय खगमृगाहिखण्डनसखेल जय दावदहननाशनसहेल ।
जय चण्डवृष्टिशमनातपत्र जय दुःखदलनधतजैत्रपत्र ॥ ३३ ॥

जय सुखितगोपसुखदानदक्ष माङ्गल्यकातिवात्सल्यरक्ष ।
जय गोपदारमोहनमनोज जय लोलललितलोचनसरोज ॥ ३४ ॥

जय राम रासमण्डलसुवेश जयदण्डकस्यमुनिमोहनेश ।
जय कलितललितलीलाविशेष सहजामुखेन्दुरसनिर्निमेष ॥ ३५ ॥

जय कोसलेन्द्रतनयप्रकाण्ड जय गाधिसूनुमखरक्षकाण्ड ।
जय ताडकादिवधसावधान जय सुजनगीतपुण्यावदान ॥ ३६ ॥

जय कलितभर्गकोदण्डभङ्ग जय जनितजनकतनयानुषङ्ग ।
जय जामदग्न्यजयकेलिकार जय पूर्णगुणकपुरुपावतार ॥ ३७ ॥

जय गुण समूहसर्वातिरेक जयतातरचितराज्याभिषेक ।
जय सत्यवचनहितमुक्तभोग जय गुरुवितीर्णनिजविप्रयोग ॥ ३८ ॥

जय धर्मसेतुरक्षणसमर्थ जय सर्वलोकपूरितपुमर्थ ।
जय जातभक्तदुःखावसाय जय नित्यसकलसज्जनसहाय ॥ ३९ ॥

जय देवहंसकुलकमलहंस रघुवंशसरोवरराजहंस ।
नरपाल कृपालय पालयेति दीनो भवन्तमिह शरणमेति ॥ ४० ॥

जय राम राम भुवनाभिराम जय राम राम खलकुलविराम ।
जय राम राम रसनाललाम जय राम राम रमणीयधाम ॥ ४१ ॥

रटतामभीक्ष्णमिति रामनाम तव सर्वकामपरिपूर्त्तिधाम ।
न भवे भवन्ति विपदो निकाममिति संविभाव्य शरणं प्रयाम ॥ ४२ ॥

कमनीयतागुणनिकेतनस्य परिभूतकोटिझषकेतनस्य ।
घनतापतप्तजनताघनस्य तव राम नाम शरणं जनस्य ॥ ४३ ॥

रजनीशकोटिमुखसौभगाय भजनीयचारुपदमङ्कजाय ।
अवते जगन्तिखलदुर्लभाय भवते नमोऽस्तु रघुवल्लभाय ॥ ४४ ॥

कलयन्ति ये न तव रामनाम दलयन्ति ते कथमघौघदाम ।
इति ते वयं निखिलशर्मधाम मनसाभिराम चरणं भजाम ॥ ४५ ॥

इति संस्तुवतां तेषां भरतस्य पुरः सताम् ।
वर्षीयसां प्रजासौख्यकामानां विदुषां नृणाम् ॥ ४६ ॥

आकाशादभवद् वाणी न भेतव्यमिति द्रुतम् ।
ततस्तेषामभूच्चित्रं सर्वतः स्तिमितात्मनाम् ॥ ४७ ॥

अतिवृष्टिरभूच्छान्ता वातवेगो न्यवर्त्तत ।
जलाप्लुतान्यपि परं बीजानि प्रारुहन् भुवि ॥ ४८ ॥

धान्यौषधिसमृद्धानि क्षेत्राणि धरणीतले ।
फलितान्यभवन् सद्यः पूर्वतोऽतिविलक्षणम् ॥ ४९ ॥

आकरेषु च रत्नानि पर्यदृश्यन्त भूरिशः ।
गिरयो धातुसम्भारैर्व्यराजन्त समंततः ॥ ५० ॥

अफलाः फलवत्यश्च फलिन्यो मेदिनी तले ।
महौषध्यो व्यशोभन्त पादुकाराज्यशासनात् ॥ ५१ ॥

श्रीरामपादुकायुग्मप्रभावाद्धरणीतले ।
उद्वेगदा मनुष्याणामतिवृष्टिरशाम्यत ॥ ५२ ॥

य एतत्पठतेमर्त्यः श्रीरामस्तोत्रमुत्तमम् ।
अतिवृष्टिप्रशमनं वृद्धविप्रौघभाषितम् ॥ ५३ ॥

तस्यार्थसिद्धिः सततमदूरेण करस्थिता ।
यं यमभ्यर्थयेत्कामं तं तमेवालमाप्नुयात् ॥ ५४ ॥

रामस्य पादुकायुग्मं भरताद्यैरुपासितम् ।
चिन्तितं तत्क्षणादेव भक्तानां दुरितापहम् ॥ ५५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे पादुकाराज्येऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

●

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

एकदा रामचन्द्रस्य पादुकाराज्यशासने ।
अनावृष्टिरभूद् घोरा सर्वप्राणिभयंकरी ॥ १ ॥

प्रत्यायनाय लोकानां स्वानुभावस्यभूयसः ।
शुभोरेवेच्छया शश्वल्लोकानुग्रहकारिणः ॥ २ ॥

तदा प्रचण्डमार्त्तण्डकरसन्तापिता मही ।
कृषीबलैरुप्तबीजा[1] प्रशुष्यततरां शनैः ॥ ३ ॥

ग्रहैरपि प्रातिकूल्यं तस्मिन्काले़ऽवलमितम् ।
रसेभ्यो दूरगः सूर्यस्तताप भुवनं करैः ॥ ४ ॥

भौमो रथाग्रणीर्भानोरभूद्वृष्ट्यवरोधकः ।
धान्यानां भवने मन्द उदवेजयत प्रजाः ॥ ५ ॥

रोहिणी द्वीपगा सिन्धोर्वारिदान् पर्यरुन्धत ।
इत्येवं भीतिरुत्पन्ना प्रजानामन्नलोपतः ॥ ६ ॥

अनावृष्टिकरो योगः सुतरामुदवेजयत् ।
उप्तापि प्लुष्ट बीजा भूर्मानवान्ममभीषयत् ॥ ७ ॥

तृणाभावकृते दुःखे पशवो भ्रान्तचेतसः ।
न कंचिच्छरणं प्रापुः पीड्यमानाः क्षुधा मुहुः ॥ ८ ॥

तदा प्रजाश्च पौराश्च जना जानपदा भृशम् ।
भरतं भुवि राजानं विज्ञाय शरणं ययुः ॥ ९ ॥

भूशायिनं ब्रह्मचर्यव्रततत्परमानसम् ।
जटाधरं भस्मलेपं चीवराजिनवाससम् ॥ १० ॥

कुशास्तरणमास्तीर्य तिष्ठन्तं वल्कलावृतम् ।
श्रीरामपादुकासेवायातयाममनामयम् ॥ ११ ॥

नन्दिग्रामकृतावासं व्रजवासिजनैः सह ।
सुखिताद्यैर्गोपवर्यैः शिक्षन्तं प्रेम तादृशम् ॥ १२ ॥

श्रीरामविरहोद्भूतमहावेदनयाकुलम् ।
ध्यायन्तं तस्य पादाब्जे चित्तनिर्वृतिकारके ॥ १३ ॥

प्रेमचर्यापरं दीनं व्रजदारगुरूत्तमम् ।
ध्यानमीलितनेत्राब्जं विलपन्तं कदाचन ॥ १४ ॥

उपेत्य सकला लोका इदमुच्चैर्बभाषिरे ।
उपोपविष्टाः परितो लघुज्येष्ठयथाक्रमम् ॥ १५ ॥

अयि भो रघुशार्दूल श्रीमद्दशरथात्मजः ।
रामानुज प्रजापाल त्वं नो राजासि सम्प्रति ॥ १६ ॥

राजा दशरथस्तुभ्यं राज्यमेतददाद् भुवः ।
कैकेय्या वचसा बद्धस्तव मातुर्विशेषतः ॥ १७ ॥

इदमेव तु विज्ञाय श्रीमान् रामो बनं गतः ।
न्याय्यं वा यदि वा न्याय्यं त्वयि राज्यं प्रतिष्ठितम् ॥ १८ ॥

---

१. जाप्यशु०–मथु० ।

प्रजापालनभारस्ते भुजयोरधुना स्थितः।
कथं न पश्यसि प्राज्ञ दुःखितास्ता निजाः प्रजाः॥ १९॥

दैवकं राजकं वापि राज्ञा विज्ञेयमात्मना।
तत्र प्रतिविधेयं च राजा जानाति संततम्॥ २०॥

नन्विदानीमनावृष्ट्या प्रजाः सम्पीडितास्तव।
पशूनां पक्षिणां चापि कालोऽयं समुपस्थितः॥ २१॥

तत्र प्रतिविधातव्यं त्वया भरत सत्वरम्।
अलौकिकेन ज्ञानेन सर्वं जानासि राघव॥ २२॥

मान्धातृसगराद्यास्ते पूर्वजा पितरः पुरा।
उपद्रवेभ्योऽनेकेभ्यः पर्यं रक्षन्त मेदिनीम्॥ २३॥

स इदानीं भरो राजंस्त्वयिसर्वः प्रतिष्ठितः।
कथं न लज्जसे वीक्ष्य प्रजाः स्वीयाः सुदुःखिताः॥ २४॥

कमन्यं शरणं याम त्वांविहाय महीपते।
त्वं पाहि स्वानुभावेन चतुर्वर्गनिधे प्रजाः॥ २५॥

इति ते दुःखमाख्यातमनावृष्टिसमुद्भवम्।
निवारय महाप्राज्ञ नियुक्तस्त्वं हि रक्षणे॥ २६॥

श्रुत्वा विलपतां नृणां वाक्यमेतत्स राघवः।
उवाच विमृशंश्चित्ते करुणालोललोचनः॥ २७॥

अतिवृष्टावपीयं मे चिन्तासीद् भवतां कृते।
तत्र प्रतिविधानं च प्रभुणैव विनिर्मितम्॥ २८॥

यो राजा स प्रजा रक्षेदापद्भ्य इति निश्चयः।
नाहं राजास्मि वः प्राज्ञाः कृपणो दीनमानसः॥ २९॥

सेवेऽहं प्रभुणा दत्तं पादुकायुग्ममुत्तमम्।
ते एव राज्यं कुरुतः प्रभौ तस्मिन् वनं गते॥ ३०॥

अपि स्तुते प्रभोरेते पादुके राज्यशासिके।
दुःखं वः प्रतिकर्त्तव्यमाभ्यामेव न संशयः॥ ३१॥

एते हि सर्वदुःखौघनिवारणविचक्षणे।
समर्थे प्रभुपादाब्जपादुके सर्वदेवते॥ ३२॥

कष्टं वः परिहर्तव्यं पादुकाभ्यां रमापतेः।
ययोः सर्वमहीराज्यमधुना सम्प्रतिष्ठितम्॥ ३३॥

इत्यादिष्टाः प्रजाः पौरा भरतेन महात्मना।
मुनीन् विप्रान् पुरस्कृत्य तुष्टुवू रामपादुके॥ ३४॥

प्रजाहितकृते सर्वे मुनयः शुद्धबुद्धयः ।
चतुर्वेदविदो विप्रा आनर्चुः पादुके गिरा ॥ ३५ ॥

लोकेऽवतीर्णः पुरुषः पुराणः सतां पतिर्यज्ञपतिर्महात्मा ।
स एव रामो विदितश्चरित्रैरलौकिकैर्मखरक्षादिकैश्च ॥ ३६ ॥

इमे युवां तस्य विभोः प्रतीते श्रीपादुके श्रीविभवादियुक्ते ।
अनन्यगत्या शरणं गतानां महापदं हरतं सर्ववन्द्ये ॥ ३७ ॥

यत्कर्मतन्त्रं प्रतिशाखं श्रुतीनां सुविस्तृतं भूरि फलोन्मुखं स्यात् ।
तद्वां समाराधनसाहचर्यं विनोषरे न्युप्तबीजायितं स्यात् ॥ ३८ ॥

यद्ज्ञानमज्ञानभिदे विशुद्धं सत्त्वोद्भवं योगकलानिमित्तम् ।
प्रवर्त्तते चित्तशुद्धिं विना नो सा चिच्छुद्धिर्युवयोः संस्मृतौ स्यात् ॥ ३९ ॥

याः सिद्धयोऽष्टौदश पञ्चसंख्या महोत्तमा मध्यमा न्यूनभावाः ।
तासां युवामेकपदे प्रसिद्धे उपास्येथे विबुधैरन्यथा किम् ॥ ४० ॥

भवे भवेद्यद्भविकं जनानामिहामुत्र प्रभवं भूरिभेदम् ।
तद्वां समाराधनकर्मजन्यं विज्ञायते सर्वदैवत्यरूपे ॥ ४१ ॥

ये पांशवो युवयोः संनिपृक्ताः सुगन्धयो महिमोदर्कवन्तः ।
कुर्वंस्तेषां संचयनं विरञ्चिर्ब्रह्माण्डकोटीर्विदधाति शक्तः ॥ ४२ ॥

हरिः सहस्रेण शिरोभिरात्मनो वहन्नमून् भक्तिविभिन्नचेताः ।
लब्धा महान्तं भगमात्तचक्रः संरक्षितुं भुवनानीश आसीत् ॥ ४३ ॥

हरः प्रेम्णा पुलकौघाञ्चिताङ्गो मुदा समादाय कृतादरोऽभूत् ।
भवन्श्मशानालय गो विरक्तो विमर्त्यङ्गे भसितोद्धूलनायः ॥ ४४ ॥

शेषोरमा सनकाद्या मुनीन्द्राः सुदुर्लभं युवयोस्तं परागम् ।
भक्तिश्रद्धावित्तचित्ताः कदाचिल्लब्धा तृणं मन्यते सर्वमन्यत् ॥ ४५ ॥

दुःखाद्भयाद्व्याधिपीडादिजातात्प्रजाः स्वीया रक्षतं शश्वदेव ।
दुर्दैवजाता हरतं चापदो नः सदानुकूले भवतं निजानाम् ॥ ४६ ॥

सुखस्य काष्ठा भक्तिस्य काष्ठा धर्मस्य काष्ठा ज्ञानवैराग्ययोश्च ।
कैवल्य सौख्यस्य परा च काष्ठा प्रतिष्ठिता युवयोरेव नित्यम् ॥ ४७ ॥

दारिद्रदुःखं तनुरोगदुःखं यच्चित्तदुःखं भवरोगदुःखम् ।
शश्वत्समस्तं हरतं युवां नो दुःखं प्रभूतं प्रभुपादसक्ते ॥ ४८ ॥

यत्तत्परं ब्रह्मशिवादिमृग्यं स्थानं गुणातीतमुदस्तकालम् ।
तस्मिन् महाधाम्नि कृतप्रतिष्ठे युवां रोचयेथे निगमैः स्तूयमाने ॥ ४९ ॥

यन्मूर्द्धि विद्योति सहस्रपत्रं पद्मं प्रपञ्चातिगमस्ति गुह्यम् ।
तत्रेन्दुबिम्बस्थितहंसपीठे युवां सदा योगिभिर्ध्येयरूपे ॥ ५० ॥

या कुण्डलीशक्तिरमोघवीर्या तत्त्वव्रजप्रसवित्री पराख्या।
सा प्राप्य तस्मिन् युवयोः पदं तत्सुधाभिरासिञ्चति योगिदेहम् ॥ ५१ ॥

लब्धा परं वीर्यमसौ त्रिशक्तिः सम्पर्कतो वां बहुसौख्यं भजन्ती।
गुणान् प्रसूयाखिलवीजभूतान् जगत्त्रयं सा क्रमतः प्रसूते ॥ ५२ ॥

संहृत्य चाशेषमिदं क्रमेण विश्वं स्वरूपं पुनराप्नुवाना।
सा वां पदं तत्प्रतिलभ्य नित्यं स्वस्था शेते तत्र समाप्तसर्गा ॥ ५३ ॥

इत्थं समस्तं जगदेतदुच्चैर्निरन्तरं सृजथो रक्षथश्च।
युवां सदा संहरथश्च शक्त्या विशिष्यवाचाभिरवाच्यरूपया ॥ ५४ ॥

युवां सदा विजयेथे स्वधाम्ना शुभाय लोकस्य चराचरस्य।
भक्तानुकूले निखिलासुरौघप्रणाशनाय प्रतिकूलरूपे ॥ ५५ ॥

युवां सदा यत्र कृतप्रतिष्ठे तदक्षरं धाम विमुक्तगम्यम्।
कालातिगं वेदविदो वदन्ति परेणधाम्ना युवयोः सुप्रकाशम् ॥ ५६ ॥

भक्तौघकल्पलतिके सुखकामधेनू कल्याणचिन्तितफलागमदिव्यरत्ने।
अज्ञानगादतिमिरक्षयकोटिभानुप्त्याश्रिते विपुलसन्मुनिभिर्नमस्ये ॥ ५७ ॥

इति स्तुतिपरायणे मुनिगणे सुवाक्पुष्पकैः
समर्च्चनपरेऽनिशं रघुवरस्य ते पादुके।
प्रसादसुमुखाकृती अभवतां सुसम्पत्प्रदे
समस्तवरदोत्तमे जगदतुर्गिरा व्योमगे ॥ ५८ ॥

अलं शोकेन वः प्राज्ञाः प्रभूतं वः सुखं भुविः।
भविष्यति कृतार्थाः स्थ मदाराधनकर्मणा ॥ ५९ ॥

इति श्रुत्वा गिरं विप्रा मुनयश्च प्रजाजनाः।
जयेति वचनं प्रोच्य बभूवुः सुखिताशयाः ॥ ६० ॥

प्रमोदवनसम्भूतैः सुपुष्पस्तबकोत्करैः।
पूजां प्रचक्रिरे सर्वे रामपादुकयोश्चिरम् ॥ ६१ ॥

ततस्ते पादुकायुग्ममानम्य श्रेयसां निधिम्।
सर्वे भरतमामन्त्र्य कृतार्थाः स्वगृहान् ययुः ॥ ६२ ॥

भरतोऽपि व्रजजनैः प्रेमवर्द्धिर्निरन्तरम्।
व्रजलीलाः प्रभोर्गायन्नारराधास्य पादुके ॥ ६३ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे पादुकाराज्ये एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।४९ ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ तत्पादुकायुग्मं सच्चिदानन्दविग्रहम् ।
कृपया सर्वलोकानां मेत्रीभूय ववर्षतुः ॥ १ ॥

अकस्माज्जलदस्तोम आवृत्य व्योममण्डलम् ।
जगर्ज सर्वलोकानां मनःप्रत्ययकारणम् ॥ २ ॥

ततोवृष्टिरभूद्दिव्या फलौषधिविवर्द्धिनी ।
प्लुष्टान्यपि महीपृष्ठे वीजानि प्रारुहन् क्षणात् ॥ ३ ॥

सरांसि सरितः कुल्याः क्षेत्राणि गिरिनिर्झराः ।
दिव्यमेघजलैः सद्य आप्लुताः पुपुषुः श्रियम् ॥ ४ ॥

पादपाश्चैव वल्लर्य ओषध्यो गुल्मजातयः ।
फलपुष्पप्रभूतश्रीसंछन्ता रेजिरेतराम् ॥ ५ ॥

क्षेत्राणि च निराशानां कृषकाणामकालजाः ।
समृद्धीः फलपुष्पाणां दध्निरे सुखकारिणीः ॥ ६ ॥

फलौषधिभराक्रान्ता मेदिनी सर्वकामधुक् ।
चकार सर्वलोकानां चेतोनयनसम्मुदम् ॥ ७ ॥

येषु क्षेत्रेषु बीजानि दग्धानि तपनातपैः ।
तेष्वेव द्विगुणा सम्पद्वीजानां पर्यदृश्यत ॥ ८ ॥

सर्वतो धान्यसम्पत्तिर्भव्याऽसीदद्भुतोत्तमा ।
शिलातलेष्वपि तदा बीजरोहो व्यदृश्यत ॥ ९ ॥

अनुप्तान्यपि चोप्तानि क्षेत्राणि फलवृद्धिभिः ।
महतीं सम्पदं बभ्रुर्दिव्यवृष्टिसमुद्भवाम् ॥ १० ॥

किमेतदद्भुतं तस्मिन् प्रसन्ने पादुकाद्वये ।
रामस्य सर्वकामानां श्रेयसामभिवर्षके ॥ ११ ॥

प्रसन्ने पादुकायुग्मे रामस्य परमात्मनः ।
किं दुर्ग्रहाः प्रकुर्वन्ति नृणां भक्तिमतां भुवि ॥ १२ ॥

ईतयो भीतयः सर्वा व्याधयः परमाधयः ।
सद्यः एव निवर्त्तन्ते प्रसन्ने पादुकाद्वये ॥ १३ ॥

यैरर्चितं रघुवरस्य महानुभावं
सच्चित्सुखैकनिधिपादुकयोर्युगं तत् ।
तेषां भवन्तिधनधान्यसमृद्धियोगा
धर्मे च निश्चलतरा मतिरुत्तमा स्यात् ॥ १४ ॥

येषां सदैव कुलदैवतमेष देवः
सर्वावतारनिधिरद्भुतसच्चरित्रः ।
रामो नितान्तरमणीयगुणाम्बुराशिस्ते
सम्मता दिविषदा मपि पूरुषाग्र्याः ॥ १५ ॥

कल्याणमन्दिरमनन्तसुखैकहेतु
मापत्समूहहरणाय निबद्धकक्षम् ।
श्रीरामचन्द्रमपहाय जनः कमन्यं
कालप्रभावकवलीकृतमाश्रयेत ॥ १६ ॥

ब्रह्मादिदैवतसुपूजितयोः प्रकामं
श्रीरामचन्द्रपदपादुकयोः प्रसादात् ।
केचिज्जनाः सुकृतिनो ननु कालमूर्द्ध्न
पादौ निधाय भुवनेपु जयन्ति नित्यम् ॥ १७ ॥

आसादितामरगणप्रचुर प्रतिष्ठं
तत्सर्वकामपरिपूरणकल्पवृक्षम् ।
अज्ञानपाशहरणं च रघुप्रवीर
श्रीपादुका युगलमात्मनि सेवनीयम् ॥ १८ ॥

रामे विहाय धरणीवलयैकराज्यं
प्राप्ते वनं जनकराजसुतानुजाभ्याम् ।
तत्पादुकायुगलमात्तनिजानुभावं
चक्रे प्रजा सुकुशलानि विपद्गरोऽपि ॥ १९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे पादुकाराज्ये पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

●

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

कदाचिद् यवनानीकैर्नेपालगिरिदेशगैः ।
अन्यैश्च दुर्जनैर्युत्वा कोसलाः पर्युपद्रुताः ॥ १ ॥
गजवाजिरथौद्येन पत्तीनां प्रकरेण च ।
आक्रान्ता धरणी सर्वा परचक्रेण भूयसा ॥ २ ॥
फलोन्मुखीं भुवं दृष्ट्वा मास्याश्वयुज संज्ञके ।
अत्ति क्षेत्राणि धान्यानां परचक्रं बलोद्धतम् ॥ ३ ॥

तत्प्रतीकारकार्याय रघूणां महती चमूः ।
आदिष्टा भरतेनोच्चैः सन्नद्धाभिमुखेऽभवत् ॥ ४ ॥

संरब्धास्ते महारोषा वीर्यवन्तो रणं महत् ।
आरेभिरे महीहेतोरन्योन्यं विजिगीषवः ॥ ५ ॥

यवनानीकमध्यस्थो महाकोल इति श्रुतः ।
विक्रमी वलवान् वीरो रुद्रदत्तवरोर्जितः ॥ ६ ॥

युयुधे रघुभिःसार्द्धं राक्षसौघसमावृतः ।
आवृत्य तस्थिवान् धीरः सर्वानुत्तरकोसलान् ॥ ७ ॥

तेन प्रयुध्यमानानां रघूणां सुमहद्बलम् ।
दधाव सर्वतो भूरि ढक्काघोषपुरःसरम् ॥ ८ ॥

ये निर्जिता दशरथेन पुरा विपक्षा
स्तेऽस्मिन् प्रमीतवति किंचन लब्धरन्ध्राः ।
तज्ज्यायसोस्तु सुतयोर्गतयोर्वनान्तं
तद्विप्रयोगहृतयोर्हि कनीयसोश्च ॥ ९ ॥

लब्धावकाशमुपजायपरास्तदानीं
ते शात्रवा यवनराजबलेन युत्वा ।
आतेनिरे विपदमुत्तरकोसलानां
सन्मन्त्रिभी रघुवरैरपि योध्यमानाः ॥ १० ॥

मासैकमुग्रमभवत्स्वपरप्रभूतचक्रप्रचार परिमर्दितधान्यराशि ।
सत्क्षेत्रपालकृषिकृत्प्रतिकूलभूतं युद्धं सुवैशसभृतां च रघूद्भटानाम् ॥ ११ ॥

अत्याकुलाः कृषिवलाः फलवृद्धिनष्ट्या दुष्टारिचक्रहयवारणचारखिन्नाः ।
हाहेति विक्लवगिरो हृतवर्षभोज्या वृद्धं मुनिं समुपजग्मुररुन्धतीशम् ॥ १२ ॥

ज्ञानैकधाम भगवान् सुकृती वशिष्ठो विज्ञाय पौरजनजानपादौघदुःखम् ।
आदाय तान् कृतशुचः स पुरोहिताग्र्य आसेदिवान् भरतमात्तवनस्थवृत्तिम् ॥ १३ ॥

तमायान्तं समालोक्य जनौघेन समावृतम् ।
मुनिं ज्ञाननिधिं दूराद् रघुवर्यः स्मिताननः ॥ १० ॥

उदतिष्ठत्सपाद्यार्घः स निवेद्यासनं मुनेः ।
अभ्यर्च्चितं सुखासीनमिदमाह विशांपतिः ॥ १५ ॥

अयि नाम पराक्रान्तान् विज्ञायोत्तरकोसलान् ।
प्रयाता राघवी सेना कच्चिन्न विजयोन्मुखी ॥ १६ ॥

भूशये वन्यवृत्तिस्थे मयि चार्ये वनं गते ।
सन्तीहोपद्रवाः शश्वत्प्रतीकार्यास्तु ते त्वया ॥ १७ ॥

भवान् पुरोहितोऽस्माकं प्राजापत्यस्तपोनिधिः ।
अतो निश्चिन्तहृदयास्तिष्ठामो दर्पिता वयम् ॥ १८ ॥

ईतयो भीतयश्चौरा आधयो व्याधयस्तथा ।
भवत्तपः प्रशमिता बाधन्ते नो कदापि नः ॥ १९ ॥

इत्येवं वदतस्तस्य भरतस्य महात्मनः ।
विधाय दृक्पथे दीनाः प्रजा मुनिरभाषत ॥ २० ॥

अपीमान् पश्यसिप्राज्ञ प्रजालोकान् सुपीडितान् ।
स्वचक्रपरचक्राभ्यां नित्यमुद्विग्नमानसान् ॥ २१ ॥

प्रबलो यवनाधीशो विपक्षैरितरैर्युतः ।
मासाद् रुजति ते देशान् सर्वानुत्तरकोसलान् ॥ २२ ॥

क्षेत्राणि नष्टप्रायाणि कृषकाणां समंततः ।
विलुप्ताराशयश्चैव धान्यानां वर्षभोजनाः ॥ २३ ॥

अत्याकुलाः प्रजा एतास्त्वामेव शरणार्थिनीः ।
उपयाताः प्रभो रक्ष स्ववीर्येण समावृतः ॥ २४ ॥

राजा नित्यं प्रजा रक्षेद् द्विजो रक्षेत्तपोबलम् ।
वैश्यो धनं सदा रक्षेच्छूद्रो रक्षति सेवनम् ॥ २५ ॥

उवाच भरतस्तं तु परिभाव्य समंततः ।
प्रेषितैव पुराब्रह्मन् रघूणां महती चमूः ॥ २६ ॥

तैरन्योन्यं रणे वृत्ते किन्नु म्लेच्छा निपातिताः ।
यन्मया यतनीयं स्यात्तन्मे त्वं ब्रूह्यतः परम् ॥ २७ ॥

नैव सेनामृते राज्ञामुपायः परनिर्जये ।
तस्मिन् सुविहितेचापि यदद्यशक्यं ततश्च किम् ॥ २८ ॥

अथोवाच मुनिश्रेष्ठो भरतं मन्त्रवित्तमः ।
सत्यं जेष्यन्ति रघवो रिपून् धर्मपरायणाः ॥ २९ ॥

यावदस्य बलं हन्युर्महाकोलस्य संयुगे ।
रुद्रदत्तबलस्तावदयं समनुमादयलि ॥ ३० ॥

हते त्वस्य बले घोरे रघुभिर्युद्धदुर्मदैः ।
परिक्षीणबलं सैष स्वयमेवोपशाम्यति ॥ ३१ ॥

किं नु तावत्प्रकृतयो वर्षभोग्यानि सर्वशः ।
नष्टानि वीक्ष्य धान्यानि स्वे स्वे मनसि बिभ्यति ॥ ३२ ॥

कार्तिकाश्वयुजोर्मासोः सर्वं वर्षं प्रतिष्ठितम् ।
तदैवोपप्लुते धान्यराशौ संवत्सरोवृथा ॥ ३३ ॥

स एष धान्यराशीनां प्रलयः समुपस्थितः ।
स्वचक्रपरचक्राभ्यां तेन चिन्ताकुलाः प्रजाः ॥ ३४ ॥

तत्प्रतीकारमालोच्य कुरुराजन् प्रयत्नतः ।
विज्ञाय प्रकृतीः सर्वा ईतिभीतिसमाकुलाः ॥ ३५ ॥

ऊचे तं भरतः श्रीमान् राजन्निति निजं मुनेः ।
सम्बोधनमुपाकर्ण्य विदूनहृदयोऽभवत् ॥ ३६ ॥

भगवन् सम्यगाख्याहि नाहं राजास्मि निश्चितम् ।
राजा श्रीराम एवास्य जगतोऽहं तु तद्गतिः ॥ ३७ ॥

एतत्तत्पादुकायुग्मं भवतैवाभियाचितम् ।
वहामि शिरसा तस्य समाराधनतत्परः ॥ ३८ ॥

आभ्यामेव पुरा किंचित्प्रजानां दुःखमुत्थितम् ।
निवारितं तथैवाद्य कृपया वारयिष्यतः ॥ ३९ ॥

इत्याश्रुत्य मुनिस्तस्य वाक्यं वाक्यविदुत्तमः ।
सस्मार सम्यग् ज्ञानेन पादुकायुगलं हृदा ॥ ४० ॥

कोटिसूर्यस्फुरद्धाम कोटिचन्द्रसुशीतलम् ।
कोटिकल्पानलोदीप्तं सर्वतः करुणामयम् ॥ ४१ ॥

तदक्षरमयं ब्रह्म सच्चिदानन्दमात्रकम् ।
अनाद्यनन्तमेवैकं परमे धाम्नि संस्थितम् ॥ ४२ ॥

समाधिसम्मीलितबाह्यवृत्तेस्तस्यान्तरे पादुकयोर्युगं तत् ।
समाविरासीत्कृतभूरिसौख्यं परात्मरूपेण चिदेकरूपम् ॥ ४३ ॥

अनुभूय परानन्दं मुनिः स उदतिष्ठत ।
पादुकाविषयध्यानसमाधेः सुप्रसन्नहृत् ॥ ४४ ॥

ततोऽर्वाक् प्रतिबुद्धात्मा प्राजापत्यो मुनीश्वरः ।
अस्तौषीत्परबुद्ध्या तत्पादुकायुगलं प्रभोः ॥ ४५ ॥

यतः शब्दब्रह्म प्रभवति पराख्यं परनभ
स्ततं विश्वोत्पत्तिस्थितिविलयमूलं सुविमलम् ।
तदुच्चैरानन्दार्णवमलमनन्ताक्षरमयं
प्रभोः पादद्वन्द्वं भवभयहरं चेतसि दधे ॥ ४६ ॥

गिरां वृत्तिः साक्षात्प्रभवति न यद्वेदितुमतो
भृशं गोणीभूय प्रचुरगुणसंदोहकृपया[1] ।
प्रवृत्ताचेतोऽपि प्रभवति न यद्गोचरयितु
मनामारूपं तत्तव चरणयुग्मं हृदि दधे ॥ ४७ ॥

---

१. कथया—मथु० ।

अमन्दानन्दानां यदनु पमसाम्राज्यभवनं
महैश्वर्यस्यैकं पदमखिलसौभाग्यसदनम् ।
प्रतिष्ठा सिद्धीनां सकलजनकल्याणजननं
जगद्बीजं वन्दद्यं प्रभुचरणयुग्मं हृदि दधे ॥ ४८ ॥

निखिलनिगमस्थानं मन्त्रर्द्धिमन्दिरमद्भुतं
भवभयहरं सच्चिद्रूपं मुदां परमं पदम् ।
यदखिलकलाकल्पं कल्याणकोटिविधायकं
तिमिरहरणं श्रीनाथस्य स्मरामि पदद्वयम् ॥ ४९ ॥

यस्मिन् नित्यं प्रसन्ने न किमपि जगति स्यादलभ्यं जनानां
यन्माया मोहयन्ती जगदखिलमदः सर्वतश्चावृणोति ।
यज्ज्ञानं जीवजातेर्जननमरणयोर्मोक्षणं तत्क्षणेन
ध्येयं तत्पादयुग्मं मनसि जनकजावल्लभस्याश्रयामि ॥ ५० ॥

तत्तत्त्वविस्मृतकरीर्बहलप्रमादा धिक्संपदो विपद एव परं प्रशस्याः ।
यासु प्रयाति हृदयं प्रभुपादयुग्मं ध्यानेन यद्वदधुना मम विस्मृतस्य ॥ ५१ ॥

ध्येयं ब्रह्मशिवादिभिः सुरवरैः स्वाभीष्टसम्प्राप्तये-
मेयं श्रौतवचःप्रमाणनिबहैः संवित्सहायेन यत् ।
कल्याणैकनिकेतनं जलधिजाशश्वद्विमृग्यं परं
तत्त्वं त्वत्पदपादुकायुगमहं श्रीराम बन्दे कदा ॥ ५२ ॥

कर्माणि यत्र निखिलानि समर्प्य सन्तो नैष्कर्म्यसिद्धिमतुलां कतिचिल्लभन्ते ।
तत्कर्मबन्धननिकृन्तनसाधुशीलं त्वत्पादुकायुगलमीश चिरं निषेवे ॥ ५३ ॥

इत्येवं ये स्तुवन्तीश पादुकायुगलं तव ।
तेषामशेषदुःखानि निवारयतरां प्रभो ॥ ५४ ॥

इत्यस्य तोष्टुवानस्य मुनेर्दिव्यार्थदर्शिनः ।
समगान्नाभसी वाणी श्रुत्योः श्रीपादुकोद्भवा ॥ ५५ ॥

अलं तापेन ते प्राज्ञ मा तप्यस्त्वं प्रजाकृते ।
पूर्वमेव मया तावद्दुःखं प्रतिकृतं नृणाम् ॥ ५६ ॥

यं यमिच्छसि योगीन्द्र तं तं काममवाप्नुहि ।
प्रसादान्मम भूतानां न विपद्भाविनीभवे ॥ ५७ ॥

एवं समाहितमना मुनिर्व्योम्या गिरा तदा ।
गन्धपुष्पादिभिर्भूयः सम्पूज्य प्रभुपादुके ॥ ५८ ॥

पुरोधाय प्रजाः सर्वा आमन्त्र्य भरतं तदा ।
कृतार्थः प्रत्ययोपेतः प्रहृष्टः संन्यवर्त्तत ॥ ५९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे पादुकाराज्ये वशिष्टकृतपादुकास्तवे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

●

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तस्मिन्नेव क्षणे तत्र परसैन्ये सुदुर्मदे ।
अकस्मादायुधमयी महावृष्टिरजायत ॥ १ ॥

नभसः पतमानानि शस्त्राण्यस्त्राणि भूरिशः ।
क्षणान्निर्दारणं चक्रुः परसैन्यस्य सत्वरम् ॥ २ ॥

खड्गैर्विदारिता योधा यवना सुमहोद्धताः ।
द्विफालीभूतवपुषो दृश्यन्ते स्मरणाङ्गणे ॥ ३ ॥

प्रचण्डानिलचक्राया काण्डवृष्टिः समंततः ।
अजायत जवात्तत्र महानिःस्वनपूर्वकम् ॥ ४ ॥

अर्द्धचन्द्राकृतिधरैर्मल्लैः प्रवलपातिभिः ।
निकृत्तकण्ठा यवनाः शेरते स्म महीतले ॥ ५ ॥

क्षुरप्रैश्चण्डनिर्घातैर्द्विधासंजातविग्रहाः ।
विलपन्तः खलास्तत्र प्राणान्मुमुचुरञ्जसा ॥ ६ ॥

वह्निज्वालामयैः काण्डैरकाण्डविनिपातिभिः ।
छिन्नभिन्नाः स्म धावन्ति शत्रूणां वाजिनो गजाः ॥ ७ ॥

छिन्नाश्चक्रनिपातेन भुशुण्डाः कारिणां रणे ।
मुञ्चन्ति स्म महोच्छ्वासान् भांकारध्वनिभीषणाः ॥ ८ ॥

शूलपातैर्निकृन्तानां नरवारणवाजिनाम् ।
शरीराणि व्यदृश्यन्ते पोथितानि महीतले ॥ ९ ॥

निपेतुरसयस्तत्र कुम्भदेशेषु दन्तिनाम् ।
शैलानामिव शृङ्गेषु कुलिशा व्योमदेशतः ॥ १० ॥

महाचक्रनिपातेन सहसैव विचूर्णितैः ।
रथैरातस्तरे भूमिर्विपर्यस्तनिपातितैः ॥ ११ ॥

गदापातविदीर्णानां मुहुर्निःश्वसतां भुवि ।
वपूंषि दुष्टयोधानां लुठन्ति स्म समंततः ॥ १२ ॥

प्रचण्डकरवालौघद्विधाभूतैरनेकशः ।
संस्तृता समरे तत्र मुण्डैरुण्डैश्च मेदिनी ॥ १३ ॥

दिव्यायुधानां नभसः पततां घोरनादिनाम् ।
निर्घातैरभवत्सेना राहुकेतुमयीव सा ॥ १४ ॥

महोल्कानां ज्वलन्तीनां विनिपातात्समं ततः ।
ज्वलन्ति ध्वजवस्त्राणि दृश्यन्ते रथमूर्द्धसु ॥ १५ ॥

धावतां गर्जमाननां गजानां शरवृष्टिषु ।
हयानां ह्लेषमाणानां शरणं नास किंचन ॥ १६ ॥

अकस्मात्परिजज्वाल कल्पान्तस्येव पावकः ।
तस्य ज्वालावलीलीढा विनेशुः परसैनिकाः ॥ १७ ॥

खड्शूलगदाचक्रभुशुण्डीपरिघादिभिः ।
राक्षसानीकमखिलं क्षणेन विनिपातितम् ॥ १८ ॥

हाहेति च प्रभाषन्तो धावमाना इतस्ततः ।
विनेशुर्यवनाःसर्वे वर्षायां पांसुभित्तिवत् ॥ ॥ १९ ॥

केचिद्वीर्यमदोद्रिक्ता गृहीतविविधायुधाः ।
अनालक्ष्य परांस्तत्र बभ्रमुर्वितथोधमाः ॥ २० ॥

केचिदाकस्मिकीं वृष्टिमायुधानां समंततः ।
समालोक्य सुवित्रेसुर्हताः स्म इति वादिनः ॥ २१ ॥

केचित्संनद्धकवचान्यस्त्राण्यादाय चोद्धताः ।
किमेतदिति तर्कन्तो विनेशुरसुरोद्भटाः ॥ २२ ॥

केचिद्दैवकृतं मत्वा कदनं घोरमात्मनः ।
इतो नैवं करिष्याम इत्याभाष्य विनेशिरे ॥ २३ ॥

नष्टेषु म्लेच्छराजस्य सैन्येषु सह नायकैः ।
मृते च राक्षसानीके शेषाः केचिद्विदुद्रुवुः ॥ २४ ॥

गृहीतवैशसाः केचिद्राजानः परपक्षगाः ।
भग्न संकल्पसैन्यौघा दुद्रुवुःसमराजिरात् ॥ २५ ॥

तेषां ध्वजेषु देहेषु रथेषु गजवाजिषु ।
रामनामाङ्किता एव निखाताः पत्रिणो रणे ॥ २६ ॥

ते वाचयित्वा रामस्य नाम पुंसेषु लेखितम् ।
ललज्जिरेतरां भूपा अनेवंकारिणः पुनः ॥ २७ ॥

नष्टनष्टेषु सैन्येषु परेषां सुप्रमादिनाम् ।
वितेनुर्दुन्दुभी घोषं रघूणां सैनिका जनाः ॥ २८ ॥

अकस्माद् दुर्दिनमिव प्रवातेन निवारितम् ।
वीक्ष्य राघवसैन्यस्था विस्मिता इवचाभवन् ॥ २९ ॥

ऊचिरे च किमाश्चर्यं राजेन्द्रस्य वनौकसः ।
तपते पादुकायुग्मं महीराज्यप्रशासने ॥ ३० ॥

महापदो निवर्त्तन्ते ययोः संस्मरणादपि।
तयोः प्रभोः पादुकयोः किं चित्रं स्वीयरक्षणम् ॥ ३१ ॥

परचक्रप्रमथनं निजचक्रप्रहर्षणम्।
श्रीपादुकाभ्यां विहितं यः पठेन्मानवोत्तमः ॥ ३२ ॥

आधयोव्याधयस्तस्य न भवन्ति कदाचन।
उपस्थितानि दुःखानि कृत्स्नशो यान्ति दूरतः ॥ ३३ ॥

कीर्तनीयमिदं पुण्यं प्रातरुत्थाय मानवैः।
वशिष्ठस्तवनं चैव परसैन्यविनाशनम् ॥ ३४ ॥

रामराजेन्द्रवर्यस्य पादुकाराज्यमुत्तमम्।
दुर्दैवभीतिशमनं भक्तानां सुखदायकम् ॥ ३५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे पादुकाराज्ये परसैन्यप्रमीलनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

●

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

कदाचित्कस्यचित्पुर्यां कृतवास्तोर्द्विजन्मनः।
गावश्चौरैर्नीयमाना नामोचयत कश्चन ॥ १ ॥

ततः स विप्रो भवनान्निष्क्रान्तो दुःखकर्षितः।
राजद्वारमुपागत्य विललाप कृतारवः ॥ २ ॥

हाहा दशरथो राजा क्व गतो धर्मपालनः।
यस्य राज्ये प्रजाः सर्वा दुर्भिक्षं नैव जज्ञिरे ॥ ३ ॥

न चौरभीतीर्नोवापि परचक्रभवां रुजम्।
नान्योन्यकलहक्लेशं नोत्पातान् दैवनिर्मितान् ॥ ४ ॥

स राजा पालयामास प्रजाः पुत्रानिवात्मनः।
तस्मिन् दिवं गतवति दुःखिताः स्म न संशयः ॥ ५ ॥

चतुर्ष्वपि सुतेष्वस्य हंत राज्यमराजकम्।
किं पुनः सम्प्रजातैस्तैर्ये न पान्ति निजाः प्रजाः ॥ ६ ॥

पितृपैतामहमिदं यैस्त्यक्तं राज्यमात्मनः।
का दुराशापुनस्तेषामन्यो राज्येऽभिषिच्यताम् ॥ ७ ॥

एको वनं गतः साध्वीं भार्यामादाय दैवतः ।
तमेवानुगतश्चान्यो दुःशकं लोकपालनम् ॥ ८ ॥

इतरो तद्वियोगेन ब्रह्मचर्यमुपाश्रितः ।
पुरीमपि परित्यज्य नन्दिग्रामेऽधितिष्ठति ॥ ९ ॥

व्रजावासैर्जनैर्ग्राम्यैः कुरुते ग्राम्यसंकथाम् ।
प्रजापालनमुत्सृज्य सामर्थ्यरहितो यथा ॥ १० ॥

तदन्योऽपि समुत्सृज्य प्रजानां पालनेधुरम् ।
निःशक्तिरिव संजातो हंत लोकस्य दुर्भगम् ॥ ११ ॥

कः पालयिष्यति भवं कश्चौराद् दण्डयिष्यति ।
रिपूणां सुमहद्राज्यं हन्त दैवेन किं कृतम् ॥ १२ ॥

सोऽहं चौरैर्हृतधनो विलपामि सुदुःखितः ।
न मे दुःखप्रतीकर्त्ता कश्चिदत्रोपलक्ष्यते ॥ १३ ॥

श्रुत्वा दुर्वचनं तस्य विप्रस्य रुदतो भृशम् ।
शत्रुघ्नो धनुरादाय निष्क्रान्तस्तस्कराध्वनि ॥ १४ ॥

तावत्ते तस्करारण्ये[1] कालयन्तो द्विजस्य गाः ।
पाशैर्निर्बध्य पुरुषैः कैश्चिद् दिव्यवपुर्धरैः ॥ १५ ॥

कारागारमनीयन्त गावो विप्रस्य मोचिताः ।
वत्सस्नेहस्नुतापीनाः स्वं स्वं स्थानमुपाययुः ॥ १६ ॥

तदुपश्रुत्य शत्रुघ्नोन्यवर्त्तत पुरीं प्रति ।
विसिस्मियेतरां चित्ते श्रुत्वा गावः प्रमोचिताः ॥ १७ ॥

तस्मै शुभाशिषो दातुं ब्राह्मणः समुपागमत् ।
केन ते मोचिता गाव इति पृष्टः ससम्भ्रमम् ॥ १८ ॥

स उवाच भवान् वीर गवां मोचयिता मम ।
पुत्रो दशरथस्यासि चिरं जीव शतं समाः ॥ १९ ॥

विस्मितो द्विजवर्यंतु स प्रणम्य व्यसर्जयत् ।
विनिवद्धांस्ततश्चौरानानयामास शत्रुहा ॥ २० ॥

ते पाशबद्धाः पुरतः शत्रुहन्तुरुपस्थिताः ।
तानापृच्छत शत्रुघ्नः केन बद्धाःस्थ तस्कराः ॥ २१ ॥

त ऊचिरे वचस्तस्य पुरस्ताच्छृण्वतां नृणाम् ।
पीताम्बरधराः केचित्पुरुषाः श्याममूर्त्तयः ॥ २२ ॥

चतुर्भुजाः स्फुरत्कर्णमकराकारकुण्डलाः ।
लसत्किरीटशिरसो वनमालाविभूषिताः ॥ २३ ॥

---

१. यह आर्ष पाठ है यहाँ 'तस्कराः अरण्ये' ऐसा पदच्छेद है ।

शङ्खचक्रगदापद्मधारिणः शान्तविग्रहाः ।
उत्फुल्लपद्मनयनास्तैर्गावः सम्प्रमोचिताः ॥ २४ ॥

निबध्य च दृढैः पाशैर्वयं कारागृहे कृताः ।
पुनर्नैवं विधास्यामः कोसलायां सतां नृणाम् ॥ २५ ॥

येषां संरक्षकः साक्षात्स्वयं देवो जनार्दनः ।
इति श्रुत्वा वचस्तेषां मोचयामास तांस्ततः ॥ २६ ॥

अहो एषां महद्भाग्यं यैर्दृष्टा रामपार्षदाः ।
नूनमेषा पुरी साक्षाद्वैकुण्ठस्यापि कारणम् ॥ २७ ॥

यत्रत्यानां नृणां देवः स्वयमेवाभिरक्षकः ।
अहो भाग्यमिहस्थानामाचाण्डालमपि स्फुटम् ॥ २८ ॥

वरमिह पशवोऽपि पक्षिणश्च स्फुटतर भाग्यदम्बकेन युक्ताः ।
अपि खलु महितोऽपि नेतरत्र क्षितिपतिरानतराजपूजिताङ्घ्रिः ॥ २९ ॥

चतुर्भुजा एव वसन्ति चात्र मृगाः खगा अप्यधमा मनुष्याः ।
अजस्त्ररिंगत्सरयूसमीरसम्पृक्तगात्राः सुखसिन्धुमग्नाः ॥ ३० ॥

त्राताऽत्र रामचन्द्र देव एव स्वयं रमासेवितपादपद्मः ।
ध्रुवं स्वलोके वसतां जनानामसाधनानामपि मुक्तिभाजाम् ॥ ३१ ॥

यान्यत्र साधनशतैर्विहितैर्विशुद्धे चित्ते निरस्तमलमोहमहाकषाये ।
अध्यात्मबोधपरिशीलनतो दुरापा सा मुक्तिरत्र वसतां पशुपक्षिणां स्यात् ॥३२॥

स एव रामचन्द्रो देव एष भ्रातास्ति नः कञ्जदलायताक्षः ।
रमापरा श्रीजनकात्मजैषा यस्याः कला लक्ष्मी एवमन्ये ॥ ३३ ॥

जज्ञौ न कैकेयसुतान तं प्रभुं स्वार्थे प्रमुग्धा विधिदुर्विपाकतः ।
या सेवनीयं सनकादिभिः सदा योगीश्वरैर्यापि तवत्यरण्यम् ॥ ३४ ॥

तत्पादुके एव समस्तमङ्गलश्रीधामनी ब्रह्मशिवादिपूजिते ।
शुभं विधत्तः सकलस्य संततं दयालुताभावनिकेतनेऽधुना ॥ ३५ ॥

कस्त्रायते तदन्य एतदखिलं दुर्दैवदीनं जग-
न्मानोपप्लवभीतिभीतिनिवहग्रस्तंनिरस्तं भगैः ।
तस्मात्त्वां परदैवतं परसुखैः पूर्णां परं पूरुषं
प्राप्तोऽस्मि द्रुतमात्मनैव[१] शरणं श्रीजानकीवल्लभम् ॥ ३६ ॥

त्वं गूढः स्वात्ममायापरिपिहितनिजानन्दमात्रस्वरूपः
कुर्वन्कर्माण्यनेकान्यतिशयसुखदान्यद्भुतान्यत्र लोके ।
सत्त्वोद्रेकादमन्दाभ्युदितपरमसंशुद्धबोधैश्च कैश्चि-
द्भक्तिश्रद्धासमेतैर्भवविरतिकृते नाथ विज्ञायसे त्वम् ॥ ३७ ॥

---

१. नैष–मथु०, अयोध्या० ।

चिकीर्षितं ते नरदेवसूनो को मानवो वेत्तुमिहार्हतीश ।
स्वमाययादेव निगूढलिङ्गस्त्वं लोकपुण्या विदधाति लीलाः ॥ ३८ ॥

धन्यः स एव भरतो रघुनाथ नित्यं यः सेवते तव पदद्वयपादुके ते ।
याभ्यामशेषजगतः सततं शुभानि नन्वक्रियन्त मृदिता विपदश्च सर्वाः ॥ ३९ ॥

धन्यं कुलं खलु रघोः पुरुषाप्रकाण्ड यत्राविरास[1]रामो ह्य खिलात्मभूतः ।
सर्वावतारजलधिः पुरुषोत्तमो यः पूर्णोऽक्षरादपि परः श्रुतिभिर्विमृग्यः ॥ ४० ॥

दृष्ट्वास्वरूपमिह सर्वविलक्षणं ते लोका भवन्ति चकिता इव विस्मयेन ।
न त्वां विदन्ति रघुवल्लभ तत्त्वतस्ते ब्रह्मादिदैवतगणैरपि गीतकीर्त्ते ॥ ४१ ॥

केचिद्वदन्ति तव काल इति स्वरूपं कर्मेति केऽपि विबुधा इतरे स्वभावम् ।
दैवं परे पुरुष इत्यपरे स्वमत्या को वेत्तुमर्हति परं पुरुषोत्तमं त्वाम् ॥ ४२ ॥

इत्यभिष्टूय शत्रुघ्नः परं पुरुषमादृतः ।
शिश्रिये पादुके तस्य भक्त्या भुवनमङ्गले ॥ ४३ ॥

आराधयानः प्रभुपादपादुके निवेद्य ताभ्यां फलपुष्पादिसर्वम् ।
अश्नन् स्वयं तत्परमप्रसादजश्रीचन्दनालिप्तललाटपट्टः ॥ ४४ ॥

कुर्वन् महाभागवतोत्तमोत्तमैः प्रसंगतः प्रेमगोष्ठीरनेकाः ।
शिक्षन्मुनः प्रेमचयं व्रजस्थैर्निनाय कालं व्रजभर्त्तुर्वियोगी ॥ ४५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे पादुका-राज्ये त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

•

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

कदाचिदसुरौ लोके प्रबलौ बाणरावणौ ।
रामपादुकयोस्तादृक् श्रुत्वा माहात्म्यमुत्तमम् ॥ १ ॥

अमर्षापूरितहृदौ तयोर्हरणकामुकौ ।
आजग्मतुर्योगपीठं निहिते यत्र ते उभे ॥ २ ॥

प्रपूज्य पञ्चकालं तु भरतो भक्तिमान् परम् ।
विधाय नृत्यगीतादि तयोः पुरत आदृतः ॥ ३ ॥

---

१. श्रीरामोऽखि०—मथु०, अयो० ।

यथाकालं महीपृष्ठे संस्तीर्याजिनमासनम् ।
सुष्वाप यामे तृतीये निशीथिन्याः समाहितः ॥ ४ ॥

प्रसुप्तं तमभिज्ञाय दुष्टौ तावसुरेश्वरौ ।
उपेयतुर्हर्त्तुकामौ पादुकापीठमुत्तमम् ॥ ५ ॥

तत्र विश्वक् तयोर्भासा भासितं सकलं तु तत् ।
योगपीठालयं वीक्ष्य विस्मयं ययतुः परम् ॥ ६ ॥

अथ तौ बलसंदृप्तौ हेलयैवेशपादुके ।
उद्दध्रतुर्योगपीठात्पदं नाचलतां तु ते ॥ ७ ॥

उद्धर्त्तुकामावसुरौ प्रयत्नं भूरि चक्रतुः ।
महासारगरिष्ठे ते वोढुं नाशकतां खलौ ॥ ८ ॥

हराचलं समुत्पाट्य हेलयैव बभार यः ।
स रावणोऽतिबलवान् वभूव वितथोद्यमः ॥ ९ ॥

यः . सहस्रभुजो बाणः समस्ताधिकसारवान् ।
स रामपादुके वोढुं नाशकत्त्रययाञ्चितः ॥ १० ॥

यावद्वीर्यबलोद्रिक्तप्रयत्नाहितदोर्युगौ ।
तौ वाणरावणौ तत्र ललज्जातेतरां हृदि ॥ ११ ॥

ततस्तो लज्जितौ भूत्वा बाहुवीर्यबलक्षयात् ।
स्वं स्वं स्थानं वीतदर्पौ यथागतमुपेयतुः ॥ १२ ॥

एवं ते भरताराध्ये श्रीरामपदपादुके ।
चक्राते परमं राज्यमेकच्छत्रं तदा भुवः ॥ १३ ॥

धरण्यां सागरान्तायां धर्मनीतिरवर्त्तत ।
खलाः प्रशमिता आसन् साधवो मुदिताशयाः ॥ १४ ॥

देवदानवगन्धर्वमनुष्या मुनिसत्तमाः ।
स्वे स्वे मनसि सर्वेऽपि प्रत्ययं लेभिरेतयोः ॥ १५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे पादुकाराज्ये वाणारावणपराजयो नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

●

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

कदाचिद्योगपीठस्यपादुकादर्शनोत्सुकः ।
सनत्कुमारो भगवांस्तत्रैव समुपागमत् ॥ १ ॥

यत्रास्ते भरतो वीरः पूजा ध्यानपरायणः ।
सुविश्वस्तमना नित्यमाराध्नन् पादुकाद्वयम् ॥ २ ॥

स तमागतमालक्ष्य दूरादेव रघूद्वहः ।
आदरेणाति जग्राह प्रश्रयस्निग्धमानसः ॥ ३ ॥

पाद्यार्घ्याचमनीयादि प्रतिपादय महात्मने ।
उवाच वदतां श्रेष्ठः पुत्रो दशरथस्य सः ॥ ४ ॥

सम्यगागतमाराध्यैः कृपया मादृशे जने ।
प्राप्ते सफलतामद्य चक्षुषी तव दर्शनात् ॥ ५ ॥

मादृशां दीनचित्तानां सदनुग्रहणं विभो ।
स वः स्वाभाविको धर्मः करुणार्णवचेतसाम् ॥ ६ ॥

इत्युक्तवति वीरेऽस्मिन् रघुवंशविभूषणे ।
सनत्कुमारो भगवानुवाच कृपयाञ्चितः ॥ ७ ॥

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि तव वीर परा मतिः ।
भाग्यं च तव निःसीमं काकुत्स्थ भुवनत्रये ॥ ८ ॥

यदाराधयसे नित्यं भक्तिश्रद्धासमन्वितः ।
एतद्रामपदाम्भोजपादुकायुग्ममुत्तमम् ॥ ९ ॥

अपि जानासि कच्चित्त्वमेतयोर्महिमोत्करम् ।
सर्वोच्चैः परमे धाम्नि ययोः स्थानं प्रतिष्ठितम् ॥ १० ॥

इमे भाग्यवशाल्लब्धे त्वया वीर मनोरमे ।
ब्रह्मादीना मपि ययोर्दुर्लभं किल दर्शनम् ॥ ११ ॥

समस्तमन्त्रसाम्राज्यस्थानभूते सनातने ।
अमन्दानन्दसंदोहसम्पत्तिपरमास्पदे ॥ १२ ॥

उपास्व सावधानेन मनेसेमे निरन्तरम् ।
लप्स्यसे सर्वसिद्धीनामाश्रयत्वं सुदुर्लभम् ॥ १३ ॥

ज्ञानभक्तिमयी त्वेका प्रेमभक्तिमयी परा ।
पादुका रामचन्द्रस्य सिद्धिदा सेवतां नृणाम् ॥ १४ ॥

इमे समस्तयोगीन्द्रैर्द्वादशान्ते स्वमूर्द्धनि ।
सहस्रपत्रे कमले स्मर्येते सुसमाहितैः ॥ १५ ॥

आनन्दमात्रममलं सदसत्परं यत् पूर्णं समंतत उदित्वरमव्ययं च ।
सच्चिद्घनं त्रिभुवनावधिभूतमेकं श्रीपादुकावतरणं परमं पदं तत् ॥ १६ ॥

यद्विज्ञाय प्रयत्नेन मुच्यते मोहपाशतः ।
प्राप्नुवन्ति परं स्थानं स्वात्मभूतं सनातनम् ॥ १७ ॥

तद्विद्धि वेदवाक्यौघैर्मन्मुखाच्च विशेषतः ।
भज भक्तिप्रपन्नात्मा परमेण समाधिना ॥ १८ ॥

भरत उवाच

ब्रूहि मे श्रीपादुकयोर्महिमानमतः परम् ।
यं विज्ञाय विशेषेण भक्तिः स्यान्मम निश्चला ॥ १९ ॥

यथा भवान् विजानाति यत्र यावच्च सम्मतम् ।
तदुदीरय मे ब्रह्मन् पादुकाख्यं परं पदम् ॥ २० ॥

सनत्कुमार उवाच

नित्यं समाराधयतस्तव शुद्धमभून्मनः ।
त्वमतोऽधिकृतोऽस्यद्धा मन्त्रतत्त्वप्रकाशने ॥ २१ ॥

प्रणवो वाग्भवं माया कमला व्योम चन्द्रमाः ।
चण्डीशश्च शिखीशश्च वह्निर्झिंटीशविन्दु भाक् ॥ २२ ॥

अयमेकः सुमन्त्रज्ञैः कूटमन्त्र उदाहृतः ।
व्योमशीतां सुवर्गान्त्यमहाकालीशभूसुधा ॥ २३ ॥

वह्निः समीरणोर्धीशविन्दुयुक्तो द्वितीयकः ।
कूटमन्त्रः समाख्यातः सकलागमवेदिभिः ॥ २४ ॥

प्रथमः पुनराकाशश्चन्द्रव्यत्यासतो भवेत् ।
द्वितीयः पुनरूकारस्थान ईकारयुग्भवेत् ॥ २५ ॥

रां रामचन्द्रसहजानन्दिनीयुग्मपूर्वकम् ।
श्रीपादुकां पूजयामि नम इत्यन्ततो वदेत् ॥ २६ ॥

एकत्रिंशद्वर्ण एष पादुकामन्त्र इरितः ।
नारायणऋषिश्चास्य छन्दोऽनुष्टुबिति स्मृतः ॥ २७ ॥

श्रीपादुकाख्या नियतं परमात्मास्य देवता ।
हंसो बीजं तथा सोऽहं शक्तिरित्युच्यते बुधैः ॥ २८ ॥

वाग्भवं कीलकं प्रोक्तं मन्त्रागमविशारदैः ।
चतुर्वर्गे च मन्त्रस्य निनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥ २९ ॥

षड्दीर्घस्वरसंयुक्तैर्हंसवर्णैः षडङ्गकम् ।
एवं विधाय कर्त्तव्यं पादुकाध्यानमुत्तमम् ।। ३० ।।

मुक्ताविद्रुमहेममहीरघटितश्रीपीठराजोत्तमे
दीव्यन्त्यौविलसन्निसर्गपरमानन्दप्रकाशाद्भुते ।
विस्फूर्जत्तरुणार्ककोटि किरणव्याकीर्णशुद्धाम्बरे
सच्चिद्रूपघने घनाद्यतिमिरस्तोमैकनाशोद्भटे ।। ३१ ।।

भक्तानां शिरसि प्रकाशपटलीफुल्लत्सहस्रच्छदे
पद्मेऽखण्डलचन्द्रमण्डलगतश्रीहंसपीठोत्तमे ।
तिष्ठन्त्यौनिजपूर्णधामनि सदा कल्याणदिव्यास्पदे
मायामोहमदान्धकारशमने सेव्ये विभोः पादुके ।। ३२ ।।

एवं ध्यात्वा जपेन्नित्यमष्टोत्तरसहस्रकम् ।
गन्धपुष्पादिभिर्नित्यं पूजयेद्भावकल्पितैः ।। ३३ ।।

तत्रैव स्वस्य शिरसि सहस्रच्छदमन्दिरे ।
भावयेत्संतत दिव्यंभक्तिभावपरायणः ।। ३४ ।।

पुरश्चर्यां तथा कुर्यान्मत्रराजस्य साधकः ।
पुण्यतीर्थे सुविमले मेध्याशी मितभाषणः ।। ३५ ।।

दशलक्षं जपित्वातु दशांशं हवनं चरेत् ।
नीलोत्पलैस्त्रिमधुरोन्मिश्रैर्मन्त्रस्य सिद्धये ।। ३६ ।।

तर्पणं मार्जनं चैव ब्रह्मभोजनमेव च ।
यत्किंचिद्विधिवत्कुर्यात्तत्तत्र निवेदयेत् ।। ३७ ।।

श्रीरामस्य पादुकायुग्मे रामार्पणधिया बुधः ।
निवेदितं श्रीरामाय सर्वकर्मामितं भवेत् ।। ३८ ।।

यथा यथा स्याद्धृदयस्य शुद्धिर्नित्यं समाराधयतो जनस्य ।
तथा तथा पश्यति सूक्ष्मवस्तुस्वरूपमज्ञानचयो विशीर्णे ।। ३९ ।।

अनन्तबोधोन्मिषितामलाक्षो भक्त्या परिक्षीणसमस्तविघ्नः ।
आविर्भवत्प्रेमरसद्रुतः स्याद् रामस्वरूपामृतलाभयोग्यः ।। ४० ।।

इति ते सर्वमाख्यातमज्ञानेन्धनदीपनम् ।
श्रीरामपादुकायुग्ममंत्रतत्त्वमनुत्तमम् ।। ४१ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे पादुकाराज्ये मन्त्रतत्त्वप्रकाशनो नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।। ५५ ।।

●

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

सनत्कुमार उवाच

अथ वक्ष्यामि ते वीर पादुकाकवचं शुभम्।
पठनीयं सदा यद्धि मन्त्रसिद्धिमभीप्स्यता ॥ १ ॥

ब्रह्मणा धारितं पूर्वं नारायणमुखाम्बुजात्।
तद्भूवयो ब्रह्मणा प्रोक्तं करुणाकलितेन मे ॥ २ ॥

तदहं ते प्रवक्ष्यामि भक्ताय सुमहात्मने।
रहस्यं सर्ववेदानां सारभूतं समुद्धतम् ॥ ३ ॥

पादुकाकवचस्यास्य नारायणऋषिः स्वयम्।
छन्दो विराडिति प्रोक्तं पादुका परदेवता ॥ ४ ॥

धर्माकामर्थमोक्षेषु विनियोग उदाहृतः।
पठनीयं त्रिसंध्यं तत्प्रयत्नेन समाहितैः ॥ ५ ॥

प्रणवो मे शिरः पातु वाग्भवं पातु मेऽलिकम्।
मायाबीजं मुखं पातु चक्षुषी कमलावतु ॥ ६ ॥

हकारो नासिकां पातु सकारः श्रवसी च मे।
षकारो गण्डयुग्मं मे शेषं पात्वधरं मम ॥ ७ ॥

उत्तरोष्टं सदा पातु कूटात्मा मन्त्रविग्रहः।
द्वितीयः कूटमन्त्रो मे ग्रीवां रक्षतु सर्वदा ॥ ८ ॥

तृतीयः ककुदं पातु चतुर्थोऽसयुगं सदा।
राममन्त्र उरः पातु अज्ञानेन्धनदीपनः ॥ ९ ॥

रामचन्द्रः स्वयं पातु दक्षिणं मे भुजं सदा।
मम वामभुजं पातु सहजानन्दिनी स्वयम् ॥ १० ॥

युग्मं मे हृदयं पातु श्रीरामसहजात्मकम्।
रामःश्रीपादुका पातु बुद्धिं मे सत्त्वसम्भवाम् ॥ ११ ॥

तत्पूजनक्रिया पातु सदा कर्मेन्द्रियाणि मे।
नमस्या च सदा पातु ज्ञानेन्द्रिय कदम्बकम् ॥ १२ ॥

उदरं मे सदा पातु मंत्रतेजो महाद्भुतम्।
नाभिं मे सर्वदा पातु मन्त्र चैतन्यमुत्तमम् ॥ १३ ॥

मन्त्रप्रतिष्ठा सततं पातु मे चरणद्वयम्।
मन्त्रशक्तिर्गुदंपातु मन्त्रबीजमुपस्थकम् ॥ १४ ॥

मन्त्राक्षराणि मे पान्तु अङ्गप्रत्यङ्गविग्रहम् ।
मन्त्रस्वराः सदा पान्तु शक्तिं मे सर्वकर्मसु ॥ १५ ॥

मन्त्रव्यञ्जनसंदोहः सर्वदावतु मे मनः ।
विन्दुः पातु सदा लक्ष्मीं विसर्गो विपदं द्यतु ॥ १६ ॥

मन्त्रादिः शिर आरभ्य ग्रीवां रक्षतु सर्वदा ।
कण्ठादारभ्य नाभ्यन्तं मन्त्रमध्यं ममावतु ॥ १७ ॥

मन्त्रावसानमनिशंमधोङ्गं मेऽभिरक्षतु ।
अशेषमन्त्ररूपं मे श्रीरामः सकलं वपुः ॥ १८ ॥

महदादिश्च भगवान् परतत्त्वं ममावतु ।
स्थूलदेहं सदा पातु विराड् ब्रह्माण्डरूपधृक् ॥ १९ ॥

भगवान् सर्वभूतस्थः सूक्ष्मदेहं ममावतु ।
परं शरीरं मे पातु परमात्मा सनातनः ॥ २० ॥

सरय्वाः पुलिने रम्ये रत्नधाम्नि सुसंस्थितम् ।
अक्षराख्यं परं ब्रह्म सर्ववेदोपसेवितम् ॥ २१ ॥

श्रीरामपादुकारूपं सर्वशक्तिसमन्वितम् ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्यगुणावस्थाविवर्जितम् ॥ २२ ॥

तुरीयं तुर्यपदगं यदेकं सर्वतः समम् ।
तन्मां पातु विशेषेण सर्वावस्थासु सर्वदा ॥ २३ ॥

योगिनां च शिरोदेशे सहस्रदलपङ्कजे ।
चिच्चन्द्रमण्डलान्तःस्थहंसपीठोपरि स्थितम् ॥ २४ ॥

पराशक्तिसुसम्पर्कसामरस्यरसोद्भवैः ।
अमृतैश्चित्सुखवहैरभिषिक्तं निरन्तरम् ॥ २५ ॥

समस्तमोक्षपदवीसाम्राज्यपदनायकम् ।
अज्ञानतिमिरस्तोमहरणोद्धुरशक्तिभृत् ॥ २६ ॥

सर्वज्ञानक्रियाशक्तिबीजभूतं परात्परम् ।
सर्वमन्त्रसमाराध्यं सर्वागमनमस्कृतम् ॥ २७ ॥

सर्वदैवतसंदोहसाम्राज्यसुखभाजनम् ।
वन्दे श्रीपादुकायुग्मं रामस्य परमात्मनः ॥ २८ ॥

श्रद्धां देहि धियं देहि भक्तिं देहि परात्मिकाम् ।
अनुग्रहं कुरु सदा पादुकापरदेवते ॥ २९ ॥

दत्तां बुद्धिं विशुद्धां गिरमतुलतरां वेदवेदाङ्गरूपां
श्रेष्ठां लोके प्रतिष्ठां मदगजगमनोद्भूतघण्टानिनादम् ।
ऐश्वर्यं विश्ववर्यंसुखमधिकतरं कामलोलैर्मृगाक्षी-
संदोहैः पूर्यमाणो धनवति सदने त्वत्प्रसादाल्लभन्ते ॥ ३० ॥

एवं संस्तूय सततं भज श्रीपादुकायुगम् ।
भविष्यस्यचिराद्वीर परानुग्रहभाजनम् ॥ ३१ ॥

कवचं च पठाजस्त्रं पादुकामन्त्रतत्त्वयुक् ।
लप्स्यसे परमानन्दं पूर्णं भरत तत्क्षणात् ॥ ३२ ॥

सौभाग्यं त्रिपुलं भोग्यमारोग्यं सर्वसंपदः ।
प्राप्नुवन्ति जपादस्य जयं च जगति ध्रुवम् ॥ ३३ ॥

इदं रहस्यं रघुनन्दनस्य श्रीपादुकासत्कवचं पठन्नरः ।
अवाप्य धर्मार्थसुकाम मुक्तीर्भोगोदधौ क्रीडतिभक्तिसिद्धः ॥ ३४ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे पादुकाराज्ये कवचमन्त्रकीर्तनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

●

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

अथ भूयोऽपि ते वच्मि पादुकातत्त्वमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वा कृतकृत्यत्वमाप्नोति सततं नरः ॥ १ ॥

वर्णाश्रमाधिकारोक्तं यत्कर्म कुरुते नरः ।
निवेदयेत्तदखिलं रामपादुकयोः सदा ॥ २ ॥

एवं कर्मोद्भवं दोषं बन्धनाख्यं दुरत्ययम् ।
नाप्नोति परधर्मेण निवेदनमहीयसा ॥ ३ ॥

निन्दितानि प्रशस्तानि कर्माणि निखिलान्यपि ।
भवन्ति बन्धनायैव न तु जाते निवेदने ॥ ४ ॥

पुण्यं कर्माखिलं वीर प्रभोः पादे समर्पयेत् ।
अपुण्याच्च विरज्येत निरस्तफलभावनः ॥ ५ ॥

प्रमादात्संगदोषाच्च कृतमप्यशुभं जनः ।
न तत्फलोन्मुखं कुर्याद् रामपादे समर्पयन् ॥ ६ ॥

जिज्ञासेच्च परं तत्त्वं नित्यं गुरुमुखाम्बुजात् ।
तद्वै उपदिशन्त्येव करुणाः खलु साधवः ॥ ७ ॥

युक्तः प्रकृत्या पुरुषो महत्सर्गप्रवर्त्तकः ।
तन्मूलं परमं ब्रह्म प्रवदन्ति यदक्षरम् ॥ ८ ॥

जडजीवात्मनां तद्वै एकोपादानकारणम् ।
पुरुषोत्तमसंज्ञस्य रामस्य चरणं स्मृतम् ॥ ९ ॥
अत एवोत्तमो रामः पुरुषात्प्रकृतेरपि ।
आत्माभेदेन जिज्ञास्यमक्षरं ब्रह्म तत्परम् ॥ १० ॥
श्रीरामपादुकारूपं सच्चिदानन्दमद्वयम् ।
यतोऽवताराः सर्वेऽपि स्रोतांसि जलधेर्यथा ॥ ११ ॥
गुणावताराः सृष्ट्यर्थं ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
बिभूतयः कलाश्चांशाः सर्वे ज्ञानक्रियात्मकाः ॥ १२ ॥
आवेशा अवताराश्च तत्तत्कार्यविधित्सया ।
पुरुषात्प्रभवन्त्येते पुरुषश्चाक्षरात्मकः ॥ १३ ॥
नित्यज्ञानक्रियाशक्ती अक्षरं पुरुषोत्तमात् ।
चत्वारो व्यूहपुरुषा वासुदेवादयः परे ॥ १४ ॥
अक्षरात्मतया नित्यं निविष्टाः पुरुषोत्तमे ।
यद्विशुद्धतमं सत्त्वं परमं धाम तस्य तत् ॥ १५ ॥
तदन्तरितदेहोऽसौ परमात्मा प्रकाशते ।
अनन्तरितदेहस्तु श्रीरामः पुरुषोत्तमः ॥ १६ ॥
आनन्दमात्रसकलकरपादमुखोदरः ।
प्रेमभक्त्यैकविज्ञेयो नित्यलीलारसात्मकः ॥ १७ ॥
तदेव परमं ब्रह्म सर्वव्यापकमव्ययम् ।
धर्मधर्मिस्वरूपेण स्वस्मिन्नेव प्रतिष्ठितम् ॥ १८ ॥
उपादानं निमित्तं च जगतो द्वैतवर्जितम् ।
अखण्डं सैन्धवघनं लीलामात्रप्रयोजनम् ॥ १९ ॥
अवतारावतारिभ्यो विश्वेभ्योऽतिविलक्षणम् ।
तद्भजस्व विशेषेण प्रेम्णा विधिविवर्जितः ॥ २० ॥
प्रेमातिरिक्तः सम्बन्धस्तस्मिन्नैवोपपद्यते ।
अतः प्रेम्णैव सम्बद्धं तदात्मनि विभावय ॥ २१ ॥
अमूर्त्तत्वान्न कर्माख्यः सम्बन्धस्तत्र युज्यते ।
दुर्ज्ञेयत्वान्न च ज्ञानविषयत्वं भवेदिह ॥ २२ ॥
प्रेमा रसमयः साक्षाद्रसो रामात्मकः स्फुटम् ।
अतस्तेनैव सम्बध्याद्रसरूपं [1]सीतापतिम् ॥ २३ ॥
कर्मापि तत्र कर्त्तव्यं रसरूपतया परम् ।
ज्ञानं च तत्र प्रेमाङ्गं भवत्येवेति निश्चयः ॥ २४ ॥

---

१. यहाँ दीर्घत्व आर्ष प्रयोग है ।

इति ते परमं तत्त्वमाख्यातं गुह्यमुत्तमम् ।
मथितं सर्ववेदेभ्यो भजनस्योपयोगि यत् ॥ २५ ॥

इत्युक्त्वा भगवान् योगी भरताय महात्मने ।
सनत्कुमारः प्रययौ स्वेच्छाचारी यथागतम् ॥ २६ ॥

भरतश्च विशेषेण श्रुत्वाऽऽराध्यमहत्त्वकम् ।
परमात्मस्वरूपेण सिषेवेत्पादुकाद्वयम् ॥ २७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे पादुकाराज्ये सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

●

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भरत उवाच

नमो ब्रह्मशर्वादिदेवेन्द्रवन्द्ये परे व्योम्नि नित्यं स्वधाम्नि प्रतिष्ठे ।
सदा सिन्धुजासुन्दरीसंविमृग्ये श्रिया संयुते श्रीप्रभोः पादुके वाम् ॥ १ ॥

सहस्रार्कशीतांशुविद्योतिरूपे महामोहतामिस्रविच्छेदशक्ते ।
दुरन्ते भवाम्भोनिधौ दिव्यनौके प्रभोः पादुके वां सदा सन्नतोऽहम् ॥ २ ॥

पदं श्रेयसां दत्तनिःश्रेयसं यद्विपन्काननोच्छित्तिकर्माकुठारम् ।
महासिद्धिमद्भूरिभाग्योदयाढ्यं विभातीशितुः पादुकायुग्ममेतत् ॥ ३ ॥

सदानन्दपीयूषधाराघनाली जगत्पापसंतापनिर्यापणाय ।
त्रिवेदीशिरःसद्मसर्वस्वभूतं प्रभोः पादुकायुग्ममुद्भातु चित्ते ॥ ४ ॥

सदा सम्पदामेकमुच्चैर्निकेतं महाघोरसंसारपाथोधिसेतुः ।
सुदुर्ज्ञेयतत्त्वप्रबोधैकहेतुश्चिरं शोभतां पादुकायुग्ममेतत् ॥ ५ ॥

अशेषप्रमाणप्रमेयार्थरूपे शिवब्रह्मकोटीररत्नांशुमिश्रे ।
सदानन्दसम्पत्तिसंदोहदाने प्रभोः पादुके प्राप्य भक्त्या भजेऽहम् ॥ ६ ॥

परं चिन्नभश्चारुचिच्चन्द्रकान्त्या सदोदीतया जातनित्यप्रकाशम् ।
तदातिष्ठतो यो स्थिते स्वे महिम्नि प्रभोर्ब्रह्मरूपे भजे पादुके ते ॥ ७ ॥

न यद्भासयत्यर्कबिम्बप्रकाशो न चन्द्रो न वह्निर्न वा विद्युतोऽपि ।
इदं भाति सर्वं यदेवानुभाच्च प्रभोः पादुकायुग्ममस्म्याश्रितस्तम् ॥ ८ ॥

न जाग्रन्न सुप्तिर्न वा सा सुषुप्तिस्तुरीयं पदं तत्र ये संस्थिते वै ।
चिदानन्दसन्मात्रनित्यस्वरूपे भजेऽहं सदा स्वामिनः पादुके ते ॥ ९ ॥

जगत्यर्चने ध्यानपूजानतीनां यदेकं पदं सर्वकल्याणधाम।
सकामैरकामैस्तथा सर्वकामैस्तदाराधितं पादुकायुग्ममीडे ॥ १० ॥

अमूर्त्तं तथा मूर्तिमद्वस्तु किंचिद्गुणैः संगतं निर्गुणं वाथदेव।
यदेकं तथानेकमात्मप्रकाशं परं ब्रह्म तत्पादुकायुग्ममीडे ॥ ११ ॥

अशेषावताराक्तारिस्वरूपं समस्तागमाम्नायमार्गैकसेव्यम्।
सुसिद्धान्तिनामन्विताशेषवाक्यं भजे पादुकायुग्ममेकं समस्य ॥ १२ ॥

यतो वर्णिताशेषतत्त्वप्रभूतिस्तथाशेषतत्त्वानि यत्राप्ययन्ति।
परं तत्त्वमेकं परब्रह्मरूपं भजे पादुकायुग्मं सीतापतेस्तत् ॥ १३ ॥

पशुग्रामपुत्राङ्गनादीनिनित्यं नृणां यत्प्रसादात्फलान्यैहिकानि।
भवन्ति प्रभूतानि चामुष्मिकाणि स्मरेत्को न ते पादुके [1]राघवस्य ॥ १४ ॥

नमः कोटि कल्याणकल्पद्रुमाभ्यां परानन्दसंदोहचिन्तामणिभ्याम्।
अपि स्वैरमात्मप्रबोधप्रदाभ्यां सीताभर्त्तुरङ्घ्रिद्वयीपादुकाभ्याम् ॥ १५ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्यभिष्ठूय भरतो रामराजस्य पादुके।
पुष्पाञ्जलिं ददावुच्चैः पूजान्ते प्रतिवासरम् ॥ १६ ॥

अन्योऽपि मनुजो यस्तु भक्त्या सम्पूज्य पादुके।
निवेदयति पूजान्ते मन्त्रपुष्पाञ्जलिं सदा ॥ १७ ॥

तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्यान्मन्त्रसिद्धिरनुत्तमा।
श्री रामपादुकायुग्मप्रसादः स्यादनन्तरम् ॥ १८ ॥

इति ते पादुकाराज्यं रामस्य त्रिजगत्प्रभोः।
वर्णितं यन्मया तुभ्यं श्रृणुथात्तत्प्रयत्नतः ॥ १९ ॥

स सर्वकामानाप्नोति भक्तिं चास्य सुदुर्लभाम्।
अन्ते श्रीरामचरणं लभते नात्र संशयः ॥ २० ॥

कामदा शुद्धिदा नृणां बुद्धिदा भूरिभुक्तिदा।
मुक्तिदा सर्वकल्याणदायिनी रामपादुका ॥ २१ ॥

विरहोद्वेगनिर्मुक्तिर्भरतस्य यथाभवत्।
तथा भक्तिमतां नृणां पादुकायाः प्रसादतः ॥ २२ ॥

व्याप्नोति नैव विरहो दुःसहोऽपि सीतापतेः।
अमन्दानन्दसंदोहसुधाशीतलिते हृदि ॥ २३ ॥

करुणा रघुनाथस्य भक्तेषु परिवर्त्ति या।
सैव विश्वासभूरेका नृणां मोहतमोजुषाम् ॥ २४ ॥

---

१. श्रीरामस्य—मथु०, अयो०।

अनन्यकरुणाशाली प्रभुरेको रघूद्वहः ।
तवास्मीति ब्रुवन् मर्त्यो वशीकुर्यात् क्षणेन यम् ॥ २५ ॥
सकृदास्वादितं येन रामेति रसनामृतम् ।
तं न मायामयी घोरा भुजङ्गी दशति क्वचित् ॥ २६ ॥
वीक्षिता रघुनाथेन ये ये करुणया दृशा ।
ते कालपाशनिर्मुक्ताः शेरते सुखसद्मनि ॥ २७ ॥
रघुवीरात्परो लोके न कश्चित्पुरुषोभवे ।
मोचयेत्कालपाशाद्यो भावकान् सकृदात्मनः ॥ २८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे पादुकाराज्यसमापनं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

●

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

चित्रकूटं परिक्रम्य प्रयाते भरते पुरीम् ।
सीतानुजाभ्यां सहितः पर्णशालामधिष्ठितः ॥ १ ॥
शुशुभे भगवान् रामो लीलाललितविग्रहः ।
युक्तो रतिवसन्ताभ्यां कन्दर्प इव मूर्तिमान् ॥ २ ॥
अधित्यकोपत्यकासु दरीषु शिखरेषु च ।
सकूजत्कोकिलाढ्येषु कुञ्जेषु गहनेषु च ॥ ३ ॥
विविक्तेषु च देशेषु पतन्निर्झरवारिषु ।
सुशीतमन्थरामोदिमरुल्लुलितवल्लिषु ॥ ४ ॥
देशकालानुरूपैस्तैर्विहारैर्विविधैरपि ।
रमयन् जानकीं नित्यं रेमे रमणकोविदः ॥ ५ ॥
तमेकान्ते समासीनमेकदा प्रिययान्वितम् ।
उपेत्य वीरः सौमित्रिरिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥
कथं खलु महाराज देवकार्यं करिष्यसि ।
यदर्थं कोसलां त्यक्त्वा त्वमरण्यमुपाश्रितः ॥ ७ ॥
कथं घोराणि रक्षांसि हनिष्यसि महाभुज ।
यदर्थमवतीर्णोऽसि महापुरुषसत्तम ॥ ८ ॥

कथं रक्षिष्यसि भुवं राक्षसैरूपमर्दिताम् ।
कथं च प्रियया युक्तो धरणीं पर्यटिष्यसि ॥ ९ ॥

तमुवाच हसन् रामो भ्रातरं प्राणसम्मितम् ।
करिष्ये देवकार्याणि पालयिष्यामि सत्पथम् ॥ १० ॥

यदर्थं कोसलां त्यक्त्वा स्थितोऽस्मि वनगोचरः ।
हनिष्याम्यसुरानीकं हरिष्यामि भुवो भरम् ॥ ११ ॥

भक्तांश्च पालयिष्यामि करिष्ये धर्मरक्षणम् ।
किं च मे दुर्घटं यस्य भ्राता वीर भवादृशः ॥ १२ ॥

किं तैः सुबहुभिर्मित्रैर्ये स्युर्धैर्यापहारकाः ।
एकोऽपि धैर्यधरणो वरं भ्राता भवादृशः ॥ १३ ॥

सोऽहं भवत्सहायेन बन्धुसंदोहसंवृतः ।
अभ्युत्सहेऽखिलं कर्त्तुं यदथन्मम चिकीर्षितम् ॥ १४ ॥

तमुवाचाथ सौमित्रिरनुकूलमतिः सदा ।
नित्यमार्यस्य दासोऽस्मि नित्यंचैव निदेशकृत् ॥ १५ ॥

न मे विप्रतिपत्तव्यं प्रभो तव चिकीर्षितम् ।
एतावदेव श्रेयो मे तवाज्ञामनुतिष्ठतः ॥ १६ ॥

पर्णशाला मया कार्या दम्पत्योः सुखवर्धिनी ।
फलान्याहरणीयानि स्वादूनि विविधानि च ॥ १७ ॥

हत्वा मृगान् वराहांश्च मांसानि विविधान्यहम् ।
आनेतास्मि वनादार्य पक्ष्यामि च सुसंस्कृतम् ॥ १८ ॥

प्रियया सह सुप्तस्य रात्रिं स्थास्यामि तत्परः ।
आबद्धकवचो नित्यं शरपाणिर्धनुर्धरः ॥ १९ ॥

पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि आतपत्रं करे दधत् ।
पल्लवांश्च महीपृष्ठे धास्यामि पुरतः क्वचित् ॥ २० ॥

पादन्यासाय दम्पत्योर्यत्र कूर्पा[1]कुला मही ।
यद्यद्भृत्योचितं कर्म करिष्यामि सुखेन तत् ॥ २१ ॥

भवान् करोतु कार्याणि देवानां सुखहेतवे ।
भुवो भारं हर विभो भक्तांश्च परिपालय ॥ २२ ॥

किं त्वापृच्छामि ते वीर चित्रकूटं मनोहरम् ।
कथं त्यक्ष्यसि सौख्यानामालयं सुचिरोपितम् ॥ २३ ॥

---

१. कूर्पा-शर्करा ।

यत्रैषा जानकी देवी दृश्यते बद्धमानसा ।
अस्येमाः कन्दराश्चास्याः क्रीडासद्मानि संततम् ।। २४ ।।

त इमे गाह्वरोद्देशा नानाकुञ्जलतावृताः ।
पतन्निर्झरसंशीतवातवेपितभूरुहाः ।। २५ ।।

सुगन्धयो गिरेरस्य कुञ्जवृक्षैरुपत्यकाः ।
गुञ्जद्भ्रमरपुञ्जाढ्याश्चन्दनद्रुमशोभिताः ।। २६ ।।

नदीप्रवहणोपेताश्चक्रसारसनादिताः ।
सरांसि फुल्लपद्मानि स्वच्छानि सुखदानि च ।। २७ ।।

अधित्यका गिरेरस्य मनोहरशिलातलाः ।
उद्वेल्लद्वल्लरीवृन्दवेष्टितानेकभूरुहाः ।। २८ ।।

सुकूजत्केकिनिवहाः कोकिलाकाकलीकुलाः ।
पशवः पक्षिणश्चेह मित्राणीव चिरेण नः ।। २९ ।।

ये सायं प्रातरार्यस्य कर्मदर्भोपजीविनः ।
जानकीदत्तसलिलयवसास्त इमे मृगाः ।। ३० ।।

आर्येण वा पितान् भूमौ विशुद्धान् वलितन्दुलान ।
उपजीवन्ति ये नित्यं त इमे पक्षिणो गिरेः ।। ३१ ।।

अमी चकोराः सततं देव्या वदनचन्द्रिकाम् ।
आचमन्तः सुपुष्टाङ्गाः कुर्वन्ति चिरमाशिषः ।। ३२ ।।

चिराय बद्धप्रेमाणो वयमत्र महागिरौ ।
कथमन्यत्र यास्यामो देवकार्यविधित्सया ।। ३३ ।।

नन्वयं पर्वतवरो नभःस्पृग्भिर्महोन्नतैः ।
आलिङ्गतीव शिखरैरार्यं प्रत्यागतं वनात् ।। ३४ ।।

नेमं विहातुं वाञ्छामश्चित्रकूटं महोन्नतम् ।
कन्दमूलफलैर्नित्यमातिथ्यं विदधाति यः ।। ३५ ।।

अयं गिरिः कोऽप्यतिथिप्रियो वा दासोत्तमो वा तव राजमौले ।
यः सेवते कन्दरकन्दमूलफलप्रसूनप्रसवैः सदा नः ।। ३६ ।।

देवी च नामनिमिचन्द्रसुता सदास्मै नित्योत्सुका स्पृहयते गिरिपुङ्गवाय ।
भाग्यं तथास्य वचनातिगमद्वितीयं नो शक्यते कथयितुं तव पादभाजः ।।३७।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे चित्रकूटगिरिवर्णनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ।। ५९ ।।

षष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा सौमित्रिवचनमर्थवद्रघुपुंगवः ।
ऊचे तदनुमत्यैव भक्तकामप्रपूरणः ॥ १ ॥

श्रीराम उवाच

ममाप्येतन्मतं भ्रातर्यदाह रुचिरं भवान् ।
चित्रकूटे गिरिवरे सदा रंस्यामि निश्चितम् ॥ २ ॥

विधान्तरेण करवै देवकार्याण्यशेषतः ।
स्वयं स्थास्यामि सततमिहैव रमणोत्सुकः ॥ ३ ॥

यथा प्रमोदविपिनं नित्यं प्रियतमं मम ।
तथैव सर्वशोभाढ्यश्चित्रकूटः प्रियो मम ॥ ४ ॥

इहस्थः सततं कुर्वे रमणं प्रियया सह ।
सर्वर्त्तुसुभगो ह्येष नित्यं कुसुमितैर्द्रुमैः ॥ ५ ॥

यथा प्रमुद्वनं त्यक्त्वा नैमि क्षणमपि क्वचित् ।
तथैव चित्रकूटाद्रिं न जहामि कदाचन ॥ ६ ॥

कामतायां मनोज्ञायां चक्राङ्कितततनौ सदा ।
विहरामि प्रियाक्रीडः प्रमोदविपिने यथा ॥ ७ ॥

एषोऽस्माकं भक्तवर्यश्चित्रकूटो मनोहरः ।
यत्र तिष्ठामि सौमित्रे सर्वर्त्तुप्रियकेलिकृत् ॥ ८ ॥

न मे वैकुण्ठभवनं श्वेतद्वीपमपि प्रियम् ।
रमाभवनमेवापि यथा मे कामता प्रिया ॥ ९ ॥

शिलातलेष्वधिष्ठाय चित्रकूटगिरेः सदा ।
विहरामि दधत्केलिं देवानां जनयन् मुदम् ॥ १० ॥

सुदुर्लभोऽपि सर्वत्र लोकेषु भजतामहम् ।
चित्रकूटाचले रम्ये सुलभोऽस्मि न संशयः ॥ ११ ॥

यो मत्पादाङ्कितमिमं गिरिराजं सुगह्वरम् ।
स्मरिष्यति क्षणं मर्त्यस्तस्याहं सुलभो भवे ॥ १२ ॥

स्थले स्थले महत्पुण्यं तीर्थकोटिशताधिकम् ।
चित्रकूटे मम भ्रातः स्थानभूते मनोहरे ॥ १३ ॥

किं तस्य बहुभिर्यज्ञैः प्रादक्षिण्येन वा भुवः ।
यश्चित्रकूटं सततं सेवते सुखवर्द्धनम् ॥ १४ ॥

यावन्ति शिखराण्यस्य भास्वन्ति परितो दिशम् ।
तेषामेकतमं दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च सुकृती भवेत् ॥ १५ ॥

स्फाटिकी यत्र विपुला शिला शैले प्रतिष्ठिता ।
तत्र मां स्मरतो नित्यं हृदये प्रविशाम्यहम् ॥ १६ ॥

यो दूरात्पश्यति गिरेः शृङ्गाणि खलु कौतुकात् ।
तस्य देहात्पलायन्ते पातकानि महान्त्यपि ॥ १७ ॥

स्पृष्ट्वा तु चित्रकूटस्य शृङ्गं नभसि विस्तृतम् ।
अनन्तकोटितीर्थेषु स्नातो भवति तत्क्षणात् ॥ १८ ॥

यत्किंचित्कुरुते चात्र सुकृतं कर्ममानवः ।
गिरिराजप्रभावेण तदनन्तगुणं भवेत् ॥ १९ ॥

दत्ताः स्युः कोटिशो गावः स्नाताः स्युस्तीर्थकोटयः ।
कृताः स्युः कोटिशो यज्ञा योऽत्र यात्रामनुव्रजेत् ॥ २० ॥

अत्र वाति सदा वायुः सीताङ्गस्पर्शसौरभी ।
यं स्पृष्ट्वा लभते मर्त्यो जीवन्मुक्तिमनुत्तमाम् ॥ २१ ॥

अत्र वेणुनिनादेन मोहयित्वा सुराङ्गणाः ।
ताभिः सार्द्धं करिष्यामि रासलीलामहोत्सवम् ॥ २२ ॥

महान् प्रमुद्वने रासश्चित्रकूटेऽत्र मध्यमः ।
लङ्कायामधमश्चेति चिरासदर्पितोऽस्म्यहम् ॥ २३ ॥

ये मे स्वरूपभूता वै व्रजभक्तामहोदयाः ।
तैः साकमुत्तमा लीला प्रमोदविपिने मम ॥ २४ ॥

या देत्यो ज्ञानविज्ञानसम्पन्ना मन्महिस्पृशः ।
तत्सार्द्धं मध्यमा लीला निश्रप्रेमाङ्किता यतः ॥ २५ ॥

रावणेन तु या रुद्धाः कन्यास्त्रिजगति स्थिताः ।
तत्सार्द्धं मध्यमा लीला काममात्राङ्किता यतः ॥ २६ ॥

न सर्वथाहं त्यक्ष्यामि चित्रकूटं महाचलम् ।
त्वया जनकपुत्र्या च सहितोऽत्र चिरं रमे ॥ २७ ॥

अत्र मे व्रजभक्तानां शुद्धप्रेमरसस्पृशाम् ।
संगमः सुखितादीनां भविष्यति न संशयः ॥ २८ ॥

इहस्थ एव त्रिदिवालयानां पौलस्त्यमुख्यैरसुरैर्विद्रुतानाम् ।
कार्यं करिष्याम्यहमुग्रवीर्यं धुन्वन् धनुः संस्थित आजिमूर्ध्दिन ॥ २९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सौमित्रिसमाहितिर्नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

इति श्रीमान् समाधाय भ्रातरं प्राणसम्मितम् ।
रेमे जनकजासंगशोभिपार्श्वो महामनाः ॥ १ ॥

अथास्य वननिष्क्रान्तिमाश्रुत्य सुखितादयः ।
गोपा गोप्यश्च सकलाः प्रमोदवनगोचराः ॥ २ ॥

समतप्यन्त मनसि प्रोद्दीप्तविरहव्यथाः ।
निनिन्दुः केकयीं सर्वे तदायत्तं च भूमिपम् ॥ ३ ॥

अनन्तरं प्रमीतं च रामविश्लेषदुःखतः ।
श्रुत्वा दशरथं सर्वे मौनमासन् सुविस्मिताः ॥ ४ ॥

ततः सुखितगोपालश्चित्रकूटनिवासिनम् ।
श्रुत्वा प्रियतमं राममागन्तुमुपचक्रमे ॥ ५ ॥

तस्य सार्थेऽखिलागोप्यो गोपाश्च विरहातुराः ।
गन्तुं कृतधियः सर्वे जाता उत्कलिकाकुलाः ॥ ६ ॥

इतस्ततः संचरतां व्रजस्थानां स्पृहावताम् ।
प्रस्थानं सज्जमानानां सम्मर्दः सुमहानभूत् ॥ ७ ॥

अनडुद्भिः समायोज्य शकटानि समंततः ।
बहूपल्कृप्तपाथेयाः प्रतस्थुर्व्रजवासिनः ॥ ८ ॥

श्रीराममुखचन्द्रस्य महीयस्यादिदृक्षया ।
आकुलाः सर्वतोगोप्यः प्रचेलुर्भूरिभूषिताः ॥ ९ ॥

ताश्चारुभालविलसत्तिलकाभिरामाः पाण्योः सुवर्णवलयोप्तमणिप्रकाशाः ।
चञ्चत्सुमृष्टमणिकुण्डलगण्डशोभाः कूजन्मनोज्ञमणिमेखलया स्फुरन्त्यः ॥ १० ॥

मञ्जीरमञ्जुरणितैर्व्रजकुञ्जवीथीः कुर्वन्त्य उत्सुकमदोद्धुरराजहंसाः ।
प्रोद्भासिनूतनदुकूलसुलक्ष्यगात्रविद्युद्रुचो व्रजकुरङ्गदृशः प्रचेलुः ॥ ११ ॥

आरूढाः प्रसभमनांसि योजितानि प्रोत्तालैः सदृशतमैर्गवां धुरीणैः ।
गायन्त्यो व्रजरमणस्य चेष्ठितानि प्रस्थानावसरमशोभयन् मृगाक्ष्यः ॥ १२ ॥

गोपा महार्हवसनाभरणाभिरामा आबद्धचारुशिखिपिच्छकृतावतंसाः ।
गुञ्जासु गुम्फितमणिस्रज उद्वहन्तो वन्यप्रसूनगिरिधातुविचित्रगात्राः ॥ १३ ॥

श्रीरामचन्द्रमुखचन्द्रदिदृक्षयोच्चैरोमञ्चिताः किमपि कौतुककेलि भाजः ।
स्वस्वप्रियाभिरुपदाभिरुपेतहस्ता गोपेन्द्रसूचितसुभव्यपथाः प्रतस्थुः ॥ १४ ॥

द्विजैः प्रशस्तवचनैः कृतपुण्याह्वाचनः ।
माङ्गल्यया व्रजेशान्या प्रतस्थौ सुखितेश्वरः ॥ १५ ॥

आसीद् घनघटाशब्दः स्यन्दनानां प्रसर्पताम् ।
वलीवर्दवराढ्यानां किंकिणीजालमालिनाम् ॥ १६ ॥

ज्ञातयः सुहृदश्चैव बान्धवाः समवुद्धयः ।
अन्वयुः सुखितं गोपं महोत्कण्ठाः समाकुलाः ॥ १७ ॥

द्रक्ष्यामो रघुपुङ्गवं व्रजहितं रामं रमावल्लभं
स्प्रक्ष्यामः पुलकाञ्चितेन वपुषा स्वात्मप्रियं तं चिरात् ।
आनेष्याम इहैव तं परमया प्रीत्या वशीकृत्यचे
त्युत्कण्ठांञ्चितरंहसो व्रजजनाः सर्वे समं प्रस्थिताः ॥ १ ॥

आलोलालकवल्लरीवृतमुखाम्भोजप्रसादाश्रियः
सद्यः स्वस्वमनोरथोपचितया प्रीत्याभिजुष्टाशयाः ।
उद्दीप्ताश्चिरविप्रयुक्तदयितप्रेक्षासमुत्कण्ठया
गायन्त्यो गुणगह्वराणि चरितान्याभीरवामभ्रुवः ॥ १९ ॥

गाढं भुजाभ्यामालिङ्ग्य प्रियं धास्यामहे हृदे (दि) ।
यास्यामो विपुलं मोदं पास्यामो मुखसारघम् ॥ २० ॥

इति चित्त समुत्कण्ठा द्विगुणीभूतरंहसः ।
रामैकतानमनसो नोक्तं किमपि शुश्रुवुः ॥ २१ ॥

विषयान्तरसंचारविलोपनकरी तदा ।
सर्वेषां हृदये गाढं दिदृक्षा समवर्त्तत ॥ २२ ॥

आयाति चेद्रघुवरो निजभक्ताभियाचितः ।
तन्न प्रपूरयेत् काममिति चिन्ताप्यवर्त्तत ॥ २३ ॥

सुखितो व्रजधेनूनां नवनीतं तथा दधि ।
कृत्वा विपुलभाण्डेषु निनाय शकटोत्तमैः ॥ २४ ॥

उपदाश्च तथैवान्या वसनाभरणादिकाः ।
प्रमोदवनसुस्वादुफलपुष्पादिसंगताः ॥ २५ ॥

बर्हांश्च चन्द्रकैराढ्यान् प्रमोदवनवर्हिभिः ।
निर्मुक्तान् रमणीयाभान् श्रीरामस्य मनःप्रियान् ॥ २६ ॥

गिरिधातुविचित्रांश्च महार्हमणिसम्मितान् ।
निनाय सुखितः प्रेम्णा कदम्बस्रज उत्तमाः ॥ २७ ॥

माङ्गल्यका सुतमुखेन्दुदिदृक्षयाढ्यः सद्यः स्नुतस्तनयुगोद्भवभारखिन्ना ।
प्रेमाकुला चिरवियोगविरामजात कौतूहला पुलकिताढ्यतनुः प्रतस्थौ ॥ २८ ॥

अग्रेसराः सकुतुकं व्रजवासिनोऽस्य सम्प्रस्थितस्य सुखितस्य शुभाय शश्वत् ।
वंशीविषाणपणवानकगोमुखादी नाहत्य काहलरवं विदधुः समंतात् ॥ २९ ॥

संजल्पतां स्वस्वमनोरथानुरूपं समस्तव्रजवासिनां सः ।
कोलाहलो मङ्गलतूर्यमिश्रो दिशो नभः क्ष्मां च समाववार ॥ ३० ॥

ते चूर्णयन्तो विपिनानि सद्यश्चक्रैर्मुहुः संचरतां रथानाम् ।
महावलीवर्दखुरैरुदग्रपातैः प्रतस्थुर्व्रजवासिवर्याः ॥ ३१ ॥

सैन्यं महद्रामचन्द्रप्रियाणां महोक्षसाहस्रसमावृतं तत् ।
जगाम भूयो रथघोषयुक्तमुद्वेलसिन्धुप्रतिमं बभासे ॥ ३२ ॥

ते पश्यन्तः शुभान् वासान् जानकीरामयोर्वने ।
ययुः परमशोभाढ्यान् लक्ष्मणेनोपकल्पितान् ॥ ३३ ॥

तथा तथा विक्लवकातरान्तरा बभूवुराभीरवराः सदारकाः ।
यथा यथा ते ददृशुर्महावने रामस्य पर्णौघविनिर्मितान् गृहान् ॥ ३४ ॥

क्व स प्रभुर्बाहुबलोर्जितो युवा समस्तभूभोगकदम्बकोचितः ।
गृहाः क्व चेमे खलु वन्यवृत्तिभिर्निवेष्टुमर्हाः फलमात्रभोजनैः ॥ ३५ ॥

हा देव राजेन्द्र शिरो विभूषणस्फुरन्महानीलमणे बलोर्जित ।
अरण्यवृत्तिस्तव नोचिताप्रभो पदानतक्ष्मापतिकोटिपूजित ॥ ३६ ॥

जिताखिलक्ष्मापतिमौलिमालिका मणिप्रभोद्भासितपादपङ्कज ।
वसन्नरण्ये प्रियया समन्वितः फलानि भुङ्क्षे किमु वन्यशाखिनाम् ॥ ३७ ॥

हा देवि राजेन्द्रसुते रमाधिके प्रसूनशय्याविनिवेशनोचिते ।
शिरीषपुष्पाधिकदेहमार्दवे निद्रातुमर्हासि वने शिलातले ॥ ३८ ॥

हा वीर लक्ष्मणमहासुखभोगयोग्य नीलोत्पलाधिकमनोज्ञतनो तवाद्य ।
भ्रातुर्वने दयितया सह निद्रितस्य संरक्षणो नयनयो क्षणदाः प्रयान्ति ॥ ३९ ॥

कटीनिबद्धतूणस्य चापहस्तस्य जाग्रतः ।
तव प्राहरिकस्याद्य सहायोऽपीह नापरः ॥ ४० ॥

प्रचण्डतममार्तण्डकिरणैस्तापिता वने ।
तरुच्छायामधिश्रित्य यूयं विश्रमथ क्षणम् ॥ ४१ ॥

धिक् तां कैकेयतनयां लोभोपहतमानसाम् ।
यया सुखोचिता यूयं वन्यवृत्तौ नियोजिताः ॥ ४२ ॥

एवं रटन्तो व्रजवासिवर्याः प्रियस्य दुःखोपहतैर्मनोभिः ।
ययुः समंताद्विनिभालयन्तस्तास्ता वने पर्णमयीः सुशालाः ॥ ४३ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सुखितागमनो नामैकषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

द्विषष्ठितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तमसायाः परं कूलं व्रजवासिकुलाकुलम् ।
श्रीरामगुणसंगीतकारिगोपीजनावृतम् ॥ १ ॥

वीक्ष्य गोपालप्रबराः प्रमोदवनवास्तवः ।
आनन्दितहृदो जाताः सर्वं एव सदारकाः ॥ २ ॥

अहो अमीषां भाग्यानि तमसातीरवासिनाम् ।
रामैकतानचित्ता ये विषयेभ्यः पराङ्मुखाः ॥ ३ ॥

सुखितव्रजवासिन्यो गोपकान्ताः समुत्सुकाः ।
तमसातीरगोपीभिर्मिलिताः प्रेमवृत्तिभिः ॥ ४ ॥

ताभ्यस्तां कथयामासुः प्रेमलीलां सीतापतेः ।
रात्रिरासविलासाढ्यामनन्यानुग्रहोद्भवाम् ॥ ५ ॥

संगम्य ताभिः सुखितस्य गोप्यो रहः कथासंश्रुतिमत्सरा अपि ।
अतुल्यभाग्योदयदर्शनेन स्वतुल्यभावाः प्रशशंसुरेकदा ॥ ६ ॥

तासां मनःप्रेमनिभालयन्त्यो रमेश्वरानुग्रहमात्रलभ्यम् ।
फलं च तादृक् सहमुक्तिलाभं सुविस्मिता एव चिरं बभूवुः ॥ ७ ॥

ततो निषादराजस्य गुहस्य विषये वने ।
तदिंगुदीतरोर्मूलमासाद्य प्रेमकातरः ॥ ८ ॥

अवात्सीत्सुखितो गोप आभीरबलसंवृतः ।
तत्रत्यं चरितं पश्यन् सम्प्रमुग्ध इवाधिकम् ॥ ९ ॥

तत्र तस्य निषादेन्द्रः संगतोऽभूद् गुहाभिधः ।
श्रीरामभक्तिसम्भूतपुलकाङ्कुरसंवृतः ॥ १० ॥

गुह उवाच

अहो भाग्यवतां मौले सुखमास्से प्रमुद्वने ।
यत्र ते सदने रामः स्वामी मे चिरमावसत् ॥ ११ ॥

गोपचूड़ामणे नित्यं धन्योऽसि धरणीतले ।
रामवात्सल्यभावैकरसामृतनिधिर्भवान् ॥ १२ ॥

त्वद्गृहे रामचन्द्रोऽश्नन् नवनीतं पयो दधि ।
तुच्छीकृत महाभोगः प्रापासाधारणीं मुदम् ॥ १३ ॥

दृष्ट्वा तव मनःप्रेम क्षेमदो रामचन्द्रमाः ।
निबद्धहृदयोऽवात्सीन्नित्यमेव प्रमुद्वने ॥ १४ ॥

अमी आभीरदाराश्च धन्या एव धरातले ।
सुदुर्लभोऽपि रामेन्दुर्याभिः प्रेम्णा वशीकृतः ॥ १५ ॥

इदानीमपि वश्चित्तं मन्ये रामैकगोचरम् ।
यत्सर्वस्वमुपादाय प्रियमेवानुगच्छथ ॥ १६ ॥

युष्माकं विषयाः प्राणा इन्द्रियाणि धनं गृहाः ।
रामैकताना दृश्यन्ते सुहृद्दारसुतादयः ॥ १७ ॥

एवं सर्वात्मनायेषामात्मा रामे समर्पितः ।
तेषामात्मनि रामोऽपि कथं नात्मानमर्पयेत् ॥ १८ ॥

धन्याःस्थ कृतकृत्याः स्थ यूयं भाग्यवतां वराः ।
नित्यमात्मप्रदो येषामखिलात्मा रघूद्वहः ॥ १९ ॥

यूयमेवाभिजानीथ रत्यास्वादं रघूद्वहे ।
यं प्राप्य शंकरोऽप्यासीदनन्यविषयस्पृहः ॥ २० ॥

वैकुण्ठादुत्तमं मन्ये सुन्दरं तत्प्रमुद्वनम् ।
यत्तत्रैव रमा नित्यं सेवते श्रीरघूद्वहम् ॥ २१ ॥

इत्थं स रामभक्तेन संस्तुतः सुखितश्चिरम् ।
उवाच मधुरां वाचमवलोक्य तदाननम् ॥ २२ ॥

अये निषादराज त्वं भाग्यवानसि भूतले ।
राज्येऽपि निःस्पृहो रामः सम्यग्येनावलोकितः ॥ २३ ॥

अत्रेङ्गुदीतरोर्मूले वसन् रामस्त्वया न किम् ।
निर्बन्धेन गृहं नीतः सम्यग् भोगोपभुक्तये ॥ २४ ॥

ननु श्रृण्मोऽत्ररामेण जलमात्रमुपाशितम् ।
तत्किमेतादृशं कष्टं प्रियस्य समुपस्थितम् ॥ २५ ॥

ननु भूतल एवेह संसुप्तः प्रियया सह ।
जानीमो नैव केनापि मनःप्रेम्णा निवेदितः ॥ २६ ॥

अदत्तमपि योऽस्माकं चोरयत्याहि तं दधि ।
दीयमानोऽपि विषयस्तस्मै नान्यस्य रोचते ॥ २७ ॥

अथवान्यैव मर्यादा रामेणात्रावलम्बिता ।
तामेवानुसृतो नित्यं तादृगेवात्र चेष्टते ॥ २८ ॥

इतिप्रेमाप्लुतैर्वाक्यैः सुखितेन्द्रेण भाषितः ।
विस्मतोऽभूद् गुहो वीक्ष्य तत्प्रेम व्रजवासिनाम् ॥ २९ ॥

स तेभ्यः षड्रसं भोज्यं मत्स्यान् मांसं सुरां तथा ।
स्वदेशोत्थं नवं वस्तु निषादेन्द्र उपाहरत् ॥ ३० ॥

तं रामभक्ति इति चेतसि संविभाव्य प्रीतान्तरः सुखितगोपपर्तिविशेषात् ।
अङ्गीचकार तदुपाहृतमन्नराशिं सुस्वादु षड्रसमपीच्य चतुर्विधं सः ॥ ३१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सुखित-गुहसंगमो नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

●

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ नावां सहस्रेण गुहोपनमितेन सः ।
भागीरथीं समुत्तीर्य परं पारमुपेयिवान् ॥ १ ॥

गोपानां तद्बलं भूरि शकटीवृषभाकुलम् ।
अतरज्जह्नुजां नौभिः साधनैः किं नु दुर्घटम् ॥ २ ॥

तेष्वेव रामजानक्योरावासोटजसद्मसु ।
पश्यन्तो महतीं शोभां भारद्वाजाश्रमं गताः ॥ ३ ॥

तत्र माङ्गल्यया सार्द्धं सस्नौ तीर्थे सितासिते ।
अदात् सुखितगोपेन्द्रो द्विजेभ्यः कोटिशश्च गाः ॥ ४ ॥

तमागतमुपश्रुत्य भारद्वाजो महामुनिः ।
अगृह्णात् परया प्रीत्या परमाहृतमानसः ॥ ५ ॥

तमातिथ्येन जगृहे गोपराजं महामुनिः ।
उपविष्टं सुखेनाथ व्याहरच्छुभया गिरा ॥ ६ ॥

त्वय्येव रघुवर्यस्य परं प्रेम विजृम्भते ।
तदेकवश्य एवासौ निरपेक्षो जगत्त्रये ॥ ७ ॥

भाग्येन खलु दृष्टोऽसि त्वं गोपनृपते मया ।
क्व नु रामप्रिया दृश्याः प्रेमापूरितमानसाः ॥ ८ ॥

त्वयैव शोभतेऽत्यर्थं गोपेन्द्र प्रमुदाटवी ।
नवं नवं महं सूते शृणुमः संततं वयम् ॥ ९ ॥

अपास्य ममतामुच्चैर्गृहेषु स्वजनेषु च ।
श्रेयोऽर्थी किं न सेवेत भवतस्तत्प्रमुद्वनम् ॥ १० ॥

साक्षाद्वै रामभवनं स्वर्गादतिमनोहरम् ।
प्रेमपाठलसत्कण्ठकलकण्ठकुलाकुलम् ॥ ११ ॥

जाने न तत्समं धाम क्वचिदस्ति महीतले ।
तथापि स्वगृहाशाभिर्ग्रस्ता इव वयं सखे ॥ १२ ॥

येभ्योभवान् कृपयते गोपवंशशिखामणे ।
कतिचित्ते सुकृतिनो निवसन्ति प्रमुद्वने ॥ १३ ॥

कर्मणां सांख्य योगानामुपासनशुभाध्वनाम् ।
दूरे फलं संचिनुषे रामप्रेमरसामृतम् ॥ १४ ॥

न ब्रह्मशिवशेषाद्या लभन्ते श्रेय ईदृशम् ।
यादृशं भवंता लब्धं श्रीरामप्रेमसंचितम् ॥ १५ ॥

इति स्तुत्वा मुनिस्तस्य प्रेममानसमुत्तमम् ।
तां रात्रिं तत्र तत्सार्द्धं चक्रे गोष्ठीं रसोत्तराम् ॥ १६ ॥

ततः प्रभाते संजाते मुनिदिष्टेन वर्त्मना ।
जगाम यमुनां तीर्त्वा गोपराजो महद्वनम् ॥ १७ ॥

अतिक्रम्याटवीं नीलां हरित्पर्णमयैर्द्रुमैः ।
तमेकवटमासाद्य मुमुदे गोकुलेश्वरः ॥ १८ ॥

यत्र रामः पुराश्रान्तः पथि स्वप्रिययान्वितः ।
सम्प्राप्य शीललच्छायमापेदे विश्रमं क्षणम् ॥ १९ ॥

अथाससाद गोपेन्द्रः शैलराजं मनोरमम् ।
नभः सानुसमूहेन समंताद्व्याप्य संस्थितम् ॥ २० ॥

श्वेतपीतहरिद्रक्तनानाशिखरशोभितम् ।
सर्वस्वमिव मेदिन्या गर्भस्थं बहिरुद्गतम् ॥ २१ ॥

सद्रत्नशिखरस्तम्भत्विषा पूरितदिक्तटम् ।
छुरन्तमिव चाकाशं दिवारात्रिप्रकाशया ॥ २२ ॥

आलिङ्गन्तमिवार्केन्दू शिखरैरुच्छ्रितैर्भुजैः ।
क्वचित्कर्पूरधवलं क्वचित्सिन्दूरशोणितम् ॥ २३ ॥

सरःसु विकचाम्भोजैर्हसन्तमिव सर्वतः ।
भणन्तमिव सत्सूक्तीः कोकिलाकाकलीरवैः ॥ २४ ॥

पश्यन्तमिव शोभां स्वां चन्द्रकैर्वनकेकिनाम् ।
स्पृशन्तमिव दिक्कान्ताः समंतान्निजपालिभिः ॥ २५ ॥

काननैः पत्रसंछन्नैर्वसानमिव वाससी ।
सर्वकौतूहलमयं सर्वशोभासमन्वितम् ॥ २६ ॥

मन्दाकिनीजलस्रोतःसिक्तपुष्टमहीरुहम् ।
सर्वतोहंसचक्राह्वसारसौघनिनादितम् ॥ २७ ॥
रत्नवैदूर्यभित्तित्विट्परिशोभितविग्रहम् ।
जाम्बूनदमयैः श्रृङ्गैः क्वाप्यावृतनभस्तलम् ॥ २८ ॥
आसाद्य चित्रशिखरं गिरिमद्वितीय श्रीशोभितं मुमुदिरे हृदि गोपवर्याः ।
श्रीरामचन्द्रमुखचन्द्रनिरीक्षणोत्थ भूयोमुदामभवदागम एव चैषाम् ॥२९॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे व्रजवासिचित्रकूटागमनो नाम त्रिषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

●

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

रामचन्द्रस्य तत्स्थानमापृच्छन्तो व्रजौकसः ।
तापसान् वनवृत्तींश्च तत्रैव समुपाययुः ॥ १ ॥
पुरोगः सुखितस्तेषां व्रजवासिकुलैर्वृतः ।
रामस्यावासमापृच्छन् विचचार महीधरे ॥ २ ॥
गोपा मन्दाकिनीं वीक्ष्य महोर्मिशतसंकुलाम् ।
तत्संगिमरुदापृक्ता बभूवुर्लब्धविश्रमाः ॥ ३ ॥
पुरः समूहशस्तेषां गोपानामुपसर्पताम् ।
सम्मर्दः सुमहानासीच्चित्रकूटमहीधरे ॥ ४ ॥
श्रृङ्गवेणुभवं नादं तेषामाश्रुत्य पर्वते ।
रामः सम्प्रेषयामास किमेतदिति लक्ष्मणम् ॥ ५ ॥
पुरस्ताल्लक्ष्मणो वीक्ष्य सुखिताद्यान् व्रजौकसः ।
जहर्षमनसा पूर्वप्रेमसंस्मरणातुरः ॥ ६ ॥
सदूराद्गोपशार्दूलं सुखितं वीक्ष्य हर्षितः ।
शीघ्रं समुपसर्प्याथ सस्वजे प्रेमविह्वलः ॥ ७ ॥
जटिलं वल्कलधरमजिनाम्बरधारिणम् ।
तं दृष्ट्वा साश्रुनयनो बभूव सुखितेश्वरः ॥ ८ ॥
माङ्गल्यादयास्ततोगोपीर्वात्सल्यरसनिर्भराः ।
पर्यष्वजत सौमित्रिः प्रत्येकं प्रेमविह्वलाः ॥ ९ ॥

व्रजदारान् समालोक्य लक्ष्मणः प्रेमविह्वलः ।
आलिलिङ्ग स रोमाञ्चस्विद्यच्छिथिलविग्रहः ॥ १० ॥

लक्ष्मण उवाच

अहो युष्माकमाभीराः सुमुहानयमुद्यमः ।
यद्गृहान् सम्परित्यज्य सर्व एव समागताः ॥ ११ ॥

दारैः सुतैर्गृहैः प्राणैः सुहृद्भिर्बन्धुभिस्तथा ।
प्रपन्ना सततं यूयं राम एव खिलात्मना ॥ १२ ॥

एतद्वोदुर्घटं किं नु सर्वेत्यक्त्वा यदागताः ।
येषां प्रियसुहृद्रामो वसत्यत्र गिरौ वने ॥ १३ ॥

गोपा ऊचु

किमस्माकं व्रजे तत्र किं गृहैर्वापि किं धनैः ।
येषां सर्वस्वभूतौ वां शैलेऽस्मिन्नधितिष्ठतः ॥ १४ ॥

यत्रैव कुशली रामस्तत्र सर्वात्मना वयम् ।
जीवामस्तत्पदच्छायामवलम्ब्य सुशीतलाम् ॥ १५ ॥

ततस्तेऽन्योन्यमापृच्छ्य कुशलं संगतप्रियाः ।
क्षणं परस्परालोकनिर्वृता मौनमासिरे ॥ १६ ॥

ततः सुखितगोपालो निवार्यालपतः स्वकान् ।
इदमूचे परिष्वज्य रामानुजमुदारधीः ॥ १७ ॥

किमेतत्पुत्र भवतां राज्ञां विपिनसेवनम् ।
जटाधारणमेवापि वल्कलाजिनधारणम् ॥ १८ ॥

एनं वो वेषमालोक्य दीर्यतीव मनो मम ।
अपि क्व नः प्रियतमो रामो यं द्रष्टुमागताः ॥ १९ ॥

लक्ष्मण उवाच

सर्व जानीथ नो वृत्तं कैकेय्या यदनुष्ठितम् ।
पुरो व्रजामि रामस्य वक्तुं युष्मत्समागमम् ॥ २० ॥

ततो हर्षसमुत्फुल्लहृदयः पुलकाञ्चितः ।
लक्ष्मणः पुरतो गत्वा रामायैतन्न्यवेदयत् ॥ २१ ॥

प्राप्तास्तेऽत्र प्रिया गोपाः प्रमोदवनवासिनः ।
सुखिताद्या महात्मानः[1] प्रेम्णाखलुवशीकृताः ॥ २२ ॥

यावत्यो व्रजगोप्यश्च ता अत्रैव समागताः ।
दारैः सुतैर्धनैः स्वेष्टबान्धवैः सर्व आगताः ॥ २३ ॥

---

१. महामानाः—मथु०, अयो० ।

येषां भवान् प्रियतमः प्राणेभ्योऽप्यधिकः प्रभो।
वने वसति ते किं वा गृहे तिष्ठेयुरातुराः॥ २४॥

यैर्भवान् सरयूतीरे विजह्रे श्रीप्रमुद्वने।
ते सखायः सुसम्प्राप्ताः सर्व एवात्र पर्वते॥ २५॥

पितरौ बान्धवाः सख्यः सखायः सुहृदस्तव।
सर्व एवात्र सम्प्राप्तास्तान् गृहाण यथानयम्॥ २६॥

सौमित्रेरितिवचनात्प्रमुद्वनस्थांस्तान् सर्वान् सुहृद उपागतान् स्वपार्श्वम्।
विज्ञाय प्रमुदितमानसो रमेशःस्वन्नाङ्गपुलकितविग्रहो बभूव॥ २७॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे व्रजवासिजनागमे चतुःषष्टितमोऽध्यायः। ६४॥

•

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तावत्सुखितगोपालो व्रजवासिजनैर्वृतः।
हर्षोत्फुल्लाक्षिवदनः पुरस्तात्समदृश्यत॥ १॥

दृष्ट्वैव तं रघुवरः संस्मृतप्रेमविह्वलः।
धावित्वा कतिचित्पादान् पर्यष्वजत साश्रुदृक्॥ २॥

परिष्वज्य चिरं तेन गोपेनोदश्रुचक्षुषा।
कांचित्मुदमवायान्तर्जानकीवल्लभः स्वयम्॥ ३॥

ततो ज्येष्ठतमां सर्वगोपीमण्डलवर्त्तिनीम्।
माङ्गल्यां समभिद्रुत्य पर्यष्वजत राघवः॥ ४॥

सुखितं चैव माङ्गल्यां नत्वा नत्वातिविह्वलः।
सर्वान् जेष्ठान् कनिष्ठांश्च सोऽग्रहीत् परमादृतः॥ ५॥

दृशा संतोषयामास सर्वास्ता व्रजगोपिकाः।
यासां प्रेमानुबन्धेन बद्ध एष निरन्तरम्॥ ६॥

ता अप्यमुं स्वदयितं शुद्धप्रेमरसाक्तया।
विरहोदीर्णया दृष्ट्या मोदयामासुरञ्जसा॥ ७॥

तं वीक्ष्य तापसमनल्पजटाकलापं वल्काजिनाम्बरधरं रघुवंशकेतुम्।
राजेन्द्रसूनुमखिलावनिभोगयोग्यं गोपालकाः किमपिदीनदृशो बभूवुः॥ ८॥

कैकेयीमभिसंधाय दृशा सामर्षशोणया ।
ददृशुः स्तब्धनयनाः कोष्णोच्छ्वासा व्रजौकसः ।। ९ ।।

ततो रामः पर्णशालां नीत्वा सर्वान् व्रजौकसः ।
मह्रीयस्यजिरे तस्यां यथास्थानं न्यवेशयत् ।। १० ।।

उवाच जानकीं देवि प्रिया मे व्रजवासिनः ।
प्रमोदवनवास्तव्यास्तानैतान् परमादृता ।। ११ ।।

गृहाण निमिवंशाब्धिचान्द्रके सुहृदो मम ।
मदर्थं त्यक्तभवनान् विनिष्क्रान्तान् समूहशः ।। १२ ।।

इमौ तौ पितरौ वृद्धौ माङ्गल्यासुखितौ मम ।
मद्वात्सल्योदश्रुदृशौ मत्प्रेमरसवार्निधी ।। १३ ।।

अमी जनाश्च सर्वे मे प्रमोदवनवासिनः ।
इमारता गोपिकाः सर्वा मे प्रियाः प्रेमभूषिताः ।। १४ ।।

इत्युक्ता परमोदारा मैथिली रुचिरस्मिता ।
संजगामतरां प्रेम्णा यथार्हं व्रजवासिभिः ।। १५ ।।

तेभ्यः प्रियेभ्यः सौमित्रिरुपकल्पितवान् पृथक् ।
आसनानि मनोज्ञानि वनवेत्रदलाभिः ।। १६ ।।

सुनिविष्टांश्च सुप्रीतान् विज्ञाय व्रजवासिनः ।
अपृच्छद् रघुशार्दूल इदं सुखितमादृतः ।। १७ ।।

अप्यास्ते प्रमुदाटवीतरुलतागुल्मावलीनां शुभं
गावो मे कुशलिन्य आत्तसरयूतीरावनीशाद्वलाः ।

नन्दिग्रामनिवासिनां च महतां गोपेश्वराणां शुभं
पालीग्रामनिवासिनश्च किमपि श्रीनन्दनस्यास्ति शम् ।। १८ ।।

तेषां मदेकतानानामन्येषां च व्रजौकसाम् ।
शुभमस्ति महाभागाः प्रमोदवनवासिनाम् ।। १९ ।।

आपृष्ट इति रामेण बभाषे सुखितेश्वरः ।
अस्ति सर्वत्र कुशलं प्रमोदविपिने प्रभो ।। २० ।।

त्वदधीनं सुखं किंतु त्वया दत्तं भविष्यति ।
चिरेण त्वद्वियुक्तानां सुमन्त्रेण हृतात्मनाम् ।। २१ ।।

यदवधि भवनेश प्रस्थितं कोसलायां तदवधि वनवल्लीवृक्षगुल्मादयोऽपि ।
त्वदमितविरहाग्निप्रोत्थसंतापभाजो ननु पिशगविशीर्णाकीर्णपर्णा बभूवुः ।।२२।।

गावश्च ते विरहदूनहृदो वितीर्ण हंभारवा अनशिताच्छहरित्तृणाश्च ।
शुष्कौध सोऽतिकरुणं रुदतोऽपि वत्सान् नैवाद्रियन्त इति चेतसि विद्धिराम ।।२३।।

येषां त्वदीयमुखचन्द्रसुधामवाप्य नित्यं दृशः परमनिर्वृतिभाग्यभाजः ।
तेषां प्रमोदवनवास्तुजुषां जनानां कल्पा इव प्रतिपदं दिवसाः प्रयान्ति ।।२४।।

विज्ञाप्यमेतदधुना रघुवर्य किंचिदस्माकमस्ति तव तीव्रवियोगभाजाम् ।
श्रीमन् पुनः प्रमुदकाननमेत्य वंशी निर्घोषसान्द्रसुधया ननु सिञ्चदीनान् ।।२५।।

ये दुर्गताः खगमृगद्रुमवल्लिलोकास्त्वद्विप्रयोगरुजितंततसोपतापाः ।
तान् पालयस्व शरणान् रघुसार्वभौम बक्रेन्दुमन्दहसितामृतपूरसेकैः ।। २६ ।।

किं दुर्लभं तव विभो यदि हेलितोऽसि कैकेयराजसुतयात्मसहेनगत्या ।
नैवास्तु ते धरणिराज्यमपारभारं श्रीमत्प्रमोदबनराज्यमिदं प्रशाधि ।। २७ ।।

मूर्द्ध्नि जटारविवहोऽमितभूतिलिप्तो वल्काजिनावृततनुर्वनगोचरस्त्वम् ।
स्वानन्दनिर्वृतिधरोऽपि निकाममीश प्रोद्वेजयस्यविरतं निजभक्तचेतः ।। २८ ।।

गाः कोटिशः किमपिकामदुघास्त्वदीयास्ताः पालयन् प्रमुदकाननमध्यवर्ती ।
निःशङ्कमास्व विहरन् निजबन्धुवर्गैः स्वानां हरन्नमितमीश्वर चित्ततो[1]हम् ।।२९।।

**इति श्रीमदादिरामाणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सुखित-
प्रलापे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।। ६५ ।।**

❀

षट्षष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

सुखितोदीरितं वाक्यमाकर्ण्य रघुराड्विभुः ।
उवाच स्मितसानन्दस्फुरद्वदनचन्द्रमाः ।। १ ।।

स्थानेऽसि संगतस्तात सबन्धुरिह सम्प्रति ।
वात्सल्योदर्कमधुरं सदैव भवतो मनः ।। २ ।।

मात्रा पित्रा सुहृद्भ्रातृबन्धुभिः सज्जनैरपि ।
समुज्झितस्य मे तात त्वमेवैकोऽस्यवेक्षकः ।। ३ ।।

अकृत्रिमो मनोभावस्तव तात निरन्तरम् ।
पुष्णाति मां भवे शश्वदुपप्लवविदूषितम् ।। ४ ।।

अद्य मे मानसस्तोदः प्रशान्तिमगमत् किल ।
दृष्ट्वा भवन्मुखाम्भोजममन्दकरुणोदयम् ।। ५ ।।

---

१. तोहम् व्यथाम ।

अप्यस्ति सर्वतो वार्तं प्रमोदविपिनान्तरे ।
अस्माकं तस्य घोषस्य तथा श्रीनन्दनस्य च ॥ ६ ॥

वर्षीयांसो गोपवरा येऽस्मद्घोषनिवासिनः ।
तेषां पुत्रकलत्रादिविषये सर्वतः शुभम् ॥ ७ ॥

श्रीनन्दनस्यघोषे च य उदारा गवांदुहः ।
तेषां वर्वर्ति कुशलं सर्वतः सर्ववस्तुषु ॥ ८ ॥

श्रीनन्दनस्य घोषेशी महोदारा महामनाः ।
वृद्धा श्रीराजिनी गोपी सर्वतः सुखमेधते ॥ ९ ॥

अन्ये च सुखमेधन्ते नरनारी जनाः सदा ।
येषां मदेकविषयं मनः प्रेमकरम्बितम् ॥ १० ॥

यदवधि भवतां मे विप्रयोगः प्रवृत्तः सकलविषयसार्थोदास्यकारी सुतीव्रः ।
तदवधि दधिदुग्धस्वादुमिष्टान्नमुक्तिप्रचुरहृदभिलाषः पूर्यते क्वापि नैव ॥११॥

किमपि रघुवरस्याशेषराज्योपपन्नाः श्रियउपचितभोगा वासवस्येव पूर्णाः ।
मम तु मनसि युष्मत्कामधेनुप्रभूतैः सुमधुरदधिदुग्धैरेव तृप्तिर्विशिष्टा ॥१२॥

ध्यायं ध्यायमजस्रमुत्सुकमनास्त्वद्घोषवास्तूद्भवान्
भोगांस्तान् दधिदुग्धमुग्धनवनीतान्नादिसत्सम्पदाम् ।
सोद्वेगानतिवाहयामि दिवसानेतानहं कांश्चन
प्रेमापूरितमानसान् प्रतिपदं ध्यायन् सुहृद्बान्धवान् ॥ १३ ॥

अथोवाच स गोपालो रामं सरसिजेक्षणम् ।
संस्मारितपुरावृत्त उत्कण्ठाकुलमानसः ॥ १४ ॥

त्वदेकतानमनसां सर्वेषामपि गोदुहाम् ।
निवृत्तान्याभिलाषाणां वार्तमस्ति प्रमुद्वने ॥ १५ ॥

नराणां चैव नारीणां त्वयैवापहृतात्मनाम् ।
श्रीनन्दनस्य चास्माकं घोषयोरुभयोः शुभम् ॥ १६ ॥

पालीग्रामाधिपतिना श्रीनन्दनमणीषिणा ।
पृष्टोऽसि कुशलं श्रीमन् बहुशो विहिताशिषा ॥ १७ ॥

तवैव कुशलं राम सर्वेषामभिकाङ्क्षितम् ।
तत्रत्यं कुशलं भूयस्त्वदागमनमात्रजम् ॥ १८ ॥

सर्वैरपीदमुक्तोऽसि विदूनैर्विरहात्तव ।
कदाऽऽगत्य प्रभो स्वानां वदनं दर्शयिष्यसि ॥ १९ ॥

येऽत्यावेगपराधीना विरहव्याधिविद्रुताः ।
त इमेऽह्नाय सद्मानि विहायेह समागताः ॥ २० ॥

असमर्थाः समागन्तुं येऽपितत्र निवासिनः ।
तेषामपि तनुस्तत्र मनस्तु त्वयि संततम् ॥ २१ ॥

एवं प्रमोदविपिनं निखिलं त्वदीयविश्लेषजातसुमहापदि भूरिमग्नम् ।
अप्युद्दिधीर्षसि न वा नरराजसूनो संरक्षितं हि भवतैव पुराविपद्भ्यः ॥२२॥

कालाहिगरलाकीर्णं सारवं सलिलं पुरा ।
त्वयैव शोधितं राम निजजीवातुहेतवे ॥ २३ ॥

समंतात्कानने लग्नां वन्हिज्वालां महाभयाम् ।
विनिवार्य भवानेकः पर्यरक्षन्निजान् जनान् ॥ २४ ॥

प्रचण्डपांसुवर्षेण समंतादन्धकारितम् ।
राघव स्वानुभावेन पर्यरक्षद्व्रजं भवान् ॥ २५ ॥

कुपितेन्द्रकृतं वर्षमेकच्छत्रेण तत्क्षणात् ।
न्यवारयद्भवानेव जीवातुर्निजपज्जुषाम् ॥ २६ ॥

राक्षसानीकमत्युग्रं स्वानामतिभयप्रदम् ।
संजहार भवान् राम निजवीर्यसुसंवृतः ॥ २७ ॥

इत्यनेकविधापद्भ्यस्त्वया स्वीयाभिरक्षणम् ।
बहुधा विहितं राम विस्मर्तव्यं कदापि न ॥ २८ ॥

साम्प्रतं स्वयमागत्य सदा सम्फुल्लभूरुहे ।
प्रमुद्वने चिरान्नाथ पालनीयास्त्वया निजाः ॥ २९ ॥

येषां भवानेवगतिरैहिकी पारलोकिकी ।
तेष्वौदासीन्यमालम्ब्य वर्तितव्यं कथं भवेत् ॥ ३० ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे संदेशकथने षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

रामो जनकजां वीक्ष्य वाक्यमेतदवोचत ।
एतान् मम सुहृद्बन्धून् प्रीत्या भोजय सुन्दरि ॥ १ ॥

त्वं हि पाकेषु कुशला पीयूषस्वादुवस्तुषु ।
अलौकिकेषु भव्येषु षड्रसेषु च भूरिषु ॥ २ ॥

चतुर्विधेषु दिव्येषु पक्वान्नेषु रसेषु च ।
अनेकसंविधाढ्येषु नानारूपेषु चारुषु ॥ ३ ॥

दधिमध्वाज्यपृक्तेषु मधुरेषु सहस्रसः ।
अनग्निपाकपक्वेषु फलशाकादिभूरिषु ॥ ४ ॥

मुदावहेषु रुच्येषु संक्लृप्तेषु च सर्वशः ।
मद्भक्तलक्ष्मीदृष्टेषु पुनत्सुबहिरन्तरम् ॥ ५ ॥

स्वाद्वन्नफलसम्भारैस्तैरेतान् भोजय प्रिये ।
पत्रशाकादिरुचिरैः षड्रसैश्च चतुर्विधैः ॥ ६ ॥

सत्पात्रसिद्धैः पूतैश्च विविधानेकभक्षणैः ।
सानुगं सपरीवारमामन्त्र्य सुखितेश्वरम् ॥ ७ ॥

भोजयस्व विशेषेण माङ्गल्यां मम मातरम् ।
ययोर्गृहे मया भुक्ता भोगाश्च विविधा रसाः ॥ ८ ॥

ताविमौ मद्गृहं प्राप्तौ पर्णशालाभिधं वने ।
आनन्दय स्वानुभावै राजपुत्रि विशेषतः ॥ ९ ॥

इत्युक्त्वा जानकीं रामो लक्ष्मणं प्राह सत्त्वरम् ।
रच्यन्तां विविधा भोगा गोपानां सुखहेतवे ॥ १० ॥

तथेति स प्रभोराज्ञां शिरसाऽऽदाय लक्ष्मणः ।
स्वां शक्तिमद्भुताकारां दध्यौ मीलितलोचनः ॥ ११ ॥

जानकी च महाभागा सस्मार स्वसखीस्तदा ।
आविरासुः समस्तास्ताः स्मरणानुग्रहक्षणे ॥ १२ ॥

कमलेशीप्रभृतयो नदीरूपा मनोहराः ।
सुवर्णहलकृष्टायां जनकस्य महीपतेः ॥ १३ ॥

यज्ञवेद्यां पुरा जाताः कञ्जनेत्राः सहैव याः ।
बद्धाञ्जलिपुटाः सर्वाः पुरस्तात्समुपस्थिताः ॥ १४ ॥

चन्द्राननाः पद्मदृशः सुरूपाः सुवर्णचाम्पेयकचारुगात्राः ।
स्मितत्विषा पर्वतकाननं तत्प्रकाशयन्त्यः स्तनभारनम्राः ॥ १५ ॥

नितम्बबिम्बोद्वहनप्रयत्नादालस्यभावाञ्चितचारुयानाः ।
भ्रूसंज्ञया मैथिलराजपुत्र्या बद्धादराः कार्यं सहस्रकर्त्र्यः ॥ १६ ॥

स्वयमाज्ञापयामास ताः सखीर्जनकात्मजा ।
सख्यो निमन्त्रिता अद्य राघवेन्द्रस्य बन्धवः ॥ १७ ॥

एतान् दिव्यमहाभोगैरात्मशक्तिप्रसाधितैः ।
सम्भोजयितुमिच्छामि भवत्यः साधयन्तुतान् ॥ १८ ॥

इत्युक्ताः स्मितमुख्यस्ताः सीतया राजकन्यया ।
चक्रुरात्मानुभावेन विविधा भोगसंविधाः ॥ १९ ॥

उद्दिदीपे गिरौ तस्मिन् प्रासादः सुमहोन्नतः ।
रत्नतोरणमालाभिरलंकृतनिकेतनः ॥ २० ॥

परिणाहिसमाबद्धरत्नोपलमहाजिरः ।
मणिकुट्टिमसंशोभी गवाक्षशतिसुन्दरः ॥ २१ ॥

समन्तोद्दीप्त सौवर्णप्राकार खचितैः शुभैः ।
महारत्नैर्मनोहारी भोगसम्भारसम्भृतः ॥ २२ ॥

संफुल्लानेकविटपिप्रसूनवरसौरभैः ।
गुञ्जद्भ्रमरपुञ्जाढ्यैर्गृहारामैरनेकशः ॥ २३ ॥

शोभितोऽन्तर्बहिश्चैव दिव्यस्त्रीनिवहाञ्चितः ।
दिव्यभोगसमायुक्तः सर्वरत्नसमन्वितः ॥ २४ ॥

अनङ्गोद्दीपनकरैः पदार्थैश्च सहस्रशः ।
अन्वितः सुमहाशालैरावासैश्चाप्यनेकशः ॥ २५ ॥

वलभीभवनोपेतस्तुङ्गवातायनान्वितः ।
अन्तर्बहिर्गृहैर्गूढैः सर्वभोगसमन्वितैः ॥ २६ ॥

सर्वर्तुसुखभोगार्हैरन्वितः कान्तिसंयुतः ।
निःश्रेणिकाभिस्तुङ्गाभिरासादितनभस्तलः ॥ २७ ॥

मुक्तामयीभिः सद्रत्ननिर्मिताभिः सुकान्तिभिः ।
महामारकतीभिश्च वैद्रुमीभिरनेकशः ॥ २८ ॥

सोपानिकाभिः पद्याभिर्भित्तिभिः सौधपङ्क्तिभिः ।
उज्जागरः सुशोभाढ्यो भूरिस्तम्भ समन्वितः ॥ २९ ॥

लक्ष्मणस्येच्छया सद्यो व्यजृम्भत महागिरौ ।
नभस्तल समालम्बी रत्नप्रासाद उत्तमः ॥ ३० ॥

सद्रत्नखचितानेकवापीकूपसरोवरः ।
संफुल्लकमलारण्यपरागमधुमारुतः ॥ ३१ ॥

सीतासखीनां विभवाः सद्यस्तत्र बभासिरे ।
उवाह कमलेशान्याः प्रवाहः पयसां भरैः ॥ ३२ ॥

तत्कूलकर्दमो जातः साक्षात्पायस उत्तमः ।
तटस्थास्तरवो रेजुः पक्वान्नफलशालिनः ॥ ३३ ॥

सुधास्वादुफलाः केचिद्भूरुहास्तत्क्षणे बभुः ।
अवहत् कौशिकीस्रोतः सितारसमयं क्षणात् ॥ ३४ ॥

अनेकेक्षुविकाराश्च जातास्तस्याः प्रवाहतः ।
यत्र कुत्रापि सुलभा भोगिनां व्रजवासिनाम् ॥ ३५ ॥

धोपवत्याः प्रवाहोऽभूत् सद्यो दधिमयस्तदा ।
स्वादूनि नवनीतानि प्रादुरासुरितस्ततः ॥ ३६ ॥

चन्द्रवर्णं सुधास्वादु दधि तस्या व्यशोभत ।
पीयूषाधिकसारं च नवनीतं ततोऽधिकम् ॥ ३७ ॥

द्युम्नायाः सरितः स्रोतः सान्द्रमधुमयं बभौ ।
अघवारा प्रवाहोऽभूदाज्यवाही मनोहरः ॥ ३८ ॥

सर्वास्ताः कामवाहिन्यो नद्यस्तत्राभवन् क्षणात् ।
स्वयं लक्ष्मीः सरिद्‌भूपा सर्वसम्पन्मयी बभौ ॥ ३९ ॥

नानापुष्परसोपेता नानामधुरसाञ्चिला ।
अनेकविधमैरेयवाहिनी रत्नकूलिनी ॥ ४० ॥

सुवर्णकर्दमोपेता स्वच्छशीतहिमोदका ।
फुल्लत्कमलकह्लारकुमुदारण्यसंयुता ॥ ४१ ॥

विकचामन्दमन्दारकुञ्जमण्डपमण्डिता ।
लतावितानसंशोभिद्वीपभूमिविभूषिता ॥ ४२ ॥

कूजत्कोकिलभृङ्गौघकेकिमण्डितकानना ।
मल्लिकावल्लिकाजुष्टभूरुहस्तोमकूलिनी ॥ ४३ ॥

एता जनकजासख्यो मूर्तिमत्यश्च संस्थिताः ।
शृङ्गारवेशरुचिरा नानोपायनपाणयः ॥ ४४ ॥

आज्ञापितार्थकारिण्यः स्मितमञ्जतमाननाः ।
नानाकेलिकलाभ्यस्ताः कौतूहलविशेषिताः ॥ ४५ ॥

[1]जगुस्तत्र कलंगीतं दिव्याः केचन गायकाः ।
नर्तक्यो ननृतुस्तत्र दिव्यवेशविभूषिताः[1] ॥ ४६ ॥

अवादयंश्च वाद्यानि नानावाद्यविचक्षणाः ।
इच्छया जानकीदेव्याः कौतूहलमवर्तत ॥ ४७ ॥

गीतवादित्रनृत्यादि तत्र दिव्यमवर्तत ।
अशोभततरां तत्र संफुल्लः कुसुमाकरः ॥ ४८ ॥

शोभा यादृच्छिकी सर्वा प्रावर्तत महागिरौ ।
रामेणक्रियमाणेऽस्मिन् सुखितातिथ्यकर्मणि ॥ ४९ ॥

१–१. हरितालेन मेटिनं—मधु० ।

चन्द्रचन्दनकाश्मीरकालागुरुभवा द्रवाः ।
पटवासाश्च वासांसि भूषणानि च भूरिशः ॥ ५० ॥

रत्नविद्रुममुक्तानां हीरकाणां स्फुरद्रुचाम् ।
मणीनां चैव जात्यानां माणिक्यानां सहस्रशः ॥ ५१ ॥

सम्भाराः पर्वते तस्मिन् व्यदृश्यन्त समंततः ।
आधित्यकोपत्यकाश्च कन्दराश्चैव पालयः ॥ ५२ ॥

प्रस्थाश्च चित्रकूटाद्रेर्बहिरन्तश्च भूमयः ।
रत्नदीपशिखासंघैर्भासिताः शुशुभुस्तराम् ॥ ५३ ॥

अभूदन्यदिवोद्भूतं रूपमद्रेः समंततः ।
अलौकिकश्रियोपेतं गोपानां हृदयङ्गमम् ॥ ५४ ॥

आतिथ्यं खलु सुखितवज्रेश्वरस्य श्रीरामे सपदि निजेच्छया चिकीर्षौ ।
श्रीरासीदभिनवसम्पदाभ्युपेता शैलस्याखिलसुखसार्थलाभयोग्या ॥ ५५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सुखितातिथ्यविधौ सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

रामः सुखितगोपेन्द्रमाबभाष इदं वचः ।
इयं ते कल्पिता तात मयातिथ्याय संविधा ॥ १ ॥

सानुगः सपरीवारः सबन्धुः ससुहृज्जनः ।
त्वमेतां संविधां तात विनियोक्तुमिहार्हसि ॥ २ ॥

अवगाह्य सरःस्वच्छसलिलेषु समंततः ।
धृताङ्गरागवसनभूषणो भुङ्क्ष्व भोजनम् ॥ ३ ॥

इह ते सार्थगा गोपा गोप्यश्च कृतमज्जनाः ।
भूषयन्तु वपूंष्यद्धा मणिकाञ्चनभूषणैः ॥ ४ ॥

धृताङ्गरागाः ससुखं दिव्यनूतनवाससः ।
दिव्यभोजनसामग्रीं भुञ्जतां तावका इह ॥ ५ ॥

यत्र कुत्रापि सौलभ्यं दिव्यभूषणवाससाम् ।
उद्वर्तनाङ्गरागाणां भोज्यानां चाप्यनेकशः ॥ ६ ॥

पिबन्तु दिव्यमैरेयं वहन्ति सरितोऽमलाः ।
तासां कूलनिकुञ्जेषु कल्पद्रुमतलेषु च ॥ ७ ॥

विश्रमन्तु व्रजजनाः कुर्वन्तु विविधाः कथाः ।
अश्नन्तु विविधान् भोगान् दिव्यभूषणभूषिताः ॥ ८ ॥

इमास्तात विजानीहि जानक्याः परिचारिकाः ।
तवातिथ्यविधानार्थमाहूता इह संगताः ॥ ९ ॥

इमाः परिचरिश्यन्ति गोपान् गोपीश्च सादरम् ।
स्नानाभ्यञ्जनसंस्कारभोजनादिषु कर्मसु ॥ १० ॥

माङ्गल्यका मे जननी ययाहं पोषितो व्रजे ।
सानुगा सपरीवारा भोगान् भुङ्क्तां यथोप्सितम् ॥ ११ ॥

इहं भुक्त्वातिसुलभा विविधा भोगसंविधाः ।
विहरन्तु चिरं गोपा गोप्यश्च प्रीतिपूर्वकम् ॥ १२ ॥

स्वयं करसरोजाभ्यां जानक्या परिपाचितम् ।
अन्नं चतुर्विधं स्वादु भवान् भुङ्क्तां यथेप्सितम् ॥ १३ ॥

अत्यर्थं सादरमना जनकस्य सुता त्वयि ।
आतिथ्यं कर्तुमिच्छन्ति पपाच विविधं स्वयम् ॥ १४ ॥

अयमति रमणीयश्चित्रकूटो महीध्रः शिखरनिकरशोभाव्याप्यदिङ्मण्डलाभ्रः ।
सुरतरुविपिनाढ्यः सर्वसम्पत्समेतो ननु विहरणयोग्यास्तावकानां जनानाम् ॥ १५ ॥

इह कल्पतरुच्छायमवलम्ब्य व्रजौकसः ।
मन्दाकिनीमरुद्वीचिवीजिता विगतश्रमा ॥ १६ ॥

विहरन्तु चिरं तात देशकालोचितैः सुखैः ।
इह स्मरन्तु सुप्रीताः प्रमुद्वनभवं सुखम् ॥ १७ ॥

गोपा गोप्यस्तथान्योन्यं विहृत्य सकुतूहलम् ।
गायन्तु कलनादेन शैलेन्द्रं गर्जयन्तु च ॥ १८ ॥

अमुष्य कन्दरास्वन्तर्ज्वलद्दिव्यौषधित्विषा ।
दीपप्रकाशरुचिरा यापयन्तु च यामिनीः ॥ १९ ॥

आभिः सार्द्धं मैथिलेन्द्रस्य पुत्री नित्यैकान्तावासतो बद्धमौना ।
अद्यालापैः प्रीतिपूर्वं मनोज्ञैः कंचित्क्रीडाकौशलं संव्यनक्तु ॥ २० ॥

सुचिरं गोपगोपीभिर्वियोगासह्यवेदनाम् ।
प्राप्तोऽहमद्य तत्संगाद्भविष्यामि चिरं सुखी ॥ २१ ॥

लोके प्रियजनैः सार्द्धं दुर्लभः खलु संगमः ।
स एव यस्मिन् भवति तद्दिनं सुदिनं भवेत् ॥ २२ ॥

त इमे मिलिताह्यद्य प्रिया मे व्रजवासिनः ।
नानेन सदृशः कश्चिद्दिवसो भविता मम ॥ २३ ॥

इत्युक्त्वा गोपशार्दूलं रघुवंशविभूषणः ।
उवाच लक्ष्मणं भूयः प्रेम्णा मसृणया गिरा ॥ २४ ॥

भोज्यन्तां मम मित्राणि सौमित्रे व्रजवासिनः ।
यथा तृप्येयुरखिला विविधैर्भोग्यवस्तुभिः ॥ २५ ॥

आज्ञापयतु सानन्दं देवी स्वाः परिचारिकाः ।
कमलेशीमुखा मुख्याः सेवार्थं व्रजवासिनाम् ॥ २६ ॥

भवान् परिचरत्वेतान् प्रियान् मे व्रजवासिनः ।
अहं परिचरिष्यामि स्वयमत्यर्थमादृतः ॥ २७ ॥

नन्वेते साधवो भक्ताः प्रीता मयि विशेषतः ।
मम प्रीत्येह सम्प्राप्ता महोदारा व्रजौकसः ॥ २८ ॥

यथा विशेषात्तृप्येयुः सर्वकामोपभोजिताः ।
तथा कार्यं त्वया वीर मया च मम भार्यया ॥ २९ ॥

अत्यादरेण प्रीत्या च सेवया विनयेन च ।
तोषणीयाः प्रयत्नेन प्रिया मे व्रजवासिनः ॥ ३० ॥

अपि स्मरसि किं न त्वं भ्रातस्तत्र वयं यथा ।
प्रमुद्वनेऽतिसुखिता उषिता बहुवत्सरान् ॥ ३१ ॥

तातेन गोकुलेन्द्रेण मात्रामाङ्गल्यया तथा ।
लालिता विविधान् भोगान् प्रीतिपूर्वमभुञ्ज्महि ॥ ३२ ॥

न तथाखिलभूमीशे कृतसप्रेमलालने ।
ताते दशरथेऽप्यद्धा वयं सानन्दमूषिम ॥ ३३ ॥

अन्यदेव हि चामीषां मयि प्रेमोदितं मनः ।
ये पुत्रदारवित्ताढ्यं गृहं त्यक्त्वेह संगताः ॥ ३४ ॥

नन्वमीषां मनोऽत्यन्तं मयि प्रेमैकबन्धुरम् ।
अतोऽहमपि चैतेषु सानुबन्धोऽस्मि सौहृदात् ॥ ३५ ॥

गन्तुमेतान् न दास्यामि बन्धून् मे व्रजवासिनः ।
इहैव वासयिष्यामि शैलेन्द्रे बहुवत्सरम् ॥ ३६ ॥

सर्वकामोदितैर्दिव्यैर्भोगैरेतान् मम प्रियान् ।
सेविष्ये सहजप्रेमवशीभूतान् व्रजौकसः ॥ ३७ ॥

इहायं विपुलो देशः सर्वकामःप्रपूरणः ।
गोपालानां गवां चैव गोपीनां च विशेषतः ॥ ३८ ॥

अविदूरेऽत्र शैलस्य मन्दाकिन्यास्तटावनौ ।
महद्वनमिदं भाति सर्वर्तु सुखवर्द्धनम् ॥ ३९ ॥

विपुलं गोकुलेन्द्रस्य वासयोग्यं समंततः ।
गवां गोष्ठोचितं स्थानं प्रमोदविपिनं यथा ॥ ४० ॥

तद्भवत्वहमत्रार्थे मन्त्रयिष्येऽमुना रहः ।
यथेहैव भवेद्वासः सुहृदां मे व्रजौकसाम् ॥ ४१ ॥

आतिथ्यं तु भवानद्य प्रथमा गमनाह्निकम् ।
विशेषेण करोत्वेषां विज्ञाप्यं तु पुनर्भवेत् ॥ ४२ ॥

निकेतने तु दिव्येऽस्मिंस्त्वया प्राकाम्यनिर्मिते ।
प्रवेशय व्रजाधीशं सानुगं ससुहृज्जनम् ॥ ४३ ॥

संस्कार्योद्वर्तनाभ्यङ्गमज्जनालेपनादिभिः ।
भोजयान्नानि दिव्यानि सत्पात्रेषु चतुर्विधम् ॥ ४४ ॥

पुरस्तात्सह गोपालैर्गोपराजं भजस्व भोः ।
ततो माङ्गल्यकां सर्वगोपीगणसमन्विताम् ॥ ४५ ॥

गोकुलेन्द्रं भवान् भ्रातः सेवतां सर्वभोगदः ।
माङ्गल्यकां जनकजा सह सर्वसखीजनैः ॥ ४६ ॥

इत्युक्तो रघुपतिना सुमुग्धवाक्यैः सौमित्रिः परिचारितुं समस्तभोगैः ।
गोपेन्द्रं सह सकलैः सुहृज्जनौघैः प्रासादं निखिलसुखान्वितं नियाय ॥ ४७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सुखितातिथ्यविधा-वष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तद्वीक्ष्य दिव्यभवनं दिव्यरत्नोपशोभितम् ।
विसिस्मियेतरां चित्ते गोपराजो महामनाः ॥ १ ॥

तत्रासनं ददौ रामो गोपेन्द्राय महात्मने ।
महार्हरत्नवैदूर्यमुक्तामाणिक्यमण्डितम् ॥ २ ॥

तत्रासीनः स शुशुभे गोपेन्द्रः प्रेमविह्वलः ।
गोपालमण्डलीमध्ये तारावृन्दे विधुर्यथा ॥ ३ ॥

प्राप्य माङ्गल्यका गोपी रामादिष्टं वरासनम् ।
गोपीगणान्तः शुशुभे रोहिणीवोडुमण्डले ॥ ४ ॥

गोपमण्डलमध्यस्थः सुखितेन्द्रो मुदान्वितः ।
गोपीमण्डलमध्यस्था माङ्गल्या च महामनाः ॥ ५ ॥

लब्ध्वा बहुतरं मानं शुशुभातेतरामुभौ ।
श्रीरामलक्ष्मणालोकसानन्दद्रुतमानसौ ॥ ६ ॥

अवगाह्य सुधाशुभ्रं सरसां वारि शीतलम् ।
दिव्याम्बरपरीधानः शुशुभे गोकुलेश्वरः ॥ ७ ॥

स्वयं लक्ष्म्या समानीतमङ्गरागं सुसौरभम् ।
विलिप्य सर्वगात्रेषु जगाहे परमां मुदम् ॥ ८ ॥

कापि वासांस्यानिनाय कापि भूषणाधोरणीम् ।
कान्त्रिन्माल्यानि दिव्यानि काचित्ताम्बूलभाजनम् ॥ ९ ॥

एवं ताः परिचेरुस्तं देव्यादिष्टास्तदालयः ।
मुमुदेऽतीव गोपेन्द्रो महर्द्धिमभिवीक्ष्य ताम् ॥ १० ॥

इत्थमेवाखिलान् गोपान् परिचेरुः सरिद्वराः ।
कृत्वा रूपाणि रम्याणि शतधा च सहस्रधा ॥ ११ ॥

सुस्नाता अनुलिप्ताश्च भूषिताः पटभूषणैः ।
पीतसुस्वादुमैरेयाः केलिमन्तः परस्परम् ॥ १२ ॥

प्रीत्या बुभुजिरे गोपाः स्निग्धमन्नं चतुर्विधम् ।
सुस्वादु षड्रसोपेतं भूयः समुपकल्पितम् ॥ १३ ॥

युक्तं बहुविधं चैव नानापात्रेषु कल्पितम् ।
सुसंस्कृतं सुधासिक्तं फलशाकादिसंयुतम् ॥ १४ ॥

विविधानि च मांसानि पशूनां पक्षिणां तथा ।
लवणार्द्रकहिङ्ग्वाढ्यमरिचाक्तानि कानिचित् ॥ १५ ॥

एकैकमेकैकगतामरुचिं लोपयद्भृशम् ।
अन्नं बहुविधं तत्र नीतं सीतासखीगणैः ॥ १६ ॥

बुभुजुर्गोपनिबहाः पङ्क्तिबन्धनिवेशिताः ।
हसन्तो हासयन्तश्च रामदर्शनसोत्सवाः ॥ १७ ॥

रामश्चलक्ष्मणश्चैव देवी च जनकात्मजा ।
गोपौघपरिचर्यायां बभूवुर्बद्धमानसाः ॥ १८ ॥

सादरं भगवान् रामो भोजयन् गोपमण्डलीम् ।
अतिकौतूहलोपेत आविष्ट इव चाभवत् ॥ १९ ॥

भोजयन्ती सखीवृन्दैर्जानकी गोपदारकान् ।
शुशुभेऽतितरां देवी रतिकोटिमनोहरा ॥ २० ॥

केचिन्मधुरसोन्मत्ता गोपाला जातसम्भ्रमाः ।
जागुर्जगर्जुर्ननृतुर्मुदा परवशीकृताः ॥ २१ ॥

गोपीगणा एकपङ्क्तिनिविष्टा दिव्यभोजनैः ।
सानन्दं भोजयामासुर्जानक्यास्ते सखीगणाः ॥ २२ ॥

निपीतमदिरामत्ता गोप्यः परमनिर्वृताः ।
चिक्रीडुर्जानकीशेन नयनैर्मदनातुराः ॥ २३ ॥

भुञ्जानाः स्वादुरुच्यानि दिव्यान्यन्नानि गोपिकाः ।
जगुः कान्तस्य चरितान्यद्भुतानि समूहशः ॥ २४ ॥

समृद्धिं यत्र कुत्रापि वीक्ष्य तां भोग्यवस्तुभिः ।
विस्मिताः सकलागोपाः कुर्वन्तो भोगमुत्तमम् ॥ २५ ॥

उत्फुल्लपङ्कजारण्यवातवीजितविग्रहाः ।
गोपा मुमुदिरे तत्र दिव्यभोगसमन्विताः ॥ २६ ॥

वासोभिर्विविधैश्चित्रैर्मणिकाञ्चनभूषणैः ।
अनेकैः रङ्गरागैश्च सिन्दूरैर्यावकैस्तथा ॥ २७ ॥

प्रसूनमकरन्दैश्च सुगन्धिभिरनेकशः ।
पुष्पतैलैर्बहुविधैः सुलभैर्यत्र कुत्रचित् ॥ २८ ॥

आत्मानं भूषयाञ्चक्रुर्गोप्यो मुदितमानसाः ।
मज्जनोद्वर्तनालेपभूषाकर्मविचक्षणाः ॥ २९ ॥

सखीभिरेव जानक्या भूषिता गोपसुभ्रुवः ।
नवप्रसाधनोपेताः शुशुभुः कमला इव ॥ ३० ॥

काश्चित्सरःसु संफुल्लकमलौघसुगन्धिषु ।
हंससारसचक्राह्वकादम्बकुलनादिषु ॥ ३१ ॥

जलकेलिरसंगोप्यः पुपुषुर्मुदिताशयाः ।
भूषिताः पङ्कजैर्नालैरवतेरुस्ततः क्रमात् ॥ ३२ ॥

चक्रु पुष्पावचयनं गिरौ संफुल्लभूरुहे ।
पारिजातलतापुष्पैर्जुगुम्फुर्ललिताः स्रजः ॥ ३३ ॥

एवं रात्रिंदिवं गोपा गोप्यश्च सुखिताशयाः ।
विजह्रुर्भूरिकेलीभिः कलाकोटिविचक्षणाः ॥ ३४ ॥

तत्र तेषां विनोदाय दिव्यगन्धर्वपुङ्गवाः ।
नानोपवीणयाञ्चक्रुः सुस्वरैः कोकिला इव ॥ ३५ ॥

कलस्वननिनादिन्यो नर्तक्यो नृत्यदक्षिणाः ।
गोपीजनविनोदायननृतुर्जगुरेव च ॥ ३६ ॥

वादयन्ति स्म वाद्यानि विद्याधर्यो ह्यनुत्तमाः ।
उच्चैर्मनांसि गोपीनां रञ्जयन्त्यो मुहुर्मुहुः ॥ ३७ ॥

पश्यन्त्यस्ताः प्रियतमं रामं गोपमृगीदृशः ।
चिरेण शमयामासुर्विरहाधिमनुत्तमम् ॥ ३८ ॥

वात्सल्यभावयुक्तानां कासांचिद्गोपसुभ्रुवाम् ।
पुपोष रामो वात्सल्यं दर्शयन् विनयं मुहुः ॥ ३९ ॥

शृङ्गारभावयुक्तानां मदनोन्मत्तचेतसाम् ।
मदं पुपोषगोपीनां कटाक्षै राम चन्द्रमाः ॥ ४० ॥

एवं मोदो महानासीत्तत्र तेषां परस्परम् ।
क्रीडतां गायतां चैव लयतां च रसोत्तरम् ॥ ४१ ॥

एकान्ते राममासाक्ष्य गोपकान्ता मदोद्धताः ।
आलिलिङ्गुश्चुचुम्बुश्च चिक्रीडुश्च विशेषतः ॥ ४२ ॥

प्रासादेष्वतुलमणिप्रभासितेपु ज्योत्स्नायां मृदुशयनीयलब्धनिद्राः ।
गोपाला विविधविलासमोदमग्ना भोगाट्या मुमुदुरनेकभावयुक्ताः ॥ ४३ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे गोपगोपीजनातिथ्ये एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

कृतातिथ्यो गोपराजः प्रातरुत्थाय सोत्सवः ।
मन्दाकिन्यां समाप्लुत्य कृतनित्यक्रियाविधिः ॥ १ ॥

सानुगः सहदारश्च सगोपालगणः सुखम् ।
स्वस्थः सुखासनासीन इदमाह रघूद्वहम् ॥ २ ॥

भरतस्तव यो भ्राता त्वद्विश्लेषरुजातुरः ।
नन्दिग्रामेऽधिवसति स इदानीं रघूद्वह ॥ ३ ॥

अस्माभिर्मिलितो नित्यं गायंल्लीलास्तव प्रभो ।
किंचिद्धैर्यसमालम्बी दिवसानत्यवाहयन् ॥ ४ ॥

कष्टेनास्मानिहागन्तुं ददौ धृतिविवर्जितः ।
दण्डवत् प्रणतिं तुभ्यं भक्तिप्रह्वश्चकार सः ॥ ५ ॥

सेवते सादरं भक्त्या तव पादाब्जपादुके ।
कष्टेन कालं नयति यावदागमनं तव ॥ ६ ॥

जटी विभूतिधवलो वल्कलाजिनसंवृतः ।
वन्यवृत्तिव्रतं बिभ्रत्त्यक्तभोगसुखश्च सः ॥ ७ ॥

स तवाज्ञां विना राम नास्माभिः सह सस्पृहः ।
इहाजगाम कैकेय्याः कर्मणा दुःखकर्षितः ॥ ८ ॥

लक्ष्मणं च प्रणतवान् सीतां च स हि भक्तिमान् ।
कष्टं तेन वियुक्तोऽस्मि त्वयेव रघुनन्दन ॥ ९ ॥

तपते पादुकायुग्मं तव दाशरथेऽधुना ।
प्रजानामीतिभीत्यादिप्रभावाद्विनिवारयन् ॥ १० ॥

सर्वतः कुशलं राम वर्वर्ति तव राष्ट्रके ।
तथापि त्वद्वियोगेन जनाः शान्ता इवाखिलाः ॥ ११ ॥

इति श्रुत्वा रघुपतिर्भरतोदन्तमादृतः ।
उवाच सुखितं रामः स्मृततत्प्रेम विह्वलः ॥ १२ ॥

सत्यं मम प्रियो भ्राता भरतः प्रीतिमान्मयि ।
कष्टमापतितं तस्मिन् सुखार्हे भृशमेकदा ॥ १३ ॥

क्व मदागमनं तात वने स्यात्केकयीगिरा ।
कुत्र प्रतिज्ञा नृपतेर्भवेद्वरयुगात्मिका ॥ १४ ॥

क्व च मद्विरहेणार्तः प्रेमार्द्रो नृपतिर्भवेत् ।
सर्वमात्मकृतं मन्ये भरते दुखःमीदृशम् ॥ १५ ॥

प्रिय इष्टः सुहृद्बन्धुर्भरतो भक्तिमान् मयि ।
तस्य दुःखेन गोपेन्द्र दुःखितोऽस्मि न संशयः ॥ १६ ॥

मयि जाते वन्यवृत्तौ भरतोऽपि तथाभवत् ।
अहो कष्टमभूत्सानां कोऽपि ना श्वासकोऽधुना ॥ १७ ॥

इत्युक्त्वा रघुशार्दूलो माङ्गल्यामिदमुक्तवान् ।
मातस्त्वया पुरात्यर्थं पालितोऽस्मि विशेषतः ॥ १८ ॥

दधिदुग्धघृताहारैर्मधुरैर्भूरिभोजनैः ।
तव हैयं गबीनस्य प्रभावो वर्ण्यतां कुतः ॥ १९ ॥

भग्नं धनुर्महेशस्य तद्बलेनैवभूयसा ।
ताडका च हता मातः क्रव्यादी घोरदर्शना ॥ २० ॥

सुबाहुमारीचमुखा मारिताश्चैव राक्षसाः ।
भूयश्चापि हनिष्यामि बहून् राक्षस पुङ्गवान् ॥ २१ ॥

केन विस्मर्यतां मातस्तव वात्सल्यमद्भुतम् ।
गर्भाधारणपोषाभ्यामसि नित्यं गरीयसी ॥ २२ ॥

उपालम्भा व्रजजनैर्मामुद्दिश्य कृतास्त्वयि ।
सोढवत्यसि तान् सर्वान् मातर्मत्प्रेमविह्वला ॥ २३ ॥

आगतापि मम प्रेम्णा मातस्त्वं निर्जने वने ।
सानुगा सपरीवारा मन्ये तत्करुणामहम् ॥ २४ ॥

क्व मेऽत्र निर्जनेऽरण्ये बन्धूनां दर्शनं प्रियम् ।
एतत्तव कृपाजातं मन्ये सुखमनुत्तमम् ॥ २५ ॥

एताः प्रीतिमतीर्नित्यं दृष्ट्वा गोपीर्गुणोत्तराः ।
अतीव मुदितोऽस्म्यद्धा यथा मातः प्रमुद्वने ॥ २६ ॥

आसां नित्यमहं मातः स्पृहयामीह दर्शनम् ।
प्रियमन्यन्न मे किंचिद्व्रजवासिजनाद्भुवि ॥ २७ ॥

इत्युक्त्वा वचनं रुच्यं रसिकेन्द्रो रघूद्वहः ।
पुनः पुनः कटाक्षेण मोदयामास गोपिकाः ॥ २८ ॥

माङ्गल्यामातरं रामः प्रेमवृत्तं ब्रुवन्मुहुः ।
तिर्यक्कटाक्षपातेन हर्षयामास ताः प्रियाः ॥ २९ ॥

पुनरूचे ब्रजाधीशं रामः कौतुकिताशयः ।
निवेदयामि ते तात सादरं श्रूयतां तु तत् ॥ ३० ॥

न भवेद्विप्रयोगो यस्तथा कार्यमतः परम् ।
संसारे वर्तमानानां प्रियःस्वेष्टसमागमः ॥ ३१ ॥

इति श्रुत्वा रघुपतेर्वाक्यमूचे व्रजेश्वरः ।
त्वामानेतु महं राम प्राप्तोऽस्मीह न संशयः ॥ ३२ ॥

किमर्थं राजशार्दूल वने वससि दुःखितः ।
स्वानां वितन्वन् दुःखानि ये तवाभ्युदयेच्छवः ॥ ३३ ॥

व्रजाप्रमुद्वने राम स्वान्बन्धून् परिपालय ।
ये त्वद्विरहदुःखेन क्षणकल्पशतोपमाः ॥ ३४ ॥

गावस्तव वियोगेन क्लिश्यन्ति रघुनन्दन ।
नित्यं प्रमुद्वनं यासां शून्यमन्धतमान्वितम् ॥ ३५ ॥

गावः खगः मृगा वृक्षा लता गुल्माः प्रमुद्वने ।
अन्धकारितदिक्चक्रदर्शिन्यः शून्यमासते ॥ ३६ ॥

एवं कदर्थनामाप त्वया विरहितो व्रजः ।
त्वत्समागमनाकाङ्क्षा वर्ततेऽन्याकुलो रुजा ॥ ३७ ॥

अतस्त्वां नेतुमखिलैर्नियुक्तो व्रजवल्लभ ।
प्राप्तोऽस्मीह चिरोत्कण्ठाविह्वलीभूतमानसः ॥ ३८ ॥

इति श्रुत्वा रघुवरः सुखितस्य वचोऽमृतम् ।
उवाच वदतां श्रेष्ठो मोहयन् वचनैर्मनः ॥ ३९ ॥

समीपे कोसलापुर्याः प्रमोदवनमस्ति तत् ।
अतः समुद्भजे तत्र वसन् नित्यं पुरीजनैः ॥ ४० ॥

समीपस्थ प्रिवज्ञाय मां कोसलपुरीजनाः ।
करिष्यन्ति सदा संगं ततस्तत्र वसामि हि ॥ ४१ ॥

सुदूरेऽयं गिरिवरः कोसलाया व्रजेश्वर ।
अतोऽत्रैव वसन्नित्यं विहरिष्यामि मामकैः ॥ ४२ ॥

अवकाशोऽत्र सुमहान् गोपानां च गवां च ते ।
अतोऽत्रैव निवस्तव्यं सानुगेन त्वया प्रभो ॥ ४३ ॥

यथा प्रमुद्वनं रुच्यं चित्रकूटस्तथा प्रभो ।
सर्वर्तुसुखदो नित्यं प्रचेलिममहोरुहः ॥ ४४ ॥

इह मन्दाकिनीतीरे नवशाद्वलिनी मही ।
बहुयोजनविस्तीर्णा गवांते सुखदायिनी ॥ ४५ ॥

इहास्व सुचिरं शैले गोपराज मुदं वह ।
मन्दाकिनीपयःसंगिमरुल्लहरिवीजितः ॥ ४६ ॥

अञ्चन्तु त्वां प्रतिपदं शैलद्रुमलता इह ।
मकरन्दरसस्राविपुष्पस्तवकराशिभिः ॥ ४७ ॥

प्रसार्य गोसहस्राणि मन्दाकिन्यास्तटावनौ ।
अधित्यकासु शैलस्य विहरन्त्विह तावकाः ॥ ४८ ॥

देवगन्धर्ववासाढ्ये सर्वर्तुसुखदायिनि ।
इह शैले व्रजाधीश सुचिरं वसतिं कुरु ॥ ४९ ॥

अमी ते प्रासादा मम सहजशक्त्या विरचिताः सरोवापीकूपोपवनसुखसम्पत्समुदिताः ।
सुखार्थं वास्तव्याश्चिरमिह भवन्तु व्रजपते वसन्नेतेषु त्वं वितनु नयनानन्दपटलीम् ॥५०॥

इमाः श्रीजानक्याः प्रविदधतु सख्यस्तव चिरं मयादिष्टाः पादोद्वहनमुखसेवासमुदयम् ।
स्वयं च त्वद्भक्त्या परिचरतु देवीयमसकृन् ममाम्बां माङ्गल्यां विहितविविधाज्ञापरवशा ॥५१॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे गोपेन्द्राधिवासनोक्तौ सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

●

एकसप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा रामस्य वचनं गोपराजो मुदान्वितः ।
चिरं विमृश्य विहसन्निदमाह महामतिः ॥ १ ॥

यथा वदसि मां राम तथा कार्यं मया किल ।
किंतु किं मे वदिष्यन्ति त्वद्वियुक्ता व्रजौकसः ॥ २ ॥

गतो रामं समाने तु स तु तत्रैव संस्थितः ।
इति धैर्येण रहिताः खिद्यन्ते व्रजवासिनः ॥ ३ ॥

त्वं वादयित्वा मुरलीं मनोज्ञां गाः कोटिशः पुरतः संविधाय ।
युतो वयस्यैरुपयन् वनान्तात कदा व्रजस्थान् सुखयिष्यतीश ॥ ४ ॥

इत्युत्कलिक या युक्तास्तत्रत्या रघुनन्दन ।
त्वदागमनमत्यर्थमभिकाङ्क्षन्ति सर्वदा ॥ ५ ॥

श्रीराम उवाच

अहं ननु गमिष्यामि तत्र तात प्रमुद्वनम् ।
कांश्चित्तु दिवसान् स्थातुमिहैव मम मानसम् ॥ ६ ॥

अत्यन्त रमणीयोऽयं चित्रकूट महीधरः ।
अतोदेवी जनकजात्यवतु नोत्सहते क्षणम् ॥ ७ ॥

लक्ष्मणश्चात्र . निवसन्मुदमाय निरन्तरम् ।
नातो विहातुकामोऽसौ गिरिमेनं मनोहरम् ॥ ८ ॥

अतो मद्वचनात्तात मित्रं श्रीनन्दनं तव ।
आकारयतरामत्र गोपमेकं निदेशय ॥ ९ ॥

येऽन्ये च तत्र वर्तन्ते त्वत्प्रिया व्रजवासिनः ।
तान् सानुगान् सदारांश्चात्राकारय सगोधनान् ॥ १० ॥

इत्युक्तः सुखिताधीशो रामचन्द्रस्य निश्चयम् ।
गिरिवासे प्रविज्ञाय शूरगोपमुवाच ह ॥ ११ ॥

गच्छ त्वं शूर सहसा नियुक्तो मे प्रमुद्वनम् ।
गोधनैः सहितं मित्रं श्रीनन्दनमिहानय ॥ १२ ॥

सदारं सपरीवारं सगोधनसुहृज्जनम् ।
वृद्धं श्रीनन्दनं गोपमिहानय महामते ॥ १३ ॥

इत्युक्तो गोपराजेन शूरगोपो व्रजं ययौ ।
गोपेन्द्रस्य तमादेशं श्रीनन्दने न्यवेदयत् ॥ १४ ॥

शूर उवाच

रामप्रेमपराधीनः सुखितेन्द्रो महामनाः ।
निवस्तुकामस्तत्रैव त्वामाहेदं व्रजाधिप ॥ १५ ॥

मन्मित्रं हि भवान् गोप श्रीनन्दन महामते !
त्वां विना नैव शक्तोऽहं स्थातुमत्र क्षणं सुखी ॥ १६ ॥

रामोऽपि भवतः साधो दर्शनायाभिकाङ्क्षति ।
अत आकारितोऽसि त्वमिह वस्तुं व्रजेश्वर ॥ १७ ॥

सानुगः सपरीवारः सदारः ससुहृज्जनः ।
सगोधन इहागत्य चिरं वसमहागिरौ ॥ १८ ॥

देशोऽयं विततः स्वच्छः सदा सुरभिसुन्दरः ।
फलपुष्पभरानम्रसुच्छायासुखदद्रुमः ॥ १९ ॥

सेवनीयतमः शैलः सुखवद्भिर्भवादृशैः ।
अत्यन्तरमणीयोऽसौ चित्रसानुशतधुतिः ॥ २० ॥

न जातु चित्त्वमिह वसन् मनोहरे गिरौ मनस्यरतिमुपैष्यसि क्वचित् ।
सरिद्वरा तरलतरङ्गधोरणीसुशीतलैर्मृदुपवनैर्निषेवितः ॥ २१ ॥

सुखितस्य वचस्तस्मै संनिवेद्य महामतिः ।
शूरोऽनुवर्णयामास स्वयं शिखरिणां वरम् ॥ २२ ॥

किं वर्णयामि तव तस्य गिरेः सुशोभां
श्रीनन्दन स्वयमुपेत्य तु वेत्स्यसि त्वम् ।
सानूनि यस्य मणिहेमभयानिशश्व-
दाभूषयन्ति गगनं विदिशो दिशश्च ॥ २३ ॥

कुञ्जानि नित्यमृतुराजनिषेवितानि संफुल्लभूरुहवशीकृतषट्पदानि ।
सद्मानि पुष्पधनुषो विरतं विभान्ति चित्रीकृतानि सुमनः फलपत्रलक्ष्म्या ॥२४॥

केकाधरैरिह निकुञ्जतले वसद्भिः प्रोद्घुष्यतेमदनमन्त्रगणो मनोज्ञः ।
आकर्ण्य तत्समदचेतस उद्विलासा विद्याधराजंहति नैव कदापि यक्षाः ॥ २५ ॥

किंनराः कनकसानुषु संस्थाः किंनरीसहचरा विलसन्तः ।
सादरं खलु दृशा कलयन्तिक्ष्मामधोवननिकुञ्जविचित्राम् ॥ २६ ॥

पक्षिणो बहुविधाः परस्परस्पर्धयेव कलयन्ति कूजितैः ।
नित्यमत्र मुखरा दिशो दश स्वर्वधूमणितमश्रुतं यथा ॥ २७ ॥

गण्डाचलान्निपततामिह निर्झराणामाराव आपतशिलातलपट्टिकासु ।
संव्याप्य कुञ्जभवनेषु तिरोदधाति प्रेयोगृहीततनुमुग्धवधूरुतानि ॥ २८ ॥

सीतारघूद्वहनिषेवणसौख्यहेतोः स्वस्वश्रिया षड्ऋतवोऽत्र सदा वसन्ति ।
अन्योन्यसंगमसमुज्झितसंविरोधाः स्वस्वामिने युगपदेव मुदं वहन्ति ॥ २९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे श्रीनन्दना-कारणं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा शूरस्यतद्वाक्यं श्रीनन्दन उदारधीः ।
सुखितेन समाहूतस्तदा गन्तुमना अभूत् ॥ १ ॥
विहस्यानन्दमधुरमुखपङ्कजशोभितः ।
उवाच शृण्वतां तत्र सदसि स्वे महीयसाम् ॥ २ ॥
आहूतः सुखितेनाहं गन्तुमिच्छामि सस्पृहः ।
चित्रकूटो गिरिर्यत्र तं देशं भूरिभावुकम् ॥ ३ ॥
संगः स्यात्सुहृदा तेन रामचन्द्रस्य चेक्षणम् ।
वसतिश्चित्रकूटाद्रौ शुभं मे किमतः परम् ॥ ४ ॥
अहो स्वभावमधुरः स सुहृन्मे महत्तमः ।
यस्यदेवा अपीच्छन्ति संगमं खलु दुर्लभम् ॥ ५ ॥
दर्शनं रामचन्द्रस्य सुधातोऽप्यतिरिच्यते ।
केऽपि भाग्यवतां मुख्या लभन्ते तदनुग्रहात् ॥ ६ ॥
यावन्ति भुवि तीर्थानि सन्ति द्वीपेषु सप्तसु ।
पुण्यं तदवगाहोत्थंचित्रकूटेऽधिकं ततः ॥ ७ ॥
सर्वात्मना खलु शुभं समुपस्थितं मे यास्यामि सानुगसुहृत्परिवारवर्गः ।
द्रक्ष्यामि कोसल पतेस्तनयस्य वक्त्रं चन्द्रादपीच्यममृतस्रुतिसारशोभम् ॥ ८ ॥
इत्युक्त्वा सदसि श्रीमानन्तः पुरमियायसः ।
श्रीराजिनीमुवाचेदं सुतयाऽऽश्चावि तद्यथा ॥ ९ ॥
सुमुखिसुखितगोपेनाहमाकारितोऽस्मि प्रणयपरहृदा मे चित्रकूटे महीध्रे ।
कुवलयसुखदायी सर्वसम्पद्विधायी स जयति रघुनाथो यत्र सम्पूर्णचन्द्रः ॥ १० ॥
सुचिरविरहतप्तं मानसं मे करिष्ये किमपि रघुवरस्यालोकपीयूषपात्रम् ।
बहुलदिवसलग्नं तीव्रसंताप दाहं तदहनि शमयिष्ये चक्षुषोरेक दैव ॥ ११ ॥

शशिमुखि भवती यच्चेतसा साध्व्यजस्रं स्पृहयति तदिदानीं वेधसा योजितं वै ।
रघुवरवरवंशीनादपीयूषपूरैः सुखय सुखय शश्वत्कर्णरन्ध्रेप्रपूर्य ॥ १२ ॥

तदतुलसुखधाम श्यामलं चित्रकूट क्षितिधरवनमन्तःसान्द्रकुञ्जान्धकारम् ।
रघुपतिमुखचन्द्रज्योत्स्नया सुप्रकाशं भवतु वहलकेलीभाजनं मामकानाम् ॥ १३ ॥

भार्यामुद्दिश्य कथितं श्रीनन्दनमनीषिणा ।
श्रुत्वा श्रीसहजा देहे जुगूहे पुलकावलीम् ॥ १४ ॥

प्रसरत्पुलकावलीपरीता वहलस्वेदभरेणपूर्णगात्रा ।
प्रणयिस्मरणेन कम्पमाना विवशा विह्वलतां भृशं जगाम ॥ १५ ॥

श्यामा रामादयः सख्यो विज्ञातविरहोदयाम् ।
सहजामन्यतो निन्युर्निगूह्य वसनाञ्चलैः ॥ १६ ॥

भर्तुर्वचनमाकर्ण्य देवी श्रीराजिनो तदा ।
अन्तःसुखसघूर्णाक्षी जगाद स्मितशालिनी ॥ १७ ॥

अद्य मे नाथ सुप्ताया निशि यामे तुरीयके ।
अजनि स्वप्न ईदृक्षस्तं निबोध व्रजाधिप ॥ १८ ॥

जानेशरत्स्वच्छनभःप्रदेशे सम्पूर्णताराधिपमण्डलेन ।
विकीर्णमच्छं भुवि चन्द्रिकौधं पिबन्ति बद्धोत्कलिकाश्चकोराः ॥ १९ ॥

जाने प्रभातारुणरश्मिशोभा बन्धूक पुष्पद्युतिबन्धुरर्कः ।
उल्लासयत्यम्बुजिनीवनानि दिशां तमिस्रं किरणैर्निरस्य ॥ २० ॥

जाने स्थिता क्षीरसमुद्रमध्ये सुविस्तृते पुष्कर पर्णपात्रे ।
भुनज्मि सुस्वादु सिताविमिश्रं मनोहरं पायसमाप्तकामा ॥ २१ ॥

इत्येवं भाविकल्याणसूचकानि ददर्श ह ।
अहं स्वप्नेसु वस्तूनि तैरासं विस्मिताशया ॥ २२ ॥

क्व नःशुभं स्वेष्टरघूद्वहेन विश्लेषदुखोद्वहनक्षमाणाम् ।
इत्थं मुहुश्चेतसि चिन्तयन्ती लब्धावलम्बाद्यधुनाहमास ॥ २३ ॥

ये स्वयं गन्तुकामाः स्म स्वेष्टदर्शनसस्पृहाः ।
ते चेत्सुहृद्भिराहूताः सम्पन्नास्तन्मनोरथाः ॥ २४ ॥

इतिभार्यामतं सम्यगादाय व्रजनायकः ।
श्रीनन्दनश्चित्रकूटगिरिं गन्तुमसज्जत ॥ २५ ॥

गच्छ शूर गृहानद्य भुक्तभोज्यः सुविश्रम ।
श्वोभूतेऽहं गमिष्यामि चित्रकूटं सहानुगः ॥ २६ ॥

स तदाज्ञामुपादाय पालीग्रामं विलोक्य च ।
नन्दिग्राममुपागच्छद् यस्मिन् सुखितगोधनम् ॥ २७ ॥

गत्वा गोष्ठानि सर्वाणि मिलित्वा गोष्ठपालकैः ।
संदिदेश यदादिष्टं सुस्मितेन मनीषिणा ॥ २८ ॥

हे गोष्ठपालाः शृण्वन्तु यदुक्तमधिपेन वः ।
गोधनानि पुरोधाय यूयं मामुपगच्छथ ॥ २९ ॥

एष साधुतमो देशो गवां गोष्ठेभ्य उत्तमः ।
चारयन्त्विहगा गोपाः यावद्वसति राघवः ॥ ३० ॥

प्रमुद्वनादनूनं च चित्रकूटगिरेर्वनम् ।
इदं वित्त शदास्थायि सर्वर्तुसुखभाजनम् ॥ ३१ ॥

मन्दाकिन्याः पुलिनभूर्नवशाद्वलशालिनी ।
विरच्य तत्र गोष्ठानि सुचिरं वसत प्रियाः ॥ ३२ ॥

न चेह दुर्लभं किंचिद् रामचन्द्रप्रभावतः ।
आपदो दूरतः सर्वाः सम्पदोऽत्र ममोन्मुखाः ॥ ३३ ॥

फलपत्रपुष्पपरिणाहिसम्पदां भरमुद्वहन्ति गिरिगह्वरद्रुमाः ।
अवलोक्ययान् सकलसौख्यदायिनस्त्रिदशद्रुमा अपि मयावहेलिताः ॥ ३४ ॥

अतोऽत्र सुचिरं गिरौ वसत गोष्ठपालाः सुखं
रघूद्वहमुखक्वणन्मुरलिकानिनादामृतैः ।
सुसिक्तनवभूरुहे हरितपर्णमाला धरे
वने विहरतानिशं सह सुखाञ्चितैर्गोधनैः ॥ ३५ ॥

निशम्य शूरस्य वचो मनोहरं ते गोष्ठपालाः सुखितस्य सर्वशः ।
निर्घोषयामासुरशेषके व्रजे ढक्वाः परेयुर्गमनोद्यमाय वैः ॥ ३६ ॥

आकर्ण्य ढक्वानिनदं घनोपमं श्वोभाविन्यां प्रस्थितौ सर्वलोकाः ।
अनांस्यसज्जन्त धनैरनेकशो देशान्तरेभ्यश्चानयन् गोधनानि ॥ ३७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रम्हभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे श्रीनन्दन-प्रस्थानो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

ब्रम्होवाच

श्वोभाविगमनोयुक्तः श्रीनन्दन उदारधीः ।
आगच्छद् भरतं वक्तुं विरहेण सुविह्वलः ॥ १ ॥

तमागतं स जग्राह स्वादरेण प्रसन्नधीः ।
सुखासनस्थितं पश्चादुवाचेदं महामतिः ॥ २ ॥

सुखं बससि गोपेन्द्र पालिग्रामे मनोहरे ।
प्रायेण रघुनाथेन सर्वे विरहिणः कृताः ॥ ३ ॥

तेषांमेषां मनोऽस्माकं युष्माकं च व्रजौकसाम् ।
राम एव सदा लग्नं वियोगव्यसनाकुलम् ॥ ४ ॥

श्रुतो ढक्वानिनादस्ते प्रास्थानिक उदित्वरः ।
प्रायेण रामं गन्तारः शेषा अपि गवां दुहः ॥ ५ ॥

न किंचिदिह पश्यामि नूनं मदवलं वनम् ।
ननु रामप्रियैरेतैर्दिवसानत्यवाहयम् ॥ ६ ॥

त इदानीं गोपवराः सर्वेऽपि प्रियसन्निधौ ।
गन्तार इत्यधैर्येण वेपामि निजचेतसि ॥ ७ ॥

मुग्धोऽतिवाहयिष्यामि किमेतान् दिवसानहम् ।
रामप्राणेशविश्लेषदग्धदग्धान्धकारि तान् ॥ ८ ॥

देहि मे दर्शनं नित्यं पालीग्रामे त्वमावसन् ।
श्रीरामस्य प्रियैः सार्द्धं संगो मे वाञ्छितः सदा ॥ ९ ॥

श्रुत्वा स भरतोदीर्णवाक्यपीयूष मादरात् ।
विनिवेदयितुं यानं श्रीनन्दन उवाच ह ॥ १० ॥

याचेऽहमपि तत्रैव गन्तुं त्वां रामसम्मित ।
कृपास्मा सु सदा कार्या स्मरणीयाः सदा वयम् ॥ ११ ॥

चिरेण विप्रयुक्ताःस्म रामेण प्रेयसा वयम् ।
आकारिताश्च मित्रेण सुखितेनान्तिवासिना ॥ १२ ॥

द्रष्टुमीहे चिरात्प्राज्ञ तत्कान्तं प्रेय सो मुखम् ।
करुणालोकपीयूषवर्षि मानसहर्षणम् ॥ १३ ॥

आनेष्यामि व्रजं प्रायो निवेद्य रघुवल्लभम् ।
मा खिद्यस्वात्मनो हेतोः क्लिष्टोऽसि विरहज्वरैः ॥ १४ ॥

पश्यसि प्रेयसां नूनं वियुक्तानां दशामिमाम् ।
पशुपक्षिद्रुमवल्लीनां परितापभृतां भृशम् ॥ १५ ॥

एवमुक्तः स तेनासौ भरतो राममानसः ।
उवाच संस्मृतोद्दीप्तविरहानलविह्वलः ॥ १६ ॥

हा कष्टं पतितं भूरि मय्येव विधिवैशसात् ।
अवलम्बाय मे कोऽपि नास्त्यत्र किल निर्जने ॥ १७ ॥

अहमाज्ञापराधीनो रघुनाथस्य यत्पुनः ।
न दर्शन लभे क्वापि शून्या मे सकला दिशः ॥ १८ ॥

दण्डवन्नतयो वाच्या मम तस्मिन् सहानुजे ।
सदारे करुणासिन्धौ वाच्यं मेऽऽत्मनिवेदनम् ॥ १९ ॥

अयमात्मा तव स्वामिन् पदोर्निर्भञ्छनीकृतः ।
त्वमेव विरहोद्भुतमाधिं मे लोपयिष्यसि ॥ २० ॥

इति संदेशवचनं वाच्यं मम मुहुर्मुहुः ।
श्रीनन्दन त्वं धन्योऽसि यथा सुखितगोपतिः ॥ २१ ॥

अथोवाचैष भरतं रघुवंशविभूषणम् ।
अवेक्षमाणः सततं प्रमुद्वनमिहास्व भोः ॥ २२ ॥

नन्दिग्रामो मनोहारी पालीग्रामश्च सम्प्रति ।
अवेक्षणीयः सततं भवता भूपनन्दन ॥ २३ ॥

रामस्यातिप्रियो देश आदिव्रज उदित्वरः ।
पालनीयस्त्वया प्राज्ञ प्रसीदिष्यति ते प्रभु ॥ २४ ॥

प्रमोदवनमानन्दि सर्वतुकुसुमाकरम् ।
इदं ते चित्तरुचये विरहेऽपि भविष्यति ॥ २५ ॥

निःसहा विरहेणैते दिवसास्ते सुदुर्वहाः ।
प्रमुद्वनं पश्यतोऽङ्ग सुखं यास्यन्ति निश्चितम् ॥ २६ ॥

उत्युदीर्य वचश्चारु श्रीनन्दन उदग्रधीः ।
आमन्त्र्य भरतं इनं स्वगृहानभ्यगात्सुहृत् ॥ २७ ॥

स तत्र नन्दिग्रामस्थान् गोष्ठपालान् सगोधनान् ।
वासयामास सुहृदः श्वः प्रस्थातुमना बुधः ॥ २८ ॥

प्रातः सरय्वामाप्लुत्य कृत्वा पुण्याहवाचनम् ।
स्वस्तिवाचित आचान्तो ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ २९ ॥

---

१. आलोप आर्षः ।

जयेति प्रयतैरुक्तः सुतमागधवन्दिभिः ।
दत्त्वा द्विजेभ्यो दानानि यथावद्गाः सहस्रशः ॥ ३० ॥

गोपैर्गोपीभिरत्यर्थं तनुभूषणकान्तिभिः ।
शृङ्गवेणुरवोद्घोषैर्गीतैर्माङ्गल्यसूचिभिः ॥ ३१ ॥

उत्साहितमनाः श्रीमान् मनोज्ञमन आस्थितः ।
प्रतस्थौ चित्रकूटाद्रिं यत्र रामः स राघवः ॥ ३२ ॥

श्रीराजिनी महोदारा सहजानन्दिनीयुता ।
नरयानं समारुह्य प्रतस्थौ विहितोत्सवा ॥ ३३ ॥

विधायाग्रतो गोधनानि प्रकामं स्वनद्वेणुशृङ्गादिवाद्यौघहृष्टाः ।
प्रतस्थुर्व्रजाधीश्वरस्याज्ञया ते कृतान्योऽन्ययात्रोत्सवा गोष्ठपालाः ॥ ३४ ॥

रामाद्याः सुहिता विहितप्रस्थानाः सख्यः प्रेमपराः सहजानन्दिन्याः ।
उद्गायन्त्यः कुतुकादुदितानन्दौघाः गच्छन्त्यः सजवं शुशुभुस्ताःसर्वाः ॥३५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे श्रीनन्दन-प्रस्थाने त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

गोधनैर्गोष्ठपालैश्च श्रीनन्दनमुपागतम् ।
आज्ञाय रामो हर्षेण बभूवपुलकावृतः ॥ १ ॥

श्रीनन्दनो गोपवरः सदारस्तनयायुतः ।
ददर्श चित्रकूटाद्रिं सुखितेनोषितं पुरा ॥ २ ॥

स्थले स्थले गोपकुलैः समाकुलं व्रजाङ्गनागीतनिनादशोभितम् ।
उदारगोपालकवादितस्वनत्सुवेणुशृङ्गादिकृतप्रतिध्वनिम् ॥ ३ ॥

गोष्ठैर्गवां गोपसमूहनिर्मितैर्हरिन्महावेतसवंशमण्डपैः ।
हरिच्छदच्छन्नतमैरुपत्यकासुविस्तृतैः सर्वत एव शोभितम् ॥ ४ ॥

कन्दरासु कृतावासं पुरा गोपैः कुटुम्बिभिः ।
शुभकोलाहलोपेतगह्वरप्रतिनादितम् ॥ ५ ॥

विचित्रशृङ्गरुचिरं रामप्रासादशोभितम् ।
पुरा विनिर्मितोत्तुङ्गपर्णशालाकुटी गृहम् ॥ ६ ॥

सीताक्रीडनकैश्चित्र मृगैर्विश्वस्तमानसैः ।
आवृतं चारुचकितैः कूर्द्दमानैरितस्ततः ॥ ७ ॥

जानकीमुखचन्द्रांशुपायिनां हृष्टचेतसाम् ।
चकोराणां समुदयैः सर्वतो मुखरीकृतम् ॥ ८ ॥

सीताव्रजाङ्गना शश्वत्केलिकौतुकनादिभिः ।
नूपुरैः कृत झाङ्कारं राजहंससुखावहम् ॥ ९ ॥

सरोभिः फुल्लनलिनैः शीतलीकृतमारुतम् ।
मन्दाकिनीमुख्यसरिद्वारिपुष्टमहीरुहम् ॥ १० ॥

व्रजाङ्गनासमाजेन विश्वतो विहितोत्सवम् ।
कमलेशीमुख्यसखीवृन्दचित्रविचित्रितम् ॥ ११ ॥

शृङ्गेभ्योऽवतरन्तीनां जातरूपतनुत्विषाम् ।
आरोहन्तीनां च पृथगन्यासां चम्पकत्विषाम् ॥ १२ ॥

समंताद्व्रजदेवीनां विचरद्भिः कदम्बकैः ।
कीर्णनक्षत्रमालाढ्यमिवा निस्तिमिरीकृतम् ॥ १३ ॥

विकीर्णदिव्यरत्नौघप्रोज्जागरतरद्युतिम् ।
रामाधिवाससम्पन्नमहामाङ्गल्यमण्डितम् ॥ १४ ॥

सर्वर्तुशोभया कीर्णं विस्तीर्णमधिभूनभः ।
विचित्रकौतुकयुतं स्वर्गस्थानमिवापरम् ॥ १५ ॥

लतामण्डपसंकीर्णां विचित्रभवनान्वितम् ।
सर्वतः पुष्पसंदोहसौरभ्यलहरीयुतम् ॥ १६ ॥

दृष्ट्वा गिरिवरं दूरादारश्च सकुतूहलम् ।
रथादवततारैष जायया सुतयान्वितः ॥ १७ ॥

पुरन्ध्रीभिः समायुक्ता देवी श्रीराजिनी ततः ।
आरुरोह गिरिं यत्नाद् रघुनाथदिदृक्षया ॥ १८ ॥

स्वयं श्रीसहजानन्दारामाकृष्णादिसंगता ।
जगाम दयितं द्रष्टुं द्योतयन्ती दिशस्त्विषा ॥ १९ ॥

रामः सम्प्रेष्य सौमित्रिं पुरस्तात् ससुहृद्गणान् ।
अत्यादरेण जग्राह सर्वान् साधुसमागतान् ॥ २० ॥

ते रघूद्वहमालोक्य पूर्णचन्द्रमुखं दृशा ।
सर्वे सुनिर्वृता आसन् गोपाः श्रीनन्दनादयः ॥ २१ ॥

श्रीरानीमुखा गोप्यश्चिरेण विरहातुराः ।
सहजानन्दिनीसख्यः सर्वा आसन् सुनिर्वृताः ॥ २२ ॥

गोष्ठपालाश्चगणशो दृष्ट्वा रामं सुहृत्तमम् ।
अत्यर्थं मुदिताः सर्वे मयूरा इव वारिदम् ॥ २३ ॥

परिरभ्य स तान् सर्वानत्युत्कण्ठावशोन्मुखान् ।
सुखयामास रामेन्दुश्चन्दनेनेव वर्ष्मणा ॥ २४ ॥

सम्प्रश्नालिङ्गनालोकसत्कारैर्बहुमानिताः ।
मनोरथोदधेः पारं सुखमापुर्व्रजौकसः ॥ २५ ॥

महतीं सम्पदं वीक्ष्य चित्रकूटे सीतापतेः ।
रमावासं सुसञ्जातं मेने श्रीनन्दनस्तदा ॥ २६ ॥

वनश्रियं समालोक्य सर्वर्तुसुखदायनीम् ।
प्रमोदविपिनस्यांशं मुमुदे गोपपुङ्गवः ॥ २७ ॥

सुखितेन स संगम्य गोपराजेन धीमता ।
सुखितोऽभूद्विशेषेण तत्र श्रीनन्दनेश्वरः ॥ २८ ॥
परस्परं तौ मिलितौ समाजौ श्रीनन्दनश्रीसुखितेशयोर्यत् ।
कामप्यभिख्यां दधतुर्महीध्रे रामस्तदालोक्य चिरं मुमोद ॥ २९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे गोपेन्द्रसमाज-द्वयमेलने चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

●

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

श्रीनन्दनो रामचन्द्रेण भूयः सम्मानितः प्रेमविशेषभाजा ।
उवास गोष्ठानि विरच्य रम्यास्वधित्यकासु क्षितिभृद्वरस्य ॥ १ ॥

पुरस्ताच्चित्रकूटस्य परस्ताद्दक्षिणोत्तरे ।
ऊषतुः ससुखोत्साहं समाजौ गोपराजयोः ॥ २ ॥

नन्दिग्रामसमाजेन मनःप्रीतिरवर्धत ।
पालीग्रामसमाजस्य चन्द्रेणेव पयोनिधः ॥ ३ ॥

रामः सम्पश्यतां तत्र मुनीनां त्रिदिवौकसाम् ।
अतिथीनां ब्राह्मणानां बभौ तापसवेषभृत् ॥ ४ ॥

जटीवल्काजिनधरो भूतिलिप्तसुविग्रहः ।
वन्यवृत्तिश्चापधरः सानुजः प्रिययान्वितः ॥ ५ ॥

गोपानां चैव गोपीनां महाभोगविलासवान् ।
गोचारणवनक्रीडारासकेलिविशारदः ॥ ६ ॥

शिखिपिच्छविभूषाढ्यो गुंजाहारविभूषितः ।
योगमायामुखाश्रित्य बभौ त्रैलोक्यमोहनः ॥ ७ ॥

स्फाटिकी सा शिला यत्र चित्रकूटस्य मूर्धनि ।
तत्र गोपीजनानन्दी शुशुभे केलिपण्डितः ॥ ८ ॥

एकतः सहजानन्दा परतो रामसुन्दरी ।
मोदयन् केलिरसिकश्चित्रकूटे व्यतिष्ठतः ॥ ९ ॥

व्रजाङ्गनाश्च ताः सर्वा वीरविश्लेषभीतयः ।
अरमन्त रमाकान्तविन्यस्तहृदयेक्षणाः ॥ १० ॥

सहजारामसुन्दर्योर्व्रजस्त्रीणां च सर्वशः ।
जनकेन्द्रसुतायाश्च साहाय्यमवलम्ब्य सः ॥ ११ ॥

रसराजः परां वृद्धिभिप्राय प्रतिवासरम् ।
राममन्मथनेत्राब्जकटाक्षशरसम्भवः ॥ १२ ॥

गोपीनां चैव रामस्य प्रेमवृत्ति गुणोत्तराम् ।
अभिवीक्ष्य प्रतिपदं जानकी विस्मिताभवत् ॥ १३ ॥

एकदा कुञ्जपुञ्जाढ्ये चित्रकूटस्य गह्वरे ।
श्च्योतन्निर्झरपानीयशीतमारुतसेविते ॥ १४ ॥

सर्वधातुरसद्रावनानाचित्रविचित्रिते ।
सर्वतः साधुसंफुल्ललतावृक्षोरुसौरभे ॥ १५ ॥

गुञ्जद्भ्रमरसंदोहमन्दनादोपवीणिते ।
मादयत्कोकिलकण्ठोत्थकाकलीशब्दनादिते ॥ १६ ॥

संफुल्लपङ्कजारण्यसौरभोद्गारसुन्दरे ।
गिरिरत्नोपलद्यौतैर्विष्वग्वितिमिरीकृते ॥ १७ ॥

नानामृतफलस्तोममण्डितानेकभूरुहे ।
सम्प्राप्तमण्डलादेवीविचित्ररचनाञ्चिते ॥ १८ ॥

रत्नस्तम्भशतोपेतकेलिमण्डपमण्डिते ।
सर्वर्तुसुभगावासे विलासोल्लासशालिनि ॥ १९ ॥

ईदृशेऽतिशुभे स्थाने सहजानन्दिनीमुखाः ।
श्रीरामसुन्दरीमुख्याश्चिक्रीडुर्गोपकन्यकाः ॥ २० ॥

नानाकेलिकलोपेता रसभावकदम्बिताः ।
निपीतमधुसम्मत्ता माधुर्यमदमन्थराः ॥ २१ ॥

मञ्जुमञ्जीरनादिन्यो रणत्काञ्चीमनोहराः ।
बलय ध्वानकारिण्यो विनिर्जितमनोभवाः ॥ २२ ॥

भ्रूभङ्गभङ्गीमधुराः कटाक्षोन्मुक्तदृष्टयः ।
परस्तात्कबरीभारचाञ्चल्यसुमनोहराः ॥ २३ ॥

सपणाक्रीडशालिन्यो वद्धयूथाः परस्परम् ।
रामकान्तगुणग्रामसंगीतकविषारदाः ॥ २४ ॥

निबन्धकेलिकारिण्यः क्रीडाचपलकुण्डलाः ।
नानोपहासशालिन्यो बद्धमानससौहृदाः ॥ २५ ॥

एकतः सहजायूथ्याः परतो रामयूथगाः ।
तथैव रामसुन्दर्याः सयूथ्या रामयूथगाः ॥ २६ ॥

विशालाक्षीसयूथ्याश्च रामयूथ्यास्तथैवताः ।
जनकेन्द्रसुतायूथ्याः कमलेशीमुखाःस्त्रियः ॥ २७ ॥

सर्वास्ता इन्दिरारूपाश्चन्द्रारया मृगलोचनाः ।
विदयुद्वल्लिविलोलाङ्ग्यो विलुम्पन्त्यो मनस्त्रयाम् ॥ २८ ॥

श्रीरामरूपमाधुर्यमदिरामत्तमानसाः ।
मदनोन्मादकारिण्यो गलन्नीविगुणोद्गमाः ॥ २९ ॥

स्खलत्पादाब्जविन्यासा विश्लथद्भुजवल्लयः ।
अव्यक्तकललापिन्यो रामप्रेमरसावृताः ॥ ३० ॥

गायन्त्यश्चैव गुञ्जन्त्यः कूजन्त्यश्च कलापशः ।
लपन्त्यः प्रलपन्त्यश्च प्रत्यक्षविरहोद्धताः ॥ ३१ ॥

क्वचित्स्तब्धाः क्वचित्स्विन्नाः पुलकौघविसंष्ठुलाः ।
क्वचिच्च स्वरभङ्गिन्यः क्वचिद्वेपथुविग्रहाः ॥ ३२ ॥

क्वचिद्विवर्णवदना अन्तःप्रेमहता इव ।
क्वचित्साश्रुदृशोनार्यो विलीनविकलेन्द्रियाः ॥ ३३ ॥

रामरूपसुधासिन्धुं पातुकामा मदोद्धताः ।
अगाध इति विज्ञाय स्वयं मग्ना हतोद्यमाः ॥ ३४ ॥

अप्राप्नुवन्त्यः पारं च मनोरथपयोनिधेः ।
प्रेम्णः कुटिलवृत्तित्वात्कुटिलाः सरला अपि ॥ ३५ ॥

अन्तःप्रेमपरीतप्ता रामपीयूषसागरे ।
पतिताः शमयन्त्यच महोष्माणं मनोगतम् ॥ ३६ ॥

काश्चिद्भ्रुकुटिमाबध्य दन्तद्रष्टाधरच्छदाः ।
घ्नन्त्यः कटाक्षनिक्षेपैः पश्यन्त्यः प्रियमात्मनः ॥ ३७ ॥

आयौज्यायोज्यदोर्वल्लीः पाशीकृत्य तडित्विषः ।
मेलयन्त्यः प्रियग्रीवास्वासज्य स्मरविह्वलाः ॥ ३८ ॥

मिलन्त्यस्तुङ्गवक्षोजैर्विवलन्त्यो लतइव ।
प्रेमाघातं ददानाश्च चुम्बन्त्यो गण्डमण्डलम् ॥ ३९ ॥

पिबन्त्योऽधरपीयूषं पाययन्त्यश्च तत्प्रियम् ।
स्पृशन्त्योनेत्रकमलमोष्ठाभ्यां प्रेयसः स्फुटम् ॥ ४० ॥

रञ्जयन्त्योऽलक्तकेन प्रियस्याधरपल्लवम् ।
रज्यमानाः प्रियेणैताः पाणिपादौष्ठपालिषु ॥ ४१ ॥

तोष्यमाणा भूष्यमाणा जोस्यमाणाः प्रतिक्षणम् ।
तोषयन्त्यो भूपयन्त्यो जोषयन्त्यश्च ताः प्रियम् ॥ ४२ ॥

प्रियेणदत्तैस्ताम्बूलैः रञ्जिताधरपल्लवाः ।
स्वयं च भक्षयन्त्यस्ताः प्रियं ताम्बूलवीटिकाम् ॥ ४३ ॥

इत्थं क्रीडारसे मग्नाः प्रियेण संहृताः प्रियाः ।
न विजज्ञुर्दिवारात्रिं निमेषार्द्धेण सम्मितम् ॥ ४४ ॥

श्रीचित्रकूटगिरिकन्दरमन्दिरान्तःकन्दर्पकेलिकलनोत्कलिकाकुलास्ताः ।
चिक्रीडुरात्तमदिरामदमोदमग्ना गोप्यो निगूढरसभावकलास्वभिज्ञाः ॥ ४५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे गोपीजनविहरणं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

रामप्रेमविनिर्मग्नां वीक्ष्य तासां मनोगतिम् ।
रामं च तत्परवशं ज्ञात्वा सर्वात्मना भृशम् ॥ १ ॥

सहजानन्दिनीं चैकां सर्वयोषित्स्वरूपिणीम् ।
क्रीडन्तीं प्रेयसा सार्द्धं विज्ञाय जनकात्मजा ॥ २ ॥

तस्यां मिथो रहःकेलौ विनिविष्टमनाः स्वयम् ।
एतदाह वचस्तथ्यं कमलेशीमुखाः सखीः ॥ ३ ॥

श्रीजानक्युवाच

सख्यः पश्यत गोपिकाजनमहाभाग्यार्णवं वर्णितुं
नो शक्तास्मि भवेद्यदापि रसनाकोटिगुणोद्गारिणी ।
यासां केलिकलाकलापकलने कौतूहलं प्रेयसो
नित्यं सम्प्रति वर्द्धते निरुपमप्रेमप्रमोदस्पृशः ॥ ४ ॥

नन्वासां सुकृतं कियत् कथयत प्रायेण कीदृक् च तद्
या नित्यं निवसन्त्यनन्यविषयाविष्टे हृदि प्रेयसः।
यासां चेतसि चापि दृक्कमलयोर्माधुर्यलीलारस-
ग्राही कोऽपि मिलिन्दराज उदयत्यानन्दचिच्चन्द्रमाः ॥ ५ ॥

आसां यत्पदपङ्कजद्वयरजस्तत्प्राप्तुकामा भृशं
देवाः शक्रविरञ्चिशङ्करमुखास्त्रैलोक्य पूज्याङ्घ्रयः।
सेवन्ते प्रमुदाटवीं पुलकिनः प्रेमोद्गमप्रश्रित
स्वान्ताः कान्तपदावलीभिरनिशं गायन्त उच्चैर्गुणान् ॥ ६ ॥

एतासां चरणारविन्दनखरप्रद्योतलेशोपमां
नैवाप्नोति रमापि कान्यललना वोढुं समर्थामदम्।
साम्राज्यं वरवैभवं विधिपदं स्वाराज्यमैन्द्रं पदं
प्राज्यानन्दकदम्बभोगरुचिरं न्यक्कृत्य याः संस्थिताः ॥ ७ ॥

गीयन्ते सततं यशांसि गगने गीर्वाणयोषागणै-
रेतासां रसिकेन्द्रसंगमभवस्वानन्दकेलीजुषाम्।
सख्यः सम्प्रतमश्नुवाम वयमप्यानन्दसम्पद्भरा
नाभिः साधुसुसंगताः सवनशः संसारचक्रातिगाः ॥ ८ ॥

नो माया निखिलात्मनः पिदधती नो कालशक्तिर्जग-
च्चक्रं ग्रासमिवैककं विदधती जागर्ति तत्रालयः।
यत्रासामरविन्दनिर्जयिदृशां प्रेमप्रमोदोत्तरा
प्रेयःसंगजुषां जगद्विसदृशी केलीकला कल्पते ॥ ९ ॥

सख्यो ब्रह्मसुखं न किंचन हृदा निश्चित्य जानाम्यहं
लिल्युर्यम शतोत्तराण्यपि सुखान्याब्रह्मलोकावधि।
एतासां रसिकेन्द्रमौलिमणिना केलीसुधासागरे
मग्नान्तःकरणस्य भात्यगणितानन्दप्रकाशोदयः ॥ १० ॥

सख्योवेद्मि सुदुर्लभोऽयमधिपः कैवल्यसंज्ञाद्भुत
प्राज्यानन्दकदम्बसम्पद उतप्राकाम्यसिद्धीश्वरः।
ब्रह्माद्यामरवृन्दवन्दितपदाम्भोजो रमासेवितः
सोऽप्याभिः स्वकृपावलोकिततनोः सौलभ्यमेति द्रुतम् ॥ ११ ॥

ॐकाराक्षररत्नपञ्जरशुको लक्ष्मीचकोरी विधु-
र्मायामोहमदान्धकारगहनन्यक्कारचण्डद्युतिः।
श्रीमानेष जगत्त्रयाद्भुतलतासंदर्भकन्दः शनै-
रेतासां करपङ्कजेषु पतितः प्रेम्णा परिक्रीतवत् ॥ १२ ॥

कन्दर्पः स्वयमेव एव सुषमाशालीवसन्तः स्वयं
सामग्री स्वयमेव नित्यमधुरक्रीड़ावलीनामसौ ।
तत्तद्रूपतया स्वयं परिणतः श्रीमान् प्रमोदाटवी
मेत्यानन्दयति स्वयं यदत्र कलितः प्रेमैकरूपः सदा ॥ १३ ॥

कल्याणैकनिकेतनं त्रिजगतां जीवातुभूतोद्भुत
क्रीडासागरपूर्णचन्द्र उदयं प्राप्तः प्रकाशास्पदम् ।
श्रृङ्गारोत्तमकल्पवृक्ष उचितो भोगैरनेकैरयं
भोक्तुं भव्यसुनव्यपूर्णरतिमानेताभिरेव ध्रुवम् ॥ १४ ॥

कल्याण्यः कमलाधिकाः परिलसत्केलीकलाकौशला
राकाशारदशर्वरी परिवृढन्यक्कारकल्पाननाः ।
श्रृङ्गारैक विसारकल्पलतिकाः कन्दर्पदर्पद्रुम
प्रध्वंसिस्मितलेशकान्तिविभवा लालित्यलीलालयाः ॥ १५ ॥

सान्द्रानन्दमयातिमञ्जुलतमप्रेमप्रकर्षोन्नत-
प्रासादध्वजपद्य उत्कटमनोभूकाण्डलोलेक्षणाः ।
सोज्जम्भभृकुटीतरङ्गविगलत्त्रैलोक्यचन्द्राननाः
सौन्दर्योत्थमदा जयन्ति जगति स्वच्छन्दमेताः श्रियः ॥ १६ ॥

एताभिः कृपयेक्षिता ननु जना मोदन्त एवानिशं
प्रेमाणं च परस्य पुंस उदितं नित्यं लभन्ते ध्रुवम् ।
दुर्जेयस्य निधाय मूर्ध्नि विपदं कालस्य देवासुरैः
शश्वद्भोगमहोदधौ निरवधि क्रीडन्ति तेस्तैः सुखैः ॥ १७ ॥

आसां मण्डलमध्यगं मधुरतालावण्यवारां निधिं
प्रोदञ्चन्मुरलीनिनादखुरलीखेलन्मुखेन्दुस्वरम् ।
चित्तोद्गारिलसत्सुभङ्गवपुषं पुष्णन्तमन्तर्मुदं
द्रष्टॄणां दरफुल्लपङ्कजदृशं पीताम्बरं नीलभम् ॥ १८ ॥

कस्याश्चित्कुचयोः स्फुरत्करनवं कस्याश्चिदोष्ठच्छदं
पीयूषैकपदं घयन्तमसकृत् कस्याश्चिदालिङ्गनम् ।
कुर्बन्तं हरिचन्दनाक्तवपुषा कस्याश्चिदास्यं दृशा
पश्यन्तं रघुनन्दनं स्वहृदये सख्यश्चिरं ध्यायत ॥ १९ ॥

इत्युक्त्वा वर्णनं तासां सखीभ्यो जनकात्मजा ।
प्रेयसः संनिधौ स्थित्वा वाक्यमेतदवोचत ॥ २० ॥

ननु सुभगनितान्तं विस्मयं याति चित्तं प्रणय परिणतिस्ते शश्वदाभीरिकासु ।
किमु सुकृतममूषां भालभाग्यौघभाजां कथय कथय नृणां कर्मसाक्षी भवान् यत् ॥ २१ ॥

किं स्विच्चरित मेताभिर्मखदानक्रियादिषु ।
जपस्वाध्यायनियमज्ञानयोगसमाधिषु ॥ २२ ॥

यत्फलं रघुशार्दूल भवता नित्यकेलिषु ।
अजस्रं क्रियते भोगो रमयापि सुदुर्लभः ॥ २३ ॥

भवानमूभिः संगम्य प्रियाभिस्त्रिजगत्प्रिय ।
रमते लीलया भोगं वितन्वत् कमलेक्षण ॥ २४ ॥

परस्परं वः स्पृहणीयसंगमे लब्धास्पदः प्रेमसखो रसादि भूः ।
वसत्यजस्त्रं व्रजभूमिमण्डले न यं समर्था गदितुं परा गिरः ॥ २५ ॥

पुरा चीर्णं पूर्णं सपरिणतिपुण्यं परतरं
विना सौख्यं लभ्यं कथमिवतदीदृक् पुनरिदम् ।
इदं ते पृच्छामि त्रिभुवनपते पूर्णपुरुष
प्रवक्तुं योग्यस्त्वं भवसि मयि कृत्वा निजकृपाम् ॥ २६ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे व्रजभक्त-सुकृतप्रश्ने षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

•

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

इतीरितो मैथिलेन्द्रस्य पुत्र्या पुंसां वरः श्रीरघुवंश केतुः ।
स्मित्वा सहर्षं समुवाच वाचमानन्दपाथोधितरङ्गसिक्तम् ॥ १ ॥

साधु पृष्टं त्वया कान्ते सुकृतैर्लभ्यते सुखम् !
सुकृतान्यप्यनेकानि फलभोगोन्मुखान्यलम् ॥ २ ॥

यथाधिकारं सर्वैस्तु क्रियते सुकृतं प्रिये ।
अधिकारा अपि कृताः सृष्टेरादौ पृथक् पृथक् ॥ ३ ॥

सर्वथा द्विविधा जीवा बद्धमुक्तप्रभेदतः ।
अनादिकर्मजनितचतुर्विधतनूयुजः ॥ ४ ॥

तासु तत्सम्बन्धिषु चाप्यहंताममतावृताः ।
बद्धा इति विनिर्णीता जीवास्तेषु दयां कुरु ॥ ५ ॥

अज्ञानाध्यस्तदेहादिष्वहंताममतातिगाः ।
स्वरूपप्राप्तिमन्तो ये ते मुक्ता इति कीर्तिताः ॥ ६ ॥

अणुव्यापिचिदाकारः स्वरूपगुणवैभवैः ।
श्रीरामचन्द्र तुल्यस्तन्नित्यकैङ्कर्यभाजनम् ॥ ७ ॥

अविद्ययाऽऽवृता ह्यस्य गुणाः सर्वेऽप्यगोचराः ।
रामस्यैव प्रसादात्त आविर्भूता भवन्ति हि ॥ ८ ॥

बद्धा अपि द्विधा प्रोक्ता जीवास्तत्र मुमुक्षवः ।
रामस्य ये निरुपधिकृपातो मोक्तुमिच्छवः ॥ ९ ॥

अविद्याकामकर्मादिसम्बन्धं प्रकतेर्गुणैः ।
मुमुक्षवश्चसंसारे विषयान् भोक्तुमिच्छवः ॥ १० ॥

मुमुक्षुबो द्विधा ज्ञानसाधनाश्चान्यसाधनाः ।
फलाभिसन्धिहीनं ये कर्तृत्वत्यागपूर्वकम् ॥ ११ ॥

वर्णाश्रमोचितं कर्म कृत्वा विहितमूर्जिताः ।
निरन्तरनिदिध्याससम्भवज्ञानशालिनः ॥ १२ ॥

स्वसाक्षात्कारपश्यन्ति भक्तिनिष्ठामुपागताः ।
ते ज्ञानसाधना नाम मुमुक्षव उदीरिताः ॥ १३ ॥

तेऽपि द्विधोपास्ति शुद्धभक्तिभेदावलम्बनात् ।
पूर्वेचतारमन्त्रोक्तजपध्यानार्चनादिभिः ॥ १४ ॥

पुरश्चर्यादिभिश्चापि लब्धनिष्ठा विशेषतः ।
देहारम्भककर्मौधविनिवृत्त्येकसाधनाः ॥ १५ ॥

आत्मानुभूतिप्रत्यूहविनिवृत्तिपरायणाः ।
अत्यर्थमत्मकैवल्यविरोधिभ्योमुमुक्षवः ॥ १६ ॥

उपासका इति परं कीर्तिता वेदवेदिभिः ।
परेपुंसः रामस्यैव कीर्तनश्रवणादिषु ॥ १७ ॥

अनन्यानिष्ठावन्तो ये साक्षाच्छ्रीरामचन्द्रस्य ।
स्वरूपगुणरूपादिसाक्षात्कारसुखस्य च ॥ १८ ॥

प्रतिबन्धान्मोक्तुकामास्तथा भगवतो हरेः ।
अनुभूतिविरोधिभ्यो मोक्तुकामास्तथैव ते ॥ १९ ॥

ततोऽन्यसाधनास्ते ये सम्बन्धं प्राप्यकञ्चन ।
मोक्षे निश्चयवन्तो ये ते पुनर्द्विविधाः स्मृताः ॥ २० ॥

प्रपन्नाः साधुपुरुषकारानेष्ठाश्च केचन ।
हित्वा तु विहितोपायान् ज्ञात्वा परमचेतनम् ॥ २१ ॥

परसामर्थ्यवन्तं च दयालुं श्रीरामं प्रभुम् ।
परमप्राप्यमीशं च तमेवोपायमाश्रिताः ॥ २२ ॥

ते प्रपन्ना इति ख्याताः परे त्वाचार्यमाश्रिताः ।
ईशं स्वतन्त्रमालोच्य संकुचन्तो हृदा भृशम् ॥ २३ ॥

तत्कृपाप्रचुरस्थानं तमेवाज्ञाय तत्पराः ।
स्वस्यैव कृपया चैव सेवया च निरन्तरम् ।। २४ ।।

प्रसत्तिभाजो ह्याचार्या मोचयन्ति न संशयः ।
रामप्रतिनिधीभूतास्त एवातो निरन्तरम् ।। २५ ।।

प्रपन्ना अति दृप्तार्तभेदतो द्विविधा मताः ।
शरीरस्थितिपर्यन्तमत्रैव तु यथोचितम् ।। २६ ।।

सम्प्राप्तान् सुखदुःखादीन् गणयन्तो न किंचन ।
शरीरान्ते पुनर्मोक्षसिद्धिं निश्चित्य ये स्थिताः ।। २७ ।।

ते दृप्ता इति कीर्त्यन्ते महामाना महाशयाः ।
आर्तास्त्वसहमाना ये संसारं दुःखसागरम् ।। २८ ।।

ततस्तत्क्षणमेवेशप्राप्तौ सत्वरमानसाः ।
अथ मुक्तान् प्रवक्ष्यामि यावच्छृणु भामिनि ।। २९ ।।

नित्यकादाचित्कभेदाद् द्विधाते परिकीर्तिताः ।
गर्भजन्मजरादुःखं न कदाचिदुपागताः ।। ३० ।।

ते नित्या इति कीर्त्यन्ते नित्यं तल्लोकवासिनः ।
सुकण्ठहनुमदाद्या नित्यसिद्धा हि पुरुषाः ।। ३१ ।।

कादाचित्कास्तु भगवन्निर्हेतुककृपावशात् ।
अनादेरज्ञानपाशाद्विमुक्ताः सिद्धिमागताः ।। ३२ ।।

अविद्याकृतसंकोचराहित्याद्भगवद्गतान् ।
स्वरूपगुणरूपादीन् पश्यन्तस्तत्प्रसादतः ।। ३३ ।।

सालोक्यं चैव सारूप्यं सामीप्यं सार्ष्टिमेव च ।
सायुज्यं चानुभूयातिप्रीतिभाजो रामे प्रभौ ।। ३४ ।।

अवस्थानस्थलेऽप्युच्चैः कदाचिदनवस्थिताः ।
सर्वदेशे सर्वकाले सर्वावस्थोचितं सदा ।। ३५ ।।

कैङ्कर्यमेव कुर्वाणाः सेवकास्ते महाशयाः ।
नित्यलीलामहाभोगभाग्यवन्तः सुहृत्तमाः ।। ३६ ।।

नित्या द्विधा परिजनपरिच्छदविभेदतः ।
पूर्वे सुकण्ठसुन्दरहनुमदादयः प्रभोः ।। ३७ ।।

परे किरीटमुकुटवनमालायुधादयः ।
वस्त्राभरणरत्नाद्याः सच्चिदानन्दविग्रहाः ।। ३८ ।।

कादाचित्का भागवताः केवलाश्च द्विधा मताः ।
तत्र पूर्वे तु भगवत्परा भगवतो हरेः ।। ३९ ।।

स्वरूपगुणरूपादिसाक्षात्कारभवां मुदम् ।
वहन्तो निर्भरं नित्यं घूर्णच्चित्तविलोचनाः ॥ ४० ॥
केवलास्तत्सुखास्पृष्टा न्यूनकक्षासु संस्थिताः ।
आत्मारामा आत्मतृप्ता आत्मसंतुष्टनिःस्पृहाः ॥ ४१ ॥
उक्ता द्विधैव भगवत्परा अपि श्रृणु प्रिये ।
गुणानुसंधानपरास्तथा कैङ्कर्यतत्पराः ॥ ४२ ॥
पूर्वे स्वामित्वसौलभ्यसौशील्यादीन् प्रभोर्गुणान् ।
परिशीलयन्तः सततं तन्मात्रपारवश्यगाः ॥ ४३ ॥
परेस्वर्गादिनिर्माणक्रियाकौशलतत्पराः ।
द्विधैव केवलास्तद्वद्दुःखाभावैकतत्पराः ॥ ४४ ॥
आत्मानुभूतिशीलाश्चेत्येवं संकीर्तिताः प्रिये ।
प्रातिकूल्यानुसंधानाद् दुःखानां तन्निवृत्तये ॥ ४५ ॥
तन्मात्रनिष्ठामापन्नास्तथा देवि परे पुनः ।
स्वस्वरूपानन्दसाक्षात्कारसंतोषतत्पराः ॥ ४६ ॥
चितां[1] स्वरूपं कथितं साकल्येन तव प्रिये ।
तत्रेमे मत्परिजना विज्ञेया व्रजवासिनः ॥ ४७ ॥
तेषु सत्साधनैः केचिद्बहूनां जन्मनां क्षये ।
मामुपेत्य मुदं प्राप्ताः पुनरावृत्तिवर्जिताः ॥ ४८ ॥
नित्यलीलापरानन्दभोगोदधिविलासिनः ।
केचिज्ज्ञानैर्नित्यसिद्धा यथैवाहं तथैव ते ॥ ४९ ॥
ममाविर्भावकाले ये आविर्भूता भवन्ति वै ।
तिरोभावे तिरोभूता भवन्ति जनकात्मजे ॥ ५० ॥
कैश्चित्साधनसंसिद्धैर्नित्यसिद्धैश्च कैश्चन ।
मम लीलापरिकरः समाजः सर्वतो वृतः ॥ ५१ ॥
तत्रापि मुनयः केचित्सन्ति देवाश्च केचन ।
केचिच्च मानुषा भक्ता मम साधर्म्यमागताः ॥ ५२ ॥
इमास्ताश्चन्द्रास्यास्तरलतडिदुद्भासितनवो
मृगाक्ष्यः पद्मिन्यो विहरणविचित्राश्च शतशः ।
परीपाकप्राप्तप्रणयपरिणाहेन सततं
परिक्रीतात्मानोनिरवधिसुखं मे विदधते ॥ ५३ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे प्रणयिनीगणवर्णने सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

---

१. चिताम् = जीवानाम् ।

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

इमाः पुनः प्रिये काश्चित्प्रिया मे विनिमालय।
याः सिन्धुमथनेलक्ष्म्या सख्यः सह विनिर्गताः ॥ १ ॥

तिस्रः कोटयश्चपञ्चाशल्लक्षाणि च चतुर्दश।
सहस्राणिशतान्यष्टौ दश चाम्भोजलोचनाः ॥ २ ॥

चिरेणाततप्ततपसः क्षीरतोयनिधेस्तटे।
कालेन जातास्ताः सर्वागोदुहां कन्यका व्रजे ॥ ३ ॥

ता एताः पुरतो भान्ति तव श्रीजनकात्मजे।
पद्मास्याः पद्मनयनाः फुल्लपद्मगणस्रजः ॥ ४ ॥

पद्मिन्यस्तनुशोभाभिर्भासयन्त्यः प्रमुद्वनम्।
इदानीमत्र सम्प्राप्ता मत्प्रेमविरहातुराः ॥ ५ ॥

स्नानासनपरीधानपानभुक्तिषु मे सदा।
भवन्ति परिचारिण्यः सहजाबद्धसौहृदाः ॥ ६ ॥

मानयन्त्यो मनोमोदं पर्वणीव सुसंगताः।
प्रसाधितोरुवपुषः पटभूषादिभिः प्रिये ॥ ७ ॥

श्रीजानक्युवाच

कदा समुद्रो मथितः केन कार्येण वा प्रभो।
केन वा रघुशार्दूल गम्भीरः पयसां निधिः ॥ ८ ॥

एतन्मे ब्रूहि पृच्छन्त्या यच्चितं कौतुकायते।
श्रोतुमत्यद्भुतं वृत्तं समुद्रमथनाश्रयम् ॥ ९ ॥

श्रीराम उवाच

शृणु प्रिये समुद्रस्य मथनं कौतुकाश्रितम्।
अमानुषमिदं कर्म कृतं यत्त्रिदशैःपुरा ॥ १० ॥

पुरा कृतयुगेयुद्धं देवासुरमभून्महत्।
तारकाद्या बलोत्सिक्ता असुरा दैवतैर्यदा ॥ ११ ॥

यज्ञभागोरुभोगार्थमस्पर्द्धन्त तदा मिथः।
प्रावर्त्तत तयोर्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥ १२ ॥

यत्तारकामयं ख्यातं वर्षलक्षमजायत।
पृथिव्यां चैव गगने तारकाश्च ग्रहाः सुराः ॥ १३ ॥

असुरैर्बलसंदृप्तैरहन्यन्त समन्ततः ।
वृतस्तैरसुराचार्यः पौरोहित्येन भार्गवः ॥ १४ ॥
मृतसंजीविनीं विद्यामवलम्ब्य महातपाः ।
मृतान् संजीवयामास सोऽसुरान् दुष्टचेतसः ॥ १५ ॥
पौरोहित्ये वृतो देवैर्बृहस्पतिरुदारधीः ।
देवान् स संजीवयितुं नाशकत्समरे हतान् ॥ १६ ॥
तस्य पुत्रःकचो नाम्ना शिष्यो भूत्वागमत्कविम् ।
प्रच्छन्नवेषो व्यचरदसुरेष्वपि मायिषु ॥ १७ ॥
गुरोः पुत्र्या देवयान्या रक्षितः सानुरागयाः ।
सोऽपि मायाविभिः शश्वदसुरैस्तैरसूयुभिः ॥ १८ ॥
कालेऽनुलक्षितगतिर्बार्हस्पत्यो महाव्रतः ।
वसन् गुरुकुले दुष्टैश्चूर्णयित्वा ह्ययोधनैः ॥ १९ ॥
विनिक्षिप्य सुरामध्ये गुरोरेवानुपायितः ।
ततः प्रभृत्यपेयत्वमगमद्वारुणी भृशम् ॥ २० ॥
कचोद्भवब्रह्महत्यारूपदोषानुसंगतः ।
कचश्चाप्यगमन्नाशंपश्चात्तापकरो गुरोः ॥ २१ ॥
एवं दैत्या बलोद्रिक्तास्त्रिदशानजयन् मृधे ।
निपात्यमानास्तैः सर्वे विनेशुर्यत्र कुत्रचित् ॥ २२ ॥
यज्ञभागहृतस्तेषां ववृधुर्वीर्यसंवृताः ।
पूर्वं कृते समे भागेऽप्यात्तविप्रतिपत्तयः ॥ २३ ॥
ततो निरवशेषेण यज्ञभागान् हरन्ति ते ।
दुष्टाश्चेद्बलवन्तः स्युः पीडयन्त्येव सर्वथा ॥ २४ ॥
अधिकारानप्यमीषां जह्रुस्ते बलदर्पिताः ।
वन्दीकृत्य बलोद्रिक्ता भुञ्जते स्म सुरश्रियम् ॥ २५ ॥
हृतजीव्या हृतधना हृतस्थाना दिवौकसः ।
विचेरुर्विगतश्रीका मर्त्या इव महीतले ॥ २६ ॥
मेरोर्गह्वरमाश्रिता घनवनच्छायान्धकारावृतं
तूष्णींभूय समास्थिता निवहशस्ते संकुचवृत्तयः ।
चिन्ताशोक समुद्भवज्वरपरिस्तुष्टान्तराश्चेतसा
ध्यायान्ति स्म सुरेश्वरं त्रिजगतामेकायनं श्रीपतिम् ॥ २७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे समुद्रमथनेऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

●

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

ध्यायतां जपतां चैव देवानां मेरुकन्दरे ।
पराजितानामसुरैश्चिन्तयाविष्टचेतसाम् ॥ १ ॥

आविरासीद्धरिः साक्षात्परमात्मा कृपार्णवः ।
आरुह्य गरुडं यानं सम्प्राप्तः स्वीयधामतः ॥ २ ॥

वैकुण्ठात्त्रिदशाधीशश्चिकीर्षुस्तत्सहायताम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मशार्ङ्गायुधनिषेवितः ॥ ३ ॥

पीताम्बरसमुल्लासिमहामारकतद्युतिः ।
नखकोणपराभूतमार्तण्डकिरणव्रजः ॥ ४ ॥

कटिसूत्राङ्गदधरः सद्रत्नवलयाञ्चितः ।
रत्नाङ्गलीयकद्योतविस्फुरत्पल्लवाङ्गुलिः ॥ ५ ॥

वैजयन्तीमहामालारुच्यवक्षःस्थलप्रभः ।
श्रीवत्सलाञ्छनधरः कण्ठकौस्तुभशोभितः ॥ ६ ॥

मुक्ताहारसमालम्बिपादाङ्गुलिनखप्रभः ।
अनेकरत्नजटितकिरीटोद्योतिमस्तकः ॥ ७ ॥

सूर्येन्दुनयनोद्भासी कस्तूरीतिलकालिकाः ।
श्रवणद्वयविद्योतिस्फुरन्मकरकुण्डलः ॥ ८ ॥

कपोलफलकोल्लासिलुलितालकवल्लरिः ।
अणिमादिमहासिद्धिसंशोभिपारिपार्श्वकः ॥ ९ ॥

वेदात्मकसुपर्णोक्तदिव्यस्तुतिकृतस्मितः ।
दिव्यपार्षदनिर्घुष्टसत्कीर्तिमहिमार्णवः ॥ १० ॥

तं दृष्ट्वा देवदेवेशं कृपालुलितलोचनम् ।
तुष्टुवुस्त्रिदशाः सर्वे समुत्थाय समं ततः ॥ ११ ॥

ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे भक्तिप्रह्वोरुविग्रहाः ।
दयावलोकपीयूषसिक्तविज्वरमानसाः ॥ १२ ॥

देवा ऊचुः

नमो नमस्ते बृहते परिस्फुटत्र्यवस्थमायागुणवर्जितात्मने ।
अनन्तकल्याणगुणैकभास्वतेऽपवर्गसौख्याधिभुवेऽखिलेश्वर ॥ १३ ॥

त्वमस्य दृश्यप्रकरस्य साक्ष्यसि त्वमेव चादिप्रकृतेः प्रवर्तकः ।
प्रक्षोभ्यमाणा यदसौ तवेक्षणाद्गुणान् प्रसूते त्रिजगत्समुद्भवान् ॥ १४ ॥

निर्लेप एवासि विभो त्वमात्मना सृजस्यवस्यत्सि पुनश्चराचरम् ।
अहो विचित्रा तव शक्तिरुच्चकैरचिन्त्यरूपा च सुयोगिनामपि ।। १५ ।।

त्वत्तः प्रभूतं जगदेतदद्भुतं समाप्यते त्वय्यखिलात्मनास्थिते ।
अतो निरुप्यापिनिषेधशोषिका गिरो निवर्तन्त इव त्वदात्मनः ।। १६ ।।

गौणीं तुवृत्तिसमवलम्ब्य वैदिकीगिरां प्रवृत्तिस्त्वयि चित्सुखात्मनि ।
तथापि सम्यङ्न भवान् विचिच्यते परार्थमालम्ब्य वितीर्णस्वार्थया ।। १७ ।।

पञ्चात्मकस्त्वं द्विषडात्मकोऽभूः पञ्चद्वयीशतसहस्ररूपवान् ।
एकः समो ऽस्युज्झितसर्वदूषणः पूर्णो गुणैस्तेन बहूपमोऽभू ।। १८ ।।

यत्किं च दृश्यं परिवर्तिलौकिकं त्वत्सत्तया तस्य सत्तां प्रतीमः ।
अतो विशेषात्मतया स्थितेऽखिले सामान्यरूपस्त्वमिहाखिलेश्वर ।। १९ ।।

आरोपितात्मा भव एष यत्त्वपि स्फुरत्यतस्त्वय्यनु भूतिमागते ।
मृषात्मको बाधितवत्प्रतीयते स्वप्नो यथा स्वप्रतिबोधमागते ।। २० ।।

त्वमस्युपादानममुष्य मृद्यथा घटस्य दुस्तर्क्यविचित्रनिर्मितेः ।
यन्नामजात्याकृतियोगि वस्तुतत्त्वय्यस्ति नास्तीति ततो निगद्यते ।। २१ ।।

नैकस्य ते जातिरनेकसंश्रिता या वै पदार्थस्य परं स्वरूपदा ।
न निर्विशेषस्य विशेषधानकृद्गुणोऽपिकश्चित्त्वयि कल्पनामियात् ।। २२ ।।

विभागसंयोगजसाध्यरूपिणी क्रियापि कल्प्येत न चाक्रियस्य ते ।
अनामरूपस्य च नामरूपकृत्संज्ञापिते कल्पयितुं न शक्यते ।। २३ ।।

अतः कथं त्वाभिदधातु वैदिकी सरस्वती यः सकलैरुपाधिभिः ।
समुज्झितोऽसि स्वपरस्वरूपतो निजे महिम्नि त्वमतो महीयसे ।। २४ ।।

नाकोऽस्ति भूमन् गगने प्रतिष्ठितः सुखं सुरा यत्र वसन्ति सर्वशः ।
अतः प्रशस्तैर्महतो महत्तमैर्न लभ्यसे त्वं सुकृतैर्विना प्रभो ।। २५ ।।

परार्द्धकल्याणगुणप्रसूतये विशेषतो न्यस्तगुणानुषक्तये ।
स्वरूपमात्रं ननु धर्मं धर्मिभाव न धत्सेऽनातिरिक्तसंगभृत् ।। २६ ।।

उपैषि लोके त्वमजोऽपिलीलयाऽऽविर्भवमात्रं निजजीवमुक्तये ।
उदारभूयो गुणकर्मनामभिः प्रवर्तयन् स्वं भजनं विशेषतः ।। २७ ।।

इति स्तुत्वामहास्तत्र देवदेवं चतुर्भुजम् ।
वरमन्दारकुसुमस्तबकैः पर्यपूजयन् ।। २८ ।।

मन्दाकिनीतीरसरोजकोष सम्पन्न सम्यङ्मकरन्दवृन्दैः ।
विधाय पाद्यार्घमुखीं सपर्यामात्मानमेते विनिवेद्य तस्थुः ।। २९ ।।

असुरानीकखिन्नानाममराणां विलोक्य ताम् ।
भक्तिमात्मनि गोविन्दः प्रसीदत् करुणार्णवः ।। ३० ।।

शुचिस्मितरुचिच्छटाविदलितान्धकारव्रजो नितान्तकरुणेक्षणविशीर्णशोकज्वरः।
अमन्दतरमूर्तिमन्निजवरायुधोत्साहदो जगाद मधूसूदनस्त्रिदिववासिनोनन्दयन् ॥ ३१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे समुद्रमथने देवकृतस्तोत्रे एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

●

अशीतितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

ज्ञाता वोऽसुरवर्गेभ्यः सम्भूतोच्चैर्मया रुजा।
तत्प्रतीकारमधुना कर्त्तुमस्मि समुद्यतः ॥ १ ॥

लोकेऽहं सर्वजीवेषु वृत्तिं साधारणीं श्रितः।
तथापि मम भक्तेषु करुणाभ्यधिकामराः ॥ २ ॥

समत्वं वापि वैषम्यमुदाहरतु मे जनः।
तथापि मम युष्मासु पक्षपातो विशेषतः ॥ ३ ॥

युद्धे प्रसक्तेऽसुरपुङ्गवैर्वः पराजयो जायत एव देवाः।
तन्मूलमेकं मृतसंजीविनी सा विद्या कवेरसुराचार्यकस्य ॥ ४ ॥

भवन्तोऽपि सुधापानादमरत्वं यदा सुराः।
गच्छेयुस्तर्हि गच्छेयुररयो वः पराभवम् ॥ ५ ॥

मायाविनः पापवृत्ता असुराः कूटवृत्तयः।
गमिष्यन्ति सुराः सर्वे स्वयमेव पराभवम् ॥ ६ ॥

भवन्तो धर्मपरमा नित्यं मां समुपाश्रिताः।
नहि न्यक्कारमर्हन्ति असुरेभ्यो दिवौकसः ॥ ७ ॥

न्यूनं त्वमृतमेवैकं युष्मासु त्रिदिवालयाः।
यल्लब्ध्वा वीतमरणा विजेष्यथ परान् मृधे ॥ ८ ॥

सिन्धोर्गर्भेतदमृतमस्ति देवाः सुदुर्लभम्।
अतस्तमेव सोपायाः सिन्धुं मथितुमिच्छत ॥ ९ ॥

अगाधः पयसां राशिः सर्वरत्ननिकेतनः।
कल्पद्रुमजनिः साक्षाद्वरुणस्यालयो महान् ॥ १० ॥

ममापि शय्याभवनं विषस्याप्यमृतस्य च।
स्थानभूतो जलनिधिर्मथितुं शक्यते कथम् ॥ ११ ॥

अहो तादृश एवास्य मन्थदण्डोऽप्यपेक्षितः ।
गम्भीरस्य तलस्पर्शोऽप्यस्य सम्भाव्यते न च ॥ १२ ॥

अपेक्ष्यं तादृगेवास्य नेत्रं मन्थनहेतवे ।
तादृशा एव चापेक्ष्या मथितारो महाबलाः ॥ १३ ॥

यादसां भूरिजीवानां कदनं च भवेदिह ।
मकरौघालयो ह्येष सुगम्भीरः पयोनिधिः ॥ १४ ॥

सुदुर्घटमतो मन्ये मन्थनं क्षीरवारिधेः ।
पुरस्ताद्विषमे तस्य त्रैलोक्यजनमारणम् ॥ १५ ॥

मूर्च्छान्धिकारनिविडं प्रादुर्भूतं भवेदितः ।
येन नाशस्त्रिजगतां सम्भाव्यो दुर्धरात्मना ॥ १६ ॥

अशक्यश्चामृतोत्पाद उपायैर्योजितैर्विना ।
इत्यहं मनसा दूये भवदर्थे दिवोकसः ॥ १७ ॥

उपायेन तु यच्छक्यं न तच्छक्यं विचारणैः ।
अतः प्रयतितव्यं व उपायानां समृद्धये ॥ १८ ॥

साहाय्यमत्रभवतामहमाचरिष्याम्यात्मप्रभावसमुपेत उपात्तनीतिः ।
उच्चैर्मया निभृतमाहित एव यत्नः साफल्यमेष्याति यथार्थमनोरथेन ॥ १९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे समुद्रमथने विष्णुकृतमन्त्रोक्तौ नामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

●

एकाशीतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

विष्णुना व्याहृतं वाक्यं श्रुत्वा सर्वं सुरेश्वरः ।
शक्रः प्रोवाच विहसन् मनसामुदितो भृशम् ॥ १ ॥

उत्पद्येतामृतं सिन्धोरमरत्वविधायकम् ।
तर्हि तेनैव किं न स्युरमरा असुरा अपि ॥ २ ॥

तदा स्यादपरोऽनर्थ एवमेवासुराः खलु ।
जयिनस्त्रिदशैर्युद्धे किं पुनस्तेऽमृताशिनः ॥ ३ ॥

दुर्घटा चामृतोत्पत्तिः सिन्धोर्गम्भीरपाथसः ।
भवतैव विधातव्या देवानां पक्षपातिना ॥ ४ ॥

न लभेरंस्तदसुरास्तथा कार्यं च माधव।
स्यात्तत्कृतकृतं सुष्टु विपरीतं ततोऽन्यथा ॥ ५ ॥

श्रीभगवानुवाच

तदप्यहं करिष्यामि न लभेरन् यथासुराः।
मन्थनीयस्तु पाथोधिः सहैव त्रिदशासुरैः ॥ ६ ॥

यतो हि बलिनः सर्वे असुरा वीर्यवत्तराः।
सहितास्तैः प्रमथ्नन्तु भवन्तः क्षीरनीरधिम् ॥ ७ ॥

तैर्विना मथितात्सिन्धोः सम्भूतममृतं सुराः।
हरेयुरसुराः सर्वे संहत्य बलवत्तराः ॥ ८ ॥

अतो मिलित्वा मथ्नीत समुद्रमसुरैः सुराः।
पश्चात्तद्वञ्चनं कृत्वा निभृतं पास्यथामृतम् ॥ ९ ॥

उपायं तु प्रपतिताः कुरुध्वममरोत्तमाः।
अहं तत्र सहायोऽस्मि प्रज्ञया च बलेन च ॥ १० ॥

इन्द्र उवाच

समुद्रमथनोपायं भवानेव विनिर्दिशेत्।
तर्हि कार्यमिदं चक्रिन् कृतं सुष्टु कृतं भवेत् ॥ ११ ॥

भवानेवेश वेत्तास्ति स्थूलसूक्ष्मपरस्य वै।
त्वयैववेदितं भूमन् वेत्तुमर्हन्ति देवताः ॥ १२ ॥

अकुण्ठितं तव ज्ञानमिच्छा च फलसाधिनी।
कृतिश्च परमेशान तवैव सफला प्रभो ॥ १३ ॥

इत्याज्ञाय प्रार्थयाम उपायान् नो निवेदितुम्।
यैर्मथामपयोराशिममृतोत्पत्तिकाम्यया ॥ १४ ॥

त्वया हरेविनिर्दिष्टा उपाया मथनोन्मुखाः।
भविष्यन्त्येव सफला इति विश्वसिता वयम् ॥ १५ ॥

श्रीभगवानुवाच

अस्ति शैलवरे नाम्ना मन्दरः सुसमुन्नतः।
दृढसंहननो दीर्घोभूरिसारशिलाश्वरः ॥ १६ ॥

मूलारभ्य समुद्धाति लोहसाराधिको गिरिः।
द्रढीयान् भङ्गरहितो मन्थनोचितविग्रहः ॥ १७ ॥

तत्र नेत्रं समुचितं नागराजो महातनुः।
वासुकिर्नाम भोगेन द्राघीयान् भङ्गवर्जितः ॥ १८ ॥

मन्थदण्डावर्तसहः साधुराकर्षणेषु यः।
स प्रार्थनीयः संहत्य युस्माभिः सकलैः सुराः ॥ १९ ॥

तावत्सन्धिश्च कर्तव्यो युष्माभिरसुरैः सह।
यावत्स्यात्सिन्धुमथनममृतं च भवेदितः॥ २०॥

आचार्यो वः प्राज्ञ आङ्गिरसो यः सम्प्रेष्योऽसावसुराचार्यपार्श्वम्।
एतद्वृत्तं तत्र तेनैव वाच्यं यच्छ्रुत्वा स्युः सोद्यमाः पूर्वदेवाः॥ २१॥

इत्युक्त्वासौ पश्यतां निर्जराणामन्तर्धानं प्राप्य नारायणोऽगात्।
वैकुण्ठंस्वं लोकमाश्वास्य चैतां स्ते देवाचार्यं प्रैषयञ्शुक्र पार्श्वम्॥ २५॥

स तत्र गत्वा भगवान् वृहस्पतिः शुक्रेण सम्मानित आदरादिभिः।
सुखस्थितश्चित्रशिखण्डिजः शनैरित्यूचिवान् साधुवचः प्रमाणवित्॥ २३॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे समुद्रमथनेमन्त्राविर्भाव एकाशीतितमोऽध्यायः॥ ८१॥

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

बृहस्पतिरुवाच

कच्चित्त्वमसुराचार्य भूतिभिः सुखमेधसे।
यस्य शिष्या विजयिनो दैवेया दानवा अपि॥ १॥

भूर्भुवःस्वरिति ब्रह्मंस्त्रैलोक्यमसुरैर्जितम्।
अहो अमीषामतुलं बलं वीर्यं च दुर्धरम्॥ २॥

यानि रत्नानि लोकेषु तेषां श्रीरसुरैः कृता।
तव मन्त्रप्रभावेण ततोऽसि भगवान् स्वयम्॥ ३॥

अपि त्वेकं विजानीहि ज्ञात्वा चाप्यसुरान् वद।
मतन्ते यर्हिभगवन् कुर्युस्तर्ह्यूर्जिता अमी॥ ४॥

सर्वेषां खलु रत्नानां स्थानमेकं महोदधिः।
स च स्यान्मथितोभूयस्तदालभ्यानि तान्यपि॥ ५॥

ब्रूहि दैत्यगुरो दैत्यान् विशेषाद्बलशालिनः।
मन्थेयुरुदधिं यत्नाद् रत्नानां खलु लब्धये॥ ६॥

देवैरपि च कार्यं स्यात् साहाय्यं स्वात्मशक्तितः।
यद्यमीभिः प्रदेयोंऽश एवं जाते शुभं महत्॥ ७॥

देवाश्चैवासुराः सर्वे मथनन्तु पयसां निधिम्।
तत उत्पाद्य रत्नानि विभक्तव्यानि सर्वशः॥ ८॥

संहृत्यसर्वविहितं भवेत्कार्यं फलोन्मुखम् ।
असंहृत्य विनाशाय संघातो हि महद्बलम् ॥ ९ ॥

न धर्माय न भोगाय सिन्धौरत्नानि भूरिशः ।
विनियोज्यानि तान्येभिर्देवैरैक्यं विधाय हि ॥ १० ॥

मन्दरोमन्थदण्डोऽस्तु नेत्रं वासुकिनागराट् ।
उभयोर्भागयोः सन्तु मन्थितारः सुरासुराः ॥ ११ ॥

इत्युक्त उशना तेन सर्वानामन्त्र्य सोऽसुरान् ।
मन्त्रं तं कथयामास यदाह दिविषद्गुरुः ॥ १२ ॥

शृण्वन्तु मामकाः सर्वे यूयं हि बलवत्तराः ।
रत्नानामाकरं वित्तसमुद्रं पयसां निधिम् ॥ १३ ॥

किपती श्रीस्तु भुवने श्रीमन्तः स्युर्यथासुराः ।
अतो मन्थत पाथोधिं महत्याः श्रिय आप्तये ॥ १४ ॥

किं तु नैकाकिना साध्यं महत्कार्यमिदं खलु ।
अतः संहृत्य विबुधैर्मन्थनं कुरुतोदधेः ॥ १५ ॥

रत्नानामाकरो ह्येष दिव्यानां श्रिय एव च ।
ततो भवन्तः श्रीमन्तो भविष्यन्ति सुखाय मे ॥ १६ ॥

अमृतोत्पत्तये देवाः सन्धिं यास्यन्ति दानवाः ।
सिद्धे कार्ये विधातव्यं यथोचितमरिन्दमाः ॥ १७ ॥

उपानयत शैलेन्द्रं मन्दरं दृढविग्रहम् ।
सुवर्णमयमुत्तुङ्गं द्राघीयांसं सुरैः सह ॥ १८ ॥

उपामन्त्रयत प्राज्ञा नागराजं च वासुकिम् ।
भागं दत्त्वामृतं तस्मै धत्त मन्थगुणं गिरौ ॥ १९ ॥

श्रुत्वा शुक्रोदीरितं वाक्यमेतद्वैरोचनिप्रमुखा दैत्यवर्याः ।
सद्रत्नानां लब्धये जातकामाः सिन्धून्माथं रोचयामासुरन्तः ॥ २० ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे
सिन्धुप्रमथने द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

देवाश्चैवासुराश्चैव संहृत्यामृतलब्धये ।
जग्मुर्मन्दरमानेतुं जाम्बूनदशिलामयम् ॥ १ ॥

दैतेया दानवाश्चैव बलिप्रमुखतोऽखिलाः ।
बलिनो जम्भनमुचिबलाद्या दीर्घबाहवः ॥ २ ॥

नानाकुलसमुत्पन्नाः कालकाद्याः कलायशः ।
संहृत्य देवैरगमन् यत्र मन्दरपर्वतः ॥ ३ ॥

समुत्पाट्यबलाच्छैलमनयन् सिन्धुसन्निधिम् ।
सुदूरतमगन्तव्ये पथि श्रान्ताश्च तेऽभवन् ॥ ४ ॥

कुलाचलभराक्रान्ता देवाश्चैवासुराः पथि ।
खिन्ना वोढुमशक्तास्ते तत्यजुर्विकलाः क्षणात् ॥ ५ ॥

पतता तेन शैलेन केचित्संचूर्णिताः पथि ।
व्यसुकल्पाः समभवन् महासारशिलाहताः ॥ ६ ॥

अथ सर्वे सुपर्वाणः सस्मरुर्गरुडध्वजम् ।
सर्वोपायोपेयफलदातारं सदनुग्रहम् ॥ ७ ॥

तत्क्षणात्स्मरतां तेषामाविरास जनार्दनः ।
सुपर्णपृष्ठमारूढः पीतवासा घनच्छविः ॥ ८ ॥

तस्यावलोकनात् सर्वे भग्नाअसुरदैवताः ।
पुनरुज्जीविता आसन् सुधासेकमिवापिताः ॥ ९ ॥

स एकेन करेणाद्रिं स्थापयामास वाहने ।
स्वयमारुह्य च ययौ तीरं क्षीरनिधेर्जवात् ॥ १० ॥

तमनुप्रययुः सर्वे देवदैतेयदानवाः ।
ततोऽवरोहयामास सुवर्णात्पर्वतं हरिः ॥ ११ ॥

अहीन्द्रस्यागमं वाञ्छन् प्रभुस्तार्क्ष्यं व्यसर्जयत् ।
अथासावाजगामाब्धिं वासुकिः स्मरणक्षणे ॥ १२ ॥

तं वेष्टयित्वा शैलेन्द्रं नागराजं महाबलम् ।
वैरोचनिमुखा दैत्या देवा विष्णुपुरोगमाः ॥ १३ ॥

आरब्धवन्तो मथनं समुद्रस्य बलोद्धताः ।
नागेन्द्रस्य मुखे दैत्या अभवन् गर्वशालिनः ॥ १४ ॥

पुच्छे च देवता आसन् विष्णोः प्राज्ञातिरेकतः ।
ततः शैलो निराधारो ममज्ज पयसां निधौ ॥ १५ ॥

जले मग्नं च तं वीक्ष्य व्यषीदंस्ते सुरासुराः ।
ततः स भगवान् विष्णुः कूर्मो भूत्वोद्दधार तम् ॥ १६ ॥

प्रविश्य सिन्धोः सलिलेऽत्यगाधे स कूर्मराजो भगवान् सुधार्थम् ।
दधारशैलं निजपृष्ठदेशे विस्तारतो योजनलक्षमाने ॥ १७ ॥

स तस्य पृष्ठे परिवर्तमानो गिरिर्महावज्रशिलाकठोरः ।
सुरासुरभ्रामितमूलदेशः सुखाय कण्डूतिहरो बभूव ॥ १८ ॥

आसुरं बलमादाय दैत्येषु प्राविशद्धरिः ।
दैवं बलमुपादाय देवेष्वाविष्ट आत्मना ॥ १९ ॥

अबोधरूपतामेत्य नागराजे विवेश च ।
स यथाऽऽकृष्यमाणोऽपि नाज्ञासीत्तनुवेदनाम् ॥ २० ॥

शैले च दार्ढ्यरूपेण प्रविष्टः स्वयमेव सः ।
उपरिष्टाच्च शैलेन्द्रमस्तभ्रादेष एव च ॥ २१ ॥

अधश्च कूर्मरूपेण स्वयमेव व्यवर्तत ।
इत्थमास स सर्वत्र कायव्यूहेन केशवः ॥ २२ ॥

भोगिराजमुखप्रोत्थैः श्वासोच्छ्वासैर्महाविषैः ।
दग्धसंहनना आसन् सर्वतो दैत्यदानवाः ॥ २३ ॥

दवदग्धा यथा वृक्षास्तडिद्दग्धा यथा जनाः ।
तथा विवर्णवपुष आसन् दैतेयपुङ्गवाः ॥ २४ ॥

पर्यरक्षद्धरिर्देवान् भोगिश्वासविषाहतान् ।
आत्मना प्रेरितैर्मेघैः सुच्छायैर्मन्दनिर्झरैः ॥ २५ ॥

समुद्रजलसम्पृक्तैर्वेलावनसमुद्भवैः ।
सुपुष्पमकरन्दाक्तैः समीरैरतिशीतलैः ॥ २६ ॥

सुभृशं मथ्यमानोऽपि नाजायत फलोन्मुखः ।
तदा स्वयं निर्ममन्थे हरिदेवेन वारिधिः ॥ २७ ॥

स बिभ्रदायस्तभुजोरुदण्डो भोगीन्द्रभोगं मथनाय नेत्रम् ।
आवद्धपीताम्बरमञ्जुकक्षो मनोज्ञरत्नाभरणः सुवेशः ॥ २८ ॥

सिञ्चन् सुरान् सकरुणामृतपूरलोल नेत्रारविन्दरुचिरेक्षणबिन्दुपातैः ।
साहाय्यमब्धिमथने भृशदुष्करेऽपि कुर्वन्नितान्तमरुवद्भगवान् रमेशः ॥२९॥

शैलादीन्द्रविकृष्टिवेगविचलद्दोर्दण्डदिव्याङ्गदं
स्विद्यद्वक्त्रविधूपवीतललितव्यालोलनीलालकम् ।
दीर्घान्दोलविलोलकुण्डलमणिस्रग्भारपीताम्बरं
मूर्ध्दन्यापीच्यकिरीटधारिणमुरुप्रोद्यन्महाविक्रमम् ॥ ३० ॥

सावेशं मथनेम्बुधेः सदयदृक्पातेन सर्वान् सुरान्
सिञ्चन्तं सुधयेव वीक्ष्यगगने सिद्धाप्सरःखेचराः ।
एकानेकतया दधानमतुलं साहाय्यमुच्चैर्गिरा-
शंसन्ति स्म जयेति चामरगणा देवर्षयस्तुष्टुवुः ॥ ३१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे समुद्रमथने त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

इत्थं नारायणेनोच्चैस्तथा देवासुरैरपि ।
मथ्यमानात् पयोराशेरभूदत्युल्बणं विषम् ॥ १ ॥

स्निग्धान्धकारकूटाभं ज्वालामालातिभीषणम् ।
महोग्रवेगं विषहं प्रविसर्पदितस्ततः ॥ २ ॥

उग्रं प्रतिक्रियाशून्यं व्याप्नुवद्दश दिक्षु च ।
शनैः शनैः स्ववीर्येण समाक्रामदुपर्यधः ॥ ३ ॥

सुमहद्भीतिजननं मोहमूर्च्छादिकारणम् ।
रोमाञ्चस्वेदवैवर्ण्यजनकात्यूष्मदुःसहम् ॥ ४ ॥

यद्धालाहलमित्याहुस्त्रैलोक्यजननाशनम् ।
भूचराणां खेचराणां सद्योऽन्धकरणं दृशोः ॥ ५ ॥

तदुत्सर्पद्विसर्पच्च प्रसर्पच्च दिशो दश ।
अन्धकारितदिग्व्योमभूमण्डलमुदञ्चितम् ॥ ६ ॥

तदूष्मज्वालजालेन वित्रस्तास्ते सुरासुराः ।
त्यक्त्वा मन्थगुणं सर्वे पलायन्ते स्म तत्क्षणे ॥ ७ ॥

ते विष्णुना विनिर्दिष्टाः शरणं यात शङ्करम् ।
स वै देवः स्ववीर्येण विषवीर्यं निरोत्स्यति ॥ ८ ॥

तथेति मतमादाय विष्णोरमिततेजसः ।
जग्मुःशरणमीशानं पार्वतीशं त्रिलोचनम् ॥ ९ ॥

तेषां स्तुतिभिरर्चाभिः प्रसन्नोऽभून्महेश्वरः ।
ब्रूत किं करवाणीति स तानाह सुरासुरान् ॥ १० ॥

तमूचुस्त्राहि नः शम्भो सुघोराद्गरलानलात् ।
यो मथ्यमानाज्जलनिधेर्जातो लोकान् दिधक्ष्यति ॥ ११ ॥

तदूष्मज्वालया भूयः प्रसर्पन्त्या दिशो दश ।
वित्रस्ताः सेश्वरालोकास्त्वामेव शरणं गताः ॥ १२ ॥

एवमुक्तः पशुपतिर्भयत्रस्तैः सुरासुरैः ।
पार्वतीं कथयामास प्रभावज्ञां तदात्मनः ॥ १३ ॥

महोल्वणं विषं सिन्धोर्मथ्यमानादजायत ।
तदूष्मज्वालयालोका विनङ्क्ष्यन्ति समंततः ॥ १४ ॥

प्रिये त्रैलोक्यरक्षार्थं निपेयं तन्मयाधुना ।
भवत्या न पुनः कार्या भीतिरत्र हिमाद्रिजे ॥ १५ ॥

स तया समनुज्ञातः प्रभावज्ञानशीलया ।
तदेकचुलुकीकृत्य पपौ हालाहलं विषम् ॥ १६ ॥

निपीतमपि तत्तस्य निजवीर्यमदर्शयत् ।
विततान गलोद्देशे नीलिमानं मनोहरम् ॥ १७ ॥

अभूद्भूषैव सा तस्य स्फटिकस्वच्छवर्ष्मणः ।
अनुलिप्तेव कस्तूरी ध्यायतां हृदये बभौ ॥ १८ ॥

शशंस भगवान् विष्णुर्दयालोः कर्म तस्य तत् ।
ब्रह्मादयस्तथादेवाः कीर्तयामासुरद्भुतम् ॥ १९ ॥

पिबतस्तस्य यत्किंचित्प्रस्रुतं पाणिदेशतः ।
तदाददुर्दन्दशूकाः सर्पाद्या विषजन्तवः ॥ २० ॥

धृतं तद्भुजगैः पूर्णं कालजीमूतवर्ष्मभिः ।
तदर्द्धं वृश्चिकवरैस्तदर्धं कर्कटादिभिः ॥ २१ ॥

भागशो विषवल्लीभिर्विषौषधिमहीरुहैः ।
धृतं तद्घोरगरलं बिन्दुमात्रं पपात यत् ॥ २२ ॥

हरिणा देवदेवेन स्वभक्तमहिमापरः ।
इत्थं हि ज्ञापितो लोके स्वीयानां भक्तिशालिनाम् ॥ २३ ॥

निपीतमात्रे गरले हरस्य नेत्रे अभूतामतिरक्तवर्णे ।
तदूष्मकीलाशममार्थमग्रे मूद्ध्नेशपादोदकमेष धर्ता ॥ २४ ॥

शम्भौ निपीतवति घोरतरं गरं तत् प्रीताशया अमरदानवदैत्यवर्याः ।
भूयः पयोनिधिसमुन्मथने प्रवृत्ता आसुर्निवृत्तभिय आशु गतान्तरायाः ॥ २५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे समुद्रमथने विषसंहरणे चतुरशीतितमोऽध्यायः ८४ ॥

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

देवासुरैश्चाल्यमानो मन्थसूत्रेण भोगिना ।
मन्दरो नाम शैलेन्द्रः पयस्यावर्तनं दधौ ॥ १ ॥

कुलाचले सम्परिवर्तमाने गम्भीरपाथोनिधिवारिपूरे ।
यादोगणः संततवेगखिन्नो बभ्राम दैवागतजोवितान्तः ॥ २ ॥

मीनाःक्षीणायुषोनक्रा मकरास्तिमिकच्छपाः ।
पाठीना भोगिनो ग्राहा बभ्रभुर्जलवेगतः ॥ ३ ॥

आपातालतलव्याप्तगम्भीरजलशायिनः ।
आजग्मुरुपरि क्रूरा उच्छलन्तो जलेचराः ॥ ४ ॥

सम्भ्रान्तान्यम्बुवेगेन यादांसि सहसोद्ययुः ।
निवृत्तभग्नवेगानि छन्नानि च समंततः ॥ ५ ॥

परस्परं निर्विरोधास्तिमपश्च तिमिंगिलाः ।
शीर्णवेगाः पयोवेगैर्बभ्रमुर्जीवितैषिणः ॥ ६ ॥

प्रादुर्भूतेविषे घोरे तदूष्मज्वालया हताः ।
भूरियोजनविस्तीर्णवपुषः शिश्यिरेम्भसि ॥ ७ ॥

शैलमूलशिलाघातैः केचिच्चूर्णितविग्रहाः ।
कीर्णा जलनिधेर्नीरे मकराद्यागतासवः ॥ ८ ॥

वारिभ्रमणवेगेन भ्रामं भ्रामं स्वशक्तितः ।
निरुच्छ्वासतया केचिज्जहुः प्राणान् जलेचराः ॥ ९ ॥

परेघोरविषज्वालापरिस्पर्शक्षतायुषः ।
शेरते स्म जले मीना दग्धा इव दवाग्निना ॥ १० ॥

कुञ्जराः शैलराजेन मथ्यमानान् पयोनिधेः ।
श्वसन्तो वारिवेगेन समुत्तस्थुः सहस्रशः ॥ ११ ॥

ते विशीर्णवपुर्वेगाः पतमाना इतस्ततः ।
विनिवृत्तभ्रमाः सद्यो लग्नाः कूले गतासवः ॥ १२ ॥

क्षिप्ताः पुरानिर्मथनाय वारिधौ फलच्छदा ह्यौषधिवृक्षवीरुधः ।
ते चूर्णभावं गमिताः सहस्रशो जाता यथा योगरसैकहेतवः ॥ १३ ॥

तृणानि वल्ल्यस्तरवो महौषधीगणा महानल्पगुणाः पुरा हि ताः ।
त एव सद्यः शतधा विचूर्णिता रसं महान्तं ससृजुः सुधात्मकम् ॥ १४ ॥

सा मुधा घोरमथनविलम्बापेक्षिणी ततः ।
न यावदाविरभवत्तावद्रत्नान्यनेकशः ॥ १५ ॥

आविर्भूतान्यदृश्यन्त दुर्लभानि जगत्त्रये ।
तथा तथा ते ममन्थुर्भूरिवैभवलिप्सया ॥ १६ ॥

आदौ देवहविर्धानी सुरभिः कामधुग्गवाम् ।
रत्नभूता प्रादुरास सर्वेषां नयनोत्सवा ॥ १७ ॥

समस्फुरद्दीर्घविशालशृङ्गी लसल्ललाटोदयसामिचन्द्रा ।
संध्यासवर्णाङ्गरुचिः सुभव्या स्रवच्चतुर्वर्गपया धटोध्नी ॥ १८ ॥

तां समीक्ष्यानवद्याङ्गीमग्निहोत्रैकसाधनीम् ।
खुरविन्यासमात्रेण पुनन्तीमाश्रमस्थलीम् ॥ १९ ॥

जगृहुर्मुनयः सर्वे प्रभावज्ञा विशेषतः ।
वशिष्ठाद्या महात्मानो भूयः स्तुतिपुरः सरम् ॥ २० ॥

तत आविरभूद्रम्यो हय उच्चैःश्रवा इति ।
राकामृगाङ्कधवलः सर्वावियवसुन्दरः ॥ २१ ॥

ह्रेषाभिर्व्याहरंल्लक्ष्मी त्रैलोक्यैश्वर्यसम्भवाम् ।
शुभैरावर्तसंस्थानैरनवद्याखिलाङ्गकः ॥ २२ ॥

चन्द्रांशुसदृशोद्भूतमृदुस्वच्छतनूरुहः ।
उच्छलत्पुच्छवेगेन चामरं वीजयन्निव ॥ २३ ॥

पुरोऽङ्घ्रिखुरचेष्टाभिराह्वयन्निवभाति यः ।
त्रैलोक्यानन्यसामान्यसाम्राज्यपदसुश्रियम् ॥ २४ ॥

सर्वावियवभूषाढ्यं रत्नवल्गामनोहरम् ।
रत्नपल्याणकलितं चन्द्रांशुश्वेतकेसरम् ॥ २५ ॥

तं वलिः स्पृहयामास देवयानं महाहयम् ।
विष्णुना ज्ञापितः शक्रो मौनमेवास तत्क्षणे ॥ २६ ॥

अथाविरासीन्नागेन्द्र ऐरावत इति श्रुतः ।
युक्तो दन्तचतुष्केण कैलास इव पाण्डुरः ॥ २७ ॥

सोऽपि चासुरराजेन स्वीयत्वेनोररीकृतः ।
न तस्मै स्पृहयाञ्चक्रे इन्द्रःकालप्रतीक्षकः ॥ २८ ॥

पारिजातोऽभवद्भूयो मथ्यमानात्पयोनिधेः ।
स्वर्लोको भूषितो येन पूरिताश्चार्थिनां स्पृहाः ॥ २९ ॥

स्वर्णस्तम्भमनोहारी माणिक्यविटपो महान् ।
रत्नपुष्पसमुल्लासी महामरकतच्छदः ॥ ३० ॥

पीयूषपाकफलभृत्सुच्छायतलशीतलः ।
सम्पत्परम्परावर्षी चन्द्रोज्जागरदीधितिः ॥ ३१ ॥

आचकाङ्क्ष तमानेतुं बलिराराममात्मनः ।
मौनमासुः सुराः सर्वे कार्यसाधनकोविदाः ॥ ३२ ॥

अथाविरासुर्ललना रतिकोटिजयोर्जिताः ।
या एताः स्वर्गिणां गेहानलंकुर्वन्ति कोटिशः ॥ ३३ ॥

दिव्या अप्सरसो नृत्यगीतवाद्यविशारदाः ।
निष्ककण्ठ्यो लसद्भूषा दुकूलवरशोभिताः ॥ ३४ ॥

मनांसि स्वर्गवास्तूनां हरन्त्यो वल्गुचेष्टितैः ।
गतिविभ्रमशालिन्यः स्मितकान्तावलोकनाः ॥ ३५ ॥

अथाविरासीत् कमला हरेः प्रिया फुल्लारविन्दं किल बिभ्रती करे ।
पद्मालया पद्मविलोचना नना पद्मासनावर्ष्मसु पद्मसौरभा ॥ ३६ ॥

प्रकाशयन्ती महसाखिला दिशः शुचिस्मितद्योतिमुखेन्दुचन्द्रिका ।
सौदामिनीकोटिसुदीप्तविग्रहा त्रैलोक्यसम्पत्समुदायरूपिणी ॥ ३७ ॥

तां वीक्ष्य सर्वावयवानवद्यभां गतिस्मितप्रेक्षितकेलिकोविदाम् ।
विमुह्य देवा असुराश्च मानवा अचीकमन्ताधिकवश्यमानसाः ॥ ३८ ॥

तस्या वयोवेषविलासविभ्रमैर्माधुर्यरूपद्युतिवर्णमार्दवैः ।
उदारहासामलवल्गुवीक्षितैराक्षिप्तचित्ताः सहसाभवत् जनाः ॥ ३९ ॥

तामद्भुताकारगतिस्मितादिभिर्विमोहयन्तीं हृदयानि नाकिनः ।
आनर्चुरालोकनवश्यवृत्तयः पाद्यासनस्नानविलेपनादिभिः ॥ ४० ॥

ददौ तस्याः शुनासीरः स्थानाय शुभमासनम् ।
दिव्यं सलिलमानिन्यु गङ्गाद्याः सरितां वराः ॥ ४१ ॥

हेमकुम्भकराः सर्वा अभिषेकार्थमुद्यताः ।
वशीभूतहृदो वल्गुस्मितलीलावलोकनैः ॥ ४२ ॥

दिव्यौषधीरुपाजह्रे भूमिस्तदभिषिक्तये ।
पञ्चगव्यान्युपानिन्युर्गावः कामदुघाः स्वयम् ॥ ४३ ॥

मुनयो मन्त्रसिद्धाश्च प्रफुल्लहृदयाननाः ।
गायन्तश्च पठन्तश्च ऋग्यजुःसामगा गिरः ॥ ४४ ॥

स्तुवन्तो विविधैः स्तोत्रैः सूक्तैश्च पुरुषं यथा ।
चक्रुस्त्रैलोक्यभूत्यर्थमभिषेकोचितं विधिम् ॥ ४५ ॥

अवादयन् घनास्तुङ्गमृदङ्गपणवानकान् ।
मुरजान् गोमुखान् भेरीः शङ्खान् वेणूंश्च वल्लकीम् ॥ ४६ ॥

तां फुल्लपङ्कजकरां शरदभ्युदीतराकासुधांसुवदनामरविन्दसंस्थाम् ।
दिक्शुण्डिनोऽभिषिषिचुर्जलपूर्णहैम कुम्भैः कराग्रविधृतैर्द्विजमन्त्रपूर्वम् ।।४७।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे समुद्रमथने श्रीप्रादुर्भावो नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ।। ८५ ।।

●

षडशीतितमोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

तस्याः सार्थे विनिर्यातास्तिस्रः कोटचो वराङ्गनाः ।
तथा लक्षाणि पञ्चाशत्सहस्राणि चतुर्दश ।। १ ।।

शतानि पञ्चदश च यथा लक्ष्मीस्तथैव ताः ।
वयोऽवस्थारूपगुणसौन्दर्याद्यैः समाः प्रिये ।। २ ।।

कन्याः श्रीरसमुद्रस्य लक्ष्मीपतिवरोत्सुकाः ।
ताः समादाय सलिलात्स्वयं सिन्धुर्विनिर्ययौ ।। ३ ।।

तासामुद्वहनार्थाय परया चिन्तयाऽऽकुलः ।। ४ ।।

सर्वास्ताः पीतकौशेयवासिन्यो निष्कभूषिताः ।
वरपङ्कजमालाभिर्भूषिताः पद्मपाणयः ।। ५ ।।

ताः श्रियं भूषयाञ्चक्रू रत्नाकरसमुद्भवैः ।
वासोभिर्भूषणैर्दिव्यैर्हारस्रक्कुण्डलादिभिः ।। ६ ।।

स्वयं तस्याः पिता निन्वो पीतकौशेयवाससी ।
वैजयन्तीं स्रजं दिव्यां वरुणो यादसां पतिः ।। ७ ।।

तस्यास्तु सौरभोद्गारैः ककुभः सुरभीकृताः ।
दिङ्मुखेभ्यः समाजग्मुराहूता इव षट्पदाः ।। ८ ।।

मकरन्दभरस्राविपञ्चवर्णप्रसूनजाम् ।
वहन्ती तां स्रजं रेजे वसन्तश्रीरिवेन्दिरा ।। ९ ।।

उपाहरद्विश्वकर्मा प्रजापतिरथ स्वयम् ।
तस्यै रत्नविचित्राणि भूषणानि सहस्रशः ।। १० ।।

सरस्वती रत्नहारं ब्रह्मा पद्ममनुत्तमम् ।
शेषश्च कुण्डले दिव्ये मुदितः समुपाहरत् ।। ११ ।।

तां पीतवसनां दिव्यरत्नभूषणभूषिताम् ।
वैजयन्तीस्रजोपेतां हरिद्राचूर्णरूषिताम् ॥ १२ ॥

विवाहोचितवेषाढ्यांश्यामं श्यामोत्पलेक्षणाम् ।
उवाच जनकस्तस्य वात्सल्येन सगद्गदम् ॥ १३ ॥

गन्धर्वविद्याधरमर्त्यनागराट्सुरासुराणामियतीह मण्डले ।
त्वं पुत्रि यं कं चिदनुत्तमैर्गुणैरात्मानुरूपं वरमृच्छ सम्प्रति ॥ १४ ॥

ममाङ्गजा सर्वगुणौघभाजनं त्रैलोक्यसम्पत्तिनिधानविग्रहा ।
गुणैरिहास्यप्रतिमा ततो वरं निरीक्ष्य चित्तेन विमृश्य यास्यसि ॥ १५ ॥

इत्युक्तवति पाथोधौ तस्याः सख्यो वरस्त्रियः ।
ऊचिरे युगपत्सर्वास्तत्प्रेमवशिताशयाः ॥ १६ ॥

यमेषा तात पद्माक्षी वरिष्यति निजं प्रियम् ।
वरः स एव नो भूयान्नेतरं कामयामहे ॥ १७ ॥

ततः स हंसगमना समाकर्ण्य पितुर्वचः ।
कृतस्वस्त्ययना देवी सव्रीडहसितानना ॥ १८ ॥

वरमालां समादाय गुञ्जद्भ्रमरमण्डिताम् ।
दिव्यपद्ममयीं पीठादुदतिष्ठद्वरार्थिनी ॥ १९ ॥

ददर्श यक्षान् गन्धर्वानसुरान् सिद्धचारणान् ।
विद्याधरान् भूतपतींल्लोकेशानपि दिक्पतीन् ॥ २० ॥

देवान् ब्रह्मशिवेन्द्रादीन् ग्रहनक्षत्रनायकान् ।
आदित्यांश्च वसून् रुद्रान् विश्वान् देवांश्च भास्वरान् ॥ २१ ॥

तुषितानलिलांश्चैव साध्यान् पितृगणांस्तथा ।
रक्षोभूतपिशाचादीनसुरान् दैत्यदानवान् ॥ २२ ॥

यज्ञं संवत्सरं कालं वसन्ताद्यांस्तथा ऋतून् ।
नागानैरावतादींश्च वासुकिप्रमुखानहीन् ॥ २३ ॥

पुष्करावर्तकादींश्च घनान् नरपतीन् नरान् ।
नदांश्च शोणभद्रादीनश्वत्थाद्यान् वनस्पतीन् ॥ २४ ॥

धर्मं चार्थं तथा कामं मोक्षं चापि चतुर्विधम् ।
निरूपयन्ती व्यचरत्स्वानुरूप वरार्थिनी ॥ २५ ॥

सर्वपूर्णगुणस्थानं सर्वदोषविवर्जितम् ।
ध्रुवं पुरुषधोरैयमिच्छन्ती पदमात्मनः ॥ २६ ॥

विलोकयन्ती सर्वत्र त्रैलोक्ये नान्वविन्दत ।
ततश्च सा परावृत्ता परमानन्दरूपिणी ॥ २७ ॥

दीव्यत्कोटिसखीयूथविद्युन्मडलवर्तिनी ।
बिभ्रती पद्मवदना करपद्मे वरस्रजम् ॥ २८ ॥
सदानवद्योऽखिलनित्यसद्गुणः क ईश्वरो मे प्रतिमो भवेदिति ।
मुहुर्विचिन्त्यैतदवोचतेन्दिरा निजां वयस्यां निभृतं सुचिस्मिता ॥ २९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे समुद्रमथने श्रीकृतवरान्वेषणे षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

श्रीरुवाच

वद सखि कियदेतत्तुच्छमाब्रह्मलोकं सुखमसुखविमिश्रं यत्कृते मुग्धचित्ताः ।
परमसुखकदम्बं कालमायाद्यपेतं विजहति भवचक्रे संततं भ्रान्तिभाजः ॥१॥
किमु सखि पुरराजः स्यान्महान् भूमिकोणे पदमयति यदीयं सापिभूरण्डकोणे ।
तदपि तु विभिनोप्तं भूरितोयैकदेशे विशति पुरुषनाभौ सोऽप्यतः कोटिशस्ते ॥२॥
वद सखि किमु पश्यस्याविरञ्चेः किरीटं त्रिजगति परमैश्यं क्वाप्यनन्यानपेक्षम् ।
भवदपि किमु खेलत्कालहर्यक्षदंष्ट्रा विकटकटकटाभिर्यन्न सद्यो निगीर्णम् ॥३॥
वद सखि किमु वीर्यं पश्यसि क्वापि दृप्यद्दितिजदनुजनाथानीकपर्याकुलायाः ।
कलयति धरणेर्यः क्लेशशान्तिं स्वशक्त्या भवति यदिह नृणां सम्प्रवृत्तस्त्रिवर्गः ॥४॥
निगमनलिनमध्योद्गारिमाध्वीकपूरं सुरनरमुनिचेतःषट्पदास्वाद्यमेकम् ।
प्रथयति भुवनानां भूषणं सद्यशो यः स क इह सखि मृग्यः पूरुषाणां धुरीणः ॥५॥
उदयति परमाया कालमायाद्यपेता निरवधिनिजलेशव्याप्तलोकेशसद्मा ।
चरणनखररोचिर्मग्नकोटीन्दुसूर्या क्वचन सखि पुनर्यत्र दृश्यते तादृशी श्रीः ॥६॥
कथय सखि किमीयज्ञानमज्ञानदोषव्यधिकरणमगाधं भासयत्कृत्स्नमेतत् ।
निखिलभुवनवस्तूद्भासकः सोऽपि भास्वान् भवति भृशमनेनोद्भासितो भासनार्हः ॥७॥
स्मरविशिखविलोलस्वर्गपङ्केरुहाक्षी विविधविहृतिजन्मा भाति यत्र प्रमोदः ।
स सखि विषयभोगो भासते यस्य फल्गुः स्थिरतममतिरीदृक् को नु वैराग्यसारः ॥८॥
क इह सखि तपस्वी निर्जितो येन मन्युः परिहृतगुणसंगं ज्ञानमुद्भाति कस्य ।
अपि खलु स महान् को निर्जितो येन कामः क्व च विलसति धर्मः सर्वतः सौहृदाढ्यः ॥९॥

कथय सखि विमुक्त्यै त्यागवान् को नु लोके क इह वहति वीर्यं कालवेगाद्विमुक्तम् ।
स च क इह न संगो यस्य मायागुणानां क उत भुवि चिरायुः सर्वतो यस्य भोगः ॥१०॥

क इह निखिलभोगो यं न कालस्य दंष्ट्रा स्पृशति तदुभयं चेदस्ति कात्यायनीशे ।
तदपि पितृवनस्थे तत्र नो मङ्गलाशा सकलशुभसमेतः कश्चनापेक्षते माम् ॥११॥

सखि कमहमुपेयां सर्वशः सद्गुणाढ्यं प्रकृतिमधुररूपं संस्थितं कालमूर्ध्नि ।
इति मनसि विमृश्य प्रीतियुक्ता वरिष्ये सुलभमिह निजानां केशवं देवदेवम् ॥१२॥

श्रीराम उवाच

इत्युक्त्वा सा भगवती माधवं मधुसूदनम् ।
उपसृत्य समन्दाक्षं बव्रे कमलमालया ॥ १३ ॥

अपश्यच्च त्रपाहर्षमन्दस्मितमनोज्ञया ।
दृशा कनकपत्राङ्गी सावगुण्ठपटानना ॥ १४ ॥

निधाय तस्यांसयुगे वरस्रजं समुल्लसत्पद्ममयीं सुसौरभाम् ।
पार्श्वानुलग्नभ्रमरौघसेवितां गुञ्जारवच्छद्मनदद्यशोगणाम् ॥ १५ ॥

अतिष्ठदुद्भासितवामपार्श्वगा निरीक्षमाणास्थितये शनैरुरः ।
दृशा मनोमर्षकषायकोणया परिस्फुरन्त्या वनमालयाञ्चितम् ॥ १६ ॥

सव्रीडहासरुचिरेक्षणमोक्षवत्या लक्ष्म्या वृते त्रिजगतां जनके जनन्या ।
अन्तःप्रसादसुमुखाः पुलकावृताङ्गाः सर्वे जनाः समभवन् परमप्रमोदाः ॥१७॥

देव्या वृते निजे कान्ते तदंशास्त्रिजगज्जनाः ।
सर्वे नराश्च नार्यश्च मुदिता अभवंस्तराम् ॥ १८ ॥

असुरेन्द्रैर्हृता च श्रीस्त्रिलोक्याः प्रोषितैव या ।
साभूत्पुनः परावृत्ता वृते नारायणे श्रिया ॥ १९ ॥

ऐधन्त त्रिदशाः सर्वे पुनः स्वस्व पदाशिषा ।
जजागार त्रिजगतां पुनः श्रीः श्रीपतेर्बलात् ॥ २० ॥

अथो अवादयन्त मृदङ्गदुन्दुभीसशङ्खभेरीमुरजानकादयः ।
वाद्यप्रभेदास्त्रिदशोपजीविभिर्विद्याधरैः सोत्सवगानमाहताः ॥ २ ॥

गायतां नृत्यतां चैव स्तुवतां पठतां तथा ।
देवगन्धर्वविद्याध्रवर्याणामभवत् स्वनः ॥ २२ ॥

ब्रह्मा रुद्रस्तथा शक्रो वाक्पतिश्चेतरे सुराः ।
तमीडाञ्चक्रिरे देवं सश्रियं मन्त्रसूक्तिभिः ॥ २३ ॥

विष्णुसूक्तैः पृथग्विष्णुमस्तुवन् वेदवित्तमाः ।
श्रीसूक्तैश्च श्रियं देवीं परमाह्लादमन्थराम् ॥ २४ ॥

तस्याः कृपाकटाक्षेण सप्रजापतयः सुराः ।
पुनः स्वगुणसंयुक्ता अभवन् येऽसुरैर्जिताः ॥ २५ ॥

उपेक्षितास्तया देव्या स्वकृपालोकतोऽसुराः ।
सर्वदूषणसम्पन्ना अभवन् दैत्यदानवाः ॥ २६ ॥

ततः समुद्रः सम्पद्भिर्मणिकाञ्चनभूषणैः ।
अतोषयद् रमाकान्तमुवाच च मुदा युतः ॥ २७ ॥

एषा तवाङ्घ्रिसेवार्थं दासिका त्रिजगत्प्रभो ।
मया निवेदिता देव ग्राह्या करुणया दृशा ॥ २८ ॥

भूयश्च दास्य एवेमास्तव सेवापरायणाः ।
अनुग्रहीष्यसि ह्येता एकान्तभजनोत्सुकाः ॥ २९ ॥

इत्थं वचः समुद्रस्य श्रुत्वा देवो रमापतिः ।
उवाच त्रिजगद्वन्द्यमनोज्ञचरणाम्बुजः ॥ ३० ॥

यदुक्तं तत्त्वया सत्यं भक्ता एव मता इमाः ।
मम सेवापरा नित्यं प्राप्स्यन्ति सुखमुत्तमम् ॥ ३१ ॥

किंतु सिद्धपदं सिन्धो मामको लोक उत्तमः ।
एतास्तु साधनावस्थाः सिद्धा भूत्वा लभन्तु माम् ॥ ३२ ॥

तावन्नीरनिधे शश्वत् त्वत्तीरभुवमाश्रिताः ।
एतास्तपस्तपस्यन्तु मम भक्तिबलोर्जिताः ॥ ३३ ॥

आगामिनि विरञ्चौ तु कल्पे सारस्वताभिधे ।
राज्ञो दशरथस्याहं भवितास्मि गृहे सुतः ॥ ३४ ॥

पिता मे रावणाद्भीतो धर्ता मां निधिसम्मितम् ।
प्रमोदवनगोपस्य सुखितस्य निकेतने ॥ ३५ ॥

तत्राहं विहरिष्यामि गूढलिङ्गः स्वमायया ।
नित्याभिः केलिकान्ताभिः पुरुषः शक्तिभिर्यथा ॥ ३६ ॥

तत्रैता अपि मां प्राप्य निजशक्तिविलासिनम् ।
मानयिष्यन्ति सुरतं संजाता गोदुहां कुले ॥ ३७ ॥

इयं च कमलादेवी तव पुत्री महोदया ।
जनकस्य गृहे राज्ञो भविता मामनुव्रता ॥ ३८ ॥

इति माधवेन समुदीरितं वचो जलधिर्निशम्य विनयेन संयुतः ।
निगमेनतुल्यमिति चेतसा स्वयं ननु निश्चिकाय वचनं रमापतेः ॥ ३९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे समुद्रमथने श्रीप्रादुर्भाव वरवरणकर्मादिवर्णनं नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

ता एता जलधेः कन्याः श्वेतद्वीपं समाश्रिताः ।
तेयुस्तपःपरं चेतो विनिधाय रमापतौ ॥ १ ॥

ततः परिणते जाते तपसि प्राप्तसिद्धयः ।
सम्प्राप्ताः सुदृढं भावं मत्केली मण्डलोचिताः ॥ २ ॥

प्रमोदविपिने जाताः पृथग्वंशेषु गोदुहाम् ।
मत्केलीमण्डलं प्राप्य मम साधर्म्यमागताः ॥ ३ ॥

त्वं च सैव रमा देवि मम नित्यविलासिनी ।
जाता जनकभूपस्य गृहे सर्वगुणोदिता ॥ ४ ॥

एतास्तव निजाः सख्यो मम सेवापरायणाः ।
त्वया सहैव संजाता वृताश्चापि सहैव माम् ॥ ५ ॥

अतो निरीक्षमाणा त्वमेताश्चम्पकविग्रहाः ।
कथं न हृदि सम्मोदं भजेथा जनकात्मजे ॥ ६ ॥

एता अपि त्वया सार्धमत्यर्थं प्रेमविह्वलाः ।
क्रीडिष्यन्ति पुरावृत्तसाक्षात्कारविचक्षणाः ॥ ७ ॥

इत एव परिप्राप्ताश्चित्रकूटगिराविह ।
त्वया मया च बहुधा विहर्तुं सुभगेश्वरि ॥ ८ ॥

अन्या अपि तथैवैता गोप्यः कमललोचनाः ।
तवैवांशकलोद्भूता नान्यथा स्युर्मम प्रियाः ॥ ९ ॥

श्रीजानक्युवाच

अमृतोत्पत्तये कान्त मथितोऽब्धिः सुरासुरैः ।
कथं च तत्समुत्पन्नं तन्मे ब्रूहि यथातथम् ॥ १० ॥

श्रीरामउवाच

ततश्चास्मादाविरासीन्मथ्यमानात्सुरासुरैः ।
कन्यारूपधरा देवी वारुणी यासुरप्रिया ॥ ११ ॥

राजन्ती पद्मपत्राक्षी चन्द्रकोटिसुशीतला ।
सूर्यकोटिसमाभासा दाडिमीकुसुमांशुका ॥ १२ ॥

हिमकुन्देन्दुधवला पञ्च वक्त्रा त्रिलोचना ।
अष्टादशभुजैर्युक्ता सद्य आनन्दकारिणी ॥ १३ ॥

प्रहसन्ती विशालाक्षी समस्तासुरसन्मुखी ।
मथनान्दोलतुङ्गाब्धितरङ्गतरलाम्बुजे ॥ १४ ॥

शुभासने समासीना प्रमत्तवृषभोपरि ।
नीलकण्ठी तडित्तुल्या सर्वाभरणभूषिता ॥ १५ ॥

कपालखट्वाङ्गधरा घंटाडमरुवादिनी ।
पाशांकुशधरा देवी गदामुसलधारिणी ॥ १६ ॥

खङ्गखेटकपट्टीशमुद्गरं शूलदण्डकम् ।
विचित्रखेटकं मुण्डं बिभ्रती वरदाभयम् ॥ १७ ॥

तामाददुर्महाघोरां वारुणीमसुरेश्वराः ।
हरिणा नोदिताः सर्वे मदविस्मरणावहाम् ॥ १८ ॥

अनङ्गीकृतमीशेन साक्षाद्भगवतामुना ।
तद्द्रव्यंवारुणीत्याहुरमृतं तदुरीकृतम् ॥ १९ ॥

आदिमं ये तु गृह्णन्ति ते दैत्या घोरबुद्धयः ।
चरमं ये तु ते देवाः सत्त्वोर्जितमहाधियः ॥ २० ॥

अथ भूयो मथ्यमानादुदधेः कश्यपात्मजैः ।
उदभूत्पुरुषःकश्चित् परमाद्भुतदर्शनः ॥ २१ ॥

पीनायतलसद्बाहुः कम्बुकण्ठः सुमेचकः ।
रत्नकण्ठो मनोहारी फुल्लपङ्कजलोचनः ॥ २२ ॥

तारुण्यवयसा कान्तो दिव्यमालाविभूषितः ।
भूषितः सर्वभूषाभिस्तप्तकाञ्चनवाससा ॥ २३ ॥

परिणाहिलसद्वक्षा नीलकुञ्चितकुन्तलः ।
सर्वसौभाग्य सहितः सर्वमङ्गलसद्गुणः ॥ २४ ॥

सिंहविक्रान्तिपिशुनखेलद्गतिरुदित्वरः ।
लसत्केयूरकटककटिसूत्रमनोहरः ॥ २५ ॥

सुधापूर्णं रत्नकुम्भं दधानो देवसन्मुखः ।
योंऽशः साक्षाद्भगवतो धन्वन्तरिरितिश्रुतः ॥ २६ ॥

आयुर्वेदाचार्यवरः फलदः सर्वयज्ञभुक् ।
स्मितशोभिमुखज्योत्स्नाप्रकाशितदिगष्टकः ॥ २७ ॥

इदं तदमृतं जातमिति निश्चित्य चेतसा ।
घटं तममृतापूर्णमाजह्नुरसुरेश्वराः ॥ २८ ॥

इदं पीत्वामृतं पूर्णं जेष्यामः सहसा सुरान्।
इतराण्यपि रत्नानिग्रहीष्यामो वलाद्वयम्॥ २९.॥

इति ते मन्त्रयन्ति स्म देवास्त्वासन् सुदुःखिताः।
कृतेऽपि चोद्यमे तुल्ये देत्यैर्भग्नाशिषः कृताः॥ ३०॥

गृहीते दितिजैस्तस्मिन्नाच्छिद्यामृतभाजने।
विषीदन्ति स्म विबुधा निर्बला बलशालिभिः॥ ३१॥

किंतु ते शरणं जग्मुर्भगवन्तमधोक्षजम्।
स तान् दीनहृदोऽत्यर्थमुवाच शरणागतान्॥ ३२॥

मा शोचत सुराःसत्यं वदामि शृणुतेरितम्।
अमृतं वः प्रदास्यामि वञ्चयित्वा खलानमून्॥ ३३॥

अन्यानि चापि रत्नानि भवतामेव साधये।
श्रियमेकां विनादेवीं सा मे भागः सनातनः॥ ३४॥

स सान्त्वयितेति यथार्थभाषणो यथार्थकामश्च हरिः सुपर्वणः।
निवर्तयामास मिथो विरोधतः शमेन साधोर्हि स नोपयुज्यते॥ ३५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे समुद्रमथनेऽमृतोत्पत्तावष्टाशीतितमोऽध्यायः॥ ८८॥

एकोननवतितमोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

तेषां परस्परं जातः सुधार्थे कलहो महान्।
दैत्यानां दानवानां च स्वस्वार्थे फल्गुचेतसाम्॥ १॥

अहं श्रेष्ठोऽस्म्यहं पूर्वं पास्यामि कलशामृतम्।
मद्दत्तमितरैग्राह्यं न त्वं प्राधान्यमर्हसि॥ २॥

इत्यूचुः केऽपि दुर्वृत्ताः स्वार्थसंत्यक्तसौहृदः।
अपरे च पुनर्मूर्खाःक्रोधान्धीकृतलोचनाः॥ ३॥

अस्मद्बाहुबलादेष उद्धृतो मन्दराचलः।
आकृष्टो वासुकेर्भोगो मथितश्चापि सागरः॥ ४॥

ते वयं पूर्वमत्स्यामो जरामरणनाशनम् ।
अमृतं शेषमन्येऽपि गृह्णन्त्वस्मत्कृताज्ञया ॥ ५ ॥

इत्यूचुरपरे भूय आस्फोटितभुजद्वयाः ।
क्रोधव्याकुलितैर्वर्णै रोरयन्ति स्म दानवाः ॥ ६ ॥

कुलेनाभिजनैर्गत्या मत्या च वयमूर्जिताः ।
भोक्ष्यामः कर्मनिष्पन्नं फलमेतत्सुधात्मकम् ॥ ७ ॥

इत्यन्योन्यं व्याहरन्तो विवलन्तश्च भूरिशः ।
हुं तुंकृत्य शपन्तश्च विवदन्तः समैः समाः ॥ ८ ॥

आच्छिद्यामृतमुत्तर्षा जुगुपुः साभ्यसूयकाः ।
एकस्मादेकको बिभ्यद्द्रुह्यंश्चारुणलोचनः ॥ ९ ॥

ये तेषां दुर्बलतमा आच्छिद्यादातुमक्षमाः ।
पक्षपातं दिविषदां परिगृह्याब्रुवन् वचः ॥ १० ॥

हा हा हत महानेष दुर्नयोधर्महापनः ।
यद्देवास्तुल्यमायस्ता वियोज्यन्ते स्वभागतः ॥ ११ ॥

अर्हन्ति चात्मनो भागं तुल्यमेतेऽसुरैः सुराः ।
दुर्बला इति विज्ञाय वञ्च्यन्ते कालनोदितैः ॥ १२ ॥

नन्वमीभिः सदाद्रोहनिरतैदर्पशालिभिः ।
एवमेव पुराप्येते स्थानाद्विच्याविताः सुराः ॥ १३ ॥

पापात्मानः पापरताः सदा परशुभद्रुहः ।
आत्मवर्गेऽपि चात्यन्तं स्फुटं कपटवृत्तयः ॥ १४ ॥

केनेमे खलु नीयेरन् दुर्नयानयमुत्तमम् ।
ये लोकवेदनिष्पक्षाः स्वार्थैकान्तकृतस्पृहाः ॥ १५ ॥

विलपन्त इतीवोच्चैरनन्यशरणा भवे ।
असुरा बलिनां तेषां पश्यन्तिस्म मुखानि ते ॥ १६ ॥

इति कोलाहलस्तेषां मण्डले सुमहानभूत् ।
निभृतं कस्यचित्पाणौ न्यस्तं चामृतभाजनम् ॥ १७ ॥

हरिस्तत्प्रतिकाराय देवेष्वाबद्धसौहृदः ।
शिवादिधैर्यहरणं धृतवान् कामिनीवपुः ॥ १८ ॥

इन्दीवरदलश्यामं नवतारुण्यविभ्रमम् ।
चञ्चत्कटाक्षनिक्षेपजितकन्दर्पसायकम् ॥ १९ ॥

वेणीभारममाबद्धनवमल्लीप्रसूनजैः ।
अमन्दसौरभोद्गारैरामन्त्रितमधुव्रतम् ॥ २० ॥

अङ्गसौन्दर्यसरसीतारुण्यलहरीभरैः ।
आप्लुवद्धैर्यधरणीं मुनीनामपि योगिनाम् ॥ २१ ॥
ललितापाङ्गसंदर्शैः स्मितपूर्वाभिभाषणैः ।
मोहयत्पीनजघनकाञ्चीगुणकलक्वणैः ॥ २२ ॥
ससुरासुरविस्तीर्णत्रैलोक्यहृदयंगमम् ।
उत्तुङ्गपीनवक्षोजश्रिया चित्तं विमोहयत् ॥ २३ ॥
कान्तिमद्भिरशेषाङ्गेष्वाचितै रत्नभूषणैः ।
निवारयद्दिशां ध्वान्तं मुखचन्द्रश्रिया तथा ॥ २४ ॥
शान्तिं समानयत्तेषां कलहं घोरमुत्थितम् ।
अलिश्रेणीमनोहारिरुचिरायाङ्गदर्शनैः ॥ २५ ॥
लोलालकलताशालिकपोलमुकुरद्वयम् ।
अर्धचन्द्रसमाकारभालपट्टप्रभाधरम् ॥ २६ ॥
कर्णद्वयपरिभ्राजद्रत्नताटङ्कसुन्दरम् ।
सुमेचकारुणात्यच्छलोचनश्रीमनोरमम् ॥ २७ ॥
शुकचञ्चुचमत्कारिनासालावण्यशोभितम् ।
विद्रुमारुणबिम्बोष्ठ लुलन्नासामणिद्युति ॥ २८ ॥
कम्बुकण्ठसमुल्लासिरेखात्रयविराजितम् ।
उदारहारभारश्रीसमुद्दीव्यदुरःस्थलम् ॥ २९ ॥
सुवर्णाब्जमृणालाभविस्फुरद्भुजवल्लरि ।
प्रमुष्टक्षीणमध्याङ्गं नितम्बाधिकवृद्धिमत् ॥ ३० ॥
नाभीसरस्समुत्सर्पद्रोमालीशैवलाञ्चिते ।
उदरे त्रिवलीचारुण्युपात्तक्रशिमास्पदम् ॥ ३१ ॥
राजहंसविनिर्जैत्रमदालसलसद्गति ।
हावभावानेकभेदभ्रुकुटीभङ्गसुन्दरम् ॥ ३२ ॥
तेऽन्योन्यतोऽसुरवराः कलशं हरन्तः सन्त्यक्तसौहृदनयाः श्रितदस्युभावाः ।
तां मोहिनीं भगवतः परमेश्वरस्य शक्तिं विलोक्य नितरां चकिता इवासन् ॥३३॥
सा मन्दमन्दमुपसृप्तवती पदाभ्यां मञ्जीरमञ्जुमधुपध्वनवराम्बुजाभ्याम् ।
चञ्चत्सकूजवलयाङ्गदमेखलादिभूषालसत्तनुरमोहयदासुरांस्तान् ॥ ३४ ॥
ते दर्शनक्षणविमूढधियोऽसुरेन्द्रा अन्योन्यतोऽमृतकृते कलहं निवार्य ।
कामोद्धतास्तदधरामृतपातुकामास्तस्याः समीपमभजन् सजवं समेत्य ॥ ३५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे समुद्रमथने एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

नवतितमोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

ऊचुश्च ते तामनवद्यदेहां सुलक्षणां हृच्छयवाणतप्ताः।
निरूपयन्तो निभृतं स्वरूपमाधुर्यसिन्धूत्थतरङ्गसिक्ताम् ॥ १ ॥

अहो ते रूपमतुलमहो धाम मनोरमम्।
अहो वयश्च ते नूत्नं न त्वं सृष्टिर्विधेरसि ॥ २ ॥

अन्यदेवाङ्गलालित्यमन्यदेव च वर्तनम्।
अन्यैव ते तनोश्छाया कर्तुं शक्यं न वेधसा ॥ ३ ॥

इयमधरपुटी तवातिशोणा मधुरिमयूरपरम्पराप्रभूतिः।
इह जगति सुधावधीन् पदार्थान् सपदि विजित्य विभाति वर्तमाना ॥ ४ ॥

तनुरियमतुला तवातिधन्या वद सखि केन तुलां प्रयातु लोके।
अपि खलु विजितानयैव विद्युच्चरति मनस्त्रपया घनेषु गूढा ॥ ५ ॥

का त्वं कल्याणिनी बाले कुतो वा वरवर्णिनि।
कस्यासि तन्वि कुलभूरपि किं कर्तुमिच्छसि ॥ ६ ॥

अये कमलपत्राक्षि न त्वं स्पृष्टासि केनचित्।
देवासुरमनुष्येन्द्रसिद्धगन्धर्वयोगिषु ॥ ७ ॥

अपि केनेह हेमाङ्गि प्रेषितासि त्वमीदृशी।
सुधामपि पराजेतुं प्रायः प्राप्ता स्वधामतः ॥ ८ ॥

अपीदृशीं ननु भवतीमलौकिकीं प्रपश्यतामसुरवराहिनाकिनाम्।
परां रतिः सुदति मनस्युदैत्त मां विलिल्यिरे सपदि न इन्द्रियाणि यत् ॥ ९ ॥

नैतादृशी प्रीतिरभूत्कदाचित्सर्वेन्द्रियाणां मनसस्तथा नः ॥ १० ॥

यत्र यत्रारविन्दाक्षि प्रायस्त्वमनुयास्यसि।
तत्र तत्रैव सानन्द वर्षिष्यन्ति सुधा घनाः ॥ ११ ॥

अपूर्वा सुषमामेतां पश्यन्तस्तव वर्ष्मसु।
अतीव कौतुकायन्तो वक्तुं नो पारयामहे ॥ १२ ॥

त्वं चेल्लब्धासि लावण्यमाधुर्यैकतरङ्गिणि।
नीरसेन त्वदधरात् किं लब्धेनामृतेन नः ॥ १३ ॥

मङ्गलोऽसौ सुसम्पन्नः कालो मथनकर्मणि।
यत्र त्वं मिलितास्यद्धा सुधातोऽपि गरीयसी ॥ १४ ॥

स्पर्द्धध्वं मां दितिसुता इयं वोऽमृतभोजने ।
विभागदा विशेषेण संविधातुमुपस्थिता ॥ १५ ॥

न्यस्यताममृतामत्रमस्याः पाणिसरोरुहे ।
पाययिष्यत्यसौ बाला यथेष्टं वो दितेः सुताः ॥ १६ ॥

क्रोधं द्रोहं च संघर्षं परस्परमुदस्य वै ।
इयमाश्रयणीयावो दग्धकन्दर्पजीवनिः ॥ १७ ॥

अयि त्वं कोमलापाङ्गि पाशाविव भुजाविमौ ।
क्षेप्तासि कस्य कण्ठान्तर्वशीकरणयन्त्रवत् ॥ १८ ॥

अये मध्यस्थलमिदं केन ते पाणिनामितम् ।
त्रिवली कैतवाल्लग्नं यदङ्गुलिचतुष्टयम् ॥ १९ ॥

इति सा काश्यपैर्भूयः प्ररोचनवचोभरैः ।
आभाषिता जहासोच्चैर्मोहिनी मृगलोचना ॥ २० ॥

अये धर्मभृतः पुत्राः कश्यपस्य प्रजापतेः ।
दितेः पतिव्रतायाश्च प्रभूता मां किमिच्छथ ॥ २१ ॥

अहं हि सर्वधर्मान्तकारिणी पांसुला परा ।
कुर्वन्ति मयि विश्वासं न कोऽपि खलुकोविदाः ॥ २२ ॥

विद्युत्प्रकाशं जलदस्य छायां यत्पुंश्चलीनां च सुखं प्रसंगात् ।
जातान्यपि त्रीणि भवे भवेयुरनित्यरूपाणि न विश्वसन्ति ॥ २३ ॥

किं च वो मत्प्रसंगेन सुखं स्यादस्थिरात्मनाम् ।
इति निश्चित्य विबुधा न विश्वसत मां क्वचित् ॥ २४ ॥

श्रीराम उवाच

हेलया लीलया चापि विभ्रमैः सम्भ्रमैरपि ।
विनिर्जितास्तया दैत्या बभूवुर्वश्यवृत्तयः ॥ २५ ॥

उत्पन्न दृढ़ विश्वासास्तस्यां ते दैत्यदानवाः ।
सम्मोहिता[1] हृच्छयेनान्तर्ददह्यन्ते स्म भूरिशः ॥ २६ ॥

न्यधुश्च तस्याः करयोः सुधाघटं निवृत्तसंघर्षजवादवृत्तयः ।
भृशं समाश्वस्त हृदो मुदावृता मुहुः स भावं जहसुः स्मरोत्कटाः ॥ २७ ॥

ततो गृहीत्वा स्वयमेव तैः करे वितीर्णमुच्चैरमृतस्य भाजनम् ।
उवाच कल्याणतमोरुभाषिता प्रकाशयन्ती दशनत्विषादिशः ॥ २८ ॥

अङ्गीकुरुत हे प्राज्ञा यत्कृतं मे यदृच्छया ।
अपि सम्यगसम्यग्वा विभजिष्ये तदामृतम् ॥ २९ ॥

---

१. अस्मिन् पादेऽक्षराधिक्यमार्षत्वात् ।

लीलाविलासवत्यास्तत्तस्या व्याहृतमुत्तमम् ।
तथैवेत्यसुरश्रेष्ठा हृदिश्रद्दधिरेतमाम् ॥ ३० ॥

अथ हरिणेरिताः सकलशक्तिमता विबुधाः प्रथममुपोषितास्तदनुमज्जनशौचयुजः ।
सुविधिहुताग्नयो विहितगोद्विजदानवराः कृतपरमाशिषो विविधमन्त्रधरैर्मुनिभिः ॥ ३१ ॥

मुहुः स्वस्तिपुण्याहमावाच्य विप्रैर्यथाप्रीति वासांसि नव्याहृतानि ।
परीधाय सोद्रेकमाभूषिताङ्गाः स्थिताः पूतपूर्वाग्रदर्भासनेषु ॥ ३२ ॥

सुखं प्रङ्मुखाः सूपविष्टास्तदानीं सुराश्चासुरा बद्धपङ्क्तिद्वयास्ते ।
भृशंधूपदीपस्रगामोदजुष्टां महारत्नशालामधिष्ठाय रेजुः ॥ ३३ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे समुद्रमथनेऽमृताशनविधौ नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

●

एकनवतितमोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

अथ सा मोहिनी योषित्करभोरुरुदित्वरा ।
श्लथद्दुकूलमध्योद्यन्नितम्बतटभासुरा ॥ १ ॥

लीलालसगतिस्तन्वी मदविह्वललोचना ।
शिंजाननूपुरद्वन्द्वपादपद्मगतिक्रमा ॥ २ ॥

स्वर्णकुम्भस्तनी कर्णरत्नाभरणभूषिता ।
आविशद्रत्नशालां तां बिभ्राणामृतभाजनम् ॥ ३ ॥

सा पद्मजासमरुचिर्मणिकुण्डलत्विड्भ्राजिष्णुकर्णयुगला शुकचञ्चुनासा ।
दीव्यत्कपोलमुकुरा शरदिन्दुवक्त्रा स्रंसत्सुचारुवसनाञ्चलगस्तनाढ्या ॥ ४ ॥

खेलन्मरालकुलनायकचारुयाना चन्द्रोज्ज्वलस्मितरुचिर्मधुरावलोका ।
साकूतसुन्दरकटाक्षविसर्गकर्त्री देवासुरान् भृशममोहयदुत्सुकांस्तान् ॥ ५ ॥

वञ्चनं कर्त्तुमिच्छन्ती दैत्यानाममृताशनात् ।
अकल्पयत्पृथक् पङ्क्तीर्देवेभ्यस्तद्धितैषिणी ॥ ६ ॥

एकपङ्क्त्या सूपविष्टा देवानामभितोऽसुराः ।
साजात्याद्धेतुतस्तेषामासीत्पृथगवस्थितिः ॥ ७ ॥

असुरान् वञ्चयन्ती सा बहुमानप्रियेरिनैः।
आरात्संस्थापितान् देवान् पाययामास तां सुधाम्॥ ८॥

मोहिनीशक्तिरूपेण भृशं भगवता सुराः।
पाय्यमानाः पपुः सर्वे कालभीतिहरां सुधाम्॥ ९॥

स्नेहप्रदर्शनविधाकृतवञ्चनास्ते तस्या वचो हृदि विधाय कृतप्रतीक्षाः।
तूष्णीं तदाननविलोकनदत्तनेत्रा नाज्ञासिषुस्तदमृतं नितरां निपीतम्॥१०॥

तस्याः प्रणयपाशेन दृढं निबद्धचेतसः।
नावोचन्त विमूढास्ते दैतेयाः साध्वसाधु वा॥ ११॥

देवपङ्क्तौ देवलिङ्गप्रच्छन्नो राहुसंज्ञकः।
असुरस्तत्र पीयूषमपिबत्कैतवग्रहः॥ १२॥

हा हन्त हन्त हन्तेति चन्द्रार्काभ्यां स विष्णवे।
बोधितश्चक्रमादाय निकृत्तस्तेन मूर्द्धनि॥ १३॥

असुरेष्वेष चाण्डालो राहुः पापपरीतधीः।
अतः सुधां पिबन्मध्ये हरिणा स विभेदितः॥ १४॥

तच्छिरोऽमृतसंस्पृष्टं जहार भगवान् हरिः।
कबन्धोन्यपतद्भूमौ यो न स्पृष्टोऽमृतेन सः॥ १५॥

एवं सुरान् हितमतिः सुहितान् विधाय पीयूषपूरपरपारणया स्वभक्तान्।
सम्पश्यतामथ शनैरसुरेश्वराणामन्तर्दधौ स भगवान् कृतभूरिमोहः॥१६॥

एवं सुराश्चाप्यसुरास्तुल्योपायकरा अपि।
फलेन युयुजुर्भक्ता अभक्ता अफला ययुः॥ १७॥

समानेऽपि खलूद्योगे यद्विशेषः फलाफले।
न तच्चित्रं स्फुटं विष्णोः संश्रयासंश्रयौ हि यत्॥ १८॥

यस्यांशवैभवमुपेत्य भवन्ति लोके ऊर्जस्विनः श्रियमिताश्च विभूतिमन्तः।
तस्मिन्प्रभौ सकलसत्त्वनिधौ प्रतीपे भूरिप्रयासकरणेऽपि कुतः फलं स्यात्॥१९॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसम्वादे दक्षिणखण्डे समुद्र-मथनेऽमृतपाने एकनवतितमोध्यायः॥ ९१॥

द्विनवतितमोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

कबन्धे पतिते दाह्वोः शिरः परमदुर्धरम् ।
निकृन्तमपि चक्रेण न पपात महीतले ।। १ ।।

व्यात्ताननलसद्घोरदंष्ट्राकोटिभयानकम् ।
कल्पान्तपावकज्वालालुलद्रसनयाञ्चितम् ।। २ ।।

गाढगाढतमोनीलप्रभाव्याप्तद्युभूतलम् ।
महाकरालभ्रुकुटीविटङ्कविकटाकृति ।। ३ ।।

उद्रिक्त क्रोध ताम्राक्षं स्फुटदत्युग्रमूर्द्धजम् ।
उद्यत्कटकटारावदंष्ट्रासंघर्षणोद्धुरम् ।। ४ ।।

सूर्याचन्द्रमसौ सद्यो विधातुं ग्रासमेककम् ।
इतस्ततो धावमानं महासंरम्भभीषणम् ।। ५ ।।

आच्छादयत्तयोर्भासमात्मनो मेत्रकल्विषा ।
हुंकारध्वनिदुर्दर्शं क्रूरमत्युग्रदर्शनम् ।। ६ ।।

नभस्येव स्थितं ग्रस्तुं पुष्पवन्तौ समुद्धुरम् ।
आत्ताप्रतीकार्यवैरं चक्षुर्भ्यां विस्फुलिङ्गमुक् ।। ७ ।।

तस्य प्रभावतो भीतौ सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहौ ।
इतस्ततो धावमानौ न लेभाते क्वचिद्गतिम् ।। ८ ।।

हित्वा सोमपानशालां सूर्याचन्द्रौ परिद्रुतौ ।
विलोक्य तत्रसुर्देवा अहो उत्पात उत्थितः ।। ९ ।।

अनन्यशरणौ तौ तु सूर्याचन्द्रमसौ तदा ।
ध्रियमाणौ विपक्षेण शरणं जग्मतुर्हरिम् ।। १० ।।

उद्धृतौ शत्रुदंष्ट्राभिर्भृशं विद्युत्सुकान्तिभिः ।
पीड्यमानौ गलद्रक्तविन्दूक्षितिकलेवरौ ।। ११ ।।

शोचन्तावात्मनः कृत्यं विरोधोद्गमकारणम् ।
यत्पैशुन्यं कृतं तस्य देवतासुरसंसदि ।। १२ ।।

तावतिव्याकुलीभूतहृदयौ दीनवादिनौ ।
तथापि चाविनिर्मुक्तौ वचनं त्विदमूचतुः ।। १३ ।।

हा हरे करुणासिन्धो एतावत्सुरमण्डले ।
आवामेवामुना नाथे त्वयि पीड्यावहे कुतः ।। १४ ।।

अच्युताच्युत गोविन्द विनिकृत्तमपि त्वया ।
चक्रेण शितधारेण न पतत्यस्य मस्तकम् ॥ १५ ॥

जातः क एष उत्पात आवयोरेव दुःखकृत् ।
हितं हि सर्वदेवानामावां विज्ञाय माधव ॥ १६ ॥

तुभ्यं सूचितवन्तौ यदसुरेष्वपि दुष्क्रियः ।
सोमं पिबति चण्डाल इतितन्नो महद्भयम् ॥ १७ ॥

अजनिष्ट रमाकान्त यत्पीडयति वैरभृत् ।
मोचयास्मात्सुदुर्धर्षादावां लुप्तप्रभावकौ ॥ १८ ॥

किमेतच्च हरे जातं न यत्पतति मस्तकम् ।
निवृत्तमपि चक्रेण तव तीव्रनिपातिना ॥ १९ ॥

इत्युक्तो भगवान् विष्णुः सूर्येण च निशाकृता ।
उवाच राहुं शमयन् शान्तेन वचसा क्षणम् ॥ २० ॥

क्रूरत्वं मुञ्च मुञ्चालं त्रिजगद्वन्दिताविमौ ।
ग्रहेन्द्रौ दीप्तमहसौ सूर्याचन्द्रमसौ किल ॥ २१ ॥

नो चेत् पुनरपि त्वाहं चक्रेण जवपातिना ।
शतधा चूर्णयिष्यामि क्षेप्स्यामि च दिशो दश ॥ २२ ॥

अथो निपत चाकाशाद्भूवलं क्रूरदर्शन ।
यथा खलु कबन्धस्ते तथाशान्तिमुपेहि भोः ॥ २३ ॥

इति सम्भीषितो राहुर्हरिणा चक्रधारिणा ।
क्षणं तत्याज दंष्ट्रातः सूर्यासोमौ ग्रहाधिपौ ॥ २४ ॥

उवाच च हरिं क्रुद्धो भूष्णुस्त्रिभुवने महान्
अमृताशनसम्प्राप्तजरामरणनिर्जयः ॥ २५ ॥

न ते वाक्यमतीवर्त्यं मया त्रिभुवनेश्वर ।
मुक्ताविमौ यतो विष्णो सूर्याचन्द्रौ मम द्विषौ ॥ २६ ॥

एतौ मे पिवतः सोमं कृत्वा सौम्यतमं वपुः ।
पैशुन्यं यदकुर्वातां तेन मे शत्रुतां गतौ ॥ २७ ॥

लब्धं तु ये सोमपानं कण्ठावधि ततो हरे ।
जरामरणनिर्मुक्तो न पतामि महीतले ॥ २८ ॥

इमौ तु ग्रस्तुमिच्छामि पिशुनौ मे निरागसः ।
आत्मभासाखिलं विश्वं द्योतयिष्यामि कृष्णया ॥ २९ ॥

इदानीं ते भयेनेमौ मुक्तो दंष्ट्रौघसम्पुटात् ।
पुनः क्षणाद्ग्रसिष्यामि स्वादू पीतामृतौ ग्रहौ ॥ ३० ॥

इत्युक्तस्तेन भगवान् सुघोरवचसा तदा ।
विमृश्य भगवान् भूय उवाच जगतां हितम् ॥ ३१ ॥

सिंहिकासुत सुक्रूर भवान् पीतामृतोऽधुना ।
अजरामरतां प्राप्य यथेच्छं किमु भाषसे ॥ ३२ ॥

नैतदेवं त्वया कर्तुं शक्यते क्रूरमानसा ।
एतौ हि जगतां वन्द्यौ जगदुद्भासतक्षमौ ॥ ३३ ॥

ग्रस्तयोरेतयो राहो जगदेतद्विनङ्क्ष्यति ।
मुञ्च मुञ्चासुरं भावं सम्प्रत्यमरतां गतः ॥ ३४ ॥

अवश्यं भाविनोऽर्थस्य प्रतीकारो न विद्यते ।
मा ग्रसीः पुनरेतौ त्वं जगद्वन्द्यतमौ ग्रहौ ॥ ३५ ॥

इत्थं स हरिणा प्रोक्तो भूय ऊचे वचस्त्विदम् ।
त्वयाऽऽज्ञप्तः करिष्यामि यदाह भगवन् भवान् ॥ ३६ ॥

प्रतिष्ठां त्वहमिच्छामि खेचराणां पदं स्पृशन् ।
अतो यदभियाचेऽहं तद्विधेहि हरेऽञ्जसा ॥ ३७ ॥

त्वया निबद्धमर्थं तु नोल्लङ्घितुमहं क्षमे ।
एवं कृते महावैरं त्यक्तप्रायमिदं भवेत् ॥ ३८ ॥

अहं हि भोक्तुमिच्छामि तारकाः सप्तविंशति ।
तत्रैकराशिगावेतौ ग्रसिष्यामि न संशयः ॥ ३९ ॥

पर्वप्रतिपदोः सन्धौ सूर्यं वापि निशाकरम् ।
ग्रसिष्यामि गदापाणे वैरमेतदनुस्मरन् ॥ ४० ॥

अहं खलु ग्रहो भूत्वा वत्स्यामि गगने चरन् ।
काले काले ग्रसिष्यामि सूर्याचन्द्रौ ग्रहाविमौ ॥ ४१ ॥

जगन्निर्माणकार्यस्थः सुखदुःखफलप्रदः ।
अहं ग्रहत्वमास्थाय भूष्णुरस्मि यदृच्छया ॥ ४२ ॥

नृणामुत्पद्यमानानामहं कालः प्रमापकः ।
सप्तानामष्टमो विष्णो ग्रहाणां भूष्णुरस्म्यहम् ॥ ४३ ॥

मह्य ददतु भागं च यज्ञेषु सकला जनाः ।
तदाहं शान्तिमेष्यामि त्वयोक्तो मधुसूदन ॥ ४४ ॥

हरिस्तस्य वचःश्रुत्वा ज्ञात्वा चास्य दुराग्रहम् ।
सूर्यसोमावुवाचेदं प्रतिकर्तुं समुत्सुकः ॥ ४५ ॥

अयि भानो अये चन्द्र श्रूयतां मे परं वचः ।
साम्प्रतं दुर्निवारोऽयममरोऽभूद्यतोऽमृतात् ॥ ४६ ॥

ग्रहो भूत्वैष नियतं भोक्तुमिच्छति तारका: ।
युवां ग्रसिष्यते तत्र ह्येकराशिसमागतौ ॥ ४७ ॥

नृणामुत्पद्यमानानामेष कालप्रमापक: ।
भविष्यति ग्रहाणां व: सप्तानामष्टमोऽभवत् ॥ ४८ ॥

एवं निबन्धमापन्ने दुष्टेऽस्मिन् किल दुर्ग्रहे ।
युवयोरपि निर्मुक्ति: काले दु:खं कदाचन ॥ ४९ ॥

हरेरिति वच:श्रुत्वा सूर्याचन्द्रमसौ तदा ।
ओमित्युक्तमुरीकृत्य निर्मुक्तौ तेन विद्विषा ॥ ५० ॥

एवं देवहितं कृत्वा भगवान् गरुडध्वज: ।
पश्यतामेव सर्वेषां स्वं धाम परमं ययौ ॥ ५१ ॥

शैलेन्द्रानयनेऽतिखिन्नवपुषो भग्नाश्च तत्पाततो
भोगीन्द्रश्वसनोद्गतेन गरलेनातीव संतापिता: ।
अल्पायासमवापिताश्च मथनेनागाधपाथोनिधे
रत्यर्थं प्रतिकूलवर्तिनि हरौ प्रापु: फलं नासुरा: ॥ ५२ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे समुद्रमथने दैत्यवचने द्विनवतितमोऽध्याय: ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमोऽध्याय:

श्रीराम उवाच

उत्कर्षं देवपक्षस्य दृष्ट्वा ते दैत्यदानवा: ।
अतीव तेयुर्मनसि सुमहामर्षसंयुता: ॥ १ ॥

उत्पेतुरायुधकरा: क्रोधसंरम्भभीषणा: ।
देवान् प्रति महामर्षभरेणात्यन्तमाकुला: ॥ २ ॥

तेषामुत्पततामासुरनीकानि सहस्रश: ।
छिन्धिभिन्धि जहि स्कन्देत्युच्चै: शब्दानि संततम् ॥ ३ ॥

अहो हतं सुरैर्यन् तन्न क्षन्तव्यं मनीषिभि: ।
इति मन्त्रयतां तेषां समवायो महानभूत् ॥ ४ ॥

देवानभिमुखीभूय संरब्धाः समरेऽसुराः ।
नानायुधमयैर्वर्षैस्तत्क्षणात्समवाकिरन् ॥ ५ ॥

असिभिः पट्टिशैः शूलैर्गदाबाणापरश्वधैः ।
भुशुण्डैः स्तोमरैश्चक्रैर्निर्घातः सुमहानभूत् ॥ ६ ॥

परस्परं घ्नतां तेषां क्रोधभीषणाचक्षुषाम् ।
कलहोद्भव आरावो रोदसी व्याप्य तस्थिवान् ॥ ७ ॥

उभयोःसेनयोस्तेषांमवद्यन्त भयवहाः ।
शङ्खतूर्यमृदङ्गाद्याः डमरूपटहादयः ॥ ८ ॥

भेरीदुन्दुभिनिर्घोषवीरनादभयानकाः ।
अदारयन्निव भुवं त्रिदशासुरसेनयोः ॥ ९ ॥

हस्तिनोऽश्वा रथाश्चैव पत्तयो व्यवदन्मुहुः ।
असज्जन्त तथैवैते संग्राममितरेतरम् ॥ १० ॥

महोक्षसादिनः केचित्केचित्खरनिषादिनः ।
केचिद्गौरखरारूढाः ऋक्षारूढाश्च केचन ॥ ११ ॥

केचिद् द्वीपिवरारूढाः सिंहारूढाश्च केचन ।
गृध्रकंकबकारूढा अन्ये श्येननिषादिनः ॥ १२ ॥

भासचासषमारूढाः केचिद्ग्राहनिषादिनः ।
शरभान् महिषान् खड्गान् गवयांश्चाप्यधिष्ठिताः ॥ १३ ॥

केचिद्गोवृषभारूढाः परे गोमायुसादिनः ।
केचिदाखुवरारूढाः केचिन्नकुलवाहनाः ॥ १४ ॥

कृकलासान् समारूढाश्चान्ये शशनिषादिनः ।
हंससूकरवस्ताधिरूढा हरिणवाहनाः ॥ १५ ॥

नानाजलस्थलचरसत्वारूढा भयानकाः ।
आकारैर्वाहनैर्वेषैर्विकृता घोरदर्शनाः ॥ १६ ॥

संग्रामभूमिमसुरा आययुस्त्रिदशानभि ।
नानाचित्रध्वजपटैर्विभूषितरथोत्तमाः ॥ १७ ॥

नानावर्णच्छत्रधरा नानाव्यजनचामराः ।
नानाकवचसंछन्ना नानाभूषणभूषिताः ॥ १८ ॥

नानाशस्त्रप्रहरणाः सूर्यांशुद्विगुणत्विषः ।
नानोत्तरीयरुचिरा नानोष्णीषविराजिताः ॥ १९ ॥

देवानां चापि दैत्यानां वाहिन्यो भीषणस्वनाः ।
बभासिरे विश्वकर्मविचित्ररचनाश्रयाः ॥ २० ॥

व्यूढा नानाविधैर्व्यूहैर्नानावीरवरान्विताः ।
सागरा इव यादोभिर्नानायोधवरैर्युताः ॥ २१ ॥

असुराणां चमूमध्ये वीरा बलिमुखाः स्फुटम् ।
बलिर्नमुचिरुग्रास्यः शम्बरो बाण उग्रभित् ॥ २२ ॥

अयोमुखो विप्रचित्तिर्द्विमूर्द्धा चक्रहृग्बलः ।
कालनाभः प्रहेतिश्च हेतिस्तारक इल्वलः ॥ २३ ॥

शुम्भो निशुम्भो जम्भश्च वज्रदंष्ट्रो विरोचनः ।
शकुनिर्भूतरुक्चैव उत्कलः शङ्कुशीर्षकः ॥ २४ ॥

हयग्रीवश्च कपिलोऽरिष्टनेमिश्च रिष्टकः ।
मयस्त्रिपुर एवापि तथान्योमेघदुन्दुभिः ॥ २५ ॥

पौलोमाश्चैव कालेया निवातकवचास्तथा ।
गणशोऽसुरवर्यास्तु समाजग्मुः सुरानभि ॥ २६ ॥

क्रोधलज्जापरीतान्तःकरणा भागलोपतः ।
यैर्निर्जिताः पुरा दैवास्ते दैत्या रणमाययुः ॥ २७ ॥

सिंहनादकरा भीमाः कृतास्फोटा बलोद्धताः ।
विचित्रवर्णा दैतेयाः सुरैः संयोद्धुमागताः ॥ २८ ॥

शङ्खनादकृतोत्साहा उत्पतन्तो धृतायुधाः ।
तान् वीक्ष्यैरावतारुढः कुपितोऽभूत् पुरन्दरः ॥ २९ ॥

उदयावसरे यद्वत्सूर्यः शैलशिरःस्थितः ।
शुशुभेऽमरराट् तद्वद्दीर्णासुरतमस्ततिः ॥ ३० ॥

तमनुप्रययुः सर्वे लोकपाला दिगीश्वराः ।
पाशभृद्वायुदहनयक्षराण्नैर्ऋतादयः ॥ ३१ ॥

द्वन्द्वशो द्वन्द्वशो देवा दैत्यैर्युयुधिरे रणे ।
युयुधे बलिना शक्रस्तारकेण षडाननः ॥ ३२ ॥

हेतिसंज्ञेन पाशी च मित्रोऽयुध्यत्प्रहेतिना ।
यमश्च कालनाभश्च परस्परमयुध्यताम् ॥ ३३ ॥

विश्वकर्मा मयश्चैव त्वष्टा शम्बर एव च ।
विरोचनश्च सविता वृषपर्वाश्विनावपि ॥ ३४ ॥

वाणमुख्यैर्बलिसुतैः शतेन युयुधे रविः ।
अपराजितो नमुचिना राहुणा रजनीकरः ॥ ३५ ॥

पुलोमा चानिलोऽन्योन्यं युद्धे तस्मिन्नयुध्यताम् ।
तथा शुम्भनिशुम्भाभ्यां देवी कात्यायनी स्वयम् ॥ ३६ ॥

जम्भो वृषाकपिं देवं योधयामास सर्वतः ।
विभावसुं च महिषो मातृरुत्कलसंज्ञकः ॥ ३७ ॥

दुर्मर्षः काममेवापि शुक्रो वाचस्पतिं तथा ।
तथैवेवल्वलवातापी ब्रह्मपुत्रान् महाबलौ ॥ ३८ ॥

शनैश्चरं च नरकः कालेया वसुसंज्ञकान् ।
निवातकवचा दैत्या मरुतः समयोधयन् ॥ ३९ ॥

विश्वान् देवांश्च पौलोमा रुद्रांश्चान्ये महासुराः ।
अयोधयन् भिन्दिपालैस्तोमरैश्च परश्वधैः ॥ ४० ॥

खड्गैः शक्त्यृष्टिविशिखैर्गदाभिश्चक्रपट्टिशैः ।
उल्मुकैः प्रासकुन्तैश्च मुद्गरैर्लोहदण्डकैः ॥ ४१ ॥

अन्योन्यं युध्यमानानां देवासुरबलीयसाम् ।
अनीकानि व्यदृश्यन्त संरब्धानि समंततः ॥ ४२ ॥

निरभिद्यन्त मातङ्गास्तुरङ्गाः पत्तयो रथाः ।
आयुधानां निपततां प्रहारैरतिदारुणैः ॥ ४३ ॥

केचिन्निकृत्तदोर्दण्डाः परे भग्नशिरोधराः ।
अन्ये वृक्णाङ्घ्रयस्तत्र बभूवुः सेनयोर्द्वयोः ॥ ४४ ॥

केचिच्छिन्नध्वजधनुर्वर्माणो देवदानवाः ।
मुष्टामुष्टिप्रहरणाः अयुध्यन्त रणाङ्गणे ॥ ४५ ॥

अन्योन्यरथिनां चैव सादिनामभिधावताम् ।
अत्युत्तालचलद्वाहखुराग्रैरुद्धतं रजः ॥ ४६ ॥

दिशो दशनभश्चैव सूर्यं नक्षत्रमण्डलीम् ।
आच्छादयत्तरां लोके यथाभूत्तिमिरं महत् ॥ ४७ ॥

तद्रजः शस्त्रसम्पातप्रहारभवशोणितैः ।
प्रवाहशः प्रचलितैः सद्यः शान्तिमनीयत ॥ ४८ ॥

प्रस्थानभूरभूत्पूर्वं पङ्किला करिणां मदैः ।
सा नीता प्रकृतिं भूयो हयैरुच्चैः कृतक्रमैः ॥ ४९ ॥

इत्यालक्ष्य त्रपावद्भिर्गजैर्वार्भिः करोद्धृतैः ।
छन्नो रजोभरो व्योम्नि नीतो जम्बालपिण्डताम् ॥ ५० ॥

संरम्भशोणनयनैः सकिरीटैः सकुण्डलैः ।
दन्तदष्टाधरदलैहुंकारध्वनिगर्भितैः ॥ ५१ ॥

आतरतरे रसा सद्यः शिरोभिरमरद्विषाम् ।
कबन्धैश्च तथानेकैर्भाङ्कारध्वनिमुद्गलैः ॥ ५२ ॥

केचित्कबन्धाः पतिताः स्वशीर्षनयनेक्षणाः ।
उदायुधाः समुत्पेतुः प्रहरन्तः परस्परम् ।। ५३ ।।

एवं कबन्धा युयुधुः कबन्धैर्युद्धदुर्मदैः ।
तदद्भुतमतीवासीन्निपेतुर्यच्चिराद्भुवि ।। ५४ ।।

अथ बलिरमरेन्द्रं संयुगे विक्रमन्तं दशभिरिषुभिरुच्चैर्विव्यधे हेमपुंखैः ।
त्रिभिरिभवरमस्या थाङ्घ्रिरक्षांश्चतुर्भिः सृणिकरमवधीदेकेन यन्तारमस्य।। ५५ ।।

अमरपतिरुदीक्ष्यापातिनोऽष्टादशेषून् समिति समभिनत्तान् स्वैः स तावद्भिरेव।
अहसदमितवीर्यस्तद्विलोक्यामराली भृशमुरुनिजभर्तुः कर्म तुष्टाव संख्ये ।। ५६ ।।

तदुपरि पुनरादादुत्कलः शक्तिमुग्रामभिनदमरराट् तां हस्त एवोज्ज्वलन्तीम् ।
अथ पुनरसुरेन्द्रो विक्रमन् युद्धभूमौ सुरपतिमभिशस्त्रं संदधावन्यदन्यत् ।। ५७ ।।

प्रासशूलगदाचक्रशरतोमरऋष्टिभिः ।
सुरेन्द्रं हन्तुमुद्युक्तो बलिः समरभीषणः ।। ५८ ।।

सुरेन्द्रस्तत्तदस्यास्त्रं शस्त्रं च बलिनोदितम् ।
अच्छिनत्सहसा स्वस्य शस्त्रेण स महौजसा ।। ५९ ।।

अथासुरेन्द्रःसमरे ससर्ज भयानकामासुरकूटमायाम् ।
ततः सुरानीकमधो विधाय शिलोच्चयोऽदृश्यत रवे महीपान् ।। ६० ।।

ततो निपेतुर्ज्वलिता महोल्का दावाग्निलिप्तास्तरवस्तथोग्राः ।
शिलाश्च तीक्ष्णाग्रकरालदर्शाः संचूर्णयन्त्यो दिविषद्बलानि ।। ६१ ।।

महोरगा दंशवला विषाग्निज्वालाभृतो वृश्चिकवर्यसंघाः ।
पञ्चानना व्याघ्रवरां वराहास्ततः समुत्पेतुरूदग्रवेगाः ।। ६२ ।।

प्रमर्दयन्तो दशनैर्दशन्तो विषाग्निना व्याप्नुवन्तो रुजन्तः ।
महागजान् देवबलस्थितांश्च तुरङ्गमान् स्यन्दनवाहवर्यान् ।। ६३ ।।

महाघना व्योम्नि गभीरतीव्रस्वनैर्मनांसि प्रविभीषयन्तः ।
अंगारवृष्टीर्मुमुचुः प्रचण्डवातेरिता घोरपिशङ्गवर्णाः ।। ६४ ।।

महानलौ दैत्य मायाविसृष्टः समीरवेगोच्चलकीलमालः ।
अत्युग्ररूपः प्रसभं प्रसर्पद् ददाह देवध्वजिनीं समन्तात् ।। ६५ ।।

ततोऽम्बुधिघर्घरघोषभीमः समन्ततः प्लावितसर्वदेशः ।
प्रचण्डवातोद्धुतभीमभूरितरङ्ग आवर्तशतप्रतानः ।। ६६ ।।

इत्थमेवेतरैर्दैत्यैस्तन्यमाना रणाङ्गणे ।
कूटमाया व्यदृश्यन्त सुरसैन्यभयावहाः ।। ६७ ।।

विषीदन्ति स्म तां दृष्ट्वा मायामसुर सम्भवाम् ।
देवाः प्रत्यक्षकर्माणः कूटरूपामलक्षिताम् ।। ६८ ।।

ततो विषण्णाः सुरलोकसैनिका हतोद्यमाः सस्मरुरिन्दिरापतिम् ।
अथाविरासीद्भगवान् स्मृतिक्षणे खगेन्द्रपृष्ठाहितपादपल्लवः ॥ ६९ ॥

स पुंवराग्र्योऽरुणपद्मलोचनः पिशङ्गवासा गलकौस्तुभाञ्चितः ।
किरीटरुक्कुण्डलभानुमण्डितः श्रीवत्सलक्ष्माष्टभुजो धृतायुधः ॥ ७० ॥

तस्मिन्नाविर्भूतमात्रे महौजस्यासुर्य्यस्ताः कूटमाया विनेशुः ।
यावन्नैवोदेति भानुर्जगत्यां तावद्विष्वग् दृश्यते ह्यंधकारः ॥ ७१ ॥

प्रकटेऽखिलमायेशे मायिनामपि मायिनि ।
कुतस्तुच्छैः कृतां माया स्वरूपं दर्शयेदपि ॥ ७२ ॥

अरिष्टनेम्युत्कलकालनेमिसुमालिमालिप्रमुखा महोग्राः ।
स्वस्वायुधक्षेपकरा महाजौ सुघोरदर्शा हरिणा न्ययुध्यन् ॥ ७३ ॥

खगपरिवृढवाहस्तान्मुसंरम्भभीमान सुरवर भटाग्र्यानाततताप्युग्रवीर्यान् ।
अमितबलनिधीशो लीलया संनिवार्य प्रकटितनिजचक्रज्योतिरुच्चैर्विरेजे ॥ ७४ ॥

**इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे असुरबल-
पराभवोनाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥**

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

हरिणासुरमायासु क्षिप्तासु स्वेन तेजसा ।
सुराः संलब्धचैतन्या आतेनुः स्वस्वविक्रमम् ॥ १ ॥

बभूवुः संहताः सर्वे शक्रवायुपुरोगमाः ।
निजघ्नुरसुरानीकं हरिणा प्रतिबोधिताः ॥ २ ॥

बलिमुद्दिश्य कुलिशं सुरराडुद्तोलयत् ।
तदा हाहाकृतमभूद्दैत्यसैन्यं समंततः ॥ ३ ॥

देवेन्द्रः कुलिशं बिभ्रदाश्वस्तो हरिणा रणे ।
उवाच बलिमुद्दृप्तं बहुविक्रान्तपूर्वकम् ॥ ४ ॥

आक्षिप्यत्वामिदमहं वच्मि रात्रो यथार्थवत् ।
अलं ते मायया मूढ महामायाधिपे हरौ ॥ ५ ॥

ये बाला विनिबद्धाक्षास्तान् विजित्यैन्द्रजालिकः ।
सर्वस्वमाहरत्येवं भवान् मूढ स्वमायया ॥ ६ ॥

आरुरुक्षसि किं मूढ माययेवानया दिवम् ।
एतां विधूय सहसा त्वामधः पातयाम्यहम् ॥ ७ ॥

दुष्टां त्वमति दुष्टात्मन् कूटमायामुपाश्रितः ।
तस्य तेऽहं हरिष्यामि वज्रेणात्युत्तमं शिरः ॥ ८ ॥

अनेकपर्वणो वज्रान्मम भीतास्तवासुराः ।
सहसा विद्रविष्यन्ति फेरुतुल्या दिशो दश ॥ ९ ॥

दुरुक्तैरेवमिन्द्रस्य ताडितोऽतीव मर्मणि ।
जगादासुरराट् क्रुद्धः पूर्वविक्रमदृप्तधीः ॥ १० ॥

भवान् यन्मां पराभूय विजेष्यति रणाङ्गणे ।
किं चित्रं तर्हि देवेन्द्र ह्येकं स्याद्युध्यतो मृधे ॥ ११ ॥

एकतो विजयः कीर्तिरन्यतश्चाजयो मृतिः ।
एतद्दैवपराधीनं तत्र हृष्यसि किं मुधा ॥ १२ ॥

न स्वायत्तमिदं पुंसां जयो वापि पराजयः ।
तत्राभिमतिमांस्त्वं चेन्मूढ एव न संशयः ॥ १३ ॥

सत्यं पराजितोऽस्माभिर्यदि मायेति मन्यसे ।
तर्हि त्वया मृतं पीतं सापि माया न किं भवेत् ॥ १४ ॥

असुरा वारुणीं पीत्वा मामकाः समरोद्धताः ।
सुधापानमदं सद्यो हरिष्यन्त्यधुनैव वः ॥ १५ ॥

महामायाविना युद्धे विक्रान्तं यदि विष्णुना ।
ध्रुवं तर्हि जयस्तस्य त्वं तु नूनं विनिर्जितः ॥ १६ ॥

अलक्षितगतिस्थानवासेन हरिणा वयम् ।
जिता अपि प्रतिष्ठध्व वीर्याः किं खलु कुर्महे ॥ १७ ॥

त्वां तु जेतुं वयं क्षिप्त्वा नाराचान् वीरघातिनः ।
लज्जामहे सुरश्रेष्ठ वराकं शरणातुरम् ॥ १८ ॥

तथाप्यरुन्तुदान्येवं ब्रुवाणः समराङ्गणे ।
नोपेक्ष्योऽसि महाभीरो मया त्वं कुलिशं वहन् ॥ १९ ॥

इति विध्वा वचोवाणैर्विरोचनसुतो बली ।
वाणैस्तं ताडयामास समरे मर्मभेदिभिः ॥ २० ॥

तदमृष्यन् सुरपतिः कुलिशं प्राहिणोद्द्विषे ।
स तेन प्रहितो भूमौ निपपात सवाहनः ॥ २१ ॥

वलिं निपतितं वीक्ष्य प्रियं सुहृदमात्मनः ।
जम्भासुरो महावीर इन्द्रं योद्धुमुपाययौ ॥ २२ ॥

जम्भेन गदयाशक्रः प्रहृतो रणमूर्द्धनि ।
ऐरावतश्च वलिना सुभृशं तीव्रवेगया ॥ २३ ॥

ऐरावतस्तं प्रहारं न सोढुमशकत्तमाम् ।
जानुभ्यामवनीं प्रापसुभूरिरुधिरोक्षितः ॥ २४ ॥

गजेन्द्रे मूर्च्छितप्राये महासत्वे सुरेश्वरः ।
रथं मातलीनाऽऽनीतमारुहच्छनकैर्मृधे ॥ २५ ॥

सुवर्णवर्णैस्तुरगैः समन्वितं रथं समारुह्य सुदीर्घनिःस्वनम् ।
रणाङ्गणे संशुशुभे सुराधिपो धनं यथा प्रावृषि मारुतेरितम् ॥ २६ ॥

अमृष्यन् मातलिं जम्भः शूलेन ज्वलितार्चिषा ।
जघान प्रहसन्नुच्चैः साधु रे सुरसारथे ॥ २७ ॥

शूलेन प्रहृतस्तेन मातलिर्विह्वलोऽभवत् ।
तावत्सुरेन्द्रो जम्भस्य कुलिशेनाहरच्छिरः ॥ २८ ॥

इन्द्रेण निहते जम्भे महाभीमपराक्रमे ।
जिता इति सुपर्वाणः प्रहर्षमतुलं ययुः ॥ २९ ॥

आययुस्तदमृष्यन्तः कर्म युद्धे विडौजसः ।
तत्सजातीयनमुचिबलपाका महासुराः ॥ ३० ॥

ते छादयन्तो देवानां वाहिनीर्निशितैः शरैः ।
घना इव रणे रेजुर्धारासम्पातवर्षिणः ॥ ३१ ॥

क्षणाददृश्य तां नीताः सुरसेनाः शितैः शरैः ।
तं दृष्ट्वा प्रसरं चक्रुरसुराः सुमहोद्धताः ॥ ३२ ॥

बलेन पीडिता बाणैः सहस्रं तुरगा हरेः ।
तेऽभवन् रथमुत्सृज्य गन्तुकामा रणाङ्गणात् ॥ ३३ ॥

पाको मातलिमाविध्य शरैःसन्नतपर्वभिः ।
रथं च विव्यधेऽत्यर्थं महेन्द्रस्य रुषोद्धतः ॥ ३४ ॥

नमुचिश्चातुलबले जघान शरवर्षणैः ।
रथिनं च रथं चैव सारथिं चैव मातलिम् ॥ ३५ ॥

ततोऽसुराः प्रहर्षेण गर्जन्तो वासवं रणे ।
अवाकिरन् बाणवर्षैस्तस्मिन्नवसरे जवात् ॥ ३६ ॥

अलक्ष्यतामुपगमितेऽसुरेषुभिः पुरन्दरे सपदि रणे मरुद्गणाः ।
विचुक्रुशुर्व्यपगतधैर्यवृत्तयस्तरौ खगा इव सरिदोघसम्प्लुते ॥ ३७ ॥

ततो विनिर्धूय शरौघपञ्जरं निजैः शरैर्वृत्रहरोविनिर्ययौ ।
रविर्हिमानीमिव घृष्णिभिर्निजैः प्रकाशयामास दिशश्च रोदसी ॥ ३८ ॥

स विलोक्य निजां सेनामसुरैर्विनिपीडिताम् ।
रुषाविष्टाशयोऽगृह्णाच्छत्रुसंहरणंपविम् ॥ ३९ ॥

अवधीद्वासवस्तेन वलं पाकं च दानवम् ।
कबन्धीकृत्य समरे कुर्वन् दैत्यवले भयम् ॥ ४० ॥

वलपाकौ हतौ दृष्ट्वा शक्रेण नमुचिर्बली ।
शोकामर्षरुषाविष्टो जिहीर्षुस्तमुपाययौ ॥ ४१ ॥

स वज्रकठिनं शूलं दोर्भ्यामादाय वज्रिणे ।
प्रजिघाय हतोऽसीति गर्जमानो रणाङ्गणे ॥ ४२ ॥

इन्द्रः सहस्रशश्चक्रे तस्य शूलं तदापतत् ।
निजवाणैस्तीव्रवेगैस्तं च वज्रेण विव्यधे ॥ ४३ ॥

वृत्रभिद्वज्रघातेन नमुचिस्ताडितोऽपि सन् ।
न विव्यथे नापनीतस्त्वङ्मात्रश्चित्रमास तत् ॥ ४४ ॥

शुशोच त्रिदशाधीशो वज्रेऽपि सुपराहते ।
अहोऽत्यद्भुतमेवेदं भूतं नाद्यापि मे क्वचित् ॥ ४५ ॥

वृत्रो येन विदारितोऽसुखरस्त्वाष्ट्रं परं यत्तपः
सारं भूखिलास्तथासुरवराः शस्त्रास्त्रकोट्यक्षताः ।
अद्रीणामपि पक्षभेदनविधौ विक्रान्तपूर्वं च यत्
तद्वज्रं नमुचेस्त्वचं दलयितुं कुण्ठीबभूवाद्भुतम् ॥ ४६ ॥

एतावत्यसुरेऽल्पवर्चसि मया मुक्तं वृथैवाभवत्
त्वग्लोमादिकमप्यपा कुरुत नो यत्तन्मुधावीर्यकम् ।
वज्रं मे प्रतिरुद्धवीर्यमथवा दैवेनकुण्ठीकृतं
किं तद्दण्डसमंवृथैव पुनरादास्येऽस्थि सत्यं मुनेः ॥ ४७ ॥

इति शोकभराविष्टे शक्रे नारायणोऽब्रवीत् ।
मा विषीदेन्द्र नोवध्य आर्द्रैः सुष्कैरथं रिपुः ॥ ४८ ॥

लब्धो हि पूर्वमेतेन द्विषा ते देवतावरः ।
न केवलार्द्रशुष्काभ्यां तव मृत्युर्भवेदिति ॥ ४९ ॥

उपायान्तरमेवातश्चिन्तनीयं बधे रिपोः ।
इति श्रुत्वा सुनासीरश्चिरं दध्यौ समाहितः ॥ ५० ॥

नार्द्रं नैकान्ततः शुष्कं जले फेनं हितादृशम् ।
रसस्यानुपलम्भाद्धि नार्द्रं प्रत्यक्षतो मतम् ॥ ५१ ॥

अथो जलविकारत्वान्न शुष्कमनुमीयते ।
ततस्तेनावधीच्छत्रुमिन्द्रो देवगणप्रभुः ॥ ५२ ॥

तमृषयः परितः खलु तष्टुवुः सुरतरुप्रसवैः समवाकिरन् ।
पटुयक्षो जगुरप्सुरसां प्रिया ननृतुरप्सरसश्च मुदान्विताः ॥ ५३ ॥

हाहाहूहूश्चापि गन्धर्व्यमुख्यौ विश्वावसुश्चापि परावसुस्तम् ।
उच्चैः शब्दैः शृण्वतां निर्जराणां जगुः श्लोक्यं सर्वदेवौघमुख्यम् ॥ ५४ ॥

इतरेऽपि सुरश्रेष्ठाः पाश्यग्निमरुदादयः ।
जघ्नुः शत्रुगणान् संख्ये स्वस्वायुधमहौजसा ॥ ५५ ॥

सुधापानसुसम्पन्नैर्देवैः संख्ये महोर्जितैः ।
दैत्यानां दानवानां च नितरां कदनं कृतम् ॥ ५६ ॥

अथ बलिप्रमुखासुरवैष्णवानवितुमब्जभवो विबुधांस्तदा ।
व्यरमयत्समरादतिरोषणान् प्रहितनारदवक्त्रनिसृष्टगीः ॥ ५७ ॥

ततस्तान् ब्रह्मणाऽऽज्ञप्तो नारदो मुनि मुनिपुङ्गवः ।
इदमाह सुसंरब्धान् दैत्यानां कदनं प्रति ॥ ५८ ॥

अहो सुरा लब्धपदैर्भवद्भिः पीतामृतैर्विष्णुभुजाश्रयेण ।
प्राप्ता विनष्टापि पुनर्निजश्रीरतः परं किं कलहेन दैत्यैः ॥ ५९ ॥

रणे जितास्तेऽपि महोर्जिता द्विषस्तस्यैव देवस्य हरेर्भुजोजसा ।
तमेव सुश्लोकवरेण्यमुच्चकैर्गिरानिशं गायत भूरिसौहृदाः ॥ ६० ॥

अतः परं किं रोषेण संरम्भेणाधिकेन च ।
तमेव स्वस्वलोकस्था उच्चैर्यजत गायत ॥ ६१ ॥

ब्रह्मणो वचनादित्थ विनिवारितमन्यवः ।
निःसंरम्भा सुरा जग्मुः स्वं स्वं लोकमनामयाः ॥ ६२ ॥

स्वस्वानुचरसंदोहैर्गीयमाना जयोर्जिताः ।
स्वस्वलोकसमासीनाः शमेधाञ्चक्रिरे सुराः ॥ ६३ ॥

तस्मिन् रणेऽवशिष्टा ये दैत्यदानवपुङ्गवाः ।
बलिं राजानमादाय ते ययुः स्वं स्वमालयम् ॥ ६४ ॥

केऽप्यधोभुवनं याताः केऽपि सागरमध्यतः ।
केऽपि चास्तगिरिं जग्मुः परे मेरुं च दक्षिणम् ॥ ६५ ॥

ताननिर्भिन्नवपुषोग्रीवाकुद्ववशेषितान् ।
शुक्रः संजीवयामास पुनः संजीविनीबलात् ॥ ६६ ॥

बलिर्भगवतो भक्तः श्रीपतेर्जनकात्मजे ।
शुक्रोपचरिताशेषदेवदिव्यायुधक्षतः ॥ ६७ ॥

देवैः पराभूततमोऽपि विष्णोः स्मरन् यशस्तन्त्रिजगत्पवित्रम् ।
ज्ञानेन नात्यन्तमखिद्यतान्तर्भक्तिप्ररोहामृतपूरमग्नः ॥ ६८ ॥

इत्थं य एतन्मथनं पयोधेः शृणोति लक्ष्म्या अपि तत्सखीनाम् ।
समुद्भवं पुण्यमथामृतस्य तस्य क्षयंयात्यघसंघशैलः ॥ ६९ ॥

पुण्यानि नारायणदेवकीर्तिगाथाश्रयाणीन्दुमुखीदृशानि ।
कर्माणि लोकोऽनुसवं हि शृण्वन् गायन्स्मरंश्चाभ्युदयं प्रयाति ॥ ७० ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे समुद्रमथने देवासुरसंग्रामविरामो नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

*

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

श्रीजानक्युवाच

कीदृशं तत्परं कान्त रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
मोहिता येन दैतेया दानवाश्चामृतं जहुः ॥ १ ॥

लक्ष्मीरपि प्रादुरभूदम्बुधेर्लोकमञ्जुला ।
तयाप्यनाक्षिप्तचित्ता मोहिन्या मुमुहुस्तराम् ॥ २ ॥

एतदत्यद्भुतं भाति ननु ये प्राणवल्लभ ।
लक्ष्म्या अप्यधिकं मन्ये रूपं भगवतो हरेः ॥ ३ ॥

इदं खलु ममाचक्ष्व सौन्दर्यं तन्मघुद्विषः ।
यदालोकनमात्रेण दैतेया वश्यवृत्तयः ॥ ४ ॥

श्रीराम उवाच

नूनं भगवतो रूपं रमाकान्तस्य तत्प्रिये ।
लक्ष्मीरूपात्समधिकं भवत्या सम्यगामतम् ॥ ५ ॥

सर्वेऽप्यंशकला रूपा यस्य देवस्य सुन्दरि ।
कोऽन्यस्तस्य तुलां धर्तुं क्षमते भुवनत्रये ॥ ६ ॥

लक्ष्म्या अपि परं रूपं विष्णोरेवांशसम्भवम् ।
अतस्तत्तुलना नैव दृश्यते श्रूयतेऽपि च ॥ ७ ॥

यस्य रूपं समालोक्य मुमोह भगवान् भवः ।
किं वाच्यं तस्य सौन्दर्यं स्वयं भगवतो हरेः ॥ ८ ॥

मोहिन्याद्याखिलमहाशक्तिसंघमहेक्षितुः ।
अलौकिकं चाद्भुतं च सर्वमेव हरेः प्रिये ॥ ९ ॥

रूपातिशयमेतस्य साक्षाद्भगवतो हरेः ।
अहं तवाभिधास्यामि शृणुष्वैकमनाः प्रिये ॥ १० ॥

श्रुत्वा भगवतो रूपं दैत्यदानवमोहनम् ।
श्रियोऽप्यधिकमाकर्ण्य शिवो द्रष्टुमना अभूत् ॥ ११ ॥

ततो वृषभमारुह्य धर्मरूपं सनातनम् ।
पार्वतीसहितो रुद्रो विष्णोर्धामान्वपद्यत ॥ १२ ॥

सभाजितः स हरिणा स्वागताद्यैरुमापतिः ।
स्वासनस्थ उवाचेदं स्मयन् मधुरया गिरा ॥ १३ ॥

देवस्त्वमसि देवानां वेवेष्टि निखिलं भवान् ।
यद्दृश्यजातं भगवंस्तन्मयस्त्वं प्रतिष्ठितः ॥ १४ ॥

सर्वेश्वरस्त्वं भगवन् सर्वस्यात्माधिदैविकः ।
सर्वहेतुः सर्वसाक्षी त्वमेवैकः प्रगीयसे ॥ १५ ॥

आदिरन्तश्च मध्यं च त्वमेव जगतो हरे ।
त्वमन्तरं बहिश्चासि त्वमिदं त्वमहं प्रभो ॥ १६ ॥

यत्सत्यं परमानन्दं चिन्मात्रमद्वितीयकम् ।
तद्ब्रह्म परमं साक्षात्त्वमेवासि रमापते ॥ १७ ॥

ये नित्यं श्रेय इच्छन्ति मुनयः शुद्धबुद्धयः ।
इहामुत्र सृतीस्त्यक्त्वा त्वदङ्घ्रिं त उपासते ॥ १८ ॥

विश्वसर्गादिहेतुस्त्वं जीवैस्तत्तत्फलेच्छया ।
आराध्यसे प्रभो नित्यं तत्तद्रूपो व्यवस्थितः ॥ १९ ॥

त्वमुदासीन एवासि निरपेक्षतया प्रभो ।
तथापि ते लोकवत्तु लीला कैवल्यमीरितम् ॥ २० ॥

त्वमस्य कारणं विष्णो कार्यं च त्वं रमापते ।
द्वैताद्वैतस्वरूपेण त्वमेवैकः प्रतिष्ठितः ॥ २१ ॥

कुण्डलादयात्मना यद्वत्सुवर्णं सम्प्रतीयते ।
स्थानं सर्वविकल्पानां तथा त्वमखिलात्मना ॥ २२ ॥

केचिद्वदन्ति त्वां ब्रह्म परे धर्मं प्रचक्षते ।
प्रधानपुरुषावन्ये तयोरपि परं परे ॥ २३ ॥

विमलोत्कर्षिणी ज्ञान क्रिया योगा च प्रह्विका ।
सत्येशानानुग्रहा च यदेता नव शक्तयः ॥ २४ ॥

ताभिर्युक्तं परं केचित्त्वां बुधाः सम्प्रचक्षते ।
वदन्ति[1] केचित्त्वां स्वतन्त्रं महापुरुषमव्ययम् ॥ २५ ॥

अहं ब्रह्मा मरीच्यादया ऋषयश्च महाधियः ।
न ते लीलामपि ज्ञातुमीशते त्वां पुनः कुतः ॥ २६ ॥

भगवन् किं पुनर्वाच्यं राजसैस्तामसैश्च यत् ।
भवानगम्यरूपोऽसि यं न सत्यं प्रकाशयेत् ॥ २७ ॥

त्वं जन्मस्थितिनाशमस्य जगतो जानासि नाना सृती
भूतानां च समीहितं कलयसे बन्धं च मोक्षं तथा ।
त्वं व्याप्नोषि समस्तमेतदखिलं ज्ञानात्मकः श्रीपते
बाह्याकाशवदन्तरा बहिरपि त्वं सम्प्रविष्टोऽखिलम् ॥ २८ ॥

न त्वय्यघटितं किंचित्सर्वमाया नियन्तरि ।
तथापि कौतुकेनेश द्रष्टुं त्वां वयमागताः ॥ २९ ॥

---

१. पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षः ।

दृष्टानि तव रूपाणि क्रीडमानस्य स्वैर्गुणैः ।
भवार्थमविभर्यानि लोकानां त्रिजगत्पते ॥ ३० ॥

तव या मोहिनी शक्तिः साक्षान्मूर्तिमती श्रुता ।
तामहं द्रष्टुमिच्छामि दैत्यदानवमोहिनीम् ॥ ३१ ॥

यद्रूपं प्रकटीकृत्य दानवांस्त्वममोहयः ।
अपाययश्च पीयूषं सुराणां सत्त्ववर्तिनाम् ॥ ३२ ॥

तद्रूपमहमिच्छामि द्रष्टुं त्रिभुवनेश्वर ।
श्रियोऽपि सौन्दर्यमदं हर्तुं यच्छक्नुते विभो ॥ ३३ ॥

इति विज्ञापितो देवः स्वयं स भगवान् हरिः ।
रुद्रेण पार्वतीशेन प्रहस्य तमुवाच ह ॥ ३४ ॥

दैत्यदानवयूथानां मोहनाय महेश्वर ।
मया प्रकटितं रूपं हिताय च सुपर्वणाम् ॥ ३५ ॥

तद्दिदृक्षसि चेच्छम्भो दर्शयिष्यामि तत्तव ।
कामिनः सुन्दरीः श्रेष्ठा यदुपासनयाऽऽप्नुयुः ॥ ३६ ॥

इत्थं वदन्नेव तदा भगवान् कञ्जलोचनः ।
पश्यतः पार्वतीशस्य तत्क्षणेऽन्तरधीयत ॥ ३७ ॥

भवो दश दिशः पश्यन्नास्ते गिरिजया सह ।
दिदृक्षुस्तस्य वैचित्रीं सर्वतो विकिरन् दृशम् ॥ ३८ ॥

अथ स्वधामोपवने रमापतिर्दिव्याङ्गनावेषधरो विमोहनः ।
आविर्बभूवाप्रतिमे समुल्लसद्वसन्तलक्ष्मीसुविचित्रितद्रुमे ॥ ३९ ॥

तां सुन्दरी कोटिशिरःशिखामणिं स्वपाणिना मञ्जुलकेलिकन्दुकम् ।
उच्छालयन्तीमधऊर्ध्वकं शनैः समीरलोलाञ्चललक्षितस्तनीम् ॥ ४० ॥

केलिश्लथच्छ्रोणिदुकूलमध्यतः सलीलमीषत्परिवृत्तमेखलाम् ।
पतोत्पतत्कन्दुककर्मसंचलद्द्रोणीनितम्बस्तनहारभारतः ॥ ४१ ॥

अभीक्ष्णभज्यत्सुकृशोदरीमिव क्रीडाचलच्चारुपदाम्बुजद्वयाम् ।
सौरभ्यसम्भारपतन्मधुव्रतैः संत्राससोद्वेगविलोललोचनाम् ॥ ४२ ॥

कर्णस्थताटङ्कमणिच्छविच्छटामिलत्कपोलस्थलमञ्जुलालकाम् ।
कुचाञ्चलं केलिकलापरिश्लथं संवृण्वतीं मङ्क्षुपरेण पाणिना ॥ ४३ ॥

मुहुस्तदन्येन च कन्दुकं क्षितौ प्रक्रीडयन्तीं भुवनैकमोहिनीम् ।
उच्चैस्तरामङ्गविकृष्टितः स्फुटं विभक्तचारुत्रिवलीतरङ्गिणीम् ॥ ४४ ॥

सभावसंलक्ष्यगभीरविस्फुरन्नाभीह्रदां प्रस्फुटरोमराजिकाम् ।
तां सत्रपस्मितविसृष्टकटाक्षबाणसद्यःप्रमुष्टहृदयां बहुहावभावाम् ॥ ४५ ॥

देवो निरीक्ष्य गिरिशोभृशविह्वलाङ्गः स्वात्मानमेष गिरिजामपि विस्मृतोऽभूत् ।
विक्रीडन्त्याभूरिभावाञ्चितायास्तस्या हस्तात्कन्दुकोऽगाद्विदूरे ॥ ४६ ॥

आधावन्त्यास्तमनूत्तालपादं स्रंसत्काञ्चिश्लथमासोत्तरीयम् ।
अथो सभावं गिरिशस्य पश्यतस्तदुत्तरीयं मृदुकुञ्जमारुतः ॥ ४७ ॥

जहार संलक्ष्यसुपीवरस्तनी विवस्त्रदेहा बहुसंचुकोच सा ।
तां तप्तचामीकरचारुविग्रहां विवस्त्रसंलक्ष्यतमस्तनोदरीम् ॥ ४८ ॥

दृष्ट्वा गिरीशश्चकमेतमां हृदा सभावमायोजितलोललोचनः ।
विस्पष्टमङ्गं तडिदुज्ज्वलप्रभं निगूहयन्ती लतिकान्तरेषु सा ॥ ४९ ॥

रराज राजीववनातिसौरभा मधुव्रतौघाव्रियमाणविग्रहा ।
विमोहितात्मा मदनस्य मार्गणैः सतत्कटाक्षापहृताकुलान्तरः ॥ ५० ॥

निगूढदेहां लतिकासु वीक्ष्य तां रहः समालिङ्गितुमन्वगाद्भवः ।
निकुञ्जवातस्खलदुत्तरीयका सा रुद्रमायान्तमवेक्ष्य सत्रणा ॥ ५१ ॥

निलीयमाना विटपेषु भूरुहां स्मितानना न स्थिरतां दधौ क्वचित् ।
हरः प्रमुष्टाखिलविह्वलेन्द्रियः प्रसह्य तामेत्य वधूशिरोमणिम् ॥ ५२ ॥

जवेनवेणीं परिगृह्य पाणिना स्मरेण मत्तः परिषस्वजेतमाम् ।
भृशं परिष्वक्ततनुः शिवेन सा सभावमावर्त्तितचारुविग्रहा ॥ ५३ ॥

निरीक्षमाणा त्रपया दिशो दश प्रकीर्णकेशी रुरुचे तडिद्यथा ।
सा मोचयित्वास्य भुजद्वयान्तराद्वपुः समालिङ्गनगाढमर्दनात् ॥ ५४ ॥

सशङ्कचित्तेव नितान्तमद्रवन्नितम्बभारोद्वहनश्रमालसा ।
तां धावमाना श्लथकेशबन्धनस्खलत्सुमन्दारसुमौघवर्षिणीम् ॥ ५५ ॥

तनुत्विषा रोचितसर्वकाननां शिवोऽन्वधावत् स्मरबाणवेपितः ।
प्रवृष्टधम्मिल्लसुमोत्कराङ्कितां जवेन तस्याः पदवीमनुद्रुतः ॥ ५६ ॥

भवो भवानीमपि पार्श्ववर्तिनीं न जज्ञिवान् ह्रीपरिलोपचञ्चलः ।
तडित्प्रभां तामनुधावतोजवाद्धरस्य चस्कन्द बलेन वीर्यकम् ।
प्रक्षुब्धचित्तस्य करेणुदर्शनाद्यथा करीन्द्रस्य मदाविलस्य तत् ॥ ५७ ॥

अमोघरेतसस्तस्य यत्र यत्र पपात तत् ।
रेतो दृशादिगुद्भासि कान्तिमत्ता प्रविस्फुरत् ॥ ५८ ॥

तत्र तत्राभवंस्तानि क्षेत्राणि धरणीतले ।
हेमपारदपूर्णानि श्रीकराणि नृणां भवे ॥ ५९ ॥

सरांसि सरितः शैलान् वनान्युपवनानि च ।
खेटकाः खर्वटा[१] वाप्यो मुनीनामाश्रमाणि च ॥ ६० ॥

पूर्णानि रुद्रवीर्येण हेम्ना वै पारदेन च ।
निकाममरुचन् दीप्त्या दीप्तानि परया श्रिया ॥ ६१ ॥

स्रस्ते चावितथे वीर्ये गिरीशः प्रत्यपद्यत ।
आत्मानं भगवन्मायाविप्रणाष्टधियं तदा ॥ ६२ ॥

---

१. "पर्वतप्रान्तग्रामाः" टि.–मथु० बड़ो० ।

न्यवर्ततथो शिव आत्ममोहात्सद्यः परिप्राप्तधृतिस्मृतिज्ञः ।
विज्ञाय मायां परमस्य विष्णोर्मेने न तच्चित्रमगाधबोधः ॥ ६३ ॥

ततः स्वस्थतमं शान्तमात्मप्रकृतिमागतम् ।
त्यक्तस्मररयं शम्भुं समुपेत्याब्रवीद्धरिः ॥ ६४ ॥

योषिद्रूपं मया शम्भो स्वमायाज्ञापनाय ते ।
प्रकटीकृतमुन्मुग्धा यदालक्ष्य सुरासुराः ॥ ६५ ॥

पश्य मे पौरुषं रूपमिदानीमिदमद्भुतम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मदिव्यायुधनिषेवितम् ॥ ६६ ॥

वनमालालसद्वक्षस्फुरच्छ्रीवत्सकौस्तुभम् ।
इदं मे परमं रूपं ध्येयं योगीन्द्रसत्तमैः ॥ ६७ ॥

अनेनापि स्वरूपेण विकृतिं यान्ति योषितः ।
स्मरार्दिता मां सहसा सेवितुं सुसमुत्सुकाः ॥ ६८ ॥

श्रियोऽपि मोहनं शम्भोरूपमेतन्मनोहरम् ।
यथेच्छं पश्य भगवन् स्वस्थचित्तोऽधुनासि यत् ॥ ६९ ॥

त्वदन्ये न च मे माया न शक्या तर्तुमीश्वर ।
मदिच्छयैव देवेश मोहितोऽस्यद्यनिश्चितम् ॥ ७० ॥

भवादृशोऽपि योगीन्द्र यत्र मोहमुपागतः ।
तत्र कोऽन्यः समर्थः स्यादिति ज्ञापयितुं जनान् ॥ ७१ ॥

एतन्मे चरितं शम्भो स्त्रीस्वरूपविभावनम् ।
मा तेऽस्तु विक्लवः शम्भो मा च व्रीडा महात्मनः ॥ ७२ ॥

नूनं मे दुस्तरा माया तांस्तान् भावान् प्रकुर्वती ।
त्वामृते कस्तरेदेनां योगीन्द्रं स्वात्मनिस्थितम् ॥ ७३ ॥

एतां गुणमयीं शम्भो स्वात्मप्रकृतिमद्भुताम् ।
आश्रित्य वितनोम्यस्य सृष्टिस्थितिलयानहम् ॥ ७४ ॥

एवं समाहितमतिर्भगवान् विष्णुनाभवः ।
भवानीसहितः स्वस्थः स्वालयं प्रत्यपद्यत ॥ ७५ ॥

तत्र गत्वा रहः स्थित्वा तां देवीं शक्तिमात्मनः ।
उवाच विहसन् रुद्रो भवानीं प्रीतिसंयुतः ॥ ७६ ॥

अपि त्वया गौरि विलोकिता हरेः परस्य मायाखिलभावभाविनी ।
यया विहायात्ममहित्वमज्ञवद्विमोहितोऽहंसकलामरर्षभः ॥ ७७ ॥

अहं विरञ्चिर्मरुतामधीश्वरो मुनीश्वरा ये भृगुगौतमादयः ।
तेऽप्यस्य मायां परिणाहिनीं गुणैस्तरीतुमीशा न भवन्ति पार्वति ॥ ७८ ॥

सृष्टिस्थितिक्षयकरीं गुणसम्प्रवाहमुग्धाखिलत्रिभुवनां भवबन्धहेतुम् ।
आद्यां विचित्ररचनाश्रयदिव्यरूपां विष्णोः परस्य पुरुषस्य नतोऽस्मि मायाम् ॥७९॥

रहः स्थिता मां भवती कदाचित् कं ध्यायसीत्याप्तमना अपृच्छत् ।
स एष साक्षात्पुरुषः पुराणः स्वयं प्रपञ्चस्य निदानभूतः ॥ ८० ॥

श्रीराम उवाच

इति ते कथितं कान्ते समुद्रो मथितो यथा ।
स्वयं लक्ष्मीस्ततो जाता साक्षात्त्रिभुवनेश्वरी ॥ ८१ ॥

तत्सार्द्धं निःसृता एता भक्ता मे व्रजगोपिकाः ।
यूथेश्वर्यश्च सकला व्रजकेलिविनोदिकाः ॥ ८२ ॥

विलासिन्यस्तडित्कान्त्या दद्योतयन्त्यो व्रजावनीम् ।
नित्यं रासविलासादिरसिका मम वल्लभाः ॥ ८३ ॥

कथिता चापि तेऽन्येषां रत्नानां सूतिरम्बुधेः ।
अमृतस्य तथोत्पत्तिः सुरेभ्यः पायितं यथा ॥ ८४ ॥

राहोर्ग्रहत्वसम्प्राप्तिर्नियमो वचसा हरेः ।
देवानां दानवानां च कलहश्च तवेरितः ॥ ८५ ॥

विक्रमस्तत्र सुमहान् साक्षान्मम रघूपतेः ।
पक्षपातश्च देवानां जयदानं तथामुना ॥ ८६ ॥

यः कीर्तयेन्नित्यमदः श्रृणोति स्मरत्यभीक्ष्णं रामस्य चरितं ।
महोत्तमश्लोकनिधेः स जातु पराभवं क्वापि लभेत नैव ॥ ८७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे समुद्रमथनादिकीर्तनं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

*

षण्णवतितमोऽध्यायः

श्रीजानक्युवाच

विदितं ते करुणया यत्तत्वं व्रजसुभ्रुवाम् ।
प्राग्जन्म मम चाप्युक्तं भवताखिलवेदिना ॥ १ ॥

सहजायास्तु यत्तत्त्वं स्वरूपं यच्च यादृशम् ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो रघुपतेऽधुना ॥ २ ॥

श्रीराम उवाच

सहजानन्दिनी साक्षात्परब्रह्मस्वरूपिणी ।
प्रमोदवनलीलेशी या नित्या परदेवता ॥ ३ ॥

सच्चिदानन्दरूपेयं प्रेमानन्दैकविग्रहा ।
अरूपा सर्वरूपा चाप्यनामा सर्वनामिनी ॥ ४ ॥

तथा च व्रजदेवीनां समस्तानां च जानकि ।
गायत्र्याश्चैव सावित्र्याः स्वरायाश्च परश्रियः ॥ ५ ॥

पार्वत्याश्च सरस्वत्या इन्द्राण्याश्च रतेरपि ।
स्वाहायाश्च स्वधायाश्च सुधायाश्च तथा भुवः ॥ ६ ॥

चन्द्रिकायाः प्रभायाश्च विकुण्ठायास्तथाप्रिये ।
तुष्टेः पुष्टेश्च मेधायाः प्रज्ञायाश्च तथाधिपः ॥ ७ ॥

विद्यायाश्चाप्यविद्यायाः कान्तेः कीर्त्तेर्धृतेः स्मृतेः ।
समस्तानां च शक्तीनामंशिनी सहजेश्वरी ॥ ८ ॥

यानि कानि च रूपाणि तव वा मम बल्लभे ।
तानि सर्वाणि नियतमस्या एवेति चिन्तय ॥ ९ ॥

एषैव विश्वं सृजति सृष्ट्वानुविशति स्वयम् ।
एषैवरक्षयत्येतत्काले संहरते पुनः ॥ १० ॥

बन्ध मोक्षकरी चैषा जीवानां जीवरूपिणी ।
जीवातुरप्यसौ कान्ते जगतोऽनुग्रहात्मिका ॥ ११ ॥

नित्यंसर्गविसर्गादिदशलीलास्वरूपिणी ।
लक्ष्यं च लक्षणं चैषा निषेधो विधिरेव च ॥ १२ ॥

कार्यं च कारणं चैषा परं चापरमेव च ।
स्वसत्तयाखिलंव्याप्य नित्यमुज्जृम्भयत्यसौ ॥ १३ ॥

सर्वेषां नामरूपे च स्वयं व्याकुरुते ह्यसौ ।
सदसद्वापि यद्वस्तु दृष्टमानुश्रवं तथा ॥ १४ ॥

तस्य सर्वस्य सर्वत्र स्थितेयमधिदेवता ।
अधिभूतं तथाध्यात्ममियमेव प्रतिष्ठिता ॥ १५ ॥

विरञ्चिः पञ्चतामेति हरिर्विरमते पुनः ।
रुद्रोविनाशमायाति तिरोभवति पूरूषः ॥ १६ ॥

महेन्द्राणां कोटयश्च विलीयन्ते विशेषतः ।
विराट् प्रलीयते काले कालोभवति निष्कलः ॥ १७ ॥

तदाप्येषा विहरति मया सार्द्धं समस्थिता ।
प्रमोदवनकुञ्जान्तरानन्दरसवर्द्धिनी ॥ १८ ॥

चिदानन्दमये नित्ये स्वे महिम्नि महीयते ।
नित्यरासविलासादिलीलोल्लासनकारिणी ॥ १९ ॥

नादो नादान्नमयते नादान्तो लीयते मयि ।
तदाप्यस्याः कलं गानं विरतिं नैति जानकि ॥ २० ॥

अमूर्त्तश्चैव मूर्त्तश्च भावः सर्वो विलीयते ।
तदाप्यस्याः परा मूर्तिर्भासते नित्य केलिनी ॥ २१ ॥

नित्या शरत्स्वच्छजला सरयूर्वीचिमालिनी ।
रत्नबद्धतटद्वन्द्वा राजहंसनिषेविता ॥ २२ ॥

हंससारसचक्राह्वकादम्बकुलकेलिभृत् ।
जलकेलिसमासक्तव्रजवामेक्षणाञ्चिता ॥ २३ ॥

मधुमाधवलक्ष्मीश्च नित्या तत्र विराजते ।
संफुल्लमधुरानेकमाधवीकुंजमण्डिता ॥ २४ ॥

मकरन्दभरोन्मत्तरोलम्बकुलनादिता ।
नवचूताङ्कुरास्वादकलकण्ठैरकुण्ठितैः ॥ २५ ॥

पुंस्कोकिलकुलैर्घुष्ट काकलीकलनिःस्वना ।
चमत्कारिकलक्वाणचकोरशुकसारिकाः ॥ २६ ॥

उत्फुल्लकुसुमस्तोमसंछन्नानेकभूरुहा ।
सुमन्दशीतलामोदिमारुतोर्मिसुसंगता ॥ २७ ॥

दोलाकेलिरसासक्तगोपीगीतकलध्वनिः ।
वाद्यन्मृदङ्गामुरजमञ्जुलध्वनिशालिनी ॥ २८ ॥

नित्यैव पूर्णिमा तत्र राकाख्या रासयोगिनी ।
अखण्डमण्डलोद्योतिरजनीकरमण्डिता ॥ २९ ॥

आनन्दर्बाद्धिनी साक्षात् पूर्णपीयूषवर्षिणी ।
उद्यच्चन्द्रप्रभाशोणदिग्व्योमधरणीतला ॥ ३० ॥

काश्मीररससंसिक्तरञ्जिताशेषकानना ।
उत्तानितचलच्चञ्चुचकोराचमितामृता ॥ ३१ ॥

उत्फुल्लकुमुदामोदवहमञ्जुलमारुता ।
नित्यैव रजनी तत्र गोपीहृदयरञ्जिनी ॥ ३२ ॥

अनङ्गरङ्गरुचिरा शृङ्गाररसदीपिनी ।
दूतीसखीगणरहःप्रयोगपरिवर्द्धिनी ॥ ३३ ॥

प्रियप्रेमाभिसारादिप्रकारसुखभाविनी ।
रसोज्जागरसानन्दपशुपक्षिगणाकुला ॥ ३४ ॥

नित्यं प्रमुद्वनं तच्च भासुरं सर्वकामदम् ।
सर्वभोगकरं साक्षात् प्रेमानन्दनिकेतनम् ॥ ३५ ॥

तस्मिन्नशोकवनिका संफुल्लाशोकभूरुहा ।
उद्यत्सौरभ्यलहरीवासिताशेषकानना ॥ ३६ ॥

तत्र श्रीयोगपीठोत्तमवरविलसद्रत्नसिंहासनान्तः
सदयः संफुल्लपद्मोपरिलसिता स्निग्धसख्यष्टकेन ।
आत्तव्यालोलवालव्यजनपटमणिस्वर्णभूषादियुक्त
श्रीमद्धस्ताम्बुजेनप्रतिपदमुदयत्केलिनासेव्यमाना ॥ ३७ ॥
हावैर्भावैरनेकैर्वदन विलसितैर्मन्दहासैर्विलासैः
शृङ्गारैकान्तकेलीं किमपि विदधती काममुज्जीवयन्ती ।
प्रेमार्द्रैर्द्रक्तरङ्गैः सुतरल सरलैर्वक्रिमोपक्रमाढ्यै-
राह्लादं वर्धयन्ती मम हृदि मधुरालापलीलाललामा ॥ ३८ ॥
चञ्चद्रक्तांशुकाढ्या स्तनकलशलसत्तारहाराभिराम
बिम्बोष्ठी तप्तचामीकररुचिरवपुःकान्तिसौरभ्यसीमा ।
कूजत्काञ्चीकलापश्लथगुणविगलच्छ्रीनितम्बाम्बराढ्या
ध्यातव्या सर्वसिद्ध्यै [ ] निजसहजानन्दिनीयं मदंके ॥ ३९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे श्रीरामजनकात्मजा-संवादे सहजातत्त्वनिरूपणं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

*

सप्तनवतितमोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

ब्रह्मानन्दरसावाप्त्यै भजनीया त्वमिन्दिरे ।
प्रेमानन्दरसावाप्त्यै श्रीमती सहजेश्वरी ॥ १ ॥
त्वं चेयं च परानन्दरूपिण्यौमयि संगते ।
उभे अपिप्रियेनित्ये मम नित्यविलासिनः ॥ २ ॥
ज्ञानभक्तिस्वरूपा त्वं श्रीमज्जनकनन्दिनि ।
प्रेमभक्तिस्वरूपेयं सहजानन्दिनी प्रिया ॥ ३ ॥
ज्ञानिनोमपिलीयन्ते भक्ता अपि भवान्ततः ।
प्रेमभक्तिपरा नित्यं विलसन्ति मया सह ॥ ४ ॥
भवे न पुनरावृत्तिरुभयेषामपि प्रिये ।
मृत्योर्मूर्द्ध्न पदं दत्त्वा प्राप्तानां परमं पदम् ॥ ५ ॥
सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यप्रमुखा याश्च मुक्तयः ।
त्वं हि तासामधिष्ठात्री पराज्ञानफलोदया ॥ ६ ॥

न सत्त्वेन विना ज्ञानं न ज्ञानेन विना क्वचित् ।
भवबन्धविनिर्मुक्तिर्भवेदज्ञाननाशजा ॥ ७ ॥

इतिबन्धश्च मोक्षश्च त्वदायत्तावुभावपि ।
विद्याविद्यास्वरूपेण क्रीडसीह त्वमीदृशी ॥ ८ ॥

आवत्यो मम लीलाश्च प्रमोदवनकुञ्जगाः ।
सरय्वाः पुलिने रम्ये मुक्ताकुञ्जमनोरमे ॥ ९ ॥

तासां भवत्यधिष्ठात्री सहजानन्दिनी प्रिया ।
अतश्च सहजारामा परा श्रीरिति गीयते ॥ १० ॥

लीलानन्दैकरसिका भोगसंकोचनाशिनी ।
नित्यानुकम्पाधरणी नित्यलीलाप्रवेशदा ॥ ११ ॥

यर्हि ज्ञानात्परं याति पूर्णां प्रेमकलां मयि ।
तर्हि मन्नित्यलीलायां प्रवेशायोचितो भवेत् ॥ १२ ॥

कुञ्जालयप्रतीहारी वेत्रहस्ता प्रवेशिका ।
श्यामारामाधन्यतमा सखी वक्ति तमागतम् ॥ १३ ॥

हे नाथ सहजाकान्त काचिच्चन्द्रमुखी वधूः ।
भवान्ते परमप्रेमपरीपाकेन शुद्धहृत् ॥ १४ ॥

शुद्धो जीव इह प्राप्तः प्राप्यालभ्यं सखीपदम् ।
स इदानीमिह स्वामिन् प्रवेश्यो नाथ वा वद ॥ १५ ॥

इत्युक्तो वेत्रधारिण्या प्रतिहार्या नियुक्तया ।
अहं श्रीसहजानन्दामुखं चन्द्राधिकप्रभम् ॥ १६ ॥

वीक्षमाणश्चिरं तिष्ठाम्यस्वतन्त्र इव प्रिये ।
ततः सा स्वामिनी मह्य मिदमीरयति स्फुटम् ॥ १७ ॥

स्मितज्योत्स्नाचमत्कारविशदीकृतमन्दिरा ।
किं तेऽभिलाषः कान्तास्याः प्रवेशेनाथवा प्रभो ॥ १८ ॥

ततोऽहं स्वामिनीमेनां ब्रवीमि रुचिरं वचः ।
चिरं तप्यत्वसौ तीव्रंतपस्तीर्थेषु सुन्दरि ॥ १९ ॥

ततश्च योगिनां स्थानं ज्ञानिनां च मनोरमम् ।
प्राप्नोत्विह पुनः कस्य प्रवेशः स्याद्वरानने ॥ २० ॥

आवयोः सुरहःक्रीडामावां जानीवहे प्रिये ।
अन्यस्य ज्ञापनार्हेय नैवेति मम निश्चितम् ॥ २१ ॥

ततः सा स्मितचन्द्रास्या साकूतमिदमाह माम् ।
नित्योऽभिलाष एतस्यास्तव लीलावलोकने ॥ २२ ॥

स कथं नाथ भज्येत न लभेच्चेत्प्रवेशनम् ।
ज्ञानिनः प्रेमभक्ताश्च तुल्या एव स्युरञ्जसा ॥ २३ ॥

ततश्च को भजेत्प्राज्ञ आवामधिकलिप्सया ।
श्रुतिश्च व्याहतैव स्याद्भक्त्युत्थफलबोधिका ॥ २४ ॥

निहितं गुहायां यो वेद परमे व्योम्नि तत्पदम् ।
सोऽश्नुते सकलान् कामान् विपश्चिद्ब्रह्मणा सह ॥ २५ ॥

गुहा वै हृदयाकाशः परमव्योम चाक्षरम् ।
तत्पदं परमं नित्यं प्रमोदवनसंज्ञिकम् ॥ २६ ॥

एतद्यो नियतं वेद स भक्तः प्रेमशीलनः ।
भुङ्क्ते स सकलान् कामान् दिव्यभोगरसोत्तरान् ॥ २७ ॥

आवयोर्युगलं यच्च विपश्चिद्ब्रह्म तन्मतम् ।
तत्सहक्रीडनं चैतदावयोर्धाम्नि वेशनात् ॥ २८ ॥

इति नित्यः श्रुतेरर्थः सतां चित्ते प्रकाशते ।
भजन्ति तेन विश्वस्ता आप्तस्य वचसा यथा ॥ २९ ॥

नान्यथा कथयेद्वेदो नान्यथा भजनं भवेत् ।
अतः प्रवेशनीयेयं कुञ्जद्वारगता वधूः ॥ ३० ॥

इति श्री सहजावाक्यं श्रुत्वाहं पुनरब्रुवम् ।
यथेष्टं प्रविशत्वेषा आवयोः केलिसद्मनि ॥ ३१ ॥

किं तु स्त्रीणां मनोभावश्चञ्चलो भवति प्रिये ।
कोटिमन्मथसौन्दर्यं दृष्ट्वा मां कामयेत सा ॥ ३२ ॥

तदा तव मनोग्लानिः सहजेशि न किं भवेत् ।
सपत्नीभावसामर्षा किं न त्वं मानिनी भवेः ॥ ३३ ॥

अतो विचार्य कर्तव्यं स्त्र्यन्तरस्य प्रवेशनम् ।
तथा कुरु यथा देवि नानुतापः पुनर्भवेत् ॥ ३४ ॥

इत्युक्ता मयका देवी सहजा पुनरब्रवीत् ।
आवयोर्गुणसंदोहो नान्यसाधारणः प्रिय ॥ ३५ ॥

अहमस्मि त्वद्वशगा त्वं च मद्वशगः प्रिय ।
आवयोः सहजः प्रेमा नान्यसाधारणः प्रभो ॥ ३६ ॥

क्वाहं कुर्याममर्षं च मत्समा का तव प्रिया ।
बहुधा सम्प्रतीतोऽसि सुन्दरीनिवहेष्वपि ॥ ३७ ॥

इयं वराकी युवतिरावयोर्दर्शनार्थिनी ।
क मत्सापत्न्यभावेन युक्ता स्यान्मानकृन्मम ॥ ३८ ॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य स्वामिन्याः साधुचेतसः ।
उवाचाहं प्रतीहारीं वेत्रहस्तां प्रवेशदाम् ॥ ३९ ॥

आज्ञापयति चेदेषा प्रिया मे प्राणवल्लभा ।
तदा प्रवेशयतमां भक्तां तां नवकन्यकाम् ॥ ४० ॥

इत्याज्ञप्ता प्रतीहारी प्रावेशयत तां सखीम् ।
तस्याः प्रेमगुणाकृष्टा सहजेश्यन्वरज्यत ॥ ४१ ॥

कृतप्रणामां तां दूरादन्तिके सालिकानयत् ।
तस्याः करौ समादाय सहजानन्दिनी स्वयम् ॥ ४२ ॥

मह्यं समर्पयामास करुणालोललोचना ।
इयं ते मत्सखी नाथ सेवनार्थमुपागता ॥ ४३ ॥

रहः सेवाविधौ नित्यं स्थापनीया वराङ्गना ।
समीप एव चाप्येनां भजस्व भजनोद्धुराम् ॥ ४४ ॥

कोटिकल्पांस्तपस्तप्त्वा शुद्धप्रेमोदयेन च ।
आवां निषेवितवती सरयूतटभूमिगा ॥ ४५ ॥

ततश्चैषा परित्यज्य लिङ्गं गुणमयं वपुः ।
शुद्धजीवत्वमापेदे प्रेम्णा चाधिकवृद्धिना ॥ ४६ ॥

इदं पदं परिप्राप्ता प्रमोदवनसंज्ञकम् ।
माधुर्यरसरक्तेयं सखीभावमुपागता ॥ ४७ ॥

आवयोर्नित्यलीलायां स्थास्यति प्रिय संततम् ।
चामरैर्व्यजनाद्यैर्नौ नित्यं परिचरिष्यति ॥ ४८ ॥

कृपाकटाक्षसंदोहैः पीयूषाधिकशीतलैः ।
इमामानन्दयतमां यथा परिचरेत्सुखम् ॥ ४९ ॥

इत्युक्तोऽहं सहजया जनानुग्रहशीलया ।
एवमस्त्विति तां गोपीं रहः स्थापितवानहम् ॥ ५० ॥

अतो जानकि नन्वेतद्वदामि त्वां प्रयत्नतः ।
सर्वकार्येष्वहं तस्याः परतन्त्रोऽस्मि सर्वदा ॥ ५१ ॥

सहजाया यदाकूतं तदहं साधु साधये ।
न विचारोऽस्ति मे तस्या अभीष्टार्थविधौ क्वचित् ॥ ५२ ॥

इति ते सम्यगाख्यातं निगमैरपि वर्णितम् ।
तत्त्वं श्रीसहजेशान्याः स्वरूपं च रहस्यकम् ॥ ५३ ॥

मम श्रीसहजायाश्च नैव भेदोऽस्ति कश्चन ।
एकमेव द्विधारूपं रासःकेलिरिरंसया ॥ ५४ ॥

मत्तोऽधिकप्रभावेयं भक्तोद्धरणकर्मणि ।
साध्यसाधनरूपेयं स्वयमेव प्रतिष्ठिता ॥ ५५ ॥

पुराणेषु च वेदेषु विततेष्वागमेषु च ।
यामलेषुसंहितासु सिद्धान्तेषु च सर्वशः ॥ ५६ ॥

बुधैर्व्याससमासाभ्यामियमेव हि गीयते ।
य एनां प्रविजानन्ति प्रविज्ञाय भजन्ति च ॥ ५७ ॥

न तेषां भुक्तिमुक्त्यादि दुर्लभं वस्तु किंचन।
य एनां न विजानन्ति तेषां वै ज्ञानिनामपि ॥ ५८ ॥

वृथा ज्ञानं च विज्ञानं फलशून्यतया प्रिये।
य एनां न भजन्त्यद्धा ते मद्भाजोऽपि पूरुषाः ॥ ५९ ॥

न तथा फलयोगेन युज्यन्ते जनकात्मजे।
यथाऽमुष्या भजनतः फलभाजो भवन्ति हि ॥ ६० ॥

प्रमुदवनमहेशी नित्यलीलारसज्ञा शुभगुणगणराशिः सर्वसौन्दर्यसीमा।
असममहिमधामश्लोकसम्पत्समग्रा निखिलनिगमगेया नन्दनस्यात्मजेयम् ॥ ६१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे श्रीसहजा-तत्त्वाख्यानो नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७॥

*

अष्टनवतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

इत्थं श्रीरामचन्द्रेण कीर्तितं व्रजसुभ्रुवाम्।
तत्त्वं विज्ञाय मुमुदे श्रीमती जनकात्मजा ॥ १ ॥
उवाच च परिप्रीता रामं रमणकोविदम्।
चित्रकूटगिरौ लब्धव्रजलीलाकुतूहलम् ॥ २ ॥

श्रीजानक्युवाच

ज्ञातं प्रभो करुणया भवतः स्वरूपमाभीरराजदुहितुः सहजाभिधाया।
यस्यां भवानविरतं रमते रमण्यां स्वैरं समुल्लसितकोटिकलाकलापः ॥ ३ ॥

प्रेमापरंजयति ते रघुवंशकेतो श्रीनन्दनान्वयपयोनिधिचन्द्रिकायाम्।
रात्रंदिवं प्रकटिताखिलहावभावश्रृङ्गाररसारपरमामृतपूरपूर्णः ॥ ४ ॥

माधुर्यधुर्यधरणीरमणीयताढ्यः प्रावीण्यभारभरितोऽद्भुतभङ्गिपूर्णः।
लावण्यभावपरिणाहकरः कलानामेकान्तकेलिभवनं युवयोर्विलासः ॥ ५ ॥

सौन्दर्यसारसमुदायतरङ्गिणीयं चूडामणिस्त्रिभुवनाद्भुतसुन्दरीणाम्।
वक्रोक्तिचारुरचनारसहर्ष वर्ष प्रावृडधरा विजयते व्रजराजपुत्री ॥ ६ ॥

ब्रह्मादिदैवतकिरीटमणिप्ररोचिनीराज्यमानचरणाब्जनखाग्रमस्याः।
ऐश्वर्यमत्यधिकमेव किमत्र चित्रं क्रीतो यया स्वकरगः परपूरुषस्त्वम् ॥ ७ ॥

नित्यं नतास्मि युवयोस्त्रिजगद्विशिष्टं प्रेमाणमेकरसतारमणीयरूपम् ।
स्वच्छन्दकेलिपरिणाहनिदानभूतं जीवातुमेतमखिलव्रजसुन्दरीणाम् ॥ ८ ॥

लक्ष्मीसहस्रसुविलासकलागभीर औदार्यधैर्यपटुतासमुदायसीमा ।
नित्योल्लसन्नवनवामितमोदसिन्धुः संगश्चिरं विजयती तव गोष्ठराज्या ॥ ९ ॥

को वेत्ति कान्त भुवने युवयो रहस्यं स्वच्छन्दकेलिरसनिर्वृतयोरजस्रम् ।
पादाब्जनित्य परिचारिकयापि भूत्वा यज्ज्ञायते न नितरामधिकं मयापि ॥ १० ॥

यद्गीयते श्रुतिशिरःशतकेन नित्यं मात्रोपजीवनपरा विबुधाश्च यस्य ।
आब्रह्मविष्टपमुदारगुणप्रकर्ष आनन्द एष भवतो रसकेलिरूपः ॥ ११ ॥

कल्याणमन्दिरमुदारगुणाम्बु राशिमास्वाद्यमानभुवनोत्तरसौख्यसघम् ।
संसारचक्रबहुपर्यटनश्रमाणां विश्रामदं विजयते तव धाम नित्यम् ॥ १२ ॥

धामेश्वरी विजयते सहजैवनाथ सा तावकी परमचित्सुखभोगशक्तिः ।
सामर्षभूतहृदया अपि तेऽन्यवामा यद्दर्शनक्षणविलुप्तमदा बभूवुः ॥ १३ ॥

मूले कृतं रसनिषेचनमङ्घ्रिपस्य शाखाशिफाकुसुमपत्रफलं प्रयाति ।
तद्वत्प्रभो सहजया सहते रतेन तृप्ता भवन्ति निखिला व्रजवामनेत्राः ॥ १४ ॥

एकापि सर्वतरुणीसमुदायरूपा स्वैरं प्रभो विहरते भवता समं श्रीः ।
यद्वीक्ष्य भूरिरतिकेलिकलासमेतं मोदन्त ईश सकलाः सुदृशो व्रजस्थाः ॥ १५ ॥

हित्वा मम प्रणयमन्यत एष सक्तस्तत्किं करोमि सखि तामथ निश्चिनु त्वम् ।
दृष्ट्वा ध्रियेत तरसैव मया कचेषु प्रेयानयं तत उदास्य करे विधेयः ॥ १६ ॥

अन्यर्थमेव ननु तां समुपालभे च का त्वं ममैव रमणः स्थगितो ययेति ।
नैवं करिष्यसि पुनः स्मरबाणदग्धा चेत्त्वं तदाधिसरयु प्रसभं पतेथाः ॥ १७ ॥

इत्थं सपत्नतरुणीशपते सरोषं जिज्ञासती व्यतिकरं किल तावदेव ।
यावत्त्वया सह रहोविलसद्विहारां नैक्षिष्ट नन्दनसुघोषपतेः किशोरीम् ॥ १८ ॥

यद्रूपमेकगुणमक्षिचकोरिकाभिः पेपीयमानमनिशं व्रजसुन्दरीणाम् ।
प्रेयस्त्वदीयमनया मिलितं पुनस्तद्वैगुण्यमाप परमप्रमुदामवाप्त्यै ॥ १९ ॥

सौदामिनीपरिचिता जलदच्छटेव सौवर्णवल्लिमिलितेव तमालपङ्क्तिः ।
रेखान्वितानिकषनीलशिलेव हेम्नः श्रीनन्दनस्य सुतया तव भाति मूर्तिः ॥ २० ॥

कास्विन्न नाथ समुदीक्ष्य कृतार्थयेत् स्वे नेत्रे कलानिधिसुरक्तचकोरकाभे ।
रूपं त्वदीयमरविन्दविलोचनेश श्रीनन्दनस्य सुतयाधिकजातशोभम् ॥ २१ ॥

सापत्न्यभावजममर्षमुपेयिवद्भ्यां
सौन्दर्यसारपरमामृतवञ्चिताभ्याम् ।
तस्याः स्त्रियो नु किमलम्भि विलोचनाभ्यां
या त्वद्युतां प्रियतमां तव नैव पश्येत् ॥ २२ ॥

त्रैलोक्यरूपमदसंहृतिकारि नित्यं बद्धादरं तव रघूद्वहलोचनाभ्याम् ।
बोभुज्यमानममृताधिकतर्षकारि स्वादावहं जयति तत्सहजास्वरूपम् ॥ २३ ॥

मां पातु नित्यरमणी तव नाथ शश्वत्प्रेमप्रमोदमयमञ्जुलमूर्तिरेषा ।
सामर्ग्यजुःश्रुतिशिरांस्यतिवर्त्य भूयो योगीन्द्रवृन्दहृदयानि च वर्तमाना ॥ २४ ॥

उद्रिक्तभूरिकरुणामृतशश्वदार्द्रां दृष्टिं दधातु मयि सा सततं स्वकीयाम् ।
या संददाति भवतश्चरणारविन्दे पूर्णां रतिं परमयोगिभिरर्थनीयाम् ॥ २५ ॥

भूयो मदीक्षणकनीनिकयोरजस्रं पीयूषवर्षि युवयोर्युगलं सलीलम् ।
श्रीमत्प्रमोदवनगह्वरवीथिकासु बिभ्रद्रहोविहरणं वसतु प्रकामम् ॥ २६ ॥

पुष्पाङ्गरागचमरातपतालवृन्त ताम्बूलसम्पुटविभूषणधारिकासु ।
या कापि संनिधिगता परिचारिकासु भूत्वापि दर्शनसुखं युवयोर्लभेय ॥ २७ ॥

एताश्च व्रजसुभ्रुवस्तव रहःकेलिप्रमोदस्पृशः
प्रेमाम्भोधिलसत्तरङ्गतरलास्तारुण्यलक्ष्मीभृतः ।
क्रीडन्त्यश्चिरमासतां मम दृशोस्ताराइव श्रीपते
याभिर्नैव विना लभे दश दिशो गाढान्धकारावृताः ॥ २८ ॥

इति स्तुत्वा च नत्वा च गोपीर्गोष्ठेश्वरीं च ताम् ।
सहजानन्दिनीं सीता नितान्तमरमत्तया ॥ २९ ॥

श्रीमन्नन्दननन्दिनी च विलसद्गोपीसमाजस्थिता
तारामण्डलमण्डितेव सरसा ज्योत्स्नेव सा शारदी ।
अत्युच्चैः शुशुभेतमां जनकजासङ्गप्रमोदावृता
ते चान्योन्यमुपेयतुर्निजनिजव्राताधिपत्यं तदा ॥ ३० ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे चित्रकूट लीलायामष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

*

एकोनशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

जानकी व्रजभक्तानां प्रेमवृत्तं निरन्तरम् ।
पश्यन्ती सस्पृहमना मुमुदे स्वेशसंगता ॥ १ ॥

ताश्चित्रकूटगिरि कन्दररत्नशालाः प्रेयःप्रसक्तमुदितव्रजदारजुष्टाः ।
पश्यन्त्यथ प्रतिदिनं प्रणयप्रकर्षवृत्तान्तशीलनपरा मुमुदे भृशं सा ॥ २ ॥

अणिमादिमहासिद्धिनिषेवितपदद्वया ।
सर्वात्मना व्यचष्टैषा व्रजलीलां मनोरमाम् ॥ ३ ॥

क्वचित् कुञ्जोद्देशे नवनवलिसान्द्रावृतिमति
प्रगाढध्वान्तौद्यस्पृशि रहसि कांचिद्व्रजवधूम् ।
व्यचष्ट स्वच्छन्दं नवनिधुवनानन्दनिरतां
तनोर्मध्ये काञ्चीमधुरमणितैर्लक्षिततमाम् ॥ ४ ॥

क्वचित्केलीकुञ्जे किमपि सहजां मानसरुषं
विनीताभिर्वाग्भिः प्रसभमनुनेतुं प्रिय इतः ।
पदाम्भोजे यावत्पतति स भृशं तावदमुपा
क्वणत्केयूराभ्यां मृदुलनिजदोर्भ्यां हृदि धृतः ॥ ५ ॥

क्वचित्प्रेयोवक्षःस्थलमितरयोषाकुचतटी
विलिप्तैः काश्मीरैश्छुरितमलमालोक्य तरसा ।
रुषा न्यक्कुर्वीत प्रणयिनमियं यावदबला
परिष्वज्याश्राक्षीद्रसमुरसि तावत्स चतुरः ॥ ६ ॥

क्वचित्क्रीडावासे प्रणयकलहाक्रान्तहृदया
मनूनेतुं दूतीं रहसि कथयत्यात्मरमणः ।
जवाद्गत्वा वाच्यं त्वमसि रमणि प्राणदयिता
त्वयर्त्ते मत्प्राणा गुणवति बहिर्गन्तुमुदिताः ॥ ७ ॥

निरागस्के मय्याकलमसि किमागः शशिमुखि
प्रमाणं मे प्रेमा भवतु विगतान्यस्पृह इह ।
अदोषे दोषः क्व प्रणयवति दोषो यदि भवे
त्रिवेणी ते दृष्टिस्तमपि सपदि क्षालयतु च ॥ ८ ॥

इतीवोच्चैः पत्या रचितचटुसंदेशवचनं
समादाय क्रोड़ाभवनमथ दूती समगमत् ।
समाधाय प्रेयोवचनरचना तोऽप्यधिकया
गिरानिर्मानां तां त्वरितमनयत्कान्तसविधे ॥ ९ ॥

क्वचित्पायं पायं मधुरतरमन्योन्यमधर-
द्वयीस्थं पीयूषं परिणतिसुतृप्त्यैकजनकम् ।
मुहुर्मीलन्नेत्रं मुहुरुदितसीत्कारचटुलं
सकम्पं सस्तम्भं सपुलकमुभौ संविहरतः ॥ १० ॥

क्वचित्क्रीड़ाकुञ्जे प्रणयकलहेनान्तरितया
सरोषन्यक्कारावमतरमणायोगसहया ।
अथो भूयः सम्प्रेषितचतुरदूत्यामृगदृशा
सचिन्त सद्वारेक्षणमवहितं स्थीयत इह ॥ ११ ॥

क्वचित्संकेतान्तःप्रियमनुपपातं दिशि दिशि
प्रपश्यन्तीदूतीमसकृदुपलम्भैर्विधुनती ।
क्षिपन्ती ताम्बूलाभरणवसनालेपकुसुम
स्रजस्तप्ता तान्ता[1] हृदि कथमिवास्तेशशिमुखी ॥ १२ ॥

स्तुवन्तावन्योन्यं चरणनतिकारौ गुणगणान्
वदन्तावन्योन्यं रचितपरिरम्भौ सपुलकम् ।
पिबन्तावन्योन्यं दशनपटपीयूषपटलीं
प्रमत्तावन्योन्यं समरसतयोभौ विहरतः ॥ १३ ॥

क्वचित्स्वप्रेयस्याः कुसुमवसनालंकृतिभरं
स्वयं बिन्यस्यार्द्रः प्रणयपरिपाकेन रमणः ।
स्वदाक्षिण्यव्यक्तिप्रवणहृदयो भूषणपरः
स्वयं चासौ साक्षी परमसुषुमां पश्यति रहः ॥ १४ ॥

क्वचित्प्रेयानद्यौकसि मम सुखं वासक इति
स्फुटाशाः सज्जन्ते वपुषि बहुशोमण्डनभरम् ।
सुगन्धोदैः स्नात्वा दहृदगुरुणा धूपितकचा-
स्तनोः कान्त्या सद्यस्तडित इव राजन्ति वनिताः ॥ १५ ॥

सखीकर्णोपान्ते पुलकवतिलग्ना प्रियतम-
प्रवृत्तिं कस्याश्चित्कथयति परं हर्षजननीम् ।
स्मितज्योत्स्नाजालैर्विदलितरहः सद्मतिमिरा
स्फुरद्भूयो हारावलि किमपि सा वीक्षत उरः ॥ १६ ॥

सखीभ्यः स्वोत्कर्षं प्रकटयितुमाभूषिततनु-
र्मुहुर्द्वारे दृष्टिपरिलिखितचित्रेक्षणमिषात् ।
समौ लज्जाकामौ निजहृदि बहन्ती सुनिपुणा
कुरङ्गाक्षी काचित्प्रकटयति नोवासकरसम् ॥ १७ ॥

विधीयन्ते पर्वोत्सवकपटतः स्नानवसव-
स्रगालेपालक्तच्छुरणमणिभूषाञ्जनमुखाः ।
सखीभिः शृङ्गारा नवनिधुवनार्हाः सरभसं
नवोढायाः कस्याश्चन हृदयमोहाय निभृतम् ॥ १८ ॥

विरच्यन्ते तल्पाः क्वचन कलिकाभिः सुमनसां-
गुणैराबद्धाभिः कृतसमुचितन्यासविधिभिः ।
क्वचित्स्रक्ताम्बूलक्रमुककणिकासम्भृतिविधौ
प्रियं स्मारं स्मारं शिथिलयतिपाणीशशिमुखी ॥ १९ ॥

१. तान्ता = ग्लाना सती ।

क्वचित्प्रातःकार्यं किमपिविनिवेद्यातिचतुरा
मुहुः श्वश्रूं प्रस्वापयति पठितान् पिञ्जरशुकान् ।
पिधत्ते शीतोक्त्या शिशमयिषितं दीपकमपि
प्रयुङ्क्ते न स्नेहैरसुरमणि उक्ता जिगमिषे ॥ २० ॥

क्वचित्केलीसद्मन्युदितमणिदीपद्युतिगल-
त्तमिस्रे सोत्कण्ठा मनसि मिलितुं प्राणदयितम् ।
विलम्बं संवीक्ष्य प्रकटपति तर्कान् बहुतरान्
विषीदत्युत्तान्ता स्वपिति च न जागर्ति च न सा ॥ २१ ॥

क्वचित्कान्तं शृङ्गारयति विपरीतोत्सुकमना
पुरा तेन प्रद्योतितपुरुषवेशातिशयिनी ।
स्फुरत्काञ्चीनासाभरणमणिताटङ्ककबरी
तुलाकोटीशाटीवलयतिलकालक्तकरसैः ॥ २२ ॥

क्वचित्कुञ्जावासाद्रमणमभिसर्तुं कृतमना-
स्त्वरातः सज्जन्ती वपुषि पटभूषादिरचनाम् ।
तुलाकोटीकण्ठेऽर्पयति मणिहारं चरणयो-
स्तथा बाह्वोः काञ्चीं श्रवणयुगले चाङ्गदयुगम् ॥ २३ ॥

समक्षं कान्तस्य क्वचन परमप्रेमपटली-
महिम्ना हेमाङ्गी विरहपरितापेन युयुजे ।
विवर्णस्या पाण्डुद्युतिपरिमिलद्गण्डयुगला
गलद्बाष्पोद्रेकोपहतनयना मौनमभजत् ॥ २४ ॥

क्वचित्कुञ्जागारे रहसि निवसन्ती व्रजवधू-
स्त्रपावश्यानाप्तप्रियपरिचयाकोविदसुहृत् ।
मुहुर्धावं धावं पुलकित तनुः प्राङ्गणगतं
नभः श्यामं रामप्रियतमधियाऽऽलिङ्गतिमुहुः ॥ २५ ॥

कदाचित्तापिच्छं विकचकलिकाकीर्णविटपं
प्रियः साक्षादेष प्रसभमिति मत्वा सविधगा ।
रहःसंदेशोक्तीः कथयति पुनर्मौनकलितं
तमालक्ष्य स्तब्धेत्यवददियमत्यर्थंकुपिता ॥ २६ ॥

क्वचिद्दृष्ट्वा काचित्सरसि नवमिन्दीवरवनं
नवोल्लासश्रीमद्रमण इति सम्भ्रान्तहृदया ।
परीरब्धुं गाढं विनिहितमतिस्तोयमविश-
द्धृता पश्चात्सख्या कथमपि मृगाक्षी निववृते ॥ २७ ॥

क्वचिद् दृष्ट्वा क्षुब्धा गिरिवरदरीगाढतिमिरं
मुहुः स्मारं स्मारं रघुपतिममुह्यत्सुनयना ।
उपालेभे भूयः प्रणयिवर दृश्योऽसि बहुधा
परं लभ्यो नासीत्यलमकृपतेऽन्वेषणशतैः ॥ २८ ॥

इति जानकी विविधभावचित्रितं प्रणयं व्रजप्रणयिनीगणस्य तम् ।
स्वदृशा व्यचष्ट बहुकौतुकान्विता कमलेश्वरोऽभृतिसत्सखीयुता ॥ २९ ॥

प्रतिकन्दरं प्रतिलतावनद्रुमं प्रतिकुञ्जमण्डपमखण्डकेलिना ।
रघुनन्दनेनरमणेनरागिणा रमिता रमा इव विजह्रु रङ्गनाः ॥ ३० ॥

रुचिरे प्रमोदवनकेलिमण्डपे विदधौ यथा विलसितं निजेच्छया ।
सहजेश्वरीप्रणयिनीसहायवान् रमणस्तथैवमिह चित्रकूटके ॥ ३१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे व्रजविलास वर्णनं नामैकोनशततमोऽध्यायः ॥९९॥

*

शततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

मन्दाकिन्यास्तटद्वन्द्वे निकुञ्जवरवेश्मसु ।
उपत्यकासु विस्तीर्णनवशाद्वलभूमिषु ॥ १ ॥

अधित्यकासु रम्यासु स्फाटिकी च शिलामनु ।
समुत्तुङ्गेषु शृङ्गेषु मणिकाञ्चनकान्तिषु ॥ २ ॥

अनेकधातुचित्रेषु वरभूरुहमालिषु ।
अह्निसंध्यायमानेषु सुप्रकाशेषु रात्रिषु ॥ ३ ॥

कन्दरासु मनोज्ञासु ज्वलदौषधिदीप्तिषु ।
लसद्रत्नशिलारम्यशय्यास्तरणभूरिषु ॥ ४ ॥

अशेषकेलिसामग्रीसनाथासु समंततः ।
आवातत्रिविधारामवातोर्मिभिः सुगन्धिषु ॥ ५ ॥

मणिदीपकभास्वत्सु मण्डपेषु च सर्वतः ।
गह्वरेषु लतावृक्षकुञ्जपुञ्जसुचारुषु ॥ ६ ॥

पतन्निर्झरसंशीतसावकाशाद्रिभित्तिषु ।
प्राङ्गणेषु विशालेषु रत्नशालेषु भूरिषु ॥ ७ ॥

रेमे श्रीरामरसिकः सहजाजानकीयुतः ।
यूथैर्व्रजवरस्त्रीणां मदनोन्मत्तचेतसाम् ॥ ८ ॥

स्फुरद्विचित्रभूषाणां विचित्रवरवाससाम् ।
विचित्रहावभावानां विचित्रवरवर्ष्मणाम् ॥ ९ ॥

झरणज्झणितमञ्जीरनूपुराणां समंततः ।
वाद्यन्माणिक्यवलयकेयूराणां प्रतिक्षणम् ॥ १० ॥

विस्फुरन्नवनृत्यानां विलासजितविद्युताम् ।
नवगानमनोज्ञानां नवचातुर्यसद्मनाम् ॥ ११ ॥

सानन्दं सादरं चैव सहेलं सत्रपं तथा ।
सवैयात्यं सकुतुकं सोन्मादं समनोद्रवम् ॥ १२ ॥

सगर्वं सगुणोद्गारं सभावं सगुणस्पृहम् ।
सजोषं साभिलाषं च सविलासं विजह्रिरे ॥ १३ ॥

एकोऽनेकतया रामः कामीव कलयन् मुहुः ।
तास्ताश्चेष्टाः सुरुचिराः शृङ्गाररसपोषिकाः ॥ १४ ॥

दर्शयन्नात्मनो दैन्यं भूरिकेलिविचक्षणः ।
कलाकलापकुशलः कोविदः कविताकरः ॥ १५ ॥

विजह्रे व्रजवामाभिः श्यामसुन्दरविग्रहः ।
अपारवीर्यः संस्तभ्य स्वात्मना वीर्यमात्मनः ॥ १६ ॥

तस्य चैवं विहरतश्चित्रकूटमहागिरौ ।
अभवत्सुभगः कालः प्रकटाशेषसद्गुणः ॥ १७ ॥

मधुमाधवशोभाढ्यो मधुरः केलिपुष्टिकृत् ।
शरत्सहजसंफुल्लपद्मषण्डमनोहरः ॥ १८ ॥

हेमन्तः शिशिरश्चैव विस्तीर्णरजनीसुखः ।
वेश्माभ्यन्तरवेश्मान्तर्विलासरुचिवर्द्धनः ॥ १९ ॥

ग्रीष्मः शीतलमुच्छायकदलीवनसेवनः ।
जलयन्त्रोत्थलहरीसंगिव्यजनमारुतैः ॥ २० ॥

निरन्तरं संशमितसम्भोगजपरिश्रमः ।
सखीकरचलच्चारुचामरान्दोलशीलितः ॥ २१ ॥

अजस्रचन्द्रिकोद्गीर्णसुधावृष्टिहृतक्लमः ।
उशीरमण्डपावासनीतमध्याह्नजातपः ॥ २२ ॥

वापिकान्तरसंक्लृप्तदोलातल्पमनोहरः ।
वल्लरीजालविवरमन्दागतमरुत्प्रियः ॥ २३ ॥

वर्षाश्च घर्घराघोषिघनसंघट्टमञ्जुलाः ।
मादयन्मयूरसंघुष्टकेकाषड्जस्वराञ्चिताः ॥ २४ ॥

चातकाधीतमधुरविंकेश्वरकलस्वराः ।
निरन्तरघनच्छायापनीततपनातपाः ॥ २५ ॥

पतन्मनोज्ञसलिलविन्दुपुष्पौघवर्षणाः ।
दशदिक्षु चमत्कारिचपलासौष्ठवाञ्चिताः ॥ २६ ॥

कदम्बकाननोद्भूतसुमनोगुलिकाचिताः ।
सुपक्वजम्बूविपिनाः पक्वाम्रकलसौरभाः ॥ २७ ॥

तमालकाननोद्भूतकुसुमालिविराजिताः ।
शिलीन्ध्रपुष्पनिपतन्मत्तरोलम्बनादिताः ॥ २८ ॥

उत्फुल्लकेतकवनीसौरभ्यहृतषट्पदाः ।
दर्दुरध्वानविजितविचित्रपिककूजिताः ॥ २९ ॥

दिवानिशसमुद्भूतध्वान्तापिहितवासराः ।
सरित्समुद्रसरसीकुल्यातुल्याभिमानकाः ॥ ३० ॥

मालिनाम्बुवहच्छन्नसूर्याचन्द्रमरीचयः ।
अपिक्षुद्रनदीपूरेमहाजवविवर्द्धनाः ॥ ३१ ॥

एवं रामं षड्ऋतवः सेवितुं सुसमुत्सुकाः ।
स्वं स्वं स्थानं समालम्ब्य वसन्ति स्म गिराविह ॥ ३२ ॥

देशः स एवाविरभूदादिव्रजसमाह्वयः ।
वनकुञ्जमनोहारी चित्रकूटमहीधरे ॥ ३३ ॥

तत्र प्रकाशयामास रामेन्दुः केलिवैभवम् ।
दर्शयन् परमैश्वर्यं सर्वासामपि योषिताम् ॥ ३४ ॥

जानक्याश्च विशेषेण त्रैलोक्यस्य च पश्यतः ।
ता एव रात्रयस्तत्र प्रादुरासुर्मनोहराः ॥ ३५ ॥

ता एव नृत्यगीतादिकलाश्चातिसुशोभनाः ।
ता एव सम्पदः सर्वाः परमाश्चर्यवर्द्धकाः ॥ ३६ ॥

इत्थं सज्जितसर्वकेलिविभवो रामो रमाकोटिभिः
संयुक्तो रमया तथा परमया संसेव्यमानो भृशम् ।
प्रेमानन्दवपुष्मतीं च सहजामभ्याददानः करे
केलीकौतुकभावहन्नरमत श्रीचित्रकूटे गिरौ ॥ ३७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे चित्रकूटगिरिविहारो नाम शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

*

एकाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

सहजाजानकीदेवीयूथद्वयविनोदनः ।
रममाणाश्चित्रकूटे चिरमास्त रघूद्वहः ॥ १ ॥

तदा दशाननश्चक्रे त्रैलोक्यकदनं महत् ।
तपसा तापिताशेषो रुद्रदत्तवरोर्जितः ॥ २ ॥

पुलस्त्यस्य मुनेः पुत्रो विश्रवा इति विश्रुतः ।
तस्य वीर्यात्समुद्भूताः कुबेरो रावणस्तथा ॥ ३ ॥

कुम्भकर्णश्च बलवान् जातमात्रौ तु तौ जगत् ।
भीषयाञ्चक्रतुः क्रूरौ ससुरासुरराक्षसम् ॥ ४ ॥

अधिलङ्कं कुबेरस्तु स्थानं दत्तं विरञ्चिना ।
प्राप्तवान् प्रथमं यत्र रक्षसामयनं महत् ॥ ५ ॥

रावणश्च तपश्चक्रे लिप्सुस्त्रैलोक्यसम्पदम् ।
रेवातीरमधिष्ठाय रुद्राराधनतत्परः ॥ ६ ॥

वायुभक्षो निराहारः शोषयन्स्वां तनुं हठात् ।
तथैव कुम्भकर्णोऽपि भूष्णुरप्रतिमो भवे ॥ ७ ॥

तपोरासुस्तपःस्थानान्यनेकानि महीतले ।
रेवातटं पुण्यतमं श्रीमदुज्जयिनीपुरम् ॥ ८ ॥

महाकालेश्वरं तत्र तोषयामास राक्षसः ।
मथुरायां च भूतेशमारराध महातपाः ॥ ९ ॥

काश्यां विश्वेश्वरं चैव गङ्गासागरसंगमे ।
हाटकेश्वरनामानं लिङ्गरूपिणमीश्वरम् ॥ १० ॥

कैलासे पार्वतीनाथं स्वप्रकाशं महेश्वरम् ।
आरराध महाघोरः परेण तपसा खलः ॥ ११ ॥

सानुजस्तप आतिष्ठन् ववृधे रावणो भुवि ।
तेजसाप्रतिमोभुष्णुः पुनरप्याचरत्तपः ॥ १२ ॥

प्रातर्मध्याह्नसायाह्नेष्वकरोच्छिवपूजनम् ।
कोटिलिङ्गार्चनपरः सुमहाव्रततत्परः ॥ १३ ॥

लवणोदद्वीपमध्ये सर्वमानुषदुर्गमे ।
तीव्रेण तपसा युक्त आरराध महेश्वरम् ॥ १४ ॥

गन्धैःपुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैः कमलमालया ।
नित्यमाराधनं तस्य नार्हयत दिने दिने ॥ १५ ॥

शैलेषु वनदुर्गेषु सरितां पुलिनेषु च ।
विचचार तपोयुक्तः खेचरो वीर्यसंवृतः ॥ १६ ॥

पुराभवकृतं विष्णोरपकारमनुस्मरन् ।
देवब्राह्मणधेनूनां सोऽभवद्द्रोहकारकः ॥ १७ ॥

वेदशास्त्रपुराणानि वेदाङ्गानि च सर्वशः ।
सोऽध्यैष्ट ब्रह्मचर्येण धनुर्वेदं तथाखिलम् ॥ १८ ॥

राक्षसाचार्यवर्येभ्यः शिक्षमाणोऽखिलाः कलाः ।
पारङ्गतोऽभूद्विद्यानां पार्वतीशप्रसादतः ॥ १९ ॥

शिवोऽपि भगवांस्तस्य सर्वान् कामानपूरयत् ।
अनन्याराधनश्रद्धासुप्रसन्नमनाः परम् ॥ २० ॥

वेदानां च तथाङ्गानां व्याख्याता सोऽभवत्स्वयम् ।
व्याचक्रे वेदशाखाश्च वाचस्पतिरिवापरः ॥ २१ ॥

तस्य घोषयतो वेदान् दशभिर्वदनैर्दृढम् ।
अभवत्सुमहाञ्छब्दः स्वरवर्णविजृंभितम् ॥ २२ ॥

प्रतिवर्णं प्रतिपदं क्रमं व्याकृतवान् स्वयम् ।
चतुर्णां च जटाश्चक्रे प्रातिशाख्यपुरःसराः ॥ २३ ॥

वेदाचार्यमुनीनां च मतानि ज्ञातवान् पृथक् ।
पाठभेदांस्तथा सर्वान् स्वरभेदांश्च कृतत्रशः ॥ २४ ॥

इत्थं स वेदशाखानां पारं प्राय सुदुर्गमम् ।
मनीषी पण्डितवरः सर्वशास्त्रेषु कोविदः ॥ २५ ॥

प्रसादात् पार्वतीशस्य ख्यातोऽभूद्भुवनत्रये ।
राजसं तामसं चैव धर्ममप्यास्थितः खलः ॥ २६ ॥

किंतु विष्णुं तदीयांश्च निरन्तरमसौ द्रुहन् ।
युक्त आसुरभावेन प्रजासन्तापकृद्बभौ ॥ २७ ॥

अजस्रं तप आस्थाय महाव्रतसुसंयतः ।
ब्रह्मचर्यकरस्तीव्रोरोषेण प्रज्वलन्निव ॥ २८ ॥

ऐहिकीं भूतिमान्विच्छन्नारराध महेश्वरम् ।
युञ्जानो राक्षसानीकं स्थानं च चक्रमेतराम् ॥ २९ ॥

हितास्तस्याभवन् केचिद्राक्षसप्रवरास्तदा ।
अत्युग्रकर्मणे तस्मै स्थानाय समजिज्ञपन् ॥ ३० ॥

राक्षसा ऊचु

अहो पौलस्त्य भुवने भवानप्रतिमो गुणैः ।
कर्मणा विद्यया कान्त्या शौर्येण यशसा तथा ॥ ३१ ॥

त्रैलोक्यभोगयोग्योऽसि प्रसादात् पार्वतीशितुः ।
अतस्तुभ्यं समुचितं वास्तव्यं मृगयामहे ॥ ३२ ॥

यत्रस्थः साधयेत्सर्वं भवानात्ममनीषितम् ।
तपसा तेजसा चैव त्वमिद्धो विक्रमेण च ॥ ३३ ॥

यथेच्छं कुरु वीर्येण राज्यं त्रैलोक्यगोचरम् ।
उद्वहस्व वरां भार्यामाहरस्व वरश्रियः ॥ ३४ ॥

त्रैलोक्यवररत्नानि संचिनुष्व स्वसद्मनि ।
एतत्ते ख्यातियोग्यं स्याद्यशः कर्म च निर्मलम् ॥ ३५ ॥

आकर्ण्य रक्षसां वाक्यं रावणस्तपसोर्जितः ।
उवाच प्रहसन्नुच्चैर्मुखरीकृतदिक्चयः ॥ ३६ ॥

अहोरे राक्षसश्रेष्ठाः किं नु स्थानं ममोचितम् ।
खिद्यामि यदभावेन सम्पत्कामोऽपि विक्रमी ॥ ३७ ॥

खिद्याम्यहं चातितरां बालिनो वानरेश्वरात् ।
महाबलान्महाघोरात्किष्किन्धानगरीशितुः ॥ ३८ ॥

भूयः खिद्याम्यहं वीरात्सहस्रभुजकाननात् ।
कृतवीर्यसुताद्भीमादर्जुनात् क्षत्रियोर्जितात् ॥ ३९ ॥

अन्ये तु मे तृणप्राया ये सुरासुरकिंनराः ।
नराश्च वानराश्चैव न तान् विगणयाम्यहम् ॥ ४० ॥

ताभ्यामाशङ्कमानोऽस्मि भविष्णुर्भुवनेष्वहम् ।
ययोर्वीर्यं बलं चैव हृदि शल्यायते मम ॥ ४१ ॥

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य राक्षसास्तमसोर्जिताः ।
ऊचिरे वचनं सर्वे ये तत्प्रियचिकीर्षवः ॥ ४२ ॥

स्थानं तु ते पुरी लङ्का योग्या वसतये प्रभो ।
रक्षसामयनं दीव्यत्स्वर्णप्राकारभासुरा ॥ ४३ ॥

बृहद्गोपुरसाहस्रसंलग्ना रणदुर्जया ।
परिखावलयप्राप्तलवणोदान्तरस्थिता ॥ ४४ ॥

सौवर्णविपुलाट्टालबलभीजालमण्डिता ।
रत्नमाणिक्यखचितग्रहभित्तिमनोरमा ॥ ४५ ॥

धनौघपूर्णविपणिर्बृहदापणशोभिता ।
सिन्धोरन्तर्ज्वलद्रूपावाडवाग्नेः शिखेव या ॥ ४६ ॥

वासवस्येव नगरी सलिले प्रतिबिम्बिता ।
सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यगृहाराममहीरुहा ॥ ४७ ॥
गुञ्जद्भ्रमरसंदोहघुष्टमन्दारकानना ।
आपणैर्मणिमाणिक्यमुक्ताविद्रुमराशिभिः ॥ ४८ ॥
सर्वतः सर्वदा पूर्णैर्भासमाना दिवानिशम् ।
सूर्यांशुस्पृष्टसंदीप्यत्तपनीयनिकेतना ॥ ४९ ॥
प्रोत्तुङ्गकनकस्तम्भमहाशालाशतान्विता ।
या पूर्वं रचिता साक्षात् स्वबुद्ध्या विश्वकर्मणा ॥ ५० ॥
रक्षसां विनिवासार्थं जाम्बूनदमयी पुरी ।
तां गृहाण बलात् स्वामिंस्तत्र राज्यं प्रशाधि भोः ॥ ५१ ॥

रावण उवाच

तत्र ज्येष्ठो मम भ्राता कुबेर इति विश्रुतः ।
स आस्ते वेधसा दत्तं स्थानं दिव्यमुपाश्रितः ॥ ५२ ॥

राक्षसा ऊचु

को भ्राता कः पिता स्यात्क इह खलु सुहृद्बन्धुमित्रादिरस्य
स्वार्थो ज्यायान् जनस्य द्रुतमभिकलयेद्भूरि यत्नं तदर्थम् ।
सर्वः स्वार्थं समीह्य त्रिजगति भवति स्वस्वकार्ये प्रवृत्तो
विज्ञायेत्थं दशास्य त्वमिह समुचितं दर्शयस्वात्मवीर्यम् ॥ ५३ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे रावणमन्त्रो नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०१॥

*

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ राक्षसवर्याणां मन्त्रमाज्ञाय रावणः ।
अभिषेणयितुं ज्येष्ठं भ्रातरं चकमेतमाम् ॥ १ ॥
पूर्वं तु प्रेषयामास दूतीकृत्य दशाननः ।
रक्षः क्रूरमुखं नाम यथार्थगुणनामकम् ॥ २ ॥
ज्येष्ठं तु भ्रातरं त्वं मे गच्छ क्रूरमुख द्रुतम् ।
तत्र गत्वा च तं ब्रूहि लङ्केशं वचनान्मम ॥ ३ ॥

अहं बलान्निवत्स्यामि पुरींलङ्काभिधामनु ।
भ्रातस्त्वमन्यतो गच्छ यदि मत्प्रीतिमिच्छसि ॥ ४ ॥

सौवर्णी सा पुरी सर्वा रमणीयतमा मम ।
राजधानी भवे भूष्णुर्भविष्णोस्त्रिजगत्पतेः ॥ ५ ॥

भवान् हि वयसा ज्येष्ठस्तपसा विद्यया त्वहम् ।
विक्रमेण च यक्षेश ततः स्थानं प्रदेहि मे ॥ ६ ॥

श्रुत्वा दूतमुखोदीर्णं कुबेरः परुषंवचः ।
अभवत् क्रोधताम्राक्षः प्रज्वलन्निव तेजसा ॥ ७ ॥

विचार्य स्वगतं भूयस्ततोऽवोचत कोपतः ।
अये राक्षस मूढात्मंस्तमनुब्रूहि मद्वचः ॥ ८ ॥

तपः परिणतं सम्यक् तव यो मां जिगीषसि ।
ज्येष्ठं पितृसमं साक्षाद्भ्रातरं श्रीमदान्धदृक् ॥ ९ ॥

विद्या च ते परिणतिं सम्यगेवमुपागता ।
अनिचिक्रमिषोर्ज्येष्ठं यस्यान्धा विंशतिर्दृशः ॥ १० ॥

मा कुरुष्व विलम्बं भोस्त्वं हि कार्ये चिकीर्षिते ।
मयापि सम्मुखे ग्राह्यो दूरादेव दशानन ॥ ११ ॥

इत्युक्त्वा विससर्जैष दूतं क्रूरमुखं बली ।
स गत्वा रावणं प्राह कुपितस्ते धनाधिपः ॥ १२ ॥

युवयोः खलु संग्रामो भ्रात्रोरेव भविष्यति ।
उचितानुचिते विद्वान् यथेच्छं कुर्वतः परम् ॥ १३ ॥

अथासज्जत स क्रूरो मायिनां रक्षसां चमूः ।
अभिषेणयितुं सज्जो लङ्केशं राज्यलिप्सया ॥ १४ ॥

रक्षसां वाहिनीनाथा ये लङ्कायामपि स्थिताः ।
तेऽभवन् रावणबले दैवस्यैव यदृच्छया ॥ १५ ॥

कुबेरः कोटिशो यक्षान् गन्धर्वान् किन्नरांस्तथा ।
नानाजातीन् भूतयोनीन् पर्यसज्जत तत्क्षणात् ॥ १६ ॥

योद्धुं रक्षोबलं क्रुद्धा यक्षा आजग्मुरञ्जसा ।
रञ्जयन्तो मौलिरत्नैः कुबेरस्याङ्घ्रिपङ्कजम् ॥ १७ ॥

उभे सेने सुसम्पन्ने परस्परजयेहया ।
सिन्धोर्द्वीपे रावणस्य लङ्कायां धनदस्य च ॥ १८ ॥

स्वानुरूपं प्रविज्ञाय तामसत्वाद्दशाननम् ।
लङ्कास्थान्यपि रक्षांसि नागृह्णन् धनदेरितम् ॥ १९ ॥

यक्षराक्षसवाहिन्यः सज्जाः संग्रामकर्मणे ।
जगदुद्घोषयामासुः ससुरासुरमानवम् ॥ २० ॥

यक्षरक्षोबलैः पूर्णैः समंताद्भूमिरास्तृता ।
अभज्यतेव शेषस्य त्रोटयन्तीव मस्तकम् ॥ २१ ॥

पुलस्त्यस्तदनुश्रुत्य वृत्तं वै यक्षरक्षसाम् ।
अचिन्तयद्धृदा योगी स्वानां प्रियचिकीर्षुकः ॥ २२ ॥

उभौ मे तनयौ शूरौ कुबेरश्चापि रावणः ।
यथा स्याद्भद्रमनयोस्तथा भवितुमर्हति ॥ २३ ॥

अनयोर्युद्धयतोः स्वस्ववाहिनीबलदृप्तयोः ।
मिथः संघर्षजो वह्निर्नाशयेच्च कुले उभे ॥ २४ ॥

अतोऽनयोः प्रबलयोः कलहः पर्युपस्थितः ।
यथा शाम्येत्तथा कार्यमुभयोः श्रेयसे मया ॥ २५ ॥

इति निश्चित्य मनसा पुलस्त्यो भगवानृषिः ।
कुबेरपार्श्वमगमज्जिहीर्षुः कलहं तयोः ॥ २६ ॥

तमागतमृषिश्रेष्ठं श्रद्धया नरवाहनः ।
प्रत्यगृह्णात् स्वागताद्यैः पाद्यार्घादिसपर्यया ॥ २७ ॥

ऋषिः सम्पूजितस्तेन स्वस्थः स्वासनमस्थितः ।
विनयावनतांसेन धनदेनेदमीरितः ॥ २८ ॥

अद्यासम्यनुगृहीतोऽहं भगवन् करुणावता ।
भवता तीर्थपादेन स्वागतेन मदालयम् ॥ २९ ॥

प्राणिनां श्रेयसे शश्वदायान्ति हि भवादृशः ।
तेनैव पूर्वपापानां नाशोऽप्यनुमितः खलु ॥ ३० ॥

भवतां पादतीर्थेन पूयन्ते भवनानि नः ।
गृहाश्रमे प्रसक्तानां दग्धानां कामकोटिभिः ॥ ३१ ॥

श्रेयसामयनं साक्षाद्दर्शनं नोभवादृशाम् ।
अथो आज्ञापय ब्रह्मन् यन्मह्यमुचितं तथा ॥ ३२ ॥

कुबेरेणोदितं श्रुत्वा प्रसन्नोऽभूत् स आत्मवान् ।
तमुवाचाथ कृपया सद्वाग्व्यापारभाजनम् ॥ ३३ ॥

सर्वेषां श्रेयसां वत्स त्वं योग्योऽसि विशेषतः ।
विनीते धार्मिके सत्यं स्थास्नवोऽखिलभूतयः ॥ ३४ ॥

देशं कालं वयोऽवस्था सहायं स्वजनादिकम् ।
अनपेक्ष्यैव जायन्ते स्वधर्मेणैव भूतयः ॥ ३५ ॥

सर्वदेशे सर्वकाले सर्वावस्थासु सर्वथा ।
जायन्ते भूतयः सर्वास्त्वादृशे धर्मतत्परे ॥ ३६ ॥

अतस्ते कलहस्तेन रक्षसा घोरचेतसा ।
निवर्ततां जवात्पुत्र सुखमेधस्व संततम् ॥ ३७ ॥

कुबेर उवाच

एकं स्थानमिदं ब्रह्मन्निवसामि चिरादिह ।
तज्जिघृक्षुरसौ दुष्टः कलहं कुरुते मया ॥ ३८ ॥

अहं स्थानादितो भ्रष्टः क्व नु गच्छेयमन्यतः ।
इत्यनेन सुदुष्टेन चिकीर्षामि मृधं मिथः ॥ ३९ ॥

गजाश्वरत्नवित्तादि यद्देयमुचितं भवेत् ।
तद्दीयतेऽपि कृच्छ्रेण न तु स्थानं कदा च न ॥ ४० ॥

इत्थं स्थानभ्रंशमाशङ्कमानः सज्जो योद्धुं रक्षसा यक्षराजः ।
आख्यात्सर्वं कलहस्यापि हेतुं मौनं पश्चादास बद्धाञ्जलिः सः ॥ ४१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे रावणविजय-यात्रायां द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

*

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

कुबेरोदीरितं वाक्यं सत्यं दैन्यपुरःसरम् ।
श्रुत्वा पुलस्त्यो भगवांस्तमूचे हर्षयन् हृदि ॥ १ ॥

भवानापद्यतां वत्स न स्थानभ्रंशमात्मनः ।
न जातु कृतबुद्धीनां भवेद् दुःखं परैः कृतम् ॥ २ ॥

अस्त्युत्तरस्यां नगरी सर्वभोगसुखप्रदा ।
अलका नाम यक्षेश विश्रुता भुवनत्रये ॥ ३ ॥

नवापि निधयो यस्यां वसन्ति सुनिराकुलाः ।
परमानन्दमग्नाश्च यक्षगन्धर्वकिन्नराः ॥ ४ ॥

मन्दाकिनीतरङ्गाक्तमन्दमारुतसेविता ।
शीतला सुभगा पूता सर्वर्त्तुसुखभोगदा ॥ ५ ॥

रत्नस्तम्भैर्महोच्छ्रायैः प्रसादैरुपशोभिता ।
रत्नाट्टावलिशोभाढ्या तुङ्गध्वजविराजिता ॥ ६ ॥

संचरद्यक्षनारीणां पादाम्भोरुहनूपुरैः ।
कूजद्भिर्मेखलाद्यैश्च भूषणैरुपघोषिता ॥ ७ ॥

गृहस्फाटिकभित्तीनां भासितानां रवेस्त्विषा ।
नित्यमुद्रिक्तया दीप्त्या रोचिष्णुः सर्वतोदिशम् ॥ ८ ॥

सूपक्लृप्तैर्मणिमयैश्चत्वरैरुपशोभिता ।
सुवर्णरत्नप्राकारबृहद्गोपुरमण्डिता ॥ ९ ॥

सुहीरकोपरचितैः कपाटैः स्वर्णकीलकैः ।
देदीप्यमानभवना सर्ववर्णविचित्रिता ॥ १० ॥

तोरणैर्मणिमाणिक्यमुक्तागणविचित्रितैः ।
विन्यस्य रुचिरालेख्यैः सर्वतो भासुरालया ॥ ११ ॥

गृहनिर्यूहविश्रान्तैर्विचित्रस्वरनादिभिः ।
विचित्रवर्णैर्विहगैः समन्तात्परिशोभिता ॥ १२ ॥

विचित्ररत्नजटितैर्मुकुराकारशालिभिः ।
अजिरैर्गृहमुख्यानां वहिरन्तर्विराजिता ॥ १३ ॥

विचित्रवलभीवेश्ममणिवातायनाचिता ।
बृहदापणविन्यस्तसर्वसम्पत्सुशोभिता ॥ १४ ॥

वापीभिर्मणिबद्धाभिर्बृहन्निःश्रेणिराजिभिः ।
उत्फुल्लपङ्कजामोदवासिताशेषवेश्मभिः ॥ १५ ॥

राजहंसकुलक्वाणशालिनीभिर्विराजिता ।
रत्नवद्धबृहत्पद्या संचरद्वरयोषिताम् ॥ १६ ॥

गतिक्रमैः सुरुचिरैर्विक्रमत्पञ्चसायका ।
प्रतिवीथि प्रतिग्रहं प्रतिद्वारं प्रतिस्थलम् ॥ १७ ॥

उत्फुल्लवरमन्दारपुष्पस्तवकशोभिता ।
कल्पद्रुमवृतारामगुञ्जन्मत्तमधुव्रता ॥ १८ ॥

सरोभिः सरसीभिश्च रत्ननिःश्रेणिकान्तिभिः ।
पीयूषस्वच्छसलिललुलल्लहरिवीचिभिः ॥ १९ ॥

सर्वदेशेषुशोभाढ्या सोत्साहैर्वरकिन्नरैः ।
किन्नरीभिः सर्वकालं भूषणोज्ज्वलकान्तिभिः ॥ २० ॥

आगच्छतां गच्छतां च गन्धर्वाप्सरसां गणैः ।
विमानैश्च महादीप्तिभासमानैर्दिवानिशम् ॥ २१ ॥

शोभिता शुभसम्पन्ना नानागीतवरध्वनिः ।
नित्योत्सवप्रवृत्तानां गन्धर्ववरयोषिताम् ॥ २२ ॥

करतालैः पादतालैर्मुखरीकृतमन्दिरा ।
वरसौरभ्यसुभगा लुभ्यन्मधुकराञ्चिता ॥ २३ ॥

पुंस्कोकिलकुलोद्गीर्ण विलसत्पञ्चमस्वरा ।
वीणामृदङ्गमुरजगम्भीरध्वनिनादिता ॥ २४ ॥

सद्रत्नमञ्जरीपुञ्जशोभितैर्विततोन्नतैः ।
स्वर्णशालमहासम्भैर्दीप्यमाना दिवानिशम् ॥ २५ ॥

प्रेयोबद्धादरैर्भोगरसिकैर्मदनालसैः ।
किन्नरीणां कुलैर्जुष्टा शृङ्गाररतिभाजनम् ॥ २६ ॥

सौधेषु चन्द्रशुभ्रेषु फेनपुञ्जविराजिषु ।
तल्पेषुकिन्नरस्त्रीणां प्रवृत्तसुरतोत्सवा ॥ २७ ॥

सर्वकालप्रमुदितनरनारीगणावृता ।
प्रसूनसायकक्रीडासंजातरतिवर्द्धिनी ॥ २८ ॥

हावभावाञ्चितैर्जातचुम्बनालिङ्गनोत्सवैः ।
सदारैर्वरगन्धर्वैर्नीतसोज्जागरक्षपा ॥ २९ ॥

श्रीमत्कैलासशैलस्य नित्यं सन्निहितेव या ।
पार्वतीपतिभालस्थचन्द्रज्योत्स्नाप्रकाशिता ॥ ३० ॥

मिलन्मन्दाकिनीतुङ्गतरङ्गावलिसंगिना ।
प्राकारेणावृता नित्यमगम्यपरिखावलिः ॥ ३१ ॥

आनन्दमग्नभूतेशगणाक्रीडैक भाजनम् ।
उमामहेश्वरक्रीडारससौभाग्यशोभिता ॥ ३२ ॥

अजस्रं नन्दिभृङ्ग्यादिचित्तसन्तोषदायिनी ।
भवानोस्कन्दहेरम्बमहोत्सवविधायिनी ॥ ३३ ॥

शिवसेवासमायातशक्रादिसुरसेविता ।
फुल्लचैत्ररथोद्यानसंगित्रिविधमारुतैः ॥ ३४ ॥

गन्धर्ववरनारीणां हृतसम्भोगजश्रमा ।
कैलासशैलसौन्दर्यदर्शनासक्त किंनरा ॥ ३५ ॥

प्रतिवेश्म वृषारुढशिवभिक्षाटनाञ्चिता ।
निरन्तरमहादेवदर्शनानन्दवर्धिनी ॥ ३६ ॥

सर्वर्तुसुखशोभाढ्या नित्यं माधवसेविता ।
कल्पद्रुमवनानन्दिकूजद्भ्रमरकोकिला ॥ ३७ ॥

पार्वतीपतितोषार्थं गायद्भिर्मूर्च्छितस्वरैः ।
वल्लकीमूर्छनासक्तैगन्धर्वैः सुखवर्द्धिनी ॥ ३८ ॥

एतादृशीं त्वमलकानगरी मजस्रमाश्रित्य सर्वसुखभोगरसैर्नयेथाः ।
कालं कुबेर मम वाक्यमुररीकुरुष्व चित्तं निवर्तय दशाननयुद्धखेदात् ॥ ३९ ॥

तत्रानिशं निवसतस्तव यक्षराज मैत्री भविष्यति चिरं गिरिजासखेन ।
ईशेन सर्वजगतां करुणार्णवेन साक्षाद्भवेन किमतः परमोहितं ते ॥ ४० ॥

गन्धर्वयक्षमुहकिन्नरराजधानीमेकान्तभूतिमलकानगरीं प्रशासत् ।
त्वं राजराज इति सर्वभवे प्रसिद्धिमेकां गमिष्यसिसमस्तनिधीश्वरः सन् ॥ ४१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डेऽलकावर्णनं नाम त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

*

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

पुलस्त्यस्य मुनेर्वाक्यमाकर्ण्य गुणवत्तरम् ।
तथेति प्रतिजग्राह कुबेरो बीतसंगरः ॥ १ ॥

इत्थं निवर्त्य विपुलं कलहं यक्षरक्षसोः ।
पुलस्त्यो भगवान् यातस्तद्विसृष्टः स्वमाश्रमम् ॥ २ ॥

गते ब्रह्मर्षिप्रवरे कुबेरः कृतसम्मतिः ।
यक्षाणां राजधानीं तामलकां नगरीं ययौ ॥ ३ ॥

सानुगः सपरीवारः सदारः ससुहृद्बलः ।
अलकां प्रययौ धीमान् कुबेरस्त्यक्तसंगरः ॥ ४ ॥

तमगृह्णन्त गन्धर्वाः स्वभिषेकपुरःसरम् ।
दत्त्वालकापुरीराज्यं बभूवुर्वशवर्तिनः ॥ ५ ॥

पुष्पकं नाम तं दिव्यं विमानाग्र्यमनुत्तमम् ।
उपसेदे राजराजं यदृच्छागतिसाधनम् ॥ ६ ॥

शङ्खपद्मादयः सर्वेनिधयो दिव्यमूर्तयः ।
उपतस्थुस्तमाज्ञप्ता भूतनाथेन शम्भुना ॥ ७ ॥

स्वयं स भगवान् शम्भुस्तस्मै विहितभक्तये ।
कृपयामास चण्डीशश्चण्डिका च निरन्तरम् ॥ ८ ॥

कैलासस्थानमाश्रित्य रुद्रावासं सुदुर्गमम् ।
अत्यर्थं मुमुदे श्रीदः सख्यं चापि कपालिना ॥ ९ ॥

स्थानभ्रंशमवाप्यापि नाखिद्यत धनेश्वरः ।
ततोऽप्यनुत्तमं प्राप्तः स्थानं तदलकाह्वयम् ॥ १० ॥

रावणस्तदुपश्रुत्य निर्याणं किन्नरेशितुः ।
तदेव बलमादाय लङ्कामाजग्मिवान् बली ॥ ११ ॥

सह रक्षोगणैः सर्वैरनुजाभ्यां च संयुतः ।
भगिन्या शूर्पणखया परिवारैस्तथाखिलैः ॥ १२ ॥

आजगामबली घोरो राक्षसेन्द्रो दशाननः ।
पुरस्कृतः स रक्षोभिस्तत्र राज्याभिषिक्तये ॥ १३ ॥

आययौ भगवांस्तत्र पुलसत्यः सर्वयोगिराट् ।
प्रजाहितैषिणस्तस्य कर्तुं राज्याभिषेचनम् ॥ १४ ॥

स उवाह वरां भार्यां नाम्ना मन्दोदरीं शुभाम् ।
पातिव्रत्यपरां दिव्यां नित्यं कन्यापदे स्थिताम् ॥ १५ ॥

स तया सहितो वीरः सर्वराक्षसपुङ्गवः ।
पुलस्त्येनाभिषिषिचे लङ्काराज्ये महोर्जितः ॥ १६ ॥

महासुवर्णप्रासादे मणिमाणिक्य भासुरे ।
राज्यासनमनुप्राप्य शुशुभे राक्षसेश्वरः ॥ १७ ॥

स छत्रभृद्रत्नकिरीटशोभितः शुभाङ्गदोद्द्योतितबाहुविंशति ।
सुरत्नमाली वरहेमवेष्टनो विभूषणाढ्यः शुशुभे दशाननः ॥ १८ ॥

संवीज्यमानः शशिशुभ्रचामरैः सुवर्णसिंहासनमध्यमास्थितः ।
मन्दोदरीशोभितवामपार्श्वकः पुलस्त्यनेत्रोत्सवकृद्बभूव सः ॥ १९ ॥

स भालपट्टेषु सुमौक्तिकाक्षतैर्विराजमानस्तिलकैश्चकौङ्कुमैः ।
सलाजदध्यक्षतदूर्विकादलैः सम्पूजितो राक्षसकन्यकागणैः ॥ २० ॥

राज्याभिषेके स्नपितो द्विजोत्तमैः पुलस्त्यमुख्यैर्वरमन्त्रपाठकैः ।
समस्ततीर्थाम्बुपवित्रविग्रहः स शुभ्रदिव्याम्बरधृग्व्यशोभत ॥ २१ ॥

स मन्त्रपुष्पाञ्जलिभिर्द्विजोत्तमैराशास्यमानः श्रितकाञ्चनासनः ।
प्रमोदपुष्टावयवः प्रसादभृत्त्रैलोक्यराज्यो चितवेषभृद्बभौ ॥ २२ ॥

अनन्यवीर्योऽप्रतिमः पराक्रमैरशेषविद्यापरपारदर्शनः ।
भूतेशभक्तिप्रचुरात्मवैभवो बभौ भृशं सद्गुण गौरवान्वितः ॥ २३ ॥

उच्छूनदोर्दण्डधरो धनुर्धरः समस्तदिव्यायुधलब्धशिक्षणः ।
विशालवक्षःस्थलरत्नहारभृल्लङ्काधिराजः शुशुभेतमां त्विषा ॥ २४ ॥

किरीटभृत् कुण्डलवृन्ददीप्तिभृद्विशालविशारुणलोचनप्रभः ।
सुवर्णकाञ्च्यङ्गदरत्नशोभितः सुप्रांशुमूर्तिः कटकौघदीपितः ॥ २५ ॥

प्रतापभृत्प्राप्तवराभिषेचन उद्रिक्तचित्तोऽधिकवीर्यबृंहित ।
सुदृप्त आत्माप्रतिमत्वचिन्तनात् त्रैलोक्यमाचिक्रमिषुर्बलाधिकः ॥ २६ ॥

पुलस्त्यवाक्येन भृशं प्रमोदितः समुद्रवीचीपरिखासुदुर्गमाम् ।
सुबेलशैलोन्नतिभूरि भीषणं[1] प्राकारगुप्तां नगरी शशास सः ॥ २७ ॥

तस्याज्ञया ते त्रिजगज्जयैषिणो विवृद्धवीर्याः समरेषु दुर्मदाः ।
लङ्कापुरीवास्तुजुषो निशाचरा अतीव चित्ते मुमुदुस्तदाखिलाः ॥ २८ ॥

तमन्ववर्तत्किल कुम्भकर्णो ज्येष्ठं प्रियं भ्रातरमुग्रदीप्तिम् ।
आज्ञावशाद्गोद्विजदेववेद धर्मध्रुगत्यर्थभयप्रदो नृणाम् ॥ २९ ॥

यो मासषट्कं वरमात्मनिद्रामयाचताराधितदेवतायाः ।
जागर्तिषण्मासमशेषलोकभयाय वीरः किल घोरकर्मा ॥ ३० ॥

---

१. "वज्रोपलच्छन्नसुघट्टितोन्नत" इत्यधिकः पाठः—मथु० बड़ो० ।

विभीषणश्चानुज एव तस्य परं स्वभावाद्धरिपादरक्षः ।
भजंस्तदीयान्निभृतं मनस्वी सदुत्तमश्लोककथाप्रसक्तः ॥ ३१ ॥
विष्णवङ्घ्रिदोव्यत्तुलसीसनाथशिराः स हि ज्येष्ठकुकर्मदूनः ।
तथापि कालं कलितप्रतीक्षो निनाय तत्संगनिरस्तखेदः ॥ ३२ ॥
तेषामनूजा प्रबभूव शूर्पणखाह्वयान्यन्तसुघोररूपा ।
अनुव्रताभ्रातरमुग्रकर्मा त्रैलोक्यभीतेर्जननी स्वभावात् ॥ ३३ ॥
ये राक्षसा विश्ववसस्तनूजाः खरस्तथैव त्रिशिराश्च दूषणः ।
तथैव विद्युद्रशनः सुघोरस्तमन्ववर्तन्त तमोमयास्ते ॥ ३४ ॥
इत्थं विवृद्धमहिमा विपुलप्रतापो रक्षोधिपो दशमुखोऽसुरराजधानीम् ।
लङ्कामवाप्य भुवनाधिपतिर्बुभूषुस्तेपे तपः परमदुष्करमेष भूयः ॥ ३५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्ड रावणराज्याभिषेको नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

*

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

सोऽभ्येत्य कैलासगिरिमारराध सदाशिवम् ।
अतितीव्रेण तपसा भक्त्या च व्रततत्परः ॥ १ ॥
अर्चित्वा निबिडैर्गन्धैः स्वर्गङ्गाजलशीतलैः ।
कुसुमैर्नन्दनोद्भूतैस्तथान्यैरूपचारकैः ॥ २ ॥
मन्त्रपुष्पाञ्जलिंदास्यन्निदमाह सुभक्तिमान् ।
नृत्यन् पुलकपूर्णाङ्गो गायन्नुच्चैश्च सामभिः ॥ ३ ॥
जय देव महावरदाधिपते हिमदीधितभाललसत्तिलक ।
नरकिन्नरनागसुरासुरहृत्सुखदानमते गिरिजाधिपते ॥ ४ ॥
जय सर्वजगत्करुणाजलधेऽखिलसौख्यनिधेनतविष्णुविधे ।
भवभौतिकभूतिनिदान भवप्रभुतागुणसीम समस्तगते ॥ ५ ॥
यदिदं किलदृश्यमशेषमपि त्वयि कारणरूपतया स्थितिमत् ।
तदुदेति पुनस्तदवस्थमिव प्रमितं प्रतिमीयत ईशभिदा ॥ ६ ॥
पुनरेव महाप्रलये गिरिश त्वयि ताण्डवचण्डिमरूपभृति ।
प्रविलीयत एतदशेषमपि त्रिविधं जगदप्रकटत्वमितम् ॥ ७ ॥

इति बीजमिव प्रकटस्य तरोस्त्वमसीश भवस्यनिदानमतः।
करुणार्णव देव भवन्तमहं प्रणतोऽस्मि गतोऽस्मि परं शरणम् ॥ ८ ॥

त्वयि ये शिव बद्धधियः सततं दृढभक्तिवशादनुरक्तिमिताः ।
न च ते क च यान्ति पराभवनं सुखसारसमृद्धि विवृद्धिमिताः ॥ ९ ॥

वसुधाधिपतिर्वसुधामपतिर्वसुधामगतिर्विबुधाधिपतिः ।
विधिसद्मपतिर्वरमुक्तिपतिर्भवति त्वयि भक्तिविशिष्टमतिः ॥ १० ॥

किमु भोगसुखं किमु योगसुखं किमु मोक्षनिरञ्जनभावशुभम् ।
किमु धातृपदं किमु शक्रपुरं त्वयि भूतपतेऽद्भुतभक्तिमतः ॥ ११ ॥

सुरकिन्नरमौलिकिरीटमणिद्युतिरञ्जितपादसरोजनखाः ।
त्वयि भक्तिकलामधिगम्य हर प्रभवन्ति जगत्पति फल्गुनराः ॥ १२ ॥

हिमशैलसितं रजताद्रिमितं वरभूतिभृतं गिरिजालसितम् ।
निगमप्रमितं निजभक्तिजितं प्रभजामि भवन्तमहं त्वरितम् ॥ १३ ॥

रजनीपतिचारुकलालसिते परभक्तिभवत्करुणाहसिते ।
घनसारमनोरमभस्मसिते निगमावसिते त्वयि यातु मतिः ॥ १४ ॥

इतियेऽर्चनकर्मसमाप्ति विधौ कुसुमाञ्जलि बन्धसनाथकराः ।
कलयन्ति गिरीश तव स्तवनं न हि तैः किमपीह दुरायतमम् ॥ १५ ॥

इति स्तुत्वा दशमुखो मन्त्रपुष्पाञ्जलिं न्यधात् ।
गिरीशचरणद्वन्द्वे करुणामृतवर्षिणी ॥ १६ ॥

एकदा भूतनाथस्य भक्तिभावमहोर्जितः ।
प्रभुर्बुभूवुर्लोकानामकरोत्कर्म भीषणम् ॥ १७ ॥

विधाय पूजामीशस्य पादयोः पद्ममालया ।
निकृत्य निजशीर्षाणि निदधौ धीरमानसः ॥ १८ ॥

एकैकमुत्कृत्य शिरो महासिना विनिर्गलन्नूतनतप्तशोणितैः ।
अभ्युक्षितं पद्ममिवारुणप्रभावभासितं भूतपतेः पदे न्यधात् ॥ १९ ॥

अधावदङ्घ्री करुणाम्बुधेर्विभोः कैलासशैलावतिधूलिधूसरे ।
निकृत्तमूर्द्धाविरलप्रवाहिताविनिर्गलद्रक्तसमूढपाथसा ॥ २० ॥

एवं स यावद्दशमं शिरः शिवं प्रपूजयामास शिरोभिरात्मनः ।
प्रतिप्रकर्सं प्रपठन् मनोरमान्मन्त्रानखण्डा विदधच्च संस्तुतीः ॥ २१ ॥

समाधिसम्मीलितलोचनो हरस्ततः समुन्मील्य दृशावुदैक्षत ।
एकावशिष्टं कुणपाधिपस्य तच्छिरः पराण्यस्य शिरांसि पादयोः ॥ २२ ॥

चिकर्तिषुर्घोरमतिस्तदप्यथो भूतानुकम्पाम्बुधिना कपालिना ।
निवारितोऽद्धा करयोः प्रगृह्य स स्वयं वरं ब्रूहि ममेति चोदितः ॥ २३ ॥

स तं ययाचेवरभक्तिभावतो वशंवदं भूतपतिं त्रिलोचनम् ।
सर्वत्रिलोकाधिपतित्वमात्मनः पुनर्न मृत्युं च सुरासुराहिभिः ॥ २४ ॥

ब्रह्मादिदेवोपरिर्वातिनीं निजामाज्ञां ययाचेऽप्रतिमंच विक्रमम् ।
पुरन्दरादप्यधिकाश्चसम्पदस्तेजः कृशानोश्च विभावसोरपि ॥ २५ ॥

यद् यच्च काम्यं मनसि स्थितं परं भोगं वरायुश्च सुखं तथाधिकम् ।
स तद्ययाचे गिरिशान्द्रसादितात्कृपावलोकामृतवीचिवारिधेः ॥ २६ ॥

इत्थं स सिद्धवरलाभउमाधिनाथात्सद्यःप्रभूतदशमस्तकशोभमानः ।
घोरो न्यवर्ततमां प्रभुमाशु नत्वा कैलासशैलशिखरान्नगरीं प्रति स्वाम् ॥ २७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे रावणवरलाभो नाम पञ्चधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

*

षडधिकशततमोऽध्यायः (१)

ब्रह्मोवाच

दूषणेन त्रिशिरसा विद्युज्जिह्वखरादिभिः ।
सुदुष्टचित्तै रक्षोभिः सहितोराक्षसेश्वरः ॥ १ ॥

बलिना कुम्भकर्णेन निजाज्ञावशवर्तिना ।
स त्रैलोक्यं विनिर्जेतुं लङ्कापुर्य्या विनिर्ययौ ॥ २ ॥

महता राक्षसौघेन धरणीं नमयन् बलात् ।
आत्मगेहाद्विनिर्यातः कृताशीर्ब्राह्मणोत्तमैः ॥ ३ ॥

पुलस्त्यमुख्यैर्मुनिभिः स्वस्तिपुण्याहवाचनम् ।
विधाय राक्षसश्रेष्ठः प्रतस्थौ बलसंवृतः ॥ ४ ॥

सुगुप्तः पुरतः पश्चाच्चमूभिर्वामदक्षयोः ।
मध्ये महाचमूयुक्तः प्रतस्थौ विजीगीषुकः ॥ ५ ॥

सरितः सागरा नद्यः शैलाः काननगह्वराः ।
आच्छादितास्तच्चमूभिर्भीषणाभिः समंततः ॥ ६ ॥

अङ्गान् बङ्गान् कलिङ्गांश्च महाराष्ट्रांश्च केरलान् ।
कर्णाटान् कराहाटांश्च वरह्नाटान् वराटकान् ॥ ७ ॥

लाटान् भोटान् कुन्तलांश्च द्रविडान् कोंकणांस्तथा ।
त्रिपुरां कामतां चैव कामरूपांस्तथाध्वकान् ॥ ८ ॥

चौहारांश्च चोलदेशांस्त्रिगर्तानर्तकांस्तथा ।
सौराष्ट्रांश्चैव पाड्यांश्च मरूनुत्कलकांस्तथा ॥ ९ ॥

मलयान् म्लेच्छदेशांश्च गान्धारान् काविलांस्तथा ।
जम्बूं काशीं च काश्मीरान् वाल्हीकान् मगधांस्तथा ॥ १० ॥

कोसलांश्च कुरुंश्चैव तथान्यान् विषयानपि ।
विजित्य वासयामास तत्र तत्र स्वराक्षसान् ॥ ११ ॥

अनतान् नामयामास नतानवचिकाय सः ।
अन्याय समुच्चखानैव नानादेशमहीपतीन् ॥ १२ ॥

तस्मै गजांस्तुरङ्गांश्च वडवा गोवृषांस्तथा ।
दासेरकान् वामिकांश्च स्वर्णभारान् मणींस्तथा ॥ १३ ॥

दासान् दासीश्च युवतीः सुन्दरीर्वरकन्यकाः ।
समादायाग्रतो निन्युर्भूपाला जीवितैषिणः ॥ १४ ॥

यो यश्च विजितो देशस्तत्र तत्र स्वसेवकः ।
राक्षसः स्थापितस्तेन प्रजानां कदनप्रियः ॥ १५ ॥

कदाचिन्नर्मदातीरे पुरीं माहिष्मतीमनुः ।
शिविरं कारयामास जगज्जयमहोर्जितः ॥ १६ ॥

स तत्र देवमाराद्धुं भवान्या दयितं भवम् ।
अतिष्ठन्नर्मदातीरे स्वस्थः सुविहतासनः ॥ १७ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु हैहयाधीश्वरो नृपः ।
अष्टादशद्वीपपतिः कृतवीर्यसुतोऽर्जुनः ॥ १८ ॥

सहस्रबाहुर्दीप्तात्मा सम्राट् समरनिर्जयी ।
चिक्रीड नर्मदातोये कुरङ्गाक्षीगणैर्वृतः ॥ १९ ॥

कादम्बरीमदोन्मत्तः स्वच्छन्दविहितोत्सवः ।
अभ्युद्यमाणोऽभ्युक्षंश्च मण्डलेषु मृगीदृशाम् ॥ २० ॥

आनन्दतुन्दिलः श्रीमान् मुक्ताहारविभूषितः ।
विजहार करीवोच्चैः करिणीयूथगो यथा ॥ २१ ॥

रेवां बाहुसहस्रेण संनिरुध्य समास्थितः ।
संयुङ्क्ते च वियुङ्क्ते च तस्याः स्रोतः पयोभरम् ॥ २२ ॥

कौतुकी मदिरोन्मत्तः क्रीडति स्म यथासुखम् ।
संनिरुद्धः प्रवाहोऽस्यास्तस्य बाहुसहस्रशः ॥ २३ ॥

उद्गच्छति स्म बहुशः प्लावयन् पुलिनावनीम् ।
प्रतिकूलवहे चैवं प्रवाहे सरितस्तदा ॥ २४ ॥

प्लावितानि दशास्यस्य शिविराणि समंततः ।
शिवस्य पूजासम्भारः सर्वोऽपि जलसम्प्लुतः ॥ २५ ॥

अवहत्सहसा तत्र पात्राणां प्रचयस्तथा ।
भूषणानि च वस्त्राणि शय्यास्तरणकादयः ॥ २६ ॥

अवहन् जलवेगेन शिवलिङ्गानि च क्षणात् ।
अन्तःपुरपदार्थाश्च पानभोज्यासनादयः ॥ २७ ॥

इत्थं विपन्ने शिविरे चुकोप दशकन्धरः ।
किमिदं कुत एवेति केनेति च वितर्कयन् ॥ २८ ॥
अथास्यानुचराश्चाराः शशंसुः कर्म तस्य तत् ।
सहस्रबाहुवीरस्य क्रीडतो नर्मदाम्भसि ॥ २९ ॥
दोर्दण्डभूरुहै रुद्धं प्रतिकूलवहं पयः ।
निमज्जयामास विभो शिविराणि च सम्भृतीः ॥ ३० ॥

ततश्चातितरां तस्मिश्चुक्रोधास्रपनायकः ।
हंहो निवार्यतामाशु हैहयोऽयं मदाबिलः ॥ ३१ ॥
अथादाय धनुर्बाणान् बली लङ्काभटोऽब्रवीत् ।
अयि दुश्चेष्ट मुञ्चैनां चेष्टां सोमसुताजले ॥ ३२ ॥
मुक्तोऽपराधस्ते रुद्रपूजाविघ्नसमुद्भवः ।
इदानीमपि दुश्चेष्ट चेष्टां मुञ्च मयोदितः ॥ ३३ ॥
एवमुक्तोऽपि तेनासौ कार्तवीर्यार्जुनो बली ।
नाज्ञासीन्मदिरामत्तः कोऽसौ वदति मामिति ॥ ३४ ॥
ततः सदश तीक्ष्णाग्रान् सायकान् मर्मभेदिनः ।
निचखानास्य दोर्मूले राक्षसानां पुरन्दरः ॥ ३५ ॥
नाबुध्यत ततोऽप्येष लग्नान् दंशानिवाङ्गके ।
स्त्रियस्तु कथयामासुः कस्य बाणा इमे प्रभो ॥ ३६ ॥
दृष्ट्वा बाणांस्तनौलग्नानुदास्यः कृतवीर्यजः ।
अपश्यत् पुरतो रक्षः क्रुध्यन्तं दशकन्धरम् ॥ ३७ ॥
तं सम्बोध्य ततोऽवादीद्दशास्य क्रोधमूर्च्छितः ।
किं नु गर्वायसेमूढ कृत्वाप्यागः सुदुःसहम् ॥ ३८ ॥
रुणत्सि किं वृथाक्रीड रेवास्रोतो भुजद्रुमैः ।
प्रतिकूलवहैस्तोयैः प्लावितं शिबिरं मम ॥ ३९ ॥
बहुबाहुतया दृप्तः किमेवं क्रीडसेमुधा ।
अपनेष्यामि ते दर्पं तीक्ष्णाग्रैः सायकैरहम् ॥ ४० ॥

इति क्षुद्रवाचालरक्षःप्रयुक्तं वचो मानहीनं निशम्यात्मना सः ।
महायोगिवर्यो मदाघूर्णिताक्षः कथंचिन्मनोविक्रियां नाजगाम ॥ ४१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे दशास्य-दिग्विजयो नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

*

ब्रह्मोवाच

ततः स शरवर्षेणच्छादयामास रावणः ।
कार्तवीर्यार्जुनं वीर क्रीडन्तं नर्मदाजले ॥ १ ॥

ते शरास्तस्य वीरस्य क्रीडतः स्वेच्छयाम्भसि ।
अनवाप्य वपुःस्पर्शं निपेतुर्विश्वतो दिशम् ॥ २ ॥

ह्लीणः सोऽमर्षणोऽत्यर्थं बाणवृष्टेः पराभवात् ।
शूलान् परस्वधान् प्रासान् भुशुण्डीस्तोमरानसीन् ॥ ३ ॥

चक्रकुन्तगदादीनि ज्वलन्त्युज्ज्वलतेजसा ।
उच्चावचान्यायुधानि चिक्षेप परया रुषा ॥ ४ ॥

हुङ्कारेणैव तान्येष वारयामास सर्वतः ।
राजराजेश्वरो वीरः कार्तवीर्यार्जुनो बली ॥ ५ ॥

ततः सोऽनितरां क्रुद्धो दृष्ट्वा वितथमुद्यमम् ।
रूपं प्रदर्शयामास सर्वलोकभयानकम् ॥ ६ ॥

ज्वलद्दीपशिखाकारनेत्रविंशकभीषणम् ।
दंष्ट्राकरालवदनं तिर्यग्भ्रुकुटिभासुरम् ॥ ७ ॥

विस्फूर्जदायुधज्वालादुष्प्रेक्षभुजविंशकम् ।
कल्पान्तपावकोद्दीप्तज्वालामालातिदुःसहम् ॥ ८ ॥

विद्युज्जालजटाघोरं महोल्कावृन्दवर्षणम् ।
महोद्धतं महाटोपं गर्जमानं मुहुर्मुहुः ॥ ९ ॥

पादकम्पितपातालं किरीटलिखिताम्बरम् ।
सर्वतो रोदसी व्याप्य संस्थितं भूरिभीषणम् ॥ १० ॥

तस्य तं घोरमाकारं रक्षोमायाविसर्जनम् ।
त्रासनं सर्वजन्तूनां क्रोधसंरम्भदुःसहम् ॥ ११ ॥

निरीक्ष्य वनिताःसर्वा राजराजेश्वरस्य ताः ।
जलक्रीडां परित्यज्य दुद्रुवुः सर्वतोदिशम् ॥ १२ ॥

ससर्ज राक्षसः क्रुद्धः स्वां मायामति भीषणाम् ।
ततो निपेतुर्गगनान्महोल्काः प्रज्वलद्रुचः ॥ १३ ॥

शिलाश्चाविरलाः स्फूर्जद्वह्निज्वालाभयानकाः ।
महाज्वालामया वृक्षाः प्रकाशितदिगम्बराः ॥ १४ ॥

क्षणाच्च तिमिरं घोरं क्षणाच्च विपुलं महः ।
क्षणादङ्गारवृष्टिश्च क्षणादुल्कौघवर्षणम् ॥ १५ ॥

क्षणात्कटकटाशब्दो वज्रसम्पातसूचकः ।
क्षणात्पाषाणवृष्टिश्च क्षणाद्दावमहानलः ॥ १६ ॥

क्षणाच्च विपुलोऽम्भोधिः प्लावयन् सर्वतो महीम् ।
क्षणाच्चण्डानिलो घोरः समुत्पाटितभूधरः ॥ १७ ॥

एवं स राक्षसीं मायां दर्शयन् विश्वभीतिदाम् ।
भीषयामास सकलान् जनान् माहिष्मतीस्थितान् ॥ १८ ॥

अन्तःपुरस्य वनितास्त्रस्ता राक्षसमायया ।
चक्षुषी मीलयामासुर्विलयन्त्यो भयातुराः ॥ १९ ॥

तं जनाः शरणं जग्मुर्वित्रस्ताः पुरवास्तवः ।
महायोगेश्वरं वीरं कार्तवीर्यार्जुनं नृपम् ॥ २० ॥

ऊचुर्भयातुराः सर्वे राक्षस्या माययाभृशम् ।
पीड्यमानाः स्खलच्चित्तविवशा विह्वलाश्च ते ॥ २१ ॥

पाहि राजेश्वरामुष्माद्राक्षसाद्घोरदर्शनात् ।
सृजतो राक्षसीं मायां दृष्टपूर्वा न कर्हिचित् ॥ २२ ॥

पाहि पाहि महायोगिन् हैहयान्वयदीपक ।
अष्टादशद्वीपजगत्येकराजमहाद्युते ॥ २३ ॥

त्रैलोक्यमहनीयस्य सर्वमायामहेशितुः ।
सर्वयोगीन्द्रवर्यस्य का ते मायास्तु मोहिनी ॥ २४ ॥

यस्य स्मरणमात्रेण पलायन्ते सुदूरतः ।
आधयो व्याधयः सर्वे स भवान् पातु नः प्रभो ॥ २५ ॥

सहस्रबाहो विश्वेश कार्तवीर्यार्जुन प्रभो ।
हैहयेन्द्र महायोगिन् रक्ष रक्ष निजान् जनान् ॥ २६ ॥

राजराज महाराज राजराजेश्वरेश्वर ।
सर्वभूम्येकराज त्वं पाहि नः शरणागतान् ॥ २७ ॥

चापैः पञ्चशतैर्वीर बाणैः पञ्चशतैरपि ।
पाहि नो राजराजेन्द्र भजतस्त्वां निरन्तरम् ॥ २८ ॥

वीरेन्द्र विश्ववन्द्यांङ्घ्रे विश्वभूतिविधायक ।
विश्वभीतिवितानघ्न त्रायस्वास्मान् भयातुरान् ॥ २९ ॥

सुरक्ताम्बरोष्णीषपुष्पस्रगाढ्यं महारक्तकाश्मीरलिप्ताखिलाङ्गम् ।
लसद्रक्तमाणिक्यसिंहासनस्थं महाराज नित्यं भवन्तं नताः स्मः ॥ ३० ॥

स्फुरद्वारुणीभूमदाघूर्णिताक्षं जगज्जीवकारुण्यसंदोहपूर्णम् ।
नमस्याकृताशेषमायानिवृतिंभवन्तं नताः स्मो नताः स्मो नताः स्मः ॥ ३१ ॥

महाराज राजेन्द्र माहिष्मतीश प्रभो कार्तवीर्यार्जुनातीतमृत्यो ।
महावीरवर्येन्द्र योगीन्द्रमौले भव प्राणिनां भीतिसंहारकस्त्वम् ॥ ३२ ॥

न मारीभयं नापि चौरादिभीतिर्न वा रोगकृत्याग्रहारिष्टकष्टम् ।
न दुर्दैवपीड़ा न च प्रेतबाधा तवामुष्य नामग्रहान्मानुषाणाम् ॥ ३३ ॥

महाष्टादशद्वीपसाम्राज्यलक्ष्मीपते हैहयान्वायपाथोधिचन्द्र ।
प्रभो सर्वलोकेशवन्द्यामलङ्घ्रे न हित्वां प्रपन्नाभयं प्राप्नुवन्ति ॥ ३४ ॥

अभयं सर्वभूतानां मङ्गलं सर्वदेहिनाम् ।
प्रशमं सर्वदुष्टानां विभो माहिष्मतीपतिम् ॥ ३५ ॥

ध्यायन् पञ्चशतांश्चापान् स्मरन् पञ्चशतानिषून् ।
अभयं सर्वथा लोकः प्राप्नोति कृपया तव ॥ ३६ ॥

स्मृतमात्रः प्रभो नित्यं त्रायसे सकलं जगत् ।
स कथं प्रकटः साक्षाद्रक्षिष्यति नवै निजान् ॥ ३७ ॥

इति संस्तुवतां तेषां निशम्य कृपणा गिरः ।
प्राबुध्यत महाराजस्तत्क्षणंमदिरामदात् ॥ ३८ ॥

विलोक्य राक्षसं घोरं पुरतो दशकन्धरम् ।
सृजन्तं राक्षसीं मायां प्राणिनामतिभीषणाम् ॥ ३९ ॥

समभिद्रुत्य बलवान् कार्तवीर्यार्जुनो नृपः ।
जग्राह सहसा दोर्भिर्दुष्टं व्यालमिवाहिकः ॥ ४० ॥

स धृतस्तेन बलिना महामायाविना खलः ।
संक्षिप्तसर्वमायोऽभूदभिभूत इव त्विषा ॥ ४१ ॥

सर्वाधिकतमैस्तस्य तेजोभिः कौणपेश्वरः ।
प्रधर्ष्यमाणहृदयस्तत्रास बहुशो धृतः ॥ ४२ ॥

त्वरमाणः स निर्मुक्त्यै बलेन बलिना धृतः ।
अत्यर्थं वितथोद्योगो नाशक्नोत्प्रपलायितुम् ॥ ४३ ॥

ततो बद्ध्वा दृढैः पाशैर्वाचालं राक्षसं खलम् ।
क्षुद्रं निरस्तमायं तमानयत् स्वगृहे द्रुतम् ॥ ४४ ॥

स शपन् बहुधा क्रोधाद् गालीभिः क्षुद्रमानसः ।
वीरेन्द्रेण बलाद्बद्धो नाचलात्पाशजालतः ॥ ४५ ॥

तं पञ्जरान्तः प्रक्षिप्य क्रीडाशकुनिकं यथा ।
अन्तःपुरपुरद्वारि कौतुकार्थमवासयत् ॥ ४६ ॥

वीरस्य हैहयेन्द्रस्य तस्यान्तः पुरयोषितः ।
निर्भयास्तं तुदन्ति स्म वाक्शरैरतिकोपनम् ॥ ४७ ॥

अरे त्वं मूढहृदय कथमस्मत्प्रभुंद्विषन् ।
इमामवस्थां यातोऽसिधिक्ते तावत्पराक्रमम् ॥ ४८ ॥

क्व ते बलं च शौर्यं च क्व ते मानो दशानन ।
सहस्रबाहोः पुरतो यो दृप्तो विंशबाहुभिः ॥ ४९ ॥

साधु नः कौतुकार्थं त्वं विनिबद्धोऽसिपञ्जरे ।
दशाननो विंशवाहुर्नेत्राणां विंशतिंवहन् ।। ५० ।।

काश्चिन्महोद्धता योषास्तस्य चक्षूंषि सर्वतः ।
इषीकाभिस्तुदन्ति स्म पञ्जरस्थस्य निर्गतैः ।। ५१ ।।

काश्चित्तस्याशनार्थाय कृपोद्रेकेण कातराः ।
मुञ्चन्ति बालकोच्छिष्टान् पर्पटान् शष्कुलीस्तथा ।। ५२ ।।

काश्चित्तं यावकरसैः पादरञ्जनशेषकैः ।
रञ्जयन्ति स्म वनितास्तूष्णीं भूय परिस्थितम् ।। ५३ ।।

काश्चित्तमञ्जनैः स्निग्धैर्नेत्ररञ्जनशेषितैः ।
इषीकामुखसंलग्नैर्मेचकं कुर्वते स्त्रियः ।। ५४ ।।

काश्चिदुद्वर्तनोत्तीर्णैश्चूर्णपिण्डैः सुगन्धिभिः ।
ताडयन्ति स्म सेषेण पूर्वं स्वाम्यपराधिनम् ।। ५५ ।।

काश्चित्सुगन्धिभिस्तैलैर्मर्दनादवशेषितैः ।
स्ना[1]पयन्त्यस्तमवसं बहुशो हृदि रोषणम् ।। ५६ ।।

एवं स्वस्वमनोरथोचितममुं दीनं निबद्धं तथा
क्रीडापञ्जरमध्यगं सुविवशं लुप्ताभिमानं खलम् ।
शश्वत्केलिरतस्य हैहयपतेरन्तःपुरस्थाः स्त्रियः
स्तैस्तैः कर्मभिरत्यरुन्तुदतमैर्भूयस्तुदन्ति स्म तम् ।। ५७ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे रावणनिग्रहो नाम षडाधिकशततमोऽध्यायः ।।१०६।।

*

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

कुम्भकर्णादयस्तस्य भ्रातरः प्रियकारकाः ।
रक्षोबलं समादाय लङ्कां जग्मुः पराजिताः ।। १ ।।

निधायान्तःपुरं तस्य भूयो मन्दोदरीमुखम् ।
अगमन् राक्षसवराः पुलस्त्यस्याश्रमं तदा ।। २ ।।

---

१. अस्नापयंस्त० । मथु० ।

कुम्भकर्णः खरश्चैव विद्युज्जिह्वश्च दूषणः ।
त्रिशिराः सर्व एवैते राक्षसप्रवरा मुनेः ॥ ३ ॥

वृत्तं निवेदयामासुर्माहिष्मत्यां बभूव यत् ।
क्रीडनं कार्तवीर्यस्य रेवायाश्च परागतिम् ॥ ४ ॥

शिविरस्याप्लवं चैव क्रोधं लङ्कापतेस्तथा ।
युद्धं च कार्तवीर्येण वितथोद्योगतां तथा ॥ ५ ॥

बन्धनं च तथा तस्य दशवक्रस्य मायिनः ।
तेन मायापहारं च बलिनाशतबाहुना ॥ ६ ॥

बद्ध्वा च नयनं तस्य पुरीं माहिष्मतीं प्रति ।
ततः परं च स्वाज्ञानं शुभं वा यदि वाशुभम् ॥ ७ ॥

स्वस्य लङ्कागमं चैव माहिष्मत्याः पलाय्य हि ।
एतत्सर्वं मुनीन्द्राय ज्ञापयामासुरञ्जसा ॥ ८ ॥

तच्छ्रुत्वा मुनिशार्दूलः कार्तवीर्यप्रभाववित् ।
शुशोच मनसा वीरः स्वानां प्रियचिकीर्षया ॥ ९ ॥

विसृज्य कुम्भकर्णादीन् राक्षसप्रवरांस्तदा ।
जगाम तरसा योगी पुरीं माहिष्मतीं प्रति ॥ १० ॥

तमागतमभिप्रेक्ष्य हैहयेन्द्रो जगत्पतिः ।
सपर्ययातिभूयस्या जग्राह परमादृतः ॥ ११ ॥

पूजितः कार्तवीर्येण नरेन्द्रेण महामुनिः ।
स्वस्थः शुभासनगतः शुशुभे ब्रह्मतेजसा ॥ १२ ॥

स तस्य पुरतो भक्त्या बद्धाञ्जलिपुटो नृपः ।
विनयावनतस्कन्ध उवाचेदमुदारधीः ॥ १३ ॥

अहो भाग्यं गृहिणां देहिनां नो धर्माधर्मक्लेशसंतापभाजाम् ।
येषां शिरः पुनते युष्मदङ्घ्रिद्वयावनिज्याप्रभवास्तीर्थधाराः ॥ १४ ॥

तपोमया ज्ञानमया विशुद्धास्तेजोमयाः सत्यमयास्त्रयीमयाः ।
मेधामयाः पुण्यमया विशुद्धसत्वप्रकाशैकमयाश्च यूयम् ॥ १५ ॥

आत्मानमाध्यायथ सत्त्ववृद्ध्या विवृद्धविज्ञानदृशानुभूत्या ।
अजस्रमानन्दमवाप्य पूर्णं तृप्ताश्च यूयं विगताशेषकामाः ॥ १६ ॥

तथापि यद्गृहमेधीयधर्मानुष्ठातॄणां चक्षुषोर्गोचरत्वम् ।
प्रयाथ तत्तावदहो अमीषां भाग्यातिरेकेण दुरापदर्शनाः ॥ १७ ॥

अहं गमिष्यामि भवत्प्रसंगाद् ब्रह्मन् भवे सद्यशोभाजनत्वम् ।
संचारचक्रभ्रमणं तथोच्चैरद्यैव साफल्यमुपागतं मे ॥ १८ ॥

दृशानया ज्ञानविज्ञानमय्या माङ्गल्यया मानुग्रहाणविद्वन् ।
यथाखिलं स्थूल सूक्ष्मात्मकं वो विभाति हस्तामलकोपमानम् ॥ १९ ॥

शुभप्रदेनैहिकामुष्मिकार्थद्वयेऽपि हस्तेन निजेन नित्यम् ।
मन्त्राम्भसां पृषतैः पावनेन स्पृश ब्रह्मन् शासनीयस्य कं मे ।। २० ।।

कृतार्थितोऽहं भवताद्य दर्शनप्रदानकल्याणगणाकरेण ।
ममौक आयातवता वताद्य प्रत्यूहरोगाद्युपसर्गराशेः ।। २१ ।।

युञ्जान आत्यन्तिकमात्मयोगं यद्यन्तरायैरुपहन्यते जनः ।
तदापि वः पादरजोऽभिषेकात्कल्याणमासादयतेऽस्तविघ्नः ।। २२ ।।

अथो यदृच्छाकरुणात्मनां वः पृच्छामि किं चागमनप्रयोजनम् ।
न वै परानन्दनशीलभाजां हिमांशुपाथोदसतां निजोऽर्थः ।। २३ ।।

इत्युदीर्य स्थिते मौने राजराजेश्वरे मुनिः ।
उवाच करुणार्द्राक्षः परोपकृतिबान्धवः ।। २४ ।।

पुलस्त्य उवाच

अहो निसर्गान्मधुरोऽसि राजन् कःस्विन्न लोकेषु दिदृक्षति त्वाम् ।
महानुभावं महनीयकीर्तिं महामहोध्वस्तजगत्तमिस्रम् ।। २५ ।।

कालात्मकं यत्प्रवदन्ति विष्णोः सुदर्शनं नाम महस्विचक्रम् ।
अशेषदैत्योघचमूविनाशं तदेव साक्षात्त्वमसीह जाग्रत् ।। २६ ।।

सहस्रमारा व्यति भान्तिराजन् दोष्णां सहस्रेण तवोग्रवीर्य ।
श्रीकार्तवीर्यार्जुन भूरिबाहो त्वं रक्षणायासि भवेऽवतीर्णः ।। २७ ।।

न त्वां विजानन्ति भवे मनुष्या ये संततं चर्मदृशोऽल्पमेधसः ।
येऽध्यात्मनिष्ठा धिषणाविशुद्धास्ते त्वां प्रविज्ञाय नमन्तिनित्यम् ।। २८ ।।

प्रादुर्भवस्यात्मविचिन्तनक्षणे नृणामभद्रक्षयकारिदर्शनः ।
विनाशयस्यग्रमधर्ममग्रतस्ततश्च पुष्णासि सुधर्ममात्मना ।। २९ ।।

धन्यं कुलं हैहयभूमिपाना माहिष्मती धन्यतमा पुरीयम् ।
जयन्तिधन्यास्तव दर्शनामृतप्रमोदभाजो मनुजा इहस्थाः ।। ३० ।।

त्वयात्मना हैहयवंशदीपेनाष्टादशद्वीपवती महीयम् ।
प्रकाशिता नित्यमधर्मकष्टशोकोपसर्गादितमोनिरस्य ।। ३१ ।।

यद्दर्शनं तेऽखिलजन्मभाजां सुमङ्गलं मोहतमोऽपहन्तृ ।
तत्काम एवाहमिहोपयातः कस्य प्रियो नासि महामहौजः ।। ३२ ।।

अथापि मेऽत्रागमनप्रयोजनं तवाभिधास्ये नृपवंशभूषण ।
निशम्य तत्प्रार्थितकल्पपादपो भवानवश्यं प्रविधातुमर्हति ।। ३३ ।।

राजोवाच

भगवन् भवतो वाक्यात्किमन्यत् प्रतिपादये ।
शिरोऽपि तव पादाब्जे निवेदितमिदं मया ।। ३४ ।।

पुलस्त्य उवाच

शिरस्ते भ्राजतां राजन्नेकच्छत्रधरं भुवि ।
भुङ्क्ष्वायुरमितंशश्वदमितायुतवत्सरान् ॥ ३५ ॥

किन्त्वसावविनीतात्मा पौत्रो मे दशकन्धरः ।
जीवन् प्रदीयतां मह्यं भवतोदारपाणिना ॥ ३६ ॥

असौस्वात्मापराधेन प्राप्तः कष्टमिमां दशाम् ।
भवता शिक्षितोराजन् पुनर्नैकं करिष्यति ॥ ३७ ॥

इत्युक्तो राजराजेन्द्रो मुनिना सौम्यचक्षुषा ।
शालीननयनो भृत्यैर्दशाननममोचयत् ॥ ३८ ॥

भूयस्तदागःशान्त्यर्थं मुनीन्द्रं समपूजयत् ।
रावणं चास्य पौत्रत्वात्प्रविज्ञायाभ्यमानयत् ॥ ३९ ॥

संस्नाप्य पटभूषाद्यैराभूष्य च दशाननम् ।
श्रीमान्निवेदयामास मुनये स्वस्तिभाषिणे ॥ ४० ॥

इत्थं गतः स्वस्थ सुदुर्नयेन कष्टं दशास्यः स्खलिताभिमानः ।
मुनेः पुलस्त्यस्य गिरा नृपेण सभाजयित्वा सहसा विमुक्तः ॥ ४१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे रावणमोचनं नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

*

अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

लङ्कां गच्छन् कौणपेन्द्रः संगतो मुनिना सह ।
विषण्णः स्वापमानेन महामानीदमूचिवान् ॥ १ ॥

धिङ्मे तपोबलं शौर्यं धिङ्मानं धिक्पराक्रमम् ।
बलान्निबध्य शुकवत्पञ्जरे यो निपातितः ॥ २ ॥

नाहं लङ्कां गमिष्यामि हृतमानो हृतोद्धतिः ।
किं तस्य जीवितं पुंसो यो जीवेन्मानवर्जितः ॥ ३ ॥

किं मुखं दर्शयिष्यामि राक्षसानां सुदुःखितः ।
तप एव करिष्येऽहं भग्नमानमदोऽधुना ॥ ४ ॥

यैर्दृष्टोऽहं तथा युद्धे हैहयेन पराजितः ।
निबध्य पाशैः सुदृढैर्नीयमानो निजां पुरीम् ॥ ५ ॥

तेषां पुरोऽहमास्फाल्य दोर्दण्डान् वितथोद्भवान् ।
किं नु गर्वापितेदानीमधिक्षिप्य सुरासुरान् ।। ६ ।।
अधो विधाय तान् सर्वान् स्वर्णसिंहासनस्थितः ।
किं नु राज्यमदप्रौढिं वोढेदानीमहं पुरे ।। ७ ।।
अपि योगीन्द्र भगवन् प्रजास्ते वयमीदृशीम् ।
दुर्गतिं तात यत्प्राप्तास्तत्तवापिह्यनौचिती ।। ८ ।।
अतोऽहंमानभङ्गेन विषण्णहृदयोऽधुना ।
आराधयिष्ये गिरिशं प्रवेक्ष्ये वा हुताशनम् ।। ९ ।।
धिग्जनुस्तस्य लोकस्य स्वानां यः पुरतोऽरिणा ।
ईदृक् पराभवं प्राप्तोऽप्यसून्मुञ्चति न द्रुतम् ।। १० ।।
किं करोमि न मे प्राणा निर्यान्ति वपुषो बहिः ।
ईदृक् पराभवंप्राप्ता अधुनापि जिजीविषा ।। ११ ।।
इत्थं भृशं विषीदन्तं लङ्केशं दशकन्धरम् ।
उवाच करुणायुक्तः पुलस्त्यो मुनिपुङ्गवः ।। १२ ।।
मा विषीदतमां चित्ते राक्षसेन्द्र महाबल ।
जीवंल्लोकेषु विपुलां ख्यातिं त्वं समवाप्स्यसि ।। १३ ।।
स हि राजा महाबाहुश्चक्रावतरणं हरेः ।
सहस्रबाहुर्द्रष्टव्यो न सामान्यधिया त्वया ।। १४ ।।
यस्य वीर्यं बलं चैव सदापरिमितं भवे ।
यः साक्षाद्विदितः शिष्य आत्रेयस्य महामुनेः ।। १५ ।।
येनाष्टादशद्वीपाढ्या मही करतले कृता ।
स्मृतिमात्रेणा यः पुंसां धर्माधर्मविवेचकः ।। १६ ।।
न तेन स्पर्द्धितुं योग्यः कोऽपि लोके चराचरे ।
प्रसाददृष्टिं वाञ्छन्ति तस्य सर्वोऽपि संततम् ।। १७ ।।
रममाणः स महिषीयूथेन विधुजाम्भसि ।
व्यर्थं प्रक्षोभितो वत्स भवताविदितौजसा ।। १८ ।।
स्वयमेव समाधत्स्व हृदयं स्वं महाभुज ।
अथो तपस्व विपुलं तपः स्वोत्कर्षसिद्धये ।। १९ ।।
मया चापि प्रदत्तस्ते वरः सामान्यभूतिकृत् ।
आराध्य भूयो भूतेशं लभस्वाभीष्टमात्मनः ।। २० ।।
सद्यस्ते वरदोभूयात्पिनाकी गिरिजापतिः ।
लभस्व चासमां भूतिं तत आराधिताद्विभो ।। २१ ।।
विमनायितव्यं ते नैव न च कार्या विरागिता ।
भवं भूष्णुर्भविकवनुद्युञ्जीत विशेषतः ।। २२ ।।

इत्थं समाहितस्तेन पुलस्त्येन सयोगिना ।
अतीवामर्षयुक्तोऽपि प्रशान्तिमगमत् खलः ।। २३ ।।

मध्येमार्गं विसृज्यासौ मुनीन्द्रं स्वाश्रमं प्रति ।
कैलासमगमद्घोर आरिराधयिषुः शिवम् ।। २४ ।।

अतुल्यतेजा भवितुं भवेऽस्मिन् दशाननो घोरतपश्चिकीर्षुः ।
कपालिनोऽभ्याशमगात्तमोऽधो नितान्तमाराधयितुं तमीशम् ।। २५ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे रावणकृतोद्यमो-नामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ।। १०८ ।।

*

नवाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

आराध्नन् गिरिशं देवं राक्षसो विश्वभीषणः ।
उवास सुचिरं तत्र कैलासे सुमनोहरे ।। १ ।।

भक्त्या दिवानिशं शम्भोः परिचर्यामुपाश्रितः ।
दृप्तो बाहुबलोद्रेकादिदं स चकमेतराम् ।। २ ।।

उत्पाट्य कैलासगिरिं बलेन श्रीपार्वतीशेन समन्वितं चेत् ।
प्रसह्य लङ्कानगरीं नयामि तदा भवे मत्प्रतिमस्तु कः स्यात् ।। ३ ।।

अवधार्य हृदात्यर्थमित्थं स दशकन्धरः ।
उत्पाटयामास गिरेः शृङ्गं कामार्यधिष्ठितम् ।। ४ ।।

तस्य चोत्पाट्यमानस्य निःस्वन सुमहानभूत् ।
यथा वितत्रसुः सर्वे गणा ये प्रमथादयः ।। ५ ।।

पार्वती गिरिनिर्भङ्गभीषणध्वनिभीषिता ।
आलिलिङ्गे जवाद्वक्षः शङ्करस्य भयापहम् ।। ६ ।।

स्रवद्धातु पतद्ग्राव वहन्निर्झरवारि तत् ।
दोर्भिरुत्पाट्य शैलस्य निनाय शिखरोत्तमम् ।। ७ ।।

नभःपथेन वीरेन्द्रो वहन् धरणि भृद्धरम् ।
जगाम तरसा लङ्कामनिरुद्धमनोरथः ।। ८ ।।

स आत्ममन्दिरे सम्यग् रुद्रावासं महीधरम् ।
स्थापयामास सततं भक्त्या परिचरन् मुहुः ।। ९ ।।

ततः स उद्धततमो महामानी महामनाः ।
विजिगीषुर्जगत् सर्वमकामयत चेतसा ॥ १० ॥
कथं नु ब्रह्मभवनाज्जित्वा ब्रह्माणमात्मना ।
आबध्य तरसा पाशैर्नयामि विनयामि च ॥ ११ ॥
आछिद्य वाहनं तस्य हंसयुग्मं मनोरमम् ।
गृह्णीय स्वस्य सुचिरं वाहनीकर्तुमञ्जसा ॥ १२ ॥
अथो कथं नु साध्यानां वसूनां वरुणस्य च ।
इन्द्रस्याग्नेर्यमस्यापि निर्ऋतेर्मरुतां तथा ॥ १३ ॥
आदित्यानां तारकाणां विश्वेषां सोमसूर्ययोः ।
जित्वा लोकानहं सद्यः स्वात्मसात्करवैक्षणात् ॥ १४ ॥
अन्येषां चापि देवानामधिकारांस्तथा गृहान् ।
विभूतीश्च क्षणाज्जित्वा कथं नु वशयाम्यहम् ॥ १५ ॥
सर्वे देवाश्च नागाश्च यावत्परिचरन्ति नो ।
मामशेषजगन्नाथं तावत्तुष्याम्यहं कथम् ॥ १६ ॥
शशी मां कोमलैरंशुसंदोहैः संततं निशि ।
चन्दनालेपमङ्गेषु दधातु प्रीणयत्वपि ॥ १७ ॥
सूर्योऽतिमृदुलैस्तावत् करैस्तपतु वासरे ।
यात्रन्निशाहिमकणान् हरेद्वर्ष्मणि मामके ॥ १८ ॥
मरुतस्तालपत्रेषु समाविश्य त्रिधा सुखम् ।
वितन्वन्तु मयि श्रान्ते रतिखेदेन रात्रिषु ॥ १९ ॥
इन्द्रो मत्परिचर्यायामिन्द्राण्या सह तत्परः ।
अस्तु स्नानासनालेपपानभोजनकर्मसु ॥ २० ॥
वरुणो मम पानीयहारी भवतु संततम् ।
वाक्पतिस्त्रिदशाचार्यो वन्दीव स्तौतु मां सदा ॥ २१ ॥
ब्रह्मा मम स्वस्त्ययनं कल्पयत्वनिशं पठन् ।
ऋग्यजुःसाममन्त्रौघान् सुस्वरं हृदि रोचनम् ॥ २२ ॥
अथो विष्णुमहं द्वेष्मि मम पूर्वविरोधितम् ।
तन्मूलश्चापि यो धर्मस्तमहं छेदयामि च ॥ २३ ॥
सत्त्वेन किं मया कार्यं सत्त्वं लिङ्गं हि वैष्णवम् ।
रजस्तमोभ्यां मे स्वार्थस्तामसो राजसो भवे ॥ २४ ॥
शम्भुमाराध्य सततं कायेन मनसा गिरा ।
अनन्यसामान्यसुखो भवेयं त्रिजगत्पतिः ॥ २५ ॥
चिकीर्षितमिदं नित्यं यन्मे मनसिवर्तते ।
तत्पूरयितुमीशोऽयं शम्भुरेव महेश्वरः ॥ २६ ॥

इति मनसि निधाय मन्त्रमेष स्मरहरभक्तिकलाभ्युपेतचेताः ।
रथमतुलमयुङ्क्त विश्वजैत्रं दशवदनो बलवान् निशाचरेन्द्रः ॥ २७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे रावणमन्त्रो नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०९॥

*

दशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तस्यासीत्तनयो घोरो मेघनाद इति श्रुतः ।
जातमात्रस्तु योऽरावीन्मेघवद्विपुलस्वरम् ॥ १ ॥

स क्रमेण बलोद्रिक्तौ वर्द्धमानो दिने दिने ।
राक्षसेन्द्रस्य भवनं भूषयामास तेजसा ॥ २ ॥

शेषस्य तनयां साध्वीं महीन्द्रस्य मनस्विनीम् ।
सुलोचनां नाम बलादुपयेमे स ऊर्जितः ॥ ३ ॥

स राक्षससुतैर्घोरैर्बलिभिर्विक्रमोर्जितः ।
पुरस्तात्पितुरासीन इदमूचे विनीतवत् ॥ ४ ॥

तात त्वमितिचित्तेन सचिन्त इव लक्ष्यसे ।
तस्य मे कारणं ब्रूहि का चिन्ता मयि जाग्रति ॥ ५ ॥

तमाह राक्षसाधीशो वत्स त्वं किमु वेत्स्यसि ।
चिन्तामूलमगाधं मे मनोरथवलन्मतेः ॥ ६ ॥

अहं हि प्रथमं देवान् स्वस्वविष्टपवर्तिनः ।
जिगीषुरस्मि विपुलामाजिहीर्षुश्च तच्छ्रियम् ॥ ७ ॥

स एव पुरुषोलोके मात्रा समजनि स्फुटम् ।
यस्य ख्यातिः परा पूर्वान् परांश्चाप्यतिवर्तते ॥ ८ ॥

यत्कीर्तिर्ब्रह्मभवने राजहंसायते सदा ।
महेन्द्रभवने चापि स्वर्गङ्गेव विराजते ॥ ९ ॥

यं भवे वर्तमानं च जानन्त्युत्कर्षभाजनम् ।
यस्याज्ञा विधिशक्रादिशिरोमाला बलम्बिनी ॥ १० ॥

स एव जातो जगति जनानां मध्यगोचरः ।
न चेत्कृमिप्रसूः किं नु कृमिं जनयते बत ॥ ११ ॥

को विशेषोऽत्र जगति कृमिपुंसोः प्रसूतयोः ।
ख्यातिवर्जितयोर्लोके वृथोदरभृतोरपि ॥ १२ ॥

अतः पराक्रमं पुत्र कृत्वा त्वं विदितो भव ।
लोकेऽस्मिन् कालवशः को न जातो न जनिष्यते ॥ १३ ॥

येषां नामानि लोकेऽस्मिन् गीयन्ते कविसत्तमैः ।
त एव माया जनिता जना जाग्रति भूतले ॥ १४ ॥

इति पितुर्वचनं विनिशम्य स प्रकृतितीक्ष्णमहोद्धतमानसः ।
अवददद्भुतवाक्पटुतानिधिः पितरमानतमर्त्यसुरासुरम् ॥ १५ ॥

यदात्थ तत्तथैवेह विक्रमेणैव लभ्यते ।
कीर्तिःसुरासुरनरमौलिमालावलम्बिनी ॥ १६ ॥

दैवं चेदनुकूलं स्यात्साधयेत् सर्वमेव तत् ।
महतां कुलजो विद्वान् स्वकुलोचितमूर्जितः ॥ १७ ॥

इत्युक्त्वा राक्षसवरकुमारैः सहितोबली ।
सभामण्डपतः सद्य उत्तस्थौ कुटिलाशयः ॥ १८ ॥

नत्वा पितुः स चरणौ तद्दत्तं वीटकंकरे ।
समादाय महावीरः स्वात्मनः सदनं ययौ ॥ १९ ॥

यस्मिन् सुलोचनादेवी शेषनागेन्द्रकन्यका ।
सखीसमाजमध्यस्था भासयत्यखिलादिशः ॥ २० ॥

तद्गृहं पानभोज्यादिसर्वसम्भारसम्भृतम् ।
उपेत्य राक्षसाधीशतनयो नारमत्तमाम् ॥ २१ ॥

शोकचिन्तासमाविष्टो न क्रीडति न भाषते ।
पित्रोक्तं वचनं चित्ते संस्मरन् विक्रमस्पृहः ॥ २२ ॥

तं तथा शोकसंवीतं दृष्ट्वा देवी सुलोचना ।
उवाच सादरं सम्यक् सम्पूज्य प्रश्रयान्विता ॥ २३ ॥

[1]सुलोचनोवाच

रक्षोऽधिनाथस्य दशाननस्य त्रैलोक्यनाथस्य महाविभूतेः ।
भवान् कुमारोऽप्रतिमः प्रसिद्धैः पराक्रमैश्चापधृगद्वितीयः ॥ २४ ॥

विभूतयोया नरकिंनराणां पुलोमजेशस्य सुरासुराणाम् ।
भुजङ्गमानां च दिगीश्वराणां लोकेश्वराणां च धरापतीनाम् ॥ २५ ॥

तास्ते गृहे भवितुं नाथ योग्या भवन्ति चैवाप्रतिमाः श्रियत्ते ।
न कंचनोत्कृष्टगुणं भवत्तः प्रत्येमि लङ्कावनिनाथसूनो ॥ २६ ॥

---

१. राज्ञी सु० रीवां ।

भवान् यदाऽऽस्फाल्य रणे स्वचापं पयोदसंघट्टगभीरघोषम् ।
विमुञ्चसीद्धा शरघोरवर्षां तदास्तु कः सम्मुखदेशवर्ती ॥ २७ ॥

द्रष्टुं च शक्नोतु भवन्तमारात् कःस्वित्पुमान् लब्धवरोऽपि नाथ ।
सुरासुरानीकधुरन्धराणां ह्रसन्ति वीर्याणि तवेक्षणाद्यत् ॥ २८ ॥

गर्जन् समुच्चारितसिंहनादं पिता तवायोधनगो दशास्यः ।
परान् जयत्यायुधपातलक्ष्यमन्वेषयानो नितरां त्रिलोक्याम् ॥ २९ ॥

भवानपि स्फूर्जति नाथ युद्धे दोर्विक्रमाकृष्टजगद्विभूतिः ।
विभीषयन् मार्गणचण्डवृष्ट्या मनांसि देवासुरपुङ्गवानाम् ॥ ३० ॥

रक्षोबलैरेव जगत्यधीशास्तातेन तेऽद्धा करदीकृतास्ते ।
येषां पदाब्जे बत रञ्जयन्ति भूपाः किरीटाग्रमणिप्रकाशैः ॥ ३१ ॥

आज्ञैव नूनं भवता प्रतीक्ष्या तातस्य कर्हि प्रभुतालसस्य ।
क्रूरभ्रुवा चेतसिलक्षितस्य विनिर्जये कस्यचिदासुरेश ॥ ३२ ॥

अतोऽनुशोचामि तवापि शोके किं कारणं सिद्धवरायुधस्य ।
किं कश्चिदास्ते जगतीहवीरो विनिर्जयं काङ्क्षसि यस्य युद्धे ॥ ३३ ॥

अद्या प्रभो कौणपचक्रवर्तिचूडामणेः सद्मनिदुर्लभं किम् ।
यच्चिन्तनेनात्तविशालतर्षो भवान् विमुह्यत्यसकृत्सुभूते ॥ ३४ ॥

मृगीदृशो मामनुदेवनागगन्धर्वविद्याधरवर्यकन्याः ।
त्वयैव सख्यं स्पृहयन्तिचित्ते ननु त्रिलोक्यामसमोद्धवीर्य ॥ ३५ ॥

वैयात्यमेतदपि नाथ मम स्वभावात्लोल्लात्मनः स्त्रिय उदन्तवरानुयोगे ।
यत्तादृशस्त्रिजगतामधिपालकस्य रक्षःपतेर्गृहकथा ननु केन तर्क्या ॥ ३६ ॥

भूर्युत्कर्षोऽसिभूतेः पदि पदि च भवन् भूय एवासि भूष्णु-
स्त्रैलोक्ये ख्यातिभाजायसि किमपि भवान् मौलिहीरः कुमार ॥

दुस्तर्क्यं नामवृत्तं तवपितुरथवा यत्तवैवापितत् किं ।
मत्तोऽपि स्त्रीस्वभावाच्चपललघुमतेर्लक्ष्यते गोपनीयम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सुलोचनाप्रश्नो नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११०॥

*

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा सुलोचना वाक्यमुवाच वदतां वरः ।
रक्षःपतेः सुतो वीरो मेघनादो जिगीषुकः ।। १ ।।

अलं मृषाप्रशंसाभिर्मम नागपतेः सुते ।
क्व नु मे विक्रमो लोके भवत्या लक्षितः प्रिये ।। २ ।।

को न प्रियजनैस्तन्वि स्वगृहेषु प्रशस्यते ।
विगुणेऽपि गुणा भान्ति प्रियत्वं चैतदेव हि ।। ३ ।।

इदानीमपि लोलाक्षि न मे सार्थकतां ययौ ।
अन्यत्र परिरम्भात्ते पीतं दोर्दण्डयोर्युगम् ।। ४ ।।

पटवासैरिव श्लोकैर्मम दिक्चक्रचुम्बिभिः ।
संसदो वीरवर्याणां कदा नु सुरभीकृताः ।। ५ ।।

दिक्कुम्भिकुम्भतटभूमदजम्बालशोषणः ।
क्व मे ज्वलति लोकेषु प्रतापाह्वो धनञ्जयः ।। ६ ।।

कदा नु मद्रथोद्घोषः कल्पान्तघनघर्घरः ।
वित्रस्तानां सुरस्त्रीणां कर्णेष्वतिथितां गतः ।। ७ ।।

मम शङ्खध्वनिस्तन्वि परिरब्धेशवक्षसाम् ।
निर्जरीणां कर्णपुटैराकर्णित उदित्वरः ।। ८ ।।

गत्वा स्वर्गपुरोपान्ते धनुर्ज्या घोरराविणी ।
कदाखलु कुरङ्गाक्षि दृढमास्फालिता मया ।। ९ ।।

पलायन्त्याः सुरान् हित्वा कवरीव सुरश्रियः ।
कदासि लतिका युद्धेष्वाकृष्टा मयका प्रिये ।। १० ।।

व्यर्थं किं स्तौषि पद्माक्षि रतिमात्रसुखप्रदम् ।
मामुद्धरमहावीरशिरोनत्यभिलाषुकम् ।। ११ ।।

अद्य खल्वधिकख्यातेः पितुः संसदि वृत्तिमान् ।
समश्रौषमहं वाचं दशास्याब्जवनालितीम् ।। १२ ।।

को न कुक्षिंभरिर्लोके स्वपिति स्वस्थवन्निशि ।
विरलः खलु यो दोर्भ्यां समुत्खातारिशल्यकः ।। १३ ।।

अनुत्सादितहृच्छल्यभूतभूरिद्विषद्बलः ।
क आप्नोतु निशि स्वापं वीरमानी सचेतनः ।। १४ ।।

एतदेवायुषोनाम साफल्यं हरिणेक्षणे ।
यद्द्विषन्मौलिरत्नानि लुठेयुः पादपीठयोः ।। १५ ।।

वनितायूथमध्येषु गुणानुल्लपतां नृणाम् ।
अपराभूतवीराणां को विशेषो मृगीपतेः ।। १६ ।।

अहं निजवलोद्रेकादुच्छ्रूनं दोर्युगं दधत् ।
अमर्षित इवात्यर्थमद्य तातेन संसदि ।। १७ ।।

सोऽहं परानन्निर्जित्य यदि वर्तेय तृप्तवत् ।
संकुत्सनीयस्तत्पित्रा त्रिजगज्जयमिच्छता ।। १८ ।।

जगज्जयमहोत्तर्षः क्व मे तातो दशाननः ।
क्व चाहं सुस्थितं मन्यो रतिप्रीत्या मृगीदृशाम् ।। १९ ।।

शोभते तस्य भोगोऽपि यूथेषु हरिणीदृशाम् ।
येन बोभुज्यते लक्ष्मीः शत्रुमण्डलगामिनी ।। २० ।।

लुण्ठितारिपुरश्रीभ्यां भुजाभ्यां परिरम्भणम् ।
अत्यर्थं रोचते मह्यं मानिन्या हरिणीदृशः ।। २१ ।।

यस्य पुत्रः पराभूय परानायाति मन्दिरे ।
स पुमान् स्वस्थवच्छेते जातवंशधुरन्धरः ।। २२ ।।

सोऽहं परान् पराभूय त्रिजगद्गर्भवर्तिनः ।
कदा रञ्जयितास्म्यङ्घ्री पितुर्मौलिमणित्विषा ।। २३ ।।

इत्थमेवानुशोचामि दिवारात्रमहं प्रिये ।
ज्येष्ठः खलु दशास्यस्य तनयो वीरमानिनः ।। २४ ।।

ब्रह्मोवाच

एवं वदन्तमेवामुं वीरमानिनमुद्धतम् ।
सुलोचनायाः सख्येका वाक्यमेतदवोचत ।। २५ ।।

सत्यं वदसि हे कान्त त्वं हि रक्षोमहेशितुः ।
कुमारः कुलधौरेयो वोढुं सर्वंभरं क्षमः ।। २६ ।।

किं त्वेषैव तव प्रेष्ठ त्रिजगद्विजयेन्दिरा ।
मत्सखी वीरपतिका वीरसूर्वीरसुस्नुषा ।। २७ ।।

नितम्बरथयोगिनी कुचतुरङ्गयुग्मोद्धुरा
स्मितद्युतिकृपाणिनी तनुरुचिव्रजानीकिनी ।
चलद्भ्रुकुटिचापिनी नयनतूणवीक्षाशरा
गतिद्विरदशालिनी सुवसनाञ्चलोद्यद्ध्वजा ।। २८ ।।

निरस्तशिशुताबला तरुणिमप्रतापोन्नति
निखाततनुरोमराजि जयसूचकस्तम्भिनी ।
इयं सुभगमत्सखीभुवनजैत्रलक्ष्मीरिव
क्षणक्षणसुखप्रदा भवतु ते सदैव स्थिरा ।। २९ ।।

इत्थमुत्साह्यमानोऽसौ प्रियभार्यावयस्यया ।
अरीरमत सानन्दं मेघनादो महामना: ।। ३० ।।

स्थित: पय:फेनसमूहशुभ्रेवरोपधाने मृदुचारुतल्पे ।
निनाय रात्रिं स सुलोचनाया मुहु: परीरम्भसुखाब्धिमग्न: ।। ३१ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे मेघनादप्रहर्षणो नामैकादशाधिकशततमोऽध्याय: ।।१११।।

*

द्वादशाधिकशततमोऽध्याय:

ब्रह्मोवाच

तस्यां निशि व्यतीतायां नागकन्या सुलोचना ।
भार्या रक्ष:कुमारस्य सस्मार जनकं निजम् ।। १ ।।

स तत्स्मृतिक्षणे साक्षात् प्रादुरासीदहीश्वर: ।
देव: शेषमहानाग: स्वप्रजाशुभवाञ्छक: ।। २ ।।

योषापुरं राक्षसराजसूनोर्विभूषयन् स्वेन निजेन तेजसा ।
अहीश्वर: सन्मुनिवेशधारी जटाधर: पिङ्गलभास्विलोचना: ।। ३ ।।

आजगाम स्वकन्याया: पार्श्वं भूरिवरप्रद: ।
अनिमेषदृगत्यर्थमानन्दपरिवर्द्धन: ।। ४ ।।

तमागतमभिप्रेक्ष्य साक्षात्स्वजनकं सती ।
सहर्षविनयोत्कण्ठमुपतस्थौ सुलोचना ।। ५ ।।

सम्पूज्य सादरं पश्चात्पाद्यार्घाचमनादिभि: ।
शुभमासनमास्तीर्य भेजे तं प्रश्रयादिभि: ।। ६ ।।

तामुवाचैष वात्सल्यादुद्भूतपुलकाङ्कुर: ।
चिरादृष्टासि पुत्रि त्वं कच्चित्ते सर्वत: सुखम् ।। ७ ।।

असि त्वं सुखिनी गेहे कच्चित्स्वजनबन्धुभि: ।
कच्चिदाज्ञाप्रतिहता तव स्वजनबन्धुषु ।। ८ ।।

कच्चित्ते हृदयं वत्से रमते स्वजनादिषु ।
कच्चित्तवाभिलषितं पूरयत्यस्त्रयेश्वर: ।। ९ ।।

कच्चित्ते श्वसुरो वीरस्त्रैलोक्यविजयी बली ।
जगज्जयोपलब्धैस्त्वामभीष्टैस्तोषयत्युत ।। १० ।।

कच्चित्तव सती श्वश्रूर्नाम्ना मन्दोदरी तु या।
सादरं सर्ववार्तासु त्वां पुरस्कुरुते भृशम् ॥ ११ ॥
कच्चित्ते हृदयं लग्नं श्वसुरस्य निकेतने।
शश्वत्पितृगृहासक्तिं विस्मृत्य स्वस्थमस्त्युत ॥ १२ ॥
कच्चिन्मातृविसंश्लेषो बाधते न च ते मनः।
कच्चिद्वसनभूषाढ्यैः पूर्यते ते मनःस्पृहा ॥ १३ ॥
कच्चित्ते दासिकाः सौम्याश्चक्षुःसूचितकारिकाः।
समये त्वोपसीदन्ति कच्चित्सद्भोगसम्पदः ॥ १४ ॥
कच्चित्स्मरसि कल्याणि वासं भोगवतीपुरे।
कच्चित्तत्रत्यलोकेषु स्निग्धासि त्वं पुरा यथा ॥ १५ ॥
कच्चिन्मातृपितृश्रेष्ठः पितृपक्षजनस्तव।
स्मरणेऽपि समायाति ऋद्धायाः पतिवेश्मनि ॥ १६ ॥
इत्यादि बहुधा शेषो वात्सल्येन सुविक्लवः।
कथयित्वा वचस्तस्यै साश्रुनेत्रो बभूव ह ॥ १७ ॥
ततः सा पद्मपत्राक्षी पितृवात्सल्यविक्लवा।
उदश्रुनयना किंचिदुवाच सुखिताशया ॥ १८ ॥
चिरान्निभालितास्म्यद्य जातं मे सुमहत्सुखम्।
अभून्मे सुदिनं चाद्य तात त्वद्दर्शनोत्सवात् ॥ १९ ॥
अपि मे सुखिनी माता प्रजासंततवत्सला।
गर्भधारणयोषाभ्यां यया सम्पालितास्म्यहम् ॥ २० ॥
अपि मां जननी सा मे कदाचित्कच्चिदात्मना।
स्मरति स्नेहवद्यस्यां हृदयं मे प्रतिक्षणम् ॥ २१ ॥
अपि त्वं गृह्यवार्तासु कदाचित्स्मृतवान्नु माम्।
शयने चासने पाने भोजन च प्रसंगतः ॥ २२ ॥
अपि मे सोदरस्तात स नित्यं सुखमेधते।
यो मां नयति सम्प्रीत्या मातृदर्शनलालसाम् ॥ २३ ॥
अप्युत्सवा बहुविधास्तव सन्ति दिने दिने।
कच्चिदुद्यमते तात ममाकारणकर्मणि ॥ २४ ॥
सर्वे भवन्तः सुखिनो भोगवत्यां निवासिनः।
विषीदाम्यहमेवैका वियुक्ता सकलैश्चिरात् ॥ २५ ॥
द्रष्टुमुत्कण्ठितात्यर्थमस्मि वः सकलानहम्।
सुहृदो बान्धवान्नित्यं सोदरान् स्निग्धचेतसः ॥ २६ ॥
नित्यं मम मनस्तात भवतां दर्शनोत्सुकम्।
ऋद्धापि राक्षसेन्द्रस्य सम्पद्यत्र न रोचते ॥ २७ ॥

द्रक्ष्यामि मातुर्वदनं कदा नु सुखदायकम् ।
इत्युत्कण्ठावशं चित्तं विश्राम्यति न कुत्रचित् ॥ २८ ॥

सम्यञ्च बहुलातातश्वसुरस्य गृहे मम ।
भाविनी त्वत्प्रसादेन ततोऽपि खलु भूयसी ॥ २९ ॥

साक्षादनुगृहाणेमा निजापत्यप्रजा इह ।
यासामुत्कण्ठितं चेतो भवतां दर्शनोत्स्तवे ॥ ३० ॥

मातामहे त्वयिभृशं मातुले सोदरे च मे ।
अमीषां मदपत्यानां निमग्नं सुचिरान्मनः ॥ ३१ ॥

मातृपक्षसुहृद्बन्धून् सुधाशीतलदर्शनात् ।
दिदृक्षन्ति सदा ह्येते तवापत्यप्रजाजनाः ॥ ३२ ॥

शीतलः खलु पक्षोऽयं मातृसम्बन्धिबन्धवः ।
न येषूत्कर्षोऽमर्षो वा न चापि प्रतियोगिता ॥ ३३ ॥

एवमाभाष्यजनकं चिरोत्कण्ठावशान्तरा ।
स्वागतस्याकरोत्तस्य पानभोजनसंविधाः ॥ ३४ ॥

सुलोचनायै प्रददावहीन्द्रो महोत्तमान् नागमणीन् सहर्षम् ।
मात्राभृशं स्निग्धहृदा दुहित्रे सम्प्रेषितान् स्वेन तथोपनीतान् ॥ ३५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे शेषागमने द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

*

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

स्वगृहागतमाज्ञाय शेषं नागपुरीपतिम् ।
आत्मनः श्वसुरं साक्षान्मेघनादः समाययौ ॥ १ ॥

रक्षः पतिकुमारेण जामात्रा नागनायकः ।
अमिलत्परमप्रीतो दोर्भ्यामालिङ्ग्य भूरिशः ॥ २ ॥

श्वसुरं स्वागताद्यैः स मानयित्वा महामनाः ।
हृष्यन्निदमुवाचोच्चैस्तत्प्रसादाभिलाषुकः ॥ ३ ॥

मेघनाद उवाच

अकस्मादुपपन्नं मे यन्नित्यमभिकाङ्क्षितम् ।
भवतो दर्शनं साक्षात्कल्याणगणभूयसः ॥ ४ ॥

श्रीमन्नागपुरीनाथ त्वया सम्भालिता जनाः ।
नित्यं ससुखमेधन्ते धनापत्यगृहादिभिः ॥ ५ ॥

कस्ते न दर्शनं वाञ्छेद्भूरिमङ्गलदायकम् ।
जनानां गृहमेधीयव्यापारव्याकुलात्मनाम् ॥ ६ ॥

यस्मै प्रसीदसि ब्रह्मन् दृशा कल्याणवर्षणः ।
स सर्वभुवनेष्वद्धा मान्यते नरपुङ्गवैः ॥ ७ ॥

भव मे वरदः साक्षाद्भूष्णोर्बहुलसम्पदः ।
निग्रहानुग्रहे कर्तुं यतः स्वाधीनधीरसि ॥ ८ ॥

एतावान्मेऽनुतापश्च त्वत्कृपाभाजनस्य किम् ।
हृदये स्थास्यति ब्रह्मन् यत्परोत्कर्षदर्शनम् ॥ ९ ॥

जिगीषामि जगत्सर्वं ससुरासुरमानुषम् ।
केवलं स्वात्मवीर्येण त्वत्कृपासाधनं यदि ॥ १० ॥

भवतः कृपया श्रीमन् सत्सम्बन्धप्रसूतया ।
किं न जेया मया युद्धे सुरकिन्नरमानुषाः ॥ ११ ॥

सदैवानुगृहाण त्व मतो मां भगवन् भृशम् ।
यत इन्द्रपुरीं जित्वा तत्सम्पदमिहानये ॥ १२ ॥

नित्यमाराध्नतां नृणां भवान् कामवरप्रदः ।
अत आराधनं कर्तुमिच्छामि तव साम्प्रतम् ॥ १३ ॥

भगवन् भवतो वीर्यं तेजश्चाप्रतिमं भवे ।
तदेव साधनं भूयान्मम लोकस्य निर्जये ॥ १४ ॥

यद्विचिन्त्य मया ध्यातं भगवंस्तव दर्शनम् ।
तन्मे सुनिश्चितं भूष्णुर्दर्शनानुग्रहात्तव ॥ १५ ॥

इति सम्प्रार्थ्य बहुधा शेषं प्रार्थितसिद्धिदम् ।
सपर्यया रुचिरया सुस्वागतमथाग्रहीत् ॥ १६ ॥

सोऽतिप्रसन्नो नागेन्द्रस्तस्मै कामवरं ददौ ।
जामात्रे भक्तिनम्राय स्वकृतापचितये[1] मुहुः ॥ १७ ॥

शेष उवाच

भवान् विजयतां वीर पुरीमिन्द्रस्य दुर्जयाम् ।
आनयस्वबलाच्चैव बन्दीकृत्य सुरश्रियम् ॥ १८ ॥

अन्येषां चापि देवानां वसतीस्त्वं महाभुज ।
बलेनैव पराभूय तच्छ्रियं स्वात्मसात्कुरु ॥ १९ ॥

---

१. अस्मिन् पादेऽक्षराधिक्यमार्षः ।

अनन्यवीरस्त्रैलोक्ये भव सम्प्रति दोर्बलात् ।
एकराट् च तवख्यातस्तातो भवतु भूतले ॥ २० ॥
देवानां किन्नराणां च नराणां यक्षरक्षसाम् ।
सुश्रोण्यश्चन्द्रवक्त्रास्त्वां सेवन्तां प्रतिवासरम् ॥ २१ ॥
किङ्कराः सन्तु ते देवा यक्षगन्धर्वकिन्नराः ।
ग्रहाः सूर्यादयो नागा नगाश्चैव सविग्रहाः ॥ २२ ॥
तत्तल्लोकश्रियः सन्तु सदने तव संततम् ।
यं यं कामयसे कामं तं तमाप्नुहि मद्गिरा ॥ २३ ॥
इन्द्रश्चन्द्रश्च सूर्यश्च शमनो यादसां पतिः ।
वसवो मरुतश्चैव याश्चान्या गणदेवताः ॥ २४ ॥
स्वैः स्वैः परिग्रहैर्युक्तास्तवैव वचसि स्थिताः ।
उपानच्चामरच्छत्रताम्बूलामत्रधारणैः ॥ २५ ॥
स्नानशय्यासनालेपपानभोजनकल्पनैः ।
नित्यं परिचरन्तु त्वां त्यक्तवीर्याः सवे सवे ॥ २६ ॥
इमं मणिं महावीर सदैव प्रत्ययावहम् ।
त्रिपुरेण तारकेण बलिना बलशालिना ॥ २७ ॥
धारितं शिरसालोकनिर्जयाय रणे रणे ।
अन्यैश्चासुरराजेन्द्रैर्मानुषेन्द्रैः पुरा युगे ॥ २८ ॥
धारितं पूजितं चैव भुवनोत्कर्षलब्धये ।
धारयस्व निजेशीर्षे तादृग्भूष्णुस्त्वमप्युत ॥ २९ ॥
मन्त्रविद्यां च ते वीर सद्यः प्रत्ययदायिनीम् ।
ददामियत्प्रभावेण सर्वान् कामानवाप्स्यसि ॥ ३० ॥
जप्त्वा मन्त्रमिमं प्राज्ञ पुरश्चर्याविधानतः ।
होष्यसि प्रचुरैर्हव्यैः समिद्धे जातवेदसि ॥ ३१ ॥
तत उत्थास्यति क्षिप्रं रथः स्वर्णपरिच्छदः ।
दिव्यायुधगणोपेतः सपताकः सवाहनः ॥ ३२ ॥
मेघगम्भीरनिर्घोषः सुरासुरविभीषणः ।
त्रासनः सर्वलोकानां शब्दमात्रेणभूयसा ॥ ३३ ॥
तेजसाप्रतिमश्चैव रंहसा चाप्रतीहतः ।
यमास्थाय भवान् जेता सुरेशं युद्धदुर्मदम् ॥ ३४ ॥
तत्रैव रथवर्ये तु दिव्यं चापं तथेषुधी ।
अक्षयौ बाणपूर्णौ च लब्धासि त्वं महामते ॥ ३५ ॥
तैः शरैः समरेषु त्वां वर्षन्तं रणदुर्दिने ।
प्रावृषेण्याम्बुधरवत् को नु द्रक्ष्यति सम्मुखे ॥ ३६ ॥

उपशक्रपुरि प्राप्ते दुष्प्रेक्ष्यं त्वां स्वतेजसा।
चापज्यां रणयन्तं च ज्ञास्यन्ति सुरयोषितः॥ ३७॥

वित्रस्तास्तास्तदा सद्यः पतीनालिङ्ग्य वक्षसि।
कर्णौ पिधायस्थास्यन्ति कथमप्यस्तधैर्यकाः॥ ३८॥

तासांच पतयस्ते वै सुराः समरकातराः।
अशक्तास्त्वत्पुरः स्थातुं दैवं प्रार्थ्य कथंचन॥ ३९॥

कन्यारत्नानि रत्नानि समादाय करद्वये।
बद्धाञ्जलिपुटाः सौम्या उपस्थास्यन्ति भृत्यवत्॥ ४०॥

किं बहूक्तेन वीर्येण मम मन्त्रप्रभावतः।
रुद्रोऽपि भगवान् साक्षात्त्वया योद्धुं न शक्यते॥ ४१॥

भवतोऽतिप्रियां चैनां मम पुत्रीं सुलोचनाम्।
देव्योऽपि मौलिमणिभी रञ्जयिष्यन्ति पादयोः॥ ४२॥

भुवनेषु तव ख्यातिर्मम प्रीत्यै भविष्यति।
इति ते संददाम्यद्धा भूयः कामवरानहम्॥ ४३॥

इति स प्रणयात्सुलोचनाया मुदितस्तत्पतये वरान् विशिष्टान्।
प्रददौ बहुधा भुजङ्गमेन्द्रः स च तुष्टाव तमुच्चकैश्चिराय॥ ४४॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे मेघनादवरलाभो नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११३॥

*

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

सुलोचनाया वात्सल्यादुवास पुरि रक्षसाम्।
भगवान् शेषनागेन्द्रोऽददन् कामवरान् बहून्॥ १॥

पूरयित्वा स्वदुहितुर्बहुधा स मनोरथम्।
तद्विसृष्टस्ततश्चैव स्वेच्छया स्वपुरीं ययौ॥ २॥

शेषस्यागमनं पुर्य्यां लङ्कायां दशकन्धरः।
श्रुत्वा कामवरावाप्तिं ततः स्वतनयस्य च॥ ३॥

अधृष्यद्धृदयेनासौ ज्ञात्वा स्वोत्कर्षमुत्तमम्।
सिद्धाभिलाषं तं वीक्ष्य मुदितं मुदितोऽभवत्॥ ४॥

अथोदयतो जगज्जेतुं मेघनादो महामनाः ।
कृत्वा शेषाहिनिर्दिष्टं मन्त्रस्य विधिमुत्तमम् ॥ ५ ॥
स महीयस्तपस्तेपे मन्त्रसाधनतत्परः ।
सोमजायास्तटे पुण्ये यत्र वैदूर्यपर्वतः ॥ ६ ॥
मन्त्रमाराध्य कष्टेन चक्रे होमार्चनादिकम् ।
एवं यथाविधि कृते प्रादुरासीद्रथो महान् ॥ ७ ॥
होमद्रव्यैर्विधिहुतैः समिद्धाज्जातवेदसः ।
जगज्जयकरो दीप्तस्तेजसाप्रतिमेन यः ॥ ८ ॥
सर्वायुधगणैः पूर्णः सिद्धसर्वपरिच्छदः ।
जगज्जैत्रमहाघोषः साक्षादग्निसमद्युतिः ॥ ९ ॥
तं दृष्ट्वा प्रससावोच्चैः कुमारो राक्षसेशितुः ।
सिद्धं मनोरथं मेने सुरेन्द्रपुरनिर्जये ॥ १० ॥
अथासौ दर्पितो वीरः सुमुहूर्ते शुभोदये ।
विहिताशीर्मुनिगणैर्मन्त्रपाठपुरःसरम् ॥ ११ ॥
स्वस्तिपुण्याहमावाच्य सिक्तः पल्लवपाथसा ।
दिव्येन वर्मणा पश्चाद्दंशितो विपुलद्युतिः ॥ १२ ॥
सुधन्वा बद्धनिस्त्रिंशो बद्धाक्षयशरेषुधिः ।
मातरं पितरं चैव प्रणम्य विहिताञ्जलिः ॥ १३ ॥
स्वेष्टदेवं हृदि स्मृत्वा भालोदयत्कुङ्कुमाक्षतः ।
महान्तं रथमास्थाय प्रातिष्ठत जगज्जयी ॥ १४ ॥
गत्वास उत्तरामाशां कुबेरेण निषेविताम् ।
अधिज्यं धनुरास्फाल्य यक्षगन्धर्वकिन्नरान् ॥ १५ ॥
त्रासयामास टांकारैर्वाणवर्षपुरःसरैः ।
अनम्रान् नामयामास निजवीर्येणभूयसा ॥ १६ ॥
तस्योपनिन्युर्गन्धर्वा रत्नानि विविधान्यपि ।
अत्यर्थसुन्दरीः कन्या धनानि विपुलानि च ॥ १७ ॥
कुबेरस्त्रस्तहृदयस्तस्य वीर्येण कम्पितः ।
मेने तद्विहितामाज्ञामुपनीतमहानिधिः ॥ १८ ॥
उत्तराशां विजित्येत्थं सर्वस्वहरणोद्धतः ।
चन्द्रचूड शिवं वीक्ष्य समाराध्य सपर्यया ॥ १९ ॥
लब्ध्वा कामवरं चास्मात्ततो निववृते बली ।
एवमाशाश्चतस्त्रोऽपि जिगाय परमोद्धतः ॥ २० ॥
अनिर्जिताश्च ये पूर्वं दशास्येन महौजसा ।
अजैषीत्तान् नरपतीनाजहार धनानि च ॥ २१ ॥

ततः प्रतस्थौ बलवान् जेतुं सुरपतेः पुरीम् ।
नाम्नामरावतीं यत्र स्वयमास्ते पुलोमजा ॥ २२ ॥

तस्याः परिसरे गत्वा शङ्खं दध्मौ महाभुजः ।
उत्तेजयन् महेन्द्रस्य चित्ते युद्धमहोत्सवम् ॥ २३ ॥

श्रुत्वा शङ्खरवं तस्य वीरस्य दृढधन्वनः ।
जजागार महेन्द्रस्य हृदि युद्धमहोत्सवः ॥ २४ ॥

तमाययौ सुरपतिर्वारणेन्द्रं समाश्रितः ।
देवतानीकमध्यस्थो युद्धदुर्मदमानसः ॥ २५ ॥

धनुष्मान् कवची खड्गी वज्रहस्तः सुराधिपः ।
अमरावत्याः[1] परिसरे रक्षसा योद्धुमाययौ ॥ २६ ॥

तमनुप्रययुर्देवा आदित्या वसवस्तथा ।
भास्वरास्तुपिताः साध्या विश्वेदेवास्तथाखिलाः ॥ २७ ॥

अन्ये चोच्चावचा देवा गन्धर्वा मरुतस्तथा ।
अग्निर्यमो निर्ऋतिश्च वरुणो धनदस्तथा ॥ २८ ॥

ये निर्जिताः पुरा तेन विजयावसरे दिशाम् ।
तेऽमर्षिताः सुरगणा मघोना सह संयुगे ॥ २९ ॥

सायुधा बद्धवर्माणो रक्षसा योद्धुमाययुः ।
शङ्खनादान् प्रकुर्वन्तः स्वं स्वं वाहनमास्थिताः ॥ ३० ॥

तेऽगृह्णन् पुरतो भूत्वा राक्षसेन्द्रकुमारकम् ।
भुशुण्डीः परिघांश्चक्रान् गदाखड्गपरश्वधान् ॥ ३१ ॥

वर्षन्तः सायकांस्तीक्ष्णान् धनुर्मण्डलनिर्गतान् ।
युगपच्छादयामासुः सर्वे तं परमायुधैः ॥ ३२ ॥

सोऽपि क्रुद्धो महायुद्धे विक्रमन् सुमहाबलः ।
अयोधयत्सुरपतिं विक्रमन्तं सुदुर्मदम् ॥ ३३ ॥

इत्येवं युध्यतस्तस्य स्वर्गे विक्रमशालिनः ।
प्रादुरासुर्महाशब्दाः आयुधोत्क्षेपसम्भवाः ॥ ३४ ॥

सोऽत्यर्थतीक्ष्णान् विशिखान्नैरावतकटद्वये ।
निचखान महावीर्यः शुष्कदानजले भयात् ॥ ३५ ॥

स्त्रायुधैश्छादयामास सगजेन्द्रं पुरन्दरम् ।
तान् कृन्तयित्वा मघवा निश्चक्राम महाहवे ॥ ३६ ॥

युयुधे मेघनादेन समवीर्येण गोत्रभित् ।
अस्त्रैः शस्त्रैश्च वहुभिर्वज्रनिष्पेषराविभिः ॥ ३७ ॥

---

१. पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षः ।

स कुम्भयोर्गजेन्द्रस्य ताडयामास सायकैः ।
शूलेन चापि विव्याध तस्य मर्मणि संयुगे ॥ ३८ ॥

ऐरावतः सचीत्कारं पलायत रणाङ्गणात् ।
ताड्यमानोऽतिबलिना मेघनादेन भूरिशः ॥ ३९ ॥

इन्द्रस्त्यक्त्वा गजपतिं रथं मातलिनाऽऽहृतम् ।
आरुह्य द्रुतमायातो दशास्यसुतसम्मुखे ॥ ४० ॥

तमुवाच प्रहस्यैष महावीरो रणाङ्गणे ।
परावृत्तोऽपि किं शक्र पुनरायासि सम्मुखम् ॥ ४१ ॥

कथं स्थास्यति ते लज्जा पराभूतस्य वै मया ।
अतः प्राणान् समादाय द्रुतं याहि रणाङ्गणात् ॥ ४२ ॥

नो चेत्त्वां विरथं कृत्वा छिन्नवर्माणमेव च ।
विशस्त्रं दुर्गतं चापि वाणैस्तीक्ष्णातमैरहम् ॥ ४३ ॥

बद्ध्वा दृढतरैः पाशैर्नेष्यामि स्वां पुरीं जवात् ।
वीर्यं प्रकटय स्वीयं न चेद्द्रक्ष्यसि दुर्गतिम् ॥ ४४ ॥

इत्युदीर्य वचः क्रुद्धश्छादयामास तं शरैः ।
सवाहनध्वजरथं पुरुहूतं समातलिम् ॥ ४५ ॥

सोऽतिकृच्छ्राद्विनिष्क्रम्य रक्षसः शरपञ्जरात् ।
उदतोलयत क्रुद्धस्तं हन्तुं वज्रमात्मनः ॥ ४६ ॥

स तत्करं सकुलिशं विव्याध स्वमहेषुणा ।
यथा पपात धरणौ कुलिशं तेन संहितम् ॥ ४७ ॥

हस्तात्प्रविच्युते वज्रे महेन्द्रस्य महात्मनः ।
तत्र सुर्देवताः सर्वा हाहेति च विचुक्रुशुः ॥ ४८ ॥

स तस्मिन्नन्तरे शक्रं विव्यधे दशभिः शरैः ।
विशस्त्रमपि मन्वानः शीघ्रमात्मजयेच्छया ॥ ४९ ॥

इन्द्रमत्याकुलं वीक्ष्य परेणाक्रान्तमाहवे ।
अन्ये देवा युयुधिरे बलिनातेन रक्षसा ॥ ५० ॥

अत्याहिताः प्रयुयुजुः स्वानि स्वान्यायुधानि ते ।
युगपद्योधयामासुर्मेघनादं महाबलम् ॥ ५१ ॥

निरकृन्तत् स बलवांस्तेषामायुधसंहतिम् ।
प्रत्येकं ताडयामास सुतीक्ष्णैरायुधैर्निजैः ॥ ५२ ॥

ते ताडिता दशमुखस्य कुमारकेण प्रादुद्रुवुर्दश दिशस्त्रिदशास्तदानीम् ।
आदाय भीतिभवकम्पभृतो निजासून्नो सम्मुखे समरसीम्नि पुनर्बभूवुः ॥ ५३ ॥

देवान् पलायनपरान् मघवा विलोक्य धैर्यच्युतिप्रसभवेपितसर्वगात्रः ।
आत्ता सुमात्रकुशलो जविना रथेन पृष्ठं प्रदाय समराद्व्यचलत्सुभीतः ॥ ५४ ॥

इति निजभुजवीर्याद् द्रावयित्वा सुरौघान् ध्वनितविजयशङ्खस्तत्क्षणे मेघनादः।
सरभसममराणां राजधानीं विजित्य श्रियमलघुममीषां स्वात्मसादेष चक्रे ॥ ५५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे महेन्द्रपराजये चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११४॥

*

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

यदैवैष जिगायेन्द्रं मेघनादो रणाङ्गणे।
तदैवेन्द्रजिदित्याख्यांलेभेऽसौ भुवनत्रये ॥ १ ॥

आनिनाय पुरीं लङ्कां बन्दीकृत्य सुरस्त्रियः।
आजहारैष रत्नानि धनानि विपुलानि च ॥ २ ॥

आसनं चामरे छत्रं वाहनं सम्पदोमणीन्।
विभूतीरखिलाश्चैव सुरेन्द्रस्य जहार सः ॥ ३ ॥

इन्द्रो मरुद्गणैः साकमिन्द्राण्या च भयातुरः।
मेरुकन्दरमासाद्य निन्ये कालं प्रतीक्षया ॥ ४ ॥

यदा यदासुरैरेवमाक्रान्ताः सुरसम्पदः।
तदा तदा स भगवान् विष्णुः प्रादुरभूत्पुरा ॥ ५ ॥

अतोऽधुनापि गोविन्दः साक्षाद्देवो रमापतिः।
जनिष्यते हितार्थं नः स एतान् क्षपयिष्यति ॥ ६ ॥

आराधनन्तु सुराः सर्वे तमेवैकं जगत्पतिम्।
इति विश्वासमालम्ब्य शक्रोऽस्थान्मेरुकन्दरे ॥ ७ ॥

रावणोऽपि जगज्जित्वा सानुजः ससुहृद्बलः।
प्रसभं भूभृतां कन्या वन्दीकृत्य जगत्त्रये ॥ ८ ॥

सुवर्णरत्नमुक्तानां मणिमाणिक्यसम्पदाम्।
भारान् प्रवलरक्षोभिर्वाहयित्वा नृपैरपि ॥ ९ ॥

प्रेषयामास परमां राजधानीं स आत्मनः।
इत्थं जित्वा त्रिलोकीं सनादयित्वा निजं जयम् ॥ १० ॥

यशः पटहनादेन घोषयित्वा दिशो दश।
आजगाम मुदायुक्तो गीयमानो द्विषद्गणैः ॥ ११ ॥

तावत्पुत्रोऽपि तस्यासाविन्द्रजिज्जितवासवः ।
सुमहसा[त्या ?]ख्यया युक्त आजगाम निजां पुरीम् ॥ १२ ॥

श्रुत्वा सूनोर्विक्रमं स्वर्गलोके तं तादृशं देवसेनापलायम् ।
जहर्षचित्तेऽतितरां प्रमोदरोमाञ्चिताशेषवपुर्दशास्यः ॥ १३ ॥

तत्रेन्द्रजिद्राक्षसराजधान्यामारोपयद्देवतरूंस्त्रिविष्टपात् ।
उत्पाट्य शाखासहितान् समूलं बृहच्छिफान् पुष्पफलच्छदाढ्यान् ॥ १४ ॥

यानि कानि च वस्तूनि स्वर्ग्याणि भुवि मानुषैः ।
अलभ्यानि च सोऽकार्षीत्तानि तानि निजे पुरे ॥ १५ ॥

पिता पुत्रश्च तौ वीरौ त्रैलोक्यपरितापिनौ ।
अतीव भीषणौ क्रूरौ सज्जनानां बभूवतुः ॥ १६ ॥

विष्णुपक्ष इति ज्ञात्वा देवान् साधून् मुनीन् द्विजान् ।
द्रावयाञ्चक्रतुर्धर्मात् स्वस्यैवोत्कर्षकामुकौ ॥ १७ ॥

नराणां किन्नराणां च देवगन्धर्वरक्षसाम् ।
नागानां च नगानां च कन्याः कमललोचनाः ॥ १८ ॥

हृत्वा सम्पश्यतां तेषां निन्यतुः सदनं स्वकम् ।
ताभ्यां चक्रे जगत्सर्वं निःश्रीकं सर्वतो दिशम् ॥ १९ ॥

प्रसारिता भुवने राक्षसौघाः प्रचण्डवीर्याभयदा जनानाम् ।
तैः सर्वतोयातमखोपघातैश्चक्रे समेतैः कदनं धरण्याम् ॥ २० ॥

प्रशामिता विप्रगृहेषु पावकास्त्रयी च शान्तिं गमिता प्रसह्य ।
सनातनोधर्मपथश्चनाशितोऽखिलंजगदुष्टदशामनीयत ॥ २१ ॥

दशाननं चेन्द्रजितं तदङ्गजं सुबाहुमारीचमुखांश्च राक्षसान् ।
त्रिमस्तकं चापि खरं च दूषणं विद्युज्जिह्वं कौणपानं प्रवीरम् ॥ २२ ॥

आश्रित्य रक्षोनिबहान् विशङ्कं विद्रावयामासुरशेषलोकम् ।
त्रयीपथं धर्मपथं सतां पथं निदूषयामासुरहो मदोद्धताः ॥ २३ ॥

लङ्केशबलमाश्रित्य राक्षसाः सुमहोद्धताः ।
धर्मं विद्रावयामासुः पीडयन्ति स्म धार्मिकान् ॥ २४ ॥

विष्णुभक्तान् सतः साधून् धर्मकर्मपरायणान् ।
त्रयीपथजुषो लोकान् याज्ञिकान् दीक्षितानपि ॥ २५ ॥

नानारूपधरा रौद्राः प्रविश्य गृहमेधिनाम् ।
गृहेषु याज्ञियानग्नीन् शमया मासुरुद्धताः ॥ २६ ॥

मुनीनामाश्रमेष्वद्धा प्रविश्य तपसि स्थितान् ।
द्विजानुद्वेजयामासुर्मायिनो राक्षसाः खलाः ॥ २७ ॥

कन्या विदूषयामासुर्नानारूपैः प्रविश्य ते ।
दारानपहरन्ति स्म जनानां पापचेतसः ॥ २८ ॥

यज्ञे याजे विवाहे च सीमन्तोपनयादिषु: ।
मण्डपादिप्रतिष्ठासु देवतास्थापनादिषु ॥ २९ ॥

विण्मूत्रवर्षणा घोरा: श्मशानपांसुवर्षणा: ।
निष्ठीवनाद्यैर्नितराममेध्यं कुर्वते खला: ॥ ३० ॥

धर्मद्रोहमुपाश्रिता: श्रितबलीलङ्काधिराजेन ते
रौद्रा रात्रिषु संरचन्त दुदितामर्षा: सतां घातुका: ॥
नानारूपधरास्त्रयीपथसमुच्छित्त्यै गृहीतव्रता ।
हिंसाकर्मपरायणा: प्रतिदिनं वृद्धिं ययूराक्षसा: ॥ ३१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे राक्षसप्रभावोनाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्याय: ॥ ११५ ॥

*

षोडशाधिकशततमोऽध्याय:

ब्रह्मोवाच

यद्यप्यस्त्रपराजस्य पुर्य्यां प्रतिनिकेतनम् ।
यज्ञयागादिकर्माणि नाहीयन्त दिने दिने ॥ १ ॥

गृहे गृहे देवपूजामतिथीनां तथार्चनम् ।
ब्राह्मणानां पुरस्कारं राक्षसा अपि कुर्वते ॥ २ ॥

तथापि तामसो धर्मस्तेषामत्युग्रमानिनाम् ।
स्वाध्याय: संयमो दानं सर्वमेतेषु तामसम् ॥ ३ ॥

धर्मस्य प्रभवो विष्णो: स एवैषां पराङ्मुख: ।
तत्कुतोऽस्त्वमला बुद्धिरमीषां घोरकर्मणाम् ॥ ४ ॥

हिंसाप्रायो मखश्चैषा मर्थ: कामान्नहीतर: ।
धर्म: कामैकफलको मोक्षं चैते न जानते ॥ ५ ॥

सत्त्वं स्वप्नेऽपि नामीषां यल्लिङ्गं नियतं हरे: ।
रजस्तमोमयी वृत्ति: स्वार्थोन्मूलितसत्पथा: ॥ ६ ॥

काम: क्रोधस्तथा लोभो हिंसामोहो मदस्तथा ।
मात्सर्यं भूतविद्रोह: स्वभावादेषु सर्वदा ॥ ७ ॥

इत्थं धर्मोऽपि तामस्या वृत्त्या केवलया किल ।
बाधितप्राय एवैषां तेनाधर्म: प्रतिष्ठित: ॥ ८ ॥

दम्भेन क्रियतेऽमीभिर्धर्मवञ्चनहेतवे ।
तम:स्वभावाद्वृत्तिस्तु सात्त्विकी नैव दृश्यते ॥ ९ ॥

इत्यधर्मपथाधिष्ठैरमीभिरखिलं जगत् ।
अत्याकुलीकृतमभूत्सदेवनरकिंनरम् ॥ १० ॥

अथ भूमीभरं दृष्ट्वा ब्रह्मा लोकहितैषणः ।
पुरस्ताच्छक्रसर्वादीन् कृत्वा क्षीराम्बुधेस्तटे ॥ ११ ॥

श्वेतद्वीपं ययौ विष्णोः स्थानं यत्र मनोरमम् ।
यत्र स्वय सभगवाननिरुद्धो विराजते ॥ १२ ॥

शेषशायी जगन्नाथो लक्ष्म्या नित्यं निषेवितः ।
सुपर्णविश्वक्सेनाद्यैः पार्षदैश्च समन्वितः ॥ १३ ॥

सनकाद्यैर्महायोगिवरेण्यैः समभिष्टुतः ।
मूर्तिमत्या तथा त्रय्या महोपनिषदां गणैः ॥ १४ ॥

समासव्यासयोगेन मुनीन्द्रैर्नारदादिभिः ।
पृथक् पृथक् स्तुतयशा गुणैः सर्वैर्निषेवितः ॥ १५ ॥

कल्याणपूर्णगुणको निर्दोषशुभविग्रहः ।
लोकरक्षाविधानार्थं सात्त्विकीं तनुमाश्रितः ॥ १६ ॥

भासा निर्मलया नित्यं दयोतिताशेषदिक्तटम् ।
पूर्णचन्द्रमुखदयोतमञ्जुस्मितविराजितः ॥ १७ ॥

लसत्किरीटकटककटिसूत्राङ्गदाञ्चितः ।
कर्णद्वयसमुद्दीप्तस्फुरन्मकरकुण्डलः ॥ १८ ॥

पीताम्बरधरः श्यामश्चतुर्भुजविराजितः ।
आयुधैः शङ्खचक्राद्यैर्मूर्तिमद्भिरुपासितः ॥ १९ ॥

कौस्तुभोद्दयोतविध्वस्तमायामोहतमोमलः ।
प्रसादसुमुखो देवो भक्तानुग्रहकारकः ॥ २० ॥

तत्र गत्वा कमलभूः सर्वदेवगणैर्वृतः ।
स्तुत्वा श्रीविष्णुसूक्ताद्यैश्चतुर्वदननिर्गतैः ॥ २१ ॥

प्रसादसुमुखं ज्ञात्वा देवदेवं रमापतिम् ।
उपप्लवं राक्षसौघैर्जगतां संव्यजिज्ञपत् ॥ २२ ॥

ब्रह्मोवाच

देवदेव महाविष्णो शुद्धसत्त्वतनूर्जित ।
विज्ञातमेव सर्वं ते सर्वज्ञस्य जगत्प्रभोः ॥ २३ ॥

अतो विज्ञापनं नाथ पुनरुक्तायते मम ।
तथापि प्रभवे वाच्यं भक्तैर्दुःखं स्वहृद्गतम् ॥ २४ ॥

साम्प्रतं खलु रक्षोभिः प्रबलैर्घोरदर्शनैः ।
जगद्विध्वंसितप्रायं भवता पाल्यते नु यत् ॥ २५ ॥

प्रतिकूलक्रिया एते राक्षसा भुवनद्रुहः ।
दशास्यबलमाश्रित्य न विद्मः किं चिकीर्षवः ॥ २६ ॥

त्रयी तु नाशितप्राया नाशिताः साग्नयो मखाः ।
अधर्मप्रचुरो लोकः कृत एव न संशयः ॥ २७ ॥

परदारापहरणाः परद्रव्यापहारकाः ।
कन्यानां दूषका एते जगद्विध्वंसकाः खलाः ॥ २८ ॥

महीं रसातलं नेतुं प्रवृत्ताः पापबुद्धयः ।
प्रधान एषां लङ्केशः सोऽपि पापतमः खलः ॥ २९ ॥

स निषेधति न स्वीयान् राक्षसान् पापकारिणः ।
सतां विद्रोहकान् पापान् जगत्संतापकारिणः ॥ ३० ॥

अग्रेऽपि खलु दैतेयैरत्युग्रैः पापकर्मभिः ।
मग्नप्रायां महीं कृत्स्नामुद्धार भवान् प्रभो ॥ ३१ ॥

दत्तश्च नो वरः स्वामिन् भवता वरदेश्वर ।
एवं यदा यदा पीडा दानवैर्वो भविष्यति ॥ ३२ ॥

धर्मग्लानिश्च नियतं तदा धास्ये तनूमहम् ।
शुद्धसत्त्वमयीं देवा हरिष्यामि च वः शुचम् ॥ ३३ ॥

अतो वयं सुविश्वस्ता भवन्तमखिलेश्वर ।
शरण्यं शरणं प्राप्ता दुःखं प्रति[1]विधेहि नः ॥ ३४ ॥

कमन्यं शरणं यामो भवन्तं रक्षकं विना ।
रक्षितव्या वयं नाथ प्रजाः स्वा निगमैः सह ॥ ३५ ॥

इत्युक्तवन्तं ब्रह्माणं भगवान् कमलापतिः ।
उद्भूतकरुणाद्राक्षः प्रहस्येदमवोचत ॥ ३६ ॥

श्रीभगवानुवाच

पुरैव चिन्तितं ब्रह्मन् भवतामीप्सितं मया ।
अहं ह्यवतरिष्यामि रघुवंश्यस्य भूपतेः ॥ ३७ ॥

नाम्ना दशरथाह्वस्य धर्मपत्नीषुनिश्चितम् ।
कृत्वा चतुर्धा रूपाणि वासुदेवादिभिः स्वयम् ॥ ३८ ॥

अतो मामुनवर्तन्तां देवताः सकला अपि ।
याभिः सहाहं वर्तेयं भूतलेऽनन्यगोचरः ॥ ३९ ॥

मानवेषु विहंगेषु पशुषु प्लवगादिषु ।
अंशैरवतरन्त्वेते देवाः कार्यचिकीर्षवः ॥ ४० ॥

---

१. प्रतिविधेहि = दूरीकुरु ।

इन्द्रस्याग्नेर्यमस्यापि निर्ऋतेर्वरुणस्य च ।
वायोरथकुबेरस्य रुद्रस्य तपनस्य च ।। ४१ ।।

अन्येषां चापि देवानामंशाः प्रादुर्भवन्तु वै ।
अथाहमपिसंयुक्तः स्वांशैर्यास्यामि भूतले ।। ४२ ।।

इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुः ब्रह्मादीनमरोत्तमान् ।
व्यसर्जयत् प्रति दिवं नत्वा धामानि ते ययुः ।। ४३ ।।

ततो मानुषवर्येषु प्लवगानां कुलेषु च ।
नानारूपधरा देवाः प्रादुरासुर्महीतले ।। ४४ ।।

यैः सार्द्धं भगवान् हरिः प्रतिदिनं चिक्रीड लीलाद्भुतं
रूपं बिभ्रदमेयशक्तिविभवो दुर्ज्ञेयतत्त्वो जनैः ।।
ते देवाः कतिचिन्मनुष्यवपुषः केचित्कपीनां कुले-
ष्वन्ये पक्षिषु सम्बभूवुरितरोऽऋक्षादियोनीः श्रिताः ।। ४५ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे राघवप्रार्थनं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ।। ११६ ।।

*

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

स साक्षाद्भगवान् रामो लीलामानुषविग्रहः ।
अरमच्चित्रकूटाद्रौ स्वानां प्रियहितं दधत् ।। १ ।।

एवं दिनेषु गच्छत्सु चित्रकूटमहीधरे ।
रममाणं रमानाथमभ्युपेयुर्मुनीश्वराः ।। २ ।।

यर्हि श्रीजानकीदेवी क्रीडन्ती स्वेच्छया वने ।
अत्रेर्महामुनीन्द्रस्य सदनं समपद्यत ।। ३ ।।

तदैव भगवान् रामोऽप्याश्रमं तस्य योगिनः ।
द्रष्टुकामोऽन्वगात्तत्र यत्र सा जनकात्मजा ।। ४ ।।

अनुसूया सतीरत्नमालयन्ती मनोज्ञया ।
गिरा प्रपूजितात्यर्थं तया स्रक्चन्दनादिभिः ।। ५ ।।

आगतं पुरुषश्रेष्ठमत्रिर्योगभृतां वरः ।
स्वागतासनपाद्यार्घ्यभोजनाद्यैरमानयत् ।। ६ ।।

उवाच स मुनिश्रेष्ठो ज्ञात्वा तं परमेश्वरम् ।
अहो स्वभावमधुरं चरितं ते रघूद्वह ॥ ७ ॥

येन पालयसे धर्मं द्विजानां गृहमेधिनाम् ।
मुनीनामाश्रमजुषां यतीनां च कृतात्मनाम् ॥ ८ ॥

त्रयीमार्गं सतां धर्मं कुलधर्मं तथा नयम् ।
नित्यं पालयसे राम त्वं सूर्यकुलभूषण ॥ ९ ॥

प्रार्थिताधिकदातारस्तव पूर्वे महीश्वराः ।
अचिन्तितार्थदाता त्वं सर्वेभ्योऽपि विशिष्यसे ॥ १० ॥

इत्युच्यमानो बहुशस्तं निवार्य महामुनिम् ।
उवाच रघुशार्दूलो वाचा पेशलया भृशम् ॥ ११ ॥

अहो तवाश्रमं ब्रह्मन् पश्यतो मे मनो भृशम् ।
जगाम निर्वृतिं पूर्णां सत्त्वं वसति यत्र वै ॥ १२ ॥

यत्र सत्त्वगुणः शुद्धो मनोमालिन्यमार्जनः ।
तत्रैव योगो धर्मश्च तपः सत्यं दया तथा ॥ १३ ॥

नन्वेते मुनयः शान्तास्तपसा दग्धकिल्बिषाः ।
कल्याणदर्शना मह्यं रोचन्तेऽनितरां हृदि ॥ १४ ॥

तवाश्रमचरा ब्रह्मन् शुका अपि पठन्त्युत ।
ॐकारममलं वर्णं यद्बीजं वेदभूरुहः ॥ १५ ॥

साक्षात्तपोनिधिर्ब्रह्मन् भवान् धर्मप्रवर्तकः ।
त्वयाऽम्नातं विधिं लोका अनुवर्तन्त आदृताः ॥ १६ ॥

आत्मारामस्य ते ब्रह्मन्नाप्तकामत्वमीदृशम् ।
भाति यस्मिंस्तृणमिव भोगो ब्राह्मपदावधिः ॥ १७ ॥

आज्ञापय यथेष्टं मां लोकानां शर्महेतवे ।
सर्वतः परिपूर्णस्य न तेऽवाप्तव्यमिष्यते ॥ १८ ॥

युष्माकं परिचर्यायां नित्यमुत्कण्ठितोऽस्म्यहम् ।
जानेऽतिधन्यमात्मानमाज्ञापूर्विकयामुया ॥ १९ ॥

इदं वः सुखदं स्थानं चित्रकूटगिरेस्तटे ।
संफुल्लवकुलाशोककदम्बतरुमण्डितम् ॥ २० ॥

अत्र ते योगसिध्यैव सुसिद्धाः सर्वसम्पदः ।
फलन्ति पादपा यत्र मनोभिलषितैः फलैः ॥ २१ ॥

सर्वभोगानुकूलानां श्रीणां सपदि सम्भवे ।
नित्यमेवाप्रतिहता वाञ्छैव तव साधनम् ॥ २२ ॥

क इष्टे भवतो योगसिद्धेस्तत्वं महामुनेः ।
वेत्तुं यत्र निमज्जन्ति सिद्धयो महतामपि ॥ २३ ॥

अत्रिरुवाच

सर्वमेवोपपन्नं मे निरपेक्षस्य केवलम् ।
तपसः साधनं प्रार्थ्यं भवेऽनुपहतं तु यत् ॥ २४ ॥

भवता वीरवर्येण प्रादुर्भूतेन भूतले ।
साधनीयं न वै किं किं सतां यदभिवाञ्छितम् ॥ २५ ॥

तपसिस्था द्विजाः सम्प्रत्युद्विजन्ते निशाचरैः ।
तेषां क्षये बद्धकक्षो भवाननुजसंयुतः ॥ २६ ॥

यदर्थमवतीर्णोऽसि स्वशक्त्या त्वं समूर्जितः ।
प्रार्थनीयं तदस्माभिः स्वतः सम्भविकं प्रभो ॥ २७ ॥

यदन्यदप्यद्भुतमत्यलौकिकं चरित्रमानन्दकरं सदा नृणाम् ।
तदप्यजस्रं तनुषे यदृच्छया समस्तलोकान्तरसद्मगोचरः ॥ २८ ॥

यदतीव तु मे प्रार्थ्यं तच्छृणो तु सदा भवान् ।
नित्यं मन्मानसे राम निवासमुररीकुरु ॥ २९ ॥

अप्यहं तीर्थराजस्य नित्यं दर्शनकामुकः ।
तत्र स्नानं करोम्युच्चैः प्रतिज्ञा मे सनातनी ॥ ३० ॥

साम्प्रतं खलु वर्षीयान् गन्तुं नो पारयेऽन्पतः ।
आश्रमादहमित्येवं चिन्ता मे भूयसी हृदि ॥ ३१ ॥

इहैव गङ्गां भुवनौघपाविनीं लभेय तन्मे मनसीश वाञ्छितम् ।
भवान् भवे पूरयितुं समर्थ इत्यजस्रमाशास्य भवामि निर्वृतः ॥ ३२ ॥

इति सम्प्रार्थितो रामः सूर्यवंशकुलाधिपः ।
प्रहस्य समुवाचेदं मनस्विजनशेखरः ॥ ३३ ॥

मनोमात्रेण योगीन्द्र भवान् शतसहस्रकम् ।
प्रयातीति न वै चित्रं तीर्थराजं प्रयासि यत् ॥ ३४ ॥

तथापि स्वाश्रमस्थानं तीर्थमेतच्चिकीर्षसि ।
अतस्तवाज्ञया ब्रह्मन् गङ्गामत्र समानये ॥ ३५ ॥

इत्युक्तवति राजेन्द्र ब्रह्मण्ये सत्यभाषिणि ।
चित्रकूटगिरेर्मध्यात्सद्यः प्रादुरभूत्सरित् ॥ ३६ ॥

मन्दाकिनी व्योमगङ्गा तोयप्रवहवेगिनी ।
प्राजापत्यस्य वृद्धस्य मुनेः स्नानादिकर्मणि ॥ ३७ ॥

आविर्भावं गतायां तु मन्दाकिन्यां सुधाम्भसि ।
तुष्टाव भगवानत्रिर्हर्षोत्कण्ठासमाकुलः ॥ ३८ ॥

स्तुवन्ति ब्रह्मर्षिवरे प्राजापत्ये तपोनिधौ ।
साक्षाद्भगवती गङ्गा प्रादुरास जलान्तरात् ॥ ३९ ॥

सुन्दरी चन्द्रतिलका सुधाशीतलविग्रहा ।
चन्द्रानना स्मितज्योत्स्नाविशदीकृतकानना ॥ ४० ॥

चित्रकूटबने रम्ये द्योतयन्ती दिशो दश ।
सा पश्यति मुनो रामं प्रोवाच विशदस्मिता ॥ ४१ ॥

अहं तवाज्ञया प्राप्तास्म्युच्चैर्वैकुण्ठधामतः ।
ब्रह्मर्षे प्रीणनायास्य साक्षात्सुतपसः प्रभो ॥ ४२ ॥

अयं हि बहुभि कल्पैर्मामिवैकामनन्यधीः ।
उपासीनो भवत्यस्मिन् भुवने महताऽऽयुषा ॥ ४३ ॥

अयं हि कोटियुगवित् कोट्यागमविशारदः ।
कोटिकल्पविदोजस्वी तपोमात्रैकविग्रहः ॥ ४४ ॥

स्नानाचमनकर्मभ्यौ मुनेरस्य सुखप्रदा ।
सदा स्थास्याम्यहं शैले चित्रकूटे शुभेवने ॥ ४५ ॥

तीर्थभूतमिदं स्थानं त्रिजगद्वन्द्यमद्भुतम् ।
भविष्यति प्रसादेन तव योगीन्द्र राधित ॥ ४६ ॥

त्वमपीह सदा क्रीडन् स्वात्मशक्तिभिरुच्चकैः ।
इह तिष्ठ मयाभ्याशे पादपद्मैकभाजनः ॥ ४७ ॥

त्रिषु लोकेषु विख्यातं स्थानमेतद्भविष्यति ।
मम चात्रेर्भगवतो नाम्ना च तव संततम् ॥ ४८ ॥

इत्युक्त्वा पश्यतस्तस्य योगीन्द्रस्य महात्मनः ।
जल एवाविशद्गङ्गा साक्षान्मन्दाकिनी तु या ॥ ४९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे मन्दाकिनी-प्रादुर्भावो नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११७॥

*

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

रामचन्द्रप्रभावेण प्रादुर्भूता पयस्विनी ।
साक्षान्मन्दाकिनी गङ्गा चित्रकूटे महीधरे ॥ १ ॥

दृष्ट्वा तां योगिवर्योद्विरत्रिर्भगवान् सर्वदर्शनः ।
तुष्टाव रघुशार्दूलं ज्ञाततत्त्वो मुनीश्वरः ॥ २ ॥

अत्रिरुवाच

जानामि त्वां रघुश्रेष्ठ पुराणपुरुषं परम् ।
धर्मसंदोहरक्षार्थमवतीर्णं यथातथम् ॥ ३ ॥

एतत्तवैव राजेन्द्र कर्तव्यमिह विद्यते ।
यद्गोविप्रश्रुतिपथरक्षणं चार्तपालनम् ॥ ४ ॥

कस्त्वां विनेह पुरुषस्त्रयीमुद्धर्तुमीश्वरः ।
असुरेण हृतां यत्र साङ्गोधर्मः सनातनः ॥ ५ ॥

मग्नामगाधे पयसि नीतां दुष्टेन मेदिनीम् ।
त्वां विना को नु पुरुष उद्वहेदेकदंष्ट्रया ॥ ६ ॥

यज्ञभागहरः साधुत्रयीधर्मविदूषकः ।
उज्जास्यः केन बलवांस्त्वां विना दानवेश्वरः ॥ ७ ॥

मग्नं समुद्रसलिले मन्दरं मन्थसाधनम् ।
त्वां विना को वहेत्पृष्ठे कृत्वा देवेष्वनुग्रहम् ॥ ८ ॥

त्रैलोक्यसम्पदं भूरि बलेन बलिना हृताम् ।
कः शक्तः पुनरानेतुं त्वां विना मधुसूदन ॥ ९ ॥

दुष्टक्षत्रवरानीकैरुत्सादितमुपारतम् ।
धर्ममुद्दीपयेत्कोऽन्यस्त्वत्तो भृगुकुलोर्जित ॥ १० ॥

अस्मिन्नवसरेऽपि त्वं बलिनं दशकन्धरम् ।
निहत्य रघुशार्दूल रक्ष धर्मं त्रयीपथम् ॥ ११ ॥

भवतोंऽशः पुना राम द्वापरान्ते यदोः कुले ।
भविता कृष्णरूपेण दुष्टासुरविनाशनः ॥ १२ ॥

अथो यज्ञहतान् जन्तूञ्शोचयन् करुणार्णवः ।
भवान् बुद्धस्वरूपेण राम प्रादुर्भविष्यति ॥ १३ ॥

अथ म्लेच्छप्राये जगति जगतीशोकशमनो
भवानश्वारूढः कलितकरवालः करतले ।
रणे दुष्टान्निघ्नन् प्रकटतरुणार्कद्युतितनुः
कलेरन्ते कल्कीत्यभिहित उदेष्यस्यखिलभृत् ॥ १४ ॥

एवं यदा यदा राम धर्मोग्लायतिसत्यते ।
तदातदावतीर्यामुं भवान् रक्षयति स्वयम् ॥ १५ ॥

विशुद्धं सत्त्वमुदितं तनुरेषा तवोर्जिता ।
सत्यज्ञानान्दनिधेरव्ययस्याखिलात्मनः ॥ १६ ॥

कर्माणि तव गीतानि विशुद्धानि महात्मभिः ।
न च तानि महाराज संख्यातुमहमीश्वरः ॥ १७ ॥

गणयेन्नामसीस्तारा भुवः पांसुकणानपि ।
कश्चित्सुसूक्ष्मधी राम न तु ते विशदान् गुणान् ॥ १८ ॥

वर्षीयानत्यहं दूरे गन्तुमक्षमतां दधे ।
इहैव गङ्गामुद्भाव्य त्वया देव कृतार्थितः ॥ १९ ॥

इत्थं स्तुवति योगीन्द्रे मुनयस्तपसोर्जिताः ।
आययुर्दण्डकारण्यवासिनस्तत्र पर्वते ॥ २० ॥

रक्षोभिरुद्वेजितचित्तवृत्तयो यक्षीकृतब्रह्मकुलैर्भयावहैः ।
तत्राययुर्ज्ञानदृशो मुनीश्वरा ज्ञात्वा तमेकं शरणं रघूद्वहम् ॥ २१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डेऽत्र्याश्रमागमने ऽष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

*

एकोनविंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

सुतीक्ष्णो ब्रह्मवर्चस्वी सुशर्मानीललोहितः ।
सत्य आङ्गिरसः श्रौतिरुद्दालक इलामहाः ॥ १ ॥

शातातपो वृद्धशर्मा ऋद्धः ककुदुलूखलः ।
अगस्त्यस्य मुनेः शिष्या ये चान्ये सुहृवादयः ॥ २ ॥

विश्वामित्रो मरुस्तार्क्ष्यः कक्षीवान् कुक्षिरूषरः ।
शुचिः पर्यवनो दक्षः शमनो दमनस्तथा ॥ ३ ॥

च्यवनो भृगुरौर्वश्च दुर्वासा नारदस्तथा ।
पर्वतो भगवान् योगी मैत्रेयः कपिलादयः ॥ ४ ॥

आचार्या ये वयोवृद्धाः शुद्धा ज्ञानदृशो बुधाः ।
सर्वे श्रीराममाज्ञाय भगवन्तमधोक्षजम् ॥ ५ ॥

अत्रेराश्रममायातं सदारं सानुजं च तम् ।
उपतस्थुर्मुनिवराः प्रजाकुशलहेतवे ॥ ६ ॥

तानागतान् स भगवानत्रिर्वै वन्यवृत्तिभिः ।
तापयामास रामेण सीतया च सहातिथीन् ॥ ७ ॥

रामोऽपि तान् मुनिवरान् जग्राह विनयादिभिः ।
तेऽतिहृष्टाशया अत्रेः समक्षं राममब्रुवन् ॥ ८ ॥

जानीमहे त्वां वयमीशमस्या रक्षोभिरुत्सन्नरुचेस्त्रिलोक्याः ।
अतोऽखिलार्थप्रदमर्थयामस्त्वामेव हित्वा सकलान् सुरेशान् ॥ ९ ॥

त्वं दैवतैः प्रार्थित एव राम कामं कृपासिन्धुरिहावतीर्णः ।
यदर्दकृत्यै प्रसभं तमर्थं कुरुष्व विज्ञातविधेयजातः ॥ १० ॥

नन्विदानीं रघुश्रेष्ठ रात्रिंचरचमूपतेः ।
आज्ञया राक्षसैः सर्वा नाशिता एव ते प्रजाः ॥ ११ ॥

वाडवा भूरितपसो नैष्ठिका वन्यवृत्तयः ।
भक्ष्यन्ते राक्षसैरुग्रैर्मांसाद्भिरसृजां पिबैः ॥ १२ ॥

शून्याः खल्वाश्रमगृहा इदानीं रघुपुङ्गव ।
पूर्णाश्च द्विजवर्याणामस्थिभिर्वज्रकर्कशैः ॥ १३ ॥

ये भक्षिताः कौणपैः क्रूरकर्मपरायणैर्नूतनब्रह्मचर्याः ।
पुत्रा मुनीनां बत कोमलाङ्गाः रुदन्ति तेषां पितरस्तेष्वाश्रमेषु ॥ १४ ॥

येषां मातापितरौ कौणपाधमैरत्युग्रदंष्ट्रैश्चर्वितौ क्रूरभावैः ।
ते बालका वन्यवृतां मुनीनां पाल्यन्ते किं हरिणीनां पयोभिः ॥ १५ ॥

दाक्षिणात्यैरपसदै राक्षसैः क्रूरकर्मभिः ।
शून्यप्रायं कृतं राम ब्राह्मणैर्दक्षिणापथम् ॥ १६ ॥

रात्रौ मायाविनोऽनेकरूपा ब्राह्मणसद्मसु ।
प्रविश्य राक्षसा यज्ञहुताशं शमयन्ति च ॥ १७ ॥

विण्मूत्रं चैव निष्ठीवं कुर्वते देवतालये ।
दूषयन्ति द्विजनुषां दारान् कन्याश्च बालिशाः ॥ १८ ॥

प्रतिष्ठितानां देवानामभ्युत्सादनकर्मणा ।
उद्वेजयन्ति सततं जनान् ग्रामपुरस्थितान् ॥ १९ ॥

खेटखर्वटवाटीषु ग्रामेषु नगरेषु च ।
विचरन्ति सदा रात्रौ ध्वंसयन्तो द्विजांश्च गाः ॥ २० ॥

यद्यद्धर्मक्रियामूलं तत्तत्परमनिर्दयाः ।
निष्पिष्य नाशयन्त्येव तमःपिहितबुद्धयः ॥ २१ ॥

एवं धर्मविरोधेन मनोमोदं वितन्वते ।
लंकापतेर्नृशंसस्य यदायत्ता इमेऽखिलाः ॥ २२ ॥

सर्वेषां खलु दुष्टानां मूलं लङ्कामहीपतिः ।
उत्पथश्च सदोद्वृत्तो महातामसमानसः ॥ २३ ॥

तस्य निग्रहदानेन सर्वे राक्षससत्तमाः ।
तत्क्षणान्निगृहीताः स्युस्तत्र शक्तो भवान् प्रभो ॥ २४ ॥

भवानेवाश्रयस्तावद्धर्मस्यासुरभञ्जन ।
इति विज्ञाय शरणं प्राप्ताः स्मस्त्वां महाद्युते ।। २५ ।।

कालप्रवर्तकश्चासि त्वमेवेश निजेच्छया ।
यद्यत्करोषि कालोऽपि तत्र तत्रानुकूल्यभृत् ।। २६ ।।

प्रार्थयामो यदि श्रीश तदातिबिभिमो वयम् ।
उच्छिद्येत कदाचिद्वै यदभीष्टं प्रभोरिति ।। २७ ।।

किं च सर्वज्ञनाथस्य तवेशप्रार्थनं जनैः ।
अतीवानुचितं विद्मस्तदा मोनं भजामहे ।। २८ ।।

अप्रार्थितेष्टदातुस्ते यत्प्रार्थनमिहातुरैः ।
अधैर्यसूचकं तत्स्या दिति कैश्चिन्न याच्यसे ।। २९ ।।

भगवन् भवता पूर्वं कतिधा नैव रक्षितः ।
दुष्टासुरचमूनाथहतो धर्मः सदातनः ।। ३० ।।

तथापि वयमत्रेताः सन्निधौ तव राघव ।
निवेदनार्थमसकृदस्यैवार्थस्य भूयसः ।। ३१ ।।

अतः परं त्वं द्विजदैवतत्रयी गोधर्मभूमीपरिरक्षणं प्रभो ।
यथोचितं कर्तुमजस्रमर्हसि त्रासो यथासौ जगतां प्रशाम्यति ।। ३२ ।।

अथो चिरं ब्रर्द्धय राम निर्मलं दिशां वितानं परमोन्नतं यशः ।
चिरं निजान् रक्ष वरेण धन्वना वरेषुभिश्च प्रशमं नयाहितान् ।। ३३ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे मुनिकृतश्रीराम-विज्ञापने एकोनविंशाधिकशततमोऽध्यायः ।। ११९ ।।

*

विंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

इति ब्रुवत्सु दीनेषु मुनीन्द्रेषु तदा वचः ।
अवतेरुर्दिवो देवा इन्द्राद्या ध्वंसितश्रियः ।। १ ।।

ये मेघनादेन महोग्रधन्वना पराजिता इन्द्रपुरःसुराः सुरा. ।
ते धातुराज्ञामधिगम्य भूयसीं श्रीरामसंदर्शनसौख्यसस्पृहाः ।। २ ।।

वसन्तं चित्रकूटाद्रौ विज्ञाय प्रभुमीश्वरम् ।
आययुस्त्रिदशाः सर्वे उत्कण्ठाविष्टमानसाः ।। ३ ।।

अत्रेर्भगवतो योगिवर्यस्याश्रमसंस्थितम् ।
श्रीरामं ददृशुर्देवाः सेवाकरणसम्मुखाः ॥ ४ ॥

अत्रिं प्रणम्य योगीन्द्रं पुरस्ताद्भूरिवर्चसम् ।
अथो ददृशुरौदार्यसागरं राममद्भुतम् ॥ ५ ॥

सहस्रमक्ष्णांदधदेवनिश्चितो रामेण सक्षाद्भगवान् पुरन्दरः ।
अथो सभक्ति प्रणनाम तं पुरः स चाशिषा वर्द्धयदेनमुच्चकैः ॥ ६ ॥

अन्यानपि सुरान् नत्वा रामो राजीवलोचनः ।
सभक्तिश्रद्धमवनावासयामास पूजितान् ॥ ७ ॥

अत्रिस्तान् पूजयाञ्चक्रे बासवाद्यान् सुरेश्वरान् ।
सुस्थानासनवर्येषु तत ऊचे स्मितान्वितम् ॥ ८ ॥

शुभं ममैतन्महदेव सम्प्रति श्रीरामपादाम्बुजसंगमादभूत् ।
यदाश्रमद्वारमुपागता अमी महामहौजःप्रसराः सुरेश्वराः ॥ ९ ॥

पुरन्दरोहुतभुग्दण्डपाणिः क्रव्यादनाथो वरुणो वायवश्च ।
कुबेर ईशः पतयो दिशामिमे प्रजेश्वरा ये मरीच्यादयोऽभी ॥ १० ॥

मरुद्गणाः सर्व इमे सुसंगता ममाश्रमे वसवश्चैव रुद्राः ।
साध्या आदित्या ग्रहा ये च विश्वेदेवा अमी पितरश्चोष्मपाद्याः ॥ ११ ॥

चतुर्मुखो ब्रह्म पठन्नखण्डं महोपवीती साक्षगुणः कमण्डलुम् ।
दधत्करे सैष प्रजापतीनां पतिः स्वयं संगतो ह्यत्रजातः ॥ १२ ॥

अस्यैव वीरस्य धृतासिधन्वनो ह्यक्षीणतूणीरभृतो हृतारेः ।
अन्वीक्षमाणाः शरणं सर्व एते ममाश्रमं भूरि विभूषयन्ति ॥ १३ ॥

अस्यैवांशविभूतिभ्यः सद्भ्यः सूर्यांशुवत्पृथक् ।
नमो मे सर्वदेवेभ्य एभ्यः सद्भ्यः प्रजाहिते ॥ १४ ॥

जानामि सर्व एवैते रक्षोनाथेन विद्रुताः ।
स्वधामसंक्षयाक्लिष्टाः प्रार्थनार्थमिहागताः ॥ १५ ॥

युगपत्प्रार्थयन्त्वेते रघूणां पतिमागताः ।
स्वस्वदुःखनिवृत्त्यर्थं देवोऽसौ शमयिष्यति ॥ १६ ॥

जानेऽहं रक्षसा घोररूपिणा विंशबाहुना ।
दशकन्धरभीमेन यूयं विप्रकृताश्चिरात् ॥ १७ ॥

तस्याश्रयाद्बलिनो राक्षसेन्द्राः सुबाहुमारीचमुखा महोग्राः ।
विध्वंसयन्तो जगदेव कृत्स्नं क्रूरात्मनो विचरन्तीह मर्त्यान् ॥ १८ ॥

वनेचरा बलिनो बालि मुख्याः कृत्स्नं जगद्दुःखमयं विधाय ।
कुर्वन्ति राज्यं नगरीषु लोकान्निपीडयन्तीति निवेद्यमस्मै ॥ १९ ॥

सम्प्रार्थितः कारुणिकौघमौलिरयं विधास्यत्यवनीमवश्यम् ।
निष्कण्टकां क्षिप्तसुरारिजातां सुखाकरिष्यत्यभयांश्चयुष्मान् ॥ २० ॥

उत्क्षिप्तकालासिविशीर्णशत्रुर्विजेष्यतेऽसौ भुवनेषुवीरः।
आशीर्गणैरेपित उच्चकैर्वः सुवर्णसिंहासनगो विभास्यति ॥ २१ ॥

इत्याभाष्य प्रपन्नांस्तान् रक्षोभीतान्सुपर्वणः।
श्रीराममुखमालोक्य तस्थिवान् मुनिपुङ्गवः ॥ २२ ॥

अथाब्रुवन् ब्रह्मशिवेन्द्रमुख्या रक्षोधिपद्रावितसूरिवीर्याः।
प्रजाहितप्रेप्सव आतुराश्च प्रकाममुद्भ्रान्तधियः प्रपन्नाः ॥ २३ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे देवागमनं नाम विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

*

एकविंशाधिकशततमोऽध्यायः

देवा ऊचुः

यदाह भगवानत्रिस्तत्तथैव रघूद्वहः।
आवेदयितुमार्तिं स्वामेते प्राप्ता वयं प्रभो ॥ १ ॥

भवानार्तिहरोऽस्माकं नूनमार्तिं हरिष्यति।
त्वां विना कतमः शक्तः प्रार्थितार्थप्रपूरणे ॥ २ ॥

एते खलु सुदुर्धर्षा राक्षसा जगतो द्विषः।
भक्षयन्ति जनान् साधूनस्रपाः पिशिताशनाः ॥ ३ ॥

एतेभ्यो भीत मखिलं जगदेतत्सुदुःस्थितम्।
अजस्रं प्रणसंदेहान्महतीमार्तिमृच्छति ॥ ४ ॥

तेषां तपोबलोद्रिक्तस्तेजसाप्रतिमोभुवि।
भीषयत्येव भुवनं रावणो लोकरावणः ॥ ५ ॥

गर्वार्पितोऽयं वीर्येण बाहून् विंशतिसंख्यकान्।
बिभ्राण एकच्छत्रोऽस्या भुवो राज्ये प्रतिष्ठितः ॥ ६ ॥

स्वेनैव बाहुवीर्येण जित्वा लोकान् सलोकपान्।
सप्रजेशाः प्रजाः सर्वाः पीडयन् प्रतपत्यसौ ॥ ७ ॥

यावन्ति दिव्यरत्नानि तानि सर्वाणि तद्गृहे।
मुक्त्वा श्रीरिन्द्रभवनं तस्यैवान्तःपुरे स्थिता ॥ ८ ॥

चन्द्रश्छत्रायते तस्य रतिश्रान्तस्य रात्रिषु।
पीयूषविन्दुवर्षाभिः सिञ्चन् सोष्मकणं वपुः ॥ ९ ॥

प्रतापेनास्य तपनस्तपेऽपि नियतातपः ।
यावता तस्य वापीषु विकासयति पद्मिनीः ॥ १० ॥

अमायामपि शीतांशुः सम्पूर्णकलतां दधत् ।
सेवते सर्वदा व्यग्रो रतिश्रान्तं सुशीतयन् ॥ ११ ॥

समीरोऽप्यस्य नियतमाविश्य व्यजनेषु वै ।
सुगन्धिः शीतलोमन्दो नित्यं भजति विग्रहम् ॥ १२ ॥

अस्योद्यानतरुश्रेण्यां पुष्पविध्वंसनात्सभीः ।
मन्दं भन्दं मरुद्वाति यावद्धन्ति रतिश्रमम् ॥ १३ ॥

अन्योन्यमविरोधेन तस्योद्यानमहावने ।
प्रविश्य ऋतवः सर्वे सुखान्युपनयन्ति हि ॥ १४ ॥

पुरातनानि भुक्तानि नाद्रियाणस्य चेतसि ।
तस्य नव्यानि रत्नानि समुद्र उपढौकते ॥ १५ ॥

निशासु तल्पोपान्तेषु दधतः स्थिरदीपनाम् ।
तं वासुकिमुखा नागाः शीर्षरत्नैरुपासते ॥ १६ ॥

मालाकार इवेन्द्रोऽपि कल्पवृक्षप्रसूनकैः ।
निर्माय भूषणान्यस्मै समर्पयति नित्यशः ॥ १७ ॥

एवमासेव्यमानोऽपि प्रतापेनोपबृंहितः ।
दुःखाकरोति त्रैलोक्यमनन्यशरणं खलः ॥ १८ ॥

पल्लवा अपि नो येषां नूनाख्रिदिववासिभिः ।
आरोपिता गृहेऽनेन छित्वा ते स्वर्वनद्रुमाः ॥ १९ ॥

वन्दीकृताः स्वर्वनितास्तं सुप्तं वीजयन्त्युत ।
चामरैरिव निःश्वासैः साश्रुसीकरशीतलैः ॥ २० ॥

सूर्याश्वटापटंकांकाः सानवः स्वर्णभूभृतः ।
कृतागृहाङ्गणे तेन स्वकान्ताकेलिपर्वताः ॥ २१ ॥

स्वर्गङ्गाम्भः सरो हित्वा तस्य वापोषु सम्प्रति ।
सुवर्णकमलोत्पत्तिर्लक्ष्यते श्रीनिरूपिणी ॥ २२ ॥

पुष्पकादीनि दिव्यानि विमानानि विहाय तम् ।
अनुयान्ति सुरा यान्तं यात्रायै भृत्यसम्मिताः ॥ २३ ॥

तस्य प्रधानपुरुषा राक्षसा यज्वभिर्हुतम् ।
आच्छिन्दन्ति हविर्वह्निमुखात्पश्यत्सु नाकिषु ॥ २४ ॥

इन्द्रस्योच्चैःश्रवास्तेन हृत्वा गृहमनीयत ।
कृतमात्मकुमाराणां क्रीडायानं च तत्पुरे ॥ २५ ॥

उपायाः खलु यावन्तस्तस्मिन्नस्माभिराहिताः ।
बभूवुर्विफला एव तुभ्यमावेदितं ततः ॥ २६ ॥

विजयाशासदा यस्मिन् कुलिशं तद्विडौजसः ।
तत्पुत्रशरसंछिन्नहस्तच्युतमपार्थकम् ॥ २७ ॥

तद्गजाः स्वर्णशैलस्य शिखरेष्वच्छकान्तिषु ।
तटाघातक्रियाभ्यासं कुर्वते मदमन्थराः ॥ २८ ॥

अतस्तस्य वधं कर्तुं सज्जो भव रघूद्वह ।
भाग्यैर्नः सुरलोकानां वन्दीकृतगृहश्रियाम् ॥ २९ ॥

यावन्न शाम्यतिद्रोग्धा त्रैलोक्यस्यैष रावणः ।
तावत्क नः सुखं राम प्रजासौख्यहितैषिणाम् ॥ ३० ॥

एतन्नो बाधतेऽत्यर्थमात्मनोऽपि पराभवात् ।
यत्साधून् पीडयत्येष निष्कारणविरोधनः ॥ ३१ ॥

तं नित्यं सेवमानानां सत्त्वं बुद्धिः पराक्रमः ।
विननाश प्रभोऽस्माकं क शं दुष्टनिषेवणे ॥ ३२ ॥

एवं विज्ञाप्य देवा रघुकुलतिलकं सानुजं तं सदारं
स्तुत्वा सम्यग्विशिष्टैर्गुणगणगरिमोद्गारपूर्णैर्वचोभिः ।
लङ्काधीशोपनीतोर्वरितसुरतरूत्थप्रसूनैः समंता-
दर्चित्वा तद्विसृष्टाः सुविहितधियः स्वस्वधामानि जग्मुः ॥ ३३ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे रघुपतिविज्ञापनो नामैकविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२१॥

*

द्वाविंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अत्रेर्भगवतो देवी धर्मपत्नी मनस्विनी ।
अनसूया जनकजां भूषयामास भूषणैः ॥ १ ॥

योगसिद्धिसमोपेतैर्दिव्यैः स्रक्चन्दनादिभिः ।
अभूषयतरां देवी सीतां शीतांशुशीतलाम् ॥ २ ॥

अनसूयोवाच

इदं ते चन्दनं देवि सिद्धमङ्गानुरञ्जनम् ।
नित्यं नवीनतां बिभ्रन्मम योगप्रभावतः ॥ ३ ॥

अङ्गरागमिमं धृत्वा स्वाङ्गेषु जनकात्मजे ।
न ग्लास्यसि समं पत्या यान्ती सुमहृतः पथः ॥ ४ ॥

न ते सूर्यकरा देहं ग्लापयिष्यन्ति वर्त्मनि ।
छायायामिव गच्छन्त्याः सुखं भूरि भविष्यति ॥ ५ ॥

न ते रक्षोभवा बाधा तिष्ठन्त्या यत्रकुत्रचित् ।
भविष्यति महाराजवध्वा अप्यद्यदुर्गतेः ॥ ६ ॥

इमानि मत्पतेरस्य योगसिद्धस्य जानकि ।
आश्रमप्रभवैः पुष्पैः स्रजस्ते विनिवेदिताः ॥ ७ ॥

इमाः सन्ततमम्लाना योगसिद्धिमयीस्रजः ।
वहन्ती काननेषु त्वं निःशङ्कं विचरिष्यसि ॥ ८ ॥

त्वं प्रधृष्या न केनापि रक्षसा घोरमायिना ।
विनापि देवरं कान्तं नोद्वेगं कलयिष्यसि ॥ ९ ॥

मृगयार्थं हि गतयोरनयोः शून्य आश्रमे ।
वसन्तीत्वं जनकजे वन्धुपूर्णेव भास्यसि ॥ १० ॥

मणिस्वर्णमयान्येतान्यछान्याभरणानिते ।
प्रयच्छामि सरोजाक्षि पत्युः प्रणयपुष्टये ॥ ११ ॥

इदं ते वसनं दिव्यं प्रयच्छामि मनोरमम् ।
यत्परीधाय तिष्ठन्तीं न रक्षो धर्षयिस्यति ॥ १२ ॥

इयं पद्ममयी माला नित्यमम्लानपद्मजा ।
इमां सीते हृदा धृत्वा न त्वां वह्निः प्रधक्ष्यति ॥ १३ ॥

भुविभूमिस्वरूपा त्वं जले जलमयी तथा ।
बह्नौ वह्निमयी भूत्वा वायौ वायुस्वरूपिणी ॥ १४ ॥

व्योम्नि व्योममयी भूत्वा प्रवेशं समवाप्स्यसि ।
पञ्चतत्त्वमयी व्याप्तिर्मद्योगात्ते भविष्यति ॥ १५ ॥

वृष्टिवातातपादीनि निवसन्तीं वनेष्वपि ।
न त्वामुद्वेजयिष्यन्ति योगसिध्यान्वितामिव ॥ १६ ॥

भूयात्ते सर्वदा सौख्यं पत्या सह यथा सुखम् ।
वसन्त्यनुद्विग्नमना भव कल्याणिनी सदा ॥ १७ ॥

पाकस्थालीमिमां भद्रे गृहाण गुणवत्तमाम् ।
यस्यां षड्रससंयुक्तमन्नं नित्यमुपाहितम् ॥ १८ ॥

यं यमिच्छसि पाकंत्वं तं तमत्र निभालय ।
परिवेक्ष्यमाणं भोक्ष्यन्ति सहस्रं कोटयो द्विजाः ॥ १९ ॥

अतिथिव्रतवत्यास्ते इयं वै व्रतसाधनम् ।
विनाग्निजलसंयोगमन्नमत्रोपलप्स्यसे ॥ २० ॥

गच्छन्तीं प्रविशन्तीं च तिष्ठन्तीं विहितासनाम् ।
सुप्तां प्रसुप्तां भवतीं रक्षन्तां देवतागणाः ॥ २१ ॥

इन्द्रस्त्वांपुरतोरक्षेत्पृष्ठतोवह्निरेव च ।
यम एकान्तगां रक्षेत् स्नान्तींवरुण एव च ॥ २२ ॥

प्रयान्तीं मारुतोरक्षेदीशस्त्वां पातु सर्वदा ।
सर्वकार्येषु सर्वत्र त्वां रक्षेत् परमेश्वरः ॥ २३ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्थमानखशिखं विभूषिता सिद्धयोगफलाखिलाशिषा ।
सिद्धयात्रिमुनिभार्यया तया भोजिता च जनकावनीशजा ॥ २४ ॥

तुष्टिमाप परमां निजाशये बल्लभेन सहिता तदाश्रभे ।
वार्तयन्त्यतिमनोज्ञया गिरा संगतैर्वरमुनीन्द्रदारकैः ॥ २५ ॥

अत्रेः पत्न्या विस्फुरद्योगसिद्धया विभूषितां सुविहिताशिषंताम् ।
राजेन्द्रपत्नीं जनकस्य पुत्रीं विलोकयन्त्यो मुनिवर्यदाराः ॥ २६ ॥

स्वैः स्वैर्मनोभिस्तुतुषुर्नितान्तं सख्यो यथा पार्श्वचर्यः समस्ताः ।
प्रीत्या प्रयुक्तां परमाशिषोऽदुर्नं तृप्तिमापुश्च मुखं धयन्त्यः ॥ २७ ॥

हसन्ती क्रीडन्ती किमपि कलयन्ती रहसि तै-
विलासं सुप्रीतैः प्रवरमुनिदारैर्जनकजा ।
मुमोदातीवान्तः सदयमनसूयासुविहितै-
रनेकैः सत्कारैः प्रतिपदमतिप्रीतहृदया ॥ २८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे अनसूयासत्कारो नाम द्वाविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

*

त्रयोविंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तां रात्रिमतिचक्राम पत्या सह मुदान्विता ।
अत्रेराश्रमगा सीता सत्कृता ह्यनसूयया ॥ १ ॥

अन्त्येद्युरुदिते भानौ प्रसन्ने व्योममण्डले ।
कृताग्निहोत्रे योगीन्द्रे जायया सह तिष्ठति ॥ २ ॥

सूपविष्टो वृसीसंस्थे प्रसन्नहृदये मुनौ ।
इदमूचे वचो रामः प्रियाशोभित पार्श्वकः ॥ ३ ॥

श्रीराम उवाच

अद्य मे सफलं जन्म सभार्यस्य महामुने ।
यत्तवानुग्रहेणालं वासो जातस्तवाश्रमे ॥ ४ ॥

धर्मपत्नी तव ब्रह्मन्ननसूयात्मयोगिनी ।
स्नेहादन्वगृहीदेनां दयनीयां निजस्नुषाम् ॥ ५ ॥

भाग्यमस्या महन्मन्ये वियुक्तायाः सुहृद्गृहैः ।
विप्रवासविपद्वत्या अपि तेऽनुग्रहान्मुने ॥ ६ ॥

क्व मेऽसौ दुर्दशा ब्रह्मन् प्रोषितस्य पुराद् गृहात् ।
विपन्ने न्यस्त राज्यश्रीसम्भारे वनवासिनि ॥ ७ ॥

क्व च तेऽनुग्रहोऽत्यन्त दुर्लभो महतामपि ।
सम्पत्करः श्रीकरणः सर्वसौख्यविधायकः ॥ ८ ॥

तवानुग्रहपात्रत्वादद्य मे दुर्लभं नु किम् ।
त्रैलोक्ये भाग्ययुक्तानामस्म्यहं मौलितां गतः ॥ ९ ॥

सर्वमेवोपपन्नं मे तवानुग्रहभागिनः ।
रक्षोबलानां हरणं यदेकेनापि धन्वना ॥ १० ॥

सुहृज्जनैर्वियुक्तापि स्नुषेयं तव सुव्रत ।
मुनीन्द्रदारमध्येऽद्य प्राप्ता बन्धुजनैर्युजिम् ॥ ११ ॥

प्रसादोऽस्याः समजनि दर्शनप्रीतिजस्तव ।
आत्मानं बहुसौभाग्ययुक्तमद्यैववेत्ति च ॥ १२ ॥

अमीषां मुनिवर्याणां दर्शनं दुर्लभं मम ।
तवाश्रमागमभवाद्भाग्यादजनि सम्प्रति ॥ १३ ॥

अनसूयापते ब्रह्मन् सिद्धयोगिन् दयानिधे ।
मुनीन्द्र ब्रह्मवर्चस्विन् मुनिवर्यशिरोमणे ॥ १४ ॥

एवमेव सदा मह्यं सकुटुम्बाय साधवे ।
कृपयस्व यथा यामि भूयः कल्याणपात्रताम् ॥ १५ ॥

किमितोऽप्यधिकं ब्रह्मन् भागधेयं नृणामिह ।
भवादृशानां महतां कृपादृष्टिर्यदुत्तमा ॥ १६ ॥

यन्मे करुणया ब्रह्मन् प्रजानामुदितं त्वया ।
तत्तवानुग्रहान्मन्ये सिद्धमेव न संशयः ॥ १७ ॥

क्वासौ दशमुखो जेता दशदिक्चक्रवर्तिनाम् ।
क्व चानुजद्वितीयोऽहं चापमात्रद्वितीयकः ॥ १८ ॥

सर्वंत्वत्करुणामात्रसाधनान्मम युज्यते ।
सुदुर्घटमपिब्रह्मन् सुघटं ते तपोबलात् ।। १९ ।।

यदाह भगवान् वेधाः शर्वश्चैव पुरन्दरः ।
तत्तथैव विधास्यामि हरणाद्राक्षसेशितुः ।। २० ।।

येनाकुलीकृता लोकाः साधवो धर्मतत्पराः ।
स वै स्वेनैव पापेन राक्षसेन्द्रः पतिष्यति ।। २१ ।।

पुरैव चिन्तितं चैतन्मया करुणचेतसा ।
अनुतापं त्रिजगति विलोक्य दशकन्धरात् ।। २२ ।।

मानुजः सपरीवारः क्षयमेष गमिष्यति ।
भवादृशानां महतां प्राविकूल्यमुपाचरन् ।। २३ ।।

सर्वैर्मुनिगणैर्ब्रह्मन् मामाशीर्भिः समेधय ।
यथा जयेयं त्रैलोक्यतापिनः पिशिताशनान् ।। २४ ।।

दृष्टस्त्वमद्भुतयोनिधिरात्मयोगविद्याप्रकाशसुनिरस्तमनस्तमिस्रः ।
जाताः परा मम मुदां प्रकराः शुभानि चाक्षय्यतामुपगतानि तव प्रसंगात् ।। २५ ।।

इतोऽनुजानीहि मुनीन्द्रमौले गन्तुं मम स्वामथ पर्णशालाम् ।
सदारकः सानुज एष चाहं तव प्रपन्नोऽस्मि पदाम्बुजाते ।। २६ ।।

इत्थं विज्ञाप्यमानोऽसौ रामेण मुनिपुङ्गवः ।
अवोचत् परमानन्दरससंदोहसंवृतः ।। २७ ।।

अत्रिरुवाच

प्राकृतं समतीत्येदं संयोज्यात्मानमात्मनि ।
यमानन्दमहं राम प्राप्तोऽस्मि वचसां परम् ।। २८ ।।

ततोऽप्युत्तम आनन्द एष ते दर्शनोद्भवः ।
अतस्त्वया विरहितुं नेच्छामि रघुपुङ्गव ।। २९ ।।

तत्कथं त्वामहं गन्तुं वदामि प्राणजीवन ।
वेपते मे मनोऽत्यर्थं त्वद्विश्लेषमहारुजः ।। ३० ।।

इति विक्लवचित्तस्य निशम्य स मुनेर्वचः ।
नाशयन्मनसो मोहमुवाचातीव पेशलम् ।। ३१ ।।

सूक्ष्मां धियमुपादाय पश्यस्वात्मानमात्मनि ।
तत्र चैव तु मां पश्य यथेष्टं भावनाबलात् ।। ३२ ।।

सर्वत्रगं सर्वमयं सर्वकारणकारणम् ।
सर्वसौन्दर्यसुभगं सुमुखं सुन्दरस्मितम् ।। ३३ ।।

स्त्रीरूपं पुंस्वरूपं वा सगुणं चापि निर्गुणम् ।
नित्यं सम्पश्यतो ब्रह्मन् न ते विरहजा रुजः ।। ३४ ।।

बाधिष्यन्ते मनस्तात नित्यं तुष्टिमतः किल।
एषा ते भावना प्रोक्ता प्राज्ञस्यापि प्रबोधदा ॥ ३५ ॥

अनया वै भावनया भावयन्तः सदैव माम्।
कतिचित्सुकृतोपेता मोदन्ते शाश्वते पथि ॥ ३६ ॥

सर्वं जानासि भगवन् दिव्येन ज्ञानचक्षुषा।
प्रेमवित्तो हृदा भूत्वा भूयः सिद्धिमुपैष्यसि ॥ ३७ ॥

इत्थमत्रिमनसूयया युतं सम्प्रमोद्य निजदर्शनामृतैः।
प्रेमवित्तहृदयौ प्रणम्य तौ निर्ययावनुजदारसंयुतः ॥ ३८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डेऽत्र्याश्रमात्परावृत्तौ त्रयोविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

*

चतुर्विंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

व्रजन्तमाश्रमादत्रेः सदारं सानुजं च तम्।
अनुजग्मुर्मुनिवरा विहातुं भृशमक्षमाः ॥ १ ॥

मुनय ऊचुः

हे राम करुणासिन्धो रविवंशविवर्धन।
भवद्दर्शनवाञ्छानो वरीवर्ति सदा हृदि ॥ २ ॥

क्व नो विहाय राजेन्द्र गमिष्यसि सहानुजः।
सदारः स्थाष्यसि श्रीमन् यत्र यत्र घनेवने ॥ ३ ॥

तत्र तत्रैवस्थास्यामस्तव पार्श्वं सुखावहम्।
अमुञ्चन्तः कथमपि वयं वृत्या यया कया ॥ ४ ॥

एतत्ते वदनं सौम्य चन्द्रादपि सुशीतलम्।
पश्यतां नः सदा भाविन्यमृतेनैव पारणा ॥ ५ ॥

यथा तवानुजः शान्तो लक्ष्मणः शुभलक्षणः।
तथा वयमपि प्रेयः स्थास्यामस्तव संनिधौ ॥ ६ ॥

किं नो योगेन तपसा किं व्रतैर्विविधैरपि।
एकं ते भजनं काम्यमेकान्ते नःस्पृहावताम् ॥ ७ ॥

मोदासीः करुणासिन्धो तव नित्यानुवर्तिषु।
अस्मासु नित्यभक्तेषु वराकेषु द्विजन्मसु ॥ ८ ॥

ऐहिकामुष्मिके राम विहाय भविके उभे।
तव पादाब्जसेवा नः काम्या कामप्रपूरणा ॥ ९ ॥
अयोध्यानगरीलोकैर्न वयं सदृशाः प्रभो।
ये त्वां विहाय गेहेषु विरहार्तिभृतोऽवसन् ॥ १० ॥
वयं विवेकनिर्णीतपरमार्था अकिंचनाः।
न त्वां क्षणमपित्यक्तुं मनसा शक्नुवामहे ॥ ११ ॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा मुनीनामनुयायिनाम्।
मर्यादाजलधिः श्रीमांस्तस्थौ रघुकुलोद्वहः ॥ १२ ॥
उवाच तान्सुसत्कृत्य ब्राह्मणान् शंसितव्रतान्।
मुनीन्द्राय यद्वदथ मां तत्तथैव सुनिश्चितम् ॥ १३ ॥
प्रीयन्ते मयि सुस्निग्धाः स्वभावेनैव मानवाः।
न तानहमपि प्रायः संत्यक्तुं क्षणमुत्सहे ॥ १४ ॥
यैर्निबद्धा मपि रतिः परमाशुद्धबुद्धिभिः।
ते मे प्रियतमाः शश्वदात्मनोऽपि मुनीश्वराः ॥ १५ ॥
त एव वन्धुसुहृदः प्राणाः सर्वस्वमेव च।
न तेभ्योऽप्यस्ति देयं मे स्वात्मप्राणगृहावधि ॥ १६ ॥
करोमि तेषामेवार्थे कर्माणि विविधान्यहम्।
यथा ते पूर्णकामाः स्युर्विनिबद्धधियो मयि ॥ १७ ॥
इदानीं नत्वहं विप्रा दण्डकारण्यवर्त्मना।
गन्तास्मि राक्षसैर्लूनं पुण्यं पञ्चवटीवनम् ॥ १८ ॥
दक्षिणापथमुत्सन्नं राक्षसैः पिशिताशनैः।
तत्राहं विचरिष्यामि दिनानि कतिचिद्द्विजाः ॥ १९ ॥
मारयन् राक्षसानीकं धनुर्मुक्तैः सुपर्वभिः।
तोषयन् भवतां सार्थं साधूनां शुद्धचेतसाम् ॥ २० ॥
तत्रैव योगिप्रवराः संगमिष्यथ वै मया।
रक्षःक्षयमुदाविष्टाः पुण्ये पञ्चवटीवने ॥ २१ ॥
एषा जनकजा साध्वी धर्मपत्नी मम द्विजाः।
तदाभोजनदानाद्यैर्युष्मान् परिचरिष्यति ॥ २२ ॥
परिवेषयन्ती वो विप्राः स्वादून्यन्नानि भूरिशः।
संवर्द्धनीया सततं युष्माभिरियमाशिषा ॥ २३ ॥
इत्युक्ता रघुवर्येण नत्वा ते संनिवर्तिताः।
स्वं स्वमाश्रममाजग्मुः सर्व एव मुनीश्वराः ॥ २४ ॥
ततश्च रामो मुनिधर्मपत्नीविभूषितां स्वां दयितां विशेषात्।
निरीक्षमाणः प्रणयेन भूयो निकेतनं स्वं समुपाजगाम ॥ २५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डेऽत्र्याश्रमादागने चतुर्विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

*

पञ्चविंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथैकदा रघुवर्यो व्रजस्थैरनुव्रतैर्विचरन् भूधरेन्द्रे ।
धनुर्धरःशरतूणीरबन्धमनोहरोमृगयामास्थितोऽभूत् ॥ १ ॥

सानुजो जानकी युक्तः पशुपालकुलान्वितः ।
चिक्रीड स्वेच्छया तत्र भिन्दन् दुष्टमृगाञ्छरैः ॥ २ ॥

वयस्यास्तस्य सर्वेऽपि व्रजवासिधनुर्धराः ।
स्वां स्वां निर्भेदपटुतां दर्शयन्तो विजह्रिरे ॥ ३ ॥

तेषां सार्थगतः साक्षाल्लक्ष्मणः शुभलक्षणः ।
प्रभोरिच्छां प्रविज्ञाय विचचार धनुर्धरः ॥ ४ ॥

इदं विद्धमिदं विद्धमित्याखेटकमध्यगाः ।
गिरिं कोलाहलीचक्रुर्वयस्याः सर्व एव ते ॥ ५ ॥

तेषां विक्रमतामुच्चैः पश्यन्ती भेदपाटवम् ।
तत्रास्त जानकीदेवी गोपीमण्डलमध्यगा ॥ ६ ॥

अथो रघूणां पतिरात्तशायकः सुपुङ्खबाणावलिमुक्तिदक्षणः ।
क्रीडन् गिरीन्द्रे मृगयां रसोत्तरां त्रीन् सायकान् संहितवान् धनुर्गुणे ॥ ७ ॥

तेष्वात्मनश्च सौमित्रेर्जानक्याश्चापि तत्क्षणे ।
संदधौ निस्तुलं तेज आत्मयोगेश्वरः स्वयम् ॥ ८ ॥

दक्षिणं लक्ष्मणं कृत्वा वामे जनकभूपजाम् ।
मध्ये स्वयं बभूवैष आत्मचैतन्यभासुरः ॥ ९ ॥

अथ त्रयस्ते विशिखा विशाला विद्योतयन्तो हरितश्चतस्रः ।
साक्षात् स्वयं रामकरातिकृष्टधनुर्गुणान्मुक्तिमवाप्यरेजुः ॥ १० ॥

तेजस्विनो जविनः शब्दवन्तः क्ष्मां द्यां च संव्याप्य महोवितानैः ।
चेलुः शरा रामधनुर्गुणोत्था अभूतपूर्वां श्रियमावहन्तः ॥ ११ ॥

प्रथमं तु धनुर्मुक्तैस्तैः शरैस्तिग्मराविभिः ।
कोटिविद्युत्प्रकाशेन व्यापिताः पश्यतां दृशः ॥ १२ ॥

दिविस्था गमनस्थाश्च शरनिर्मोचनक्षणे ।
चक्षूंषि पिदधुर्भीताः श्रुतीश्च बधिरायिताः ॥ १३ ॥

तत्तादृक् तेजसां वृन्दं ध्वनिं च विशिखास्त्रयः ।
धनुर्मुक्ताः समसृजंस्तत्कौतुकमिवाभवत् ॥ १४ ॥

पूर्वं विद्युद्दीधितिव्याप्तकृत्स्नदिग्भूव्योमोद्भूतभूरिप्रकाशाः ।
पश्चाद्दूरं किंचिदेते प्रयाताः प्रातःकालोदितसूर्योपभानाः ॥ १५ ॥

ततश्च ते तरुणार्कप्रकाशा गताः सुदूरं विशिखाः पौरुषेण।
वीर्येण युक्ताः सहसावतेरुर्महीतलं यत्र विराधदेशः ॥ १६ ॥

द्वौ सायकौ व्योमपथे प्रयान्तौ दृष्टौ सुरैः प्रावृषेण्याभ्रनीलौ।
परस्तयोर्वामतोद्योतमानस्तडित्समूहः प्रभया समेतः ॥ १७ ॥

तान् वीक्ष्यमाणा विशिखान् महस्विनः
सुरा विमानाग्रजुषः प्रभामरैः।
प्रधर्षिताक्षा इव किंचिदुश्चकै-
र्वभूवुराश्चर्यपराश्च तत्क्षणे ॥ १८ ॥

अथो देशे विराधस्य दण्डकावन मध्यगे।
नद्यामपीपतन् बाणास्तत्क्षणात्सुभगत्विषः ॥ १९ ॥

दक्षिणोलक्ष्मणः सोऽभूद्वामस्तु जनकात्मजा।
मध्ये स्वयं दाशरथी रामचन्द्रो रघूद्वहः ॥ २० ॥

ते यथा भूषणोपेता यथा विमलवाससः।
यथा स्वभावसुभगा यथा सौन्दर्यरोचिषः ॥ २१ ॥

यथाऽऽयुधौ तौ नरदेवदेवौ नरेन्द्रसूनू नवमेघनीलौ।
गुञ्जास्रजौ केकिकलावतंसौ सुबिभ्रतौ पीतजटाभिरामौ ॥ २२ ॥

तापसोचितवेषाढ्यौ भूतिपाण्डुरविग्रहौ।
आजानुलम्बितभुजौ सुमुखौ कमलेक्षणौ ॥ २३ ॥

सुशीलौ सुन्दरतरौ सिंहविक्रान्तिशालिनौ।
नद्याः सरसि खेलन्तौ नवराजीवराजिभिः ॥ २४ ॥

सापि नैम्यनरेन्द्रस्य तनया तरुणीवरा।
यथा भूषापटरुचिस्तथा सर्वात्मनाभवत् ॥ २५ ॥

शृङ्गारिता सा मुनिधर्मपत्न्यानसूयायाऽऽभरणैरङ्गरागैः।
प्रादुर्बभूवेह विराधरक्षोदेशे तटिन्यास्तटभूमियुग्मम् ॥ २६ ॥

प्रकाशयन्ती तडितां महोभिस्तनुप्रभासम्भवैर्दीप्तिदीप्तैः।
शरन्महाचन्द्रविम्बाभिरामैः सुधास्रवैः पश्यतां लोचनेषु ॥ २७ ॥

अहो दूरं देशमिता इदानीमितीव वाक्यं समुदीरयन्तः।
त्रयोऽपि ते देवसमानरूपा वमज्ज्य सद्यः सरितो निरीयुः ॥ २८ ॥

रघूद्वहो मैथिलराजकन्यां करे दधन्नव्यसरोजभूषाम्।
स्वदक्षिणे लक्ष्मणं वीक्षमाणो मुमोद माधुर्यमहाम्बुराशिः ॥ २९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे श्रीरामशरसंधानो नाम पञ्चविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२५॥

*

षड्विंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ तत्रान्तरदधाद्भगवान् रघुपुङ्गवः ।
पश्यतामनुरक्तानां बन्धूनां व्रजवासिनाम् ॥ १ ॥
सीतया लक्ष्मणेनापि सहितं रघुपुङ्गवम् ।
अपश्यन्तो वियोगार्ता अभवन् व्रजवासिनः ॥ २ ॥

इह गिरिशिखरे दधद्विहारं प्रतिमृगलक्ष्यमिषूंश्च संदधत्सः ।
क गत इत उदित्वरः प्रियो नो ध्रुवमतिगुप्तमसाविहैव वास्ते ॥ ३ ॥
क्षणमपि न वयं भवाम तेन प्रियसुहृदा परमोपकारिणार्ते ।
बहुविध विपदः स नो व्यनैषीन्निजभुजविक्रमभृद्वने जुगोप ॥ ४ ॥
क नो गवां पालनकृत्स रामः क लक्ष्मणोऽस्माकमनन्यबन्धुः ।
क च स्मितास्या जनकाधिराजसुता सदातीवहिता व्रजस्य ॥ ५ ॥
कान्वेषयामः करवाम किं वा गतः क रामः सुहृदो विहाय ।
यत्प्रेमयुक्ता वयमत्र याताः प्रमुद्वनं साधुगृहान् विहाय ॥ ६ ॥
एह्येहि रामानुजदारयुक्तः किं नः श्रितान् वञ्चयसीत्थमद्धा ।
जानीमहे त्वा वयमेकबन्धुमनन्यचित्ता व्रजवासिलोकाः ॥ ७ ॥
क्रोडन्नेव काधुना त्वं गतेऽभूः क तेऽनुजः सौम्यतनुः प्रिया च ।
किं वक्ष्यते नः सुखितो व्रजेशः कि चक्षुषीभ्रामयसीव बन्धो ॥ ८ ॥
किं रोदसी पूरयसीव कामं ध्वान्तैस्तवादर्शनसम्प्रभूतैः ।
क्षमस्व नः केनचिद्वा प्रयुक्तमरुन्तुदं दुर्वचनं जनेन ॥ ९ ॥
क यामः किं कुर्मस्तव विरहजन्मा हुतवहः
करोतीव ग्रासं प्रियतम मनो नः प्रतिपदम् ।
स्मितज्योत्स्नाशुभ्रं निजमुखमतो दर्शय सखे
श्रितानां नस्तेऽङ्घ्रि विपदघहरं मङ्गलकरम् ॥ १० ॥
इत्थं विलप्य व्रजवासिबाला धनूंषि तत्रैव विहाय मुग्धाः ।
अन्वेषयन्तिस्म रघुप्रवीरं श्रीचित्रकूटस्य गुहागृहाणि ॥ ११ ॥
गह्वराणि गुहाः कुञ्जान्यटवीः सरितां तटान् ।
उच्चावचानि स्थानानि बभ्रमुर्व्रजवासिनः ॥ १२ ॥
पश्यन्त्य एव प्रमदा प्रजौकसां रामं वनेऽन्तर्हिमभ्रमेचकम् ।
आः किंस्विदेतद्भवतीति सम्भ्रमाद्विनिःश्वसन्त्यो मुमुहुस्तदा क्षणे ॥ १३ ॥
अथो चिरान्वेषणखिन्नविग्रहाः स पर्णशालां गत इत्युद्धु राशाः ।
सर्वे निवृत्ता व्रजवासिनस्ततो विहारकान्तारत आतुरान्तराः ॥ १४ ॥

ते पर्णशालां रघुवीरवर्जितां शान्तावसथ्याग्निचयां प्रशून्यवत् ।
निरीक्ष्य तप्ता विरहाग्निना भृशं विचिन्तयामासुरिदं व्रजौकसः ॥ १५ ॥

ध्रुवं गतो आश्रममेव नः प्रभुः पुनर्मुनेस्तस्य हितं चिकीर्षुः ।
हा वञ्चनं नो विहितं किमीदृशं पुरेव पृष्ट्वैव स नो न किं गतः ॥ १६ ॥

हा हन्त तस्य प्रणयः सुदुर्वहो विश्लेषकीलाजननोऽङ्गतापनः ।
क्षणे वियुक्ता अपि यन्म्रियामहे धन्यः स साकेतपुरीजनः पुनः ॥ १७ ॥

ब्रह्मोवाच

रामस्यादर्शनं ते च सुखिताय निवेद्य च ।
अत्रेर्मुनिवरेण्यस्य सर्वेऽपि ययुराश्रमम् ॥ १८ ।.

ददृशुस्तत्र योगीन्द्रं निषण्णं दीप्ततेजसम् ।
स्त्रियोबालास्तथा वृद्धाः प्रणेमुर्व्रजवासिनः ॥ १९ ॥

ऊचुर्व्रजौकसः सर्वे ते मुनिं दीर्घवर्चसम् ।
वियुक्ता रामचन्द्रेण दीर्घोच्छ्वासमुचो जनाः ।। २० ॥

हा हन्त यमिनां श्रेष्ठ किमेतन्नः सुदुर्भगैः ।
अप्रियं जनितं सद्यो यद्रामोऽत्र न दृश्यते ॥ २१ ॥

क्रीडन्तेव क्रीडतां नः स मध्यादाच्छिदय चक्षूंषि जवेन पातः ।
क्व सम्प्रयातो न च विद्मएतत्स्थास्यामहे किं च बिना प्रियेण ॥ २२ ॥

दृशोऽन्धतमसं यान्ति दिशश्चान्धतमिस्रताम् ।
यस्य प्रीत्या वयं प्राप्ताः स प्रियो नाम दृश्यते ॥ २३ ॥

स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च रामप्रेमवशा वयम् ।
म्रियामहे विना तेन प्रेयसात्र दवीयसा ॥ २४ ॥

दृष्टोगिरिर्गह्वरवान् गुहावानसौ निकुञ्जामि च शोधितानि ।
शृङ्गाणि चित्राणि गिरेरमुष्यान्विष्टानि रामस्य विलोकनार्थम् ॥ २५ ॥

भविष्यति क्व प्रणयी स नः सुहृद्धनुर्धरः सानुजदार आतुरः ।
अस्मान् विना यः क्षणमेकं न तिष्ठेत्कचिन्न भुञ्जीत पिबत्यपश्च ॥ २६ ॥

भवान् सुविज्ञाननिधिस्तपोनिधिर्विशुद्धया स्वात्मदृशा प्रपश्यतु ।
क्व नः प्रियो राम इतः प्रयात इतोऽपि यातः स ततोऽयि यातः ॥ २७ ॥

कान्वेषणीयः सुहृदात्मा च बन्धुरस्माकमापत्तिसमूहहर्ता ।
न तं विना क्षणमप्यास्महे वयं सोऽस्मान् विना न क्षणमेकमास्ते ॥ २८ ॥

मुनिर्विलपतां तेषां निशम्य व्रजवासिनाम् ।
वचांसि विरहार्तानां विनिश्चित्त्येदमब्रवीत् ॥ २९ ॥

अत्रिरुवाच

धन्याः स्थ यूयं भुवनेषु मुख्या व्रजे वसन्तः कृतपुण्यपुञ्जाः ।
येषां मनो वै नरदेवसूनौ श्रीराम एबालमनन्यवृत्ति ॥ ३० ॥

श्रीराममेकं प्रियमत्र लोके जानीथ भाग्यार्णवतां प्रयाताः ।
यूयं निरस्ताखिलजीवदोषा भृशं तदेकात्मतया प्रहृष्टा ॥ ३१ ॥

एतावता वः प्रणयेन संतो रामोऽनिशं वश्यवृत्तिर्बभूव ।
यो नः कथं चिन्मनसां न गोचरः स वः सदा क्रीडनकः परात्मा ॥ ३२ ॥

क्व वो वियोगः परमेण पुंसा श्रीरामसंज्ञेन विविक्तभावाः ।
यैर्वश्यतामेष चिराय निन्ये प्रेम्णा प्रकृष्टेन न चान्यगामिना ॥ ३३ ॥

सम्यक् समीक्ष्यान्तर एव संतं रामं विविच्योपलभध्वमञ्जसा ।
अन्तर्बहिश्चापि स एव देहिनामास्ते परः पूरुष एक रामः ॥ ३४ ॥

एवं विविच्यान्विषतां जनानां सनेतरेषामपि दूरवर्त्ती ।
तदेकचित्ताः किमुत प्रियाणां युष्माकमद्धार्पितसर्वसम्पदाम् ॥ ३५ ॥

क्षितौ जले तेजसि चापि वायौ वियत्यथो दिक्षु मनःसु काले ।
प्रत्याशयं जन्मिनां देहभाजां स एव देवो वरिर्वति नित्यम् ॥ ३६ ॥

तमीश्वरं ध्यायत नित्यमेव सर्वात्मना सर्वगं चापि सन्तम् ।
इति प्रबुद्धा मयका शुद्धबुद्धिप्रकाशवन्तः सुखिनः संततं स्थ ॥ ३७ ॥

अथापि युष्मभ्यमहं वदामि गतिं सुरार्थाय रघूद्वहस्य ।
विज्ञापितोऽसौ मुनिभिः समस्तै रक्षोभिरुद्वेजितसाधुचित्तैः ॥ ३८ ॥

असौ हि देवो हितकृज्जगत्या असूत यं कोसलराजपुत्री ।
सम्प्रार्थितो विधिनेहावतीर्णः स्ववीर्यतोरक्षिता सज्जनानाम् ॥ ३९ ॥

स दण्डकारण्यमितः प्रतस्थौ नूनं चिकीर्षुः सुरसंघकार्यम् ।
हत्वा विराधादयसुरान् बलिष्ठो गन्ता पुनः पञ्चवटीं क्रमेण ॥ ४० ॥

तत्रापि रक्षांसि बलेन हन्ता धनुर्धरोऽसावनुजद्वितीयः ।
समन्वितो मैथिलराजपुत्र्या सूर्यस्तमांसि प्रभयेवयुक्तः ॥ ४१ ॥

एवं स यावद्दशकन्धरस्य वधं विधायामरलोकपानाम् ।
करिष्यतेशं रघुवंशकेतुस्तावन्न युष्मासु भविष्यति स्फुटः ॥ ४२ ॥

अत्रापि चास्ते खलु तत्र चास्ते प्रभुर्विभुः सोऽयमशेषसाक्षी ।
परावरेशो भगवाननादिर्जानीत श्रीराघव एष एव ॥ ४३ ॥

कर्माणि तस्यामरसिन्धुपूतान्यनेकशः सांख्यपथातिगानि ।
गायन्ति विप्र निगमैरशेषजगत्त्रयालंकृतिदीक्षितानि ॥ ४४ ॥

देवाचार्यस्त्रिपुरहरणः शेषनागो हयास्यः
कुम्भोद्भूतः कमलभवनः सर्व एवामरेशा ।
गायन्त्यस्य प्रणयखचितैर्मानसैः संविदाना
नानावीर्याण्यमरसरितोऽप्युज्ज्वलान्यद्भुतानि ॥ ४५ ॥

श्रीमान्मारुतनन्दनोऽस्य परमो भक्तो भविष्यत्यलं
रक्षोनीकनिपातनेषु बलवान् साहाय्यमाधास्यति ।
इत्थं सर्वसुपर्वगर्वहरणीं लङ्काधिराजश्रियं
दोर्भ्यामेष हरिष्यतीश्वरवरैः पूज्याङ्घ्रिपद्मद्वयः ॥ ४६ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे व्रजवासिजनसमाहितिर्नाम षड्विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

*

सप्तविंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

इत्यत्रिणा मुनीन्द्रेण समाहृतमनोरुजः ।
व्रजौकसो निव वृतुर्जाततत्त्वा निजप्रभोः ॥ १ ॥

ते सर्वे कथयाञ्चक्रुर्वृत्तमत्यद्भुतं प्रभोः ।
सोऽपि विज्ञाय तत्सर्वं मुमूर्छ विरहातुरः ॥ २ ॥

अथ व्रजमृगीदृशः प्रणयपाशबद्धास्तथा
गतिस्मित विलोकित प्रतिनिमग्नचित्ताः प्रिये ।
गुहासु शिखरेषु चाटविषु चित्रकूटस्य ता
वियोगविकलां दशां हृदि दधत्य इत्यूचिरे ॥ ३ ॥

रमण परवशोऽसि प्रायशस्त्वं प्रियाया
जनकनृपतिपुत्र्यास्तत्सहैकान्तचारी ।
इति वत विकला नस्त्वद्वियोगाग्निदग्धाः
सपदि करुणपातः शून्य उज्झाञ्चकार ॥ ४ ॥

प्रतिविपिन मटन्त्यास्त्वां प्रियंनो गृहीत्वा
जनकनृपतिपुत्र्याः कोमलं पादयुग्मम् ।
कथमिव न तुतुदुस्ता भूमयो दर्भगर्भा
वयमथ करुणार्द्राः पल्लवानादधीम ॥ ५ ॥

व्रजवसतिजुषो नो ग्राम्यवृत्तीः स्वसार्थे
परिचरणविदग्धा नौ किमादातमग्रे ।
करुणरसविहीनं चक्रथुश्चित्तमीदृक्
तदिह बत युवां वै विस्मृतौ किं परार्थम् ॥ ६ ॥

रघुवर बहुधा नो मानसं न प्रतीतं
क्षणविरहहुताशज्वालजालेन दाह्यम् ।
प्रमुदवनविहायिन् यो न एकान्तसंगी
मृदुकठिनपदार्थज्ञातशीलः खलु त्वम् ॥ ७ ॥

प्रमुदवनमजस्रं सेवमानाः पुरापित्वदमितविरहार्ता एव तत्रावसाम ।
पुनरपि किमु दत्वा चित्रकूटे प्रसंगं मदनदहनमन्तर्दीपयामास किं त्वम् ॥ ८ ॥

अलमलमथवा ते वार्तया राजसूनो पुनरपि वयमार्त्तास्तत्प्रसंगेनभूयः ।
द्विगुणमुदयते यत्स्नेहजन्यो हुताशः प्रतिपदमभिषेकात्स्तोकपाथःकणस्य ॥ ९ ॥

बहुतरमियदुच्चैः किं विलप्यापि नाथ
त्वमसि हृदयसंस्थः सर्वहृत्तत्त्ववेदी ।
स्वपति खलु फलाढ्यो जागरार्थः प्रयत्नो
न तु नरवर जाग्रत्केनचिद्बोधितः स्यात् ॥ १० ॥

स्मितगतिलपितेक्षाभोगदानैः पुरा नो
वशितहृदयवृत्तीरीदृशीस्त्वं विधाय ।
यदलघुविरहार्ता घोषनारीश्चकर्थ
स्फुटमिह विदितोऽभूस्तेन नो निर्दयः किम् ॥ ११ ॥

स्फुटतरमवधीस्त्वं कूर्दमानान् कुरङ्गान्
वनभुविः धृतचापः सायकैः पूर्णतूर्णः ।
प्रकृतिरिति न ते नो गोचरत्वं प्रयाता
नयनविशिखविद्धानाशयान् बिभ्रतीनाम् ॥ १२ ॥

प्रणयिवर तवोपालम्भनं नो निरर्थं बहुतरसुखदानैः प्रीणयामास यो नः ।
तव तु सहचरी सा स्यादुपालम्भनीयाविजनगतमकार्षीद् या भन्तं बलेन ॥ १३ ॥

अयि जनकसुते त्वं प्राणजीवातुरेव
व्रजवनवनितानां नास्युपालम्भयोग्या ।
हिमकरमुखि नित्यानन्दिनी त्वं तु भूयाः
किमु न विटपवर्गो मूलसेकान्न पुष्पेत् ॥ १४ ॥

त्वमसि हिमकरश्रीस्तारकाः स्याम सर्वा-
स्त्वमथ सुतनु बल्ली पल्लवास्ते वयं च ।
त्वयि खलु सुखितायां स्याम सर्वाः सुखिन्यो
यदि स भवदधीनोऽस्माकमेवास्त्यधीनः ॥ १५ ॥

तदपि वयमजस्रैकान्ततः स्त्रीस्वभावा-
च्चपलधियमुपेताः संततौत्कण्ठ्यभाज ।
उचितमनुचितं वा भाषितं नः सखीना-
मतिपरिचयभाजां त्वं हि पूर्णाक्षमस्व ॥ १६ ॥

इति प्रणयबद्धास्ताः सीताराघवयोः प्रियाः ।
सख्य उच्चावचैर्वाक्यैर्विरहार्ता बभाषिरे ॥ १७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे गोपीजनोपालम्भनोनाम सप्तविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

*

अष्टाविंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

ततः सुखितगोपेन्द्रो दृष्ट्वा सुचिरमातुरः ।
रामशून्यं चित्रकूटं व्रजं गन्तुमसज्जत ॥ १ ॥

आहूय वृद्धान् गोपबालान् सर्वगोव्रजभूपतिः ।
उवाच रामविरहादिदं स विरहाकुलः ॥ २ ॥

हे गोपवृद्धाः शृणुत साम्प्रतं गिरिरेषकः ।
नित्यं वनाश्रियाढ्योऽपि न मे रमयते मनः ॥ ३ ॥

यावद् राम इहावात्सीद्रममाणो निजैर्जनैः ।
तावन्मे मनसोऽत्यन्तं प्रीत्यै जातो महीधरः ॥ ४ ॥

इदानीं रामविश्लेषशून्या अन्धतमोवृताः ।
चित्रकूटगिरेराशा न जाने न लभे च शम् ॥ ५ ॥

अन्धकारितदेशोऽसौ सर्वशः पृथिवीधरः ।
गुहामय इवाशेषो जातः सम्प्रतिवर्तते ॥ ६ ॥

अत एनं संविहाय नवीनविरहप्रदम् ।
पुरा विरहसम्पूर्णां व्रजभूमिं पियासुकः ॥ ७ ॥

आदाय गोधनानीतः सर्वशो विततान्यहम् ।
प्रमुद्वने प्रयास्यामि फलपुष्पलताद्रुमम् ॥ ८ ॥

सुनिर्वृत्तपशुव्रातं पक्षिस्तोमसुखप्रदम् ।
त्रिविधानिलसंसेव्यं सर्वर्तुगणसेवितम् ॥ ९ ॥

आकारयत गोपालान् पुरतः परतो गिरेः ।
मन्दाकिन्यास्तटे चैव पृथक् पृथगवस्थिताम् ॥ १० ॥

निर्घोष्य दुन्दुभिं घोषेष्वेकीकुरुत गोपतीन् ।
पुरो निधाय गोसार्थं सावधाना व्रजन्तु च ॥ ११ ॥

यथा पुरा प्रमुद्वने सदर्तुसुन्दरश्रिणिः ।
रघूद्वहं प्रगायत प्रमोदतो दिवानिशम् ॥ १२ ॥

स्मरत भजत नित्यमेनमेव प्रणयवशं रघुपुङ्गवं विशेषात् ।
इति निखिलविलपत्कदम्बकेभ्यो भयरहिताः सततं प्रयात साम्यम् ॥ १३ ॥

श्रुत्वा व्रजपतेर्वाक्यं वर्षीयांसो व्रजौकसः ।
अभ्यनन्दन् सर्व एव स्वे स्वे हृदि निराकुलाः ॥ १४ ॥

अवदन् व्रजभूमीशं साधुसम्मतमीदृशम् ।
यथा पुरा व्रजभुवं वासयामः समन्विताः ॥ १५ ॥

सर्वात्मना तमेवेशं ध्यायन्तः सर्वदा वयम् ।
जीविष्यामः परं प्रेम पुष्णन्तो विरहोद्भवम् ॥ १६ ॥

प्रमोदवनवीथीषु वसन्तो मधुमत्तमैः ।
वासन्तीनां सुमैर्घ्राणातृप्तिं कुर्वन्त एव च ॥ १७ ॥

सम्प्राप्तैर्भक्तिविवशैर्जनैः परमहंसकैः ।
शृण्वन्तश्चरितान्यस्य हृत्कर्णमधुराण्यलम् ॥ १८ ॥

यावत्तस्यैव संदर्शः प्रेयसः सुखबर्द्धनः ।
तत्रातिवाहयिष्यामस्तावत्कालं प्रमुद्वने ॥ १९ ॥

एवं निश्चित्य मनसा सर्वे ते व्रजवास्तवः ।
शृङ्गाण्यापूरयामासुः प्रतिष्ठन्तः प्रमुद्वनम् ॥ २० ॥

गवां वृन्दानि पुरतो विधाय विहितोत्सवाः ।
अनःस्वारोप्य दारान् स्वांश्चित्रकूटाद्विनिर्ययुः ॥ २१ ॥

गोपाङ्गना गुणगणान् रघुपुङ्गवस्य गायन्त्यउद्गतवियोगमदनेन मत्ताः ।
प्रेम्णा सुविह्वलतमास्त्वरितं प्रयान्त्यो युक्तैरनो भिररुचंस्तडितो यथाभ्रे ॥ २२ ॥

रामस्यावासदेशेषु वसन्तो रजनीषु ते ।
यमुनां जाह्नवीं चैव तीर्त्वा याताः प्रमुद्वनम् ॥ २३ ॥

ते चार्द्धवर्त्मनि गता भरतं जटालमायान्तमार्यसविधे ददृशुस्तदानीम् ।
पश्चादमीभिरुदिताखिलसम्प्रवृत्तिः संगामृतप्रमुदितं सह तैर्निवृत्तः ॥ २४ ॥

गोपेन्द्रो भरतेन रामचरणप्रेमप्रमोदस्पृशा
संगं प्राप्य चिराय तुल्यविरहक्लेशेनवार्तादिभिः ।
चित्तं स्वस्थ नितान्ततांतिविवशं शून्यां दिशो भावयन्
प्रेम्णात्यार्द्रमतिर्व्यनोदयदितः कृच्छ्रात्प्रमोदाटवीम् ॥ २५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे प्रमोदवनागमनो नामाष्टाविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

*

एकोनत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

रामो भरतमायान्तमाशङ्क्य सविधत्वतः।
चित्रकूटं परित्यज्य प्रययौदक्षिणां दिशम् ॥ १ ॥

सानुजेन सदारेण तेन मुक्तं महीधरम्।
चित्ते न रोचयामासुः पशवः पक्षिणोऽपि च ॥ २ ॥

येषां सीतामुखचन्द्रानुरागः प्रतिक्षणं बर्द्धमानो बभूव।
ते चित्रकूटाद्रिचराश्चकोराः शून्या इवाशा ददृशुः समंतात् ॥ ३ ॥

ये प्रावृषेण्याभ्रसमूहनीलं श्रीरामचन्द्रस्य वपुर्मनोज्ञम्।
पश्यन्त आनन्दभृतो मयूरा ग्रीष्मेऽपि नान्तःपरितापमापुः ॥ ४ ॥

तेषामिदानीं समयः सुदुर्वहस्तेनैव कान्तेन वियोगभाजाम्।
महादवाग्निज्वलिता इवासन् समंततश्चित्रकूटे वनान्ताः ॥ ५ ॥

धनुर्धरस्यापि विदेहजेशितुर्वरानुकम्पामधुरं वपुर्मृगाः।
विलोकयन्तो मनसा न तत्रसुः कर्णान्तकृष्टाशुगमुक्तिभीष्वपि ॥ ६ ॥

ये रामचन्द्रमुरलीमधुरानुवादपीयूषपारणसुपल्लवपङ्क्तिपूर्णाः।
ते चित्रकूटकटकद्रुमगुल्मबल्लीवृन्दा अपि प्रतिपदं शुशुषुस्तदानीम् ॥ ७ ॥

इत्थं हित्वा चित्रकूटं चिरावासं रघूद्वहः।
आचक्राम धनुष्पाणिर्दक्षिणाशां सहानुजः ॥ ८ ॥

प्रेयां समनुगच्छन्ती जानकी व्यरुचत्तराम्।
राज्यश्रीरिव शोभाढ्या गजेन्द्रवरगामिनी ॥ ९ ॥

विदेहजामनुगतो लक्ष्मणोऽपि व्यरोचत।
प्रभोः पादोन्मुखीं भक्तिं जनो भागवतो यथा ॥ १० ॥

अत्रिपत्न्यानुलिप्तेन साङ्गरागेण भूयसा।
पुण्यगन्धपुषा चक्रे वनं तत्साधुसौरभम् ॥ ११ ॥

सीताङ्गसौरभं भृङ्गा जिघ्रन्तस्तत्र कानने।
सुरभीण्यपि पुष्पाणि तत्यजुस्तत्क्षणं किल ॥ १२ ॥

ऋषीणामाश्रमस्थानान्यलंकुर्वन्त उच्चकैः।
आत्मभासान्विता जग्मुस्त्रयस्ते देवतोपमाः ॥ १३ ॥

प्रद्योतयन्तो विपिनं समंताच्छ्रीरामसीतानुजकल्पवृक्षाः।
आनन्दिताः सौरभसम्भरेण मल्लीसुमेभ्यश्चक्रुर्मिलिन्दान् ॥ १४ ॥

वनस्थलीः पादसरोजपाविनीः समंततोऽसौ विदधद्रघूद्वहः ।
विराधरक्षोऽधियवासमाराज्जगाम कोदण्डधरोऽक्षयेषुधिः ॥ १५ ॥

क्रीडञ्छरैर्दुष्टमृगान् विहिंसन् मुक्तिं च तेभ्यः प्रददत्सुदुर्लभाम् ।
चमच्चकाराखिलमेव काननं महाबलो दाशरथिः सहानुजः ॥ १६ ॥

तयोर्महावीर्यमृगेन्द्रगामिनोर्मध्येन सा विद्युदिव प्रयान्ती ।
रेजे महाराजसुता मनस्विनी पादाब्जशिंजद्वरनूपुरद्वया ॥ १७ ॥

तस्यास्तनुद्योतभरेण भूयसा प्रकाशितास्तत्र वनेऽखिला दिशः ।
ननाश नैशं सहसा यथा तमश्चमत्कृताश्चाखिलसत्त्वराशयः ॥ १८ ॥

अग्रे रामः प्रकृतिसुभगश्चापतूणीरधारी
खड्गी श्यामोभसितधवलः पिङ्गचूडाललामः ।
पृष्ठे तस्य क्षितिपतिसुता द्योतयन्ती दिगन्तां-
स्तस्याः पृष्ठे कमलनयनो लक्ष्मणः संजगाम ॥ १९ ॥

तेषामेवं गच्छतां मार्गमध्ये रक्षोऽतिष्ठद्घोरकर्मा विराधः ।
संध्याकालीनाभ्रवभ्रुःस्वरूपेणोच्चैः कायः कामचारी करालः ॥ २० ॥

तं खलं मार्गमावृत्य तिष्ठन्तं रघुपुङ्गवः ।
उवाच कोमलां वाचमादाय परमेश्वरः ॥ २१ ॥

कस्त्वं भोः प्रांशुभीमाङ्गः संध्याभ्रकपिशद्युतिः ।
देहि नो गच्छतां मार्गं वनेऽस्मिन् भूरिभीषणे ॥ २२ ॥

इत्युक्तः कुटिलस्वान्तो राक्षसो रुधिराशनः ।
प्रकृत्या भीषणतनुरुवाच विधिवञ्चितः ॥ २३ ॥

के यूयमत्र विजने विपिने मम सद्मनि ।
सम्प्राप्ताः कोमलतमा रक्षसौ मम भक्षणाः ॥ २४ ॥

न कश्चिदत्र मनुजः संचरत्यात्मनो हितम् ।
अन्विच्छन् मदगारेऽस्मिन् भीषणे निर्जने वने ॥ २५ ॥

न चेह कश्चित्सम्प्राप्तः प्राणैः सह गतो जनः ।
अतो वो भोक्तुमिच्छामि मर्त्यानमृतपारणान् ॥ २६ ॥

विधिना नोदिता यूयं सम्प्राप्ता मम सद्मनि ।
अलं वः कातरतयाधुना भूतं हि भावि यत् ॥ २७ ॥

इति तस्य गिरा रामो ज्ञात्वा तं राक्षसाधमम् ।
निहन्तुमेकं विशिखमुद्दधाराशु तूणतः ॥ २८ ॥

स तावदद्रेः शिखरमुत्पाट्य बलदुर्मदः ।
ऐच्छत्पातयितुं रामे आकर्णाकृष्टसायके ॥ २९ ॥

बाणो रामकरोन्मुक्तः खण्डखण्ड चकार तत् ।
गिरेः स्थूलतरं शृङ्गं न्यपतद्रक्षसः करात् ॥ ३० ॥

ततः सोऽन्यद्गिरेः शृङ्गं भ्रामयित्वाऽऽत्मपाणिना ।
मुमोच राक्षसो रामे कल्पद्रुकुसुमोचिते ॥ ३१ ॥

तदप्यस्य करोन्मुक्तबाणभिन्नं सहस्रधा ।
निपपात महीपृष्ठे करकावर्षसंनिभम् ॥ ३२ ॥

अथ भूयः स संक्रुद्धो मुष्टिमाबध्य राक्षसः ।
प्रहर्तुकामस्त्वरितं राममभ्याययौ खलः ॥ ३३ ॥

तमेकेन शरेणोच्चैर्भुजमूलेऽभ्यताडयत् ।
स तेन सुचिरं क्रूरो मूर्छनामाप राक्षसः ॥ ३४ ॥

विहाय मूर्छनां रक्षः सहसा पुनरुत्थितः ।
दर्शयन् भीषणं रूपं दंष्ट्राकोटिस्फुटाननम् ॥ ३५ ॥

रामो मर्मणि विव्याध राक्षसं स्वापराधिनम् ।
आकर्णाकृष्टज्यामुक्तैः शरैराघातवेगिभिः ॥ ३६ ॥

एकेन तस्य वक्षोऽहन् द्वाभ्यां बाहू व्यकृन्तयत् ।
पुनरेकेन तच्छीर्षं कन्धराया अपातयत् ॥ ३७ ॥

इत्थमालिङ्ग्य वैदेहीं श्रीरामो रघुसत्तमः ।
दृशा पीयूषवर्षिण्या ददर्श प्राणवल्लभाम् ॥ ३८ ॥

रामतीक्ष्णशराघातैर्विभिन्नतनुरस्तपः ।
निपतन् धरणीं कृत्स्नां कम्पयामास भारतः ॥ ३९ ॥

तदङ्गं शतधा कृत्वा राघवौ खड्गकर्तनैः ।
स्थाने दुर्गन्धमाशङ्क्य धरण्यां विनिचख्न तुः ॥ ४० ॥

तस्मिन् दिने तद्विषयाद्विवासिता
स्तेनैव घोराचरितेन रक्षसा ।
स्वस्वाश्रमस्थानमुपाययुस्तदा
तपोधना राघवयोः कृताशिषः ॥ ४१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे विराधवधो नामैकोनत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२९॥

*

त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

विराधवधसामर्षा ये चान्येऽपि निशाचराः ।
ते भेजू राघवावेत्य दीपेष्विव पतङ्गताम् ॥ १ ॥

मुनीन् सम्मानयामास रामः कामतरूपमः ।
विराधवधसंहृष्टास्ते तस्मायाशिषो ददुः ॥ २ ॥

ब्रह्मण्यदेवता तेन मुनिषु प्रकटीकृता ।
सीतां नियोजयामास येषां पादावनेजने ॥ ३ ॥

रामं निरीक्ष्य मुनयो दण्डकावनवासिनः ।
पूर्णकामाः समभवत् मेनिरे च तमीश्वरम् ॥ ४ ॥

असावधोक्षजः साक्षाच्छ्रिया देव्या समन्वितः ।
रामचन्द्रः सुखयितुं धरणीतलमागतः ॥ ५ ॥

कोऽन्योऽमुना विना हन्यादत्युग्रान् रजनीचरान् ।
द्विजदेवत्रयीधर्मं रक्षेच्च निजवीर्यतः ॥ ६ ॥

इतिरात्रं दिवं रामः स्वगुणानेवगायतः ।
मुनीन्द्रान् मोदयामास प्रकृत्यैव मनोज्ञया ॥ ७ ॥

मुनिदाराः प्रपश्यन्तः प्रियां रामस्य जानकीम् ।
आशंसन्तः प्रमुदिता इदमूचुः कृपावशात् ॥ ८ ॥

हा कष्टं राजतनये तव वीरेन्द्रभामिनि ।
पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यामटवीमवगाहसे ॥ ९ ॥

धिक् कैकेय्याः कुमतिं घोरकर्मणो यया समुद्भिन्ननवेन्दुनीलभः ।
रामः कान्तासहितः काननं व्रजन् निवारितो नैव गुणैर्महोज्ज्वलः ॥ १० ॥

जानेऽमुष्या बुद्धिरभ्युद्गतेयं भाग्यैरस्माकं वने वृत्तिभाजाम् ।
नो चेत्कासौ प्रावृषेण्याभ्रनीलो दृश्यः स्यान्नो दृष्टिभिस्तापसीनाम् ॥ ११ ॥

गीयाच्चिरं ते पतिरूर्जितोऽय हे देवि वैदेहि चिरं लभस्व ।
साम्राज्यलक्ष्मीरिव पत्युरग्रे सौभाग्यभाग्याप्रतिमप्रभावम् ॥ १२ ॥

दूयामहे देवि तव त्विमां दशां विलोकयन्त्यो वनचारिणीर्वयम् ।
हृष्याम एवापि तवावलोकनात् स्वभाग्यवृद्धिं समुदीक्ष्य भूयः ॥ १३ ॥

इति सा वार्तयन्तीनां मुनिस्त्रीणां निकेतने ।
अवसत्स्वस्थहृदया पतिदेवरसंयुता ॥ १४ ॥

फुल्लवृक्षलतागुल्मप्रसूनवरमण्डिता ।
अङ्गसंगिसुगन्धौघैर्वासयन्ती वनस्थलीः ॥ १५ ॥

विचचार वनं सीता पत्या सह सुलक्षणी ।
वर्द्धयन्ती हृदि प्रीतिं दण्डकारण्यवासिनाम् ॥ १६ ॥

कोटिकन्दर्पसंदर्पमन्दीकरणमुत्तमम् ।
सौन्दर्यं रामचन्द्रस्य पपुर्धन्या वनेचराः ॥ १७ ॥

येषु येषु वने सीता वृक्षेषु समधिष्ठिता ।
तेषु तेष्विव संलग्नास्तदङ्गात्सौरभश्रियः ॥ १८ ॥

प्रयान्त्याः कानने तस्याः पत्या सह वरश्रियः ।
अग्रेसरः समभवत्तदङ्गसौरभमारुतः ॥ १९ ॥

रञ्जयन्ती तनुश्रीभिः काञ्चनैरिव काननम् ।
द्योतयन्ती तडिद्द्योतैर्निविडा गह्वरस्थलीः ॥ २० ॥

आलपन्ती शुभा वाचः पत्युर्हृदयमोदनीः ।
वर्द्धयन्ती परां प्रीतिं द्विधा पत्यौ च देवरे ॥ २१ ॥

निवसन्ती समं पत्या पर्णशालासु रात्रिषु ।
देवरेणोपक्लृप्तासु पत्युराज्ञानुवर्तिना ॥ २२ ॥

पचन्ती मृगमांसानि शुभाहारकराणि च ।
देवरेणोपनीतानि मेध्यानि विविधानि च ॥ २३ ॥

आवसथ्याग्निहोमान्ते पत्यौ भुक्तवति प्रिये ।
देवरेचाभ्यनुज्ञाता भुञ्जानामृतभुक् स्वयम् ॥ २४ ॥

उवास कानने देवी भर्त्रा सह सुनिर्वृता ।
देवरेण प्रतिपदं कृतभक्तिविशेषतः ॥ २५ ॥

सौमित्रिर्गृहिणे भ्रात्रे शय्याः पर्णमयीः शुभाः ।
पर्णशालासुरम्यासु कल्पयामास कालवित् ॥ २६ ॥

अध्यासीनः पर्णशालासु रामः शय्याः शुभा लक्ष्मणेनोपक्लृप्ताः ।
निन्ये रात्रीर्जानकीभोगजुष्टः शश्वद्गाढालिङ्गनानन्दमग्नः ॥ २७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे वनवासे त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१३०॥

*

एकत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

कुटुम्बिन्यः किरातानां दृष्ट्वा रामं वनेचरम् ।
तापसं शुभवेशाढ्यं सदारं सानुजं तथा ॥ १ ॥

पूर्णप्रेमभरोत्कण्ठाश्चपलेक्षणपङ्कजाः ।
इदमूचुः प्रमुदिताः पुलकाञ्चितविग्रहाः ॥ २ ॥

अहो इमावग्निसमानवर्चसौ सत्तापसौ पिङ्गजटालकुन्तलौ ।
कौ काननेऽस्मिन् पुरुषोत्तमावुभौ मन्दस्मितानन्दिमुखौ रसोज्ज्वलौ ॥ ३ ॥

का चेयमङ्गैस्तडितो विधुन्वती राकानिशाकामुकवक्त्रमण्डला ।
क्षामोदरी हेमघटोन्नतस्तनी प्रद्योतयन्ती रुचिभिर्वनस्थलीः ॥ ४ ॥

प्रायेण रामोऽयमनङ्गसुन्दरः सुलक्षणोऽयं च तथैव लक्ष्मणः ।
एषा च विद्मो जनकावनीभुजः कन्यैव ताम्यत्तपनीयविग्रहा ॥ ५ ॥

अहो अमी भूवलयैकभूषणाः सुपेशलाः सौरभशालिविग्रहाः ।
कृतार्थयन्तीह वने वनौकसो मन्दस्मितालोकमुखेन्दुरस्मिभिः ॥ ६ ॥

ये केऽपि लोके पुरुषोत्तमानिमान् पश्यन्ति दृग्भिः सुधयात्तपारणाः ।
ते एव धन्या इह शर्मधारिणो धुरंधराभाग्यभृतां सुजन्मनाम् ॥ ७ ॥

अये किराताङ्गभुवो वनौकसो भाग्यैर्व एतेऽत्र समागतास्त्रयः ।
इहैव तिष्ठन्तु निरन्तरं वने सुधाप्रवाहं च दृशः पिबन्तु नः ॥ ८ ॥

अये चकोरास्तरुनीडवासिनः किमप्यलभ्यं सुलभं बभूवः ।
इहादसीयं सुखकारिदर्शनं या मध्यगासावमुयोः पुमग्र्योः ॥ ९ ॥

अये मयूरा अमुमभ्र सुन्दरं सुधारसासारमनोज्ञदर्शनम् ।
विलोकयन्तः किमपि प्रहृष्यथ प्रायेण लब्धं किल वोऽसुजीवनम् ॥ १० ॥

इमाम पीच्यावयवां सुमध्यमां वने चरन्तीं कलहंसशावकाः ।
किमन्तरानन्दभृतौऽनुगच्छथ प्रायेणमञ्जीरकलकणादृताः ॥ ११ ॥

अहो युवां लोकमनोहराकृती स्वभावशुद्धौ कलमञ्जुभाषिणौ ।
किमप्यपूर्वं खनु रामणीयकं वनेऽत्र सम्यक्कुरुतस्तनुत्विषा ॥ १२ ॥

अये मनोज्ञे वरवर्णिनि क्षणं त्वमत्र कान्तारपथे सुसंगता ।
करोषि वैदेहि किरातयोषितां धन्ये दृशौ भाग्यसमूहसम्भृते ॥ १३ ॥

अये कियद्यावदितो गमिष्यसि प्राप्तासि पन्थानमतीत्य पुष्कलम् ।
इहैव तिष्ठाद्य विदेहभूपजे कुरुष्व धन्ये सफलाश्च नो दृशः ॥ १४ ॥

तवेदमङ्गं कमलाधि कोमलं समस्तभूमीसुखभोगयोग्यम् ।
गभस्तयोऽर्कस्य कठोरतापदाः श्रमाम्भसा यद्ग्लपयन्त्यनुक्षणम् ॥ १५ ॥

तदेव नोदूयत उच्चकैर्मनो विश्रम्यतां सम्प्रति राजकन्यके।
इमौ च तौ काममनोज्ञवर्चसाविहैव संस्थापय भर्तृदेवरौ ॥ १६ ॥

कियत्सरोजाशयकोमलाभ्यां पद्भ्यामटव्यामवगाहयिष्यसि।
भुवं कुशाग्रातिकठोरगर्भां प्रायेण चित्तं तवसाधु निष्कृपम् ॥ १७ ॥

इदं वनं नः खलु सत्त्ववर्जितं सुपल्लवश्रेणिमनोज्ञभूरुहम्।
विकस्वरं भूरिफलं सुशीतलं सुच्छायकुञ्जद्रुमवल्लिमण्डपम् ॥ १८ ॥

इहास्यतां नोदयथा रघूत्तमौ किमुत्तमां खेदयथः प्रियामिमाम्।
विधीयतां पर्णमयं शुभं गृहं मेध्यान् मृगान् हंस्यथ आत्मतृप्तये ॥ १९ ॥

युवां प्रकृत्यैव मनोहरावुभौ सुधन्यया वल्लभयामुयान्वितौ।
इहैव रम्ये विपिने निशामिमां भाग्येन नः खल्वतिवाहयिष्यथः ॥ २० ॥

युष्मान् हि लोकोत्तररूपसम्पदा जगद्वशीकुर्वत आत्मशीलतः।
निरीक्षमाणे अपि नो दृशाविमे अतृप्तकाल्पे ननु रूपपारणात् ॥ २१ ॥

इति तासां वदन्तीनां संप्रेम्णां भिल्लयोषिताम्।
समाकर्ण्य शुभा वाचो मुमुदुस्ते त्रयो हृदि ॥ २२ ॥

ततो लक्ष्मण आनीय मृगान् मेध्यान् निजैः शरैः।
विनिर्ममे पर्णशाले उभे आर्याय चात्मने ॥ २३ ॥

आर्यस्य च सदारस्य पर्णशालां मनोहराम्।
विनिर्ममे विशालां स आत्मने च तनीयसीम् ॥ २४ ॥

आर्यस्य लक्ष्मीवति पर्णशाले शय्यां शुभां भूरुहपद्मपल्लवैः।
विनिर्ममे चावसथ्याग्निधानीं वेदीं च विज्ञः शुभलक्षणान्विताम् ॥ २५ ॥

आधाय मांसानि मृगस्य मेध्यान्यत्यादृतस्तत्र तयोः पदाब्जम्।
प्रणम्य भक्त्या पुलकाञ्चिताङ्गः संवाहयामास विनीतखेदः ॥ २६ ॥

अथ रघुपतिरग्निहोत्रहोमाज्जनकसुतापरिपक्वमेध्यमांसैः।
विपिनतरुभवैः फलैश्च रस्यैरनुजवधूयुत आच्छदात्मतृप्तिम् ॥ २७ ॥

सुप्तः स पर्णसदने विविधाः प्रवृत्तीः संवार्तयन् भृशमसु प्रियया समेतः।
निन्ये निशां कटुरणद्वनघूकघोषघोरान्धकारितशिवारुतभीमरूपाम् ॥ २८ ॥

तत्र लक्ष्मण उदाहितचापः पूर्णतूर्ण इषुभिर्निशिताग्रैः।
जाग्रदेव रजनीं समनैषीदार्यपादकमलाहितचित्तः ॥ २९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे वनवासनिस्वापो नामैक[1]त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

*

१. वनवासे एकं---बड़ो०

द्वात्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

ततः प्रभाते विमले क्वणत्सु वनपक्षिषु ।
विनीतनिद्रः श्रीरामः प्राबोधयत लक्ष्मणम् ॥ १ ॥

भ्रातर्जागृहि सौमित्रे उत्थायाभ्युचितं कुरु ।
गता निशासावुदितो रक्तांशुर्भानुमण्डलः ॥ २ ॥

इत एकतमां रात्रिं मध्ये विश्रम्य कानने ।
परतोऽह्निगमिष्यामः कुम्भयोनेः शुभाश्रमम् ॥ ३ ॥

अद्येदमद्भुततमं मुनीनां वनमुत्तमम् ।
क्षेममध्यासिता स्वो वै सुखयन्तो वनेचरान् ॥ ४ ॥

वनेऽस्मिन् मम भक्तास्ते विद्यन्ते दीप्तवर्चसः ।
येषां प्रेम्णा वशीभूतो भविष्यामि न संशयः ॥ ५ ॥

केनापि किल भावेन तपस्यन्ति तपोधनाः ।
स तेषां मनसो भावः प्रकटोऽद्य भविष्यति ॥ ६ ॥

इत्युक्त्वा लक्ष्मणं भूयः सुन्दरो रामचन्द्रमाः ।
ययावग्निकुमाराणां मुनीनां तत्तपोवनम् ॥ ७ ॥

प्रशान्तश्वापदाकीर्णं वेदपाठप्रघोषितम् ।
शान्तस्वरैर्विहंगानां कर्णयोः प्रमुदावहम् ॥ ८ ॥

सामगानस्वरोपेतं होमधूमोरुसौरभम् ।
श्रौषड्वौषड्वषट्शब्दनिरस्तासुरसंचरम् ॥ ९ ॥

संफुल्लानोकुहलतासुमनोगुच्छसौरभम् ।
गुल्मपुष्पातिसौरभ्यवशीभूतमधुव्रतम् ॥ १० ॥

मनोज्ञकोकिलालापकाकलीपञ्चमस्वरम् ।
परमानन्दसम्मग्नविकूजच्छुकसारिकम् ॥ ११ ॥

पञ्चवर्णप्रसूनाढ्यतरुचित्रविचित्रितम् ।
उत्फुल्लपद्मखण्डाढ्यसरोवरमनोहरम् ॥ १२ ॥

तरुगुल्मलतासंगित्रिविधानिलसेवितम् ।
वनदेवीमुखोद्गीतकलनादसुखावहम् ॥ १३ ॥

अनङ्गोद्दीपनमपि तपो विजितमन्मथम् ।
संफुल्लकिंशुकारण्यलोहितीभूतदिक्तटम् ॥ १४ ॥

विहङ्गमकलध्वानसंक्षिप्तभ्रमरध्वनि ।
भ्रमरध्वनिसंगीतवल्लकीनादमञ्जुलम् ॥ १५ ॥

अशोकवनिकापुष्पजातदिक्सुन्दरीपटम् ।
केतकीकाननोद्भूतपरागपटलीवृतम् ॥ १६ ॥

दृष्ट्वा तद्विपिनं रामः समंताद्रामणीयकम् ।
प्राविशज्जानकीयुक्तः श्रृङ्गारसुरभूरुहः ॥ १७ ॥

उवाच लक्ष्मणं भूयः पश्येयं विपिनं सखे ।
पीयूषपाकमधुरफलसंदोहतृप्तिकृत् ॥ १८ ॥

अस्मिन् विहर्तुमिच्छामि दण्डकावनमूर्द्धनि ।
वनोत्तमे मुनिवने जनयन् जन्मिनां मुदम् ॥ १९ ॥

ये केचित्कानने ह्यस्मिन् मुनयः शुद्धबुद्धयः ।
तानस्म्यनुग्रहीष्यामि यथावाञ्छितसाधकः ॥ २० ॥

करोतु जानकीदेवी श्रृङ्गारमिहकानने ।
सुमनोभिः पञ्चवर्णैः फलैश्च तरुपल्लवैः ॥ २१ ॥

भवान् वनेऽत्रसौमित्रे मा वधीन्मेध्यकान् मृगान् ।
एते हि मुनिकन्याभिः पोषिताः सोदरा इव ॥ २२ ॥

खेलन्तीह सुविश्वस्ताः कृष्णसारा अमीवने ।
कर्षन्ति मुनिहस्तेभ्यः कर्मदर्भोदकाक्षतान् ॥ २३ ॥

वन्यैरेव फलैर्मूलैः पत्रैः पुष्पैरिहोचिता ।
वृत्तिर्नः साधुशीलानां मुनीनामाश्रमालिषु ॥ २४ ॥

इत्युक्त्वा भ्रातरं वीरः फलाद्यर्थं व्यसर्जयत् ।
स्वयं च व्यश्रमत्सान्द्रलतामण्डपमाश्रितः ॥ २५ ॥

विजह्रे जानकीतत्र भर्त्रा सह मुदान्विता ।
कुसुमान्वयचिन्वन्तो भूषणार्थं लतावने ॥ २६ ॥

अथ श्रृङ्गारयामास गात्रयष्टिं शुचिस्मिता ।
पत्युर्मनो[1]रञ्जनकृद्विन्यासविधिदक्षिणा ॥ २७ ॥

सानुकूलानुकूलेन पत्या साध्वी सुसंगता ।
रेजे रतिरिवोद्रिक्ता सज्जमाना मनोभुवा ॥ २८ ॥

सुसम्मार्ज्य कचांस्तस्या मल्लीमाल्यैर्जुगुंफ सः ।
ते द्विपाटीकृता रेजुर्नभस्ताराकितं यथा ॥ २९ ॥

पञ्चवर्णसुमैर्वेणीं जुगुंफ वरयोषितः ।
रेजेतरांलतैवोच्चैः साम्प्रतं गुच्छशालिनी ॥ ३० ॥

सिन्दूरैः पूरयामास सीमन्तं रामनायकः ।
नभःपथ इवाराजन्नवसांध्यकरारुणः ॥ ३१ ॥

---

१. हरं जन०--मथु० ।

अलकैर्मेलयित्वास्या बबन्ध शिखिपिच्छिकान् ।
अन्योन्यगुणसम्पर्कात्ते रेजुः सुसखा इव ॥ ३२ ॥

गुंजाफलकृतोत्तंसमालापरिधिशालिना ।
मुखेन व्यरुचद्देवी शशिना वारुणस्रजा ॥ ३३ ॥

तरुपल्लव सम्पन्नकर्णभूषणशालिनी ।
वनश्रीरिव सा रेजे वसन्तागमसम्भृता ॥ ३४ ॥

पञ्चवर्णप्रसूनस्रक्कृताकल्पा नृपात्मजा ।
वसन्तलक्ष्मीरिव सा रेजे मदनमोदिनी ॥ ३५ ॥

तत्त[1]दङ्गप्रन्यस्तपुष्पभूषणशालिनी ।
साक्षात्कल्पलतेवाभाद्रामकल्पद्रुमाश्रिता ॥ ३६ ॥

एवं विहृत्य विपिने विदधौ प्रियायाः प्रत्यङ्गभूषणभरं सुमनोभिरच्छैः ।
दध्रे मनःशिलमथो हरितालमिश्रं तस्य ललाटफलके तिलकं रसीन्द्रः ॥ ३७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे अग्निकुमारवर-प्रदानो नाम द्वात्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

*

त्रयस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तावशोकवनवल्लिमण्डपे मत्तगुञ्जदलिपुञ्जमञ्जुले ।
मुक्तकण्ठकलकोकिलाङ्गनाकाकलीमुखरिते विजह्रतुः ॥ १ ॥

वीक्ष्य तां प्रियतमां रघूत्तमः कोटिकामरमणीविजित्वरीम् ।
क्लृप्तनव्यवनभूषणान्वितां जानकीं हृदयहारिविभ्रमाम् ॥ २ ॥

राघवो व्यमुहदात्मना भृशं तद्विनिर्मितसुवन्यभूषणः ।
रूपमप्रतिममुत्तमं तयोः कामकेलिमतनोत्परस्परम् ॥ ३ ॥

तत्र चारुनवशाद्वलाञ्चिते कुञ्जसद्मनि मनोहरस्थले ।
कापि केलिरभवत्तयोर्मिथः शिंजितानुगतहंससावका ॥ ४ ॥

तौ विहृत्य निभृतं परस्परं रूपसारभररामणीयकम् ।
नीलया ददृशतुः परस्परप्रेक्षणानुभवसाक्षिणावुभौ ॥ ५ ॥

आशुशुक्षणिसुतास्तपस्विनस्तत्र ते मुनिवराः समाययुः ।
आत्मनोऽतिसुचिरं मनोगतं बिभ्रतः कमपि भावमुत्तमम् ॥ ६ ॥

---

१. पादेऽस्मिन्नक्षरन्यूनमार्षः ।

रासकेलिरमुना यदा कृता सारवे विपुलभासिरोधसि।
प्रेमलग्नमनसस्तदावधिप्रैधमानविरहाकुलान्तराः ॥ ७ ॥

ते पुरो जनकजारघूद्वहौ कुञ्जसद्मनि परस्परेक्षिणौ।
वीक्ष्य तत्र हुतभुक्कुमारका वाडवाः सकलमेव विस्मृताः ॥ ८ ॥

के वयं कुत इहागताः कथं कुत्र किं जगदिति प्रतीतिः।
वर्जिता किमपि मुक्तचेतसो रूपसाररमणीयतावशाः ॥ ९ ॥

तान् विमुग्धमनसो द्विजन्मनोवीक्ष्य राघव उदारमानसः।
वाक्यमुज्ज्वलमुदाजहार वै एतदान्तरमनीषितैकवित् ॥ १० ॥

साधु वो नय उदारभावुका वाडवाः सफलसत्तपोधनाः।
यूयमत्र कृपया ममागता ब्रूत किं नु करवाणि वो बुधाः ॥ ११ ॥

कोटिकल्पकृतपुण्यसम्पदामूर्जिताप्रतिमब्रह्मवर्चसाम् ।
ब्रूत वः किमिह नाम दुर्लभं स्वर्गिणामुत फलेऽपवर्गिणाम् ॥ १२ ॥

आन्तरं किमपि भावभावितं प्रेम वो विजयते रसोत्तरम्।
यत्फलं खलु ममावलोकनं लब्धमेव हि भवद्भिरञ्जसा ॥ १३ ॥

इत्युदीर्णममुना मनीषिणा तेऽवगत्य तनया हविर्भुजः।
ऊचुरुत्प्रणयमानसा द्विजाश्चित्तधैर्यमवलम्य किंचन ॥ १४ ॥

कोटिपञ्चशररामणीयकस्तेन रूपरुचिसारसम्पदि।
वीक्षिते त्वयि रमेश नेतरद्वीक्षणीयमधुना भवेऽस्ति नः ॥ १५ ॥

एतदेव कुरु राम कामदोऽस्यस्मदीयमिदमत्र कामितम्।
यत्तवैव पुरुषस्य कामिनः कामिनीभवितुमस्ति नः स्पृहा ॥ १६ ॥

एहि राम करुणारसाब्धितां तावकीनविरहो दुनोति नः।
त्राह्यपाकुरुतमेनमूर्जितं देहि शुद्धमधरामृतं निजम् ॥ १७ ॥

तान्तिमेति हृदयं तपस्विनां तत्र धेहि निजपादपल्लवम्।
मोददानममृतैकवर्षणां तावकीनविरहार्तिभेषजम् ॥ १८ ॥

एधते बहुतिथं मनोगतः कोऽपि भाव इति भावितस्त्वयि।
तस्य पारमधुना प्रदर्शय श्रीशदेहि निजभोगभोजनम् ॥ १९ ॥

नान्यथा भवितुमर्हति स्पृहा कल्पिता त्वयि चिराय राघव।
प्रार्थितार्थिगणकल्पशाखिनस्त्वत्प्रभो क इतरोऽस्त्वदोर्पकः ॥ २० ॥

नाथ नीतिरपि नैव हीयते प्रायशस्तव परा कदाचन।
यो यथैव भवतः प्रपत्तिभाक्तं तथैव हि भवान् प्रपद्यते ॥ २१ ॥

देव्यसावपि तवानुमन्यतां भागधेयविभवेन नोऽर्थितम्।
स्यात्सुदुर्लभमयीदमेतयानूमतं सुलभमेव राघव ॥ २२ ॥

इत्थमग्निसुततापसोदितं संनिशम्य रघुवंशचन्द्रमाः।
मञ्जुलस्मितमयूखपूरिताखण्डवक्त्रविधुमण्डलोऽब्रवीत् ॥ २३ ॥

श्रीराम उवाच

अहो हि यूयं कथमिच्छथैवं स्त्रीभावमाप्तुं पुरुषप्रकाण्डाः।
स्त्रीजन्म निन्द्यं मुनयो वदन्ति मानुष्यलोके पूरुषजन्मनोऽस्मिन् ॥ २४ ॥

स्त्री नाम वेदानधिकारदुष्टा स्त्रातन्त्र्यहीनाल्पतासुरद्धा।
अनेकदुःखानुभवैकपात्रं पुमर्थवर्जा भयभाजनं च ॥ २५ ॥

शङ्कया च शश्वद्व्यभिचारदोषादप्येकजन्मा च्युतसंस्कृतिश्च।
को नाम विद्वाननवद्यपुंस्त्वं विहाय योषिज्जनुराद्रियेत ॥ २६ ॥

अथापि सर्वज्ञतयानपेतप्राग्जन्मसंस्कारगुणा भवन्तः।
स्त्रीभूय रन्तुं यदि कामयन्ते तुल्या रतिस्तर्हि न किं नु पुंसाम् ॥ २७ ॥

अप्येवमभ्यर्थितकामभोगा आरूढपातित्यधरा भवन्तः।
[1]भवादृशात्मज्ञगणोपहास्यं तपोव्ययं किं न परामृशन्ति ॥ २८ ॥

न ह्यात्मविज्ञानसुनिश्चितार्थाः प्राप्ताः परानन्दसुधाब्धिभोगम्।[1]
भवादृशा ब्रह्मविदां वरेण्यास्तुच्छे फले नैव भवे रमन्ते ॥ २९ ॥

अथाप्यहो ज्ञानकलाप्रभावाद्यूयं सदैवोषरतां प्रयाताः।
न पुण्यपापादिफलाङ्कुरार्हा यथेष्टमेव व्यवहारभाजः ॥ ३० ॥

तथाप्यहं त्वेकवधूप्रसंगव्रती विमुक्तान्यवधूप्रसंगः।
न भर्तृभावं समुपेत्य भोक्तुं युष्माभिरर्हामि यथार्थवाचः ॥ ३१ ॥

इत्येवमुक्ता मुनयस्तदानीमवाङ्मुखाः शोककदर्थितास्ते।
गाढं विनिःश्वस्य पुरः प्रियस्य न किंचिदूचुः क्षणमुग्रतापाः ॥ ३२ ॥

अथ धृतिमवलम्ब्य प्राग्वितीर्णस्मृतार्था
मुहुरुपचितभावा जातवेदःकुमाराः।
दृढमतिपरिपाकादस्खलन्तः कथंचिद्व-
चनमिदमवोचन् नान्यभावानभिज्ञाः ॥ ३३ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे अग्निकुमारमुनिवरदाने त्रयस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

*

१-१. नास्ति--बड़ो०।

चतुस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः

मुनय ऊचु

स्त्रीत्वं वा पुंस्त्वमेवापि कामयानः स्वतन्त्रधीः ।
नायं पर्यनुयोगार्हः काम देन ननु त्वया ॥ १ ॥

भजते येन भावेन भवन्तं भजनीयकम् ।
भजस्व तं तथा राम त्वं कल्पतरुसन्मितः ॥ २ ॥

अथ नो राम रसिक यदाह गुणवद्भवान् ।
प्रमोदबनकान्तास्ताः कथं न तदुदाहरत् ॥ ३ ॥

यदात्थ स्त्रीत्वं सावद्यं त्वमवद्यौघमार्जनः ।
तन्नास्माकं वचो योग्यमनवद्यपदस्पृहाम् ॥ ४ ॥

विसस्मार किमेवं वाग्भवानात्मवचोऽमृतम् ।
यदुदीरितमार्तेभ्यो भवता रासमण्डले ॥ ५ ॥

वितीर्णोऽपि त्वया नाथ सर्वकामफलो वरः ।
स्मारितस्तव नानार्थव्यासक्तस्य वराककैः ॥ ६ ॥

अधुनापि किमेवं ते निर्बन्ध इव दृश्यते ।
जन्मान्तरेऽऽपि भाव्यर्थो भावनीयो न किं प्रभो ॥ ७ ॥

अथ सर्वज्ञमौलेस्ते दत्तस्याप्यनुनाथनम् ।
अचिरेणैव दानाय कृतमस्माभिरार्तकैः ॥ ८ ॥

श्रीराम उवाच

साधु संस्मारितो मेऽद्य वितीर्णो वो वरोह्ययम् ।
मया प्रमुद्वनस्त्रीभिः खेलता रासमण्डले ॥ ९ ॥

सुदुर्घटोऽप्यसावर्थो भवतां सम्भविष्यति ।
अनुमोदितमात्रस्तु महिष्या मे किलानया ॥ १० ॥

मया दत्तोऽप्यसावर्थः प्रार्थनीयो मुहुर्द्विजाः ।
एतस्या मे परानन्दस्वामिन्या अधुना रहः ॥ ११ ॥

इत्युक्तास्तेऽग्नितनया द्विजन्मानो महात्मना ।
राघवेन्द्रेण वै सीतासापेक्षाखिलवृत्तिना ॥ १२ ॥

ज्ञात्वा तामेव निखिलकार्यसिद्धीश्वरीं प्रभोः ।
प्रेयसीमनवद्याङ्गीमस्तौषुः परमार्थतः ॥ १३ ॥

मुनय ऊचु

त्वमेव सर्वकार्येशी रामस्य परमात्मनः ।
अतस्त्वामेव शरणं प्रपन्नाः स्मो निरन्तरम् ॥ १४ ॥

त्वमेव देवि रामस्य विश्वेशस्य महात्मनः ।
पुरोऽस्मान् रह आनन्दे संस्मारय शुभाप्तये ॥ १५ ॥

करावलम्बनं मातः कारयास्य निजेशितुः ।
त्वदधीनः क्लिशोऽस्मान्न त्यक्ष्यति कथंचन ॥ १६ ॥

महतीं मोचयास्माकमार्तानां विरहापदम् ।
यथा कथंचिद्धेह्य स्मान्निजे परिकरे सति ॥ १७ ॥

त्व देवि महनीयासि महतोऽस्य महात्मनः ।
एकधानेकधा चामुं रमयस्यभितो रमे ॥ १८ ॥

यथा त्वमाभीरवधूः प्रसादतः सदान्वगृह्णाविरहादिभोगिनीः ।
तथैव नः षष्ठिसहस्रसंख्यकान् द्विजान् स्वदृष्ट्यानुगृहाण जानकि ॥ १९ ॥

त्वमेव सहजानन्दा श्रीनन्दनसमुद्भवा ।
रक्ताशोकलतासद्मनिवासमुदिताशया ॥ २० ॥

त्वमेव परमा लक्ष्मीर्जगत्त्रयविभूषिणी ।
त्वामाराधयतां नृणां न भवन्ति मनोरुजः ॥ २१ ॥

कथय निजर्यति नो भूरिविश्लेषदुःखं यदयनयति कारुण्याकरस्ते प्रियोऽसौ ।
सदयमनिशमस्मानाविश त्वं परा श्रीर्विचलति तव भर्तुर्नैकपत्नीव्रतं यत् ॥ २२ ॥

इति संस्तुवतो विप्रान् मुनीनग्नेः कुमारकान् ।
सीता कृपाकटाक्षेण वीक्षाञ्चक्रे कृपावती ॥ २३ ॥

अथ रामोऽब्रवीद्विप्रान् सिद्धं वः कामितं द्विजाः ।
अस्याः कृपाकटाक्षेण तद्गच्छथ निजाश्रमान् ॥ २४ ॥

आगामिनि विधौ प्राप्य कल्पं सारस्वतं द्विजाः ।
अनुग्रहाय यो नूनं संगं दाताहमात्मना ॥ २५ ॥

प्रमोदविपिने रम्ये सरय्वां वै तपोधनाः ।
अनेनैव स्वरूपेण रमयिष्यामि वो ध्रुवम् ॥ २६ ॥

तावत्तप्य । योगीन्द्राः कायवाक्चित्तशोधनम् ।
दण्डकारण्यमध्यस्था यूयं सुविपुलं तपः ॥ २७ ॥

हित्वा गुणमयीरेतास्तनूर्मत्सविधोचितम् ।
स्त्रीभावमेत्य सर्वेऽपि यूयं मां समवाप्स्यथ ॥ २८ ॥

इति वः पूर्वमप्युक्तं मयकारासमण्डले ।
अधैर्या द्विरहोद्भूतात्पुनरप्यागताः स्थ माम् ॥ २९ ॥

इमां देवीमाराधयत मदभेदेन सततं
परप्रेम्णा साक्षात्परमसहजानन्दवपुषम् ।
कृपादृष्ट्यैवास्याः परिणतमनःकाम्यविषयाः
सुसिद्धाशेषार्थाः सपदि परमां प्राप्स्यथ मुदम् ॥ ३० ॥

इति भूयः सुविश्वस्ता लब्धकामवरा द्विजाः ।
प्रणम्य सीतां रामं च स्वानि स्वान्याश्रमाण्यगुः ॥ ३१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे अग्निकुमारसमाश्वासनो नाम चतुस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

*

पञ्चत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ लक्ष्मण आगच्छत्फलान्याहृत्य काननात् ।
तान्यग्रे स्थापयामास सीताराघवयोरयम् ॥ १ ॥

देवताः पितरश्चैव तर्पितास्तेन तैः फलैः ।
अभ्युक्षितैर्द्रोणपात्रे मन्त्रपूतेन वारिणा ॥ २ ॥

तान्येष बुभुजे देवो जायया सहितः प्रभुः ।
स्वादं स्वादं पवित्राणि पाकरुच्यानि रोचयन् ॥ ३ ॥

अथ निश्युपजातायां दिव्यौषधिसुदीपते ।
निकुञ्जमण्डपे तस्मिन् सुष्वाप प्रियया सह ॥ ४ ॥

सौमित्रिरधिरूढज्यकोदण्डनिहिताशुगः ।
जाग्रदेव निशां निन्ये स्वपत्यार्ये सदारके ॥ ५ ॥

सव्यापसव्यपार्श्वाभ्यां परिवर्तनवर्तनैः ।
विनीतनिद्रो रघुपः प्रातः प्राबुध्यत स्वयम् ॥ ६ ॥

कराङ्गुलिभिरुन्मज्य नेत्रे अलसपक्ष्मणी ।
उत्तस्थौ रघुशार्दूलः प्रियालोचनसौख्यदः ॥ ७ ॥

शृण्वन् विहगनिक्वाणं प्रातःसमभिकं शुभम् ।
प्रबोधमङ्गलोपेतो मुहूर्तं तस्थिवान् स्थिरः ॥ ८ ॥

नासाग्रन्यस्तनयनः संवृतास्यः सुनिश्चलः ।
विष्टभ्योरः क्षणं दध्यौ स्वात्मज्योतिरखण्डितम् ॥ ९ ॥

सूर्यवंशावतंसस्य रामस्य वदनाम्बुजम् ।
लक्ष्मणे वीक्षमाणाः सन् मुमुदेऽतितरां हृदि ॥ १० ॥

कुण्ठोत्कण्ठः पितर्यासील्लक्ष्मणो रामसौहृदात् ।
जानकीप्रेमसंतुष्टो जनन्यां शिथिलादरः ॥ ११ ॥

सीताराघवयोस्तस्य प्रीतिरासीद्दिने दिने ।
मातरं पितरं चापि यथा विस्मृतवान् हृदा ॥ १२ ॥

वनेऽपि वसतस्तस्य सीतारामस्वभावतः ।
बन्धुपूर्ण इवागारे हृदि हर्षो व्यवर्द्धत ॥ १३ ॥

तस्य संगाच्च तौ हृष्टौ वनवासं न जज्ञतुः ।
पूर्णराज्यश्रियोयेते सद्मनी वषितुः सुखम् ॥ १४ ॥

ततः प्रतस्थौ भगवान् लक्ष्मणेनानुमोदितः ।
प्रियया पृष्ठगामिन्या रोहिण्येवान्वितो विधुः ॥ १५ ॥

तस्मिन् पादपसंदोहो व्यकिरत्कुसुमव्रजम् ।
ज्ञात्वेव प्रतिवर्षंतुं घनं जीवनदायिनम् ॥ १६ ॥

पथि व्रजन् बभौ रामो नीलसुन्दरविग्रहः ।
तडित्वानिव संयुक्तः सौदामिन्येव कान्तया ॥ १७ ॥

चुकूजुः कोकिलाः सम्यग्बिभ्रतः पञ्चमस्वरम् ।
ननृतुश्च प्रतानिन्यो महताशिक्षिता इव ॥ १८ ॥

दध्वनुः कीचकाः सम्यग् रन्ध्रपूरितमारुताः ।
वनं तत्प्रथयामास संगीतमिवराघवे ॥ १९ ॥

त्रैलोक्यवल्लभेतस्मिन् सदारे सानुजे तथा ।
सम्प्रयाति प्रतिपथं सुखयामास तद्वनम् ॥ २० ॥

भर्तारमनुगच्छन्त्याः सीतायाश्चरणौ मृदू ।
नाखिदयतां किरत्युच्चैः पल्लवान् पादपव्रजे ॥ २१ ॥

क्वचित्तरुतले कांश्चित् क्षणान् विश्रमतोस्तयोः ।
पादसंवाहनं चक्रे लक्ष्मणो भक्तिविह्वलः ॥ २२ ॥

क्वचिद्द्रुमलतास्तोमैः कृत्वा छत्रं मनोहरम् ।
सीताराघवयोश्छायां सुमित्रातनयोऽतनोत् ॥ २३ ॥

तेऽविशन् विपिनं भीमं क्रीडच्छार्दूलशावकम् ।
उद्रिक्तघोरमहिषं शैलैरुच्चावचं पथि ॥ २४ ॥

नानावर्णविहंगाढ्यं नानावर्णमृगान्वितम् ।
नानाजातिलतावृक्षं सुच्छायसुखदान्तरम् ॥ २५ ॥

पश्यन्तो दण्डकारण्यभूमिं निर्जनभीषणाम् ।
प्रययुः सुमहासत्त्वास्त्रयस्ते वह्निदीप्तयः ॥ २६ ॥

कोदण्डोद्दण्ड भुजयोः खड्गिनोर्दृढवर्मणोः ।
कापि शोभा तयोरासीद् या वीरोत्साहयोर्मिथः ॥ २७ ॥

तयोर्मध्ये जनकजा कूजन्नूपुरमेखला ।
प्रयान्ती रतिरभ्राजद् वसन्तस्मरयोरिव ॥ २८ ॥

तान् गच्छतः पथि लता बनिता इवोच्चै रन्तर्द्विरेफविकसत्कुसुमोत्सुकाद्यः ।
ऐक्षन्त मन्दमरुता विटपैस्तरूणांकिंचिद्विभक्तनवस्त्रपयेव तेभ्यः ॥ २९ ॥

अत्रिनार्या वितीर्णैस्तैरङ्गरागैः सुगन्धिभिः ।
जानकी सुरभीचक्रे दण्डकारण्यपादपान् ॥ ३० ॥

तेऽतीत्य दूरमध्वानं सरजःपद्मकुन्तलाः ।
कुम्भोद्भवमुनेः स्थानं प्राप्तवन्तः सुखावहम् ॥ ३१ ॥

स्वच्छपानीयकासारं संफुल्लनलिनीवनम् ।
ओंकारनादसंकूजदनेकशुकसारिकम् ॥ ३२ ॥

कुसुमस्तबकाकीर्णलताभूरुहभूषितम् ।
मुनिपुत्रमुखोद्गीर्णऋग्यजुःसामघोषितम् ॥ ३३ ॥

सायमाहुतिदानार्थमभ्युद्धृतहुताशनम् ।
होमधूममिलिन्दालिमिलद्गगनमण्डलम् ॥ ३४ ॥

वनान्तरादुपादाय समित्कुशकदम्बकम् ।
उपावृत्तैर्मुनिजनैराकीर्णं सर्वतो दिशम् ॥ ३५ ॥

मुहूर्तं जपतां तूष्णीं गायत्रीं वेदमातरम् ।
मुनीनां भवनेष्वन्तर्निःशब्दायतवाडवम् ॥ ३६ ॥

सर्वतः शान्तिसम्पन्नं दुष्टसत्त्वविवर्जितम् ।
निर्विरोधकृतावासैराकीर्णं पशुपक्षिभिः ॥ ३७ ॥

हुताग्निहोत्राज्यगन्धपूयमानदिगष्टकम् ।
सायंसंध्यामुपासीने मुनिवृन्दे समंततः ॥ ३८ ॥

निःशब्दविहगस्तोमं मृगैः संचारवर्जितैः ।
अध्यासितोटजप्रान्तैः कृतरोमन्थवर्तनम् ॥ ३९ ॥

इयाय राघवस्तत्र भानावस्तमितायति ।
सीतानुजाभ्यां सहितस्तीर्थपावनपावनः ॥ ४० ॥

ददर्शासौ शान्तमिष्टाग्निहोत्रं लोपामुद्रासंयुतं कुम्भयोनिम् ।
त्रयोऽपि ते योगिनं तं मुनीन्द्रं ववन्दिरे स्वाभिधाख्यानपूर्वम् ॥ ४१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणेब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे अगस्त्याश्रमोपगमने पञ्चत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

*

षट्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तानाशीर्भिर्नन्दयामास भूयो गृहागतान् भगवान् कुम्भयोनिः ।
पाद्यार्घ्याद्यैरुपचारैः सहर्षं जग्राहाग्रे भूय युक्तो मुनीन्द्रैः ॥ १ ॥

विधिवत्स्वासनासीनास्तानुवाच घटोद्भवः ।
लोपामुद्रासहासीनः सूर्यकल्पो महामुनिः ॥ २ ॥

स्वागतं वः सर्वलोकक्षेमायचरथाटवीम् ।
अहो युष्माभिरद्यैष कृतार्थीकृत आश्रमः ॥ ३ ॥

यन्मे हुतं कृतं तप्तं तदद्य सफलं बभौ ।
यल्लोचनपथं जातः सदारः सानुजो भवान् ॥ ४ ॥

साक्षाद्धर्मोऽवतीर्णोऽसि द्विजदेवत्रयीहितः ।
त्वयि जाते रघोर्वंशे सम्पन्ना नो मनोरथाः ॥ ५ ॥

नाशायासुर पक्षाणां कियत्ते प्रार्थनं प्रभो ।
न ह्यभ्युदितमात्रेऽर्के तमस्तिष्ठति भूतले ॥ ६ ॥

अपि विश्रम्यतां राम क्वाप्याश्रित्य शुभं स्थलम् ।
अजस्रं संचरन्नेवं मनः खेदयसे मम ॥ ७ ॥

स्वभावसुकुमाराङ्गः क्व भवान् राजनन्दन ।
क्व चेयमटवी राम दर्भगर्भखरावनिः ॥ ८ ॥

अयं च सुकुमाराङ्गस्तव भ्राता स्मरोपमः ।
इयं च राजदुहिता शिरीषमृदुविग्रहा ॥ ९ ॥

नैनान् खेदय नित्यं त्वमटमानो महाटवीम् ।
अतो विश्रम्यतां वीर क्वापि स्थाने मनोरमे ॥ १० ॥

अविदूरमितः प्रायः पुण्यं पञ्चवटीवनम् ।
विश्रामयोग्यं स्थानं ते तत्र तिष्ठ रघूद्वह ॥ ११ ॥

यत्र गोदावरी पुण्या गङ्गा गौतमनिर्मिता ।
तस्यास्तीरावनिः पुण्या कुञ्जपुञ्जमनोरमा ॥ १२ ॥

तत्र तिष्ठ प्रियायुक्तो मोदयन् मुनिमण्डलीः ।
कोदण्डोद्दण्डदोर्दण्डः शासद्दुष्टांश्च विक्रमैः ॥ १३ ॥

तत्र त्वया निवसता जनस्थाननिवासिनः ।
वाडवा मुनिवर्याश्च सुखमेष्यन्ति राघव ॥ १४ ॥

प्रायेणोपद्रुता राम रक्षोभिर्मुनयोऽधुना ।
येषामाश्रमसद्मानि पूरितानि किलास्थिभिः ॥ १५ ॥

भक्षिता भक्ष्यमाणाश्च ब्राह्मणा राक्षसाधमैः ।
तेषां भाग्येन रामेन्दो भवान् प्राप्तोऽस्ति संप्रति ॥ १६ ॥
धर्मकर्मत्रयीश्रेयस्तपश्च ब्रह्मवर्चसम् ।
इदानीं रघुशार्दूल त्वत्कोदण्डवलाश्रितम् ॥ १७ ॥
येषां सबन्धिनो दाराःपुत्रापत्यादयो जनाः ।
भक्षिता राक्षसै राम तेषां त्वं प्राणजीवितम् ॥ १८ ॥
इतः पञ्चवटीमेत्य नूनं विश्रम राघव ।
प्रायेण राक्षसानीकान्यत्र नित्यं चरन्ति हि ॥ १९ ॥
जहि तान् रघुशार्दूल राक्षसान् घोरकर्मणः ।
यैर्द्रावितं जगत्कृत्स्नं धर्मकर्मविलोपकैः ॥ २० ॥
एकाकी स भवानेतान् हन्तुं शक्नोषि राक्षसान् ।
उद्यतात्तिमिरस्तोमान्न हि तेजांसि बिभ्यति ॥ २१ ॥
लोकानामसुरानीकैर्नित्यमुद्विग्नचेतसाम् ।
विप्राणां शोकतप्तानां मङ्गलं तव दर्शनम् ॥ २२ ॥
इत्युक्त्वा मुनिवर्येऽस्मिन् स्थितेमौनं महात्मनि ।
उवाच रघुशार्दूलः सानन्दाप्रेमविह्वलः ॥ २३ ॥
यदाह मुनिशार्दूल भवान् लोकहितैषणः ।
तत्तथैव श्रुतं ब्रह्मन् दुःखं लोकोपतापजम् ॥ २४ ॥
भवतामाशिषा ब्रह्मन् लोकश्रेयस्तपोभृताम् ।
बलमेतादृशं भावि दलनाय सुरद्विषाम् ॥ २५ ॥
श्रूयते भगवान् विष्णुः स्थितो नारायणाश्रमे ।
तपस्यति यतो लोकाः कल्पन्ते श्रेयसे भृशम् ॥ २६ ॥
अतो भवादृशां ब्रह्मन् नाप्तव्यमिह किंचन ।
तपस्तु केवलं तेषां प्रजानां श्रेयसे भवे ॥ २७ ॥
इत्थमालपता तेन तोषितो नितरां मुनिः ।
आहारं तस्य वन्याभिः संविधाभिरकल्पयत् ॥ २८ ॥
लोपामुद्रा भगवती मुनिदारैः समावृता ।
सीतां सम्मानयामास प्राप्तां भाग्यैर्निजाश्रमे ॥ २९ ॥
आहारैरमृतास्वादैर्भोजयामासवत्सला ।
वन्यैरेव द्विजानीतैः कन्दमूलफलादिभिः ॥ ३० ॥
ते वार्तयन्तः कुशलाः प्रवृत्तीर्मुनीन्द्रवर्यैर्मुनिदारकैश्च ।
सुखेन तां रात्रिमनैषुरत्र कुशात्तिनास्तीर्ण शुभासनस्थाः ॥ ३१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे अगस्त्याश्रम-निवासो नाम षट्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

*

सप्तत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

जाते प्रभाते विमले मुनिशिष्येषु सर्वतः।
अधीयानेषु निगमानग्निहोत्रं गते मुनौ ॥ १ ॥

नित्यं मुनिगणस्नानपूते पयसि राघवः।
सानुजः प्रिययायुक्तः स्नात्वादाद्वास्वतेऽञ्जलीन् ॥ २ ॥

छन्दसां मातरं जप्त्वा गायत्रीं ब्रह्मरूपिणीम्।
कुर्वन् प्रातरुपस्थानं दध्यौ स्वां च त्रयीतनुम् ॥ ३ ॥

सुप्रसन्नमना भूय आजगामाश्रमं मुनेः।
तं हुताग्निं वृतं शिष्यैरपश्यज्जाययान्वितम् ॥ ४ ॥

अनुजानीहि मां ब्रह्मन् गन्तुं पञ्चवटीवनम्।
त्वदाज्ञया निवत्स्यामि तत्राहं कतिचित्समाः ॥ ५ ॥

लोकोपकृतये ब्रह्मन् यदाज्ञप्तं मम त्वया।
तत्तथैव करिष्यामि शुभवान् भवदाशिषा ॥ ६ ॥

सदारः सानुजश्चाहं नमामि चरणौ तव।
कृपावता सदा भाव्यमेवमेव त्वया मयि ॥ ७ ॥

अपितेऽन्नोदकैरद्यपूतोऽस्मि भगवन्नहम्।
क खलु श्रोत्रियस्यान्नं तदभावे पिबेज्जलम् ॥ ८ ॥

जातं मे मङ्गलं भूय उषितस्य तवाश्रमे।
मुनिवर्यैः प्रसक्तस्य कथा वार्तयतः शुभाः ॥ ९ ॥

जगति प्राणिनां ब्रह्मन् दुर्लभं तव दर्शनम्।
किं पुनः स्पर्शनं प्रश्नसहभोज्यासनादिकम् ॥ १० ॥

स्मरन्नेव तव ब्रह्मन् पादपद्मं शुभावहम्।
अध्यासिताहमधुना पुण्यं पञ्चवटीवनम् ॥ ११ ॥

तत्रावसन् मुनिगणान्नित्यं तोषयितास्म्यहम्।
भोज्यकामदुघा स्थाल्यानसूयादत्तयानया ॥ १२ ॥

ये मामुपस्थिताः पूर्वं वसन्तं चित्रकूटके।
ते प्राय उपगन्तारः पुण्ये पञ्चवटीवने ॥ १३ ॥

इत्युक्त्वावस्थितं वीरमुवाच स्मितसंयुतम्।
मैत्रावरुणिरन्तःस्थपरमानन्दपूरितः ॥ १४ ॥

आशासे तव कल्याणं लोककल्याणकारिणः।
वृद्धिमभ्युदयं चैव दीर्घमायुः वहुसमाः ॥ १५ ॥

भवता बत वीरेन्द्र नाशनीयोऽवनीभरः ।
इति सम्भाव्य नागेन्द्रो मोदतेऽतितरां हृदि ॥ १६ ॥
रघूणामन्वयो यस्ते जन्मना भूरिवृद्धिमान् ।
इत्यजस्रं ग्रहपतिर्हृदये मोदतेतराम् ॥ १७ ॥
दिवः परिभवो नूनं मेघनादेन यः कृतः ।
तत्स्थाने विजयो भावीत्यमरेन्द्रोऽपि मोदते ॥ १८ ॥
सर्वं एव सुरा जाता हर्षोन्निद्राननश्रियः ।
भवतो जन्मना राम बभूवत्रिजगत्सुखम् ॥ १९ ॥
चिरं वर्द्धस्व भुवने चिरं पालय मेदिनीम् ।
चिरं परिभवामित्राण्याशाते तव मङ्गलम् ॥ २० ॥
इत्याशिषाणे योगीन्द्रे रामं रघुकुलोद्वहम् ।
लोपामुद्रा भगवती जानकीमाशिषत्तराम् ॥ २१ ॥

लोपामुद्रोवाच

योगीन्द्रस्य नरेन्द्रस्य पुत्री त्वं पद्मकोमला ।
सहसेऽतितरां खेदं सत्यधर्मानुबन्धतः ॥ २२ ॥
तव सत्येन धर्मेण प्रजानां कुशलं ध्रुवम् ।
नूनं त्वं भाविनी सीते राज्यश्रीभोगभोजिनी ॥ २३ ॥
न ते दुःखस्य लेशोऽपि तिष्ठन्त्याः प्रियसंनिधौ ।
तव कल्याणमिच्छूनां मनस्तु परितप्यते ॥ २४ ॥
क्व त्वं शिरीषमृद्वङ्गी क्वेयं भूर्दर्भदुःसहा ।
इतीव मम पश्यन्त्याः खिद्यते हृदयं सति ॥ २५ ॥
अचिरेणैव दुःखानां पारं दर्शय जानकि ।
लभस्व राज्यश्रीस्थानं शीघ्रं पत्यामुना सह ॥ २६ ॥
पत्या सहाभिषिक्तां त्वां पितृपैतामहे पदे ।
अचिरेणैव पश्यन्तु स्वाशिषाणा महर्षयः ॥ २७ ॥
मणिमाणिक्यजटिते स्वर्णसिंहासने स्थिता ।
पत्युरर्द्धाङ्गगा सीते चिरं नन्दय मानवान् ॥ २८ ॥
इत्याशीर्भिः सुसंवर्ध्य दम्पती मुनिदम्पती ।
कृतप्रणामौ भूयस्तौ प्रीतौ तौ विससर्जतुः ॥ २९ ॥
विश्लिष्यमाणा रघुपुङ्गवेन द्विजा अगस्त्याश्रमवासिनस्ते ।
यथैव चन्द्रास्तमये चकोरास्तथाबभूवुः परितापयुक्ताः ॥ ३० ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे अगस्त्याश्रमादयगमे सप्तत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

*

अष्टात्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

त्यक्त्वागस्त्याश्रमं रामं सोत्कण्ठमुनिमण्डलम् ।
सीतानुजाभ्यां सहितो ययौ पश्यन् वनश्रियम् ॥ १ ॥

तस्य मार्गद्रुमा दुच्चैः शुभमूचुर्महोन्नताः ।
विश्रान्तविहगश्रेणीकलकूजितकैतवात् ॥ २ ॥

वने वनलतास्तस्य गच्छतोऽधिज्यधन्वनः ।
शशंसुर्विजयं मत्तभ्रमरीगुञ्जितच्छलात् ॥ ३ ॥

कोकिलानां कला वाचो निशम्यामर्षसंयुतः ।
आलापयत्प्रियां भूयः कोकिलालापजित्वरीम् ॥ ४ ॥

सीतानुपुरशिञ्जितानि सरसीष्वाकर्ण्य कर्णप्रिया-
ण्यन्योन्यं तुलयेव हंसललनाउच्चैश्चुकूजुस्तराम् ।
तद्गत्यापरिभूयमानगतयस्तास्तत्क्षणे पद्मिनी-
पत्रैरन्तरिता निलीय निभृतं तस्थुः सलज्जा इव ॥ ५ ॥

सीतया मुखमण्डलं परिणतज्योत्स्नाप्रकाशं दिनेऽ-
प्यालोक्यव्यमुन्नहो विटपिसु स्तब्धाश्चकोरा वने ।
तेभ्योनूनमसूयमानहृदयोऽप्यस्याः प्रतिर्धन्वना ।
धिज्येनापि न सायकान् द्विजधिया संधातुमैच्छत्तराम् ॥ ६ ॥

दम्पत्योरुपरि प्रकामसुखदप्राणप्रियालोकयोः ।
सानन्दं पथि गच्छतोर्वनलता मादद्यान्मिलिन्देक्षणाः ॥
अत्यर्थं ववृषुः सुमानि महतीं छायां तथैवात्मना ।
चक्रुर्भूरि ददुर्मरन्दकणिकाः शश्वन्मुदे घ्राणयोः ॥ ७ ॥

पुष्पाणां स्तबकेषु सौरभगुणस्तब्धद्विरेफैस्वलं ।
वल्लीनां नवमञ्जरीषु रजसा छन्नासु माध्वीरसैः ॥
आर्द्रासु द्रुमपल्लवेषु बहुभिर्वर्णैर्विचित्रेषु च ।
क्रीडादत्तविलोचनोत्सवसुखौ तौ दम्पती जग्मतुः ॥ ८ ॥

तयोरनुगतः श्रीमांल्लक्ष्मणः शुभलक्षणः ।
अशोभततरां यद्वद्वसन्तो रतिकामयोः ॥ ९ ॥

घनवनतरुवल्लीवृन्दसुच्छायमार्गं प्रतिपदकृतविश्रान्तिः कृती रामचन्द्रः ।
सरभसवनभिल्लीवीक्षमाणाङ्गलक्ष्मीर्मदनशतदुरायप्रेष्ठरूपो जगाम ॥ १० ॥

अतिक्रम्य वनं घोरमुत्कण्ठितमृगीगणम् ।
आससाद शुभक्रीडः पुण्यं पञ्चवटीवनम् ॥ ११ ॥

फुल्लवृक्षलतापुष्पसौरभ्यपिशुनैः शुभैः ।
अत्यच्छसरसीवारिसंगिभिः पवनैर्युतम् ॥ १२ ॥

दूरादुत्प्रेक्ष्य सुषुमैर्विचित्रफलपाकिभिः ।
व्यालीढनवलीवृन्दैस्तरुभिर्निविडीकृतम् ॥ १३ ॥

श्यामायमानं पुरुत उन्नम्रजलदाकृति ।
अरण्यमहिषानीकचकितोद्भ्रान्तसूकरम् ॥ १४ ॥

अतिसान्द्रतरुस्तोमव्यालीनतिमिरोत्करम् ।
समूहं कृष्णरात्रीणामेकीभूतमिवाग्रतः ॥ १५ ॥

क्वचिदद्युवमृगीवृन्दकूर्दमानमदैणकम् ।
क्वचित्प्रमत्तवाराहकृतमुस्तागणक्षति ॥ १६ ॥

क्वचिच्छृङ्गाश्रृङ्गियुद्धव्यासक्तवनसैरिभम् ।
क्वचित्प्रमत्तवेतण्डावगाढसरसीजलम् ॥ १७ ॥

क्वचिद्वनद्रुमलताविश्रान्तविहगव्रजम् ।
क्वचिद्गुञ्जदलिव्रातघ्रातवञ्जुलमञ्जरि ॥ १८ ॥

क्वचिद्रक्तप्रभं फुल्लपलाशविपिनश्रिया ।
क्वचित्पीतायितंनव्यविकसच्चम्पकद्रुमैः ॥ १९ ॥

क्वचिन्नीलीजलाकारं फुल्लतापिच्छभूरुहैः ।
क्वचित्पूर्णशशिश्वेतं मुनिवृक्षप्रसूनकैः ॥ २० ॥

क्वचिच्चित्रायितं चारु नानानोकुहराजिभिः ।
संफुल्लकमलारण्यमनोहारिसरोजलम् ॥ २१ ॥

बहुकौतूहलोपेतमत्यर्थंप्रियदर्शनम् ।
गोदावरीसरिद्वारिलहरीपूतमारुतम् ॥ २२ ॥

मनोज्ञमपि रक्षोभिः समंतान्निर्जनीकृतम् ।
आश्रमेषु समापूर्णं भक्षितब्राह्मणास्थिभिः ॥ २३ ॥

तत्राविशद् रघुवरो विराधवधमर्षितान् ।
कम्पयन् राक्षसान् सर्वान् धनुर्ज्याघोरनिःस्वनैः ॥ २४ ॥

पुण्यं पञ्चवटीवनं रघुपतौ सम्प्राप्तमात्रे मुनि-
श्रेष्ठाः स्वानि वराश्रमाणि भयतस्त्यक्तानि यान्यस्तकाम् ॥
तान्याजग्मुरमेयवीर्यमुदिता रक्षोगणाश्चोद्रूय- ।
भ्रान्तास्तस्य धनुर्वलाभिगमनाद्गूढं पलाय्य स्थिताः ॥ २५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे पञ्चवटीवनप्रवेशो नामाष्टत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः । १३८ ।

*

एकोनचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

सस्नौ गोदावरीं पुण्यां मार्यानुजसमन्वितः ।
रामस्त्रिभुवनारामः स्थापयन् धर्मपद्धतिम् ॥ १ ॥

ययौ पञ्चवटीं पुण्यां कुञ्जपुञ्जमनोरमाम् ।
उवाच लक्ष्मणं तत्र भक्तिप्रह्वशिरोधरम् ॥ २ ॥

इह वत्स्यामि सौमित्रे नूनं वर्षाणि कानिचित् ।
मुनेः सर्वज्ञवर्यस्य निदेशात् कुम्भजन्मनः ॥ ३ ॥

रच्येतां पर्णशाले द्वे इह स्थाने मनोरमे ।
आत्मनो योगक्षेमार्थं भ्रातश्च गृहिणो मम ॥ ४ ॥

दृढवंशस्तम्भयुते वेत्रशाखासुनिर्मिते ।
सान्द्रपर्णततिच्छन्ने शाले द्वे इह कल्पय ॥ ५ ॥

आवसथ्याग्निमाधाय जुह्वानः प्रतिवासरम् ।
वृत्तिं वनफलैः कुर्वन्निह स्थास्याम्यहं सखे ॥ ६ ॥

वनमेतद्बहुफलं कन्दमूलदलान्वितम् ।
योगक्षेमाय नो नित्यं भविष्यति न संशयः ॥ ७ ॥

वनेऽस्मिन् दुष्टसत्वानि विनेयानि मया मुहुः ।
येषां भयेन वै शून्याः पर्णशाला द्विजन्मनाम् ॥ ८ ॥

भयान्मुनिकुलानीमान्यतः स्थानाद्विदुद्रुवुः ।
तानि भक्त्या समानीय प्रतिवासयितास्म्यहम् ॥ ९ ॥

जनस्थानमितः स्थानादविदूरेऽस्ति लक्ष्मण ।
प्रायस्तत्रापि मुनयो रक्षोभीता वसन्ति न ॥ १० ॥

स्वाहास्वधावषट्कारध्वनिः प्रोषित एव च ।
रक्षसां भयतो विप्राः प्राणरक्षणतत्पराः ॥ ११ ॥

भक्षिता भक्ष्यमाणाश्च वाडवा राक्षसाधमैः ।
पश्येमान्यस्थिवृन्दानि तेषामेव पुरस्तव ॥ १२ ॥

पुनः संजीवयिष्यामि तानहं ब्राह्मणोत्तमान् ।
दास्यन्ति ते प्रमुदितास्तुभ्यं मह्यं शुभाशिषः ॥ १३ ॥

ये केचित्सम्मुखे चात्र भविष्यन्ति निशाचराः ।
तानहं शातयिष्यामि वाणवह्नेः पतङ्गकान् ॥ १४ ॥

इति कृत्य निवसतोरत्र नौ सृष्टिसौख्यकृत् ।
इत्थं मुनेः कुम्भयोनेरादेशः सफलो भवेत् ॥ १५ ॥

इत्यार्येण समादिष्टो लक्ष्मणः प्रेमसम्प्लुतः ।
तथैव कृतवांस्तत्र पर्णशालाद्वयं सुधीः ॥१६॥

निकृत्य करवालेन वंशस्तम्बान् हरिद्रुचीन् ।
रम्या वेत्रलताश्चैव पर्णसंदोहशालिनीः ॥१७॥

अत्रीक्लृपत् सावकाशां पर्णशालां द्रढीयसीम् ।
आर्यस्य दारयुक्तस्य चिरसंवसनोचिताम् ॥१८॥

आत्मने चैव संक्षिप्तामारादेव विनिर्ममौ ।
प्रससाद प्रिया युक्तो भ्रातुः कृत्येन राघवः ॥१९॥

तत्रावसथ्यमाधाय रामो मन्त्रविधानवित् ।
यथासम्पन्नहविषा जुहाव वनवृत्तिमान् ॥२०॥

कन्दैर्मूलैः फलैः शाकैर्मांसैः कृष्णमृगोद्भवैः ।
होमावशिष्टैर्विधिवद्बुभुजे सकुटुम्बकः ॥२१॥

तस्यागमनमाज्ञाय दिव्ये पञ्चवटीवने ।
तस्यामेव निशि प्राप्ताः स्वाश्रमान् मुनिपुङ्गवाः ॥२२॥

रामः प्रियासहित आत्तसहर्षलीलः संवार्तयन् विविधमार्गवनप्रवृत्तीः ।
सुष्वापपर्णसदने धृततूणचापस्त्रैलोक्यकण्टकनिरासनिबद्धचेताः ॥२३॥

सौमित्रिरार्यचरणाहितचित्तवृत्तिरारूढचापनिहितैकशरः प्रकामम् ।
तस्थौ वने कटिनिबद्धनिषङ्गयुग्मो रक्षन् विनिद्रनयनः प्रियपर्णशालाम् ॥२४॥

इत्थंसुधीरहृदयः प्रथमानिशां तां गोदावरी निकटपञ्चवटीवनस्थः ।
सौमित्रिरार्यचरणो रहसि प्रसुप्ते संजाग्रदेव निभृतात्ममनिर्निनाय ॥२५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे पञ्चवटीवन प्रथमागमो नामैकोनचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्याय ॥१३९॥

*

चत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

प्रबुद्धः प्रातरेवासौ प्रियाशोभितपार्श्वकः ।
कृतप्रणामो भक्तेन भ्रात्रा सौमित्रिणा ततः ॥१॥

तस्थौ मुहूर्तं सुमना-सुप्रसन्नो महामतिः ।
पश्यन् विपिनसौन्दर्यं मुमुदे रक्तमानसः ॥२॥

उवाच जानकीं भूयः संवर्द्धितमहोत्सवः ।
पश्यसीदं प्रियतमे वनं पञ्चवटीमनु ॥३॥

अत्र मे मनसः प्रीतिर्वर्द्धतेऽतितरां मुहुः ।
आकर्णय कलां वाचं कोकिलानां कलावति ॥४॥

प्रातःप्रबोधमाङ्गल्यं कुर्वन्त्येतेऽद्य पक्षिणः ।
नानाजातियुताः सन्तो नानावर्णमनोहराः ॥५॥

सप्तस्वरसमुच्चारकुशलाः कलकूजिताः ।
महीरुहहरिच्छाखासुखासीनाः समंततः ॥६॥

पश्य प्रिये नरन्त्येते मयूरास्ततचन्द्रिकाः ।
उन्नम्रमेघसंकाश पश्यन्तो निविडं वनम् ॥७॥

कुसुमैः सप्तपर्णानां नवदानाम्बुगन्धिभिः ।
दधतीह परावृत्तिं प्रतीभाशङ्किनो गजाः ॥८॥

पश्यस्येतां पुरस्तात्ते गङ्गां गौतमनिर्मिताम् ।
सिद्धगन्धर्वगीर्वाणैरवगाढामलोदकाम् ॥ ९ ॥

हंससारसचक्राह्वकादम्बकुलनादिनीम् ।
मदौष्मशमनीं नित्यमिभानामवगाहताम् ॥ १० ॥

मन्दनिर्ह्रादगम्भीरप्रवाहभरवेगिनीम् ।
तीरावनीसमासीनतपस्यन्मुनिपुङ्गवाम् ॥ ११ ॥

अम्बकाचलमध्यस्थबिल्ववृक्षविनिर्गताम् ।
पुनानां जगतीं कृत्स्नां लहरीसंगिमारुतैः ॥ १२ ॥

तटोद्देशसमुत्फुल्ललतावृक्षप्रवर्षितैः ।
छन्नां प्रसूनस्तवकैर्नीरसौरभशालिनीम् ॥ १३ ॥

कोटितीर्थाम्बुपावित्र्यकारिणीं साधुदर्शनात् ।
लुलल्लहरिसंदोहविलासभरशालिनीम् ॥ १४ ॥

क्वचित्स्नानसमायातसुरस्त्रीकबरच्युतैः ।
मन्दारपुष्पस्तवकैश्छन्ननीरां समंततः ॥ १५ ॥

क्वचिद्गन्धर्वनारीणां कुचकुम्भपरिस्नुतैः ।
काश्मीरचन्दनरसैः समंतात्सुरभीकृताम् ॥ १६ ॥

क्वचिन्नृपतिनारीणां स्नान्तीनां कुचमण्डलात् ।
च्युतैरेणमदैः सम्यक् सुगन्धितपयोभराम् ॥ १७ ॥

लीलावगाहमुदितस्वर्गस्त्रीतनुसंगतैः ।
नानावर्णैरङ्गरागैः पिञ्जरीकृतशम्बराम् ॥ १८ ॥

वगाहतां मुनीन्द्राणामघमर्षविचिक्षमाम् ।
नानादेशनृणां पापपुञ्जान्यक्कुर्वतीं क्षणात् ॥ १९ ॥

भूरिवारिघटारब्धताण्डवां वीचिबाहुभिः ।
स्पृशन्तीं पुलिनक्षोणिं निषण्णमुनिमण्डलाम् ॥ २० ॥

जातीमण्डपसंजुष्टेमल्लीमण्डपमञ्जुले ।
मालतीमण्डपारामरामणीयकसंयुते ॥ २१ ॥

श्रीफलाटविभूयिष्टे कदम्बवनभूषिते ।
तमालकाननच्छायासुविश्रान्तमुनि व्रजे ॥ २२ ॥

विकसन्नववानीरवल्लरीवलिते शुभे ।
उभे अपि घनच्छाये पुलिने बिभ्रतीं सदा ॥ २३ ॥

माद्यत्पुलिन्दतरुणीसेवितोत्तीरकाननाम् ।
अनेकाश्चर्यसम्पन्नां जलक्रीडोचितां तव ॥ २४ ॥

अस्यां प्रिये वगाह्यादय बाह्याभ्यान्तरशुद्धिभृत् ।
मुनीन् सम्मानयतमां ये पुरा चित्रकूटके ॥ २५ ॥

मिलिताः सान्त्विताश्चैव मया सुबहुलादरम् ।
आगमिष्यन्ति ते भूयोऽप्यस्मान् विज्ञाय संगतान् ॥ २६ ॥

एषात्रिधर्मपत्न्या ते दत्ता स्थाली मनोरमा ।
अक्षय्यान्नव्यञ्जनादिप्रसवित्री ह्यलौकिकी ॥ २७ ॥

इह त्वं भोजयतरां यथेष्टं संगतान् द्विजान् ।
कोटिब्राह्मणभोज्येऽपि विद्धि स्थालीयमक्षया ॥ २८ ॥

एवं दिने दिने शश्वत् सुकृतार्जनतत्परा ।
इह तिष्ठ प्रिये नित्यं पुण्ये पञ्चवटीवने ॥ २९ ॥

जनस्थाने स्थिता ये च दण्डकारण्यवासिनः ।
नानादेशनिवासा ये ते सर्वेऽपि द्विजोत्तमाः ॥३०॥

नैष्ठिका दीर्घतपसोयायजूकास्त्रयीमुखाः ।
मुनयो वाडवश्रेष्ठा योगयोगाङ्गविद्वराः ॥ ३१ ॥

ज्ञानिनः कर्मनिपुणा ब्रह्मोपास्तिपरायणाः ।
ब्रह्मज्ञा मुनयः शुद्धास्त्रिकालज्ञाः सुमेधसः ॥ ३२ ॥
ते सर्वेऽपि प्रविज्ञाय वसन्तं मामिह प्रिये ।
समेष्यन्ति शुभाचारा ब्राह्मणा ज्ञानचक्षुषः ॥ ३३ ॥
उद्वेजितास्ते रक्षोभिः कूटमायापरायणैः ।
मामेवभक्तिसुप्रह्वमेष्यन्तीह न संशयः ॥ ३४ ॥
तानहं मानयिष्यामि त्वया साकमनिन्दिते ।
येषां प्राणप्रियोऽस्म्येष ते मे प्राणप्रिया द्विजाः ॥ ३५ ॥
एवमत्र द्विजातीनां मुनीनां च तपस्विनाम् ।
सुब्रह्मवर्चसेद्धानां समवायो भविष्यति ॥ ३६ ॥
तस्मिन् महति विप्राणां समवाये यशस्विनि ।
अर्जुयन्तीह सुकृतं चिरं वस विदेहजे ॥ ३७ ॥
ब्राह्मणा एव मे प्राणा ब्राह्मणा एव मे धनम् ।
ब्राह्मणा एव मेऽभीष्टा न तेभ्योऽन्यत्प्रियं मम ॥ ३८ ॥
इतिगुणावति विप्रान्नित्यमाराध्नतां नो
यदि शुभमशुभं वा जायतां दैवयोगात् ।
न खलु विदितवेदन्यान्याय्यमार्गादपेतं
पदमपि चलितुं वै प्रायशः शक्नुवन्ति ॥ ३९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे पञ्चवटीस्थितौ चत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

*

एकचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ तत्र शुभे स्थाने श्रीरामवसति प्रिये ।
आजग्मुर्त्राडवाः शुद्धा नानादिग्देशवासिनः ॥ १ ॥
तापसाः पुण्यकर्माणः श्रीरामप्रियदर्शनाः ।
यायजूका ब्रह्मनिष्ठा वैदिका विदुषां वराः ॥ २ ॥
वेदान्तशास्त्रनिष्णाताः ब्रह्मवादपरायणाः ।
[1]षडङ्गशास्त्रव्याख्यातारः कल्पसूत्रविदुत्तमाः ॥ ३ ॥

---

१. पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षः ।

सिद्धान्तज्ञा रहस्यज्ञा निषेधविधिवेदिनः ।
मन्त्रशास्त्रक्रियाकाण्डवेत्तारोद्विजसत्तमाः ॥ ४ ॥

पञ्चवट्यां वसन्तं तं ज्ञात्वा रामं रघूद्वहम् ।
उद्वेजिता राक्षसौघैराययुः सर्व एव ते ॥ ५ ॥

तान् रामः स्थापयामास बहुमानपुरःसरम् ।
आनर्च बहुपादद्यार्घाचमनादिसपर्यया ॥ ६ ॥

अत्रेर्मुनिवरेण्यस्य धर्मपत्न्याकृपाढ्यया ।
वितीर्णमक्षयां स्थालीं सीतारसवतीगताम् ॥ ७ ॥

इष्टान्नान्नि सुमृष्टानि सुस्वादूनि विशेषतः ।
सुशाकव्यञ्जनादीनि नित्यं प्रसुवतीं पराम् ॥ ८ ॥

सम्प्राप्य सुकृती रामो भोजयामास कोटिशः ।
ब्राह्मणान् विधिसम्पन्नानाशिषानान् दिने दिने ॥ ९ ॥

ते भोजिताः सुपकान्नैः सूपोदनघृतादिभिः ।
स्वादुभिर्व्यञ्जनैः शाकैः क्थिकातेमनान्वितैः ॥ १० ॥

मण्डकापूपसंयुक्तैः पूरिकाशष्कुलीमुखैः ।
नानाविधैस्तथाऽऽहारैर्वटिकावटकादिभिः ॥ ११ ॥

तर्पिता ब्राह्मणश्रेष्ठा नानापङ्क्त्युपवेशिताः ।
सौमित्रिणा च रामेण सीतया शुभशीलया ॥ १२ ॥

परिविष्टैः शुभैरन्नैर्लेह्यचोष्यपुरःसरैः ।
संतोषिताश्चिरं तत्र बहुधा च समादृताः ॥ १३ ॥

शुभाशिषः प्रयच्छन्तो वीरेन्द्राय महात्मने ।
सौमित्रयेचसीतायै मन्त्राक्षतपुरःसरम् ॥ १४ ॥

प्रणताबहुभक्त्या च पादसंवाहनादिभिः ।
सेविताः ससुखंतस्थुर्जनस्थाने निरामये ॥ १५ ॥

एवं दिने दिने तत्र ब्रह्मपूजा व्यवर्त्तत ।
सीतया रामचन्द्रेण विहिता लक्ष्मणेन च ॥ १६ ॥

वनं च तद्रहोभूतं गते ब्राह्मणमण्डले ।
आसीन्मङ्गलसम्पन्नं दम्पत्योः क्रीडनोचितम् ॥ १७ ॥

विजहार वने तस्मिन् ब्रह्मभोजादनन्तरम् ।
रहोभूते शुभे स्थाने गुञ्जन्मधुपभूरुहे ॥ १८ ॥

प्रमत्तकोकिलारावजुष्टफुल्लाम्रकानने ।
विकचाशोकमन्दारचाम्पेयकुटजव्रजे ॥ १९ ॥

नित्यमावातत्रिविधवातोर्मिपरिशीलिते ।
गौतमीतीरवानीरकुञ्जमण्डपशालिनि ॥ २० ॥

त्र्यम्बकेशमहादेवनित्यपूजासमागतैः ।
देवगन्धर्वनिबहैः संततं काहलीकृते ॥ २१ ॥

सुरस्त्रीनूपुरारावझङ्कारमुखरीकृते ।
क्वणत्कादम्बसंदोहै राजहंसकदम्बकैः ॥ २२ ॥

सेवितैः सरसां तोयैः सर्वदा शिशिरीकृते ।
अशोकभूरुहभुजपरिरब्धैः सुपल्लवैः ॥ २३ ॥

लतिकानां शतैर्नित्यं सुच्छायविहतातपे ।
असूर्यंपश्यविहगश्रेणीविश्राममन्दिरे ॥ २४ ॥

जानकीनूपुरारावसोत्कण्ठकलहंसके ।
मेघश्यामरघुश्रेष्ठदर्शनोत्सुककेकिनि ॥ २५ ॥

सहकारतरुश्रेणीमञ्जरीभरशालिनि ।
एकतः केतकारण्यपरागपटलावृते ॥ २६ ॥

परतः पङ्कजारण्यपरागपिशगीकृते ।
अन्यतः केसरवनोद्धूतधूलीभरावृते ॥ २७ ॥

तदन्यतः किंशुकद्रुकुसुमैर्लोहितायति ।
क्रीडत्कुरङ्गमिथुनतरुकुञ्जसुमञ्जुले ॥ २८ ॥

कूजच्छुकगणक्रान्त नवपल्लवभूरुहे ।
प्रपठत्सारिकावृन्दविश्रान्तिसुखदद्रुमे ॥ २९ ॥

अनेकपशुपक्षयाढ्ये अनेकतरुमण्डपे ।
अतिसान्द्रतरुस्तोमसर्वतःसंकुलान्तरे ॥ ३० ॥

सर्वर्तुसुखदे क्रीडत्किन्नरीगणशोभिते ।
गायद्गन्धर्वसंदोहमूर्छितस्वरपूरिते ॥ ३१ ॥

वातपूर्णकलध्वानकीचकप्रचयावृते ।
पुण्ये गोदापरिसरे विस्तीर्णे गहने वने ॥ ३२ ॥

विदेहतनयायुक्तो लक्ष्मणैकसहायकः ।
आस्फालितसुचापज्यारवोत्सारितकौणपः ॥ ३३ ॥

चिक्रीडे केलिरसिकः श्रीमान् रघुकुलोद्वहः ।
विलासैर्बहुभिर्युक्तो जलस्थलसुखोचितैः ॥ ३४ ॥

देवी च सा जनकजा दृष्ट्वा सर्वसुखप्रदम् ।
स्थानं रहःसुखकरं रेमे पत्या सुसंगता ॥ ३५ ॥

पुष्पस्तबकभूषाढ्या गिरिधातु विभूषिता ।
ऋतुयोग्यकृताकल्पा सुसूक्ष्मवसनावृता ॥ ३६ ॥

अनपायाङ्गरागाढ्याशिंजिञ्चरणनूपुरा ।
मोदयन्तीमनः पत्युर्विरराज दिने दिने ॥ ३७ ॥

कमलेशीमुखाः सख्यस्तत्रैतस्यास्तनोर्वहिः ।
आविर्भूयस्फुटं रामं सावकाशाः सिषेविरे ॥ ३८ ॥

यथा प्रमुद्वने पूर्वं सुखं विहृतवान् प्रियः ।
तथैव विजहारेह पुण्ये पञ्चवटीवने ॥ ३९ ॥

गोदावर्यास्तटेषु द्रुमगहनलतामण्डपैरावृतेषु
स्वच्छेषु त्र्यम्बकाद्रेस्तटशिखरगुहोपत्यकाधित्यकासु ।
मान्द्रक्षोणीरुहासु स्मर इव रतिमान् पञ्चवट्याः स्थलीषु
श्रीमान् सीतासमेतः प्रतिदिनमकरोद् रामचन्द्रो विलासान् ॥ ४० ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे पञ्चवटीवनविहारो नामैकचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१४१॥

*

द्विचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

एवं विहरतस्तस्य सदारस्य स्मरत्विषः ।
सानुजस्य सुखाढ्यस्य पञ्चवट्यां निवासिनः ॥ १ ॥

सार्द्धद्वादशवर्षाणि व्यतीयुः केलिशालिनः ।
अथैच्छन्मुनिभिर्देवैर्विज्ञप्तो भृशमाकुलैः ॥ २ ॥

जगद्विद्रावघोरस्य रावणस्य वधं प्रति ।
तदा शूर्पणखानाम क्रव्यादाधिपतेः स्वसा ॥ ३ ॥

वृषस्यन्त्यतिकामार्ता तत्रागात्पुरुषार्थिनी ।
स्थापयित्वा जनस्थाने रक्षसां सुमहद्बलम् ॥ ४ ॥

तत्र मुख्यतमाः केचिद्राक्षसा घोरदर्शनाः ।
खरश्चत्रिशिराश्चैव दूषणश्च बलाधिकः ॥ ५ ॥

तत्रत्या मुनयो वीक्ष्य राक्षसानां बलं तु तत् ।
हाहेति रामरामेति लक्ष्मणेति च चुक्रुशुः ॥ ६ ॥

अग्निहोत्रगृहाण्येषां शान्तानां शुभकर्मणाम् ।
श्मशानभस्मविण्मूत्रव्याप्तानि विदधुः खलाः ॥ ७ ॥

पलायितास्तेकृच्छ्रेण स्थापिताः सज्यधन्वना ।
रामेणभक्तिप्रह्वेण तमेव पुनराययुः ॥ ८ ॥

तान् स सत्यवचा वीरः सान्त्वयामास वाडवान् ।
प्रतीक्षध्वं द्विजाः कालं यावदेतन्निहन्म्यहम् ॥ ९ ॥

एवमाश्वासितास्तेन वाड़वा वेदपारगाः ।
अग्निहोत्राण्युपादाय तस्थुः श्रीरामसंनिधौ ॥ १० ॥

तान् रक्षमाणो रक्षोभ्यो ब्राह्मणान् साग्निकान् प्रभुः ।
अस्थापयत् स्वसविधे गोदायाः पुलिनावनौ ॥ ११ ॥

अथोकदाचित्स विदेहकन्यया सहास्थितः पञ्चवटीवने शुभे ।
विहारशीलः स्मरकोटिसुन्दरो रराज चान्द्रीसहितो विधुर्यथा ॥ १२ ॥

तत्राजगाम सा घोरा राक्षसी कूटमायया ।
सुन्दरं वेशमास्थाय दिव्यरूपेव सुन्दरी ॥ १३ ॥

छलाद्वशीकर्तुंकामा जानक्याः पतिमच्युतम् ।
कामार्ता छद्मवेषाढ्या व्यदृश्यत वनान्तरे ॥ १४ ॥

पीनस्तनोच्छ्रायसुरत्नहारिणी बृहन्नितम्बस्थलचारुमेखला ।
तनूदरी मञ्जुगभीरनाभिभृद्विभक्तचारुत्रिवलीतरङ्गभृत् ॥ १५ ॥

नाभीसरोनिर्गतरोमराजिका मनोज्ञमध्या कृशदीप्तविग्रहा ।
सुकम्बुकण्ठी धृतकण्ठभूषणा कपोलपर्यन्तलसत्सुकुन्तला ॥ १६ ॥

अर्धेन्दुसंशोभिललाटपट्टिका सुलग्नसिन्दूरसुपूरविन्दुभाक् ।
अनङ्गकोदण्डयुगभ्रुवोरधः कुरङ्गचाञ्चल्यमनोज्ञलोचना ॥ १७ ॥

माणिक्यताटङ्कयुगप्रभावलीमिलन्मनोज्ञालकवल्लिचेष्टिता ।
शुकास्यनिर्जैत्रसुतुङ्गनासिका विलग्नमुक्ताभरणप्रभावती ॥ १८ ॥

विकासिबन्धूकसुबान्धवाधरा दन्तावलीभ्यां किरणावलीधरा ।
मृणालकाण्डोपमबाहुवल्लरीविलम्बिकेयूरसुरत्नदीधितिः ॥ १९ ॥

सलज्जमुच्चैरवगुण्ठवाससा पिधाय वक्त्रेन्दुमुदीतविभ्रमा ।
सहावलीलाहसितप्रकाशिनी समल्लिधम्मिल्लभरेण मन्थरा ॥ २० ॥

सकूजराजत्पदपद्मनूपुरा पदाङ्गुलीभूषणनादसौष्ठवा ।
मदालसामत्तगजेन्द्रगामिनी तरङ्गितारुण्यसुधोर्मिदर्शिनी ॥ २१ ॥

समस्तवामाकुलरूपगञ्जनोचितं वपुर्विग्रहवेषसौष्ठवम् ।
प्रदर्शयन्त्युद्यदपाङ्गवीक्षितैर्नृणां मनोमादनमोहनोचिता ॥ २२ ॥

सगर्वसोल्लाससलज्जसोन्मदं पदं क्षिपन्ती विजने घने वने ।
स्थिता पुरोभूय विदेहजेशितुः शनैरुपागात् सविधं च तस्य सा ॥ २३ ॥

स्थितौ रहो यत्र विलासशालिनावुभौ प्रियौ तौ रसिनौ परस्परम् ।
तत्रागता सा नितरां व्यदृश्यत छलेन रूपं दधती तथाविधम् ॥ २४ ॥

तामन्तराकोशनिगूढखड्गवत्सुतीक्ष्णचित्तांरुचिराकृतिं बहिः ।
विवेद रामो भुवनान्तरात्मदृक् करालदर्शां किल राक्षसीमिति ॥ २५ ॥

ततस्तामेष पप्रच्छ कासि त्वं वरवर्णिनि ।
कुत एवासि सम्प्राप्ता निर्जनेऽत्र घने वने ॥ २६ ॥

सुदी वा किन्नरी वापि नागी वापि वराङ्गना ।
बिभ्रती मोहनं नृणां रूपमेतदजानताम् ॥ २७ ॥

आख्याहि का त्वमेतस्मिन् विजनेऽति घने वने ।
विचरन्ती मम पुरः सोत्कण्ठेव समागता ॥ २८ ॥

उवाच सा स्मितमुखी पृच्छमानं रघूद्वहम् ।
या काचिदस्मि पुंश्रेष्ठ किं ते जातिपरीक्षया ॥ २९ ॥

तथाप्युत्रममेवास्ति कुलं रूपोचितं मम ।
जातिरप्युत्तमा कापि ज्ञास्यसि क्रमतो न किम् ॥ ३० ॥

प्रयोजनं तु मे सम्यक्छ्रूयतां नृवर त्वया ।
दृष्ट्वा त्वां सुन्दरं लोके रन्तुकामास्मि संगता ॥ ३१ ॥

अत्यारूढो मम हृदि प्रज्वलन् मदनानलः ।
एवं भाषयते मां वै मन्दाक्षरहितं वचः ॥ ३२ ॥

स त्वं प्रकृत्या रमणीयरूपः प्रायः प्रतीतः पुरुषप्रकाण्डः ।
यथेप्सितं मां रमयेह रम्ये वने नितान्तं रमणीविलासैः ॥ ३३ ॥

अनन्तरं यत्र तवास्ति कामो गिरिष्वरण्ये दिवि वा धरण्याम् ।
विमानवर्येषु समुद्रमध्ये द्वीपेषु वा सौधवरेषु रन्तुम् ॥ ३४ ॥

तत्रैव नेष्यामि भृशं स्वशक्त्या स्वपौरुषाढ्यं रमयन्तमुच्चैः ।
चिरेण कामार्ततमास्मि सम्यक्करावलम्बं मम देहि कान्त ॥ ३५ ॥

अथ यदि स्वयमेव समागतां पुरुष वर्य न मां विजहास्यसि ।
सुमुख सुन्दर शूरवरेण्य भोस्तदिहपुण्यमलं समवाप्स्यसि ॥ ३६ ॥

इति बहुविलयन्तीमात्मनः संग्रहार्थं
मदनमदपरीतां निस्त्रपामापतन्तीम् ।
निखिलनिगमवेत्ताप्येकपत्नीव्रतस्थो
विधुततदुदितार्थस्तामथोच्चैर्बभाषे ॥ ३७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे शूर्पणखाप्रार्थनं-नाम द्विचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

*

त्रिचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

नैवं भाषितुमर्हासि मामेकरमणीव्रतम् ।
एवमाभाषमाणां त्वां त्रपापि न रुणद्धि किम् ॥ १ ॥

अत्यारूढो यदि तव मनः प्रमथनः स्मरः ।
तदा ममानुजं बाले भजस्व सदृशं मया ॥ २ ॥

प्रगुणं पुरुषश्रेष्ठं गुणैर्मत्समतां गतम् ।
चिराद्रामाविमुक्तं तं भज कामार्तमानसे ॥ ३ ॥

इत्युक्ता सा मनोलग्न मदनानलविह्वला ।
आजगाम सुमित्रायास्तनयं ध्वानिनूपुरा ॥ ४ ॥

सा मन्दमन्दद्विरदाभिगामिनीं सकूजमध्यस्थलराजिमेखला ।
शनैःपदक्षेपरुताङ्घ्रिनूपुरा पुरः स्थिता तेन ततो व्यदृश्यत ॥ ५ ॥

तमाह सा कोकिलमञ्जुलापिनी ललामभावाञ्चितसुन्दरस्मिता ।
मनोरमापाङ्गविसर्गपूर्वकं मनो हरन्तीव रहः सुसंगता ॥ ६ ॥

गृहाण मां पौरुषसारभूषण त्वमागतां कामविलासकामुकीम् ।
पूर्वं तव ज्येष्ठमहं गतास्मि भोस्ततोऽसि तेनैव निर्दर्शितो मम ॥ ७ ॥

शुभं तवास्तु स्वयमागतायाः पाणिं च मे गृह्णत आतुरायाः ।
जानासि नीतिं बत शास्त्रसिद्धां या प्राक्तनैः स्त्रीविषये निबद्धा ॥ ८ ॥

मामातुरामुररीकुर्वतस्ते सम्बन्धआशास्यतमो महत्तमैः ।
भविष्यति प्रायशो यस्त्रिलोक्यामभ्यर्थ्यते पुम्भिरुत्कर्षकामैः ॥ ९ ॥

स्वेच्छागमात्वामहमात्मनः पतिं नेष्यामि देशं मनसा यथेप्सितम् ।
यत्र स्थितस्त्वं सुरलोकदुर्लभान् लब्धासि भोगान् बहुसौख्यदायिनः ॥ १० ॥

अथो यदि त्वं न हि मां ग्रहीष्यसि स्वयं करे प्राप्तमामभीप्सिताम् ।
श्रियं दुरापामिव साधनैरपि क्षतिस्तदा ते महती भविष्यति ॥ ११ ॥

इत्युक्तमात्रः स तया लक्ष्मणः साधुकृत्यवित् ।
अवहेलिततद्वाक्य उवाच वदतां वरः ॥ १२ ॥

लक्ष्मण उवाच

एतन्मेऽनुचितं कृत्यं भवेदङ्गीकृतौ तव ।
यन्मम ज्येष्ठसविधे पूर्वं संकल्पसंगता ॥ १३ ॥

गुरुभार्याभिगमनादद्यत्पापं सद्भिरीरितम् ।
तन्मे भविष्यतिनमां पाणिं ते परिगृह्णतः ॥ १४ ॥

अतो न रोचये तावदहं संगमनं त्वया ।
यथेष्टं याहि रम्भोरु त्वं विषीद प्रसीद वा ॥ १५ ॥

इत्यनङ्गीकृता तेन भूयः सा रघुपुङ्गवम् ।
आजगाम स्पृहाभङ्गपरिक्षुब्धान्तरा शनैः ॥ १६ ॥

हेलितां तामुभयतो हताशां स्मरविद्धुराम् ।
अथापि पुनरायान्तीं जहास जनकात्मजा ॥ १७ ॥

हसन्तीं रामरमणीं विलोक्य कुटिलाशया ।
चकार हृदि संरम्भभङ्गुरभ्रुकुटीतटा ॥ १८ ॥

सा कैतवने सौम्यत्वमापन्नापि खलाशया ।
हसन्तीं जानकीमुच्चैः स्वभावोचितमब्रवीत् ॥ १९ ॥

किं मां हससि कौटिल्यादुभाभ्यामपि वञ्चिताम् ।
फलं मद्वञ्चनस्यास्य लप्स्येते द्रागिमौ ध्रुवम् ॥ २० ॥

त्वमप्यस्योपहास्यस्य लप्स्यसे फलमञ्जसा ।
अधिक्षिप्य मृगी व्याघ्रीं का लभेतात्मनो हितम् ॥ २१ ॥

अतो यूयं भाविनः स्वात्ममृत्योरिहानुरूपं चक्रुथैतद्धताशाः ।
ममागताया अवहेलनं बलाद्दुर्दैववश्याः कुर्वते किं न मूढाः ॥ २२ ॥

इत्युक्त्वा भृशसंरब्धा रावणावरजा तदा ।
स्वनाम्न उचितं रूपमाविर्भावितवत्यलम् ॥ २३ ॥

करालदंष्ट्रं विकरालदर्शं ललद्दवज्वालविरुपजिह्वम् ।
वात्याभनिःस्वासिसुघोरघोणं दृग्भ्यांरुषाङ्गारकणौघमोक्षम् ॥ २४ ॥

सभीमरूपभ्रुकुटीभुजङ्गीबन्धोत्कटाराललाटपट्टम् ।
तडित्पिशङ्गोग्रजटासमूहं स्थूलोष्ठदंशोद्धुरदीर्घदन्तम् ॥ २५ ॥

महीघ्रगण्डाभकपोलयुग्मं विलम्बभीमश्रुतिगह्वराढ्यम् ।
भृग्वाभचञ्चच्चिबुकाग्रचण्डं शिवासहस्रध्वनिघोरकण्ठम् ॥ २६ ॥

समुच्छ्रितस्कन्धमहाद्रिकूटं तालद्रुमव्यायतबाहुदण्डम् ।
करालकक्षान्तरकेशसान्द्रं स्थूलस्तनोत्सेधजिताद्रिशृङ्गम् ॥ २७ ॥

क्षुधासुसंलग्न कृपीटद[1]र्थं विदीर्णभूम्याभवलीविवर्तम् ।
महान्धकूपाभगभीरनाभी तमिस्रधारोद्धुररोमराजि ॥ २८ ॥

सरित्तटोद्देशनितम्बवप्रं महोच्चभूभृत्पुलिनाभजङ्घम् ।
मृद्धङ्घ्रिविन्यासभरेण भूयः प्रकम्पिताशेषमहीवनान्तम् ॥ २९ ॥

सुतीक्ष्णशूर्पाभनखप्ररोहैर्महाशिलाकोटिविपाटनार्हम् ।
प्रचण्डदीर्घाङ्गुलिवृद्धशारवं दिशो महीं खं च परीत्य संस्थितम् ॥ ३० ॥

---

१. कृपीटमुदरं नीरे—टि.—बड़ो. ।

शस्त्री सुतीक्ष्णङ्गरुहंनृमांससुपूतिगन्धैर्दृशमन्धयञ्च ।
विभीषयद्भ्रीमदृगन्तमोक्षैर्हस्तेन संतर्जयता मुहुश्च ।। ३१ ।।

अमङ्गलारावकरं सुघोरतनुत्विषा निन्दितकाकवर्णम् ।
विरूक्षदीप्तैर्नयनावलोकैर्विदाहयत्प्राणिनस्तत् क्षणेन ।। ३२ ।।

तां घोरदर्शां नरमांसगृध्नुंनिरीक्ष्य सीता विकृताङ्ग संस्थाम् ।
विवेश सद्यो निजभर्तुरङ्के जातास्मि भीतेति मुहुर्वदन्ती ।। ३३ ।।

लक्ष्मणः सहसा तत्र राक्षसीति विबुध्य ताम् ।
पर्णशालामगात्क्षिप्रं खड्गानयमकर्मणे ।। ३४ ।।

विकोशीकृतघोरासिं रूषाविष्टं तथानुजम् ।
उवाचार्यो न वध्येयं स्त्री विरूपा विधीयताम् ।। ३५ ।।

सौमित्रिः सहसा तस्याः कर्णौ नासां च भीषणाम् ।
चकर्त तीक्ष्णखङ्गेन कृपया किं तु नावधीत् ।। ३६ ।।

पुर्वमेव विरूपा सा राक्षसी घोरदर्शना ।
अत्यर्थं प्राप वैरूप्यं नासाकर्णनिकृन्तनात् ।। ३७ ।।

ततः सा तेन निर्मुक्ता क्षरन्ती रुधिरोत्करम् ।
कृत्तनासाश्रुतिः सद्य उड्डीयाम्बरमास्थिता ।। ३८ ।।

सा विग्रा नभसि स्थिता क्षरदसृग्धारापरीतं वपुः
सांध्याभ्रद्युति विभ्रती खरखैरापूरयन्ती दिशः ।
अङ्गुल्याभृशतीक्ष्णवज्रनखया वक्राकृतिक्रूरया
कार्कश्याञ्चितपर्वणा सपदि ता वुत्तर्जयन्ती ययौ ।। ३९ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे शूर्पणखापरिभवो नाम त्रिचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ।। १४३ ।।

*

चतुश्चत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

सा जनस्थानमभ्येत्य तथाभूता विरूपिणी ।
राक्षसेभ्यः खरादिभ्य आचख्यौ स्वं पराभवम् ।। १ ।।

तां लूनवक्त्रावयवां स्वभर्तुर्वलिनोऽनुजाम् ।
निरीक्ष्य राक्षसाः सर्वे बभुवुर्जातमन्यवः ।। २ ।।

अथ प्रतस्थुः संरब्धास्ते खरत्रिशिरादयः ।
राक्षसा घोरकर्माणो गृहीतविविधायुधाः ।। ३ ।।

अहो कृतं मनुष्येण मृत्युकारणमात्मनः ।
इति हेलापरं सद्यो रक्षोऽनीकं समुद्ययौ ।। ४ ।।

ते पुरोधाय विग्रां तामदृश्यां विजयोद्यमे ।
यत्प्रतस्थुर्यातुधानास्तत्रेषामशुभं बभौ ।। ५ ।।

त एकीभूय संरब्धा नानावर्णनिशाचराः ।
निपेतुर्विकृतारावास्तस्मिन् स्थाने उदायुधाः ।। ६ ।।

राघवेन्द्रो रिपून् वीक्ष्य सर्वानापततस्तदा ।
इदमाहानुजं सद्यः समधिज्यधनुर्धरः ।। ७ ।।

नन्वेतान् पश्य सौमित्रे सुसंरब्धान् निशाचरान् ।
विग्नायाः खलु राक्षस्याः प्रायशो वन्धवो ह्यमी ।। ८ ।।

अहं तु निग्रहीष्यामि प्राणान्तेन रिपूनिमान् ।
त्वं रक्षावहितोभूत्वा जायां मे जनकात्मजाम् ।। ९ ।।

तथेति लक्ष्मणः सीतां जुगोपद्विषतां बलात् ।
आजुहावाथ तान् योद्धुमेको रामो धनुर्धरः ।। १० ।।

यावन्तस्ते राक्षसानीकयोधा धृतायुधास्तत्रयोद्धुं निपेतुः ।
तावद्रूपो ददृशे तैः स रामो धनुर्धरस्तीक्ष्णवाणैघवर्षी ।। ११ ।।

ते खड्गैर्ऋष्टिभिः शूलैः प्रासैः परशुपट्टिशैः ।
गदाभिर्मुशलैश्चक्रैः शक्तिभिर्युयुधुस्तराम् ।। १२ ।।

केचिदुच्चिक्षिपुर्वृक्षान् केचिद् ग्राब्णां गणांस्तथा ।
केचिदुल्मुकसंदोहान् ज्वालामालाभयानकान् ।। १३ ।।

एकं राघवमुद्दिश्य दृप्ताः सर्वेऽपि राक्षसाः ।
ववृषुर्विविधास्त्राणि तुमुलः सोऽभवद् रणः ।। १४ ।।

रामोऽधिज्यं धनुः कृत्वा सीतां निक्षिप्य लक्ष्मणे ।
सुदूरे पर्णशालाया निर्जगामासुरानभि ।। १५ ।।

तेषामापततो वेगादस्त्रपूगान् भयानकान् ।
अभीवीक्ष्य मुमोचेषून् धनुषः कुण्डलीकृतात् ।। १६ ।।

शस्त्रास्त्रैः कौणपेन्द्राणामेकसार्थसमुद्गतैः ।
आच्छन्नमभवद्व्योम घनैरिव घनागमे ।। १७ ।।

रामस्य चापनिर्मुक्तैः शरैर्झाङ्कारराविभिः ।
रक्षसामस्त्रपूगानि खण्डखण्डानि चक्रिरे ।। १८ ।।

बाहुवेगेरितास्तेषां पतमाना महाशिलाः ।
कृताः सहस्रधा रामसायकैः करका इव ।। १९ ।।

मारयोत्सारयास्कन्द छिन्धि भिन्धि निपातय ।
इत्यारावपरा घोरा निपेतुस्तमभिद्विषः ।। २० ।।

तानेकैकशरै रामश्चक्रे विशिरसः खलान् ।
कबन्धप्रायमभवत्सहसा तद्रणाङ्गणम् ॥ २१ ॥

शस्त्रहस्ता रुषाविष्टाः क्षरद्रक्तभरोक्षिताः ।
मुण्डेक्षणैः प्रपश्यन्तः कबन्धा ननृतुस्तराम् ॥ २२ ॥

क्षणेन तन्महासैन्यं रक्षसां सुमहोद्धतम् ।
आत्मक्रोधानलज्वालावलीढं न्यपतद्भुवि ॥ २३ ॥

महान्तो राक्षसा राम स्यार्द्धचन्द्रोपमैः शरैः ।
फुल्लकिंशुकवृक्षाभा बभूवुः समराजिरे ॥ २४ ॥

केषांचिन्मुञ्चतां शस्त्राण्यभिद्यन्त भुजा युधि ।
ते विदीर्णमुखा दंष्ट्रायुधै राममभिद्रुताः ॥ २५ ॥

निबद्धघोरभ्रकुटीविरूपाःकरालदीर्णाननघोरदंष्ट्राः ।
सुघर्घरारावमुचोऽरुणाक्षाः सद्यो निकृत्तायतबाहुदण्डाः ॥ २६ ॥

सुभीमतिर्यङ्नयनावलोकैः सन्तर्जयन्तो युधि राक्षसा स्ते ।
धनुर्धरं राममभिद्रवन्तो व्यकम्पयन् भूतलमङ्घ्रिपातैः ॥ २७ ॥

तान् राघवेन्द्रो विशिखैः सुतीक्ष्णैरापुङ्खमग्नैर्निभृतैरुरःसु ।
सद्यः परावर्तयदेकसार्थे ते घूर्णिताक्षा न्यपतंश्च भूमौ ॥ २८ ॥

प्रत्यालीढपदाः केचिदाकर्णाकृष्टकार्मुकाः ।
निकृत्तचरणा रामसायकैर्न्यपतन् भुवि ॥ २९ ॥

तेषां करविनिर्मुक्ताः सायका रामसायकैः ।
सद्योद्विधाकृता युद्धे विनिपेतुः परागताः ॥ ३० ॥

सहस्रं राक्षसा रामे एकसार्थनिपातिनः ।
तावद्भिस्तच्छरैः सद्यः परावृत्य निपातिताः ॥ ३१ ॥

रामचापजवोन्मुक्तैर्मल्लैः प्रबलपातिभिः ।
उड्डीयन्तेस्म मूर्द्धानो रक्षसां श्रीफलोपमाः ॥ ३२ ॥

मूर्द्धानोरक्षसां घोरा गिरिगण्डमिता अपि ।
उड्डीय संगता व्योम्नि दृश्यन्ते लघुसंम्मिताः ॥ ३३ ॥

नीलाः पीताधूम्रवर्णाश्च रक्ताः पिङ्गत्विषः काककृष्णाः सिताश्च ।
घोरा घटाः पातिनां राक्षसानां संदृश्यन्ते प्रावृषीवाभ्रसंघाः ॥ ३४ ॥

घोरान् कटकटारावकारिणः पिष्टदंदृष्ट्रकान् ।
नानावर्णान् यातुधानान् शरैश्चिच्छेद राघवः ॥ ३५ ॥

तेषां मुण्डा भूतलं कम्पयन्तो दन्ताग्रदष्टौष्ठपुटाः सुभीमाः ।
उत्तानितोऽग्रभ्रुकुटीतरङ्गा हुङ्कारगर्भाः सहसा निपेतुः ॥ ३६ ॥

निकृत्तशीर्षा रघुवीरसायकैर्विभिन्नदोर्दण्डयुगाः क्षताङ्घ्रयः ।
शिरोधराभिः कटुघोररावणो रुण्डायिताङ्गा न्यपतन्निशाचराः ॥ ३७ ॥

द्विधाकृताङ्गाः खलु रामसायकैः केऽप्येकबाह्वक्षिपदा निशाचराः ।
परिप्लवन्तो रुधिरौघवाहिनीस्रोतोजवैर्नीयमानाश्च दृष्टाः ॥ ३८ ॥

सा केशशैवाललताजटालरक्ताम्बुवेगाकलितप्रवाहा ।
विभिन्न मूर्द्धाम्बुजिनी कन्धग्राहाकुलान्दोलितबाहुमीना ॥ ३९ ॥

करालरक्षोधिपकायकूलं कषोर्मिवृन्दा सुविरूपदर्शा ।
रणाङ्गणो शोणितवारिपूरैस्तरङ्गिणी रामधनुर्धनोत्था ॥ ४० ॥

निरन्तरं प्रावहदस्रपोरःक्षितिध्रनिर्भेदकरी समंतात् ।
यस्यां निमज्जन्त्यवगाहनार्थं प्रसह्य भूतेशगणाः पिशाचाः ॥ ४१ ॥

कोटिशो राक्षसगणा रामकार्मुकनिर्गतैः ।
सायकैर्घोरनिर्घातैः क्षयं नीतास्तदाञ्जसा ॥ ४२ ॥

अथाययौ वृतः कोट्या राक्षसैरुद्यतायुधैः ।
विचित्रयोधी प्रबलो दूषणोनाम राक्षसः ॥ ४३ ॥

खरश्चातिखरारावैर्युतः कोट्या निशाचरैः ।
आजगाम रणाकाङ्क्षी रामेण रणदुर्मदः ॥ ४४ ॥

तथैव त्रिशिरा नाम राक्षसोभीमयोधनः ।
आययौ समरे रामवीरं योधयितुं बली ॥ ४५ ॥

तेषामग्रेसरास्तावद्राक्षसाः सुमहोद्धताः ।
महान्तं विक्रमं चक्रुः खड्गशक्तिपरस्वधैः ॥ ४६ ॥

स्वायुधैर्वेगनिर्मुक्तैर्धारासम्पातदर्शनैः ।
राघवेन्द्रं गिरिमिवच्छादयामासुरस्रपाः ॥ ४७ ॥

तेषां शस्त्राणि चास्त्राणि पतमानानि कोटिशः ।
बभञ्ज राघवः सद्यो विशिखैः शीघ्रगामिभिः ॥ ४८ ॥

राक्षसायुधसंदोहवर्षाद् रामदिवाकरः ।
आत्मानं भासयामास बाणैर्दीधितिभिर्निजैः ॥ ४९ ॥

निरस्य राक्षसास्त्राणि वर्षाभ्राणीव राघवः ।
चण्डानिलैरिव शरैर्दिदीपेपुनरर्कवत् ॥ ५० ॥

तथैवेकैकशः शत्रून् वाणैरेकैकयातिभिः ।
कृत्स्नशो निर्विभेदैष प्रापणाय यमालये ॥ ५१ ॥

रामबाणविनिर्भिन्ना अपुनर्बोधशायिनः ।
पुरोगा राक्षसेन्द्राणां समं जग्मुर्यमालयम् ॥ ५२ ॥

महीयसि बले चैवं जाते स्वल्पीयसि द्रुतम् ।
आययुर्दूषणखरत्रिशिरःसंज्ञकाः खलाः ॥ ५३ ॥

रामस्तान् प्रतिजग्राह शरैः समनिपातिभिः ।
यथापूर्वं च निर्भिन्नविग्रहास्ते परापतन् ॥ ५४ ॥

त्रिभिरेव च रामस्य सायकैर्घोररराविभिः ।
तेषां त्रयाणां रुधिरमायुश्च सहसा पपे ॥ ५५ ॥

हृदयानि विनिर्भिद्य परतो निर्गताः शराः ।
पश्चान्निपेतुः पूर्वं तु तेषां देहा महीतले ॥ ५६ ॥

इति रघुपतिसायकैर्निकृत्ते महति बले प्रबले निशाचराणाम् ।
चलमिव ददृशे रणाङ्गणं तत्प्रहरणपाणिभिरुद्धतैः कबन्धैः ॥ ५७ ॥

भ्रामं भ्रामं युद्धभूमौ कबन्धाः स्निह्यन्मेदोमांसरक्ताचितायाम् ।
वृत्तश्वासाः स्खलितास्ते कथंचिद्भ्रूंभारावाः कन्धराभिर्निपेतु ॥ ५८ ॥

सा योधयित्वा रघुवीरमुच्चकैः सुरद्विषां घोरतरा वरूथिनी ।
सुष्वाप भूयः प्रतिबोधवर्जिता गृध्रच्छदच्छायनिरालपावनौ ॥ ५९ ॥

उत्कृत्योत्कृत्य मांसोत्करमथ विकटाराविभिः फेरुसंघै-
र्युक्ता मत्ताः शिवाल्यः समरभुवि मुहुर्बभ्रमुर्भीमरूपाः ॥
काकाःकंकाश्चगृध्राः पृथुतरपललग्रासकेलीर्दधाना ।
उड्डीयोड्डीय पक्षध्वनिभरभयदाः प्रेतवृन्दे निपेतुः ॥ ६० ॥

मांसमस्तिष्कपङ्केषु प्रमत्ताः फेरुभिः शिवाः ।
विकटारावकारिण्यः सीदन्तिस्म सतृप्तयः ॥ ६१ ॥

मेदोमांसवसास्वादसोष्माणः पलचारिणः ।
शोणितस्त्रोतसां मध्ये चिक्रीडुः शमितोष्मणाम् ॥ ६२ ॥

प्रसह्य भूतेशगणैः पिशाचैराकृष्यमाणा रुधिरौघमध्ये ।
बभुर्निबद्धान्त्रगुणाः कबन्धा नावो यथा सिन्धुषुकर्णधारैः ॥ ६३ ॥

आकर्षन्तो गृध्रनखाग्रलग्नान्यन्त्राणि युद्धाङ्गणगाःपिशाचाः ।
उड्डीयमाना दिवि वातजीवा गुणैर्दधाना इव रेजिरेतराम् ॥ ६४ ॥

इत्थं राघवबाणपूगसुविदीर्णानां महीशाथिनां
तेषां तत्र पुनः प्रबोधनविहीनानां महारक्षसाम् ।
नैकोऽप्युर्वरितो निशाचरपतेर्वक्तुं ध्रुवं यो भवेद्
दुःसंदेशमिमं ननु स्वभगिनीं तामेव विग्नां विना ॥ ६५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे खरदूषणत्रिशिरोवधो नाम चतुश्चत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥

*

पञ्चचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

सा लूनवक्त्रावयवा नितान्तं विलज्जमाना मरणाधिकार्तिः ।
कृच्छ्रं प्रदोषावसरे विवेशः शोचत्यदः शूर्पणखा पुरीं स्वाम् ॥ १ ॥

अहो हि धिङ्मामथ जीवमानामीदृग् विवत्तावपिधिङ्ममायुः ।
सहोदरो मे प्रथितः स तादृगहं पुनः प्राप्तपराभवेदृशी ॥ २ ॥

धिङ्मे स्मराग्निविगतत्रपायास्तस्मिन्न किं जीवमहं जुहाव ।
न जीवनं सम्प्रति मे प्रशस्तं जीवामि ह्यत्यन्तविगर्हणीया ॥ ३ ॥

हा हन्त सिद्धो भगवान् मुनीन्द्रस्तस्यान्वये जन्मवती किलाहम् ।
किमेतदङ्गक्षतिलाञ्छनार्थमजीविषं भग्नयशाः पृथिव्याम् ॥ ४ ॥

तौ मानुषौ कामसमानरूपौ सरोजगर्भाधिकसौकुमार्यौ ।
निरीक्ष्य जाताहमनङ्गतप्तानाज्ञासिषं दास्यत ईदृशीं दशाम् ॥ ५ ॥

कथं न्वहं दर्शयितास्मि वक्त्रं तस्य त्रयाणां जगतामधीशितुः ।
कुत्राप्यदृष्टात्मपराभवस्य भ्रातुर्जयाढ्यस्य दशाननस्य ॥ ६ ॥

किं मां वदिष्यन्ति च बन्धुमित्रसुहृज्जनास्ते दुरवस्थविग्रहाम् ।
हा रक्षसां कोटि सुनिर्हतासु कथं न दैवेन हता सुदुर्भगा ॥ ७ ॥

हता मदर्थं मम बन्धवस्ते चिरं नियुध्यत्रिशिरःखराद्याः ।
ममाद्यपूर्णो विधिवञ्चितायाः सम्यक्किलायं मदनाभिलाषः ॥ ८ ॥

क्व यामि किं वाश्व करोमि मन्दा मिषेण केनाथ निगूहनीयम् ।
अङ्कस्थितं लाञ्छनमेतदुत्कटं विशेयमब्धिं दहनं महीं वा ॥ ९ ॥

भ्रातुर्ममातीव विशङ्कमानाः सुविभ्यतो भूर्दहनोऽम्बुधिर्वा ।
न मां गृहीतुं प्रभवन्ति केचित् क्व यामि वाहं गरलं पिबेयम् ॥ १० ॥

मन्दोदरी यत्र सुलोचना च भूयस्तथान्या मम बन्धुजायाः ।
कुम्भीनसी मे जननी पिता च स विश्रवा नाम च बन्धवोऽन्ये ॥ ११ ॥

तत्राहमेतां निजवक्त्रबिम्बवैरूप्यसम्पत्तिमलं वहन्ती ।
कथं नु वत्स्यामि विगर्ह्यजीविता कुर्वीय किं वा विधिनिर्हताहम् ॥ १२ ॥

इति स्वगतमेवैषा ब्रुवाणा शोकपीडिता ।
अगाच्छूर्पणखा कृच्छ्रं भवनं भ्रातुरात्मनः ॥ १३ ॥

सा रावणमधिक्षिप्य वीरं भ्रातरमात्मनः ।
इदमूचे वचः क्रुद्धा विरूपा राक्षसी खला ॥ १४ ॥

भ्रातः कस्ते प्रतापोऽद्य कृत्स्नं जितवतो जगत् ।
मानुषेणापि पीड्यन्ते प्रत्यक्षं यस्य बान्धवाः ॥ १५ ॥
यथेच्छं क्रीडमानाहं त्वत्प्रतापेन निर्भया ।
गोदातीरे वने रम्ये पञ्चवट्यां तवानुजा ॥ १६ ॥
नीता केनापि मर्त्येन सुदुर्दर्शां दशामिमाम् ।
अथो अन्यदपि भ्रातर्वृत्तं श्रोष्यसि मन्मुखात् ॥ १७ ॥
ये ते जनस्थानगता भ्रातरो बान्धवश्च ते ।
खरदूषणदुर्धर्षत्रिशिरस्तिग्मकादयः ॥ १८ ॥
तस्यैव दुष्टमर्त्यस्य बाणवह्नेः पतंगताम् ।
गता नियुध्य सुचिरं राक्षसाः सुमहोद्धताः ॥ १९ ॥
इदं खलु तवात्यन्तमनिष्टमजनि स्फुटम् ।
यस्य ते तादृशा वीरा अल्पेन निधनं गताः ॥ २० ॥
कालो विपर्ययं वक्ति प्रायशो जयिनस्तव ।
क्व स्वःपतेः परिभवस्तैरैव सुदुरासदैः ॥ २१ ॥
क्व चात्यन्तमनर्हेण मर्त्येन निधनं रणे ।
शमयेत्तृणमप्यग्निं क्वचित्कालविपर्ययात् ॥ २२ ॥
अमर्षणस्य ते भ्रातर्दुष्प्रवृत्तिरियं श्रुता ।
जनयिष्यति किं नातः क्रोधज्वलनमुत्कटम् ॥ २३ ॥
निग्रहो मर्त्यजातेन दिशां जैत्रस्य ते श्वसुः ।
तादृशानां निजाप्तानां वधश्च धनदानुज ॥ २४ ॥
दशानामपि ते मूर्ध्नामिदमाक्रमणं खलु ।
मन्ये मर्त्यशरीरेण कालस्यैव विपर्ययात् ॥ २५ ॥
कृताऽसौ येन दुष्टेन रक्षःपरिभवो महान् ।
तस्य भार्या च रूपेण तव योग्यैव विद्यते ॥ २६ ॥
तया हं हसिता चास्मि बहुगर्वायमानया ।
इति मद्धृदये भ्रातः संतापो वर्तते महान् ॥ २७ ॥
तामानय बलाद्दुष्टां वञ्चयित्वा तु तौ खलौ ।
अथवा मारयित्वापि भगिन्यास्तेऽपराधिनौ ॥ २८ ॥
विलोक्य तस्याः सौन्दर्यं हृदि दर्प्यैककारणम् ।
अमानवीयमिति ते विभ्रमोऽन्तर्भविष्यति ॥ २९ ॥
आनेष्यति भवान् हृत्वा तां दुष्टां रूपगर्विणीम् ।
तदैव मम तपोऽयं हृदि प्रशममेष्यति ॥ ३० ॥
इति स्वसुर्वाक्यमसौ निशम्य दशाननः क्रूरमनास्तदैव ।
जज्वाल रोषेण दहन्निवान्तर्निजाप्तवर्गक्षयजातशोकः ॥ ३१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे शूर्पणखापरिवेदनं नाम पञ्चचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१४५॥

*

षट्चत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

विरूपां भगिनीं वीक्ष्य विलूनावयवां तथा ।
रामेण मर्त्यरूपेण परितेपे दशाननः ॥ १ ॥

रावण उवाच

हा ते भगिनि वैरूप्यं तेन दुष्टेन यत्कृतम् ।
ध्रुवमात्मविनाशाय तन्मन्ये नात्र संशयः ॥ २ ॥

अपूर्वोऽयं परिभवो रक्षसां मम चेतसि ।
उपतापं जनयति प्रसह्यामर्षशालिनः ॥ ३ ॥

अस्यामर्षोत्थरोषाग्नेः प्रतीकारो न विद्यते ।
विना तस्यैव दुष्टस्य प्रसह्य विनिपातनम् ॥ ४ ॥

हरणं चापि जायाया मरणेन समं ध्रुवम् ।
इति निश्चित्य भगिनि करिष्यामि बलेन तत् ॥ ५ ॥

मन्दाया जातगर्वाया हसन्त्यास्त्वां विरोधतः ।
बलेन हरणं तस्या मुक्तमेव न संशयः ॥ ६ ॥

कदनं मम बन्धूनां तादृशानां बलीयसाम् ।
शोकवह्निमपूर्वं मे हृदये समदीपयत् ॥ ७ ॥

हा सखे दूषण भ्रातः खर हा त्रिशिरः कथम् ।
मर्त्येन तेन दुष्टेन यूयंनीताः स्थ संक्षयम् ॥ ८ ॥

येषां वो बाहुवेगेन विनिःक्षिप्तैर्वरायुधैः ।
सहसा त्रिदशानीकमभज्यत रणेष्वलम् ॥ ९ ॥

ते पूयमद्य दुष्टस्य तस्यतापसवेशिनः ।
विशिखैः संशयं याताः किं मे दुःखमतः परम् ॥ १० ॥

येषां बाहुबलं सम्यगाश्रित्य रजनीचराः ।
त्रैलोक्ये निर्भयाः सन्तः क्रीडन्तिस्म यथातथम् ॥ ११ ॥

यैर्लुप्ताः समरेषु श्रीजयदर्पभरा युधि ।
सुराणां भूरिवीर्याणां स्वबाहुबलवेगतः ॥ १२ ॥

येषां वीर्यात्सुखं शेते कुम्भकर्णः सुनिर्भयः ।
अहं चापि सुसम्पन्नं मन्ये राज्यमिदं निजम् ॥ १३ ॥

येषुवीर्यबलोद्रेकाद्गृहीतायुधपाणिषु ।
पिहितान्यभवन् नाके कपाटानि समंततः ॥ १४ ॥

येष्वाज्ञावशतो बद्धकराञ्जलिपुटेषु मे ।
न दुर्लभमभूत्किंचित्त्रैलोक्येऽपि चराचरे ॥ १५ ॥

यै रोपिता ममारामे समुत्पाट्य स्व दोर्बलात् ।
भयादिवधृताकम्पशाखाः सुरमहीरुहाः ॥ १६ ॥

यैः केशेष्विव चाकृष्य पलायन्त्यः सुरश्रियः ।
वन्दीकृत्य समानीताः प्रसभं मम सद्मनि ॥ १७ ॥

यैर्दिग्विजययात्रासु ममाग्रेसरता गतैः ।
कतिधा न कृता व्यर्था मम निर्धा वनश्रमाः ॥ १८ ॥

येषां मयि परः स्नेहो मम येषु च सौहृदम् ।
निरुपाधिमटोत्कर्षमुपयाति दिवानिशम् ॥ १९ ॥

यैः पुलस्त्यमुनेर्वंशो गरीयान् गुणिभिः कृतः ।
येषां च विजयश्लोकश्चुम्बतीन्द्रशिखामणिम् ॥ २० ॥

यैर्लङ्कानगरी नित्यं कृता विश्रमणं श्रियः ।
येषां वीर्यबलोत्कर्षो ममोत्साहविवर्द्धनः ॥ २१ ॥

येषां बलमुपाश्रित्य मया लङ्का विनिर्जिता ।
विवासितश्च धनदो गन्धर्वकुलसंयुतः ॥ २२ ॥

येषु संरब्धमात्रेषु देवगन्धर्वकिन्नराः ।
विजयाशां जहुर्युद्धे मानवानां तु का कथा ॥ २३ ॥

यैः स्वसम्बन्धसौहार्दकृत्यं मयि यथा कृतम् ।
न तथा तु मया किञ्चित्कृतं कालं प्रतीक्षता ॥ २४ ॥

रक्षसां राज्यमुत्कृष्टमहमाश्रित्य मत्तधीः ।
यानवज्ञातवान् बन्धूनुच्चस्थानासनादिभिः ॥ २५ ॥

तेषां सम्प्रत्यनादृत्य हतभाग्यं हतोन्नतिम् ।
यमालयातिथीभूता हा रोदिमि कथं नु तान् ॥ २६ ॥

न मयोपकृतं तेषु राज्यश्रीमत्तचेतसा ।
मदर्थोपकृतप्राणान् हा रोदिमि कथं नु तान् ॥ २७ ॥

तेष्वहं सम्परेतेषुजीवंस्तिष्ठामि सम्प्रति ।
मन्दधीमन्दभाग्यश्च हा रोदिमि कथं नु तान् ॥ २८ ॥

यैर्दत्तो मह्यमुत्कर्षो बलवद्भिर्दुरासदैः ।
न मयोपकृतं तेषु हा रोदिमि कथं नु तान् ॥ २९ ॥

येषां बाहुबलैर्देवाः समरे खण्डशः कृताः ।
ते हता लघुमर्त्येन हा रोदिमि कथं नु तान् ॥ ३० ॥

यैर्निर्जितं यमपुरं यमश्च युधि खण्डितः ।
पुनस्तत्रैव ते प्राप्ता हा रोदिमि कथं नु तान् ॥ ३१ ॥

भक्ष्या हि नः सदा मर्त्या मर्त्येष्वपि स तापसः ।
तेषां प्राणहरो जातो हा रोदिमि कथं नु तान् ॥ ३२ ॥

पराभवस्य वार्तापि येषां स्वप्नेपि दुःश्रवा ।
श्रूयते मरणं तेषां हा रोदिमि कथं नु तान् ॥ ३३ ॥

काकथेषुप्रयोगस्य चर्वणं दंष्ट्रयैकया ।
न कृतं तस्य दुष्टस्य हा रोदिमि कथं नु तान् ॥ ३४ ॥

प्रसह्य वन्दीकर्तारः सुरलोकपतिश्रियाम् ।
ते युद्धवन्तो मर्त्येन हा रोदिमि कथं नु तान् ॥ ३५ ॥

यैः खण्डितः पुरा संख्ये दण्डपाणिः सहस्रधा ।
तान् नेतुमागतो नाभैद्धा रोदिमि कथं नु तान् ॥ ३६ ॥

येषां तदैन्द्रं कुलिशमङ्गकण्डूतिदुःखनुत् ।
ते मर्त्यस्य शरैः शीर्णा हा रोदिमि कथं नु तान् ॥ ३७ ॥

मुखे क्षिप्तैकहस्तेन यैः स दुष्टो न भक्षितः ।
युद्धप्रयासं चक्रुश्च हा रोदिमि कथं नु तान् ॥ ३८ ॥

रहिता यैर्मदसवो न प्रयान्ति तनोर्बहिः ।
जीवन्ति च लघीयांसो हा रोदिमि कथं नु तान् ॥ ३९ ॥

यैनाहूतोऽस्मि समरे युध्यमानैः क्षयोन्मुखैः ।
तस्यैककवलायाहं हा रोदिमि कथं नु तान् ॥ ४० ॥

आकार्यमेकतो वृत्तं मम जिष्णोः पुनर्जगत् ।
एकतोऽजनि शोकश्च हा रोदिमि कथं नु तान् ॥ ४१ ॥

नीता अपि यमागारं तेन मर्त्यलघीयसा ।
किं नागता यमं जित्वा हा रोदिमि कथं नु तान् ॥ ४२ ॥

यैर्वञ्चितोऽहं निःस्नेहैर्विस्मृत्य स्नेहसम्पदम् ।
गतास्ते मामनादृत्य हा रोदिमि कथं नु तान् ॥ ४३ ॥

इति प्रलपतोऽत्यर्थं मम शोकेन मूर्छतः ।
यैः संस्मृतिरपि त्यक्ता हा रोदिमि कथं नु तान् ॥ ४४ ॥

हा दूषण सखे भ्रातर्हा खर त्रिशिरः सुहृत् ।
विनापराधं मां हित्वा यूयं याताः क्व सम्प्रति ॥ ४५ ॥

क्व ता गिरः स्नेहदिग्धाः क्व सा प्रीतिः क्व ते गुणाः ।
सर्वं विस्मृतवन्तः स्थ यूयं मद्वञ्चने रताः ॥ ४६ ॥

क्व ताः क्रियाः प्रेमपुषः क्व सा गोष्ठी क्व तद्धितम् ।
सर्वं विस्मृत्य सुहृदो याताः स्थ मददर्शनम् ।। ४७ ।।

युष्मासु प्रेततां यातेष्वधुना प्रसभं मया ।
कृतापि निष्कृतिर्व्यर्था तस्मिन्दुष्टे विरोधतः ।। ४८ ।।

तथापि येन भवतां दर्शितं यमपत्तनम् ।
तस्य मर्त्यस्य मद्बाणाः कुर्वन्तु प्राणभोजनम् ।। ४९ ।।

इति विप्रकृतिं नीतः शोकेन दशकन्धरः ।
रुरोद बन्धुवर्गस्य नाशाज्जातमनोज्वरः ।। ५० ।।

तस्य संरुदतः प्रोच्चैर्दशवक्त्रोद्भवो रवः ।
सभामण्डपमापूर्य्य व्यानशेव्योममण्डलम् ।। ५१ ।।

स बन्धुशोककष्टेन कृशीभूतकलेवरः ।
रुदन् संगतवांस्तेषां दारैरापन्नजीवितैः ।। ५२ ।।

रामबाणविदीर्णानां रक्षसां योषितस्तदा ।
लङ्केशमुखसंदेशं श्रुत्वा वैधव्य सूचकम् ।। ५३ ।।

मूर्छिताः पतिता भूमौ चिरेण च समुत्थिताः ।
कथंचिल्लब्धचैतन्या रुरुदुर्हतवक्षसः ।। ५४ ।।

तासां घ्नतीनां वक्षांसि शिरांसि च मुहुर्मुहुः ।
वज्रनिष्पेषनिर्घातः प्राकम्पयत मेदिनीम् ।। ५५ ।।

स्मारं स्मारं च राक्षस्यः पतिबन्धुसुहृत्सुतान् ।
विलापं चक्रिरे दीर्घदुःखाल्लङ्केशितुः पुरः ।। ५६ ।।

तेभ्यो मृतेभ्यः समरे कृत्वा प्रेतोदकक्रियाम् ।
रक्षोगणैः परिवृतः शुशोच दशकन्धरः ।। ५७ ।।

त्रिशिरःखरदूषणादिरक्षःप्रवराणां वनिता असोढशोकाः ।
विविशु शुचिमेधसा समिद्धं परिरभ्यायुधवस्त्रभूषणादीन् ।। ५८ ।।

तेषां मातृर्बन्धुवर्गाश्च शोकात्सद्यः प्राणांस्त्यजतो राक्षसेन्द्रः ।
वाक्यैः शोकायोहनार्द्रैः समाधात् कृच्छ्राद्भूयः स्वं निकेतं प्रपेदे ।। ५९ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे रावणशोको नाम षट्चत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ।। १४६ ।।

*

सप्तचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

संक्षयाद् बन्धुवर्गाणां निग्रहाच्च निजस्वसुः ।
मर्त्येन निहितं मेने पदं दशसु मूर्धसु ॥ १ ॥

तत आहूय मारीचनामानं राक्षसं खलः ।
इदं रहसि संस्थाय मन्त्रयामास रावणः ॥ २ ॥

हे मारीच सखे भ्रातरश्चावि भवतापि यत् ।
कृतं मर्त्येन केनापि विप्रियं मम तादृशम् ॥ ३ ॥

यस्य मे बलिनो वीरा जयशीला भवादृशाः ।
सम्भावनीयः किं तस्य मर्त्येनापि पराभवः ॥ ४ ॥

स दुष्टस्तापसं वेशं बिभ्रद्भुवनवञ्चकः ।
भ्रातृदारयुतस्तस्मिन्नास्ते पञ्चवटीवने ॥ ५ ॥

तेन मे भगिनी नीता विग्रतां दुष्टबुद्धिना ।
विनिबद्धमतो वैरं मयि निःशङ्कचेतसा ॥ ६ ॥

तस्य वैरतरोरेष फलं प्राप्स्यति दुष्टधीः ।
ध्रुवमात्मविनाशेन मत्तः सपदि सम्प्रति ॥ ७ ॥

प्रथमं तु वधूं तस्य मम स्वस्रूपहासिनीम् ।
आहर्तास्मि बलात्तस्मात्स्थानात्साहाय्यतस्तव ॥ ८ ॥

त्वं तत्र मृगरूपेण विचरिष्यसि कानने ।
सीतायाः पुरतो भूत्वा वहन् स्वर्णमयीं तनुम् ॥ ९ ॥

मोहयित्वा मनस्तस्या दुरात्मानं चतापसम् ।
तं नेयष्यसि सुदूरं त्वं मृगयार्थं समुद्यतम् ॥ १० ॥

अहं तमेव समयं सम्प्राप्य रहसि स्थिताम् ।
आहर्तास्मि बलात् सीतामतदर्हां मनोरमाम् ॥ ११ ॥

जाने जनकभूपस्य सुता सा हृदयंगमा ।
अयोनिसम्भवा तेन मर्त्येनैव सुसंगता ॥ १२ ॥

तामानेतास्मि सपदि प्रसह्य स्वां पुरीमहम् ।
यां जहास ध्रुवं तस्याः करिष्यामि वशेस्थिताम् ॥ १३ ॥

हृलप्रलम्बदंष्ट्राभिर्दत्तभीतिभिरञ्जसा ।
राक्षसीभिः समंतात्तां भीषयिष्यामि भूरिशः ॥ १४ ॥

सा मद्भुजान्तरं यावन्नायास्यति भयातुरा ।
तावत्तां भीषयिष्यन्ति राक्षस्यो राक्षसा अपि ॥ १५ ॥

आत्मकर्मविपाकं सा ध्रुवं यास्यति जानकी ।
रामश्च बहलं शोकमधिकं मरणादपि ॥ १६ ॥

भवान् करोतु साहाय्यं मम तत्रैव कानने ।
रक्षःपरिभवोद्भूतं शोकं च हरः दुःसहम् ॥ १७ ॥

ध्रुवमात्मविनाशाय परकार्याणि साधवः ।
साधयन्ति यशोवल्लीं दृढं रोपयितुं भुवि ॥ १८ ॥

इति सम्मन्त्र्य दुष्टात्मा मारीचेन दशाननः ।
तथेति तद्वचः श्रुत्वा प्रस्थातुमुपचक्रमे ॥ १९ ॥

महान्तं रथमास्थाय स्वर्णरत्नपरिच्छदम् ।
घोषयन् हरितः सर्वा ययौ मारीचसंयुतः ॥ २० ॥

नभःपथमतिक्रम्य वीरमानी दशाननः ।
सीतावगाहपुण्योदं प्राप पञ्चवटीवनम् ॥ २१ ॥

स तत्र स्यन्दनवरादवतीर्य महाखलः ।
स्वयं बभूव मायावी भिक्षुब्राह्मणवेषभृत ॥ २२ ॥

मारीचश्चाभवत्तस्य गृहीत्वाऽऽज्ञामखण्डिताम् ।
सुवर्णहरिणोऽत्यन्तविचित्राङ्गरुहाञ्चितः ॥ २३ ॥

शृङ्गयुग्ममनोहारी चञ्चत्खुरचतुष्टयः ।
चञ्चलेक्षणसंशोभी सरूपश्रवणद्वयः ॥ २४ ॥

अपाङ्गदर्शनक्रीड़ाकारी कलितकौतुकः ।
नृत्यन्निवाङ्गैर्ललितैर्विशन्निव मुहुर्मनः ॥ २५ ॥

लोकोत्तरैः सौकुमार्यसौन्दर्यप्लुतिलाघवैः ।
वशीकुर्वन्निव मनः क्रीडावशितलोचनः ॥ २६ ॥

वने हरित्तृणान्यश्नन् विचचार समंततः ।
कूर्दमानः क्वचित्क्वापि नृत्यन् क्वापि स्थिरीभवन् ॥ २७ ॥

तौ मायाबलमाश्रित्य राक्षसौ कुटिलाशयौ ।
तस्थतुः सुप्रतीक्षन्तौ कानं रन्ध्रगवेषिणौ ॥ २८ ॥

तत्र श्रीरामचन्द्रो द्विजमुनिनिबहे भुक्तवत्यन्नमूलं
भूयः कृताशिष्यनुजजनकजायुक्त आदत्स्वयं च ॥
दत्त्वा शेषं च देवी हितशबरबधूभ्यो वने दुर्गतेभ्यो
दीनेभ्यः स्वाश्रितेभ्यो मुनिवरवनितादत्तपात्रं ममार्ज ॥ २९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे मारीचरावणागमनो नाम सप्तचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥

*

अष्टचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ मध्याह्नवेलायां मध्ये दिनगते रवौ।
छायायां वनवृक्षाणां स्थितायां मूलसंश्रये॥ १॥

घूर्णमाने मृगकुले सीतादत्तान्नभोजने।
तृप्ते क्षणविनिर्मुक्तरोमन्थे तरुमूलगे॥ २॥

ध्वनत्सु खगवृन्देषु वृक्षशाखानिषादिषु।
गतासु भिल्लपत्नीषु भोज्यशेषान्नदानतः॥ ३॥

गतेषु भिक्षुवर्गेषु स्वं स्वं विश्रान्तिशाखिनम्।
मुनिष्वाश्रमसद्मानि प्राप्तवत्सु सरित्तटे॥ ४॥

सर्वेषु भुक्ततृप्तेषु जनेषूच्चावचेष्वलम्।
आश्वानकाकचाण्डालमाकीटपशुपक्षिकम्॥ ५॥

सौमित्रिसीतारामेषु विधायबलिमुत्तमम्।
माध्याह्निकेन हविषा चात्रसथ्यानले हुते॥ ६॥

स्वयं च भुक्तवत्स्वेषु शुभाचारेषु संततम्।
मृष्टवत्यां च जानक्यां स्थालीमात्रप्रियार्पिताम्॥ ७॥

वनश्रीदर्शनासक्ते सौमित्रौ सविधस्थिते।
रहो निकुञ्जमाश्रित्य तस्थतुस्तौ च दम्पती॥ ८॥

तदानीमेव पुरतस्तयोः सम्प्रेक्षमाणयोः।
आजगाम निशाचारी मायास्वर्णमृगः खलः॥ ९॥

तं दृष्ट्वा जानकीदेवी मायास्वर्णमृगं खलम्।
पत्यौ शृण्वति सोत्कण्ठमुवाचेदं विमोहिता॥ १०॥

अहो स्वर्णमृगस्यास्य रूपमत्यन्तमञ्जुलम्।
अदृष्टपूर्वं कुत्रापि मनो मोहयतीव मे॥ ११॥

अहो तनूरुहा अस्य विचित्राकृतिशालिनः।
नान्यस्मिन् हरिणे दृष्टाः सुकुमारा मनोहराः॥ १२॥

दृश्य तां सु समं शृङ्गद्वयमस्य मनोरमम्।
जातरूपमयं चित्तचमत्कारि विराजते॥ १३॥

अहो तरलता चास्य चक्षुषोर्भृशदीर्घयोः।
हरते स्वर्गकान्तानामपि लोचनसौष्ठवम्॥ १४॥

अद्भुते श्रवसीअस्य मनोज्ञे शृङ्गयोरधः ।
नादश्रवणसोत्तम्भे हृदयं हरतो मम ॥ १५ ॥

सातङ्क इव खल्वेष तृणान्यति सुचञ्चलः ।
शनैः क्रामन् वनभुवमद्भुतप्लुतिलाघवः ॥ १६ ॥

अहो अस्य मनोज्ञस्य चरणानां चतुष्टयम् ।
महीघ्रलङ्घनेऽप्यस्य स्यात्प्रायः प्लुतिलाघवम् ॥ १७ ॥

अन्यदेवास्य सौन्दर्यमन्यदेवास्य लाघवम् ।
अन्यदेव च चाञ्चल्यमन्यदेवाङ्गसौष्ठवम् ॥ १८ ॥

प्रायो नैवंविधो लोके मृगो भवितुमर्हति ।
मायेयं कापि मन्येऽहं पुरस्तान्मम भासते ॥ १९ ॥

विशतीव मम स्वान्तं क्षिप्रं छलयतीव माम् ।
अस्य रूपेण दिव्येन क्रीतेवास्मि न संशयः ॥ २० ॥

नैवंविधः क्वचिद्दृष्टो मृगजातिर्मया भवे ।
भवेदर्यदि वशीभूतो मम पूर्णा मनोरथाः ॥ २१ ॥

अनेन छलितप्राणा लप्स्येऽहं ननु कां गतिम् ।
वशीकरोति हि जनं काप्यपूर्वार्थदर्शनम् ॥ २२ ॥

एतस्याङ्गरुहैश्चित्रां वोढुकामास्मि कञ्चुकीम् ।
अजिनं वास्यकुचयोच्छादनं भवतान्मम ॥ २३ ॥

निबध्य चामुं सूत्रेण लोकोत्तरगुणं मृगम् ।
ध्रुवं क्रीडितुकामास्मि वनेऽस्मिन् रसरञ्जिता ॥ २४ ॥

कुतो न खलु सम्प्राप्तः सारंगोऽयं गुणाकरः ।
नायं लोकोऽस्य वसतिः प्रायोऽयं स्वर्गसंस्थितः ॥ २५ ॥

देवक्रीडनको वायं प्राप्तो मे सुखहेतवे ।
ध्रुवमेतस्य लाभेन पूर्णः स्यान्मे मनोरथः ॥ २६ ॥

शून्ये वने वसन्त्या मे प्रायोऽयं चित्तरक्तये ।
वितीर्णो विधिना साक्षात् क्रीडाकौतुकक्रृन्मृगः ॥ २७ ॥

न प्रयात्वन्यतश्चैष मामकं केलिसाधनम् ।
ध्रियतां क्षिप्रमासाद्य त्वया मत्कामपूर्तये ॥ २८ ॥

अथ लोलस्वभावत्वाद्धर्तुमेष न शक्यते ।
ध्रुवं विद्ध्वापि तर्ह्येनं शरैरानय कामदम् ॥ २९ ॥

स्याच्छृङ्गारोपकरणं चर्मास्य गुणवत्तरम् ।
शृङ्गद्वयं तथैतस्य शोभिष्यति भवत्करे ॥ ३० ॥

मांसान्यस्य भवन्ति भूरिसुरसान्युच्चैः सुगन्धीनि च
श्वस्तृप्त्यै भवितार एव विधिना नायासदत्तानि नः ।
चर्माण्यस्य विचित्रकाञ्चनमयान्यङ्गेषु मे काञ्चन
स्वर्णच्छादनमाधुरीं प्रतिपदं धास्यन्ति तेऽन्तर्मुदे ॥ ३१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सीतासम्मोहनो नामाष्टचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१४८॥

*

एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा विदेहजावाक्यं विहस्य रघुनन्दनः ।
इदमूचे जगच्चित्तसाक्षी साक्षान्महेश्वरः ॥ १ ॥

श्रीराम उवाच

प्रिये न वेत्सि मायेयं सुवर्णमृगरूपिणी ।
न जात्वीदृग्विधो दृष्टो वनेऽत्रान्यत्र वा मृगः ॥ २ ॥

प्रायशोऽनेकरूपेण विचरन्तीह राक्षसाः ।
निरूढवैशसा नित्यं मयि पूर्वविरोधिनि ॥ ३ ॥

प्रायः स्थानमिदं कृत्स्नं घोराणामेव रक्षसाम् ।
माययानेकरूपास्ते मां वञ्चयितुमुद्यताः ॥ ४ ॥

जानासि सा स्वसा साक्षाल्लङ्केशस्य दुरात्मनः ।
प्रसह्य विग्रतां नीतास्माभिस्तीक्ष्णकृपाणिना ॥ ५ ॥

नाशिता बन्धवस्तस्य ते दूषणखरादयः ।
कोटयो राक्षसानां च वनेऽस्मिन् युद्ध्यता मया ॥ ६ ॥

अतो वैरतरोर्मूलं सुदृढं तेन मेऽभवत् ।
भवेत्तस्यैव मायेयं कदाचित्सुदुरात्मनः ॥ ७ ॥

रूपाण्यनेकान्याश्रित्य घोरा मायाविनः खलाः ।
मोहयन्ति मनः पुंसां सुदुर्लक्ष्या निशाचराः ॥ ८ ॥

जह्यस्य स्वीकृतौ यत्नमपरिज्ञातचेतसः ।
अपूर्वकनकैणस्य भवेन्माया कदाप्यसौ ॥ ९ ॥

त्वमहं चैव सौमित्रिर्वनेऽत्रैकाकिनस्त्रयः ।
चतुर्थो नैव कर्तव्यो जातु विश्वासभाजनम् ॥ १० ॥

एते तु वाडवाः सौम्या रक्षोभिर्भीषिता वने ।
अस्मानाश्रित्य तिष्ठन्ति त्वद्वितीर्णान्नभोजिनः ॥ ११ ॥

न विश्वस्या न वोदास्या निरपेक्षा द्विजातयः ।
प्राणरक्षार्थिनः कृच्छ्रेणास्मदाश्रयवर्तिनः ॥ १२ ॥

किं करिष्यति चैणेन भवती हेमवर्ष्मणा ।
राजपुत्रि प्रतीक्षस्व कालमात्मसमुद्भवम् ॥ १३ ॥

त्यक्तास्ताः सम्पदः पूर्णाः पितृपैतामहक्रमात् ।
आगताः स्वकुले कृत्स्नधरित्रीराज्यसम्भृताः ॥ १४ ॥

कियान्मनोरथस्तर्हि भवेत्स्वर्णमृगेण ते ।
त्यज लोभामिमंतन्विनय कालं दुरासदम् ॥ १५ ॥

ताभिरेव नृपश्रीभिः काले युक्ता भविष्यसि ।
सम्प्राप्य व्यसनं मुग्धे माचालय मनो निजम् ॥ १६ ॥

सुवर्णरत्नकञ्चुक्यः कति नाङ्गे धृतास्त्वया ।
कति नो परिधातव्याः पुनः सम्प्राप्य तां श्रियम् ॥ १७ ॥

विभूषितास्यत्रिपत्न्या त्वमखण्डश्रिये प्रिये ।
वासयन्ती वनं स्वाङ्गसौरभ्यैर्विचरस्यहो ॥ १८ ॥

को नु स्यात्तव शृगादः सुवर्णमृगचर्मणा ।
प्रिये सहजयैवाङ्गश्रिया त्वं भूषिता ह्यसि ॥ १९ ॥

मुञ्चाभिलाषं तृष्णां च सुवर्णमृगसंग्रहे ।
इहापरिचिते स्थाने नप कालं यथातथम् ॥ २० ॥

कोऽसौ स्वर्णमृगच्छद्मा साधुर्वा दुष्ट एव वा ।
कोऽन्तः प्रविश्य जानाति कस्य चित्तं नु कीदृशम् ॥ २१ ॥

विपर्ययेण दैवस्य गच्छेत्साध्वप्यसाधुताम् ।
समीक्ष्यकारी जयति परस्तत्र विहन्यते ॥ २२ ॥

इतिहासं वदन्त्यत्र राज्ञ्याः स्वर्णखगस्य च ।
वञ्चयित्वा हृता राज्ञी यथा स्वर्णखगेन सा ॥ २३ ॥

आसीच्च सिंहलद्वीपे राजा नाम्ना शतञ्जयः ।
तस्यासीन्महिषी नाम्ना सुकेलिरतिसुन्दरी ॥ २४ ॥

स प्रजाः पालयामास तया देव्या समन्वितः ।
दिने दिने कृतप्रीतिस्तस्यामेव मृगीदृशि ॥ २५ ॥

स कदाचिद्वनं यातो मृगयार्थं महीपतिः ।
तया देव्या समं सश्वत्क्षणविश्लेषकातरः ॥ २६ ॥

अटवीमटमानस्तु चिक्रीडे मृगयावशः ।
रथस्थो जायया सार्द्धं वने घ्नन् मृगशूकरान् ॥ २७ ॥

तस्मिन् वने महाघोरो वसत्येको निशाचरः ।
कामचारी कामरूपो महिषीं तां ददर्श सः ॥ २८ ॥

रूपेणाप्रतिमां भूमावाकर्णायतलोचनाम् ।
तप्तचामीकराभासविग्रहां भूरिभूषणाम् ॥ २९ ॥

पद्माननां मृगदृशं चन्द्रकान्तेसमप्रभाम् ।
समत्तकोकिलालापां क्रीडापाङ्गनिरीक्षिणीम् ॥ ३० ॥

तनुवस्त्रावृतां तन्वीं सुव्यक्तावयवप्रभाम् ।
विम्बाधरां पृथुश्रोणीं हेमकुम्भोन्नतस्तनीम् ॥ ३१ ॥

भवतोमिव चार्वङ्गीं दृष्ट्वा राक्षस ईदृशीम् ।
मुमोह विपिनेऽत्यर्थं मदनाविष्टमानसः ॥ ३२ ॥

ह्रा मर्त्यंजातिं यत्रेदृक् सौन्दर्येण समन्विताः ।
भवन्ति नार्यो नयनैर्मोह्यन्त्यो नृणां मनः ॥ ३३ ॥

कथं न्वेतादृशी भार्या भवेन्मम मनोरमा ।
धिङ्मांरक्षोयोनिगतमनादृत्यं किलाखिलैः ॥ ३४ ॥

कदा न्वेतादृशीं बालां सुन्दरीमङ्कमध्यतः ।
आरोप्य रमयिष्यामि मदनोत्सवविह्वलः ॥ ३५ ॥

अपीयं नयनान्तेन मां पश्येद्रूपशालिनी ।
तदैव मे भवेज्जन्म सार्थकं जगति ध्रुवम् ॥ ३६ ॥

इति ब्रुवाण एवायं मुमूर्छ स्मरविह्वलः ।
पुनः सम्प्राप्य कृच्छ्रेण चेतनामेष राक्षसः ॥ ३७ ॥

गृहं गच्छत एवास्य पृष्ठलग्नो बभूव ह ।
विवेश भार्यामादाय रत्नसौधं महीपतिः ॥ ३८ ॥

गृहे निशाचरश्चास्य रन्ध्रान्वेषी बभूव सः ।
राज्ञे ज्योतिर्विदा केनाप्यावेदितमतः परम् ॥ ३९ ॥

राजन् भार्यां सावधानो गोपाय त्वं निरन्तरम् ।
अस्मिन् भार्यापहारस्ते मासि शास्त्रेण सूचितः ॥ ४० ॥

चौरेभ्यो राक्षसेभ्यो वा साशङ्कस्तिष्ठ संततम् ।
अलक्ष्यरूपाः कुर्वन्ति मायिनः कार्यमात्मनः ॥ ४१ ॥

इत्युक्तस्तेन नृपतिरन्तःपुरगतः पुनः ।
भार्यायै ज्ञापयामास दैवज्ञेन यदीरितम् ॥ ४२ ॥

मा विश्वस हृदा राज्ञि यं कंचिन्मानवं ध्रुवम् ।
आवेदितं त्वद्विषयेऽनिष्टं ज्योतिर्विदा किल ॥ ४३ ॥

रक्षोभिस्तस्करैर्दुष्टैर्हरणं ते निवेदितम् ।
न सम्भाव्यतमं तत्तु तव रक्षाकृतस्थिते: ॥ ४४ ॥

सामान्यजनभार्यापि हर्तुं नो शक्यते परै: ।
किं पुनस्त्वं कुरङ्गाक्षि ममान्त:पुररक्षिता ॥ ४५ ॥

तथापि खलु दुर्दैवाच्छङ्कनीयं दिवानिशम् ।
इति तस्यै निवेद्यैष विश्वग्रक्षितवान् पुरम् ॥ ४६ ॥

अन्त:पुरं विशेषेण नृपति: पर्यरक्षयत् ।
आत्मना च महीपालो रक्षां चक्रेऽवधानत: ॥ ४७ ॥

कदाचित् शान्त: पुरगा गृहारामे मनोरमे ।
विचरन्ती सखीवृन्दे खगमेकं ददर्श ह ॥ ४८ ॥

तमेव राक्षसं क्रूरं मायाकल्पितविग्रहम् ।
सुवर्णपक्षतिं रम्यं रत्नचञ्चुमनोहरम् ॥ ४९ ॥

विचित्रमणिमाणिक्यचरणं चारुचञ्चलम् ।
तं दृष्ट्वा चाद्भुततमं खगं कपटवेशिनम् ॥ ५० ॥

मुमोह मनसा बाला लोभात्तस्याभिलाषुका ।
तस्या: पुर: स विहगो मुहु: पर्युप्लवन् भुवि ॥ ५१ ॥

लोभयन् हृदयं चैव हस्तग्राह्य इवाभवत् ।
उत्प्लुत्योत्प्लुत्य धरणौ तिष्ठन् मायाखग: खल: ॥ ५२ ॥

अग्रेऽग्रे तां क्रमान्निन्ये यत्र सान्द्रलतावनम् ।
विवेश तत्र सा बाला स्वर्णपक्षिकृतस्पृहा ॥ ५३ ॥

विनिवार्य सखीवृन्दं खगोच्चाटनशङ्कया ।
आसीद्रहोगता चापि दुर्दैवेन प्रचोदिता ॥ ५४ ॥

दृष्ट्वा रहो गतां बालां तां चिरेण कृतस्पृहाम् ।
रूप प्रकाशयामास राक्षसो जनभीषणा: ॥ ५५ ॥

तामादाय बलात्तन्वीं रुदन्तीं भयविह्वलाम् ।
व्योममार्गेण सम्प्राप्त: स्वावासं गह्वरं वनम् ॥ ५६ ॥

अतस्तेऽहं जनकजे बोधयामि पुन: पुन: ।
न विश्वसैनं सौवर्णं मृगमज्ञातमानसम् ॥ ५७ ॥

असमीक्ष्यक्रिया हन्ति यशो विद्यां बलं धियम् ।
समीक्ष्यकारिणः सर्वे मोदन्ते सुखिनोजनाः ॥ ५८ ॥

एतन्मयोक्तं वचनं हितं ते राजेन्द्रपुत्रि प्रतिभान्वितायै ।
न लङ्घनीया च मम त्वदिष्टस्पृहाप्रपूर्तिर्भण यत् करोमि ॥ ५९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे श्रीरामकृतपियाप्रबोधो नामैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

*

पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

उपदिष्टापि सा पत्या जानकी हितकारिणा ।
भाव्यर्थवशनिर्बद्धा मुहुरूचे निरस्य तत् ॥ १ ॥

अलं ते शङ्कया नाथ किमेवं विप्रभाषसे ।
को मां वञ्चयितुं शक्तस्त्वयि जाग्रति धन्विनि ॥ २ ॥

आलस्याच्छङ्कया वापि त्वमेवं विप्रभाषसे ।
उभे अपि प्रिय भवत्यनर्हे धीरधन्विनि ॥ ३ ॥

ममाभिलाषपूर्तिस्ते न कदापि कृता न च ।
प्रदेह्यमुं स्वर्णमृगं मह्यमानीय कामद ॥ ४ ॥

अपि नैवंविधं वस्तु पुनर्लभ्यं कदाचन ।
त्वं नावगणयेः कान्त लोकोत्तरगुणं त्विमम् ॥ ५ ॥

मनोहरोऽयं हरिणो वने क्रीडनको मम ।
भविष्यति विशेषेण त्वं चेदानेष्यसि प्रिय ॥ ६ ॥

समानयैनं विध्वापि विचित्रगुणविग्रहम् ।
सौवर्णमेणमतुलं रमणीयतमाकृतिम् ॥ ७ ॥

न त्वादृशो महावीरः स्वभार्याकामपूरणे ।
कच्चिद्विलम्बते कान्त समर्थः सर्वकर्मसु ॥ ८ ॥

प्रत्येयमस्य हृदयं किमर्थं नु मया पशोः ।
करिष्यते च किमयं विप्रियं मम तेऽन्तिके ॥ ९ ॥

वराकः पशुजातीनां हरिणो नाम संततम् ।
हीनसारस्तुच्छतनुः का शङ्का नाम तादृशात् ॥ १० ॥

आलस्यतः शङ्कया वा महान स्वार्थो विहन्यते ।
उभे अपि नरो हित्वा यतेत स्वार्थसिद्धये ॥ ११ ॥

उन्मूलितान्तः शङ्कानामनालस्यभृतां नृणाम् ।
उपसीदन्ति सकलाः सम्पदः स्वेष्टसम्भृताः ॥ १२ ॥

मृगोऽयं स्वर्गवास्तव्यः स्वर्णरत्नमयोऽखिलः ।
स्वर्गङ्गातीरसस्याशी केलिकृन्नन्दने वने ॥ १३ ॥

क्रीडनं स्वर्गयोषाणां सर्वाश्चर्यनिकेतनम् ।
अलभ्यो मानुषे लोके दैवाद्धि समुपागतः ॥ १४ ॥

कस्त्यजेदेनमालस्यशङ्कोपहतचेतनः ।

अतो नैनमुपेक्षस्व मदभीष्टैकसाधनम् ॥ १५ ॥

इति प्रियावचः श्रुत्वा लज्जासं रम्भमध्यगः ।
राम आकारयामास लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥ १६ ॥

पुरोगतं च सौमित्रिं भक्तिप्रह्वं कृताञ्जलिम् ।
उवाच रभसाद् रामो भाविताशेषगोचरः ॥ १७ ॥

पुरस्तात्पश्यसि भ्रातरेनं स्वर्णतनुं मृगम् ।
चित्ते कामयते चैनं जानकी कौतुकान्विता ॥ १८ ॥

यावद्यानयाम्येनं जातिप्रकृतिचञ्चलम् ।
जीवन्तं वापि हत्वा वा विचित्रगुणविग्रहम् ॥ १९ ॥

तावत्त्वं प्रयतो भूत्वा मत्प्रियायाः समीपगः ।
नूनं स्थास्यसि सौमित्रे घोरेस्मिन् निर्जने वने ॥ २० ॥

स्त्रीस्वभावसुसिद्धोऽस्याहठोऽयंबलवत्तरः ।
सुवर्णहरिणस्यास्य संग्रहे खलु वर्तते ॥ २१ ॥

प्रियाभिलाषपूर्तिश्च न जातु न कृता मया ।
अत आत्तधनुर्बाणः प्रयाम्येनमहं मृगम् ॥ २२ ॥

त्वय्यत्र वर्तमाने तु निश्चिन्तहृदयोऽस्म्यहम् ।
मा पुनस्त्यज सौमित्रे देशमेनं कदाचन ॥ २३ ॥

अत्याहितोऽपि कार्ये त्वं प्रगुणं मद्वचः स्मरन् ।
नेतः प्रयास्यसि क्वापि सौमित्रे मदसुप्रियः ॥ २४ ॥

सावधानो धनुर्धारी संहितैकेषुरूर्जितः ।
तिष्ठत्वमिह सौमित्रे यावदायान्यहं जवात् ॥ २५ ॥

प्रायोरक्षोभिरस्माकं जातो वैरतरुर्महान् ।
यस्यमूलं शूर्पणखानासाकर्णनिकृन्तनम् ॥ २६ ॥

सा स्वसा दशवक्त्रस्य भुवनेशाभिमानिनः ।
तदर्थे रक्षसां कोट्यः प्राणांस्त्यक्त्वा दिवं गताः ॥ २७ ॥

रावणेन श्रुतं प्राय इदंवृत्तं भविष्यति ।
अतो दुरात्मना तेन कार्यैत्रापकृतिर्मम ॥ २८ ॥

स्थानमेतच्च संचारो रक्षसामेव संततम् ।
भार्या च सततं रक्ष्या मन्दाक्षव्यय शङ्कितैः ॥ २९ ॥

महच्च नः कुलं भ्रातर्मान्धातृसगरादिभिः ।
अकीर्तिर्मलिनं जातु न भवे क्रियतां तथा ॥ ३० ॥

स्त्री नामपुरुषस्यास्य लज्जाजगति शंतमा ।
तस्याः संगोपने यानः कर्त्तव्योऽवहितात्मभिः ॥ ३१ ॥

न जातु निर्जनेस्थाने स्थापनीया वराङ्गना ।
गुप्ताश्च प्रकटाश्चापि नास्याः कत्यपहारकाः ॥ ३२ ॥

गृहस्थस्य तु वै प्राणाः स्त्रियायत्ता भवन्ति हि ।
अस्यामपगतायां किं प्राणैर्वा जीवितेन वा ॥ ३३ ॥

रक्षणीया च पुरुषैः सर्वदेशेषु सर्वदा ।
प्राणैर्वापि धनैर्वापि भार्या स्वात्मवदुत्तमा ॥ ३४ ॥

गृहस्थस्य यथैवात्मा तथा भार्या गरीयसी ।
रक्षणीया सुनियतमापद्यपि विशेषतः ॥ ३५ ॥

नापद्यपि स्त्रियं जातु समुपेक्षेत मानवः ।
सा ह्यस्य प्राणसदृशी सर्वापच्छेदकारणम् ॥ ३६ ॥

आपदः किल नीयन्ते स्त्रीसहायैर्मनस्विभिः ।
उच्छिद्यन्तेऽखिला यासु सुहृद्बन्धुसुतादयः ॥ ३७ ॥

पुनर्धनं पुनर्भृत्याः पुनः सखिसुहृज्जनाः ।
न पुनः प्राप्यते लज्जा स्त्रीरूपेण व्यवस्थिता ॥ ३८ ॥

धर्मस्य साधनं चापि कुलस्त्री गृहमेधिनाम् ।
उच्छिद्यन्तेऽखिला धर्माः स्त्रीषु नष्टासु लक्ष्मण ॥ ३९ ॥

लौकिकं वैदिकं वापि यत्कर्म क्रियते जनैः ।
स्त्रिया सहैव तन्नित्यमित्याज्ञा पारमेश्वरी ॥ ४० ॥

आश्रमेभ्यश्च सर्वेभ्यो गृहमेधी विशिष्यते ।
गृहं च गृहिणीरूपं तस्माद्रक्षेत तां सदा ॥ ४१ ॥

स्त्रिय एवं नृणां प्राणाः स्त्रिय एव धनानि च ।
स्त्रीषु नष्टासु सौमित्रे किं तैः किल सुरक्षितैः ॥ ४२ ॥

समक्षे तु स्वयं रक्षेत्पतिरेवावधानतः ।
असमक्षे स्वसदृशैर्विश्वस्तैस्त्वादृशैर्हितैः ॥ ४३ ॥

मातरं पितरं वापि भ्रातरं तनयं तथा ।
स्त्रीरक्षायां नियुञ्जीत पुरुषं वा कुलोद्वहम् ॥ ४४ ॥

दुष्टेभ्यः कितवेभ्यश्च पिशुनेभ्यश्च निर्जनात् ।
स्त्रियो रक्ष्याः सदा पुम्भिर्न प्रमाद्येत कर्हिचित् ॥ ४५ ॥

बालां तज्जनको रक्षेद्युवतीं तत्पतिः पुनः ।
वृद्धां तत्संतती रक्षेन्न स्त्री स्वातन्त्र्यभाजनम् ॥ ४६ ॥

यत्र स्वतन्त्रता स्त्रीणां नष्टप्रायं हि तत्कुलम् ।
न सतीति च वृद्धेति स्त्रीणां कार्यमुपेक्षणम् ॥ ४७ ॥

सतीमप्यसतीं कुर्युः केचिद्धूर्ताः प्रसंगतः ।
कामिनां संगमात्रेण स्त्रियो दुष्यन्ति सर्वथा ॥ ४८ ॥

अथो यदि न दुष्येयुः स्वसत्त्वेन व्यवस्थिताः ।
बहुभाषी तु लोकोऽयं कलङ्कपति सर्वथा ॥ ४९ ॥

वर्षीयसीति नोपेक्ष्या स्त्री कचित्कुशलार्थिभिः ।
बहुभाषी यतो लोकः किं न वक्ति विडम्बयन् ॥ ५० ॥

कस्यचिद्वणिजो भार्या कामरूपे किलास ह ।
वर्षीयसी प्रजाहीना धनधान्यसमृद्धिनी ॥ ५१ ॥

धनगृध्नुः पतिस्तस्या देशाद्देशान्तरं व्रजन् ।
वृद्धोऽपि नोपरमते व्यापाराद्धनसंग्रहात् ॥ ५२ ॥

प्रजाहीनस्य वृद्धस्य योगक्षेमवतः सखे ।
विडम्बनाय समभूद् व्यापारो धनसंग्रहः ॥ ५३ ॥

असन्तस्तस्य भ्रातृव्याः कथंचिद्दूषणोद्यताः ।
असतीं कल्पनां चक्रुः सा लोके पदमादधात् ॥ ५४ ॥

अहो इयं वणिग्भार्या सिद्धमन्त्रप्रभावतः ।
दिवा वर्षीयसी साधु लक्ष्यते प्रेक्षिभिर्जनैः ॥ ५५ ॥

रात्रौ तु जाततारुण्या रमते परपूरुषैः ।
वञ्चयित्वा पतिं चैषा वृद्धं प्रावासयद्गृहात् ॥ ५६ ॥

इति लोकापवादेन तद्भ्रातृव्यकृते न हि ।
सतीत्वं नाशितं तस्याः स्त्रिय आजन्मसंचितम् ॥ ५७ ॥

अतः कथमपि स्त्रीणां स्वातन्त्र्यं वा रहःस्थितिः ।
न कार्या श्रेय इच्छद्भिः कलंकभयशङ्कितैः ॥ ५८ ॥

स्त्रीनाम भाजनं प्रोक्तं यशसोऽयशसस्तथा ।
रक्षिता तु यशोधत्ते परं धत्ते ह्युपेक्षिता ॥ ५९ ॥

दुष्प्रमार्ज्यः कलङ्कश्च कुले स्त्रीव्यभिचारजः ।
अद्यापि गर्हयन्त्येव लोके दारान् बृहस्पतेः ॥ ६० ॥

वयमापद्गता भ्रातर्विप्रयुक्ताश्च बन्धुभिः ।
स्त्रीयुक्ताः सततं चैव परदेशनिवासिनः ॥ ६१ ॥

कदा किलापदं तीर्त्वा पूर्वेषां पुण्ययोगतः ।
क्षेमवन्तो गमिष्यामः स्वगृहान्निर्जितारयः ॥ ६२ ॥

इति शङ्के दिवारात्रं कालाद्वै विघ्नभूयसः ।
विचरन्ति सदा दुष्टा रन्ध्रान्वेषणतत्पराः ॥ ६३ ॥

सिद्धमन्त्रो न विश्वस्यो न विश्वस्यः सुतोऽर्भकः ।
न विश्वस्यो निधिः प्राप्तो न विश्वस्या वराङ्गना ॥ ६४ ॥

अपक्वः किलसार्थोऽयं स्त्रीणां परपदस्थितौ ।
दैवेनैव हि निर्वाह्यो भाग्यवान् विरलो जनः ॥ ६५ ॥

अर्थं साधयतः पुंसो भूयांसो विघ्नसम्भवाः ।
अनुकूलेन दैवेन तेभ्य उत्तार्यते जनः ॥ ६६ ॥

अहो वयं राजपुत्राः क्व तावत्सुखसंश्रयाः ।
क्व चेयं दुःस्थितिर्भ्रातर्दैवं किं न करोति हि ॥ ६७ ॥

इत्युक्त आर्येण कृतावधानो नयं सुमित्रातनयो निशम्य ।
कृताञ्जलिर्भक्तिविनीतवेशः प्रत्यूचिवांस्तच्चरणाहिताक्षः ॥ ६८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सीतारक्षण-सम्प्रयोगोनाम पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५०॥

•

एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

लक्ष्मण उवाच

यदाह मतिमानार्यस्तत्तथैव निभाल्यते ।
अनुकूलेन दैवेन कार्यं कुशलमेव नः ॥ १ ॥

न विपद्भ्यो भयं चार्य मन्येऽहं त्वत्प्रसंगतः ।
त्वदाज्ञाभङ्गजा भीतिर्महती किलमद्धृदि ॥ २ ॥

सोऽहमाजन्मभक्तस्ते प्रपन्नस्त्वत्पदाब्जयोः ।
यथानुशास्ति मामार्यः करिष्यामितथान्वहम् ॥ ३ ॥

तव देव्याश्च येनेष्टं तन्मे कार्यमतन्द्रितम् ।
यदिष्टं तद्विधातव्यमहमाज्ञापरः सदा ॥ ४ ॥

मयि तिष्ठति निस्तन्द्रे त्वदाज्ञापरमे प्रभो ।
न शङ्कनीयं किमपि विधेश्च किमुतान्यतः ॥ ५ ॥

तव प्रतापतश्चार्य सज्जीकृतधनुर्धरः ।
रुद्रादपि च नाशङ्के भुवने किमुतान्यतः ॥ ६ ॥

साधयेष्टं प्रियाया यदहं तिष्ठामि रक्षणे ।
सनाथस्त्वत्प्रतापेन निर्भयश्चैव सर्वदा ॥ ७ ॥

मामाज्ञापय वा स्वामिन् प्रियाप्रार्थितसिद्धये ।
नाहमाज्ञामिहार्यस्य कदाप्यत्येमि सर्वथा ॥ ८ ॥

दृष्ट्वा स्वर्णमृगं काम्यमपूर्वां व्यक्तिमीदृशीम् ।
साभिलाषा यदा देवी द्रुतं देहि रघूद्वह ॥ ९ ॥

त्वत्प्रतापभरन्यस्तसमस्तार्थौघसाधनः ।
अहं तिष्ठामि सततं त्वदाज्ञापालनव्रते ॥ १० ॥

का ते विपज्जगन्नाथ का च रक्षाप्रयासिता ।
यदाज्ञायां स्थितो नित्यं मादृशः सेवको जनः ॥ ११ ॥

दैवं तु शङ्कनीयं स्यात्सत्यं खलु भवद्वचः ।
तदपि त्वय्यनुकूलेऽनुकूलं स्थातुमर्हति ॥ १२ ॥

न दैवमतिवर्त्तेत भवन्तं रघुपुङ्गव ।
सत्यसन्धं दयासिन्धुं दीनानाथं जनप्रियम् ॥ १३ ॥

एक एव त्वदाज्ञातोजगज्जेतुमहं क्षमः ।
का शङ्का विघ्नकोटिभ्यस्त्वयिजाग्रति मूर्च्छनि ॥ १४ ॥

अभिलाषः स्वप्रियाया न विच्छेद्यः कदाचन ।
स्वयं वाज्ञापरेणैव मया वा साधय प्रभो ॥ १५ ॥

इति भक्तस्य सौमित्रेर्निशम्य रुचिरं वचः ।
ऊचे संनिधिगां सीतां गच्छन् रघुकुलोद्वहः ॥ १६ ॥

यामि स्वर्णमृगं देवि त्वदभीष्टार्थसिद्धये ।
त्वं स्थास्यसीह नियतं सौमित्रेः सन्निधौ सति ॥ १७ ॥

भक्तो मम प्रियश्चासौ प्रह्वो हृदयरोचनः ।
न कर्तव्यः क्षणमपि दूरगः स्वसमीपतः ॥ १८ ॥

यावदायामि सौवर्णं मृगमाहृत्य जानकि ।
तावदाश्रमदेशोऽयं निर्जनो न विधीयताम् ॥ १९ ॥

मा प्रेषयकदाचित्त्वं लक्ष्मणं मद्गवेषणे ।
स्वयमेवाहमायास्ये हत्वा स्वर्णमृगं बलात् ॥ २० ॥

नापि चिन्ता मद्विषये त्वया कार्या विदेहजे ।
इत्युक्त्वा भगवान् रामो वरः कारणमानुषः ॥ २१ ॥

मृगस्य वर्त्मानुसरन् मायाकल्पितवर्ष्मणः ।
आकर्णाकृष्टकोदण्डसंहितेषुः प्रतापवान् ॥ २२ ॥

आयान्तं राममालोक्य सोऽविशद्गह्वरं वनम् ।
तरुगुल्मलताकीर्णं झिल्लीझंकारभीषणम् ।। २३ ।।

तदनुप्रययौ रामो धावमानो धनुर्धरः ।
महान्तं खलु पन्थानमतिक्रम्य वनेऽविशत् ।। २४ ।।

पुरः स्वर्णमृगोऽधावन्माया कल्पितविग्रहः ।
तमन्वधावत्काकुत्स्थः प्रस्वेदपटलावृतः ।। २५ ।।

क्षणात्पुरः क्षणात्पश्चात्क्षणाद्वामे च दक्षिणे ।
परिभ्रमन् मृगोऽरण्ये भ्रामयामास राघवम् ।। २६ ।।

कूटमायामुपाश्रित्य संगतो राक्षसः खलः ।
नितान्तं खेदयामास वने कण्टकसंकुले ।। २७ ।।

इतस्ततस्त्वरायुक्तो रामो मृगमनुद्रुतः ।
अश्रामत् स्वेदसंयुक्तः शिथिलाशेषविग्रहः ।। २८ ।।

ततश्चुकोप हृदये राघवः परपक्षभित् ।
पदानि कानिचिद् भूयो धावित्वोच्चैर्जवेन सः ।। २९ ।।

क यास्यसीति प्रसभमाक्षिप्य वचसाखलम् ।
आराद्विज्ञाय सम्प्राप्तं मायास्वर्णकुरङ्गकम् ।। ३० ।।

आकर्णाकृष्टकोदण्डनिमुक्तेन महेषुणा ।
बिभेद हृदये तस्य संक्रुद्धो रघुनन्दनः ।। ३१ ।।

भित्त्वा मृगतनुं बाणो भिन्नवान् राक्षसीं तनुम् ।
यावन्मृगतनुं हित्वा प्रयाति स दुराशयः ।। ३२ ।।

धावमानो वने भीतो रामवाणाग्नितेजसा ।
तावदेव समुद्विद्धो मारीचो नामराक्षसः ।। ३३ ।।

मायामयी मृगतनुः सद्योऽगच्छदलक्ष्यताम् ।
राक्षसी सा तनुस्तस्य पुरस्तात्समदृश्यत ।। ३४ ।।

भिन्नो राघववाणवज्रपतनान्मारीचनामा खलो-
मुञ्चन्नूनमसूनसूयितमना हा लक्ष्मणेत्युद्धरम् ।
त्रिःशब्दं कृतवान् निशम्य नितरां यं पर्णशालागता
सीता पञ्चवटीवने दुरुदितैः सीतातुदद्देवरम् ।। ३५ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे मायामृगमारीचवधो नामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१५१।।

*

द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

हा लक्ष्मणेति त्रिःशब्दं निशम्य जनकात्मजा ।
अतीवोद्भ्रान्तहृदया बभाषे देवरं सती ॥ १ ॥

श्रीसीतोवाच

श्रुतस्त्वयाऽऽर्तशब्दोऽयं सौमित्रे भीतिकृन्मम ।
अनेनार्तरवेणाहं शङ्के प्रोद्विग्नमानसा ॥ २ ॥

शमस्ति नैव भ्रातुस्ते ज्येष्ठस्यात्र घने वने ।
नानादुःसत्त्वसदने रक्षोगणसमावृते ॥ ३ ॥

कोऽन्यस्त्वामिह कान्तारेः विषमे निर्जने वने ।
सम्भालयेदेवमार्तो नूनं तर्कय देवर ॥ ४ ॥

आर्यस्ते मृगयां यातस्तमेवानुद्रुतो मृगम् ।
मोहनं काञ्चनमयं मम वाक्यानुबन्धतः ॥ ५ ॥

केनापि दुष्टसत्त्वेन धर्षितः काननेऽत्र सः ।
नालम्बते मनो धैर्यं शृण्वन्त्या मम तं रवम् ॥ ६ ॥

अहो हि मन्दभाग्याहं कथमेकाकिनं प्रियम् ।
वने सम्प्रेषितवती सुवर्णमृगलोभतः ॥ ७ ॥

न तत्र कुशलं प्रायो यत्रास्ते वल्लभो मम ।
तर्कयामि मुहुश्चित्ते ध्वनिश्रवणशङ्किता ॥ ८ ॥

शीघ्रं त्वं गच्छ सौमित्रे तत्रैव वचनान्मम ।
आर्यस्तव गतो यत्र दुःसत्त्वबहुले वने ॥ ९ ॥

यस्त्वामापद्गत इदमार्तं वचनमूचिवान् ।
तमनुत्वरितं याहि बन्धुकृत्यमनुस्मर ॥ १० ॥

अभ्युद्धरेद्य आपद्भ्यो ध्रुवं बान्धवमात्मनः ।
स हितः स्वजनो बन्धुर्नेतरो यस्तटस्थवत् ॥ ११ ॥

श्रुत्वा जनकजावाक्यं लक्ष्मणो धीरमानसः ।
उवाच भ्रातुरार्यस्य वीर्यमाहात्म्यवेदकः ॥ १२ ॥

मैवं शङ्क स्व मनसा कर्हिचिज्जनकात्मजे ।
क आर्यं धर्षयेल्लोके सदेवासुरमानुषे ॥ १३ ॥

रक्षोभिरसुरैर्मर्त्यैर्गन्धर्वैर्मानुषैः सुरैः ।
नार्यं आक्रमितुं शक्यस्तेजसाप्रतिमो महान् ॥ १४ ॥

धनुर्मात्रद्वितीयोऽसौ ससुरासुरमानुषम् ।
जगज्जेतुं सुपर्याप्त आत्मनाप्रतिमद्युतिः ॥ १५ ॥

अपरिच्छेद्यवीर्योऽग्रमार्यस्त्रिभुवने जनैः ।
नैवान्यजनसाम्येन शङ्कनीयो महाभुजः ॥ १६ ॥

शमयेत्पावकं दीप्तं समुद्रमपि शोषयेत् ।
सुमेरुमपि वाणैद्रांग् भित्त्वा दिशि दिशि क्षिपेत् ॥ १७ ॥

महीमपि शरैर्भिन्द्यात्पञ्चाशत्कोटियोजनाम् ।
क्रुद्धः कालमपिक्रुद्ध द्रावयेद्द्राक् स्वतेजसा ॥ १८ ॥

अज्ञातात्मबलोदर्को जनैः सामान्यदर्शिभिः ।
विचरत्यवनीमार्यो यशोभिर्भूषयन् दिशः ॥ १९ ॥

मा पुनस्तत्र शङ्किष्ठा एवं देवि पराभवम् ।
अमेयबलवीर्यस्य कः पराभविता भवे ॥ २० ॥

गणयेदपि यस्तारा दिव उच्चावचास्तथा ।
विमायादपि दैवेन पार्थिवानि रजां स्यपि ॥ २१ ॥

न सोऽपि रामवीर्याणि जनः संख्यातुमर्हति ।
अहो वाग्देवताप्यस्य गुणानां पारमेति न ॥ २२ ॥

इति विज्ञाय देवि त्वं मा शङ्किष्ठा रघूद्वहे ।
नियतेरपि चैवार्यं नियतिः स्वयमीश्वरः ॥ २३ ॥

इत्युक्तवति सौमित्रौ सीता सामर्ष मानसा ।
शब्दादधीरहृदया पुनरूचे भयान्वितम् ॥ २४ ॥

सत्यं जानाति हि भवान् वीर्यं स्वभ्रातुरीदृशम् ।
अहं त्वधीरहृदया शङ्कयाम्यशुभं महत् ॥ २५ ॥

हा लक्ष्मणेति त्रिःशब्दं श्रुत्वार्तस्य भृशं वने ।
सीदन्ति मम चाङ्गानि शुष्यतीव मुखं मम ॥ २६ ॥

मनो मे दह्यते शोकाद् व्यथा मे परिवर्द्धते ।
सम्भावयामि न शुभं तवार्यस्याद्य लक्ष्मण ॥ २७ ॥

शब्दश्रवणमात्रेण विलुप्ता मे मनोधृतिः ।
अद्यापि नागतश्चैव रघूणां वल्लभो वनात् ॥ २८ ॥

तन्निमित्तं न जानामि कुतो वा स विलम्बितः ।
तर्कयन्ती चिरेणाहं मग्ना शोकमहोदधौ ॥ २९ ॥

दूरं गतो वा प्राणेशो लब्धः स्वर्णमृगोन वा ।
वने कृतं वा किमपि दुष्टसत्त्वेन केनचित् ॥ ३० ॥

मृगानवाप्तिलज्जातोऽथवा क्वापि विलम्बितः ।
इति चिन्ताकुलैवाहमश्रौषं तादृशं ध्वनिम् ॥ ३१ ॥

ततोऽपि किल जीवामि पत्युरार्तिं विजानती ।
किं नु कुर्यामहं मूढा शोचामि हठमात्मनः ॥ ३२ ॥

येन सम्प्रेषितोऽरण्यमेकाकी प्राणवल्लभः ।
किं नु भावि न जानामि शुभं नोपलभेऽद्य वै ॥ ३३ ॥

वामो मेऽद्य विधिर्मन्ये क्व तं दयितमाप्नुयाम् ।
गच्छ लक्ष्मण तत्रैव मा चिरं शीघ्रमानय ॥ ३४ ॥

भुजमूलं तु सव्यं मे स्फुरतीवाद्य भूरिशः ।
तथैव सव्यं चक्षुर्मे किं नु वक्ष्यत्यमङ्गलम् ॥ ३५ ॥

अथापि धैर्यमालम्ब्य स्थितोऽसि बत देवर ।
न वै प्रयासि त्वरितं भ्रातृचिन्तासमाकुलः ॥ ३६ ॥

विपन्नोऽयं स्मरत्यार्यः स उदासीनवद्भवान् ।
स्थितोऽसि तत्र नोपैषि किं नु दुःखमतः परम् ॥ ३७ ॥

हा लक्ष्मणेति त्रिः प्रोच्य स इदानीं न भाषते ।
इति मे स्फुटतीवान्तर्मनः किं नु भविष्यति ॥ ३८ ॥

इत्याकर्ण्य स्त्रीस्वभावोदितं तत्तस्या वाक्यं नैम्यभूमीन्द्रपुत्र्याः ।
आर्यस्याज्ञां संस्मरन् धीरचेता ऊचे वाचं श्रीसुमित्रातनूजः ॥ ३९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे मैथिलीहृदयाशङ्कितं नाम द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५२॥

*

त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

लक्ष्मण उवाच

भूय उच्चैर्वदन्त्येवमुद्वेजयसि मामपि ।
वीरेन्द्रपत्निनैतत्तेऽभ्युचितं वेद्मि भाषितम् ॥ १ ॥

धैर्यमालम्ब्य तिष्ठस्व स्मर वीर्यं महात्मनः ।
एकाकिना हता येन कोटयो रात्रिचारिणाम् ॥ २ ॥

खरश्च दूषणश्चैव त्रिशिराश्च महाबलः ।
येऽन्ये रावणदायादमुख्याः कोटिनिशाचराः ॥ ३ ॥

तेऽस्याप्रमेयवीर्यस्य बाणवह्नेः पतंगताम् ।
प्रययुस्तवपश्यन्त्याः स आर्यः केनजीयताम् ॥ ४ ॥

पुनः पुनर्मयोक्तापि प्रतीतिं नावलम्बसे ।
मोहिता शब्दमात्रेण किमधीरमना अभूः ॥ ५ ॥

कथं न्वितोऽहं गच्छामि भ्रातुर्वीर्यस्य तत्त्ववित् ।
एकाकिनीं विहाय त्वां घोरेऽस्मिन् निर्जने वने ॥ ६ ॥

आर्यस्यास्य पराधीनः कथं गच्छामि जानकि ।
एतत्ते नोचितं बक्तुमतः परम पार्थकम् ॥ ७ ॥

आज्ञाभङ्गापराधेनभीतोऽहं जनकात्मजे ।
न प्रयास्यामि हित्वा त्वां विषमे निर्जने वने ॥ ८ ॥

किं नु वक्ष्यति मां चार्यो नियुक्तं तव रक्षणे ।
आज्ञाभङ्गं विधापेत्थं यदि गच्छाम्यहं सति ॥ ९ ॥

नाहं स्वतन्त्रोभवितुमर्हामि जनकात्मजे ।
आजन्मनः पराधीनो रामस्यैवास्मि संततम् ॥ १० ॥

अतो नैवं ब्रवीर्भूयस्तव दासोऽस्मि यद्यपि ।
तथापि रामचन्द्रेण स्थापितः सन्निधौ तव ॥ ११ ॥

वनमेतद्धृतं घोरतमैः सत्त्वैरनेकशः ।
क्रव्यादैर्व्याघ्रसिंहाद्यै राक्षसैरतिनिष्ठुरैः ॥ १२ ॥

तत्र त्वैकाकिनीं हित्वा कृत्वा च बहुसाहसम् ।
आर्यस्याज्ञामतीवर्त्य कथं गच्छामि जानकि ॥ १३ ॥

प्रमाण्यं किं नु शब्दस्य यद्वशादेवमातुरा ।
मुहुर्वदसि मां देवी धैर्यं धत्स्व मयोदिता ॥ १४ ॥

पशूनां पक्षिणां चापि सन्तिशब्दा अनेकशः ।
न जाने केन किं चोक्तं श्रुतं हा लक्ष्मणेति ते ॥ १५ ॥

अत्रेतिहासं वक्ष्यामि शब्दभ्रमभवं यथा ।
अस्तिद्रविडदेशे तु मौकुलिर्नाम वाडवः ॥ १६ ॥

तस्य पत्नी दृढमतिः शुल्कानाम्नी पतिव्रता ।
तस्याः पत्यौमहान् स्नेहः सानुबन्धोऽभवत्तदा ॥ १७ ॥

एकान्ते साब्रवीद्वाक्यं प्रतिज्ञापूर्वमादृता ।
नाहमन्यस्त्रिया तुल्या जीवामि त्वयि जीवति ॥ १८ ॥

तवान्यथागतौ भर्त्तः प्राणान् मुञ्चेयमञ्जसा ।
एकदा मौकुलिर्यातः समिधाहरणे वनम् ॥ १९ ॥

अथ कश्चिद्धतः काकश्चाण्डालेन पुराद्वहिः ।
तं ग्रामे जगदुर्लोका मौकुलि[1]र्हत इत्यदः ॥ २० ॥

---

१. "काणूकमौकुली काके" टि० बड़ो० ।

तस्यपत्नीतुशुश्राव शुल्का नाम पतिव्रता ।
श्रुतमात्रे तु वचसि सा प्राणान् सहसात्यजत् ॥ २१ ॥
वनादुपागतस्तस्याः पतिर्दृष्ट्वा तथाविधाम् ।
स्वां भार्यामनुरक्तां तां सोऽपि शोकेन मूर्छितः ॥ २२ ॥
त्यक्तवानचिरादेव प्राणान् स ब्राह्मणोत्तमः ।
अतो ब्रवीम्यहं तुभ्यं शब्दस्य खलु का प्रमा ॥ २३ ॥
जायते च महानर्थः शब्दभ्रमनिबन्धनः ।
अतस्त्वमपि शब्देन न मां प्रेषय काननम् ॥ २४ ॥
एकाकिनीह विजनेस्थास्यसि त्वं कथंतमाम् ।
अतएव नियुक्तोऽहमार्येण तव रक्षणे ॥ २५ ॥
बहूपदेशपूर्वं मामिह स्थापितवान् समम् ।
आर्यः परमधर्मज्ञः सुविश्वस्तो मयि ध्रुवम् ॥ २६ ॥
विश्वासघातं तस्याहं कथं कुर्वीय सम्प्रति ।
तेन मे सुमहत्पापं भवेदत्र न संशयः ॥ २७ ॥
को जानाति कथं वार्यः सुचिरेण विलम्बितः ।
अज्ञाततत्त्वः किं त्वाहं त्यजेयं निर्जने वने ॥ २८ ॥
इति सपदि निशम्य देवरस्य प्रणयवतो वचनं नरेन्द्रपुत्री ।
किमपि भृशमधीरमानसेयं प्रतिवचनं पुनराहरुष्टचेताः ॥ २९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे लक्ष्मणवचनं नाम त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५३॥

*

चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सीतोवाच

यस्य चित्ते महान् स्नेहस्तस्य तापोऽपि वै भवेत् ।
विपन्ने बान्धवजने कस्ते तापोऽस्ति शोकजः ॥ १ ॥
उदासीनवदात्थ त्वं सौमित्रे निष्ठुराशयः ।
मृते वा जीवति भ्रातर्यस्ति ते न विशेषधीः ॥ २ ॥
अहं सुजीवति प्राणपतौ जीवामि निश्चितम् ।
अन्यथागतिमापन्ने प्राणान् मुञ्चेयमञ्जसा ॥ ३ ॥

भवांस्तु खलु दायाद इदमेवाभिलाषुकः ।
राज्यं धनं स्त्रियं चापि हर्तुकामः प्रतीयते ॥ ४ ॥

यत्तथाऽऽर्तस्वरं श्रुत्वा ज्येष्ठस्यभ्रातुरञ्जसा ।
उत्थाय धृतचापस्त्वं धावितोऽसि न लक्ष्मण ॥ ५ ॥

तेन शङ्केऽस्म्यहं त्वत्तोनिर्जनेऽस्मिन् घने वने ।
विपन्ने भ्रातरि ज्येष्ठे किं नु कर्तासि मां बलात् ॥ ६ ॥

इतीवगृध्रुहृदयं धिक्त्वामधमदेवरम् ।
योऽन्यथागतिमन्विदन्नार्यस्यस्थितवानिह ॥ ७ ॥

साहं शून्येऽत्र विपिने पत्यौ यातेऽन्यथागतिम् ।
प्रवेक्ष्ये वह्निमेवापि भवेयं पाणिगा न ते ॥ ८ ॥

तव पापीयसी बुद्धिर्व्यर्थैवेयं प्रतीयते ।
यस्या लोभेन नो यासि साहमग्नौ प्रवेशिनी ॥ ९ ॥

क एवं भ्रातुरार्यस्य श्रुत्वाप्यार्तस्वरं वने ।
तिष्ठेन्निःशङ्कहृदयस्त्वादृशः कठिनाशयः ॥ १० ॥

मन्दभाग्याहमधुना शोचामि कृतमात्मना ।
वञ्चिता स्वर्णकायेन हरिणेन न संशयः ॥ ११ ॥

कतिधाहं नोपदिष्टा पत्या तेन महात्मना ।
क्क शून्येऽत्र वने ह्रीदृक् सुवर्णमृगसम्भवः ॥ १२ ॥

सर्वं दैवकृतं मन्ये निर्बन्धेन विनष्टधीः ।
प्राणेश्वरं प्रेषितवत्येकाकिनमहं तु या ॥ १३ ॥

ब्रह्मोवाच

एभिर्दुरुक्तैःसीताया भाव्यर्थकृतसूचनैः ।
उद्विग्नहृदयोऽतीव लक्ष्मणःशुभलक्षणः ॥ १४ ॥

अरोदीत् करुणं भूयो भक्तिप्रह्वः कृताञ्जलिः ।
उवाचेदं दृशा तस्या ईक्षमाणः पदाम्बुजम् ॥ १५ ॥

लक्ष्मण उवाच

हा देवि मातर्जनकेन्द्रपुत्रि ब्रवीषि मां त्वं कथमेवमद्धा ।
निजे तनूजे न खलु प्रसूर्वा लोकेन्यथाशङ्कितमातनोति ॥ १६ ॥

रामः पिता मे रघुवंशकेतुस्त्वं चापि माता मम राजपुत्रि ।
इतोऽन्यथा चेद्धृदयं मम स्यात् स्वप्नेऽपि मातस्तदहं शपामि ॥ १७ ॥

विपर्ययो वा कालस्य किं न भाषयते जनम् ।
आज्ञाभङ्गोऽस्तु वा भ्रातुरहं गच्छामि सम्प्रति ॥ १८ ॥

दुरुक्तैस्तव हा मातश्छिन्नमर्मास्मि भूरिशः ।
आज्ञाभङ्गमपिभ्रातुः सोढाहं यामि तद्दिशि ॥ १९ ॥

यथा मम भ्रातुराज्ञा तस्यार्यस्य सुवर्मणः ।
तवापि मे तथैवाज्ञा यामि रामान्तिकं ततः ॥ २० ॥

विपर्ययेण कालस्य यत्त्वमुक्तवती हि माम् ।
तद्दोषं क्षालयिष्यामि त्वदाज्ञाकृतिवारिणा ॥ २१ ॥

आर्योऽपि मामितो यातं निर्दोषं ज्ञास्यति स्फुटम् ।
नहि स्वत इतोयामि त्वदाज्ञाधीन एव हि ॥ २२ ॥

ममैव चापराधोऽयं यदार्यं न निषिद्धवान् ।
धनुरुद्यम्य सारङ्गमन्वहं नागमं कुतः ॥ २३ ॥

मयि जीवति भृत्ये हि किमार्यो धावनश्रमम् ।
आसादयेन्मृगमनु जातो वृद्धिव्ययो हि मे ॥ २४ ॥

अतः परं मामनुजानीहि मातर्गन्तुं किलार्यस्य समीपदेशे ।
त्वदाज्ञयाहं रघुपुङ्गवाज्ञामुल्लङ्घ्य गच्छामि न मेऽस्तु दोषः ॥ २५ ॥

किंत्वात्मधनुषः कोट्या कुण्डलीकृतमेतकम् ।
देशं मा देवि लङ्घिष्ठाः कृतोऽयं ते मया पणः ॥ २६ ॥

रक्षोभिरसुरैर्यक्षैर्दुष्टसत्त्वैर्दुरात्मभिः ।
भूतप्रेतपिशाचाद्यैर्देशोऽयं दुर्गमो भवेत् ॥ २७ ॥

एनं देशं त्वमानिष्ठ निःशङ्कं जनकात्मजे ।
वर्तमाने मयि यथा तथारक्षाभविष्यति ॥ २८ ॥

इत्युक्त्वा खलु सौमित्रिः प्रतापनिधिरच्युतः ।
तां भुवं कुण्डलीचक्रे स्वधनुष्कोटिरेखया ॥ २९ ॥

अथ पञ्चवटीवनस्पतीन् समभिष्टूय मुहुर्न्ययोजयत् ।
जनकेन्द्रसुताभिरक्षणे निभृतं तद्वनदेवतामपि ॥ ३० ॥

हे वनस्पतयो देवाः फलदाः पुष्पमण्डिताः ।
यूयं सर्वतरुश्रेष्ठाः शृणुतेदं वचो मम ॥ ३१ ॥

प्रजावती मे जनकेन्द्रपुत्री वीरेन्द्रजाया जननी त्रिलोक्याः ।
युष्मासु भाग्यैरधितिष्ठतीयं संरक्षणीया नितरां भवद्भिः ॥ ३२ ॥

हे अश्वत्थ वनाधीश नारायणसमाश्रयः ।
हे न्यग्रोध तरुश्रेष्ठ जटामण्डितशङ्कर ॥ ३३ ॥

हे धात्रि मालति लते तुलसि श्रीशरूपिणि ।
हे आम्र जम्बूः पनस चाम्पेय रुचिराकृते ॥ ३४ ॥

एते भवन्तः शृण्वन्तु सर्वेदेवस्वरूपिणेः ।
रक्ष्येयं विजनेदेशे युष्माभिर्जनकात्मजा ।। ३५ ।।

युष्यासु संनिधायैनामहं गच्छामि सम्प्रति ।
आर्यस्य संनिधौ तत्र प्रजावत्याः किलाज्ञया ।। ३६ ।।

हे देवि सर्वसत्त्वौघरक्षित्रि वनदेवते ।
इमां रक्षतमां शश्वन्मम भ्रातृवधूं सतीम् ।। ३७ ।।

आर्यो रघुकुलाधीशो युष्माकं क्षेमकारकः ।
मंस्यते ह्युपकारं वः सर्वदैवतसंश्रयः ।। ३८ ।।

अथावसथ्यनिहितमग्निं तुष्टाव लक्ष्मणः ।
रक्षायै भ्रातृजायायाः सर्वदैवतरूपिणम् ।। ३९ ।।

त्वमग्ने सर्वदेवानां मुखं वै हव्यकव्यभुक् ।
त्वयि देवाश्च लोकाश्च वेदाश्चैव प्रतिष्ठिताः ।। ४० ।।

भ्रातुरार्यस्य मे जायां तिष्ठन्तीं विजने वने ।
भवान् रक्षिष्यतितरां रक्षोभ्यो दुष्टसार्थतः ।। ४१ ।।

हुतोऽस्यार्येण सततं मन्त्रतन्त्रत्रयीविदा ।
अतस्तस्य वधूमेनां मोपेक्षस्व हुताशन ।। ४२ ।।

इत्युक्त्वा वनदेवतां वनपतीञ्छ्रेष्ठः सुमित्रासुतो ।
दुर्वाक्यैर्विशिखैर्निजार्यललनाप्रोक्तैः सुतीक्ष्णैर्हतः ।।

देशं कुण्डलितं तमात्मधनुषः कोट्याभिधाय द्रुतं ।
स्कन्धन्यस्तधनुः कटीनिहिततूवीरोऽन्वगाद्भ्रातरम् ।। ४३ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे लक्ष्मणप्रयाणो-नाम चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१५४।।

*

पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

गते तु लक्ष्मणो दूरे भ्रातुरन्वेषणोद्यते ।
आययौ जानकीं हर्तुं मायावी दशकन्धरः ।। १ ।।

तमागतमभिप्रेत्य पलायाञ्चक्रिरे द्रुतम् ।
वानस्पत्याश्च ये देवाः सर्वाश्च वनदेवता ।। २ ।।

अग्निस्तु परिजज्वाल भगवानावसथ्यगः ।
जानक्याः स्थानदानार्थं सर्वदैवत्य आत्मनि ।। ३ ।।

अथ सोऽप्यतिमायावी धनुष्कोट्यन्तरा भुवि ।
प्रवेष्टुमक्षमतमं विज्ञायात्मानमस्रपः ॥ ४ ॥

स वै सुदुर्गमो देशो राक्षसैः खलवृत्तिभिः ।
रामस्याज्ञां भृशं दत्ता लक्ष्मणेन विनिर्मितः ॥ ५ ॥

इत्यसौ मायया भिक्षुर्बभूव कलभाषितः ।
अतिसौम्यतनुर्दृश्यो मनसा तीक्ष्णवृत्तिमान् ॥ ६ ॥

प्राविशत्सहसा पर्णशालाया द्वारिराक्षसः ।
शृण्वन्त्यां खलु जानक्यामुच्चैर्भाषितवान् वचः ॥ ७ ॥

हे देवि भवती भिक्षां ददातु सततव्रता ।
मह्यं दीनाय विप्राय द्वारप्राप्ताय सक्षुधे ॥ ८ ॥

सा श्रुत्वा वचनं भिक्षोर्दीनं करुणमानसा ।
आदाय फलशाकान्नमाजगाम बहिर्गृहात् ॥ ९ ॥

चञ्चलेव तनुदद्योतैर्भासयन्त्याखिला दिशः ।
मुखेन्दुचन्द्रिकावृन्दं विकिरन्ती पुरः पुरः ॥ १० ॥

अथात्मना विनिर्गत्य लीलाकारणमानुषी ।
आवसथ्याग्निमविशत् सर्वज्ञा सर्वकारणा ॥ ११ ॥

भिक्षादानोन्मुखीमेतां मायाभिक्षुरवोचत ।
नाहं प्रचलितुं शक्तः क्षुधा व्याकुलमानसः ॥ १२ ॥

इहैवागत्य मे देहि हे देवि नियतव्रते ।
अभिगम्योत्तमं दानं यत आहुर्मनीषिणः ॥ १३ ॥

अथ सा किल सौमित्रिकुण्डलीकृतदेशतः ।
बहिर्जगाम सर्वज्ञा भिक्षादानार्थमुद्यत ॥ १४ ॥

तामागतां बहिः स्थानाद् रामाज्ञाकुण्डलीकृतात् ।
वीक्ष्य रक्षोऽधिपो मायी चकमे हर्तुमञ्जसा ॥ १५ ॥

अथाविरभवत्तस्य मायिनो रूपमुत्कटम् ।
विंशत्या बाहुभिर्भीमं करालं दशभिर्मुखैः ॥ १६ ॥

आकृष्टरुष्टभ्रुकुटीतरङ्गगणभीषणम् ।
सुभीषणं नभःस्पृग्भिः शिरोमुकुलकोटिभिः ॥ १७ ॥

स्थूलघोणावलीघोरं ज्वलद्विंशतिलोचनम् ।
स्थूलोदरदरीभीमं स्थूलाङ्घ्रिक्षेपदुःसहम् ॥ १८ ॥

दृष्ट्वा रूपं सुदुष्प्रेक्ष्यं तस्य घोरतरं तदा ।
चकम्पे जानकीदेवी राक्षसोऽयमितिस्फुटम् ॥ १९ ॥

तामार्तनादां कुररीमिवोच्चैः स्थूलाश्रुमोक्षां रुदतीं नितान्तम् ।
प्रकम्पमानां जविनानिलेन रम्भामि वादाय करेण सद्यः ।। २० ।।

अंसे निधाय प्रसभं स्मरस्य शरैः पराभूतमनाः स दुष्टः ।
उच्चैः समुत्प्लुत्य नभःपथेन जगाम लङ्काभिमुखं दशास्यः ।। २१ ।।

सा तद्रक्षोंऽसपीठस्था दीपयन्ती दिशो दश ।
मुखचन्द्रचमत्कारिचन्द्रिकाभिर्घनावलीम् ।।
लिम्पन्तीव नभोमार्गे भान्ती विद्युदिव त्विषा ।। २२ ।।

सूक्ष्मारुणां शुकवृतैरङ्गैर्वेपथुशालिभिः ।
तप्तचामीकरप्रख्यैः शोभयन्ती नभःपथम् ।। २३ ।।

कुर्वतीव प्रतिपथं नभश्चाम्पेयकाननम् ।
उच्चैर्विकचमन्दारपुष्पसौरभसम्पदा ।। २४ ।।

वासयन्ती दिशः कृत्स्ना मिलद्भ्रमरसंहतिः ।
मञ्जीरयुगनादेन कटिकाञ्चीरवेण च ।। २५ ।।

कूजयन्ती नभो देशं लतेवालिगणान्विता ।
परस्ताद्विलुलद्वेणीपराभूतभुजङ्गमा ।। २६ ।।

चलानां गतिवेगेन वलयानामपि ध्वनिम् ।
बिभ्रती मरुदालोलललितालकवल्लिका ।। २७ ।।

आवेगात्पीनवक्षोजविपर्यस्तपटाञ्चला ।
स्वाङ्गस्पर्शसमुद्भूतैस्तस्यांसतटकण्टकैः ।। २८ ।।

उद्विजन्ती प्रतिपदं शिरीषाधिकमार्दवा ।
शोचन्ती स्वात्मनः कृत्यं रुदन्ती करुणस्वरा ।। २९ ।।

हा नाथ हा रघुपते हा वीरवर हा पते ।
क्वासि क्वासीति जल्पन्ती निमग्ना शोकसागरे ।। ३० ।।

पुरस्तान्नीयमाना च तेन पापीयसा भृशम् ।
पृष्ठतः परिपश्यन्ती मृगीव चकितेक्षणा ।। ३१ ।।

हा पाप हा दुष्टमते हा रक्षोधम हा खल ।
मुञ्च मुञ्चेति जल्पन्ती मुक्तास्थूलाश्रुमोक्षिणी ।। ३२ ।।

मज्जन्तीवान्धतमसि व्याकुलीभूतमानसा ।
मुहुर्मुहुश्च मूर्छन्ती विलपन्ती मुहुर्मुहुः ।। ३३ ।।

मिलन्ती घनराजीभिः पश्यन्ती व्योमदेवता ।
न भो निकषयन्ती च तनुकाञ्चनरेखया ।। ३४ ।।

शपन्ती तं खलं पापं वमन्ती दुर्वचोविषम् ।
सूचयन्ती मृतिं तस्य वीरेन्द्रात्पत्युरात्मनः ।। ३५ ।।

दुस्तरे शोकपाथोधौ मज्जन्ती मनसा भृशम् ।
खिदयमानैव नितरां निन्ये घोरेण रक्षसा ॥ ३६ ॥

स घोरचेताः करुणाविहीनो दुरुक्तमस्या अवमन्यमानः ।
निजप्रतापोन्नतिजातगर्वो निनाय तां व्योमपथेन मायी ॥ ३७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सीतापहारो नाम पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

*

षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तस्या रुदितमाकर्ण्य दीनमार्तस्वरान्वितम् ।
जटायुर्नाम पक्षीन्द्र आययौ बलवीर्यवान् ॥ १ ॥

पक्षतिद्वयशब्देन दिशो मुखरयन् भृशम् ।
गतिवेगोद्भवैर्वातैः कम्पयन् वनभूरुहान् ॥ २ ॥

सुहृद्दशरथस्यासौ तस्य पुत्रवधूमिमाम् ।
हरन्तं राक्षसं दुष्टं रुरोध पथिवेगतः ॥ ३ ॥

हे राक्षसाधमखल पापीयस्तीक्ष्णमानस ।
हृत्वा मम सुहृत्पुत्रवधूं क्व खलु गच्छसि ॥ ४ ॥

मुञ्च मुञ्चावलामेनां परस्य ललनां सतीम् ।
इत्युक्त्वा तीक्षणया चञ्च्वा भृशं विव्याध राक्षसम् ॥ ५ ॥

हतश्चञ्चुप्रहारेण बज्रेणेव स राक्षसः ।
भृशमुद्विविजे तं च प्रजहार स्वपाणिना ॥ ६ ॥

पुरः पश्चाच्च तं पक्षी वामदक्षिणपार्श्वयोः ।
प्रजहार जवाविष्टश्चञ्च्वा वज्रकठोरया ॥ ७ ॥

स जानकीं वहन्नंसे रावणस्तेन पक्षिणः ।
भृशं व्याकुलितश्चञ्चुचरणाग्रप्रहारिणा ॥ ८ ॥

तस्याङ्गेभ्योऽक्षरद्भूरि रुधिरं तस्य पक्षिणः ।
वलीयसः स्फुरच्चञ्चुचरणाग्रप्रहारजम् ॥ ९ ॥

ततश्चुक्रोध बलवान् राक्षसेन्द्रो दुराशयः ।
मुष्टिभिः प्रजहारैनं वर्षीयां सं विहंगमम् ॥ १० ॥

स भृशं ताड्यमानोऽपि मुष्टिभिर्बलिना खगः ।
यावदात्मबलं तेन युयुधे रक्षसा पथि ॥ ११ ॥

कदाचित्तस्य नेत्रेषु कदाचित्कर्णसंधिषु ।
कदाचित्कक्षयोश्चापि तुतुदे चञ्चुपातनैः ॥ १२ ॥

पक्षाभ्यां वज्रतीक्ष्णाभ्यां विव्यथे वामदक्षयोः ।
तस्योरसि पुनः पद्भ्यां प्रजहार विहंगमः ॥ १३ ॥

यत्र यत्रैव तुदति पक्षी नखरशस्त्रकैः ।
ततस्ततोऽक्षरत्तस्य रुधिरं क्षतसम्भवम् ॥ १४ ॥

रक्षोमुष्टिचपेटाभिरपध्वस्त्वकलेवरः ।
मुमूर्छ बलवान् पक्षी युयुधे च समुत्थितः ॥ १५ ॥

तं पातयित्वा दशकन्धरोऽग्रे यावत्प्रयातः कतिचित्पदानि ।
तावत्समुत्थाय स आत्तचेतनो युद्धं चकारातिबलेन रक्षसा ॥ १६ ॥

मुष्टिभिश्च चपेटाभिः स तेन बलशालिना ।
विलूनपक्षतिश्चक्रे हृतसर्वबलः खगः ॥ १७ ॥

अथासौ न्यपतद्भूमौ क्षीणाशेषबलः खगः ।
कण्ठागतातुरप्राणो युद्धं कृत्वा बलीयसा ॥ १८ ॥

चक्रे दाशरथीं मैत्रीं स गृध्रः कृतनिष्कृतिम् ।
तत्पुत्रजायावैरेणा युद्ध्वा घोरेण रक्षसा ॥ १९ ॥

यावदायास्यति रामः सूर्यवंशविभूषणः ।
तावद्रक्षति प्राणान् स्वान् जटायुर्युधि निर्हतः ॥ २० ॥

इत्थं स तं बलिनं पातयित्वा परिक्षरद्रुधिरौघेन लिप्तः ।
चचाल रक्षोधिपतिः पुरस्तादंसे वहन् राघवधर्मपत्नीम् ॥ २१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे जटायुयुद्धो नाम षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५६॥

*

सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथार्येण समं तत्र सुमित्रातनयो वने ।
संजगामोपावृत्तेन हत्वा मायामृगं खलम् ॥ १ ॥

वीक्ष्य लक्ष्मणमायान्तं रामो दूराद्विशङ्कितः ।
समीपस्थं च तं भूयः पप्रच्छागमकारणम् ।
यथावृत्तं च सौमित्रिः सर्वं तस्मै न्यवेदयत् ॥ २ ॥

ततश्च तावुभौ वीरौ क्षिप्रं प्रचलितौ वनात् ।
स्वाश्रमाभिमुखौ सीतां शङ्कमानौ रहोगताम् ॥ ३ ॥

अथ दूराद्रघुपतिर्ददर्शाश्रममण्डलम् ।
शून्यं प्रियनमाहीनं वृतं काकैः समंततः ॥ ४ ॥

शुष्यत्द्रुमलतागुल्मं रुदद्भिरिवपक्षिभिः ।
कूजद्भिरशुभध्वानं समंतात्परिवेष्टितम् ॥ ५ ॥

पुरस्तात्तप्तपवनागमदुर्दैवसूचकम् ।
सरस्तु मूर्छिताम्भोजमकस्माद्दुःखबोधकम् ॥ ६ ॥

कङ्कैर्गृध्रैर्वायसैश्चभ्रमद्भिर्व्योममण्डले ।
सान्द्रैः पक्षकृतच्छायैः कथितामङ्गलागमम् ॥ ७ ॥

अकस्मान्मौनमालम्ब्य स्थितैरमधुपायिभिः ।
मधुव्रतैः परित्यक्तलतावृक्षप्रसूनकम् ॥ ८ ॥

सरःसु मौनमालम्ब्यस्थितैरविसभक्षणैः ।
कुटुम्बैः कलहंसानां त्यक्तवारिविहारकम् ॥ ९ ॥

पुरस्ताद्दिवसेऽप्युच्चैः रटद्भिः फेरवीकुलैः ।
आक्रान्तं तरुशाखासु रटद्धूककदम्बकम् ॥ १० ॥

चित्तस्योच्चाटजननं मरुता पूतिगन्धिना ।
अत्यर्थमङ्गलप्रायमरुच्यं मनसः स्फुटम् ॥ ११ ॥

उवाच लक्ष्मणं रामो वीक्ष्याश्रमदशामिमाम् ।
पुरस्तादद्यसौमित्रे पश्यस्याश्रमण्डलम् ॥ १२ ॥
अमङ्गलानि चिह्नानि सर्वाण्यत्र विलोकये ।
किं नु मे सूचयिष्यन्ति भ्रातरद्य हते दिने ॥ १३ ॥
वामं च भुजमूलं मे समं वामेन चक्षुषा ।
मुहुः स्फुरति सौमित्रे दर्शयिष्यति किं भयम् ॥ १४ ॥
शुष्यतीव मम स्वान्तं शोको मे परिवर्द्धते ।
त्वक् च मे दह्यत इव किं नु भाव्यमतः परम् ॥ १५ ॥
नूनमत्राश्रमे भ्रातः सीतां पश्यामि नाद्य वै ।
त्वां हित्वा निर्जने देशे तस्थौ सा वञ्चनाय मे ॥ १६ ॥
तया विरहितश्चाहं प्राणांस्त्यक्ष्यामि तत्क्षणात् ।
इतीवामङ्गलं भ्रातरहं पश्यामि दुःसहम् ॥ १७ ॥
एते कङ्काश्च काकाश्च गृध्राश्च व्योममण्डले ।
भ्रमन्तः किं नु वक्ष्यन्ति मम भाग्यविपर्ययम् ॥ १८ ॥

अयमंगारकणमुक् तप्तस्पर्शः समीरणः ।
किं नु मे चित्तसंतापं प्रवक्तीति न बुध्यते ॥ १९ ॥

एते खगा मृगाश्चैव शिवारुतविशङ्किताः ।
रुदन्तइव कूजन्ति किं नु वक्ष्यन्ति मेऽहितम् ॥ २० ॥

तरुगुल्मलतावृन्दं सोद्वेगमिवदृश्यते ।
अन्यामिव दशां पश्याम्यद्य पञ्चवटींवने ॥ २१ ॥

उच्चाटमिव चित्तस्य स्थानमेतत् करोति मे ।
सम्भावयामि भद्रं नो अद्यशून्यायितं जगत् ॥ २२ ॥
उड्डीयत इव स्वान्तं स्थानं भक्षयतीव माम् ।
दिशो भयानकाः पश्याम्यटवीं भूर्यमङ्गलाम् ॥ २३ ॥

इतिब्रुवाणो रघुसार्वभौमोऽटव्यामभद्राणि वितर्कमाणः ।
प्रियान्यथावृत्तिविशङ्किचेता जवादुपेतः खलुपर्णशालाम् ॥ २४ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे पर्णशालागमनो नाम सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥

*

अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

दृष्ट्वा शून्यतमं रामः प्रियाहीनं तमाश्रमम् ।
वायसोलूकगृध्रौघकङ्कपक्षिसमाकुलम् ॥ १ ॥

फेरवीकटुसंरावं मूर्छितद्रुमवल्लिकम् ।
अचैतन्यसमाविष्टो मूर्छितः पतितो भुवि ॥ २ ॥

आर्यं तथाविधं दृष्ट्वा सौमित्रिः साधुलोचनः ।
आनीयाशुहिमं तोयमभ्यषिञ्चन्मुखं प्रभोः ॥ ३ ॥

शनैरुत्थापयामास भ्रातरं प्राणसम्मितम् ।
पश्यन् विरहजां चेष्टां विशीर्णहृदयोऽभवत् ॥ ४ ॥

श्रीराम उवाच

हा प्राणदयिते देवि हा हन्त जनकाङ्गजे ।
हा हन्त चन्द्रवदने हा हा कमललोचने ॥ ५ ॥

हा तन्वि रमणि कासि कासि हा प्राणदायिनि ।
हा हन्त वञ्चितोऽस्म्यद्य त्वया हठपरायणे ॥ ६ ॥

हा कोमलवचोलापे हा कोकिलकलस्वरे ।
हा हन्त कोमलापङ्गि कासि कासि विदेहजे ॥ ७ ॥

कस्यांचिद्वनवल्यां वा कस्मिंश्चिद्वनभूरुहे ।
कस्मिंचिद्वनगुल्मे वा संस्थितासि निलीय किम् ॥ ८ ॥

इतो गतासि हा देवि न जाने क्व गतासि वै ।
वनं गता वा हृदयं गता वासि नृपात्मजे ॥ ९ ॥

कोमलाभ्यामयाङ्क्षाभ्यामालोकय तथैव माम् ।
नापराधमहं किंचिदात्मनो वेद्मि जानकि ॥ १० ॥

तवैवाहं निदेशेन मृगाहरणकर्मणे ।
इतो गतोऽभवं देवि मायावञ्चितमानसः ॥ ११ ॥

को नारण्यं विशेद्देवि मृगयार्थं धनुर्धरः ।
को न स्वर्णमृगं गच्छेज्जीवामास्फाल्य धन्वनः ॥ १२ ॥

को न प्रियतमाभीष्टमाहर्तुं मृगयेत्तराम् ।
को जानाति जनो दैवं यद्रामं वञ्चयिष्यति ॥ १३ ॥

धिग्दैवं मम मन्दस्य धिगद्यतनवासरम् ।
धिङ्गतिं धिङ्मे व्यसनं यतोऽभूद् वञ्चनं मम ॥ १४ ॥

कथं रुष्टासि नो वेद्मि कथं चालक्ष्यतां गता ।
त्वया विना क्षणमपि प्राणान् धर्तास्मि वा कथम् ॥ १५ ॥

हां दैवं प्रतिकूलं मे किमकारणमेव च ।
क्व ताः शुभाशिषो नाम विहिता मे द्विजन्मभिः ॥ १६ ॥

हा पञ्चवटि को वेत्ति चिरेण त्वं समाश्रिता ।
ईदृशीं विपदं घोरां भवती मम दास्यति ॥ १७ ॥

हा हन्त कुञ्जभूयिष्ठे सुभगे वनदेवते ।
मम दौर्भाग्यभारेण जाता त्वमपि दुर्भगा ॥ १८ ॥

हा हा पञ्चवटीवृक्षाः कृच्छ्रे यूयं समाश्रिताः ।
चिरेण पुष्टवन्तः स्म मां विपन्नं फलव्रजैः ॥ १९ ॥

को जानाति विधेस्तत्त्वं विश्वस्तस्य ममेदृशम् ।
प्राणापहारविषमं दुष्फलं किलदास्यथ ॥ २० ॥

हा तुङ्गवीचितरले गोदावरि चिरेण माम् ।
तोयैस्तर्पितवत्यम्ब द्रष्टुं दुःखमिदं महत् ॥ २१ ॥

हा हन्त हृदयात्यर्थं काठिन्यगुणभाजन ।
प्राणेश्यामप्यलक्ष्यायां स्फुटसि द्राक् कथं च न ॥ २२ ॥

आविर्भव प्रियेऽह्नाय वृक्षगुल्मलतावनात् ।
वञ्चयस्यधुना तन्वि किमकारणमेव माम् ॥ २३ ॥

कथं दधाम्यहं प्राणांस्त्वां विना प्राणवल्लभे।
सद्य आविर्भवामुष्मात्सान्द्रपञ्चवटीवनात् ॥ २४ ॥

नादयन्ती पदन्यासैर्नूपुरे कलभाषिणी।
किं नाग्रतो ममोपैषि पुरेव जनकात्मजे ॥ २५ ॥

स्फुरत्काञ्चीकुलक्वाण रणच्चरणनूपुरा।
अये पूर्वमिवात्मानं प्रिये दर्शयसे न किम् ॥ २६ ॥

दर्शयस्व कुरङ्गाक्षि मुखं ते चन्द्रशीतलम्।
ताम्यतस्तव विश्लेषाच्चकोराविव चक्षुषी ॥ २७ ॥

इमां विरहजामार्तिमपूर्वानुभवां मम।
विनाशय प्रिये सद्यो मुखचन्द्रं प्रदर्शय ॥ २८ ॥

म्रियन्ते हि मम प्राणाः स्खलतीव मनो मम।
विगलन्तीव मेऽङ्गानि विरहे तव सम्प्रति ॥ २९ ॥

प्राणेशि स्वस्य हृदयाद् द्राक् काठिन्यमपाकुरु।
दर्शनं देहि मे सद्यो गच्छतोऽसून् निवारय ॥ ३० ॥

हा हन्त स्वर्णहरिणच्छद्मना विधिरेव माम्।
प्रसभं वञ्चयामास को वेत्ति पुनरीदृशम् ॥ ३१ ॥

हा हन्त लक्ष्मण भ्रातस्त्वयि विश्वस्तमानसः।
निधाय प्राणदयितां गतोऽहं मृगहेतवे ॥ ३२ ॥

जवेन स त्वमधुना देहि प्राणप्रियां मम।
नो चेत्त्यक्ष्याम्यहं प्राणानिति मे निश्चितं मतम् ॥ ३३ ॥

आनयस्व प्रियां सद्यः सौमित्रे मां यदीच्छसि।
क्व मे प्राणेश्वरी याता पर्णशालामधिष्ठिता ॥ ३४ ॥

सोढानि किं नु भवता दुर्वाक्यान्यपि लक्ष्मण।
त्वयि विन्यस्य तां यातः कं नु पृच्छामि सम्प्रति ॥ ३५ ॥

को मे प्राणप्रियां तावदपहृत्याशमस्थिताम्।
स्थापयिष्यति तं भित्त्वा सद्य आनय लक्ष्मण ॥ ३६ ॥

योमेऽपहृतवान् प्राणदयितां विपिनादितः।
भित्त्वाहं तस्य हृदयमानेतास्मिशितैः शरैः ॥ ३७ ॥

मही जलं वा तेजो वा मरुद्वा नभ एवच।
वनं वा वनवृक्षो वा वने गुल्मलतापि वा ॥ ३८ ॥

वन्यो वा वनदेवी वा गिरिर्वा भित्तिरेव वा।
देवोऽसुरो मनुष्यो वा यक्षो गन्धर्व एव वा ॥ ३९ ॥

को मे प्राणप्रियः हृत्वा निनाय रहसि स्थिताम् ।
भित्वाहं तस्य हृदयं जवात्सु निशितैः शरैः ।।
आनेतास्मि बलान्नो चेत्स्वत आनीय रातु मे ।। ४० ।।
इति विलपनवाक्यैः क्लिष्ट आर्यस्य तावत्
सपदि गलितवक्त्रश्रीः सुमित्रातनूजः ।।
न किमपि समवोचद्भूरिसं तप्तचेता
विधिविहितमजस्रं मग्नधीः शोचयानः ।। ४१ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे श्रीराममनःशोको नामाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।। १५८ ।।

*

एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ लक्ष्मण ऊचे तं विलपन्तं मुहुर्मुहुः ।
सीतापहारसम्भूतशोकसागरमग्नधीः ।। १ ।।
हा दैवकृत्यं शोचामि दुर्निवारं बुधैरपि ।
त्रैलोक्यस्थापिता वीर येन त्वमपि वञ्चितः ।। २ ।।
हा हा हृदयमद्यापि शतधा न विदीर्यते ।
ईदृशीं घोरविपदमासाद्यापि सुदुस्तराम् ।। ३ ।।
क्व नः कुलं च विमलं क्व चेदं लाञ्छनं महत् ।
यदेव कुरुते दैवं तदेव सहते जनः ।। ४ ।।
दैवस्यापि भवान् दैवं श्रीसूर्यकुलभूषण ।
न जानामि तव क्रीडां ययेदं किलनिर्मितम् ।। ५ ।।
भवान् विलपति श्रीमन् सर्वशोकापहारकः ।
दृष्ट्वा निरवलम्बोऽहं मज्जामि क्लेशसागरे ।। ६ ।।
अग्रे कर्तव्यतामूढं भ्रमतीव मनो मम ।
वीक्ष्य त्वामपि खिद्यन्तं दुःखपारं न याम्यहम् ।। ७ ।।
क्व हेममृग आगच्छेत् क्व देवी स्पृहयेदमुम् ।
क्व भवाननुधावेत क्व चेदं वञ्चनं भवेत् ।। ८ ।।
सर्वं दैवकृतं दृष्ट्वा त्वयिदैवनियन्तरि ।
मनो निरवलम्बं मे शतधेव विशीर्यते ।। ९ ।।

गच्छेयं शरणं यस्य स भवान् शोकसंयुतः ।
किं नु गच्छामि शरणं वीर श्रीमन्नतःपरम् ॥ १० ॥

हा मातर्जानकि कथमात्थ त्वमपि दुर्वचम् ।
भक्ति प्रह्वे मयि तथा जाने दैवाविपर्ययम् ॥ ११ ॥

नाज्ञासिषमहं देवि दैवस्येत्थं विपर्ययम् ।
शतधापि दुरुक्तोऽहं तद्गच्छेय किं न्वितः ॥ १२ ॥

हा वीर रघुशार्दूल पश्यामि त्वां सुदुःखितम् ।
जगच्चान्धन्तमो व्याप्तं किं नु दुःखमतः परम् ॥ १३ ॥

हा नाथ धैर्यमालम्ब्य समुत्तिष्ठ कथंचन ।
अग्रे कर्तव्यतां चैव मूढस्य मम दर्शय ॥ १४ ॥

इत्थं हि खिद्यमानं त्वां वीक्षमाणो रघूद्वह ।
म्रियेऽहं तीव्रशोकेन तं मां पाहि महाभुज ॥ १५ ॥

भवतश्चापि कर्तव्यं भवानेव रघूद्वह ।
जानाति विश्ववन्द्याङ्घ्रे कोऽन्यो ज्ञातुमिह क्षमः ॥ १६ ॥

यदि जीवति लोकेऽस्मिंस्तवप्राणेश्वरी प्रभो ।
क्व तदा वर्तते सा वै भूये एतद्गवेष्यताम् ॥ १७ ॥

अथो यदि न जीवेत् सा किं नु जीवसि त्वं प्रभो ।
अहं च किं नु जीवामि ततो जीवति सा ध्रुवम् ॥ १८ ॥

दैवस्य करणीयं तु दैवमेवार्य वेत्ति च ।
भवांस्तस्य नियन्ता वा तृतीयो नेह दृश्यते ॥ १९ ॥

यदि प्राणांस्त्यजाम्याशु शोकेन तव राघव ।
सापराधोऽपि किं न स्यां सेवालोपविधायकः ॥ २० ॥

तव सेवाभिलाषो मे प्राणान् रक्षति सर्वथा ।
नो चेदीदृग्विधे शोके हृदयं न स्फुटेन्मम ॥ २१ ॥

अथ धिङ्मां तथा देव्या दुरुक्तैर्विद्धमानसम् ।
यस्तवाज्ञायतीवर्त्य तां वने त्यक्तवान् रहः ॥ २२ ॥

तथापि किं न्वहं कुर्यामहमाज्ञाकरः सदा ।
अविशेषेण युवयोरुभयोरपि राघव ॥ २३ ॥

नायासिषं तथा भूयो नियुक्तोऽपि रघूद्वह ।
दुरुक्तशल्यैर्विद्धस्तु जातोऽस्म्यहमधीरधीः ॥ २४ ॥

सर्वं विस्मृत्य वीरेन्द्र त्वामहं गतवान् वने ।
नाज्ञासिषं दैवकृत्यं वञ्चनं मे भविष्यति ॥ २५ ॥

इत्थं विलप्य सौमित्रिररोदीद्भृशमातुरः ।
गर्जयन् काननं सर्वं मृगेन्द्र इव दुःखितः ॥ २६ ॥

ततश्च तावुभौ वीरौ भृशं रुरुदतुर्वने ।
गर्जयन्तौ दिशः सर्वा मृगेन्द्राविव दुःखितौ ॥ २७ ॥

तयोरित्थं प्ररुदतोर्मुक्तास्थूलाश्रुमोक्षिणोः ।
पशवः पक्षिणश्चापि रुरुदुः कानने भृशम् ॥ २८ ॥

रुरोद सा पञ्चवटी झिल्लीझाङ्कारकैतवात् ।
भूरुहाश्चारुदन् सर्वे भ्रमरारावसम्भृताः ॥ २९ ॥

चिरं रुदित्वारघुसार्वभौमः सलक्ष्मणः शोकसमुद्रमानसः ।
दृष्ट्वारदैर्दन्तपटं रुषाक्तः प्रियापहाराधृतधीरुदस्थात् ॥ ३० ॥

उत्थाय तौ पञ्चवटीवनस्थांस्तरूंल्लतागुल्मगणान् समंतात् ।
गवेषयन्तौ प्रतिपत्रशाखं सुदुःखितौ बभ्रमतुर्जवेन ॥ ३१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे श्रीरामलक्ष्मण-विरहावेशो नामैकोनषष्ट्याधिकशततमोऽध्यायः ॥१५९॥

*

षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

जानकीविरहोन्मत्तः स्खलद्बुद्धिगुणोदयः ।
बभ्राम रघुशार्दूलः खिन्नः पञ्चवटीवने ॥ १ ॥

क्वचित्स्खलन् क्वचिद्गच्छन् क्वचिद्धावन् क्वचिद्भ्रमन् ।
क्वचिद्रुदन् क्वचिज्जल्पन् क्वचिन्मौनमुपाश्रयत् ॥ २ ॥

अवीक्ष्यमाणो दयितां पश्यन् शून्यतमं जगत् ।
पर्यटन् संस्थया हीनोऽदीनः खिन्नतमश्च सः ॥ ३ ॥

जगाहे काननं सर्वं प्रियान्वेषणतत्परः ।
पृच्छमानस्तरुलतागुल्मतुङ्गवनस्पतीन् ॥ ४ ॥

अवीक्षमाणः शोकान्तमपारविरहज्वरः ।
पश्यन्नन्धतमोव्याप्ता दिशः शून्यतमा इव ॥ ५ ॥

अन्तःसंतापसंवीतो बहिः श्रान्तकलेवरः ।
गतो गोदावरीं पुण्यां गङ्गां गौतमनिर्मिताम् ॥ ६ ॥

तस्यास्तीरभुवि श्रान्तः पश्यन् प्राणप्रियापदैः ।
अङ्कितं सैकतं रामो मुमूर्छ हृतचेतनः ॥ ७ ॥

तदाननं शीततमैर्गौतमीनीरविन्दुभिः ।
ममार्जखिन्नहृदयो लक्ष्मणः करुणाञ्चितः ॥ ८ ॥

प्रक्षालितमुखस्तेन भ्रात्रा प्राकृतचेतनः ।
कथंचिदुन्मील्य दृशौ तस्थिवान् मौनमाश्रितः ॥ ९ ॥

तमाह लक्ष्मणो नीचैर्भक्तिप्रह्वः कृताञ्जलिः ।
शोकसंतप्तहृदयो बाष्पव्याकुललोचनः ॥ १० ॥

हा राम जगदाराम विश्वसंतापनाशन ।
बधान धैर्यं मनसि स्वीयकृत्यमनुस्मर ॥ ११ ॥

अलं गवेषणायासैरलं पर्यटनश्रमैः ।
अज्ञातस्थानविषय इत्थं त्वमतिखिद्यसे ॥ १२ ॥

यदि विज्ञायते स्थानं यत्र ते प्राणवल्लभा ।
ध्रुवमन्वेषणं कार्यं यत्नोऽपि सफलोभवेत् ॥ १३ ॥

अत आर्य सहस्वामु शोकवेगं सुदुर्धरम् ।
यावत्सम्प्राप्यते देवी प्राणेशी तव जानकी ॥ १४ ॥

स्वर्गे मर्त्येऽथ वा नागलोके गन्धर्व सद्मनि ।
क्व नु सा वर्तते साध्वी देवी जनकभूपजा ॥ १५ ॥

पातिव्रत्यं ध्रुवं तस्याः शक्यं केन विनाशितुम् ।
यत्रास्ति तत्र सा देवी शुद्धैवात्र न संशयः ॥ १६ ॥

यत्नस्तस्याः परिप्राप्तौ कर्तव्यो रघुपुङ्गव ।
यदि बुध्येत तत् स्थानं यत्र सा शुद्धविग्रहा ॥ १७ ॥

वेधनीयो हृदि शरैर्नूनं तदपकारकः ।
ध्रुवमात्मविनाशाय हृता केनापि सा रहः ॥ १८ ॥

इत्थं तो कृतसंविदौ रघुवरौ शोकेन रुग्णाशयौ
तूणी युग्मनिबन्धनोद्धुरकटीदेशौ कृपाणीधरौ ।
सज्जीकृत्य धनुर्युगं जनकजालोकाय वद्धोद्यमौ
हित्वा पञ्चवटीवनं द्रुततरावग्रे समं जग्मतुः ॥ १९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे पञ्चवटीवनत्यागो नाम षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६०॥

*

एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

मार्गे तरुलताश्रेणीर्गुल्मान् नानाविधानपि ।
अन्विष्यमाणो विरही प्रियार्थमतिकातरः ॥ १ ॥

भ्रात्रा सौमित्रिणा युक्तो गुणारूढधनुर्धरः ।
विलपञ्शोकसंवीतः प्रययौ दक्षिणां दिशम् ॥ २ ॥

किंचिद्दूरं ततो गत्वा ददर्श पतितं पथि ।
खगं कण्ठागतप्राणं जटायुं नाम राघवः ॥ ३ ॥

स वै सखास्य तातस्य राज्ञो दशरथस्य हि ।
वर्षीयान् दशवक्त्रेण युद्धवांल्लूनपक्षतिः ॥ ४ ॥

तमब्रवीद्रघुवरः केन ते पक्षसंहृतिः ।
जटायो नितरां लूना पातितश्चासि भूतले ।
राघवेन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा गृध्रवरोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥

इह सीतां हरन्नूनं दशवक्त्रो मयेक्षितः ।
ततोऽहं तेन कृतवान् महद्युद्धं बलीयसा ॥ ६ ॥

यावद्वीर्यबलं राम युद्धवांस्तेन रक्षसा ।
लूनाः पक्षतयः सर्वास्तेन चाहं निपातितः ॥ ७ ॥

पातयित्वा महीपृष्ठे मृतप्रायं स मां बली ।
मुहुर्मया शप्यमानो हृत्वा देवीमितो गतः ॥ ८ ॥

यावत्त्वदागमं राम रक्षिता असवो मया ।
इदानीं त्वामहं दृष्ट्वा कृतार्थो नरपुङ्गव ॥ ९ ॥

त्यजाम्यसून् कृतानृण्यश्चिरं मैत्र्याभवत्पितुः ।
भवन्मुखालोकमात्रात् कृतार्थश्च रघूद्वह ॥ १० ॥

इत्युक्त्वा रघुशार्दूलं पश्यन्नेव दृशा खगः ।
उच्चैरुपररामान्तरात्मज्योतिषि संगतः ॥ ११ ॥

व्रणवन्ति तदङ्गानि दृष्ट्वा रामो दयानिधिः ।
अज्ञासीत्तस्य तत्कर्म युयुधे रक्षसा यथा ॥ १२ ॥

सौमित्रेरग्रतो रामः श्लाघमानो विहंगमम् ।
अरोदीद् भृशसंतप्तः पितृव्यापत्तिदुःखतः ॥ १३ ॥

हा तात हा पितृसख हा पितृव्य महाबल ।
अस्मदर्थोज्झितप्राणो धन्य एव भवान् किल ॥ १४ ॥

ऋणवानस्मि ते नित्यं गृध्रराज नमोऽस्तु ते।
सत्यं सखा त्वं तातस्य कृतं लोकोत्तरां त्वया ॥ १५ ॥

हा गृध्रराज सुकृतिन् क स राक्षस उत्कटः।
पक्षमात्रसहायश्च क त्वं जात्या विहंगमः ॥ १६ ॥

सत्वं तु भवतः श्लाघ्यं येन त्वं युद्धवांस्तथा।
अथो मम पितुर्मैत्र्या आनृण्यं गतवानसि ॥ १७ ॥

हा व्रणानि तवांगेषु तेन युद्धवतो द्विषा।
क्षरद्रुधिरपृक्तानि विलोक्यन्ते सहस्रशः ॥ १८ ॥

अहो बलमहो धैर्यमहो तव पराक्रमः।
अहो उपकृतिस्तात तव स्वजनबन्धुषु ॥ १९ ॥

अहो निस्तारिता कृत्स्ना गृध्रजातिरपि त्वया।
येषां कुले भवान् जातो धन्यास्ते पितरस्तव: ॥ २० ॥

तैः स्वस्य पूर्वजैः शाकं धन्यैर्धन्यतरो भवान्।
मुच्यतां ननु पक्षीन्द्र दुस्तराद्भवबन्धनात् ॥ २१ ॥

ईदृग्भवान् स्वबन्धूनामुपकारदयानिधिः।
क नु दृश्योऽसि पक्षीन्द्र साक्षात्तातसमो मया ॥ २२ ॥

त्वयि जीवति पक्षीन्द्र नाद्यापि निधनं गतः।
स मे पिता दशरथो ह्यद्यैव निधनं गतः ॥ २३ ॥

इति स विलपमानः पक्षिणं ताततुल्यं विहितसमरमुच्चै रक्षसा तादृशेन।
अपहृतबलवीर्यं स्वात्मनोऽर्थे क्षतासुं पितरमिव निजं तं वह्निना निर्ददाह ॥ २४ ॥

कृत्वाग्निसंस्कारमुखां समस्तां क्रियां स तस्यावगतोपकारः।
शुशोच रामो भृशमात्मताते मृते यथा भूरिकृताश्रुमोक्षः ॥ २५ ॥

उवाच सौमित्रिमथोपकारं स्मरन् स गृध्रस्य मृतस्य तस्य।
विधाय दाहं विधिवद्विधिज्ञः प्रेतोदनिर्वापविधौ विलप्य ॥ २६ ॥

अमुं जानासि सौमित्रे गृध्रराजं महाबलम्।
यो देवासुरयुद्धानां वर्षीयान् साक्षितां गतः ॥ २७ ॥

अयं किलास्मत्तातस्य सखा प्राणसमोऽभवत्।
कतिधा नेक्षितस्तत्र वार्तयानः शुभाः कथाः ॥ २८ ॥

मृगयारसिकोऽस्माकं तातो दशरथो नृपः।
वनेष्वनेन गृध्रेण कति वारं न सत्कृतः ॥ २९ ॥

विच्छिन्नाः सेवका यत्र सेनाश्चापि पृथक्स्थिताः।
एकान्ते निर्जनेऽरण्ये तत्रासौ बन्धुतां गतः ॥ ३० ॥

आदाय पाकरुच्यानि फलानि विविधान्यसौ।
शाकानि कन्दमूलानि हत्वानेकांश्च पक्षिणः ॥ ३१ ॥

नखैश्चञ्चुपुटेनापि पक्षैश्चादाय बुद्धिमान् ।
उपस्थितोऽग्रे तातस्य भोज्यदानार्थमुद्यतः ॥ ३२ ॥

तदा सुखितवानेष तातं नो धरणीपतिम् ।
यो हि कृच्छगतं रक्षेत्स सखा स च बान्धवः ॥ ३३ ॥

देवासुरैः पुरा युद्धे ताते याते सहायताम् ।
देवानामेष पक्षीन्द्रस्तदाप्युपकृतिं दधौ ॥ ३४ ॥

चञ्च्वा नखैः पक्षि तिभिरेष दैत्यांश्च दानवान् ।
नासिकानेत्रकर्णेषु लुलाव बलसंयुतः ॥ ३५ ॥

नैतस्य विक्रमं वक्तुमह पर्याप्त आत्मना ।
इदानीमपिं वृद्धोऽसौ चकारोपकृतिं मम ॥ ३६ ॥

प्रियापहारकेणैष रक्षसा घोररूपिणा ।
चकार सुमहद्युद्धं यावद्वीर्यवलं खगः ॥ ३७ ॥

प्राणान् रक्षितवांश्चासौ यावदागमनं मम ।
संनिवेदितवान् वृत्तं प्रियायास्तस्करस्यमे ॥ ३८ ॥

क्व मेऽमुना विना ज्ञातः प्रियायास्तस्करो भवेत् ।
आयासश्चापि विफलो भवेदन्वेषणे मम ॥ ३९ ॥

इत्येवं संलपन् रामस्तेन भ्रात्रा कनीयसा ।
संरुदन् विलपंश्चापि गृध्रायादाज्जलाञ्जलीन् ॥ ४० ॥

एवं कृत्वा प्रेतकर्मास्य रामो गृध्रस्योच्चैः पञ्चतामागतस्य ।
तस्यादेशादाततायित्वमाप्तो भ्रात्रा युक्तोऽयं ततोऽग्रे जगाम ॥ ४१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे गृध्रसंस्कारो नामैकषष्टयधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

*

द्विषष्टयधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

जानक्या विरहं बिभ्रत् संजिहीर्षुश्च रावणम् ।
जटायोरुपदेशेन मुक्तसंदेह आतुरः ॥ १ ॥

पश्यन् वनानि सान्द्राणि विरहावेशमुग्धधीः ।
पृच्छन् क्वचिल्लतावृक्षान् क्वचिन्मूर्छन् क्वचित्स्खलन् ॥ २ ॥

ध्रियमाणो लक्ष्मणेन पतमानः पदे पदे ।
रावणस्यापराधेन सरोषहृदयोऽभवत् ॥ ३ ॥

मौनमेवाव्रजन्मार्गे शोकावेशसुविह्वलः ।
नायं सम्भाष्यते केनाप्यसौ कमपि वक्ति न ॥ ४ ॥

अत्यर्थकुपितस्वान्तो ब्रूते लक्ष्मणमेव सः ।
शृणु लक्ष्मण ते वच्मि सत्यमेतन्न संशयः ॥ ५ ॥

यदि जीवति मे जाया तदा जीवतु नाम सा ।
नो चेद्भस्मीकरिष्यामि जगदेतच्चराचरम् ॥ ६ ॥

सेशं सलोकपालं च सदेवासुरमानुषम् ।
खण्डयिष्यामि वसुधां शोषयिष्यामि सागरान् ॥ ७ ॥

मेरुं बिभेदयिष्यामि छेत्स्यामि विधुभास्करौ ।
पातयिष्यामि नभसस्तारकाश्च ग्रहानपि ॥ ८ ॥

यदि जीवति मे प्राणवल्लभा जनकात्मजा ।
तदा मे जीवतं भ्रातर्नो चेत्त्यक्ष्याम्यसूनहम् ॥ ९ ॥

जगतः प्रलयं कृत्वा प्राणत्यागो भवेन्मम ।
इति तिग्मतरं वाक्यं नित्यं व्याहरतः प्रभोः ॥ १० ॥

श्रावं श्रावं जगत्सर्वमरिष्टान्यभजत्तराम् ।
दृष्ट्वा दृष्ट्वा च सौमित्रिः सकम्पहृदयोऽभवत् ॥ ११ ॥

भयविभ्रान्तनयनो न च किंचिदवोचत ।
प्रचचाल मही कृत्स्ना सागरश्चोदतिष्ठत ॥ १२ ॥

भयाच्चकम्पिरे देवाश्चकम्पे मेरुरेव च ।
दिशः प्रजज्वलुः सर्वाः नागलोको व्यकम्पत ॥ १३ ॥

मनांस्यगुः कश्मलत्वं त्रैलोक्ये वसतां सताम् ।
अकस्माद् दुःखसम्भूतिरकस्माच्छोकसम्भवः ॥ १४ ॥

अकस्माच्च मनःकम्पस्त्रैलोक्ये समजायत ।
जानकीविरहाद् रामे क्लिश्यमाने तदानिशम् ॥ १५ ॥

एवं जगत्यरिष्टानि प्रविलोक्य दिवानिशम् ।
सौमित्रिरभवद्भीतः सकम्पहृदयो भृशम् ॥ १६ ॥

तदा प्रणम्य सहसा भ्रातरं रघुपुङ्गवम् ।
स्पृष्ट्वाङ्घ्रियुगलं प्रह्व इदं वचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥

श्रीमन् रघुकुलाधीश सूर्यवंशध्वज प्रभो ।
आर्यधर्मपथाधार देवगोद्विजरक्षक ॥ १८ ॥

संप्रतं त्वत्कृपादृष्ट्या जगदाप्यापतेतराम् ।
स चेद्भवान् प्रकुपितस्त्रैलोक्योपरि राघव ॥ १९ ॥

जीवेयुस्तत्कथं नाथ त्रिजगद्वासिनो जनाः ।
कश्चेदानीं रक्षकः स्याच्छ्रुतिदेवद्विजन्मनाम् ॥ २० ॥

मान्धाता सगरश्चैव भरतोऽथ भगीरथः ।
दिलीपो रघुरेवापि येऽम्बरीषादयो नृपाः ॥ २१ ॥

तैरिदं विश्वमखिलं स्वधर्मात्परिपालितम् ।
यावन्नो जनकः साक्षाद्राजादशरथोऽभवत् ॥ २२ ॥

तेषां कुले भवान् कीर्तिवर्द्धनः सत्यसंगरः ।
त्यागी दयापरः साधुरक्षको दुष्टनाशकः ॥ २३ ॥

सूर्यवंशैकतिलकः सम्मतश्च सतां सदा ।
एकस्याविनयेनार्य जगद्धन्तुं न चार्हसि ॥ २४ ॥

तमेव जहि पापिष्ठं रावणं लोकरावणम् ।
यस्याशु हननात्कृत्स्नं त्रैलोक्यं सुखयिष्यसि ॥ २५ ॥

यदीच्छसि त्वं संहर्तुं तं पापं दशकन्धरम् ।
तदा स वै हतप्रायो वलवीर्ययुतोऽपि सन् ॥ २६ ॥

पातयस्व प्रभो लङ्कां समुत्पाट्य महोदधौ ।
हरस्व राक्षसानीकमत्युग्रं लोकशोषणम् ॥ २७ ॥

आनन्दय सुराधीशं रक्ष गोब्राह्मणानपि ।
याहि त्रयीपथं धर्मं मर्यादां स्थापय प्रभो ॥ २८ ॥

एतत्त्वया सदा कार्यं पूर्वेषां कीर्तिवर्द्धनम् ।
न जातुचिद्रुषाविष्टस्त्रैलोक्यं संहरेद्भवान् ॥ २९ ॥

इत्थं निशम्य सौमित्रेः पादोपास्तिपरस्य वै ।
वचनानि रघुश्रेष्ठो भक्तिप्रह्वस्य वाग्मिनः ॥ ३० ॥

लज्जाविनम्रवदनो रामो रोषान्निवर्तितः ।
लक्षणैर्लक्ष्मणास्याथ किंचिन्नियमितः प्रभुः ॥ ३१ ॥

प्रसन्नहृदयो भूत्वा स्नेहेन परिरभ्य तम् ।
दोर्दण्डयुगलेनोच्चैः कृत्वा घ्राणं च मूर्द्धनि ॥ ३२ ॥

बभूव सस्मितमुखः कारुण्यमधुराकृतिः ।
दृष्ट्वा तं तादृशं रामं स स्वस्थहृदयोऽभवत् ॥ ३३ ॥

जग्मतुः सत्वरं वीरौ ततस्तौ कृतसंविदौ ।
काननान्यवगाहन्तौ विश्रमन्तौ स्थले स्थले ॥ ३४ ॥

गाहन्तौ गिरिगह्वराणि विषमस्थानानि शृङ्गाणि च
प्रोत्तुङ्गानि महीभृतां घनतरुस्तोमाश्च दीर्घाटवीः ।

आरोहादवरोहतश्च सततं खिन्नौ सुधीराशयौ ।
सीताप्राप्तिसमुद्यमैकपरमौ तौ जग्मतुर्भ्रातरौ ॥ ३५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे कुपितार्यसमाहितिर्नाम द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

*

त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

वृक्षगुल्मलतावृन्दे वीक्ष्यमाणो विदेहजाम् ।
दर्शयन् मानुषीं चेष्टां स्खलन् मोहेन च क्वचित् ॥ १ ॥

ध्रियमाणाश्च प्रतिपदं भ्रात्रा सौमित्रिणा ततः ।
प्रियायास्तस्करायोच्चैः प्रकुप्यन्मनसा प्रभुः ॥ २ ॥

कबन्धस्यालयं प्राप्तः शापजातस्य रक्षसः ।
स ददर्श तमत्युग्रं राक्षसं घोररूपिणम् ॥ ३ ॥

दोर्भ्यामाकृष्य सत्त्वानि वनजानि सहस्रशः ।
ग्रसन्तं मुखरन्ध्रेण गन्धर्वं पूर्वजन्मनि ॥ ४ ॥

तस्यातिदीर्घदोर्दण्डयुगं छित्त्वा रघूद्वहः ।
खड्गेन शितधारेण पातयामास भूतले ॥ ५ ॥

सोऽपि क्षणात्तनुं त्यक्त्वा राक्षसीमतिभीषणाम् ।
रामहस्तायुधस्पर्शाल्लेभे दिव्यतरं वपुः ॥ ६ ॥

गन्धर्व इति तेनासौ निश्चितस्तेन वर्ष्मणा ।
यथापूर्वं सुरुचिरो मणिहारविभूषण ॥ ७ ॥

प्रणनाम पुरोभूय राघवेन्द्रं मुदान्वितः ।
प्रसादसुमुखं देवं तुष्टाव कलया गिरा ॥ ८ ॥

स रावणहृतां सीतां विज्ञाप्य रघुवल्लभे ।
इदं विज्ञापयामास नीतिज्ञो यक्षसत्तमः ॥ ९ ॥

समुद्रमध्यवसतिर्लङ्काख्या यस्य सा पुरी ।
राक्षसौघसमाक्रान्ता दुर्गमा चैव मानुषैः ॥ १० ॥

स्वयं यो बलवांश्चैव त्रैलोक्यं येन निर्जितम् ।
लीलयैव च चिच्छेद पौरुषं यो दिवस्पतेः ॥ ११ ॥

येन कल्पद्रुमाश्छित्वा स्वावासतरवः कृताः ।
यो ब्रह्माणां समाराध्य ययाचे वरमद्भुतम् ॥ १२ ॥

न जातु स्वस्य मरणं विधिसर्गभवैर्भवेत् ।
तत्तथैवार्थितं तेन ब्रह्मणापि प्रतिश्रुतम् ॥ १३ ॥

ततः सहोदरसुतबान्धवोऽव्यबलोर्जितः ।
जगज्जिगाय लङ्केशो नित्यं व्याकुलयन् जनान् ॥ १४ ॥

दशवक्त्रपरिस्फूर्जद्विग्रहोऽतिभयानकः ।
विंशबाहुसमुच्छ्रायो विंशलोचनभीषणः ॥ १५ ॥

विकरालमहाकायः कल्पाग्निरिव तेजसा ।
शिवाराधनसंजातप्रतापाग्निमहोर्जितः ॥ १६ ॥

स ते प्रियापहारेण नितान्तं वद्ध्यतां गतः ।
अतस्तस्य वधे यत्नो भवता भावितः कथम् ॥ १७ ॥

के नु तत्र सहायास्ते समानव्यसनाः प्रभो ।
विज्ञापयामि तु श्रीमन् यदि चेतसि रोचते ॥ १८ ॥

अस्ति बालिकयेर्भ्राता सुग्रीवो नाम वानरः ।
तस्यापि जाया तद्भ्रात्रा बालिना बलिना हृता ॥ १९ ॥

किष्किन्धापुरराज्यं च स्वयं स कुरुते प्रभो ।
बलाद्विवासितस्तेन सुग्रीवः सेवते वनम् ॥ २० ॥

महाबली महावीरो महासत्यवचाश्च सः ।
सूर्यस्य तनयः साक्षाद् ग्रहराजस्य भास्वतः ॥ २१ ॥

स चेत्त्वयाभिषिच्येत राज्येऽस्मिश्चिरकाङ्क्षते ।
किष्किन्धानगरीराजधानीसम्पद्भूराश्चिते ॥ २२ ॥

अवाप्नोति च चेत्तारां सुन्दरीं चिरकाङ्क्षिताम् ।
ततः प्रत्युपकाराय तव सज्ज्येत सोऽर्कजः ॥ २३ ॥

अष्टादशमहापद्मसंख्याताश्च प्लवंगमाः ।
तस्याज्ञावशगास्ते स्युस्तव सैन्यमहाभटाः ॥ २४ ॥

ऋक्षाणां च पतिर्वृद्धो जाम्बवान्नाम वीर्यवान् ।
महाबलो महाकायः सोऽपि स्यात्ते चमूभटः ॥ २५ ॥

तैर्बृतस्त्वं महावीर साक्षात्तेजोनिधिः प्रभो ।
विनयेथाःपरं युद्धे दशग्रीवं मदोत्कटम् ।
सभृत्यं सपरीवारं सानुजं बलसंयुतम् ॥ २६ ॥

यदपि त्वामहं जानाम्यप्रमेयबलं जनैः ।
तथापि सेनासंदोहो वरीयान् महतामपि ॥ २७ ॥

नैकाकी शोभते राम क्वचिद् भूमिपतिर्भुवि ।
भवांश्चाभासि वीरेन्द्र त्रिजगत्पतिरेव मे ॥ २८ ॥

इति विज्ञाप्य गन्धर्वो रामाय स्वात्मदायिने ।
विमानवरमारुह्य तदादिष्टो दिवं ययौ ॥ २९ ॥

तेनोद्दिष्टेन मार्गेण जगाम रघुपुङ्गवः ।
क्रामन् दुर्गान् क्षितिधरान् धनानि विपिनानि च ॥ ३० ॥

क्वचित्त्वरान्वितौ वीरौ क्वचिन्मन्दगमावुभौ ।
ज्यारूढधनुषौ धीरौ सीताप्रेक्षणलालसौ ॥ ३१ ॥

लालप्यमानो रहसि तमेवोद्यममातुरौ ।
सर्वज्ञौ मानुषीं चेष्टां वितन्वन्तौ विनोदिनौ ॥ ३२ ॥

खड्गिनौबद्धतूणीरौ शक्तिमन्तौ महाभुजौ ।
वीरेन्द्रौ बद्धकवचौ जटामुकुटमण्डितौ ॥ ३३ ॥

नीलोत्पलदलश्यामावतसीकुसुमप्रभौ ।
तमालकलिकाकारौ पुण्डरीकदलेक्षणौ ॥ ३४ ॥

सुकुमारतरौ रुच्यौ दिव्यतापसवेशिनौ ।
भिल्लैश्च भिल्लपत्नीभिर्वने वीक्षितविग्रहौ ॥ ३५ ॥

कारुण्यजननौ सद्यः सर्वेषामपि चेतसि ।
मयूरचन्द्रकधरौ गुञ्जापुञ्जविभूषितौ ॥ ३६ ॥

गिरिधातुप्रवालादिकृताकल्पौ महोज्ज्वलौ ।
त्रिजगत्सौख्यदानाथ बहुलीलाकृतोद्यमौ ॥ ३७ ॥

उच्चोच्चैर्गिरिशृङ्गाणि गिरिगह्वरकन्दराः ।
गिरिकाननवर्त्मानि गाहमानौ गतश्रमौ ॥ ३८ ॥

सीतासम्प्राप्तियत्नान्यं यत्नं न क्वापि बिभ्रतौ ।
त्यक्ताखिलसुखासङ्गौ स्वार्थसाधनसत्वरौ ॥ ३९ ॥

प्राप्तौ दिव्यजलं शुद्ध पम्पाख्यानं महासरः ।
सुगन्धिशुचिपानीयं फुल्लपङ्कजकेसरैः ॥ ४० ॥

नानाजातिलसत्पद्मवनभूषितमुज्ज्वलम् ।
ऋषिपत्नीगणाकीर्णमवगाढमृषि व्रजैः ॥ ४१ ॥

हंससारसचक्राह्वकादम्बकुलकेलिकृत् ।
मुक्ताविशुद्धशलिलगम्भीरमतिमञ्जुलम् ॥ ४२ ॥

वनराजीस्रगावीतं क्रान्तभूरुहवल्लरि ।
तटस्थवल्लरीकुञ्जपतत्कुसुमपूजितम् ॥ ४३ ॥

कमनीयतमोत्तुङ्गकूलनिःश्रेणिसुन्दरम् ।
अजस्रस्वगुणोद्गारिराजहंसगणावृतम् ॥ ४४ ॥

मन्दानिलकृतान्दोलं तेनुवीचिसमुद्भवम् ।
मौक्तिकोत्पत्तिसुभगमुक्तास्फोटकदम्बकम् ॥ ४५ ॥

देवाङ्गनावगाहोत्थहरिचन्दनरञ्जितम् ।
कार्णाटीकुचकुम्भोत्थमलयागुरुसौरभम् ॥ ४६ ॥

कूलकुञ्जलतासद्मविश्रान्तसुरकिंनरम् ।
जलपानसमायातनानावर्णमृगान्वितम् ॥ ४७ ॥

फुल्लपद्मदलासीननानाजातिविहंगमम् ।
मधुमत्तालिमधुपीगणसेवितपङ्कजम् ॥ ४८ ॥

राजहंसकुलक्वाणमुखरीकृतदिक्तटम् ।
माध्वीकगन्धसंदोहपाटच्चरसुखानिलम् ॥ ४९ ॥

तत्तीरवासिनः शान्तान् ब्राह्मणान् मुनिपुङ्गवान् ।
प्रणनाम रघुश्रेष्ठो भूयस्तैरपि सत्कृतः ॥ ५० ॥

तत्र स्नात्वा रघुपतिः पम्पासरसि शीतले ।
विश्रान्तिमकरोत्कान्तावियुक्तोऽहानि कानिचित् ॥ ५१ ॥

मुनीनामाश्रमेष्वार्यो निवसन् लक्ष्मणान्वितः ।
धनुर्धरः कौणपेभ्यो व्यदधान्मखरक्षणम् ॥ ५२ ॥

वियोगात्तस्य रामस्य शीतं पम्पासरोजलम् ।
अतनोद्भूरि संतापं तप्यमानमिवाग्निना ॥ ५३ ॥

वीक्ष्यपम्पाजले क्रीडद्रथाङ्गमिथुनं मिथः ।
रहो जनकजां स्मृत्वा मुमूर्छ स्मरबिह्वलः ॥ ५४ ॥

जवेनोत्थापितः सोऽथ भ्रात्रा संदत्तचेतनः ।
स्मारं स्मारं मुहुः कान्तां प्रललाप विशीर्णधीः ॥ ५५ ॥

अये रथाङ्ग त्वमतीव धन्यः स्वकान्तया क्रीडसि यो निकामम् ।
न जातु कश्चित्तव सौख्यमध्ये विघ्नप्रदोऽभूद्दशकण्ठतुल्यः ॥ ५६ ॥

वियुज्यसे यद्यपि मित्र कोक्या दिनव्यपायेपरमार्तिहेतौ ।
तथापि मध्ये युवयोर्नतावदस्त्यन्तरं यावदिहावयोस्तत् ॥ ५७ ॥

अथो रवावस्तमिते रघूणां पतिः स पम्पापुलिने निषण्णः ।
शुश्राव विश्लेषजदुःखभाजो रथाङ्गयोः संततमार्तनादम् ॥ ५८ ॥

उवाच तौ कूजितमुक्तकण्ठौ प्रदोषकाले करुणं रटन्तौ ।
चक्रौ युवानौ नवविप्रयोगादजस्रकामज्वरकीलदग्धौ ॥ ५९ ॥

अहो युवां रोदिथ ईदृशं किं कारुण्यधारावहमार्तरावम् ।
प्रपश्यथोऽन्योन्यमवारपारप्रसृत्वराम्बुव्यवधौ सुखं स्थः ॥ ६० ॥

हा हन्त रामं चिरविप्रयुक्तं प्राणप्रियाया विधिवञ्चितं माम् ।
प्रायो न जानीथ इहेदृशं यो दधाति कालानलतापमन्तः ॥ ६१ ॥

अहो अपूर्वा ज्वलनस्य वृत्तिर्ज्वलामि भस्मापि च दृश्यते न ।
विधाय भस्म ज्वलनोऽन्य आशु निर्वततेऽसौ न निवृत्तिमेति ॥ ६२ ॥

इति प्रलपता तेन मुक्तास्थूलाश्रुवार्मुचा ।
नीतं पम्पासरस्तीरं प्रावृषीव किलार्द्रताम् ॥ ६३ ॥

रामस्य हृदि संतापं विज्ञाय विरहोद्भवम् ।
दध्यौ प्रतिक्षणं तत्र पद्मपत्राणि लक्ष्मणः ॥ ६४ ॥

शयनीयं च तैरेव कृत्वा तस्य विचक्षणः ।
काञ्चीकटकहारादि पद्मपत्रैरकल्पयत् ॥ ६५ ॥

क्वचित् पम्पातीरे तनुमभिनवाशोकलतिका
मुरोज प्रोत्तुङ्गस्तवकभरनम्रां रघुपतिः ।
विलोक्य प्राणेशीं प्रणयपरिरम्भोत्सुकमनाः
पतन् सास्रं भ्रात्रा कथमपि धृतो दोर्युगवृतः ॥ ६६ ॥

कदाचिदुद्यन्तमुदीक्ष्य चन्द्रं कलंकलेखामलिनान्तरं सः ।
कृतैणनाभीतिलकाङ्कुराढ्यं प्रियामुखेन्दुं बुबुधे रुषाक्तम् ॥ ६७ ॥

उपालभत तं साधुरये जनकनन्दिनि ।
अकस्मात्कुप्यसि कथं कान्ते मयि निरागसि ॥ ६८ ॥

देहि मे चुम्बनं तन्वि दूरे किं परिधावसि ।
भाले ते राजतेऽत्यर्थं कस्तूरीतिलकं प्रिये ॥ ६९ ॥

इति प्रलपितं श्रुत्वा तस्य सौमित्रिरब्रवीत् ।
अलं भ्रमेण चन्द्रोऽयमुदेति जगतां मुदे ॥ ७० ॥

इत्थं पम्पातीरनिवासां खिन्नः खिन्नः
कान्ताविश्लेषातिरुजार्तः श्रीरघुवीरः ।
भ्रात्रा शश्वत् सार्थचिरेण प्राहृतधैर्यो
निन्ये कानिचिदतिशयदीर्घतमानि दिनानि ॥ ७१ ॥

पम्पासरःस्नानविशुद्धचेतसां संगे मुनीनां क्वचिदात्तगोपनः ।
कुर्वन् स विज्ञानकथा मनोहराःकालं निनायातिवियोगदुःसहम् ॥ ७२ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे पम्पातीरनिवासो नाम त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

*

चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

सुखयित्वा चिरं विप्रान् पम्पातीरनिवासिनः ।
निर्ययौ रघुशार्दूलस्ततोऽसौ सहलक्ष्मणः ॥ १ ॥

प्रणम्य भक्तिविनतो मुनीन् शीलवशीकृतान् ।
दक्षिणां दिशमारूढो गिरिकाननभीषणाम् ॥ २ ॥

कुर्वन्तौ विविधां वार्तामुभौ सज्यधनुर्धरौ ।
पथि घोरतरे प्राप्तौ सीतासम्प्राप्तिसत्वरौ ॥ ३ ॥

वसन्तौ गिरिदुर्गेषु वनेषु गहनेषु च ।
विश्रमन्तौ तरुतले सच्छायसुखदायिनी ॥ ४ ॥

क्वचित्तरुतले रामो मध्याह्नातपपीडितः ।
विश्रान्तिमभजद् भ्रात्रा भक्तेन सुनिषेवितः ॥ ५ ॥

विनीताध्वश्रमस्तेन पादसंवाहनादिभिः ।
उपधाय तदुत्सङ्गमशेत तरुमण्डपे ॥ ६ ॥

क्वचित्तरुभवैः पत्रैरातपत्रं विधाय सः ।
स भक्तिरार्यमभजद्गच्छन्तं तपनातपे ॥ ७ ॥

क्वचिदम्भोजिनीपत्रं पात्रीकृत्य महामतिः ।
सुदूरसरसस्तोयमानिनायार्यहेतवे ॥ ८ ॥

क्वचित्सकण्टकं मार्गमात्मचेलाञ्चलेन सः ।
ममार्ज निविडेऽरण्ये मार्जन्येव पदे पदे ॥ ९ ॥

क्वचित्पल्लवसंदोहं किरति स्म घने वने ।
सुतीक्ष्णाश्मकणव्याप्ते सुमित्रातनयोऽध्वनि ॥ १० ॥

क्वचिद्द्रुमहरित्पर्णविस्तीर्णव्यजनानिलैः ।
अध्वश्रमपरिश्रान्तमार्यमुच्चैरसेवत ॥ ११ ॥

भक्तिप्रह्वस्य तस्यासौ सेवयाशीलयुक्तया ।
अतुष्यद्रघुशार्दूलो वियोगज्वरितोऽपि सन् ॥ १२ ॥

शीलेनामृततुल्येन लक्ष्मणस्य रघूद्वहः ।
प्रियविश्लेषदग्धोऽपि नितरां परितोषितः ॥ १३ ॥

कदाचिन्निशिकाकुत्स्थश्चन्द्रे ज्योत्स्नाविसारिणि ।
उवाच लक्ष्मणं सद्यः प्रोद्भूतविरहज्वरः ॥ १४ ॥

कस्यचिद्वै तरोर्मूले सौमित्रे परिगृह्यताम् ।
मध्यं दिनगतो भानुस्तपत्येष प्रचण्डरुक् ॥ १५ ॥

तमुवाच हसन्नेष श्रीभानुकूलभूषणः ।
रजन्यां का कथा भानोर्नत्वेव रजनीपतिः ॥ १६ ॥

तमूचे पुनरप्येष कथं विज्ञायतेऽनुज ।
भानुर्वा रजनीशो वा तुल्यस्तापोद्वयोरपि ॥ १७ ॥

उपलक्षय काकुत्स्थ कुरङ्गं रजनीकरे ।
इत्युक्तवति सौमित्रौ स्मृतकान्ताविलोचनः ॥ १८ ॥

विललाप रघुश्रेष्ठो हा कुरङ्गाक्षि जानकि ।
क्वासि क्वासीति सम्प्रोच्य मूर्छितः पतितः पथि ॥ १९ ॥

स तमुत्थापयामास प्रियाविरहविह्वलम् ।
धीरो भवेति बहुशो जल्पन् भक्तिकृताञ्जलिः ॥ २० ॥

एवमुच्चावचैर्वृत्तैः प्रव्यक्तं विरहव्यथः ।
मन्दं जगाम काकुत्स्थः कृत्वा भ्रातुः करे करम् ॥ २१ ॥

क्वचिद् घने वनेऽपश्यत्प्रियाचरणनूपुरम् ।
पतितं भुवि रत्नांशुसुप्रकाशीकृतस्थलम् ॥ २२ ॥

तमेष सहसाऽऽदाय करेण रघुनन्दनः ।
हृदा संगमयामास संतप्तेन वियोगतः ॥ २३ ॥

उदश्रुनयनो रामः प्रियाचरणनूपुरम् ।
उवाच विरहोत्तापविप्रलापमयं वचः ॥ २४ ॥

अयेनूपुररत्नांशुद्योतभूषितविग्रह ।
सखे तवापि संजाता ममेव विषमा दशा ॥ २५ ॥

तस्याश्चरणपद्मात्त्वं दूरगः किल सम्प्रति ।
अत एव सखे क्लिष्टो मौनं वहसि संततम् ॥ २६ ॥

क्व च ते तादृशा नादा अलिझाङ्कारमञ्जुलाः ।
नूनं विरहखेदेन सर्वं विस्मृतवानसि ॥ २७ ॥

अये तवेदं दौर्भाग्यं सखे कथमिवाजनि ।
येनैकान्तवने वासः सम्प्राप्तो मुनिक्त्वया ॥ २८ ॥

कदाचित् सोऽपि समयो भविष्यति सखे तव ।
यर्हि तच्चरणे लग्नः करिष्यसि मुदा ध्वनिम् ॥ २९ ॥

सखे स्वमान्तरं दुःखं कं नु ब्रूयां भवानिह ।
तिष्ठत्यह मिवात्यन्तमवाच्यविरहज्वरः ॥ ३० ॥

इति ब्रुवाणो जानक्या नूपुरं रत्नभूषितम् ।
हृदि संस्थापितं पश्यन् मुमूर्छ रघुनन्दनः ॥ ३१ ॥

तं संदधार सौमित्रिर्बाहुभ्यां परिरभ्य वै ।
हृतार्यं धीरतामेहीत्यारोपितधृति वंदन् ॥ ३२ ॥

उवास घोरे विपिने प्रियेण भ्रात्रा समानीतफलादिभक्षः ।
निनायरात्रिंजनकात्मजाया विश्लेषदुःखेन नितान्तदीर्घाम् ॥ ३३ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे विरहरात्रिवासो नाम चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

*

पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

समुत्थाय ततोऽन्येद्युरुषस्युदितभास्करे ।
विरहेण दिशः पश्यन् घोरान्धतमसाऽऽवृताः ॥ १ ॥

दशकन्धरमाज्ञाय नितान्तं वध्यमात्मना ।
आततायी मुहुः पश्यन् धनुर्ज्यारूढमुद्धुरम् ॥ २ ॥

ततः प्रस्थातुकामोऽसौ सौमित्रिमिदमूचिवान् ।
कर्तुकामोऽनुषङ्गेण भक्तोद्धरणमन्तरा ॥ ३ ॥

अद्येदमद्भुतममं भिल्लानां वनमुत्तमम् ।
क्षेममध्यासिता स्वो वै सुखयन्तौ वनेचरान् ॥ ४ ॥

वनेऽस्मिन् मम भक्तैका विद्यते भिल्लसुन्दरी ।
यस्याः प्रेम्णा वशीभूतो मुनीन् विगणयाम्यहम् ॥ ५ ॥

एधते सहजं प्रेम तस्या मनसि मामवम् ।
मुनीनां वदनेभ्यो मे गुणा यदवधि श्रुताः ॥ ६ ॥

पूयन्तेऽखिलतीर्थानि तस्याश्चरण पांसुभिः ।
संततं मम भक्ताया मयि विन्यस्तचेतसः ॥ ७ ॥

त्रिलोक्यामपि कस्तुल्यो मम भक्तेन लक्ष्मण ।
न कामयेऽहं नितरां श्रियमप्यालयस्थिताम् ॥ ८ ॥

ब्रह्मा शेषः पशुपतिर्भक्त्यैव प्रियतां गताः ।
तेषां विभूतिमाहात्म्यं न मे प्रेमानुबन्धनम् ॥ ९ ॥

अतः सात्यन्तभक्ता मे सौमित्रे भिल्लजातिजा ।
पश्यतां मुनिवर्याणां माननीया विशेषतः ॥ १० ॥

वनजैः फलसंदोहैः सा नः सम्मानयिष्यति ।
तया भक्त्योपनीतं मे सुधातोऽप्यधिकं मतम् ॥ ११ ॥

न वर्णश्रेष्ठता न श्रीर्न कुलं न च बन्धुता ।
मम तोषाय सौमित्रे प्रीयेऽहं भक्तिमात्रतः ॥ १२ ॥

अवमत्य मुनिश्रेष्ठान् पश्यतः स्वालयागमम् ।
यास्ये भिल्लपुरन्ध्रीं तामूषितुं निशमेकिकाम् ॥ १३ ॥

त्वया मया च सौमित्रे तस्यै मानः प्रदीयताम् ।
पश्यत्सु मुनिवर्येषु मत्यक्ताश्रमसद्मसु ॥ १४ ॥

इत्युक्त्वा लक्ष्मणं राम उषः सुप्तोत्थितः प्रियः ।
अपश्यत्स्मितयुक्ताभ्यां दृग्भ्यां रघुकुलोद्वहः ॥ १५ ॥

ततोऽवधाय स्वात्मानं गुरुरूपं सनातनम् ।
प्रातः सुमङ्गलं कुर्वञ्शुश्राव पततां रवम् ॥ १६ ॥

पुरुषवर पुमर्थाः किं नु नः साधनीयाः
प्रणयभरपवित्रान्यैव काचिद्गतिस्ते ॥
जनकजनिविलासानन्दसम्भारभाजां
तवसविधसुखानां स्वात्मनो यत्र लाभः ॥ १७ ॥

इदमपरमुनीनां स्वात्ममानं मतंस्या-
न्मम तु मतमनङ्गानीकलावण्य मोषैः ॥
तव सहजवयस्याप्रेमवीचीनिषिक्तै-
स्तव सहजविलासैरात्मनः स्वात्मलाभः ॥ १८ ॥

प्रमुदवनविलासोल्लासलक्ष्मीनिधानं
त्वयि किल रमतान्नो मानसं रामचन्द्रे ॥
कृपयतु तव नित्यं संगिनी सा परा श्री-
रहमहह भवेयं नित्यलीलान्तरस्थः ॥ १९ ॥

परमसुखनिधानं कालमायाद्यपेतं
विलसतु तव नित्यं धाम तन्मन्मनःस्थम् ॥
यदि भुवि सुकृतीस्यात्कश्चिदुत्प्रेमसम्प-
द्भवति तदधिकृत्यै सोऽपि दूरादुपेत्य ॥ २० ॥

विधिसदनसुखान्तं सन्ति यावत्सुखानि ।
प्रणयसुखकलापास्तानि मात्रां भजन्ते ॥
इति ही समवधाय त्वज्जना राघवेन्दो
जहति न तव लक्ष्मीसंश्रितं पादपद्मम् ॥ २१ ॥

अधिकरसविलासैस्तावकीनै रमाया
हृदि किमपि वितीर्णक्षोभलोभक्षणेर्ष्यैः ।
वशय रघुपचित्तं मामकीनं कृपालो
भवति किल यतस्तत्संनिवृत्तान्यतर्षम् ॥ २२ ॥

मुहुरुपचितकामैरन्ययत्नप्रसक्तै
र्न हि सुलभमपीच्यं तावकं धाम राम ॥
इति सकलमपीदं सौख्यमाब्रह्म हित्वा ।
तव पदकमलान्तः साधुभृङ्गायितोऽहम् ॥ २३ ॥

तव पदमपदं यद्वाङ्मनोबुद्धिवृत्ते-
रतिशयरसभोगानन्दपुष्टिप्रकृष्टम् ।
कतम इह लभेत त्वत्प्रियायाः कृपादृक्
सुपरिचितमृतेऽन्यो यद्यपि ब्रह्मवित् स्यात् ॥ २४ ॥

एताः परमहंसानां शुकादीनां सुमेधसाम् ।
मुहुर्मुखोत्थिता गाथाः पक्षिभिर्घुष्टपूर्विकाः ॥ २५ ॥

श्रुत्वा रघूणां प्रवरः मीनया प्रियया युतः ।
मुमुदेऽतितरां ध्यायन् प्रमुद्वनविहारिणीः ॥ २६ ॥

अथोच्चचाल भगवान् पर्णकुट्याः श्रियान्वितः ।
सानुजो धृतसंनाहः खङ्गी तूणी धनुर्धरः ॥ २७ ॥

मध्येवर्त्म समालोक्य रम्यां पुष्करिणीं प्रभुः ।
अवगाह्य जले तस्याः पूर्वां संध्यामुपास्त सः ॥ २८ ॥

तत प्रचलितो रामः प्रियाविरहितः पथि ।
लक्ष्मणेनानुगमिनो वनश्रीलग्नचक्षुषा ॥ २९ ॥

अथ तपति मयूखैर्भूरिमध्यंदिनार्के नभसि च परितो निःकूजकोयष्टिसार्थे ।
अपगतभुजिवेलः सानुजोऽयं वियोजी शबरवनमविक्षद्धाम यस्मिन् शवर्याः ॥ ३० ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे शबरीगृहोपगमने पञ्चषष्टयधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

*

षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तस्मिन् वने मुनिवराः सुदीप्तब्रह्मवर्चसः ।
सुदीर्घतपसः शुद्धाः श्रितवैखानसव्रताः ॥ १ ॥

तपस्यन्तस्तपो दीप्तं वानप्रस्थव्रते स्थिताः ।
अन्ये च गृहमेधीयैर्धर्मैरीशं यजन्ति ये ॥ २ ॥

अपरे निष्ठया नित्यं ब्रह्मचर्यमुपासते ।
इतरे यतिधर्मस्था ब्रह्मविद्वरसम्मताः ॥ ३ ॥

तथान्ये सांख्यपरमा योगाचार्यास्तथा परे ।
सर्वे प्राज्ञास्त्रिकालज्ञास्तपसा धूतकल्मषाः ॥ ४ ॥

नानाविधैर्व्रतैर्यज्ञैर्यजन्ते विधिभिर्द्विजाः ।
राममायान्तमालोक्य तस्थुस्ते विहितादराः ॥ ५ ॥

मद्गृहं राम आगत्य कतिचित्स्थास्यति क्षणान् ।
एवमाशासमायुक्ताः सर्वएव महर्षयः ॥ ६ ॥

पाद्यादिकं समायोज्य तस्थुः स्वस्वाश्रमे द्विजाः ।
सर्वेषां पश्यतां तेषां रामोऽगाच्छबरीगृहम् ॥ ७ ॥

यत्र सा भिल्लजातीया प्रकृत्या शुद्धमानसा ।
सर्वोपकरणैः सज्जा श्रीरामप्रेमविह्वला ॥ ८ ॥

आस्ते दूराद्वीक्ष्यमाणा रामस्यागमनं पथि ।
अकुण्ठोत्कण्ठ या पूर्णा पुलकाञ्चितविग्रहा ॥
क्षणं बहिः क्षणं मध्येवेश्म तिष्ठन्त्युदाशया ॥ ९ ॥

तयाऽऽहृतानि स्वगृहे वन्यानि विविधानि च ।
फलानि स्वादुभूरीणि संनिवेदयितु प्रिये ॥ १० ॥

मधुराणि तथाम्लानि स्वादूनि वनजानि सा ।
आजहार पवित्राणि फलानि निजहस्ततः ॥ ११ ॥

स्वादु पीतानि रक्तानि पाकरम्याणि भूरिशः ।
संचितानि शुभामत्रेष्वनेकानि समंततः ॥ १२ ॥

मनोज्ञपत्रपात्रेषु रक्षितानि प्रयत्नतः ।
सुधारससुरस्यानि मनःप्रेममितानिच ॥ १३ ॥

हरितानि मनोज्ञानि शाकानि विविधानि च ।
लवणाक्तानि परितः सज्जितानि सुभुक्तये ॥ १४ ॥

सुरभीणि सुभोज्यानि सुरसानि स्वभावतः ।
सुखावहानि भूरीणि भूरिप्रेमकराणि च ॥ १५ ॥

वनान्तादुपनीतानि श्रीरामाय प्रयत्नतः ।
सानुजाय सदाराय साधु भोजयितुं स्वयम् ॥ १६ ॥

स्वासनं वनपत्रौघैः शय्यां च वनपल्लवैः ।
पद्मैश्च पद्मपत्रैश्च चक्लृपे शबराङ्गना ॥ १७ ॥

पद्मानि चापि भूरीणि पुण्डरीकानि भान्ति च ।
इन्दीवराणि नव्यानि रक्तपद्मानि वृन्दशः ॥ १८ ॥

आनीतानि तया सम्यक् तथान्यतरुजानि च ।
कुसुमानि सुगन्धीनि नानावर्णानि भूरिशः ॥ १९ ॥

मालाकृतानि रम्याणि शय्यायां निहितानि च ।
अनुजाय च रामाय सुखार्थं संचितान्यलम् ॥ २० ॥

संविधाय समस्तानि तानि स्वालयमध्यतः ।
बहिर्द्वारप्रदेशे सा तस्थौ रामसमागमे ॥ २१ ॥

तां प्रेमबन्धपुलकाञ्चितगात्रयष्टिं स्वान्वीक्षणक्षणसुखावहितान्तरां च ।
भिल्लीं ददर्श कृपया रघुसार्वभौम आरात्तदीक्षणवशाद्विहितोत्सवाढ्यः ॥ २२ ॥

उवाच लक्ष्मण देवो दूराद्वीक्ष्य निजां हि ताम् ।
किंचित्स्मितमनोज्ञश्रीरुचिराननपङ्कजः ॥ २३ ॥

पश्य लक्ष्मण सैषा मे भक्ता शबरसुन्दरी ।
द्वारे स्थितानुपश्यन्ती मुहुरस्मत्समागमम् ॥ २४ ॥

पश्यास्या नयने भ्रातर्मद्दर्शनसलालसे ।
सुखयिष्यामि सुचिरमेनामहमनुग्रहात् ॥ २५ ॥

इत्युक्त्वा पश्यतां तेषां मुनीनां दीप्तवर्चसाम् ।
विवेश शबरीसद्म कृपायत्तो रघूद्वहः ॥ २६ ॥

आयान्तं रघुपुङ्गवं प्रियतमा युक्तं प्रभुं सानुजं
नव्येन्दीवरसुप्रसन्ननयनं पीताम्बरं सुन्दरम् ।
अंसन्यस्तधनुर्धरं कटियुगप्रोद्भासितूणीयुगं
खङ्गाढ्यं जटया पिशंगमहसं भिल्ली ददर्शोच्चकैः ॥ २७ ॥

रामस्तस्याश्चक्षुषी पूरयाणः सान्द्रानन्दैर्दर्शनेन प्रभूतैः ।
पादन्यासैः पावयन् भूरितीर्थैर्विश्वाराध्यः प्राविशद्भावदर्शी ॥ २८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे शबरीगृहागमनो नाम षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

*

सप्तषष्टयधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तमागतं सुन्दरमात्मनाथं विलोक्य सम्यक् शबरीक्षणाभ्याम् ।
अगाहतानन्दसमुद्रमन्तर्योगी यथा स्वात्मसुखानुभूत्या ॥ १ ॥

हृष्ट्वाथ सा किमपि राघवयोर्विलोक्य प्रीतिं परां स्वविषयां ननु हेतुवर्याम् ।
भूरिप्रभूतपरमप्रणयार्द्रचित्ता स्मित्वाब्रवीद्वच इदं सरसार्णरुच्यम् ॥ २ ॥

एह्येहि जीवनधन प्रणयानुबन्ध याथार्थ्यकृद्रघुपते नयमाभिराम ।
त्वय्यागते त्रिभुवनाभिमते गृहं मे पूर्णा मनोरथततिर्निखिलार्थदातः ॥ ३ ॥

यत्संश्रुतोऽसि सुचिरं रघुसार्वभौम स्वप्नेषु यच्च कलितोऽसि मुहुः स्वयंत्वा ।
सर्वं तदद्य सफलं समभून्ममेश साक्षान्निरीक्षणपथं त्वयि यातमात्रे ॥ ४ ॥

यत्साधनैः सुवितत्तैः सुकृतोर्जितैर्न लभ्यं कथंचन मुनिप्रवरैरपीश ।
तत्तावकीनममृतादधिकं कथं नु लब्धास्मि दर्शनमहं महनीयमौले ॥ ५ ॥

अचिन्त्य एष त्वदनुग्रहः प्रभो यतः कृतार्थत्वमहो गतास्म्यहम् ।
अहो अमीभिर्वचनोपचारकैरलं प्रकृत्यैव सुसौहृदेत्वयि ॥ ६ ॥

इत्युक्त्वा पुलकाच्छन्नवपुः शवरसुन्दरी ।
मध्येगृहं निनायामुं श्रीरामं सानुजं प्रभुम् ॥ ७ ॥

पादद्यार्घाचमनंस्नानं मधुपर्कादिसंविधाः ।
प्रेम्णैव कल्पयामास शबरी स्वात्मभर्तवे ॥ ८ ॥

ददौ मृद्वासनं तस्मै श्रीरामाय महात्मने ।
रघूणां पतयेयोगिवर्यमानसवासिने ॥ ९ ॥

सौमित्रये पृथगदादासनं तत्समीपतः ।
तरुपल्लवसंदोहपद्मपत्रोपकल्पितम् ॥ १० ॥

पादसंवाहनं चक्रे भीता राघवयोरियम् ।
नितान्तं तोषयामास वचोभिरमृतोपमैः ॥ ११ ॥

अथानयत्सा वनवृक्षपर्णद्रोणोपक्लृप्तानि सुखावहानि ।
फलानि मूलानि दलानि चैव शाकानि नानाविधमञ्जुलानि ॥ १२ ॥

मधुराणि तथाम्लानि मधुराम्लानि भूरिशः ।
स्वादूनि फलमूलानि भर्त्रे भूयांस्युपाहरत् ॥ १३ ॥

पृथक् पृथग्द्रोणगतानि तानि स्वादूनि रुच्यानि रसावहानि ।
आमानि पक्वानि मनोहराणि सा तत्पुरुस्ताच्चक्लृपे फलानि ॥ १४ ॥

तानि स्वयं स बुभुजे परमात्मा सनातनः ।
यज्ञभुग् यज्ञपुरुषो महोदारः सहानुजः ॥ १५ ॥

शश्लाघे प्रतिकवलं रघुप्रवीरो भुञ्जानोऽमृतरसभाञ्जिसत्फलानि ।
प्रेमाक्तान्यधिकरसावहानि तानि भक्तायाः स्वदितुमसौ परं प्रवीणः ॥ १६ ॥

अम्लानि लवणाक्तानि बुभुजे रघुचन्द्रमाः ।
स्वदमानो रसग्राही स्वादयंश्च प्रियानुजम् ॥ १७ ॥

कन्दानि पावकभ्रष्टान्यनेकानि वनेचरी ।
रसभेदप्रभिन्नानि कल्पयामास तत्पुरः ॥ १८ ॥

कानिचिद्भक्तप्रायाणि सूपप्रायाणि कानिचित् ।
कानिचिद्व्यञ्जनप्रायाण्यलमस्वदत स्वयम् ॥ १९ ॥

फलानि कानिचित्तत्र प्रभवे मुग्धयानया ।
परीक्षार्थं समास्वाद्य मिष्टानि जगृहेतमाम् ॥ २० ॥

तान्येष हृदि जानानः प्रेमाक्तानि स्वभावतः ।
बुभुजेऽभ्यधिकप्रीतिरास्वादनविचक्षणः ॥ २१ ॥

सस्वदेऽतितरां रामः श्लाघमानो मुहुर्मुहुः ।
शबरीवदनोच्छिष्टान्यतिस्वादूनि हर्षितः ॥ २२ ॥

शबरीवदनोच्छिष्टैः प्रेमपूतैः फलै रसौ ।
आत्मानं तर्पयामास सर्वाभ्यधिकसारवित् ॥ २३ ॥

इमानि मे किलात्यर्थं जनयन्ति मनोरुचिम् ।
फलानि प्रायः केनापि स्वदितानि शुकेन वै ॥ २४ ॥

नाहं तृप्यामि शबरि मन्त्रपूतै रसावहैः ।
द्विजप्रदत्तैर्भूयोभिरन्नैः सुस्वादुभोजनैः ॥ २५ ॥

यथा तृप्यामि मद्भक्तै र्भक्त्या समुपकल्पितैः ।
पत्रैः शाकैः फलैर्मूलैर्यथावदुपसंचितैः ॥ २६ ॥

अद्याहं खलु तृप्तोऽस्मि शबरि त्वद्गृहागतः ।
पत्रशाकफलैरेतैस्त्वया प्रेम्णोपकल्पितैः ॥ २७ ॥

सफलं ते वनं भूयात्संततं भूरिभूरुहम् ।
भूरिपद्मसरोवारि भूरिकन्दप्रसूनकम् ॥ २८ ॥

पर्यायेणर्तवः सर्वाः फलानि सुवतां सदा ।
अल्पपर्जन्यफलदाः सन्तु ते वनवीरुधः ॥ २९ ॥

अयत्नलभ्यफलदा भवन्त्वोषधियो वने ।
अनामयाः सदा सन्तु वने ते पशुपक्षिणः ॥ ३० ॥

अव्याहता तव मतिः सर्वदा वर्ततां मयि ।
मनोरथास्ते सिद्ध्यन्तु यथेष्टविषयोन्मुखाः ॥ ३१ ॥

मानयन्तु सदैव त्वां पूज्यामिव महर्षयः ।
इह त्वं सुखमेधस्व विमुच्यस्व परत्र च ॥ ३२ ॥

इति रघुपतिः स्वादं स्वादं फलानि फलानि च
प्रकृतिमधुरास्वादान् कन्दाननेकविधानपि ।
रुचिरवचनैराशंसानः शुभान्यनुजान्वितः
किमपिमुमुदे तत्रासीनः सुखं शबरीगृहे ॥ ३३ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे शबरीगृहनिवासो नाम सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

*

अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

ललज्जेऽतितरां सा तु तत्त्वज्ञानवती क्षणात् ।
स्वोच्छिष्टानिफलान्यस्य समर्प्यजगदीशितुः ॥ १ ॥

पूर्वं तु प्रेमरभसादविचारितमाचरत् ।
उत्पन्नतत्त्वधीः पश्चाच्छुशोच शबरी हृदि ॥ २ ॥

अहो मया कृतमिदं किं तु साक्षाज्जगत्पतौ ।
यदुच्छिष्टफलान्यस्मै समर्पितवती कुधीः ॥ ३ ॥

क्वायं महामहाराजमौक्तिरत्नमरीचिभिः ।
नीराजिताङ्घ्रिकमलो रामस्त्रिभुवनेश्वरः ॥ ४ ॥

क्वाहं जात्याधमामूढा स्त्रीधर्मेण विदूषिता ।
अनुग्रहोऽस्यैव परो नीताहं येन पात्रताम् ॥ ५ ॥

अपराधमहं चक्रे स्वोच्छिष्टविनिवेदनात् ।
प्रेममत्तमतिः किंचिन्न विचारितवत्यपि ॥ ६ ॥

इति तामनुशोचन्तीं रामआत्माखिलात्मनाम् ।
उवाच तत्परप्रेमवशीभूतोऽखिलार्थदः ॥ ७ ॥

श्रीराम उवाच

त्वयाऽऽहृतानि स्वादूनि प्रेम्णैवानन्यवृत्तिना ।
खण्डितानिफलान्येतान्यखण्डानि मुदे मम ॥ ८ ॥

जाने प्रेमवनीवास्तुः कापि धन्यतमाशुकी ।
आस्वादयत् फलान्येतान्यतिमाधुर्यभाञ्जि यत् ॥ ९ ॥

अथ त्वमतिपुण्यासि भिल्लजातिरपि स्फुटम् ।
वेदविद्भ्योऽपि विप्रेभ्यो मदनुग्रहभाजनम् ॥ १० ॥

जातासि सपदि त्वं तु तीर्थपावनपावनी ।
परमेणमयि प्रेम्णा तत्रानेनातिभूयसा ॥ ११ ॥

श्रौतं स्मार्तं तान्त्रिकं वापि कर्म पुण्योपास्ति स्तद्विशुद्धं तपो वा ।
ज्ञानं ब्रह्मात्मैक्य संविद्विशुद्धं न मे हृद्यै जायते भाग्यपूर्णे ॥ १२ ॥

प्रेमैवैकं मय्यसाधारणं यत् तैस्तैर्भावैः सुविशुद्धैरुपेतम् ।
स्वभावेनासोढविश्लेषलेशं तेनैवाहं स्यां वशीभूतचित्तः ॥ १३ ॥

सते प्रेमा वर्ततां मय्यनल्पो विवेकविज्ञानविवर्जितोऽपि ।
विवेकविज्ञाननिधिर्महीयान् येनाहमासं त्वद्वशे भिल्लपत्नि ॥ १४ ॥

इत्युच्चैः प्रेममधुरं ब्रुवाणो रघुनन्दनः ।
भुक्तिं समापयामास सानुजः शबरीगृहे ॥ १५ ॥

शबरीसमुपानीतैः पानीयैः स्वादुशीतलैः ।
पीयूषविमलैः शुद्धैः स आत्मानमतर्पयत् ॥ १६ ॥

शबरीकरपद्मस्थपात्रधाराविनिर्गतैः ।
मुखमक्षालयद् रामः सानुजोऽमलवारिभिः ॥ १७ ॥

ताम्बूलमर्पयामास किराती क्रमुकान्वितम् ।
मुखरञ्जनकृच्चूर्णसंयुतं तत्र सानुजे ॥ १८ ॥

आदर्शं दर्शयामास साऽऽत्मनाथाय निर्मलम् ।
स दृष्टवदनोऽस्मार्षीज्जानकीं सम्मुमूर्छ च ॥ १९ ॥

चिरात्प्रत्याहृतप्राणो भ्रात्रासौमित्रिणा ततः ।
ऊचे शबरसुन्दर्या रामो जनकजापतिः ॥ २० ॥

शबर्युवाच

किं नु पुण्येषु मे नाथ कृतेषु बहुलेष्वपि ।
दूषणं समभूद्येन पश्यामि त्वां वियोगिनम् ॥२१॥

धन्यास्तेषां दृशोराम ये त्वां पश्यन्ति सर्वदा ।
श्रीमज्जनकराजेन्द्रसुतया रमयान्वितम् ॥२२॥

अन्यस्यां त्वमवस्थायां दृष्टोऽसि रघुनन्दन ।
कदा नु जानकीयुक्तो मदृशोरतिथिर्भवे: ॥२३॥

अन्यैव सा पराभिख्या विदेहसुतया तव ।
यां पिबन्ति जनाः केचिद्भूरिभाग्यान्विता भुवि ॥२४॥

दत्तोऽपि परमानन्दो मह्यमर्द्धायते प्रभो ।
तामर्द्धाङ्गहरां नाथ क्व प्राणेश्वरीं विना ॥२५॥

श्रीराम उवाच

आगामिनि तु कल्पे वै त्वं मद्विहरणालये ।
प्रमुद्वने प्राप्तजनिर्मां द्रक्ष्यसि तया युतम् ॥२६॥

तावत् प्रेमरसानन्दसमुद्रलहरीभरैः ।
अवसिक्ततनुस्तिष्ठ परे ब्रह्मणि मत्पदे ॥ २७ ॥

मद्भक्तिरसपूतायास्तव नित्यं मदात्मनः ।
इहामुत्राथ वा लोके न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥ २८ ॥

अनुजानीहि मां भद्रे गन्तुमग्रे वनान्तरम् ।
कर्तुमग्रेतनं कार्यमहं सज्येऽस्मि सम्प्रति ॥ २९ ॥

इत्यनुज्ञाप्य तां भक्तां भगवान् रघुनन्दनः ।
जगाम सानुजस्तस्यां पश्यन्त्यामेव सस्पृहाम् ॥ ३० ॥

तस्यै स इत्थं प्रससाद देवः प्रेमप्लुतस्वात्मधिये शबर्यै ।
महामुनीनामपि योऽस्त्यलभ्यः शोऽचिंतनीयः खलु तत्प्रसादः ॥ ३१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे शबरीप्रसादो नामाष्टषष्टयधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

*

एकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

गते तु रघुशार्दूले सानुजे शबरी गृहात् ।
मुनयो ब्राह्मणाश्चेत्थमूचुस्तद्वनवास्तवः ॥ १ ॥

अहो बुद्धिविपर्यासो महतामपि दृश्यते ।
प्रायोऽखिलक्षोभकृतः कालस्यैव विपर्ययात् ॥ २ ॥

यदेष सम्मतः शिष्टै रामो रघुकुलोद्भवः ।
शबर्या गृहमागच्छेदनादृत्यमुनीनपि ॥ ३ ॥

प्रायो हि श्रोत्रियस्यान्नं पुनाति सकुलं जनम् ।
दुर्लभं सर्वथा चेह तदभावे जलं पिबेत् ॥ ४ ॥

आचित्वापिजनैर्ग्राह्यं श्रोत्रियान्नं सुदुर्लभम् ।
येन भक्षितमात्रेण पूयते सकुलो जनः ॥ ५ ॥

ते वयं श्रोत्रिया विप्राः प्राप्तज्ञाना गुरोर्मुखात् ।
वेदे चाधीतिनः साङ्गे शुद्धकर्माण एव च ॥ ६ ॥

शिष्टसम्मतमाज्ञाय रामं रघुकुलोद्भवम् ।
सार्घहस्ता अतिष्ठाम पश्यन्तः स्वगृहागमम् ॥ ७ ॥

स एषोऽस्माननादृत्य सार्घहस्तान् द्विजन्मनः ।
सानुजोऽद्यातिथिर्मूत्वा विवेश शबरीगृहम् ॥ ८ ॥

सातिमन्दा दुराचाराधमा जात्या च कर्मणा ।
चकार कथमातिथ्यं रामे शिष्टौघसम्मते ॥ ९ ॥

अग्राह्यं जलमप्यस्याः का कथान्नस्य वाडवाः ।
अहो बुद्धिविपर्य्यासो राघवस्य बतेदृशः ॥ १० ॥

नास्मान् दृशाप्यसौ शिष्टोजग्राह क्व नु वाक्यतः ।
पश्यतोऽस्मानतिक्रम्य ययौ तस्या निकेतनम् ॥ ११ ॥

अहो शीलमहो प्रज्ञा अहो कुलमहो क्रिया ।
शबर्या अतिथीभूतरामचन्द्रप्रपूजने ॥ १२ ॥

धर्मः कृते चतुष्पादस्त्रेतायां त्रिपदात्मकः ।
द्वापरे च द्विपादेकपादश्चाग्रे भविष्यति ॥ १३ ॥

नष्टप्रायं वयं विद्मोऽद्धुनैवाग्रेऽस्य का कथा ।
यत्रेदृशः कुलीनोऽपि यातो वुद्धिविपर्ययम् ॥ १४ ॥

इत्थं विकत्थमानास्ते मुनयः श्रौत्रगर्विताः ।
निनिन्दुः शबरीं तस्या अतिथिं च रघूद्वहम् ॥ १५ ॥

हीयेतामुत्रिकं श्रेयो भगवन्मात्रनिन्दया ।
ऐहिकं चामुत्रिकं च श्रेयस्तद्भक्तनिन्दया ॥१६ ॥

क्षमेताप्यपराधं स्वं धीरोदात्तगुणो हरिः ।
भक्तप्रियो न क्षमते स्वभक्तस्यापराधनम् ॥ १७ ॥

शोणितौघवहा सद्यस्तेषामाश्रमगा सरित् ।
कृमिविद्ध्रूस्मबहुला चाभवदुर्गमा क्षणात् ॥ १८ ॥

अग्निहोत्रे स्थितश्चाग्निस्तत्क्षणात्प्रशमं ययौ ।
रामभक्तविनिन्दायाः फलं सद्यो व्यदृश्यत ॥ १९ ॥

निन्दयन्ते यत्र शुचयो रामभक्ता दृढव्रताः ।
कुतस्तत्र भवेत् क्षेममापदश्च पदे पदे ॥ २० ॥

ततो हाहाकृतमभूत सर्वमाश्रममण्डलम् ।
ब्राह्मणाश्च समुद्विग्ना बभूवुः स्वस्वसद्मनि ॥ २१ ॥

नित्यस्नानक्रियास्तेषां प्रतिबद्धास्तदाभवन् ।
अकस्माद्रक्तवाहिन्यां जातायां सरिति क्षणात् ॥ २२ ॥

अभूज्जलं निपानेषु कृमिविड्भस्मभिश्चितम् ।
ततश्च ब्राह्मणाः सर्वे शुशुचुः स्वस्वचेतसि ॥ २३ ॥

अहो किमेतत् संजातमकस्माद् विषमं फलम् ।
उपस्थितो हि सर्वेषां धर्मनाशोऽसुसंक्षयः ॥ २४ ॥

एकदैव महत्पापं सर्वेषां समुपस्थितम् ।
किं कुर्मः क्व नु गच्छामः कृच्छ्र ईदृग्विधोऽध्वनः ॥ २५ ॥

गोवधो ब्रह्महत्या वा पापमन्यदथापि वा ।
संलग्नं न सुविषमं यस्येदं समभूत्फलम् ॥ २६ ॥

इतीव शोचयन्तस्ते ब्राह्मणा हीनवर्चसः ।
नाधिजग्मुः स्वदुःखान्तं प्रतिबद्धक्रियाकुलाः ॥ २७ ॥

तेषामाविरभूद्योगी भगवान् कुम्भसम्भवः ।
ववन्दिरेतं सर्वेऽपि संक्षीणब्रह्मवर्चसाः ॥ २८ ॥

तानुवाच ततोऽगस्त्यो विषण्णमनसो द्विजान् ।
अहो म्लानश्रियो जाताः कथं सर्वे द्विजोत्तमाः ॥ २९ ॥
त ऊचुस्तेन सम्पृष्टा मुनिना वाडवोत्तमाः ।
उपजातं यथावृत्तमकस्मादाश्रमे निजे ॥ ३० ॥
श्रुत्वा तेषां तथा वृत्तमगस्त्यो योगचक्षुषा ।
तत्कारणमपश्यद्वं अपराधं महीयसः ॥ ३१ ॥
ततस्तानुक्तवानेष भगवान् सर्वदर्शनः ।
शृणुध्वं मुनयो यूयं महीयस्यपराधिनः ॥ ३२ ॥
महतो ह्यपराधेन किं किं दुःखं न जायते ।
तद्यूयं ब्रूथ धर्मज्ञा यथा वृत्तमभूदिह ॥ ३३ ॥
कः स्विद्धि सुमहानत्र भवदाश्रममण्डले ।
आगन्तुको वा स्थायी वा यूयं यदपराधिनः ॥ ३४ ॥

इत्थं वचः कुम्भयोनेर्निशम्य तेऽन्योन्यवक्रेक्षणकारिणो द्विजाः ।
स्मृत्वाऽऽत्मना जातमज्ञानतस्तद् बभाषिरे ते महतोऽपराधनम् ॥ ३५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे मुनिजनक्लेशो नामैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥

*

सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

मुनय ऊचु

अपराद्धमिह ब्रह्मन् प्रायोऽस्माभिर्न कस्यचित् ।
एकं तु तव वक्ष्यामो भगवन् सर्वदर्शिनः ॥ १ ॥

वसत्यस्मिन् वने काचित्किराती भाग्यसम्भृता ।
अतिथिः समभूद्यस्या रामो रघुकुलोद्भवः ॥ २ ॥

श्रोत्रियान् ब्राह्मणश्रेष्ठान् सार्घहस्तान् कृतस्पृहान् ।
पश्यतोऽस्माननादृत्य ययौ तस्या निकेतने ॥ ३ ॥

शिष्ट एवं कथं कुर्यात्तेनास्माभिरमर्षतः ।
किराती सदनं गच्छन् विगीतो रघुपुङ्गवः ॥ ४ ॥

अधमा कर्मणा जात्या मांसगृध्नुः किरातजा ।
कथं सा योग्यतां प्राप्ता रामस्यातिथिदानतः ॥ ५ ॥

इति निन्दावचोऽस्माभिस्तथ्यं चेत्तस्य भाषितम् ।
नापराद्धं तदास्माभिरन्यथा त्वपराधिनः ॥ ६ ॥

श्रुत्वा कुम्भोद्भवस्तेषां वचनं तदकैतवम् ।
सर्वदर्शी मुनिश्रेष्ठ इदमाह द्विजोत्तमान् ॥ ७ ॥

हन्त द्विजवराः सम्यगपराधो बभूव वः ।
किराती रामभक्ता सा विगानं कथमर्हति ॥ ८ ॥

सोढव्यमेव रामेण विगानं स्वस्य कर्हिचित् ।
न तु रामः स्वभक्ताया विगानं सोढुमर्हति ॥ ९ ॥

तदेवानर्थमूलं वो जातमाश्रममण्डले ।
निन्दा हि महतो हन्ति विद्या वीर्यं यशः श्रियम् ॥ १० ॥

अतः समुपजाताः स्थ प्रक्षीणब्रह्मवर्चसाः ।
प्रोषिता श्रीर्गृहेभ्यो वो विपदश्च समागताः ॥ ११ ॥

रामस्य च परं तत्त्वं न जानीथ द्विजोत्तमाः ।
अतो विनिन्दनं तस्य कृतवन्तः स्थ मोहतः ॥ १२ ॥

स वै परात्परः साक्षाद् भक्तानामभयप्रदः ।
भुवो भारावतारार्थमवतीर्णो रघोः कुले ॥ १३ ॥

विना रामेण वै को नु हन्यादेकेन पत्रिणा ।
दृप्तासुरचमूसंघानजेयांस्त्रिदशैरपि ॥ १४ ॥

विचित्राण्यस्य वीर्याणि गुणाः संख्यातिगा विभोः ।
कर्माणि लोकपुराणानि कीर्तयः सर्वमङ्गलाः ॥ १५ ॥

स स्वयं भगवान् रामो मायेशो गुणवर्जितः ।
तथापि लोकदृष्ट्यैष गुणवानिव लक्ष्यते ॥ १६ ॥

न तत्र कालमायाद्याः प्रभवन्ति कुतः परे ।
यत्रास्य परमं धाम चराचरभुगव्ययम् ॥ १७ ॥

स्वयं भासातपत्येष विश्वसाक्षी सनातनः ।
अन्यानपेक्षो भगवान् विश्वसर्गादिषु स्थितः ॥ १८ ॥

गायन्त्येनं श्रुतिगणाः श्रयन्त्येनं महर्षयः ।
तापसाः शुद्धमनसो भजन्त्येनं समाहिताः ॥ १९ ॥

गतिर्मतिः प्रभुश्चैष विश्वात्मा विश्वदैवतः ।
स एष भगवान् रामः ककुत्स्थकुलसम्भवः ॥ २० ॥

रामतत्त्वं परं वित्त दुर्ज्ञेयं तन्महात्मभिः ।
श्रुतिमूर्द्धसु संरूढं गिरां यत्र समन्वयः ॥ २१ ॥

तदवज्ञानतो विप्राः कथं न स्थापराधिनः ।
तमेव शरणं यात तदा सुखमवाप्स्यथ ॥ २२ ॥

इतोऽविदूर एवासौ प्रायो गच्छति सानुजः ।
तं शीघ्रं शरणं यात स वो दुःखं हरिष्यति ॥ २३ ॥

साक्षाद्ब्रह्मण्यदेवोऽसौ द्विजधर्मत्रयीहितः ।
सर्वदेवोपकर्ता च यज्ञात्मा यज्ञभुक् स्वयम् ॥ २४ ॥

संजातमात्रे रघुवंशकेतौ यस्मिन् परस्मिन् पुरुषप्रकाण्डे ।
उच्चैरवाद्यन्त सुरालयेषु सहानकैर्दुन्दुभयः सुभव्याः ॥ २५ ॥

स रामचन्द्रःसुकृती गुणज्ञो महायशा विप्रसुरत्रयीणाम् ।
हिताय वर्त्स्यत्यवनौ चिराय कुर्वन् पवित्रं विपुलं चरित्रम् ॥ २६ ॥

इतीरितं कुम्भभवेनयोगिना श्रुत्वा सुसंजातधियो द्विजोत्तमाः ।
गन्तुं रघुश्रेष्ठसमीपगोचरे संकल्पयामासुरुदित्वरस्पृहाः ॥ २७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डेऽगस्त्यकृत-श्रीरामतत्त्वप्रबोधो नाम सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७०॥

*

एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

ततोऽगस्त्यं पुरस्कृत्य मुनयः सर्व एव ते ।
काकुत्स्थमन्वगुः शीघ्रं यान्तं घोरतरे पथि ॥ १ ॥

त आराद्दृष्यमूकाद्रिं प्राप्ता रामस्य संनिधिम् ।
ववन्दे तानसौ दृष्ट्वा दूरादेव द्विजोत्तमान् ॥ २ ॥

कुम्भोद्भवपुरोगास्ते ददुस्तस्मै शुभाशिषः ।
विहाय गमनं रामो मध्येमार्गं व्यतिष्ठत ॥ ३ ॥

तेऽर्घहस्ता तदुश्चार्घं तस्यार्घ्यस्य महात्मनः ।
तानुवाचैष काकुत्स्थो युगपत्समुपागतान् ॥ ४ ॥

अहो महर्षयः सर्वे किमतीव त्वरायुताः ।
युगपन्मामुपगताः कच्चिद्वः कुशलं वने ॥ ५ ॥

कच्चिन्न राक्षसैर्दुष्टैर्यूयमुद्वेजिता द्विजाः ।
कच्चिन्न परचक्रोत्थं भयमाश्रमकानने ॥ ६ ॥

कच्चिद्वोऽग्निस्त्रयीसंस्थो यज्ञशालोऽस्ति भावुकः ।
कच्चिद्व आश्रमसरिद्भूरिस्रोताः शुभोदका ॥ ७ ॥

कच्चिद्व आश्रमवने भूरुहाः फलशालिनः ।
लूयन्ते नैव दुर्दान्तैः पौरजानपदैर्जनैः ॥ ८ ॥

कच्चिद्व आश्रमजुषो विशोकाः पशुपक्षिणः ।
उद्वेज्यन्ते न भिल्लाद्यैर्नृशंसैर्मांसगृध्नुभिः ॥ ९ ॥

संहत्य युगपद्विप्रा ब्रूतागमनकारणम् ।
उद्विजेऽहं भवद्धेतोः का वो भीर्मयि जीवति ॥ १० ॥

अथोचुर्ब्राह्मणाः सर्वे सूचिताः कुम्भयोनिना ।
सर्वे त्वां रघुशार्दूल याताः स्म शरणं वयम् ॥ ११ ॥

येषां न आश्रमेष्वग्निर्यज्ञियः प्रशशाम ह ।
अकस्माच्चैव संजाता शोणितौघवहा सरित् ॥ १२ ॥

कृमिविड्भस्मबहुला दुर्गमा पशुपक्षिभिः ।
निपानानि तथैवासन् क्षीणं नो ब्रह्मवर्चसम् ॥ १३ ॥

तन्मूलं कृतमस्माभिर्विगानं ते रघूद्वह ।
त्वद्भक्तायास्तथा तस्याः शबर्य्याः सुकृतात्मनः ॥ १४ ॥

तन्नः क्षमस्वनितरामपराधं कृपानिधे ।
कोऽन्यस्त्वद्ब्राह्मणान् रक्षेद्वीर ब्रह्मण्यदैवत ॥ १५ ॥

इति श्रुत्वावचस्तेषां धर्मात्मा रघुपुङ्गवः।
उवाच करुणासिन्धुः शोचंस्तस्य प्रतिक्रियाम्॥ १६॥

श्रीराम उवाच

शान्तोऽग्निरग्निहोत्रीयः पुनः प्रज्वलतु द्विजाः।
प्रदक्षिणाग्निः शुभकृद्भवतामाश्रमेषु सः॥ १७॥

पुण्यस्रोतोवहा भूयाद्भवतामाश्रमे नदी।
सदैवास्तु शुभं विप्रा भवतामप्रतिक्षतम्॥ १८॥

मद्विगानं मया विप्राः सोढमेव न संशयः।
तस्यास्तु मम भक्ताया विगानं सर्वनाशनम्॥ १९॥

सैव क्षमापनीया वो गत्वा तस्या निकेतनम्।
भिल्लजातिरितीयं वः शङ्कनीया न सोत्तमा॥ २०॥

सा धन्या भूरिभागा च महायोगा तपस्विनी।
नमस्या सर्वदेवानां कथान्येषां तु का नृणाम्॥ २१॥

नित्यं वशेस्म्यहं तस्या मत्प्रेमावहितात्मनः।
कृपयिष्यति वो विप्रा नियतं सा कृपावती॥ २२॥

तस्याः पादरजःस्पर्शादतीर्थं तीर्थतामियात्।
अतो भूयः समाराध्या भवद्भिः सा किरातिनी॥ २३॥

तस्या विगानतो जातमनिष्टं वो द्विजातयः।
न मद्विगानतः शक्यं यदहं भवनां हितः॥ २४॥

मां तु वित्त भवेदकदैवतं नित्यमेव भवदेकसंश्रयम्।
युष्मदङ्घ्रिरजसा द्विजातयः पूय एव भृशमेष सान्वयः॥ २५॥

ब्राह्मणाः सन्ति मे प्राणा दैवतं मम ब्राह्मणाः।
ब्राह्मणैः शुभवानस्मि शपेऽहं यदतोऽन्यथा॥ २६॥

न मत्कृतमनिष्टं वः शङ्कनीयं द्विजातयः।
भवतामेव भव्यार्थं विचराम्येष भूतले॥ २७॥

इति निगदय सतान् रघुपुङ्गवः प्रणतिभिः परितुष्टमतीन् द्विजान्।
समुपदिश्य हितं शबरी नतिं कथमगस्त्यमुखान् विससर्ज तान्॥ २८॥

ते वाडवा रघुपतेर्वचसा तदैव कुम्भोद्भवं मुनिवरं पुरतो निधाय।
जग्मुः क्षणेन शबरी विपिनं समेता यत्रास्ति सा रघुवरस्य गुणान् गृणाना॥ २९॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे शबरीगृहोपगमनो नामैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १७१॥

*

द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे प्रणम्य रामसेविकाम् ।
अमर्षरहितां शान्तां शबरीमिदमूचिरे ॥ १ ॥

हे देवि मातः शबरि रामभक्ते कृपावति ।
मनसा कृपयास्मभ्यं ब्राह्मणेभ्यः शुभेक्षणे ॥ २ ॥

तव भक्त्या वशीभूतो भगवान् रघुपुङ्गवः ।
अतस्त्वां जननि स्तोतुं गिरा नो पारयामहे ॥ ३ ॥

जग्राह त्वत्कृतातिथ्यं रामो भुवनदुर्लभः ।
काङ्क्षतोऽस्माननादृत्य ब्राह्मणान् श्रोत्रियानपि ॥ ४ ॥

अतस्त्वं श्रोत्रियेभ्योऽपि ब्राह्मणेभ्यो वरीयसी ।
त्वयोद्धृता निजकुले दश पूर्वे दशापरे ॥ ५ ॥

निवसन्त्या त्वया देवि वनमेतत् सुपावनम् ।
तीर्थभूतमभून्मातः का ते स्तुतिरतः परम् ॥ ६ ॥

अजानता जानता वा यत्ते केनापि किंचन ।
अपराद्धमभून्मातस्तत्त्वं क्षन्तुमिहार्हसि ॥ ७ ॥

पुरस्तात्तव पश्चाद्वा यत्किंचिदपराधजम् ।
मातस्त्वदनुकम्पातस्तन्न आगोऽपगच्छतु ॥ ८ ॥

जननि त्वं सदा पूता रामभक्तिप्रभावतः ।
त्वद्दर्शनेन पूयन्ते महापातकिनो जनाः ॥ ९ ॥

त्वया वशीकृतो रामः प्रेममात्रेण संततम् ।
मुनीनां शुद्धचित्तानां यो वै दूरतरेस्थितः ॥ १० ॥

धन्यं तव परं प्रेम धन्यं ते ज्ञानमूर्जितम् ।
धन्यं तवकुलं मातर्धन्या त्वं तत्र सम्भवा ॥ ११ ॥

विज्ञापनमिदं मातः श्रूयतां नस्त्वयाधुना ।
शोणितौघवहा जाता अस्मदाश्रमगा सरित् ॥ १२ ॥

तस्यां प्रक्षालय निजौ पादौ त्वं विश्वपावनी ।
ततः सा पूतसलिला प्रकृतिस्था भविष्यति ॥ १३ ॥

विलुप्तस्नानाचमनाः प्रतिबद्धक्रिया वयम् ।
पूतायां तत्र वाहिन्यां भविष्यामः सुखान्विताः ॥ १४ ॥

आशिषस्ते प्रयोक्ष्यामो याभिस्तव रघूद्वहे ।
भविष्यति परा भक्तिर्भूयो वृद्धिमुपेयुषी ॥ १५ ॥

त्वत्पादरजसः स्पर्शात् पूयेरन् किल नो गृहाः ।
अग्निहोत्रस्थितो वह्निः स पुनः प्रज्वलिष्यति ॥ १६ ॥

प्रतिबद्धक्रियाः सन्ति स्वाश्रमेषु द्विजातयः ।
करिष्यन्ति च कर्माणि यथास्वं त्वदनुग्रहात् ॥ १७ ॥

त्वं शान्तधीर्हरेर्भक्ता कामक्रोधविवर्जिता ।
तथा कुरु यथा विप्राः प्राप्नुयुः सुखमाश्रमे ॥ १८ ॥

प्रभुर्ब्रह्मण्यदेवस्ते रामचन्द्रो दयानिधिः ।
तद्भक्ता त्वं तथैवाहा वर्त्तेथा इति नो मतिः ॥१९ ॥

इतीरितं साधुधियां द्विजन्मनां निशम्य लज्जानुगता किरातिनी ।
प्रणम्य तान् सार्घकरा यथाविधि प्रपूज्य सानन्दमिदं वचोऽब्रवीत् ॥ २० ॥

शबर्युवाच

अलं मे श्लाघया विप्रा अधमाहं च योनितः ।
अतीवेदमनर्हं च यन्मां यूयं नमस्यथ ॥ २१ ॥

यूयं हि श्रोत्रियश्रेष्ठा ज्ञानविज्ञान भाजनाः ।
तपोधनाः सर्ववर्णनमस्कार्या द्विजातयः ॥ २२ ॥

अपकृष्टतमे जन्तौ महद्भिर्विहिता नतिः ।
आयुः श्रियं यशो हन्ति तस्य नास्तीह संशयः ॥ २३ ॥

अहं दीनतमा लोकेऽधमा जात्याच कर्मणा ।
कथं नु योग्यतां याता यन्मां नमथ वाडवा ॥ २४ ॥

रामस्तु भगवान् साक्षादकिंचनजनप्रियः ।
स चेन्न दीने कृपयेद्गतिः स्यात्तस्य तर्हि का ॥ २५ ॥

अचिन्त्यैव कृपा तस्या रामस्य परमात्मनः ।
नापेक्षते कुलं शीलं धनं योग्यत्वमेव च ॥ २६ ॥

विपरीतमिदं मन्ये यत्पादरजसा मम ।
ब्राह्मणानां श्रोत्रियाणां शुद्ध्येयुः सदनानि वः ॥ २७ ॥

स्वत एव विशुद्धानि नित्यं सद्मानि वो द्विजा ।
यत्राभिगमनाज्जन्तुः सकुलः पूयतेतराम् ॥ २८ ॥

किं मां नयथ धर्मज्ञा उपहासं जगत्त्रये ।
भवदुच्छिष्टकवलेऽप्यनर्हां नीचयोनिजाम् ॥ २९ ॥

दत्तं च कृपया मह्यं युष्माभिर्दर्शनं द्विजाः ।
तद्ब्रूत भूरिशर्माणो हितं किं करवाणि वः ॥ ३० ॥

सर्वकर्मस्वनर्हाहं पुरैव विधिनाकृता ।
किं वो वदानि स्वाचारा अनुकम्पध्वमेव तत् ॥ ३१ ॥

इत्युक्त्वा शबरी दीना कुम्भयोनेर्महामुनेः ।
चरणावग्रहीद् दूरादस्पृश्यामीति शङ्कया ॥ ३२ ॥

ततस्तामाह भगवान् कुम्भयोनिर्महाशयः ।
हा रामभक्ते भवती कथंनुत्यास्ति न द्विजैः ॥ ३३ ॥

यस्याः प्रेम्णा वशीभूतो भगवान् रघुपुङ्गवः ।
साक्षात्परात्परः सैष यया ज्ञातश्च सेवितः ॥ ३४ ॥

उत्तिष्ठ देवि ते शीलं लोकोत्तरसुपेशलम् ।
किरातिनि शुभं भूयात्तव साधुतमाकृते ॥ ३५ ॥

यथावदन्त्यमी मातर्ब्राह्मणास्ते गृहागताः ।
तथैव क्रियतां देवि न विलम्ब स्व सम्प्रति ॥ ३६ ॥

त्वत्पादक्षालनाद् देवि शुद्धिमेष्यति सा सरित् ।
अमीषां चाश्रमस्थानं पुनीहि रामसेविके ॥ ३७ ॥

प्रतिबद्धक्रिया एते सर्वे एव द्विजातयः ।
अनुतिष्ठन्तु कर्माणि तत्पुण्यं च लभस्वभोः ॥ ३८ ॥

इति निर्बन्धतस्तेषां रामभक्ता किरातिनी ।
सा तथैवाकरोत्साधुर्यथा तैरभिकाङ्क्षितम् ॥ ३९ ॥

ततस्ते तां पुरोधाय शबरीं रामसेविकाम् ।
जग्मुर्मुनिवराः सर्वे स्वीयमाश्रममण्डलम् ॥ ४० ॥

तस्यामागतमात्रायां मुनीनामाश्रमे मरुत् ।
अवहत् कोमलस्पर्शो निवृत्ताखिलचण्डिमा ॥ ४१ ॥

प्रादुरासीदपूर्वा श्रीर्वने च सुषमाभवत् ।
प्राकाशन्ताग्निहोत्रेषु प्रशान्ता अपि पावकाः ॥ ४२ ॥

पादप्रक्षालनात्तस्या यथापूर्वमभूत्सरित् ।
शीतस्वच्छोदकवहा फुल्लपङ्कजशालिनी ॥ ४३ ॥

निपानेष्वभवद्वारि सुगन्धि स्वादुशीतलम् ।
पूर्वाधिकतरा सम्पदाश्रमेषु व्यवर्त्तत ॥ ४४ ॥

फलिनः पुष्पवन्तश्च नवपल्लवपूरिताः ।
गुञ्जद्भ्रमरपुञ्जाढ्या व्यशोभन्ताश्रमद्रुमाः ॥ ४५ ॥

सरांसि फुल्लपद्मानि स्वच्छशीतोदकानि च ।
अवहन् परमां शोभां क्वणद्भी राजहंसकैः ॥ ४६ ॥

ततः सुरकरोन्मुक्तकल्पवृक्षप्रसूनजा ।
अपतच्छबरीमुर्द्ध्नि वृष्टिः कौतुकवर्द्धिनी ॥ ४७ ॥

माहात्म्यं रामभक्तायास्तस्यास्तत्प्रेक्ष्य वाडवाः ।
अत्यर्थविस्मितस्वान्ताः समंतात्तुष्टुवुस्तराम् ॥ ४८ ॥

सा स्तूयमाना मुनिभिः समंतादगस्त्यमुख्यैर्द्विजसत्तमैस्तैः ।
विलज्जमाना मनसा किराती ततो निजां पर्णकुटीं जगाम ॥ ४९ ॥

माहात्म्यं रामभक्तायाः शबर्याः सुमहात्मनः ।
य एतच्छ्रुणुयान्नित्यं सोऽपि दुःखात् प्रमुच्यते ॥ ५० ॥

जात्या निषिद्धा क्रिययापि हीना किरातबंशप्रभवापि सा स्त्री ।
सीतापतेर्भक्तिभरप्रभावाद्बभूव मान्या नितरां मुनीनाम् ॥ ५१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे शबरीमाहात्म्यसूचनो नाम द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

*

त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

स आराद्दृष्यमूकाद्रीं बभूव रघुनन्दनः ।
सलक्ष्मणः प्रियतमाविश्लेषकृशविग्रहः ॥ १ ॥

कुर्वन्तौ विविधां वार्तां नीलनीरदसुन्दरौ ।
घोषयन्तौ धनुर्जीवां यान्तौ तौ भ्रातरौ पथि ॥ २ ॥

दूरान्निरीक्षितौ वीरौ कमनीयसुविग्रहौ ।
ऋष्यमूकाद्रिशिखरे निषण्णैः कपिपुङ्गवैः ॥ ३ ॥

सुग्रीवहनुमत्प्रमुखैः कावेताविति तर्कितौ ।
प्रेक्ष्यमाणौ च साशङ्कं स्वभावाच्चललोचनैः ॥ ४ ॥

तत्र वीरो रवे पुत्रः सुग्रीवो नाम वानरः ।
भ्रात्रा पराजितोऽत्यर्थं किष्किन्धाया विवासितः ॥ ५ ॥

मन्त्रयाणाश्चिरेणास्ते प्रच्छन्नः कपिभिः समम् ।
बालिनो वधमन्विच्छंस्ताराभोगाभिलाषुकः ॥ ६ ॥

नलोनीलोऽङ्गदश्चैव तुरीयो हनुमांस्तथा ।
कपयोऽमी महावीराः सुग्रीवस्य हिते स्थिताः ॥ ७ ॥

तेषां चिरादभून्मन्त्रस्तत्र वालिवधं प्रति ।
त्रैलोक्ये को नु पर्याप्तो हन्तुं तं बलिनां वरम् ।
अतः सर्वेऽपि कपयो मूढाः कर्तव्यकर्मणि ॥ ८ ॥

प्रच्छन्नास्तद्भयादेव ऋष्यमूके महीधरे ।
निलीय खलु सुग्रीव आस्ते कपिभटैः समम् ॥ ९ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तौ तु दृष्टौ तैः कृततर्कणैः ।
राघवौ लोकरुचिरौ घोषयन्तौ धनुर्गुणम् ॥ १० ॥

ततः सुग्रीव आहेदं हनुमन्तं महाबलम् ।
अये कपिवरज्ञेयौ कौ चैतौ लोकसुन्दरौ ॥ ११ ॥

वीराधिवीरौ विमलौ पुण्डरीकविलोचनौ ।
तापसौ जटिलौ चीरवल्कलाजिनवाससौ ॥ १२ ॥

विभूतिधवलौ श्यामौ ज्वलन्तौ पावकोपमौ ।
धनुर्धरौ नराकारौ निर्जराविव तेजसा ॥ १३ ॥

सर्वावयवशोभाढ्यौ सिंहविक्रान्तिशालिनौ ।
अमानुषबलोपेतौ वीर्यवन्तौ दुरासदौ ॥ १४ ॥

प्रायस्तावेव खल्वेतौ श्रीमन्तौ रामलक्ष्मणौ ।
यौ पुरोदाहृतौ मह्यं मुनिभिः शैलवासिभिः ॥ १५ ॥

खरदूषणहन्तारौ त्रिशिरोवधकारकौ ।
एकबाणहृतानेकसहस्रबलराक्षसौ ॥ १६ ॥

हृतशूर्पणखानासाश्रवणौ खड्गधारया ।
कृतरुद्रधनुर्भङ्गौ बालकावेव यौ पुरा ॥ १७ ॥

हृतभार्गवसंदर्पौ विश्वामित्रमखावनौ ।
ताडकामारणकरौ सुबाहुवधपण्डितौ ॥ १८ ॥

भुवि विख्यातयशसौ संस्तुतौ मुनिपुङ्गवैः ।
तावुभौ भ्रातरावेतौ मद्भाग्यान्न भविष्यतः ॥ १९ ॥

तयोर्ज्येष्ठस्तु यो रामः स वै पुरुषपुङ्गवः ।
स चेन्मद्भ्रातरं हन्यात् कृतार्थः स्यां तदा न किम् ॥ २० ॥

श्रूयतेऽपि च तद्भार्या रावणेन बलीयसा ।
हृता रक्षोधिनाथेन ततश्चिन्तातुरोऽप्ययम् ॥ २१ ॥

तस्य मे च गतिस्तुल्या ततो मैत्री न किं भवेत् ।
कृतकृत्यावुभौ स्यातां साहाय्यं चेत्परस्परम् ॥ २२ ॥

अतोऽहं वेत्तुमिच्छामि कावेतौ पुरुषोत्तमौ ।
तद्गच्छ हनुमञ्छीघ्रमानयोदन्तमेतयोः ॥ २३ ॥

इत्युक्तो हनुमांस्तेन ऋष्यमूकस्य मूर्धनि ।
प्रणम्य तं विनिर्यातो रामलक्ष्मणसंनिधौ ॥ २४ ॥

सोऽपश्यदागत्य पथि प्रयान्तौ धनुर्धरौ तौ पुरुषप्रवीरौ ।
परस्परं कोमलमालपन्तौ निशागमे स्थानपरिग्रहार्थम् ॥ २५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे हनुमदागमनो नाम त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७३॥

*

चतुस्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

वीराधिवीरौ तौ दूरात्तमायान्तमपश्यताम् ।
महाबलं महासत्त्वं हनुमन्तं कपीश्वरम् ॥ १ ॥

मेरुशृङ्गप्रतीकाशं तप्तहाटकवर्चसम् ।
गगनोच्छ्रितलांगूलमाजानुभुजशोभितम् ॥ २ ॥

हारकुण्डलकेयूरकाञ्चीवलयभूषितम् ।
तेजःप्रदीप्तनयनं दीव्यत्प्रांशुतमाकृतिम् ॥ ३ ॥

रक्तवस्त्रसमाबद्धमल्लकच्छविभूषितम् ।
उदयत्पूर्णचन्द्राभमुखदीधितिशालिनम् ॥ ४ ॥

स आगत्य समीपे तौ ववन्दे कपिपुङ्गवः ।
एषोऽस्मि हनुमान्नाम वायुपुत्रोऽञ्जनीसुतः ॥ ५ ॥

वन्देवां पुरुषश्रेष्ठौ कौ युवां वदतं मम ।
सुग्रीवेण कपीन्द्रेण प्रेषितो भवदन्तिकम् ॥ ६ ॥

प्रवृत्तिं चापि युवयोर्ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः ।
अधिज्यधनुषौ वीरौ युवां किं कर्तुमिच्छथः ॥ ७ ॥

जानामि युवयोर्मैत्रीमासाद्य कपिपुङ्गवः ।
विवासितोऽपि स्वस्थानात् सपत्नं जेतुमिच्छति ॥ ८ ॥

भवन्तौ खलुलक्ष्येते अप्रमेयबलौ भुवि ।
तेजसाप्रतिमौ वीरौ सिंहविक्रान्तिशालिनौ ॥ ९ ॥

मन्ये भवेऽस्मिन् युवयोः सादृश्यं नैव कुत्रचित् ।
युवां सेवितुमिच्छामि कायेन मनसा गिरा ॥ १० ॥

यौ तर्कितौ युवां दूरात्तावेव यदि निश्चितम् ।
सिद्ध एव कपीन्द्रस्य तदा साधुमनोरथः ॥ ११ ॥

निशम्य कपिमुख्यस्य तथा हनुमतो वचः ।
उवाच रघुशार्दूलो विहस्य प्रणयान्वितम् ॥ १२ ॥

महाबल महासत्त्व वायुसूनोऽञ्जनीसुत ।
एह्येहि त्वाहमिच्छामि परिरब्धुं सहानुजः ॥ १३ ॥

इत्युक्त्वा सानुजो रामः परिरेभेऽञ्जनीसुतम् ।
अथ द्रुमतले सम्यक् संनिषण्णास्त्रयोऽपि ते ॥ १४ ॥

तावुभौ पुरुषश्रेष्ठौ तृतीयः स कपीश्वरः ।
उवाच रघुशार्दूलस्तं सम्बोध्य कृतादरः ॥ १५ ॥

स्वागतं ते कपिश्रेष्ठ महाबलपराक्रम ।
त्वया मैत्रीमहं कर्तुमिच्छामि पुरुपर्षभ ॥ १६ ॥

विचरन्तं वने विद्धि सुतं दशरथस्य माम् ।
रामं भूरिपरिक्लिष्टं प्रियाविश्लेषदुःखतः ॥ १७ ॥

सुमित्रायाश्च तनयो लक्ष्मणोऽयं ममानुजः ।
न नु भाग्यवशादेव लब्धस्त्वं मित्रमावयोः ॥ १८ ॥

ननु रक्षोधिनाथेन प्रिया मेऽपहृता वने ।
रहःस्था चोरवृत्यैव जिघांसुस्तमहं द्रुतम् ॥ १९ ॥

बलान्निहत्य तं वीरं मम पत्न्यपहारकम् ।
आनिनीषुःप्रियामस्मि सहायाश्चेद्भवादृशाः ॥ २० ॥

श्रुत्वा रघुवतेर्वाक्यमाञ्जनेयो मुदान्वितः ।
उवाच स्मितसंशोभिवदनाम्बुरुहः स तम् ॥ २१ ॥

अहो राम रघुश्रेष्ठ विश्वाराम दयानिधे ।
वितर्कितं यथा तेन सुग्रीवेण महात्मना ।
तत्तथाभूतमेवैतदहोभाग्यं महद्धि नः ॥ २२ ॥

त्वां विना भुवने कोऽन्य ईदृशं तेज उद्वहेत् ।
अहो भाग्यं वनस्यास्य यस्मिन्नुपगतोभवान् ॥ २३ ॥

अहो भाग्यं कपीन्द्रस्य मैत्रीमिच्छतियस्त्वया ।
अहो भाग्यंममाप्यद्धा दास्यमिच्छामियस्तव ॥ २४ ॥

सुग्रीवस्य कपीन्द्रस्य भ्राता ननु महाबलः ।
वालीनाम बलात्तेन तस्य प्राणप्रिया हृता ॥ २५ ॥

विवासितश्च किष्किन्धानगर्याः स पराजितः ।
इत्येष तव साहाय्यमन्विच्छति कपीश्वरः ॥ २६ ॥

सपत्नं तस्य बलिनं पराभूप रणे भवान् ।
तं स्थापयति चेद्राज्ये तत्सिद्धोऽस्य मनोरथः ॥ २७ ॥

तदनेकमहापद्मवानराणां चमूस्तव ।
कार्यसिद्ध्यै व भवेन्नूनं प्राणैरपि रघूद्वह ॥ २८ ॥

एवं चेत्पुरुषश्रेष्ठ तदा रक्षोऽधिपः कियात् ।
निहन्य तं खलं शीघ्रमानेष्यसि निजप्रियाम् ॥ २९ ॥

प्रेषितोऽहं कपीन्द्रेण त्वत्सकाशमिहागतः ।
इच्छामि तेन भवतः सखित्वं गुणवत्तरम् ॥ ३० ॥

इत्युक्तः पवनसुतेन रामचन्द्रोभक्तिप्रह्वेणाशु संजाततोषः ।
तन्मैत्रीं समभिलसन् हृदा मनस्वी कान्ताहेतोः खिन्नचेता उवाच ॥ ३१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे हनुमन्मेलनो नाम चतुस्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

*

पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

सुग्रीवेणाहमिच्छामि दृढां मैत्रीमसंशयम् ।
महाबले दशमुखे चिकीर्षुरभिषेणनम् ॥ १ ॥

भवांस्तत्र प्रतिनिधिः सखे भवितुमर्हति ।
यथास्य मयि मे चास्मिन् जायेत प्रत्ययो महान् ॥ २ ॥

सर्वेषां किल भावानां विश्वासो मूलकारणम् ।
मन्त्रो जपस्तपः सेवा मैत्री त्वेनं विना मुधा ॥ ३ ॥

मयि विश्वासमुत्पादय्य तस्य तत्र तथा मम ।
भवानपि मरुत्पुत्र सख्यं मयि करिष्यति ॥ ४ ॥

सख्यं हि मूलं सख्यस्य जयस्य यशसः श्रियः ।
विद्यायाश्चैव वीर्यस्य भुक्तेर्मुक्तेश्चमारुते ॥ ५ ॥

दुर्लभं महतः सख्यं लोके मारुतनन्दन ।
अन्योन्यमुपजातं यदन्योन्यं सुखयेत्तराम् ॥ ६ ॥

अकैतवं च हनुमन् भवेत् सख्यस्य कारणम् ।
सख्यं हेतुः प्रत्ययस्य स हेतुः कार्यसम्पदः ॥ ७ ॥

कामात् क्रोधाद्भयाल्लोभात्प्रतिष्ठातोऽर्थ गौरवात् ।
यद्भवेत् पुरुषे यस्मिन् न तत्सख्यं न स सखा ॥ ८ ॥

निरूपाधि तु यज्जातमन्योन्यमभिवर्द्धते ।
भूयो गुणानर्जयति तत्सख्यं सख्यमुच्यते ॥ ९ ॥

कार्यैव सज्जनैर्मैत्री निसर्गादुपकारिभिः ।
कृत्वा संवर्द्धनीया च परस्परसुखैषणैः ॥ १० ॥

गुणवानपि लोकेऽस्मिन्न कार्यो दुर्जनः सखा ।
दृश्यमाना गुणास्तस्य दोषा एव भवन्ति हि ॥ ११ ॥

निर्गुणाऽपि भृशं कार्यः सज्जनः सततं सखा ।
स्वभावो हि गुणस्तस्य किं कार्या अपरे गुणाः ॥ १२ ॥

दुर्लभः सज्जनो लोके निसर्गात् सुकृतस्पृहः ।
तस्य मैत्रीं जनो लब्ध्वा सततं सुखमश्नुते ॥ १३ ॥

मैत्री तु समयोरेव भवत्यत्र सुखावहा ।
सुखं वा यदि दुःखं वा सममेवार्यमाणयोः ॥ १४ ॥

न जातु मैत्री वैषम्ये लोके दृष्टचरी क्वचित् ।
पयोलवणयोर्यद्वद्वारिपावकयोरिव ॥ १५ ॥

दुःखी दुःखवतो मित्रं सुखी सुखवतस्तथा ।
न सुखी दुःखिनो मित्रं न दुःखी सुखिनोऽपि च ॥ १६ ॥

मूर्खपण्डितयोर्मैत्री दरिद्रधनिनोस्तथा ।
विषयिज्ञानिनोश्चैव लोके हास्याय जायते ॥ १७ ॥

राजा मित्रं भवेन्नैव नैव योगी च निःस्पृहः ।
एतेषां विदधन्मैत्रीं जनोयाति विडम्बनम् ॥ १८ ॥

मैत्रीं सप्तपदामाहुर्वनेऽपि चलतां सताम् ।
अकैतवं च सौहार्दं यत्र स्यादुपचायवत् ॥ १९ ॥

प्रतिष्ठाधनलिप्सुत्वमुपाचार उदासता ।
नैते समुपयुज्यन्ते यत्र मैत्री परस्परम् ॥ २० ॥

एकोऽपि सुजनो मित्रं हरत्येव विपद्गणम् ।
अनेकोऽपि सुसम्पृक्ता विज्ञेया दु[1]र्जना मुधा ॥ २१ ॥

देशे देशे च कार्याणि मित्राणि निरुपाधितः ।
न ज्ञायते कुत्र काले कःस्वित्समुपयुज्यते ॥ २२ ॥

अल्पीयानिति नो दास्यं मैत्रीमिच्छद्भिरात्मना ।
कालो हि समवैषम्यहेतुः किंस्वित्करिष्यति ॥ २३ ॥

---

१. भुवने–मथु०, अयो० ।

महानपि कृतं मित्रं लघुतां याति दैवतः ।
लघुश्चापि नरो मित्रं महत्त्वं यातिमारुते ॥ २४ ॥

मैत्र्याश्च परमं तत्त्वं को जानाति विशेषतः ।
सर्वो हि मित्रयोगेन दृश्यते सुखमश्नुवन् ॥ २५ ॥

भूमेर्जलधरो मित्रमनपेक्षितनिष्कृतिः ।
काले काले सुसंतप्तां यस्तां सिञ्चति वारिभिः ॥ २६ ॥

जलस्य कतमं मित्रमनपेक्षितनिष्कृति ।
स्दयं तत्पङ्कलिप्तोऽपि यस्तं निष्पङ्कतां नयेत् ॥ २७ ॥

वह्नेः समीरणो मित्रमनपेक्षितनिष्कृतिः ।
यः स्वयं लब्धतापोऽपि तमुद्दीपयितुं क्षमः ॥ २८ ॥

समीरस्य तरुर्मित्रमनपेक्षितनिष्कृतिः ।
यस्तेन दत्तकम्पोऽपि पुष्पैः सुरभयत्यमुम् ॥ २९ ॥

चकोरस्य शशी मित्रमनपेक्षितनिष्कृतिः ।
यस्तेनाचम्यमानोऽपि तं नन्दयति रश्मिभिः ॥ ३० ॥

अब्जस्य भास्करो मित्रमनपेक्षितनिष्कृतिः ।
यस्तमिस्त्रामपाकृत्य नित्यदा बोधयत्यमुम् ॥ ३१ ॥

शशी च कुमुदां मित्रमनपेक्षितनिष्कृतिः ।
दिनतापं निराकृत्य यस्तं नन्दयते करैः ॥ ३२ ॥

जलस्य च शरन्मित्रमनपेक्षितनिष्कृतिः ।
या वर्षापङ्कमुद्धृत्य निर्मलीकुरुते ह्रदः ॥ ३३ ॥

वस्त्रस्य च जलं मित्रमनपेक्षितनिष्कृति ।
यत्तन्मलं स्वयं धृत्वा स्वरूपस्थं करोत्यदः ॥ ३४ ॥

पुरुषस्य पटोमित्रमनपेक्षितनिष्कृतिः ।
स्वेदाद्यैर्दूष्यमाणोऽपि यस्तं रक्षति चात्मना ॥ ३५ ॥

सर्पस्य चन्दनं मित्रमनपेक्षितनिष्कृति ।
यत्तेनाक्रान्तमप्याशु सुखयत्यमुमात्मना ॥ ३६ ॥

घनस्यजलधिर्मित्रमनपेक्षितनिष्कृतिः ।
यस्तेन पीयमानोऽपिविभर्तिसलिलैरमुम् ॥ ३७ ॥

लताया भूरुहो मित्रमनपेक्षितनिष्कृतिः ।
यस्तयाऽऽक्रम्यमाणोऽपि तामुत्तुङ्गयतिध्रुवम् ॥ ३८ ॥

सरांसि सरितः कूपास्तरुगुल्मलतादयः ।
गिरिर्जलधरो नावः सूर्याचन्द्रमसौ मही ॥ ३९ ॥

सज्जनः पुरुश्चैते मित्राणि जगतः किल ।
वहन्त्यमी शरीराणिपरोपकृतिहेतवे ॥ ४० ॥

अवश्यं चैव कर्तव्यं निःस्पृहेणापि जन्तुना ।
मित्रमेकमपिप्राज्ञो यत्कृत्वा सुखमश्नुते ॥४१॥

दूषणानि च वक्ष्यामि मैत्रीभङ्गकराणि ते ।
निरस्य तानि सर्वाणि मैत्री कार्या सदा नरैः ॥ ४२ ॥

यः प्रत्यक्षं प्रियं वक्ति परोक्षे त्वप्रियं सदा ।
तेन साकं यदा मैत्री तदा किंस्वित्सुखं लभेत् ॥ ४३ ॥

यश्छिद्रान्वेषणं कुर्योदात्मच्छिद्राणि गोपयन् ।
तेन साकं यदा मैत्री तदा किंस्वित् सुखं लभेत् ॥ ४४ ॥

यः सदोपकृतिग्राही स्वयं चानुपकारकः ।
तेन साकं यदा मैत्री तदा किंस्वत् सुखं लभेत् ॥ ४५ ॥

यस्तुष्यत्युपचारेण स्वयं त्वनुपचारकृत् ।
तेन साकं यदा मैत्री तदा किंस्वित् सुखं लभेत् ॥ ४६ ॥

यः सत्यभाषणात् कुप्येत्तुष्येन्मिथ्योपचारतः ।
तेन साकं यदा मैत्री तदा किंस्वित् सुखं लभेत् ॥ ४७ ॥

यो न शिक्षयते मार्गं कार्याकार्यविवेचनात् ।
तेन साकं यदा मैत्री तदा किंस्वित् सुखं लभेत् ॥ ४८ ॥

संकटे यस्तु सम्प्राप्ते नैव सार्थं ददाति च ।
तेन साकं यदा मैत्री तदा किंस्वित् सुखं लभेत् ॥ ४९ ॥

सुसंहृतो यः क्षेमेषु विषमेष्वेत्युदासताम् ।
तेन साकं यदा मैत्री तदा किंस्वित् सुखं लभेत् ॥ ५० ॥

यो मूढः सर्वकार्येषु प्राज्ञः कर्तुं च योऽक्षमः ।
तेन साकं यदा मैत्री तदा किंस्वित् सुखं लभेत् ॥ ५१ ॥

यः परस्य मनो गृह्णन् मनः स्वस्य निगूहति ।
तेन साकं यदा मैत्री तदा किंस्वित् सुखं लभेत् ॥ ५२ ॥

यः सुतां भगिनीं भार्यां दोषान्मित्रस्य पश्यति ।
तेन साकं यदा मैत्री तदा किंस्वित् सुखं लभेत् ॥ ५३ ॥

चिबुके यस्य रोमाणि न वक्षसि न गण्डयोः ।
तेन साकं यदा मैत्री तदा किंस्वित् सुखं लभेत् ॥ ५४ ॥

अवेरिव दृशौ यस्य मेषस्येव च मारुते ।
तेन साकं यदा मैत्री तदा किंस्वित् सुखं लभेत् ॥ ५५ ॥

विड़ाल इव नेत्राभ्यां काणो ह्रस्वश्च यः पुमान् ।
तेन साकं यदा मैत्री तदा किंस्वित् सुखं लभेत् ॥ ५६ ॥

पुरुषेण स्त्रिया साकं मैत्री कार्या न कर्हिचित् ।
आरम्भे लाञ्छनं यत्र परिणामोऽस्य कीदृशः ॥ ५७ ॥

पुरुषस्य पुमान् मित्रं स्त्रीणां स्त्र्येव सुनिश्चितम् ।
साम्ये हि मैत्रीफलदा वैषम्ये निष्फलेव सा ॥ ५८ ॥

परोक्षे यः प्रियं ब्रूते समक्षेनापि चाप्रियम् ।
प्राणैरप्युपकर्त्ता च तद्वै मित्रस्य लक्षणम् ॥ ५९ ॥

क्षेमेषु पृथगप्यस्तु सङ्कटे संहतो भवेत् ।
संहते नाप्यपचयं तद्वै मित्रस्य लक्षणम् ॥ ६० ॥

मातरं भगिनीं भार्यां यः[1] पश्येत्स्वसुतादिवत् ।
समानसुखदुःखश्च समानोदयसंक्षयः ॥ ६१ ॥

अगृध्नुःप्रत्युपकारस्य स्वयं नित्योपकारवान् ।
दूरस्थोऽपि समीपे यः स वै मित्रं सुदुर्लभः ॥ ६२ ॥

एतद्विज्ञाय हनुमन् मैत्री कार्या विचक्षणैः ।
इह तेन सुखं प्राप्य परेत्य सुखमश्नुते ॥ ६३ ॥

अहं मैत्रीं करिष्यामि कपिराजेन धीमता ।
करिष्याम्यस्योपकारं स चेन्मोपकरिष्यति ॥ ६४ ॥

तदा तस्यैव शोभा सा मित्रप्रत्युपकारिणः ।
नो चेदकेतेवं श्रित्वा भुवने सुखमेधताम् ॥ ६५ ॥

इति रघुपतिवाक्यैर्मित्रतातत्त्वयुक्तैः सपदि सुखितचेता वीरवर्योहनूमान् ।
कपिपरिवृढभूपो भूतिकामः कथंचित् कलितमतिरवोचत् तेन मैत्रीं चिकीर्षुः ॥६६॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे मैत्रीतत्त्वविवेचनो नाम पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७५॥

*

षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

हनुमानुवाच

यदाह रघुशार्दूल भवान् मैत्रीविवेकवित् ।
तत्तथैव दयानाथ जगन्मित्रमसि प्रभो ॥ १ ॥

त्वं त्रैलोक्योपकर्त्तासि कस्ते प्रत्युपकारकृत् ।
त्वं मित्रं गतो राम कस्ते मैत्रीं जनोऽर्हति ॥ २ ॥

यस्तु कश्चिन्महाभागस्त्वया मैत्रीं विधास्यति ।
ऐहिकामुष्मिकार्थेषु स निश्चिन्तो भविष्यति ॥ ३ ॥

१. सुतां यः स्वस्य रक्षति ।—मथु०, अयो० ।

समर्थोऽसि स्वयं राम सर्वकार्येषु केवलः।
न तेऽपेक्षा सहायस्याप्रमेयबल शालिनः॥ ४॥

भुवनोत्तारणायैव तवारम्भो रघूद्वह।
न ते किमप्यवाप्तव्यं पूर्णकामस्य संततम्॥ ५॥

समवाप्य त्वया मैत्रीं सुग्रीवो भाग्यवत्तमः।
कपिपुङ्गवताशब्दं सार्थकं यातु राघव॥ ६॥

अतो मामनुजानोहि गन्तुं सुग्रीवसंनिधिम्।
आवेद्य तव वृत्तान्तं भूय आयाम्यहं द्रुतम्॥ ७॥

त्वत्सकाशमिहानष्ये कपीन्द्रं सत्यवादिनम्।
मैत्रीं च कारयिष्यामि त्वया तस्य वलीयसीम्॥ ८॥

अनेकपद्मसंख्याताः कपिवर्य महाभटाः।
चलन्तु तव सेनायां लङ्कानाथं जिगीषतः॥ ९॥

तैर्युतः समरेषु त्वं कपिभिर्धृतकेतुभिः।
मघवानिव पाथोदैर्नानावर्णैर्विराजभोः॥ १०॥

वाद्यन्तु वीरवाद्यानि निर्ह्रतानि कपीश्वरैः।
हृत्कपाटविपाटीनि राक्षसानां बलीयसाम्॥ ११॥

ते छत्रचामरद्वन्द्वपताकाध्वजधारिणः।
भेरीनिःसानपटहवादकाः सन्तु ते पुरः॥ १२॥

चालयन् धरणीं कृत्स्नां सरितः शोषयन् पथि।
समी कुर्वन् गिरीन् वप्रान् प्रतिष्ठस्व त्वमाजये॥ १३॥

त्वद्वाणपावकध्वस्तराक्षसानीक आतुरः।
अह्नायैतु पतङ्गत्वं रावणस्त्वयि दीपके॥ १४॥

कृतप्रतापो लङ्कायां कृतत्रैलोक्यकण्टकः।
अयोध्याभिमुखो भूयास्त्वं राम विजयोर्जितः॥ १५॥

भाग्यं कपिभटानां वै मया किमनुवर्ण्यताम्।
येषां नाथः स सुग्रीवस्तव मित्रं कृपानिधे॥ १६॥

अचिन्त्यैव च ते राम कृपाशश्वत्कृपानिधे।
सुदुर्लभा या यत्तस्या मर्कटा अधिकारिणः॥ १७॥

महतां मुनिवर्याणां मुखेभ्यो रामचन्द्रमः।
अश्नौषमेवमेवाहं त्वत्तो बालिवधो यथा॥ १८॥

स कालः किल सम्प्राप्त एष एव रघूत्तम।
हत्वा बालिं बलात् संख्ये स तद्भ्रातानुगृह्यताम्॥ १९॥

इत्युक्त्वा हनुमांस्तस्य कृत्वा पादाभिवन्दनम्।
प्रतस्थे ऋष्यमूकाद्रिं यत्रास्ते कपिपुङ्गवः॥ २०॥

पथि विन्यस्तनयनो वर्जिताखिलसंकथः ।
मैत्रीं श्रीरामचन्द्रेण काङ्क्षमाणो निमग्नधीः ॥ २१ ॥

स तेन ददृशे वीरो वायुपुत्रो महामतिः ।
कृतकार्यो मुखोल्लाससंलक्षितमनोगतिः ॥ २२ ॥

तमेष सादरं धीमानग्रहीद्रविनन्दनः ।
सानन्दोल्लासिनयनः प्रत्युत्थानोद्गमादिभिः ॥ २३ ॥

तमुवाच मरुत्सूनुस्तर्कस्ते सफलोऽभवत् ।
राम एव स वीरेन्द्रो दूराद्यो वीक्षितस्त्वया ॥ २४ ॥

यो द्वितीयः स तस्यैव भ्राता ते न समोऽनुजः ।
सिद्धश्च ते मनःकामो मैत्रीं रामेण यास्यसि ॥ २५ ॥

जितं च विद्धि बलिनं बालिनं कपिपुङ्गवम् ।
भोक्ष्यसे किल किष्किन्धापुरीराज्यमकण्टकम् ॥ २६ ॥

अकैतवां रामचन्द्रे मैत्रीं समनुपालय ।
प्रायेण गुरवो देवाः सुहृदश्च न कैतवैः ॥ २७ ॥

भाग्यवानसि सुग्रीव रामेणासाद्य मित्रताम् ।
दुर्लभं दास्यमप्यस्य तत्र मैत्री कुतस्तराम् ॥ २८ ॥

कृपादृष्ट्यैव तस्येदं सम्पन्नमिति विद्धिभोः ।
देवा अपि यतस्तस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः ॥ २९ ॥

महाशयो महावीरो महसाप्रतिमश्च सः ।
तस्य मैत्रीं भवांल्लब्ध्वा किं किं नो लप्स्यते शुभम् ॥ ३० ॥

हनुमदुदीरितेन वचसा दिननाथसुतो रघु
पतिमित्रभावमभिलाषुक आर्तिहरम् ।

सपदि दिदृक्षयैव खलु तस्य सहर्षमना
इदमवदद्वचोऽमलमुदीक्ष्य समीरसुतम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे हनुमदागमनो नाम षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥

*

सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सुग्रीव उवाच

एवं चेत्तर्हि हनुमन् सिद्ध एव मनोरथः।
मम दुष्टमतेर्भ्रातुर्हननं प्रतिवाञ्छतः॥ १॥

तदाशु तेन वीरेण मां संगमय मारुते।
दिदृक्षामि भृशं रामं तमेव रघुनन्दनम्॥ २॥

आनेष्यामि च तं वीरं सानुजं हर्षवर्द्धनम्।
वासयिष्यामि कतिचिद्दिनानीह महीधरे॥ ३॥

ऋष्यमूकगिरौ रम्ये मुनिमण्डलमण्डिते।
अनुरक्तमता वीरो निवत्स्यति मुदान्वितः॥ ४॥

ध्रुवमार्त्तिहरश्चैष मम रामो भविष्यति।
हता येनोद्धतखरत्रिशिरोदूषणादयः॥ ५॥

सुबाहुर्निहतो येन मारीचश्च निपातितः।
तथान्ये राक्षसवरा महाबलपराक्रमाः॥ ६॥

क्षणाद्येन विनिर्दग्धास्तीव्रेण शरवह्निना।
स कथं नैव तं दुष्टं धक्ष्यति स्वेन तेजसा॥ ७॥

स्मरामि हनुमन्नद्य यदुक्तं मुनिभिर्मम।
रामो वालि वधं कर्त्तुं समर्थो भुवनत्रये॥ ८॥

तेन मैत्रीमहं लब्ध्वा हतदुष्टसपत्नकः।
भोक्ष्यामि किं न किष्किन्धापुरीराज्यमकण्टकम्॥ ९॥

इत्युक्त्वा कपिशार्दूलो नलनीलादैः सह।
हनूमता च संयुक्तो ययौ रामदिदृक्षया॥ १०॥

स तं तरुतलासीनं सानुजं श्यामसुन्दरम्।
ददर्श रामं सुग्रीवः सीताविरहविह्वलम्॥ ११॥

ववन्दिरे रघुपतिं सर्वेकीशाः पृथक् पृथक्।
तान् रामचन्द्रो जग्राह दोर्भ्यामालिङ्ग्य सादरम्॥ १२॥

सस्मितप्रणयालापसादरप्रेक्षणादिभिः।
तोषिता रघुनाथेन सर्वे ते कपिपुङ्गवाः॥ १३॥

निषण्णाः परितो रामं महाभागाः कपीश्वराः।
तेषां मध्यगतो रेजे सुग्रीवो हृष्टमानसः॥ १४॥

श्रीराममुखसंदर्शविवृद्धसुखवारिधिः ।
ऊचे विहस्य सुग्रीवः प्रमोदकलया गिरा ॥ १५ ॥

स्वागतं ते रघुश्रेष्ठ सानुजस्य महात्मनः ।
प्रायः कृतार्थयंल्लोकान् विचरत्यवनीं भवान् ॥ १६ ॥

अद्य मे नयने राम भृशं सफलतां गते ।
सानुजस्य तव श्रीमन् दर्शनामृतलाभतः ॥ १७ ॥

स्वरूपेणैव रामेन्दो ददासि जगतां मुदम् ।
चरितैः पुनरत्यन्तं धवलीकुरुषे दिशः ॥ १८ ॥

अकार्षं किं नु सुकृतमनल्पं रघुपुङ्गवः ।
यद्भवानद्य संदृष्टो मुदा संफुल्लया दृशा ॥ १९ ॥

लोकोत्तरमिदं शीलं तव राम मुदावहम् ।
कपिजातिरपि श्रीमन्नहं येन कृतार्थितः ॥ २० ॥

न ते स्पृहा रामचन्द्र कस्यापि शुभवस्तुनः ।
सर्वभव्योपपन्नस्य लब्धसर्वार्थसम्पदः ॥ २१ ॥

तथापि मादृशान् दीनान् नानोपप्लवसम्प्लुतान् ।
कृतार्थीकर्तुमुचितो जनैः संगम्य ते भवान् ॥ २२ ॥

तव प्रसंगाद्रघुवंशकेतो ध्रुवं गमिष्यामि जयं दुरापम् ।
यशश्च मे भूरि भविष्यतीश पूर्णेन्दुशुभ्रं विपुलं त्रिलोक्याम् ॥ २३ ॥

एतावदेव किल दुर्ल्लभमत्र लोकेयत्स्यात्त्वया सुकृति रघुदेव मैत्री ।
स्वर्गापवर्गसुखसंततिभूरिभोगा भूयो भवेयुरित एव न ते दुरापाः ॥ २४ ॥

भवानभ्यर्थितं दातुं कल्प दूत्यस्तु का स्तुतिः ।
अभ्यर्थिताधिकफलप्रदो जगतियद्भवान् ॥ २५ ॥

किं दुष्टराक्षसचमूहननेन राम कीर्त्ति तवाधिकतरां समुदाहरामः ।
मातङ्गकुम्भदलनोद्धतविक्रमस्य सिंहस्य किं नु मृगयूथवधात्प्रशंसा ॥ २६ ॥

भ्राता दुष्टेव वलिना बालिनाहं निराकृतः ।
किष्किन्धानगरी चापि त्याजिता भोगशालिनी ॥ २७ ॥

तेनास्मि दुःखितोराम निःश्रीकः सम्पराजितः ।
तन्मे दुःखं भवान् हर्तुं समर्थो रघुपुङ्गव ॥ २८ ॥

अप्रमेयबलं मन्ये त्वामहं रघुनन्दन ।
हता येनैकवाणेन तादृग्घोरनिशाचराः ॥ २९ ॥

ऋष्यमूकगिरावत्र सुहृदां सुखवर्द्धनः ।
त्वमास्व सानुजो राम मुनीनां रमयन् मनः ॥ ३० ॥

जहि मत्सार्थगो दुष्टं बालिनं बलदुर्मदम् ।
कीर्तिस्ते भुवने राम व्याप्स्यतीति न संशयः ॥ ३१ ॥

इति तेनाभिसंस्तूय तेजसं निधिरच्युतः ।
ऋष्यमूकगिरौ नीतो रामचन्द्रः सलक्ष्मणः ॥ ३२ ॥

रघुपतिरिह वास्तून् मोदयन् योगिवर्यान् ।
जनकनृपतनूजाविप्रयोगेन युक्तः ॥
अवसदचलवर्ये ऋष्यमूके सुमित्रा ।
सुतसहित उदारः सेव्यमानः कपीन्द्रैः ॥ ३३ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे ऋष्यमूकगिरि-निवासो नाम सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

*

अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

आभूषणानि वैदेह्या निरस्तानि निजाङ्गतः ।
पतितानि गिरिद्रोण्यामानीतानि प्लवङ्गमैः ॥ १ ॥

तानि वानरराजेन सुग्रीवेण महात्मना ।
रामचन्द्रस्य पुरतः स्थापितानि ससम्भ्रमम् ॥ २ ॥

इमानि वल्लभायास्ते भूषणानि जगत्पते ।
तयैव नूनं क्षिप्तानि रक्षसा नीयमानया ॥ ३ ॥

लब्धानि किल काकुत्स्थ विचरद्भिर्बलीमुखैः ।
ऋष्यमूकस्य शिखरे रक्षितानि चिरं मया ॥ ४ ॥

गृहाण रघुशार्दूल संवीचितानि सुवाससा ।
महार्हाणि मनोज्ञानि भास्वन्ति मणिकान्तिभिः ॥ ५ ॥

तदेकपरिधार्याणि सावधानं निभालय ।
तावद्रक्ष महाबाहो यावदायाति जानकी ॥ ६ ॥

इत्युक्त्वा सुहृदा तेन कपीन्द्रेण महाधिया ।
समर्पितानि जगृहे भूषणानि रघूद्वहः ॥ ७ ॥

उन्मोच्य वसन ग्रन्थि तानि रामो ददर्श ह ।
हारकङ्कणकेयूरग्रैवेयकमुखानि वै ॥ ८ ॥

तेषां दर्शनमात्रेण मुमोह रघुपुङ्गवः ।
चिरं मूर्छामुपगतो दीप्ते विश्लेषपावके ॥ ९ ॥

चिराद्दृशौ समुन्मील्य विललाप सुदुःखितः ।
गलद्बाष्पजलस्रोतःसिक्ताद्रिशिखरावनिः ॥ १० ॥

हा तान्वि तासु रजनीषु समग्रचन्द्रज्योत्स्नाप्रकाशधवलासु विभूषिता यैः ।
आनन्दिनीमममनो रमयाम्बभूव तानीदृशीं बत दशां तव भूषणानि ॥ ११ ॥

प्राप्तानि चन्द्रमुखि यां न सहे कथंचिद्द्रष्टुं ननु क्षणमपि प्रसृतातिशोकः ।
पश्याम्यमून्यपिचिराद्विरहाधिना ते भूमीरजोव्यतिकरान्मलिनानि शश्वत् ॥ १२ ॥

हा हा मणिस्तबककह्लार चिरेण तस्या वक्षोजकुम्भविरहाद् बत दुःखितोऽसि ।
भग्नश्च ते गुणगणोऽपि ततः सखेऽसौ किं रोदिषि प्रसृतकान्तिलवच्छलेन ॥ १३ ॥

ताटङ्कयुग्म तव कापि दशाद्य जाता तत्कर्णयोर्विरहदुःखभरेण भूयः ।
हा मित्र तन्निधुवनोत्सवकौतुकेषु क्वान्दोलनं तव गतं बहुसौख्यकारि ॥ १४ ॥

हा मालिके किमपि ते बतहेममय्याः सोढः स पावकजलान्तरतीव्रतापः ।
प्राप्तं फलं जनकजोरसि तस्य वासो लब्धस्तु केनविधिना बत विप्रयोगः ॥ १५ ॥

केयूर हा बत सखे ननु शोचनीयां प्राप्तो दशां त्वमसि तद्भुजविप्रयोगात् ।
विख्यातिरङ्गद तथापि च ते मुधाभूद्दूरे किलाद्य जितपद्मदलं तदङ्गम् ॥ १६ ॥

हा कङ्कण त्वमसि तद्भुजवल्लिसङ्गात्सौख्यप्रदादहमिवाद्भुतभागधेयः ।
दौर्भाग्यमेतदधुना किमु सम्प्रयुक्तं केनावनौलुठसियद्रजसा परीतः ॥ १७ ॥

हा मेखले तनुलतामवलम्ब्य तस्यास्तान्युद्धतानि कुरुषे सुरते रुतानि ।
तद्विप्रयोगविधुरा बत दैवयोगात्स्थानेऽधुना भजसि मौनमनूनखेदा ॥ १८ ॥

ग्रैवेयक क्व नु मनोभवजैत्रकम्बुसंकाश तद्रुचिरकण्ठसमीपलग्नः ।
कामप्यजस्रमपुषस्त्वमहो अभिख्यां क्वैतादृशी च बत मित्र दशा तवाद्य ॥ १९ ॥

हा हेमरत्नतिलक त्वमभूः प्रियाया भालस्थले किमपि दीप इवोग्रदीप्तिः ।
तद्विप्रयोगतमसाद्य बलाभिभूतो दैवे विपर्ययमिते न विपर्ययः कः ॥ २० ॥

हा रत्नवेणि भवती जनकाङ्गजायाः केशावलिग्रथितगुण्यसुवेशरूपा ।
कामप्युबाह गतिमद्भुतकान्तिपूरैर्जातासि सम्प्रति कथं विरहेण मन्दा ॥ २१ ॥

हा शीर्षरत्नकुसुमस्तबक त्वदीयं तत्सौभगं जनकजाशिरसः प्रसंगात् ।
किं भूतमद्य विरहाधिजदुर्दशायां यद्रोदिषीव सुचिरेण सखे यथाहम् ॥ २२ ॥

हा नूपुर क्वणितनिर्जितराजहंस न श्रावयस्यतिमृदुं किमिति ध्वनिं तम् ।
प्रायस्त्वमप्यहमिवाधिधरो वियोगान्मौनेन यापयसि कालमशेषमेव ॥ २३ ॥

हा वृश्चिकाभरण तच्चरणाङ्गुलीभिर्विश्लिष्य मित्र वहसे बहुखेदमन्तः ।
नो चेत्त्वयि श्रुतिमनोज्ञरवं दधाने रौति प्रमत्तचटकावलिरेवमेषा ॥ २४ ॥

हा भूषणानि निखिलानि विदेहजाया या तानि कामपि दशां स्ववियोगदुःखात् ।
आत्मानमत्र वसनाञ्चलगाढबद्धमेवं विधाय नयथार्तिभरेणकालम् ॥ २५ ॥

इति सम्बोध्य सर्वाणि प्रत्येकं तानि राघवः ।
विललाप वियोगेन भूषणानि विलोकयन् ॥ २६ ॥

मुक्तास्थूलाश्रुमोक्षं व्यरुददतितरां दीप्तविश्लेषवह्निः
स्मारं स्मारं रसार्द्रः कथमपि मिथिलाधीशपुत्रीविलासान् ।
दृष्ट्वा भूषाः प्रणयपरवशो भूरिरोमाञ्चशाली
स्तब्धःस्विद्यन् सकम्पो मुकुलितनयनोलीनसर्वेन्द्रियोऽभूत् ॥ २७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे विभूषणदर्शन-सम्मोहवर्णनोनामाष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७८॥

*

एकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

रुदन्तं राघवमनुक्लिष्टोऽश्रुनयनोऽनुजः ।
अखिद्यततरां चित्ते व्याप्तः शोकेन भूयसा ॥ १ ॥

तावनुप्लवगश्रेष्ठाः सर्वेऽप्यश्रुविलोचनाः ।
अखिद्यन्तभृशं चित्ते क्लेशसंक्षीणमानसाः ॥ २ ॥

ततः सर्वेऽपिरुरुदुः काकुत्स्थे परिदेवनम् ।
कुर्वाणे सति जानक्या विरहेणमहाधिना ॥ ३ ॥

तुल्यदुःखसुखैरेवं सुहृद्भिः प्लवगोत्तमैः ।
तन्वानः परमां मैत्रीं निन्ये सोऽहानि कानिचित् ॥ ४ ॥

सीताविरहसम्भूतः परमाधिर्यदा प्रभोः ।
अवर्द्धततरां चित्ते तदा सर्वे समब्रुवन् ॥ ५ ॥

लक्ष्मण उवाच

धैर्यमालम्ब्यतामार्य त्वय्येवं परिदेवनम् ।
कुर्वत्यजस्रमस्माकं मनोऽपि क्षीयतेतराम् ॥ ६ ॥

भवानानन्दजननः सुहृदां विहितोत्सवः ।
स कथं रघुशार्दूल शोकं वर्द्धयसेऽनिशम् ॥ ७ ॥

त्वयि सानन्दहृदये जगदानन्दितं भवेत् ।
अत आनन्दसिन्धो त्वं मा शुचं परिवर्द्धय ॥ ८ ॥

अधैर्यात् क्षीयते सत्त्वं सत्वहीने मतिक्षयः ।
मतिक्षयाश्च सुहृदस्त्यजन्त्येनं चिरं श्रिताः ॥ ९ ॥

त्यक्तः सुहृद्भिः स्वजनैः श्रियापि त्यजते जनः ।
निःश्रीकः स्यान्मृतप्रायो जीवन्नेव न संशयः ॥ १० ॥

एतान्यधैर्यमूलानि तस्मात्तत्परिवर्जय ।
वाञ्छानुरूपं च तव भवत्येव जगत्पते ॥ ११ ॥

यद्यत्कामयसे राम तत्तत्तव करे स्थितम् ।
जानासि सद्य एवेति मा शोचिष्ठाः प्रियाकृते ॥ १२ ॥

गिरिं भित्त्वा भुवं छित्त्वा शोषयित्वापि वारिधीन् ।
शमयित्वौर्वमप्यार्य क्षिप्त्वापि कुलपर्वतान् ॥ १३ ॥

कृत्वापि दुष्करं कर्म करिष्ये कामितं तव ।
आत्मना च सुहृद्भिश्च धीरोभव ततः प्रभो ॥ १४ ॥

तव प्रतापात् काकुत्स्थ जगच्छोको निवर्तते ।
स कथं शोकसंदोहसंवीतोऽसि महामते ॥ १५ ॥

अहं ते सेवको राम सहायाः कपिपुङ्गवाः ।
वायुसूनुर्बली येषु तथायं रविनन्दनः ॥ १६ ॥

कर्त्तुं धर्त्तुं सुसंहर्तुं समर्थाः सर्वमेव ते ।
तैर्युक्तश्च भगवानार्य शक्तोऽस्यखिलकर्मसु ॥ १७ ॥

जगद्विध्वंसकः प्रायो रावणः सर्वतापनः ।
कथं म्रियेत यद्येवं न स्यान्महदतिक्रमः ॥ १८ ॥

इति लक्ष्मणवाक्येन शान्तेन नयवर्त्तिना ।
स्वास्थ्यमालम्बततमां विरहाढ्योऽपि राघवः ॥ १९ ॥

सुग्रीव उवाच

अलं दुःखेन वीरेन्द्र किमेवमनुशोचसि ।
बलादानेष्यति भवान् जानकीं शत्रुवेश्मतः ॥ २० ॥

हत्वा तं दुर्विधिं घोरं राक्षसेन्द्रं महाबलम् ।
जित्वा च सपरीवारं बालवृद्धावशेषितम् ॥ २१ ॥

वाद्यैः सह सुरेन्द्राणां जयघोषैर्द्विजन्मनाम् ।
आयास्यसि समादाय मैथिलीं त्वं रघूद्वह ॥ २२ ॥

सहानेकमहापद्मसंख्यातैः कपिपुङ्गवैः ।
संयोज्य वाहिनीं भव्यां भवान् प्रस्थास्यतेऽचिरम् ॥ २३ ॥

पूर्वं तु मत्सपत्नं तं दुष्टं जहि शराग्निना ।
मां स्थापय रघुश्रेष्ठ किष्किन्धाराज्यसम्पदि ॥ २४ ॥

ततो मयाभ्यनुज्ञाताः कोटिशः कपिपुङ्गवाः ।
समवेष्यन्ति भवतः कार्याय कृतनिश्चयाः ॥ २५ ॥

रक्षसां नगरी सिन्धोर्मध्ये तिष्ठति दुर्गमा ।
कपयस्तां परिवार्य संस्थिताः सर्वतोदिशम् ॥ २६ ॥

प्राकारं रचयिष्यन्ति द्वितीयं हेमवर्ष्मभिः ।
ततस्तत्र गृहाट्टालहट्टापथगता नराः ॥ २७ ॥

रुद्धाः कपिभटैर्भूयो ध्रुवं शप्स्यन्ति रावणम् ।
ततः स सीतामादाय संगच्छेदपि तत्क्षणात् ॥ २८ ॥

अथो युद्धोद्यतोऽप्याशु संक्षयं संगमिष्यति ।
तव बाणनलैस्तीव्रैरिति मे निश्चयः प्रभो ॥ २९ ॥

इति तस्य गिरा सम्यक् शान्तः पीयूषदिग्धया ।
रामस्य शोकदहनः सीताविरहसम्भवः ॥ ३० ॥

हनुमानुवाच

सत्यसन्ध दयासिन्धो जगदानन्ददायकः ।
अलं विलप्यातिमात्रं धीरो भव महामते ॥ ३१ ॥

विवृद्धशोकः पुरुषः शत्रुभिः परिहस्यते ।
ततः को मतिमानेवं वर्धयेच्छोकमात्मनः ॥ ३२ ॥

जानामि जानकीहेतोर्मृत्युं तस्य दुरात्मनः ।
जगत्संतापकन्दस्य दशकण्ठस्य वैरिणः ॥ ३३ ॥

सानुजं सपरीवारं भवानेतं हनिष्यति ।
इतीव तस्य वीरेन्द्र जातो बुद्धिविपर्ययः ॥ ३४ ॥

नो चेत्परस्य दयितां कःस्विदात्मगृहं नयेत् ।
रक्षसां चापि सर्वेषां जातो भाग्यविपर्ययः ॥ ३५ ॥

जनयन्ति भुवो भारं राक्षसाः सुरवैरिणः ।
नाशयन्ति परं धर्मं वध्यास्ते सर्व एव ते ॥ ३६ ॥

नल उवाच

को भवत्सदृशो लोके पुमान् काकुत्स्थ दृश्यते ।
यो हन्याद्रावणं दुष्टं त्रैलोक्यपरितापदम् ॥ ३७ ॥

भवानेकोऽस्य हन्तासि[स्ति] ततस्तेन तव प्रिया ।
चोरितातीवपापेन विपरीतधिया भृशम् ॥ ३८ ॥

अचिरेणैव लङ्कायां तवोच्चैर्जैत्रदुन्दुभिः ।
ध्वनिष्यति सुगम्भीरसमुद्रध्वनिसुन्दरः ॥ ३९ ॥

विजित्य लङ्कां काकुत्स्थ निखाय विजयध्वजम् ।
उच्चैः सुरवरस्त्रीभिर्गापयित्वा यशोऽमलम् ॥ ४० ॥

त्रैलोक्यमेतदखिलं भवानानन्दयिष्यति ।
अतो धैर्यमुपालम्ब्य कतिचिद्वासरान नय ॥ ४१ ॥

न पुनस्तीव्रशोकेन मनः क्षीणतमं कुरु ।
महतामार्त्तिरप्याशु नश्यत्येव न संशयः ॥ ४२ ॥

नील उवाच

धेहि नो मूर्द्ध्नि चरणौ भवान् कुलविभूषणः ।
त्वत्प्रतापाद्रघुपते करिष्यामोऽपि दुष्करम् ॥ ४३ ॥

लङ्घनीयः समुद्रोऽपि भेदनीयः कुलाचलः ।
उत्खाय मेरुरप्याशु निक्षेप्योऽष्टासु दिक्षु च ॥ ४४ ॥

किं किं न करवामोच्चैस्तवाज्ञा लब्धसिद्धयः ।
आस्फोटयामो भुवने बाहून् वयमनारतम् ॥ ४५ ॥

प्रसह्योद्धर्त्तुकामाः स्म सुमेरुमपि राघव ।
तवाज्ञावशगा एव तिष्ठामः खलु सम्प्रति ॥ ४६ ॥

अङ्गद उवाच

सत्यमेते प्रभाषन्ते कपिवीरा बलोर्जिताः ।
आज्ञायां कपिराजस्ते ध्रुवमेव नियोक्ष्यति ॥ ४७ ॥

दुष्करेऽप्यर्थविषये साधयिष्यन्त्यमी च तम् ।
तव प्रतापमात्रेण जातालौकिकसिद्धयः ॥ ४८ ॥

कपिप्रवीरो हनुमान् मनस्वी महाबलोऽयं महनीयवीर्यः ।
अयं च सूर्यस्य सुतो महौजाः सुग्रीवनामा भुवने तथैव ॥ ४९ ॥

एते वयं नलनीलाङ्गदाद्याः सर्वे तवाज्ञैकवशाः स्म सत्यम् ।
तथा करिष्यास उदारमौलेरोत्स्यामहे राम यथैव लङ्काम् ॥ ५० ॥

इति कपिभटैर्वारं वारं गिरा परिणन्त्वितो ।
रघुपति रथ श्रीमत्प्रेक्ष्यानुजस्य मुखाम्बुजम् ।
इदमकथयत्किंचिच्चित्ते निवारितविक्रियः
स्मितलवसुधासम्पृक्तास्यक्षपाकरमण्डलः ॥ ५१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे श्रीरामपरिसान्त्वनो नामैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७९॥

*

अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

अमी कपिभटाः सर्वे बलिनः समरोद्धताः ।
एतैः समेतः सौमित्रे भवानपि बलोर्जितः ॥ १ ॥

साधयित्वाजिमुखगः कार्यमत्याहितं मम ।
लप्स्यते चन्द्रविशदं भुवनेषु महद्यशः ॥ २ ॥

कायेन मनसा वाचा सर्वे सौहृदसंयुताः ।
समेत्य घातयन्त्यद्धा राक्षसांल्लोकदुःखदान् ॥ ३ ॥

अहं चापि वधिष्यामि राक्षसेन्द्रं दशाननम् ।
भवतामेव साहाय्यात् संजातबलपुष्कलः ॥ ४ ॥

कार्यमेतच्च त्वरितं साधनीयं महामते ।
जानकी नयति क्लेशात् क्षणमप्यब्दसम्मितम् ॥ ५ ॥

कुर्वे कपिपतेरस्य सुग्रीवस्य जयं रिपोः ।
शीघ्रमेव च मत्कार्यं करोतु कपिभिः सह ॥६ ॥

यावज्जीवतिलङ्केशः कुतस्तावन्नृणां शुभम् ।
अतस्तस्य बधो लोकसुखार्थेऽपि भविष्यति ॥ ७ ॥

इत ऊर्ध्वं तु यत्कार्यं तद् द्रुतं क्रियतां सखे ।
विलम्बे च रिपोः पक्षः प्रत्यहं परिवर्द्धते ॥ ८ ॥

इत्युक्तं रघुवर्येण वचः पीयूषसम्मितम् ।
कपयः शुश्रुवः सर्वे विनयानतकन्धराः ॥ ९ ॥

अथ भ्रातृवधं रामाद्विज्ञाय कपिपुङ्गवः ।
हनुमन्तमुवाचेदं कार्याकार्यविचक्षणः ॥ १० ॥

सुग्रीव उवाच

अये मरुत्सुत सखे जानामि रघुपुङ्गवम् ।
अप्रमेयबलं लोके वरेण्यं च धनुर्भृताम् ॥ ११ ॥

तथाप्यात्मबलं यावन्न पर्याप्ततमं भवेत् ।
तावन्नैव विरोद्धव्यं सपत्नेषु मनीषिणा ॥ १२ ॥

अनिश्चितबला ये तु सपत्नेष्वभिषेणनम् ।
कुर्वन्ति मोहाभिभूतास्ते गच्छन्ति पराभवम् ॥ १३ ॥

भवन्ति चोपहासाय लोकेषु बहुदुःखिताः ।
अतो बलं स्वं निश्चित्य कार्यं युद्धाभिषेणनम् ॥ १४ ॥

अस्त्येव बलवान् रामो येनानेके द्विषो हताः ।
तथापि मर्त्यलिङ्गत्वात्प्रतीतिर्नोपजायते ॥ १५ ॥

उक्तं मे पूर्वमृषिभिः कबन्धं दुन्दुभेर्हि यत् ।
यः क्षिपेदेकहस्तेन स हन्याद्वालिनं ध्रुवम् ॥ १६ ॥

महान्तमद्रिकूटाभमस्थिकूटं सुदुर्धरम् ।
कः क्षिपेदेकहस्तेन ह्यप्रमेयबलं विना ॥ १७ ॥

सप्त तालद्रुमाश्चापि सन्ति वक्रप्ररोहिणाः ।
पातालतलसन्मूला दुर्भेद्या येन केनचित् ॥ १८ ॥

तान् यो भेत्स्यत्यसरलात् वाणेनैकेन तत्क्षणात् ।
स हन्याद्वालिनं वीरो मतिरेषा ध्रुवं मम ॥ १९ ॥

अतः पूर्वं प्रतीत्यर्थं दुन्दुभेरस्थि सुस्थिरम् ।
उत्क्षेपणीयं रामेण भेद्यास्तालाश्च सप्त ते ॥ २० ॥

ततोऽहं जातविश्वासः किष्किन्धानगरीं द्रुतम् ।
नेष्यामि ननु वीरेन्द्रं वालिनो वधहेतवे ॥ २१ ॥

हते तस्मिन् महादुष्टे किष्किन्धाराज्यसम्पदः ।
भोक्ष्येऽहं तारया सार्द्धं गजेन्द्रगतिलीलया ॥ २२ ॥

ततोऽस्याज्ञापरवशः संयोक्ष्यामि महाचमूः ।
कपीन्द्रबलसंव्यूढा ऋक्षराजबलोन्नताः ॥ २३ ॥

ततः क्रियान् सपत्नोऽस्य रावणो लोकरावणः ।
सद्य एव रणेवध्यः परिवारगणैः सह ॥ २४ ॥

निशम्य सुग्रीववचो हनूमान् जहास विज्ञातबलोस्यभर्त्तुः ।
तथेति तं प्रोच्य रघुप्रवीरं विज्ञापयामास यथोक्तमर्थम् ॥ २५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे बालिवधोपक्रमणो नामाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८०॥

*

एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

हनुमानुवाच

वीरेन्द्र भवतः कृत्यं लोकोत्तरगुणोत्तरम् ।
तथापि मर्त्यलिङ्गत्वाज्जनाः संदिहते हृदि ॥ १ ॥

मुनीनां वचनाद् राम वेद्मि त्वां पुरुषोत्तमम् ।
अप्रमेयगुणाध्यक्षं सर्वदिव्यगुणाकरम् ॥ २ ॥

तेजोराशिं महोनीलं देवं रघुकुलोज्ज्वलम् ।
बले वीर्ये गुणैश्वर्ये भ्रमस्त्वयि न मे क्वचित् ॥ ३ ॥

यशःश्रीज्ञानवैराग्यनित्यचिद्धनशालिता ।
नित्यमुज्जृम्भते राम त्वय्यद्भुतगुणाश्रये ॥ ४ ॥

स्वमाययैव संवृत्य स्वरूपं सुखचिद्धनम् ।
विक्रीडसि च काकुत्स्थ लोकवृत्तमनुव्रतः ॥ ५ ॥

अतस्ते विक्रमगुणा अलक्ष्याः प्राकृतैर्जनैः ।
ततः संदिहते ह्येते कपयो बालिनो वधम् ॥ ६ ॥

प्रत्यायकं च तस्यैते ज्ञातुकामा रघूद्वह ।
अतो भिन्धि प्रभो वक्ररुहांस्तालमहीरुहान् ॥ ७ ॥

य एतानेकबाणेन प्रसुप्तभुजगाकृतीन् ।
भिन्द्यात् तालद्रुमान् सप्त वालिस्तेनैव हन्यते ॥ ८ ॥

कबन्धं दुन्दुभेश्चैव क्षिपेदेककरेण यः ।
महाद्रिकूटसंकाशं वालिस्तेनैव हन्यते ॥ ९ ॥

इति सुग्रीवमवदन् सर्वज्ञा ऋषयश्च ये ।
कृत्यं तद् द्वयमप्येतत् त्वय्यद्भुततमं न हि ॥ १० ॥

ततो वालिवधश्चास्य प्रत्याय्यः पशुचेतसः ।
मैत्री चानेन वर्ध्यैव कपिसेना महीयसा ॥ ११ ॥

इति श्रीमान् समाकर्ण्य काकुत्स्थो हनुमद्वचः ।
तथेति प्रतिशुश्राव सप्ततालप्रभेदनम् ॥ १२ ॥

उत्क्षेपं दुन्दुभेरस्थ्नः सत्यचारित्रविक्रमः ।
साभिप्रायाखिलकृतिः समुत्तोलितसायकः ॥ १३ ॥

भेत्स्यामि हनुमन्नेष सप्त तालमहीरुहान् ।
भेत्स्यामि शापदग्धं च तन्मूलस्थं भुजङ्गमम् ॥ १४ ॥

तेनासौ स्वं वपुः प्राप्य स्वर्लोकं यास्यति द्रुतम् ।
प्रहृत्य दुन्दुभेश्चास्थि तं वै निष्यामि सद्गतिम् ॥ १५ ॥

कार्यमेतद् द्वयं नाम मयैव करुणावशात् ।
अतस्तत्र गमिष्यामि निःशङ्कं कपिपुङ्गवैः ॥ १६ ॥

अलौकिकमदः कर्म करिष्ये ख्यातिहेतवे ।
पश्यन्तु युगपत्सर्वे कपिवीरा बलोन्मदाः ॥ १७ ॥

उररीकृतमीशेन कर्मद्वयमलौकिकम् ।
हनुमानवदत्सत्यं सुग्रीवकपिसंनिधौ ॥ १८ ॥

अथ ते राममादाय कपिवीराः सहानुजम् ।
तालावलीं वालिवधं प्रत्ययाय समाययुः ॥ १९ ॥

श्रीमान् रामश्च सौमित्रिः सुग्रीवो हनुमांस्तथा ।
नलो नीलोऽङ्गदश्चैव सप्ततालावलीं ययुः ॥ २० ॥
ददर्श रामस्तान् कृत्स्नान् सप्ततालाकृतीन् द्रुमान् ।
व्यचष्ट सर्वमायेशस्तत्तत्त्वं भेदने स्थितौ ॥ २१ ॥

प्रददेन समाक्रम्य सौमित्रेश्चरणद्वयम् ।
क्षणेन सरलीचक्रे सर्पं वक्रतया स्थितम् ॥ २२ ॥

अभूच्चटचटाशब्दस्त्रैलोक्यपरिपूरणः ।
सरलीभवतां तेषां सप्तानां तालभूरुहाम् ॥ २३ ॥
ततो बिभेद बलवान् बाणेनैकेन तान् द्रुमान् ।
स बाणस्तस्य तान् भित्त्वा परतो निर्जगाम ह ॥ २४ ॥

भूत्वा हं सतनुभूंयस्तूणीरं प्रविवेश सः ।
तदद्भुतमिवात्यर्थमभूत्सम्पश्यतां नृणाम् ॥ २५ ॥

श्रेणोभूतेषु तालेषु भिन्नेषु महतेषुणा ।
सप्तैत्र विवराण्यासन् पूर्यमाणानि वायुभिः ॥ २६ ॥

तन्मूलस्थश्च भुजगः शापदग्धो हतस्तदा ।
अवाप सद्‌गतिं भूयो रामेषुध्वस्तपातकः ॥ २७ ॥

भिन्नेषु सप्ततालेषु सुरपाणितलोद्‌गता ।
कल्पद्रुसुमनोवृष्टिः पपातामुष्य मूर्द्धनि ॥ २८ ॥

अथो जयजये त्युच्चैः कपयो धरणीतले ।
दिवि देव गणश्चैव हर्षपूर्णा बभाषिरे ॥ २९ ॥
सप्ततालद्रुमविलप्रोद्‌गीर्णैः सप्तभिः स्वरैः ।
उद्‌गायन्तीव मरुतो रामस्य विमलं यशः ॥ ३० ॥

ततस्ते दर्शयामासुः कबन्धं दुन्दुभर्महत् ।
महाद्रिकूटसंकाशंमस्थिमात्रावशेषितम् ॥ ३१ ॥
हिमानीचयसंकाशं शुभ्रं सुचिरसंस्थितम् ।
तद् दृष्ट्वा बलवानेष वामेनैव तु पाणिना ॥ ३२ ॥

उल्लास्य धनुषः कोटया स्वनवद्‌भूरिवेगतः ।
चलितं व्योममार्गेण दीर्घान्तरमपातयत् ॥ ३३ ॥
तद् दृष्ट्वाद्भुतविक्रमस्य चरितं श्रीरामचन्द्रस्य वै
तालानां परिभेदनं खलु जवेनैकेन दिव्येषुणा ।
दुन्दुभ्यस्थिनिपातनं च धनुषः कोट्यैव लीलावशाद्
वामेनैव करेण वानरभटा युक्ता बभूवुर्मुदा ॥ ३४ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सप्ततालविभेदन-दुन्दुभ्यस्थिक्षेपणो नामैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥

*

द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

श्रीरामचरणस्पर्शाद्दुन्दुभिर्नाम सोऽसुरः।
भासयन् हरितः सर्वा द्रुतं स्वर्गपुरं ययौ ॥ १ ॥

सौमित्रिमाह शृण्वत्सु कपिवीरेषु राघवः।
एष याति दिवं भ्रातर्दुन्दुभिर्लूनपातकः ॥ २ ॥

यस्य प्रकाशादखिला जाता वितिमिरा दिशः।
दिवि संस्तुवतां चैव देवानामेष संरवः ॥ ३ ॥

लक्ष्मण उवाच

किमिति स्तूयते वीर दुन्दुभिर्नाम सोऽसुरः।
व्रजन् स्वर्गपुरं देवैर्जिज्ञास्ये तस्यकारणम् ॥ ४ ॥

श्रीराम उवाच

मत्पादस्पर्शधूताघो दुन्दुभिर्नाम सोऽसुरः।
देवदूतैर्नीयमानः सादरं स्वःपुरीमयम् ॥ ५ ॥

प्रकाशयति दिक्चक्रं महता पुण्यतेजसा।
तदेष स्तूयते देवैराश्चर्यमसृणाशयैः ॥ ६ ॥

एष कल्पशतानि स्वर्भोक्ष्यते देवसम्पदः।
ततश्चगन्ता विलयं ब्रह्मणा सह मत्पदे ॥ ७ ॥

किमनेन कृतं भद्रं किमनेन कृतं तपः।
इति स्तुतिपरा देवा गृह्णन्त्येनं गृहागतम् ॥ ८ ॥

दिव्यं विमानमास्थाय स्वःकान्ताधूतचामरः।
गत एष स्वर्गपुरीं पश्य लक्ष्मण दुन्दुभिः ॥ ९ ॥

इति वदन्तममुं कपिपुङ्गवाः प्रणयसौख्यससम्भ्रममानसाः।
सजवमेत्य वचोभिरपूजयंस्तदतिशुभ्रयशोभरसौरभैः ॥ १० ॥

अथ सादरमानम्य सुग्रीवो वदतां वरः।
उवाचेदं रघुश्रेष्ठं कार्यसाधनसत्वरः ॥ ११ ॥

जानामि राम सत्यं त्वामप्रमेयबलान्वितम्।
भुवोभारापहृतयेऽवतीर्णं पुरुषं परम् ॥ १२ ॥

कस्त्वां विना रघुपते क्षणतो निरस्येदेकेन तावदिषुणा त्रिशिरःखरादीन्।
उद्दामबाहुबलनिर्जितनाकनाथलक्ष्मीविभूषितमदालयराज्यबन्धून् ॥ १३ ॥

सत्त्वं तवैव विमलं विपुलं प्रशान्तं धामामनन्तिकवयः शुचिशुद्धबोधाः ।
आस्थाययद्रघुपते स्वमिदं शरीरं विश्वग् भवे विहरसेऽखिल वन्दिताङ्घ्रिः ॥ १४ ॥

श्रीरामनाम तव काममशेषकाम सम्पूर्तये जयति कामगवीसमानम् ।
यत्संस्मृतिर्हरति भूरि विसंकटेऽपि दुःखाकरं सुजनुषां भुवने जनानाम् ॥ १५ ॥

गायन्ति ये तव यशः शशिरश्मिशुभ्रप्रालेयपूरशिशिरं भवतापहन्तृ ।
तेषां महाकविनृणां वदनारविन्दे वाग् भाति सौरभवती सदने च लक्ष्मीः ॥ १६ ॥
उद्गीयतां तव यशो विशदं कवीनां पीयूष यूषपरिपोषितमानसानाम् ।
चिन्तामणित्रिदशपादपकामधेनु सम्भूतिभूमिविभवाः परितो भवन्ति ॥ १७ ॥

दारिद्र्यसंहृतिकरंदलितापमृत्यु संतापपापनसमुत्वरबद्धकक्षम् ।
प्रज्ञामनःकुटिलताघनिरासनं ते जागर्ति राम चरितं भरितं गुणौघैः ॥ १८ ॥

को वेत्ति सत्यगुणपौरुषसारवन्ति कर्माणि तेऽतिविमलानि निरस्तमाय ।
यानि त्रिलोकजनशर्मकराण्यनन्यसाधारणानि जगतां तिमिरापहानि ॥ १९ ॥
एतत्त्वदीयमतुलं धनुरुद्धतेषु संग्रामभीमभुवि कुण्डलितं सदुच्चैः ।
मार्तण्डमण्डलमिव ग्रसतेतमांसि रक्षांसि धर्मपथमुद्रणदीक्षितानि ॥ २० ॥

योऽसौ परीक्षणविधिःस्तव पामराणा मस्माकमेव ननु तत्त्वमजानतां ते ।
अज्ञानमावहति सोऽखिलचित्तसाक्षिन् जानाति कः खलु भवन्तमिहाप्रमेयम् ॥ २१ ॥

त्रैलोक्यबन्धवर कल्पतरुस्वभाव भव्याङ्घ्रिपद्मकमलाकरलालितस्य ।
तस्याप्रमेयपुरुषस्य तवातिमन्दैः कोऽसौ परीक्षणविधिः पशुभिः कुधोभिः ॥ २२ ॥
ब्रह्माण्डकोटिकलनामयकालचक्रं चेष्टावतस्तव विभो पुरुषोत्तमस्य ।
श्रीराघवस्य निगमैरनिरूपितस्य नास्माभिरस्ति कपिभिः पशुभिः परीक्षा ॥ २३ ॥

भृत्योऽस्मि ते रघुपते मम सम्प्रतीश यातैव कापि विपदुद्धतशत्रुजन्या ।
तत्प्रार्थनोऽपि मुखरीभवदाननस्य मौढ्यं ममैव रघुवीर वतावितरस्ति ॥ २४ ॥
इति संस्तूयमानोऽसौ सुग्रीवेण दयानिधिः ।
उवाच तमथ श्रीमान् स्मितसम्भूषिताननः ॥ २५ ॥

अलमियति लघिष्ठे कर्मणि स्तोत्रवादैरहमहह सुमित्रासूनुरेते च यूयम् ।
समरभुविसमेत्यप्रोज्ज्वलान्यर्जयामो रजनिचरवधोत्थान्येतदूर्ध्वं यशांसि ॥ २६ ॥

तव सुकृतभरेण त्वं विवर्द्धस्व लोके विनिहतरिपुसार्थः सत्यधर्मेण युक्तः ।
बलिनमथ विपक्षं दर्शयाजौ स्वकीयं तमहमहह हन्यामेकवाणप्रयोगात् ॥ २७ ॥

किष्किन्धापुरमेत्य विद्विषि मया दग्धे त्वमेकेषुणा
राज्यं शाधि कपिप्रवीर कतिचिद् घस्रान् युतस्तारया ।
भुञ्जानश्च चिराभिलाषरुचिरां राज्यश्रियं तामपि
क्लिष्टं यां वनवासदारहरणाद्यैस्तत्र नो विस्मरेः ॥ २८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सुग्रीवश्रीराम-संवादो नाम द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८२॥

*

त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

इति काकुत्स्थवचसा प्रोत्साहितमनाः कपिः ।
सत्यमेकं पुरस्कृत्य तमुवाच रघूद्वहम् ॥ १ ॥

येनाहं विपदः सर्वास्तरिष्यामि रिपूद्भवाः ।
राज्यं प्राप्स्यामि च महत्किष्किन्धापुरभोगदम् ॥ २ ॥

चिराभिलषितां तां च कान्तां चतुरचेतसम् ।
अलमासादयिष्यामि यस्य विक्रमतेजसा ॥ ३ ॥

निःसपत्नां च भोक्ष्यामि किष्किन्धानगरीधराम् ।
यस्यैव च प्रसादेन निरायासेन राघव ॥ ४ ॥

तमहं विस्मरिष्यामि यदि त्वां पुरुषोत्तम ।
पापमेवाश्रयिष्यामि पशुरेव न संशयः ॥ ५ ॥

सत्यं हि पशवो राम विस्मरन्ति विचेतनाः ।
मातरं पितरं चापि भ्रातरं भगिनीमपि ॥ ६ ॥

भुञ्जते मातरं चापि भगिनीं तनयामपि ।
पितरं भ्रातरं घ्नन्ति तनयं भक्षलोभतः ॥ ७ ॥

पशूनां पक्षिणां चापि प्रवृत्तिरियमीदृशी ।
तथापि भवता राम जाताः स्मोऽद्यानुकम्पिताः ॥ ८ ॥

कथं नु विस्मरिष्यामि त्वामहं जीवितप्रदम् ।
भवतां रघुवीरेन्द्र प्राप्तज्ञानाः पशुष्वपि ॥ ९ ॥

इति सुग्रीव आभाष्य श्रीरामं करुणानिधिम् ।
महत्तस्य बलं चैष समाश्रित्य कपीश्वरः ॥ १० ॥

आजगाम जवात्तस्य वालिनो बलिनः पुरीम् ।
किष्किन्धां नाम परिखाप्राकारवलयान्विताम् ॥ ११ ॥

बृहद्गोपुरसम्बद्धकपाटोत्कीलशृङ्खलाम् ।
प्रासादशिखराकीर्णपताकाविपुलध्वजाम् ॥ १२ ॥

अयस्ताम्रादिधातूत्थबृहत्प्राकारदुर्गमाम् ।
विन्यस्तलोहान्नियन्त्रकोट्टकूटमहोन्नताम् ॥ १३ ॥

समंतात्परिणाहाढ्यां महाजननिषेविताम् ।
अनेकपद्मसंख्यातकपीन्द्रकुलसंकुलाम् ॥ १४ ॥

परिखाप्राप्तसलिला नादेयस्रोतसान्विताम् ।
सुभोज्यसंयुतां नित्यं सुपेयसुरसोदकाम् ॥ १५ ॥

फलपत्रप्रसूनाढ्यबृहदारामरोपितैः ।
पादपैः पूर्णं भ्रमरैः समंताज्जातसौरभाम् ॥ १६ ॥

मणिचत्वरकास्तीर्णहेमास्तरणसंस्तराम् ।
विश्रान्तवानरश्रेणीपरिपीतरसासवाम् ॥ १७ ॥

गृहेष्वापानगोष्ठीषु सोत्फालकपिपुङ्गवाम् ।
दिग्जैत्रेन्द्रसुतानीतसर्वदिग्विभवोन्नताम् ॥ १८ ॥

भीमैः किलकिलाशब्दैर्वाह्वोः स्फोटनकुट्टनैः ।
तलताडनशब्दैश्च पर्युच्छलनवेगजैः ॥ १९ ॥

शब्दैश्च वानरेन्द्राणां वीरवर्यरसाकुलाम् ।
नित्यं संग्रामवार्ताभिरुत्कटापितवानराम् ॥ २० ॥

स्वर्णवर्णैरक्तवक्रैरुच्छलत्पुच्छगुच्छकैः ।
आरक्तलोचनैः कीशैरहर्निशमुदित्वराम् ॥ २१ ॥

कीशान्तःपुरनारीणां वानरीणां स्वभावतः ।
दिव्यरूपसुसम्पन्नशरीराणां महात्विषाम् ॥ २२ ॥

जातरूपप्रकाशाङ्गलतानां जितविद्युताम् ।
कमनीयपटीभूषास्रृङ्गारोपेतवर्ष्मणाम् ॥ २३ ॥

रक्तोष्ठीनां सुकण्ठीनां सुकेशीनां समंततः ।
सुदतीनां सुनेत्राणां केलिलीलाविशारदाम् ॥ २४ ॥

धर्मिष्ठैर्ज्ञानविज्ञानसम्पन्नैः साधुविक्रमैः ।
सत्यशीलैः क्षमोपेतैर्दयावद्भिर्विचक्षणैः ॥ २५ ॥

त्यागवद्भिर्दिवंयद्भिः संवदद्भिः सुरैः सह ।
दिव्यदृष्टिभिरुत्सिक्तैः सुधीभिर्वेशसुन्दरैः ॥ २६ ॥

नाम्नैव पशुभिः किन्तु पुरुषैर्वीर्यवत्तरैः ।
देवावतारैः कपिभिः श्रीरामालोकनोत्सवैः ॥ २७ ॥

कपिराजैर्वालिबलमुख्यवीरैर्बलोर्जितैः ।
दिग्जैत्रैः स्वामिहितकृच्छीलैः सततमावृताम् ॥ २८ ॥

नित्यं निधिकुलावासां रक्षोभिर्दुर्गमां च ताम् ।
वालिदिग्जैत्रयात्रायां पराजितदशाननाम् ॥ २९ ॥

अजेयस्वामिकां लोके रक्षोभिः किन्नरैः नरैः ।
रमणीयतमां लोकैरीक्षणीयतमश्रियम् ॥ ३० ॥

नानाचतुर्युगीराज्यसमेधिततमां च ताम् ।
चिरात्संजातविजयां राजधानीं कपीशितुः ।। ३१ ।।

सेवनीयतमां वर्णैश्चतुर्भिस्त्यक्तकैतवाम् ।
नीतिनाथशुभाचारवालिराज्यासनोर्जिताम् ।। ३२ ।।

यत्रानुसवनं वाद्यज्जयदुन्दुभिघोषिताम् ।
प्रासादभवनं तस्य वालिनोऽग्र्यं कपीशितुः ।। ३३ ।।

यद्राजा बलवान् वाली दिग्जैत्रो विभवोर्जितः ।
नानाचतुर्युगीजातदीर्घायुर्मृत्युदुर्गमः ।। ३४ ।।

कृतं येन तपो भूरि शक्रश्चाराधितो मुहुः ।
ततो लब्धवरोयश्च पृथिवीजयशक्तिमान् ।। ३५ ।।

नरकन्या नागकन्या रक्षःकिन्नरकन्यकाः ।
भुङ्क्ते यः सुरते स्वैरं बलवाँल्लोकनिर्जयी ।। ३६ ।।

यश्च दृप्यन्तमाबध्य रावणं वलिनां वरः ।
एकस्यामेवकक्षायां धृत्वा स्वपुरमानयत् ।। ३७ ।।

यत्समानबलो लोके नान्यो नृमृगपक्षिषु ।
रक्षःकिन्नरयक्षेषु नागेषु नगवास्तुषु ।। ३८ ।।

यो जित्वा हरितः प्रमथ्य हरितां भूमीपतीनां बला
न्यानैषीन्नगरीं निजां ननुनिधींस्तान् यक्षराजस्य ये ।

यस्तारां समपाहरन्निज वलान्मत्तश्च सुग्रीवगां
येनाबध्यत संगरे दशमुखोऽसावेककक्षान्तरे ।। ३९ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे किष्किन्धागमनो नाम त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१८३।।

*

चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तस्याः परिसरेस्थित्वा गाढमास्फोट्य दोर्द्वयम् ।
कृत्वा सिंहनिनादं स आपूर्यध्वनिर्भिदिशः ।। १ ।।

कृत्वा किलकिलाशब्दं मुखेनापूरयन् नभः ।
आजुहावाग्रजं युद्धे संरम्भादाततायिनम् ।। २ ।।

अयुध्यतां मिथोयुक्तौ ताबुभावाततायिनौ ।
दोर्दण्डविहितास्फोटो संरब्धौ युद्धदुर्मदौ ।। ३ ।।

कृतान्योन्यसुनिर्घातौ नानाबन्धविशारदौ ।
मल्लकक्षस्फुरज्जङ्घौ साक्षाद्वीररसाविव ॥ ४ ॥

आरक्तनयनद्वन्द्वौ भ्रूकुटीभङ्गभीषणौ ।
अन्योन्यजीवितान्तेच्छू अन्योन्योद्घोषकारिणौ ॥ ५ ॥

मुष्टीमुष्टिकृताघातौ दन्तादन्ति नखानखि ।
हस्ताहस्तिकृतोत्क्षेपौ पादापादिप्रहारिणौ ॥ ६ ॥

दण्डादण्डिकृतावेगप्रहारौ वीर्यवत्तमौ ।
शक्तीशक्तिप्रहरणो शूलाशूलि गदागदि ॥ ७ ॥

हलाहलिदृढाघातं युध्यमानौ परस्परम् ।
खड्गाखड्गिखराघातं ताडयन्तौ महाबलौ ॥ ८ ॥

नागायुतबलोपेतौ तलशब्दप्रहारिणौ ।
दर्शयन्तावुभौयुद्धे ह्यन्योन्यप्लुतिलाघवम् ॥ ९ ॥

परस्परं घातयन्तावुत्क्षिपन्तौ परस्परम् ।
परस्परं घोषयन्तौ दिशः किलकिलारवैः ॥ १० ॥

अङ्गैर्वीरावेशशोणैः पुलकौघविसंस्थुलौ ।
वलन्तौ विचलन्तौ च कुर्वन्तौ भूर्युपक्रमम् ॥ ११ ॥

एह्येहि दुष्ट दुर्ग्रीव त्वं मया युद्धमिच्छसि ।
तारां च राज्यलक्ष्मीं च भोक्तुकामोऽसि लोलुप ॥ १२ ॥

तत्ते दूरे द्वयमपि मत्तो मृत्युस्तु संनिधौ ।
अतस्त्वं मर्त्तुकामो मां सम्प्राप्तो दर्पगर्वितः ॥ १३ ॥

किं किंन कुर्वते प्रायोमर्त्तुकामा जना इह ।
अतौ विमूढहृदयः संजातोऽस्यधुना रिपो ॥ १४ ॥

एकेनैव प्रहारेण त्वां नयामि यमक्षयम् ।
इत्युक्त्वा बलवान् बालिः प्रजह्ले गदयैव तम् ॥ १५ ॥

सोऽपि वेगात् समुत्तोल्य गदां सुमहतीं रिपोः ।
जघान वक्षसि क्रुद्धः सास्य पुष्पमिवाभवत् ॥ १६ ॥

ततोऽन्योन्यं गदाघातैः समरे तावयुद्ध्यताम् ।
अध ऊर्ध्वं समंताच्च दर्शयन्तौ गदे उभे ॥ १७ ॥

परस्परप्रहारैस्ते चूर्णतामागते गदे ।
ततः शक्त्यृष्टिशूलासिभुशुण्डीपरिघादिभिः ॥ १८ ॥

परश्वधप्रासकुन्ततोमरादिभिरायुधैः ।
प्रजह्लतुस्तावन्योन्यं रोषावेशप्रहारिणौ ॥ १९ ॥

भग्नेष्वायुधपूगेषु तरुशैलशिलादिभिः ।
अयुद्धयतां मिथोरक्तो रोषावेशवशं गतैः ॥ २० ॥

तयोः प्रहरतोर्गाढं शिलाभिस्तरुभिस्तथा ।
निर्घातघोषः समभूद्गर्जतोर्घनयोरिव ॥ २१ ॥

शिलाश्च भग्नतां नीताः काठिन्यादङ्गयोस्तयोः ।
समूलोत्पाटितास्तुङ्गास्तरवश्चत्रुटद्भुजाः ॥ २२ ॥

ताभ्यां वज्रप्रहारिभ्यां गर्जद्भ्यां घोरनिःस्वनम् ।
समंतात्संक्षयं नीता अद्रिकूटा महोन्नताः ॥ २३ ॥

भञ्जिताश्चैव तरवः स्कन्धैर्थे गगनस्पृशः ।
ततोऽवतीर्णौ समरे मुष्टीमुष्टि प्रहारिणौ ॥ २४ ॥

तयोर्मुष्टिप्रहारैस्तै[1]रतिघोरैर्घनारवैः ।
कम्पिता धरणीकृत्स्ना शब्दायितमभून्नभः ॥ २५ ॥

कोटिवज्रनिपातोत्थैरारवैरिव सर्वतः ।
अरौद्धां रोदसी शब्दैर्मुष्टामुष्टिप्रहारजैः ॥ २६ ॥

तलप्रहारैः प्रखरैर्मुष्टिभिश्चातिदारुणैः ।
जङ्घाबाहुप्रहारैश्च रोदसी सर्वतो वृते ॥ २७ ॥

उपर्यधश्चमथ्नन्तौ तावन्योन्यस्य वर्ष्मणी ।
मोटयन्तौ क्षिपन्तौ च युधि भूरि प्रजह्नतुः ॥ २८ ॥

मल्लयुद्धेन युद्धयन्तौ प्रहारापातदारुणौ ।
अन्योन्याङ्गकृताक्षेपावन्योन्यपरिमर्दनौ ॥ २९ ॥

अन्योन्याङ्गकृतः क्रान्ती अन्योन्यजयकाङ्क्षिणौ ।
अन्योन्यमूर्द्धहरणामिच्छन्तौ बद्धवैशसौ ॥ ३० ॥

एकरूपावेकवेशावेकशीलपराक्रमौ ।
युध्यमानौ मिथो युद्धे रामेणैवं वितर्कितौ ॥ ३१ ॥

अहो ममेह को मित्रमनयोर्युद्ध्यमानयोः ।
द्वयोः प्लवगयोर्मध्ये समानतनुरूपयोः ॥ ३२ ॥

किं च मित्रस्य चिह्नं स्यादिति मे मुह्यते मनः ।
इत्येवं तर्कमाणेऽस्मिन्मर्त्यलीलानुकारिणि ॥ ३३ ॥

रामे दाशरथौ देवे वलिना तेन वालिना ।
इन्द्रस्य तनयेनायं सूर्यसूनुः पराजितः ॥ ३४ ॥

---

१. घोर०–मथु०, अयो० ।

वीर्यौघभाजा वलिनां वरेणतेनायमुच्चैर्युधि युध्यमानः ।
मुष्टिप्रहारैः सपदि प्रसह्य विद्रावितः सङ्गरतोऽर्कसूनुः ।। ३५ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे बालिसुग्रीवसंग्रामे सुग्रीवपराजयो नाम चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।। १८४ ।।

*

पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

मुष्टिप्रहारविध्वस्तः शस्त्रघातपरिक्षतः ।
क्षरद्रुधिरदिग्धाङ्गः कपिर्भ्रष्टपराक्रमः ।। १ ।।

मुहुर्विनिःश्वसन् श्रान्तो धावनश्रमवेगतः ।
पलायनसलज्जोऽसौ रामस्यान्तिकमागतः ।। २ ।।

मुहुर्विचकितस्तत्र शत्रोरागमशङ्कया ।
विवृत्य वदनं पश्चात् पश्यन् सत्रासमानसः ।। ३ ।।

तं प्रणम्यात्मसुहृदं तर्जन्यग्रेण निर्दिशन् ।
उपालेभे पराभूतो वाक्यैरुच्चावचैर्मुहुः ।। ४ ।।

अहो रघुकुलोत्तं स वञ्चितो भवतास्म्यहम् ।
विध्वस्तः संगरे युद्ध्वा बलिना तेन वालिना ।। ५ ।।

जानाम्यात्मबलं तस्मिन्नपर्याप्ततमं रिपौ ।
तव विश्वासमाश्रित्य युक्तोऽहं तेन संगरे ।। ६ ।।

सोऽहं सम्यक् त्वया मित्र नीतस्तेन पराजयम् ।
यद्यहं न पलायेय हत सवाद्य तेन तत् ।। ७ ।।

प्राणान् गृहीत्वा कथमप्यागतोऽस्मि तवान्तिकम् ।
क एवं सुहृदो हन्याद् विश्वासं रघुसत्तम ।। ८ ।।

पुरैवाहं हतबलस्तस्माद्भीतः पलायितः ।
ऋष्यमूकगिरेः शृङ्गमाश्रित्य रहसि स्थितः ।। ९ ।।

त्वद्बलं तु समाश्रित्य पुनः सोत्साहमानसः ।
युक्तोऽहं तेन समरे द्राक् सम्प्राप्तश्च तत्फलम् ।। १० ।।

इदं तेऽनुचितं वीरयन्मित्रपरिवञ्चनम् ।
महोजसोऽतिमहतौ धार्मिकस्य यशस्विनः ।। ११ ।।

किमहं कृतवान् राम तव विश्वासमात्मना ।
आगन्तुकस्य का मैत्री किं दुःखं मे पराजये ॥ १२ ॥

सोऽहं स्वच्छतमं शत्रुं विप्रकृत्य सुनिर्बलः ।
कथं स्थास्यामि लोकेऽस्मिन् सक्षेमो जीवितान्वितः ॥ १३ ॥

अत्राप्यागमनं शङ्के तस्य दुष्टस्य विद्विषः ।
प्रहर्तुमुद्यते तस्मिन् को मे त्राता भविष्यति ॥ १४ ॥

इति तस्य गिरो रामः श्रुत्वाऽऽत्मसुहृदस्तदा ।
सानुकम्पमनाश्चक्रे हस्तस्पर्शेन लालनम् ॥ १५ ॥

वालिनो मुष्टिघातेन शस्त्रघातेन चापि सः ।
परिक्षताखिलतनुः क्षतजौघपरिप्लुतः ॥ १६ ॥

रामस्य हस्तस्पर्शेन भृशं पीयूषवर्षिणा ।
अगदेनेव सुग्रीवस्तत्क्षणात्सुखितोऽभवत् ॥ १७ ॥

तमुवाच रघुश्रेष्ठो लालयित्वा भृशं प्रभुः ।
न मे दोषोऽस्ति वै मित्र युवां ननु रणाङ्गणे ॥ १८ ॥

युध्यमानौ मया दृष्टावेकरूपवपुर्धरौ ।
अतो मम वितर्कोऽभूत को मे मित्रं भवेदिति ॥ १९ ॥

चिह्नं नैव मया दृष्टं मित्रस्य तवयुध्यतः ।
अतः कथमहं हन्यां विशिखेनानिवर्तिना ॥ २० ॥

हत्वा प्रमादतो मित्रं कथं स्यां पापभागहम् ।
इष्टेन च वियुज्येय ततः कालः प्रतीक्षितः ॥ २१ ॥

मयाऽऽशु नैकबाणेन तव शत्रुर्निपातितः ।
अधुना पुनरेवत्वं प्रयाहि रिपुमात्मनः ॥ २२ ॥

सत्यं वदामि ते मित्र हनिष्ये तं महेषुणा ।
इत्याख्याय रघुश्रेष्ठः सुग्रीवं सुहृदं निजम् ॥ २३ ॥

चिह्नाय तस्य ग्रीवायां मालां कुसुमनिर्मिताम् ।
निदधावात्महस्तेन करुणारसवारिधिः ॥ २४ ॥

भूयोऽप्येष स्वामिना राघवेण दत्ताश्वासौ लालितश्चैव कीशः ।
युद्धं कर्त्तुं वालिना वीर्यभाजा किष्किन्धाख्यां नगरीं संजगाम ॥ २५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सुग्रीवसमाश्वासनो नाम पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥

षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

पुनः सुग्रीव आगत्य किष्किन्धापुरसन्निधौ।
जगर्ज कलिताटोपो रामस्य बलमास्थितः॥ १॥

आरक्तलोचनः कोपादास्फोटितभुजद्वयः।
चक्रे सिंहनिनादं च दर्पनिर्व्यूढमानसः॥ २॥

तस्य गर्जितमाकर्ण्य वालिः शुद्धान्तसंस्थितः।
आः स एव पुनर्मूढः प्राप्तो मां युद्धकामुकः॥ ३॥

नाधुना मोचनीयोऽसौ वध्य एव मया खलः।
यदनादृत्य संत्यक्तस्तत्फलं पुनरागतः॥ ४॥

कस्य वीर्यमुपाश्रित्य गर्जत्येष मयि स्थिते।
ननु मूढोऽयमधुना नोपेक्ष्यः खलवृत्तिभृत्॥ ५॥

खला हि जीवनार्थाय भवन्ति नतवृत्तयः।
जीविताः पुनरुन्नम्रा जायन्ते वेतसा इव॥ ६॥

शत्रुर्नोपेक्षणीयः स्यात् प्रमादाच्चेदुपेक्षितः।
सम्प्राप्ते वसरे स्वीये पुनर्मूलं निकृन्तति॥ ७॥

अतोहन्तुमिमं शत्रुं प्रयाम्येष विनिश्चितम्।
इत्थं कृतमतिर्वालिरन्तःपुरसुखस्थितः॥ ८॥

ततः प्रचलितुं वीरश्चक्रमे क्रोधमूर्छितः।
आज्ञां ययाचे भार्यां स बद्ध्वा परिकरं दृढम्॥ ९॥

तस्य भार्या तु सा तारा राज्यश्रीरिव सुन्दरी।
युद्धाय सज्जं दयितं वारयामास यत्नतः॥ १०॥

दृष्ट्वापशकुनान्यद्धा भर्त्तुः कुशलमिच्छती।
नैतस्यां नाथ वेलायां युक्ता सम्प्रस्थितिर्युधे॥ ११॥

पश्यैताः खलु फेरव्यो रटन्ति तव सम्मुखे।
सूचयन्त्येव सहसा दुर्निमित्तं निपातुकम्॥ १२॥

दिग्दाहं चापि पश्यामि रजसेवार्कमावृतम्।
कम्पतीव मनोऽत्यर्थं त्वग्दह्यतइवाद्य मे॥ १३॥

वामं स्फुरति चक्षुर्मे भुजमूलं च दक्षिणम्।
प्रलयत्येष पापात्मा काकः कटुरटन्मुहुः॥ १४॥

भवन्त्यन्यानि भूयांसि दुर्निमित्तानि चापि ते ।
प्रस्थानं वारयन्त्येवेदानीं नावसरो युधः ॥ १५ ॥

मनो नोत्सहते वीर मामकं प्रस्थितौ तव ।
अतः कालान्तरे युद्धं क्रियतां शत्रुणा सह ॥ १६ ॥

सन्मुहूर्त्तमुपाश्रित्य यद्धि कार्यं प्रवर्त्यते ।
भवेदविहतं तद्वैनेतरद् बलिनामपि ॥ १७ ॥

सम्पन्नोऽपि बलेनोच्चैः प्रतीक्षेत विधेर्बलम् ।
अनुकूले विधौ सर्वमनुकूलं यतो भवेत् ॥ १८ ॥

यस्तु कालवशं प्राप्तस्तस्य बुद्धिर्विचाल्यते ।
ध्रुवं चलितबुद्धीनां विध्वंसो जायते भुवि ॥ १९ ॥

न जातु चावमन्येत प्रज्ञावन्तं जनं नृपः ।
साध्यते प्रजया कार्यं न तद्बलशतैरपि ॥ २० ॥

बन्धूनां च हितं वाक्यं नोच्छेद्यं साधुबुद्धिना ।
उपचारं हि कुर्वन्ति सन्त्युदासीनवृत्तयः ॥ २१ ॥

उपेक्षेतरिपुंकापितुदन्तमपिवाक्शरैः ।
नोपेक्षेत क्वचित्तं वै भाषमाणमपि प्रियम् ॥ २२ ॥

देशं कालं बलं दैवमाश्रित्य विधिवन्नरः ।
अप्रमत्तः स्वकार्याणि साधयेज्जयकाङ्क्षया ॥ २३ ॥

विहीनमेकमप्यङ्गं राज्यं विकलयेद्ध्रुवम् ।
सर्वाङ्गसंयुतं राज्यं शासद्भूपः सुखी भवेत् ॥ २४ ॥

प्रमादः किल सर्वेषां कार्याणां मूलनाशकः ।
अप्रमत्तधियो भूपा राज्यं शासति शर्मणा ॥ २५ ॥

तदयं संगतः शत्रुर्गर्जन्नपि न वै त्वया ।
योद्धव्योऽस्मिन् दुर्निमित्तसूचके समये प्रिय ॥ २६ ॥

प्रेष्यन्तां कतिचिद्वीराः कपयः कपिनायकाः ।
योत्स्यन्ते तेऽमुना सार्द्धं तावत्त्वमपि यास्यसि ॥ २७ ॥

ज्योतिर्विदः शाकुनिकाः पृच्छ्यन्तामितरेऽपि ते ।
सूचयिष्यन्ति सम्पृष्टास्तत्र राजन् शुभाशुभम् ॥ २८ ॥

इति भार्यावचः श्रुत्वा वालिः प्रहरतां वरः ।
प्रहस्य समुवाचैनामात्मनो हितकाङ्क्षिणीम् ॥ २९ ॥

अलं भिया तव प्राणप्रिये सन्ति स्वभावतः ।
भीरवो हि स्त्रियो लोके त्वं पुनर्वीरपत्न्यसि ॥ ३० ॥

प्रसादं कुरु मे कान्ते प्रहस्यासिं ममार्पय ।
हरामि येन तस्याशु विपक्षस्य शिरो रणे ॥ ३१ ॥

अलं ते कातरतया मपि वीरे मनस्विनि ।
दिग्गो मया जिताः सर्वाः कोऽयं सुग्रीव आतुरः ।। ३२ ।।

मया विनिर्जितः पूर्वं द्रावितश्चैव संगरात् ।
मृत्युनाप्रेरितो नूनं मामयं पुनरागतः ।। ३३ ।।

हनिष्यामि ध्रुवं सुभ्रु तमियं रिपुमात्मनः ।
नायं खलोमयोपेक्ष्य इदानीं रुष्ट चेतसा ।। ३४ ।।

गच्छत्यवसरस्तन्वि तद्वधस्यायमुत्तमः ।
हसित्वा देहि मे खड्गं येनास्य कमपाहरे ।। ३५ ।।

विलम्बं सहते नायस्तापितं घटने यथा ।
रोषावेशवशं चित्तं तथैवास्य वधे मम ।। ३६ ।।

किं बिलम्बयसे मूढे मामस्य हननोद्यतम् ।
यत्पूर्वमस्मिन् रक्तासीस्तेनैव सदयासि किम् ।। ३७ ।।

न विघ्नयतमां कान्ते मामस्य विजयोद्धुरम् ।
प्रसीद देहि मे खड्गं जेतुं गच्छामि विद्विषम् ।। ३८ ।।

अकृत्वास्य वधं वालिर्नैव द्रक्ष्यति ते मुखम् ।
इति मे सत्यवचसो नितरामाहितः पणः ।। ३९ ।।

पुरीपरिसरे तावदेष गर्जति बालिशः ।
विस्फारितासिर्नो यावद्दर्शयाम्यैनभक्षिणी ।। ४० ।।

अयं गर्जति दर्पेण पुरीपरिसरे मम ।
अहं पश्येय शकुनान्यहो कातरता भृशम् ।। ४१ ।।

यो दूराद्रिपुमालक्ष्य पतति श्येनवन्न च ।
नासौ वीरसभामध्येऽवस्थातुमुचितो जनः ।। ४२ ।।

देशं कालं सहायांश्च बलं स्वपरपक्षयोः ।
यो विचारयते संख्येनासौ वीरः स कातरः ।। ४३ ।।

अलं शकुनवार्ताभिर्द्वयोरेकं विनिश्चितम् ।
मां हनिष्यति सुग्रीवस्तमहं वा वरानने ।। ४४ ।।

इत्थं करालतमकालवशं गतोऽसौनिर्धूयदुःशकुनवृन्दमुदग्रबुद्धिः ।
उक्त्वा वचः सपदियावदुपाददीताक्षिप्यप्रियामसिमवोचत तावदेषा ।। ४५ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे तारावालिसंवादो नाम षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१८६।।

*

सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

तारोवाच

बलवांस्त्वमसि मत्तो यद्याच्छिद्य ग्रहीष्यसि ।
कस्ते निरोद्धां तत्कार्ये तथाप्येतद्वचः शृणु ॥ १ ॥

आप्तेन साधु वक्तव्यं मन्तव्यं चापि साधुना ।
किं कर्तव्यं न मनुते यदि भाग्यविपर्ययात् ॥ २ ॥

सन्ति ते बहवो वीराः कपयो रणदुर्मदाः ।
तेषांमेकतमं प्रेयः किं नाज्ञापयसे युधे ॥ ३ ॥

तस्मिन्विनिर्जिते तेन प्रेषयान्यं महाभटम् ।
तस्मिन्नपि जिते त्वन्यं प्रेषयिष्यसि वै भटम् ॥ ४ ॥

अन्यथागतिमापन्नेत्वयि दुःशकुनैः प्रिय ।
कोऽन्यो विजेता सुग्रीवं ततो मा गच्छ दुःक्षणे ॥ ५ ॥

न ज्ञायते कालबलाद् दुर्बलोऽपि बली भवेत् ।
अन्धायते दिवाफेर्रनिशि गृध्रश्च सुष्ठुदृक् ॥ ६ ॥

कालस्य बलमाश्रित्य विजय स्व पुना रिपुम् ।
अस्मिन् काले गते सोऽन्यः शुभ एव भविष्यति ॥ ७ ॥

इति ब्रुवाणां तां भार्यामनादृत्य बलोन्मदः ।
अगृह्लादसिमाछिद्य वालिः कालवशं गतः ॥ ८ ॥

अन्तःपुरवधूवृन्दस्तं जयेत्यब्रवीत्ततः ।
प्रतस्थौ बलसंदृप्तो युद्धाय सहसोद्धुरः ॥ ९ ॥

विस्फारितदृगुत्सिक्तो बलदुर्मदमानसः ।
दुर्निमित्तानि निर्धूय प्राचलत्कपिराट् ततः ॥ १० ॥

रटन्ति कटुलं काका दिवि गृध्रा भ्रमन्ति च ।
रोदितीव घनो व्योम्नि मुमूर्षौ वासवाङ्गजे ॥ ११ ॥

तमभिश्रवणोद्वेगं निनादं दधते शिवाः ।
दिवा रुवन्ति निःशङ्कं फेरुकाः सम्मुखा रवेः ॥ १२ ॥

रुवन्ति पक्षिणः क्रूरं तरुकोटरवासिनः ।
वामेऽशुभा अगुर्दक्षे वामेऽगुर्दक्षतः शुभाः ॥ १३ ॥

अभूत्पुरः सधूमोऽग्निः काष्ठं दग्धं वनाग्निना ।
भिषजो विधवाश्चापि पुर एत्य बभाषिरे ॥ १४ ॥

तान् सर्वान् स विनिर्धूय प्रातिष्ठत गृहाङ्गणात् ।
बद्ध्वा परिकरं वालिर्वाचालो बलदुर्मदः ॥ १५ ॥

इत्थं हठाद्विनिर्याते प्रेयसि स्वालयाद् भृशम् ।
शुशोच तत्क्षणे तारा दुर्निमित्तानि जानती ॥ १६ ॥

तानि दुःशकुनान्यस्य शकुनान्येव तत्त्वतः ।
लयमेष्यति कीशेन्द्रो यदयं रामतारके ॥ १७ ॥

योगिनामपि यत्संगो दुरापस्ता दृशक्षणे ।
स लब्धस्तेन कीशेन जानेऽस्य सुकृतं कियत् ॥ १८ ॥

सोऽयुङ्क्त समरेगत्वा सुग्रीवेण बलोद्धतः ।
ददर्श रामश्च ततस्तावन्योन्यमुपागतो ॥ १९ ॥

आस्फोटयन्तौ दोर्दण्डमण्डलानि पृथक् पृथक् ।
मृगेन्द्रनादिनौ संख्ये रोषादारक्तलोचनौ ॥ २० ॥

घोषयन्तौ दिशः सर्वाः प्रावृषीव पयोधरौ ।
अन्योन्यविजयाकाङ्क्षारोपिताटोपकोपनौ ॥ २१ ॥

ज्येष्ठानुजौ युधि युतौ दृष्ट्वा रामः कृपानिधिः ।
सुग्रीवपक्षमाश्रित्य तस्थौ गुल्मान्तरे तदा ॥ २२ ॥

अदृष्टकायः संलीय धृतधन्वा करद्वये ।
संहितेषुरमेयात्मा पश्यन् वृत्तं रहस्तयोः ॥ २३ ॥

अथास्फोट्यभुजौ गाढं वालिः संग्रामभूमिगः ।
आजुहाव रिपुं योद्धुं सीतेशसुहृदं कपिम् ॥ २४ ॥

सोऽपि रामस्य विश्वासादास्फोट्य निजदोर्युगम् ।
विजितोऽप्यमुना योद्धुं रणाङ्गणमवातरत् ॥ २५ ॥

वालिर्विकाशखड्गेन यावदस्य हरेच्छिरः ।
तावद् रामो मुमोचास्मिन् बाणं प्राणहरं दृढम् ॥ २६ ॥

कृत्याकृत्यमचिन्तयन् रघुपतिः स्वैश्वर्यमेवास्थितो
मध्येसंगरमेतयोर्निजनिजोत्कृष्ट्यै बलाद् युध्यतोः ।
एकस्मिन् स्वसुहृत्तया सकरुणः श्रीमान् रघूणां पति-
र्बाणं प्राणहरं प्रयुज्य धनुषान्यस्मिन् मुमोच क्षणात् ॥ २७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे वालिहननो नाम सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥

*

अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

वाली रामस्य बाणेन विद्धो हृदयमर्मणि।
पपातसहसाभूमौ हा हतोऽस्मीति संब्रुवन् ॥ १ ॥

रटति स्मरणाङ्गणे कपीन्द्रः पतितः सम्प्रति मुक्तजीविताशः।
अहमत्र परेण युध्यमानो ननु केनापि नरेण हा हतोऽस्मि ॥ २ ॥

रटतोऽस्य रवं श्रुत्वा करुणो रघुनन्दनः।
विनिन्दन्नात्मनः कर्म तत्रैव समुपागमत् ॥ ३ ॥

निरीक्ष्य विद्धमर्माणमात्मबाणेन वालिनम्।
संतेपेऽनुचितं कृत्वा रामोधर्मभृतां वरः ॥ ४ ॥

हा मया किमयं वीरः सुग्रीवेण रणाङ्गणे।
युध्यमानो हतो मोहाद्विना मन्तुमकारणम् ॥ ५ ॥

नापराद्धं ममानेन किंचिदप्यमितौजसा।
सुग्रीवस्यैव शत्रुश्च वध्यस्तेनैव नान्यथा ॥ ६ ॥

अहं तु व्यर्थमेवास्य वधं कृत्वानुतप्तवान्।
एतन्मेऽनुचितं कर्म विनिन्दिष्यन्ति धार्मिकाः ॥ ७ ॥

इति शोचन्मुहुरयं काकुत्स्थः करुणानिधिः।
तैरेव सान्वितः साम्ना सुग्रीवानुजवालिभिः ॥ ८ ॥

कपिभिश्चापिहनुमन्नलनीलाङ्गदादिभिः।
अये त्वं रघुशार्दूल हृदा किमनुशोचसि ॥ ९ ॥

अकारणमसौ वीरो हत इत्यनुशोच मा।
सुग्रीवेण सहाबद्धा मैत्र्येव ननु कारणम् ॥ १० ॥

तव मित्रं हि सुग्रीवस्तमसौ समराङ्गणे।
पराबभूव दृप्तात्मा तस्येदं कर्मणः फलम् ॥ ११ ॥

अवाय स्वयमेवायं हतो यद्भवतेषुणा।
किमकार्षीत्तपश्चायं म्रियमाणो ददर्श यत् ॥ १२ ॥

त्वां दुर्लभं योगिवरैः सद्यो मुक्तिमवाप्स्यति।
हा हा रघुपते मूर्द्धिन धेह्यस्य चरणौ निजौ ॥ १३ ॥

नायं मृतो भाग्यनिधिः सुचिरं जीवितः प्रभो।
त्वदीक्षाधौतशमलो यदन्ते त्वां गमिष्यति ॥ १४ ॥

अहो अस्य कपेर्भाग्यं त्वद्बाणस्पर्शमाप यत्।
तेनैष धौतशमलो ध्रुवं यास्यति ते पदम् ॥ १५ ॥

हा काकुत्स्थकुलोत्तं स कोमलौ चरणाविमौ ।
निधेहि मम हृन्मूर्द्धनेत्रेषु कृपया प्रभो ॥ १६ ॥

हृद्येतौ मम संतापं भवसंज्ञं हरिष्यतः ।
मूर्द्ध्नि मे रत्नजोत्तंसशोभायै च भविष्यतः ॥ १७ ॥

नेत्रयोर्मम रामेन्दो सुधावृष्टिं विधास्यतः ।
मम मृत्युरपि श्लाघ्यमिमां प्राप्तवतो दशाम् ॥ १८ ॥

एकं तु तव पृच्छामि यदि नाथ न कुप्यसि ।
सुग्रीवमैत्रीहेतुस्ते को नाम रघुपुङ्गव ॥ १९ ॥

जानामि राम सुग्रीवहेतोर्मामवधीः स्फुटम् ।
शोचसीत्थं हृदा यस्मादितिमे वद निश्चितम् ॥ २० ॥

श्रीराम उवाच

प्रिया मेऽपहृता बाले रावणेन महौजसा ।
चिकीर्षुस्तद्वधं यत्नान्मित्राण्यन्वेषयाम्यहम् ॥ २१ ॥

एकमासादितं मित्रं सुग्रीवाख्यमिदं मया ।
यद्धेतोस्त्वं हतो वालिन् सहस्रगजदोर्बलः ॥ २२ ॥

स्थापयिष्याम्यहं चैनं किष्किन्धा राज्यसम्पदि ।
रावणस्य वधे चैष ममोपकृतिमेष्यति ॥ २३ ॥

अनेकपद्मसंख्यातकपीनामधिपो ह्ययम् ।
सेनासंघटनं तैश्च मम सम्यग्विधास्यति ॥ २४ ॥

इत्यस्य मैत्रीहेतुस्ते मया सम्यङ्निरूपितः ।
त्वद्वधस्य च वै हेतुरेष एव न संशयः ॥ २५ ॥

इति रामोदितं श्रुत्वा कपीनामधिभूर्वचः ।
प्राहसन्म्रियमाणोऽपि हेलागणितरावणः ॥ २६ ॥

अहो एतावन्तमर्थं पुरस्कृत्य रघूद्वह ।
सुग्रीवमैत्रीहेतोर्मामवधीः किं दयानिधे ॥ २७ ॥

योऽयं निजैककक्षायां निधाय दशकन्धरम् ।
आनैषमात्मभवने स्त्रीणां क्रीडनकोपमम् ॥ २८ ॥

तमहं रघुशार्दूल त्वदाज्ञामात्रतो बलात् ।
किं नानेष्यं निबध्यैव व्यर्थस्तत्र परिश्रमः ॥ २९ ॥

श्रुत्वा रघुपतिस्तस्य वचोऽतिबलसूचकम् ।
विसिस्मिये हृदात्यर्थं दृष्ट्वा भूर्यनुजाननम् ॥ ३० ॥

अथ रघुपतिपादस्पर्शधौताखिलाघः कपिपरिवृढ उच्चैः संविशुद्धान्तरात्मा ।
तदमलमुखचन्द्रालोकपीयूषधारा सुहितनयनपद्मस्तेषु पश्यत्सु बालिः ॥ ३१ ॥

बहिर्दर्शोद्भूतप्रणयपरिपुष्टामलमना: क्षणादन्तर्ध्यानप्रभवसुखधारास्वदनकृत् ।
समीपस्थ: सीतारमणपदयो: क्षेमपदयो: परपुंसप्रेम्णा पटुतरमयुङ्क स्वहृदयम् ।।३२।।

अथन्यमीलन्नयने क्षणेन श्रीरामचन्द्रे पुरुषोत्तमेऽस्मिन् ।
निलीनसर्वेन्द्रियवृत्तिरेष प्राप्त: पदं योगिसुदुर्लभं तत् ।। ३३ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे वालिवधविमोचनो नामाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्याय: ।। १८८ ।।

*

एकोननवत्यधिकशततमोऽध्याय:

ब्रह्मोवाच

अथ सुग्रीवमानीय मङ्गलध्वनिपूर्वकम् ।
किष्किन्धानगरीराज्ये स्थापयामासराघव: ।। १ ।।

तोयै: कपिवरानीतैर्नानातीर्थसमुद्भवै: ।
अभिषेकं समातेने सुग्रीवस्य रघूद्वह: ।। २ ।।

पताकाध्वजकेतूनां वासोभिर्बहुवर्णकै: ।
तोरणैर्नवपर्णालि कुसुमस्रक्समुद्भवै: ।। ३ ।।

विचित्रवर्णैर्वसनखण्डश्रेणिविराजितै: ।
रम्भास्तम्भै: पूर्णकुम्भै: फलपल्लवशालिभि: ।। ४ ।।

मार्जनैश्चन्दनालेपसुगन्धिजलसेचनै: ।
तूर्यनि:स्वानघोषैश्च वेदघोषैर्द्विजन्मनाम् ।। ५ ।।

श्रृङ्गारितैर्नरैर्नारीनिकरैर्हर्षसंयुतै: ।
किष्किन्धानगरी सर्वा तदानीं समलङ्कृता ।। ६ ।।

निनाय सानुजं रामं पूर्वं कपिकुलाग्रणी: ।
विचित्रक्षौमपद्याभिर्मणिकाञ्चनवर्षणै: ।। ७ ।।

जयघोषैश्च परित: सूतमागधवन्दिनाम् ।
निर्मञ्छनैर्बहुविधैर्मणिमाणिक्यहेमभि: ।। ८ ।।

रामं सौमित्रिमेवापि जग्राह परमाहृत: ।
अभ्यर्हणै: पृथग्दत्तै: पाद्यार्घ्यादिभिरुत्तमै: ।। ९ ।।

तारा तमग्रतोभूय नित्ये शुद्धान्तमध्यत: ।
दासीसखीगणैर्युक्ता भूय: पर्यचरच्च तम् ।। १० ।।

उवाच हृष्टहृदया सानुजं तं गृहागतम् ।
अद्य मे परमं भाग्यं प्रभो त्वन्मुखदर्शनात् ॥ ११ ॥
यत्पुरा वाञ्छितमभूच्चिरेण रघुपुङ्गव ।
तदद्य चक्षुषा लब्धं श्रीराम तव दर्शनम् ॥ १२ ॥
अयं चानुगृहीतस्ते सख्येन कपियूथपः ।
सर्वकल्याणनिधिना सर्वसौख्यविधायिना ॥ १३ ॥
अहो अत्यद्भुतं भाग्यं किष्किन्धायाः प्रियाकृते ।
या त्वत्पदाङ्कनिबद्धैर्भूषिता तीर्थपावनैः ॥ १४ ॥
पुण्यक्षेत्रमभूदेषा तवागमनमात्रतः ।
स्नाने दाने जपे होमे सर्वत्राक्षयपुण्यदा ॥ १५ ॥
अहो कपीनां रघुप किं भाग्यमनुवर्ण्यते ।
ये पश्यन्ति दिवारात्रं त्वामानन्दवपुर्घनम् ॥ १६ ॥
अहो वानरकान्तानां भागधेयमनुत्तमम् ।
निर्मञ्छयन्ति याः प्राणान् संततं सानुजे त्वयि ॥ १७ ॥
त्वयासौ रोपितो राज्ये श्रीराम कपिनायकः ।
अनश्वरं पदं प्रायः प्राप्त इत्यनुलक्षये ॥ १८ ॥
त्वया भृतानां रामेन्दो केन स्याद्रिक्तता भुवि ।
त्वया रिक्तीकृताश्चापि म्रियेरन् केन राघव ॥ १९ ॥
दासः सखा सुहृद्भक्त इत्यादिभिरभीष्टदैः ।
आख्यानैरङ्किता लोका भवन्ति तव निर्भयाः ॥ २० ॥
त्वत्पादपद्मं ये राम प्राप्ताः शरणमञ्जसा ।
कायेन मनसावाचा तवास्मीति विजानते ॥ २१ ॥
मृत्योरपि न ते प्रायो विभ्यतीश भवे नराः ।
इति ते को न शरणं प्राप्नुयाद्रामचन्द्रमः ॥ २२ ॥
इत्युक्तवत्यां वै तस्यां देवः स्मितमुखाम्बुजः ।
अब्रवीत् करुणाधारः श्रीमान् कमललोचनः ॥ २३ ॥
सुखं संवर्द्धते तारे त्वमनिन्दितगामिनि ।
तव श्रिया पुरमिदं सश्रीकमिति मन्महे ॥ २४ ॥
भजैनं चञ्चलापाङ्गि यः पुरा देवरस्तव ।
त्वदर्थे राज्यादधिकं सुचिरेणाभिलाषुकः ॥ २५ ॥
मा शुचस्त्वं पतिं तन्वि परेतं दैवयोगतः ।
आगमापायिनो भावान् संततं समनुस्मर ॥ २६ ॥

अनेन सह राज्येऽस्मिन्नजस्रंसमधिष्ठिता ।
रञ्जयस्व प्रजाः सर्वाः शिक्षय स्वजनान् नयम् ॥ २७ ॥

त्वया महिष्या महिते राज्येऽस्मिन् वीतकण्टके ।
स्थितोऽयमस्तु सुग्रीवो नयधर्मानुपालकः ॥ २८ ॥

नित्यं समनुमोदन्तां कपयो ज्ञातयश्च वः ।
भातु प्रतिदिनं चैषा किष्किन्धा कपिराज्यभूः ॥ २९ ॥

एनं बोधय रम्भोरु त्वं किल ज्ञानकोविदा ।
यथा राज्यमदोन्मत्तो न मां सम्प्रति विस्मरेत् ॥ ३० ॥

सुग्रीवं द्रुतमभिषिच्य राम इत्थं किष्किन्धाह्वयनगरीनिरीतिराज्ये ।
चातुर्मास्यमुपगतं निरीक्ष्य सदयः शैलेन्द्रं समुपजगाम माल्यवन्तम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सुग्रीवराज्याभिषेको नामैकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

*

नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ दीर्घदरीरन्ध्रं विस्फुरद्घोरगह्वरम् ।
विततोपत्यकाभूमिविरूढसरलद्रुमम् ॥ १ ॥

उन्नताधित्यकारूढतरुमण्डपमण्डितम् ।
नानावर्णशिलासंघसंशोभिकटकोन्नतम् ॥ २ ॥

अनेकगण्डशोभाढ्यं परिणाहिशिलागिरम् ।
संफुल्लतरुकुञ्जाढ्यं लतामण्डपशोभितम् ॥ ३ ॥

नारिकेलद्रुमवनसंछन्नमभितो दिशम् ।
नागपुन्नागचाम्पेयजम्बूपनसशोभितम् ॥ ४ ॥

रसालद्रुमसंछन्नप्रियालगहनावृतम् ।
[1]क्रमुकद्रुमसंवीतं समंतान्निर्झरावृतम् ॥ ५ ॥

भृगुसंदेहनिपतन्नदीपातमनोहरम् ।[1]
निरन्तरपयःसेकप्रत्यग्रकदलीवनम् ॥ ६ ॥

१–१. नास्ति–ब्रड़ो०

लासैर्मनोरमं नित्यं मेघानाददानुलासिनाम् ।
प्रमत्तकोकिलालापप्रतिध्वनिसमन्वितम् ॥ ७ ॥

सरोभिः फुल्लराजीवरजः पिञ्जरितोदकैः ।
क्वणत्कादम्बनिबहैश्चक्रवाककुलाकुलैः ॥ ८ ॥

मत्तक्वणद्राजहंस चञ्चूच्छिन्नमृणालकैः ।
उपर्यधः समंताच्च शोभमानं सुशीतलम् ॥ ९ ॥

मरुल्लहरि निध्वानमहाकीचककाननम् ।
अरण्यमहिषानीकद्वन्द्वयुद्धकृतारवम् ॥ १० ॥

मत्तैणकुलसंयुद्धश्रृङ्गाघातरवान्वितम् ।
मुस्तोत्खननसावेशमत्तकोलकुलाकुलम् ॥ ११ ॥

सर्वर्तुफलितैस्तुङ्गनानाजातिमहीरुहैः ।
पुष्पस्तवकशोभाढ्यैर्लतामण्डपमण्डितैः ॥ १२ ॥

विश्रान्तविहगश्रेणीकलनादकुतूहलैः ।
ललत्पल्लवसंदोहैः सुच्छायैर्वारितातपैः ॥ १३ ॥

समंतादावृतं चारू सानुसाहस्रसुन्दरम् ।
दिशो भुवं नभो व्याप्य संस्थितं स्वेन वर्ष्मणा ॥ १४ ॥

सिद्धकिन्नरगन्धर्ववसतिं बहुकालतः ।
नानौषधिज्वलद्दीप्तिदीपिकादीपितं निशि ॥ १५ ॥

वनवारणसंदोहगण्डकण्डूतिघट्टितैः ।
सरलैर्विक्षतत्वग्भिः प्रस्रवद्दुग्धविन्दुभिः ॥ १६ ॥

अधऊर्ध्वं समंताच्च सुगन्धिततटावनिम् ।
तरुच्छायसमासीनगायद्गन्धर्वकन्यकम् ॥ १७ ॥

दीर्घघोषैर्दरीद्वारविलम्बिभिरनारतम् ।
जलभारनतैर्मेघैः समन्तात् सुनिषेवितम् ॥ १८ ॥

केतकीकाननोद्भूतपरागरजसावृतम् ।
तमालतालहिंतालसालजालसमावृतम् ॥ १९ ॥

सर्वर्तुसुखभोगाढ्यं नानाकन्दसमुद्भवम् ।
नानाफललताकीर्णं नानाशाकसमन्वितम् ॥ २० ॥

नानामुनिगणाकीर्णं नानाश्रमनिकेतनम् ।
सरित्सरःप्रस्रवणसुमिष्टसलिलोद्भवम् ॥ २१ ॥

माल्यवन्तं गिरिं नाम्ना सानुजोऽधिवसन् प्रभुः ।
वार्षिकांश्चतुरो मासान् निनाय विरहज्वरी ॥ २२ ॥

स पश्यन् गगनं सान्द्रनवमेघघटावृतम् ।
उपतेपे प्रियातीव्रणविरहव्याधिबाधितः ॥ २३ ॥

न सेहे गर्जितरवं नवमेघसमुद्भवम्[1] ।
विद्युतां च चमत्कारं चतुर्दिक्तटभासुरम् ॥ २४ ॥

कदम्बकुसुमान्येष हेमवर्णानिभूरिशः ।
स्मरस्य गुलिकाबाणान् मेने विरहकातरः ॥ २५ ॥

केतकानां मनोज्ञानि पत्राणि रघुपुङ्गवः ।
चेतसः करपत्राणि जजान विरहापदि ॥ २६ ॥

दिवि मेघघटाघोरसंघट्टमयमातुरः ।
अमंस्त कामभूपालसेनामिव समंततः ॥ २७ ॥

विद्युत्पताका रुचिरा गजा इव घना घनाः ।
वलाकापङ्क्तिदन्ताढ्या यत्र गर्जन्ति संततम् ॥ २८ ॥

क्वणन्ति चातका यत्र सेनासंसज्जका इव ।
सज्जमानामथ चमूं श्लाघन्ते केकिनो मुहुः ॥ २९ ॥

सूतमागधवन्दित्वे वर्तमाना कृतारवाः ।
दीप्यन्ते शक्तयो यत्र कैतवात्तडितामपि ॥ ३० ॥

दृश्यन्ते लोहयन्त्राणि नैव ध्वान्तधने पथि ।
तान्येव चानुमीयन्ते खद्योतैरग्निवर्त्तिभिः ॥ ३१ ॥

भटाश्च परितः सज्जा यत्र तापिच्छभूरुहाः ।
नवपल्लववर्माढ्याः कुसुमैर्निभृतालिभि ॥ ३२ ॥

बाणपूगभृतास्तूणीर्बिभ्रतो मदनानुगाः ।
विटपैर्बाहुसदृशैः पल्लवैरङ्गुलीसमैः ॥ ३३ ॥

तर्जयन्त इव स्वान्तं नित्यं विरहिणां नृणाम् ।
तुदन्ति वाक्शरैर्यत्र कोकिलाश्च महाभटाः ॥ ३४ ॥

पश्यन्नेवमिमां चमूं रतिपतेः संसज्जमानां मनो-
धैर्यध्वंसनहेतवे समुदितां रामः समंताद् गिरौ ।
सीतासह्यवियोगभूरिविपदि प्राणाय हारोन्मुखीं
सौमित्रिं सहसाब्रवीन्ननु रहः संगम्य सम्बोध्य च ॥ ३५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे माल्यवद्गिरिनिवासो नाम नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

*

---

1. नीलघनोद्भवम्—मथु०, अयो० ।

एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

पश्य लक्ष्मण शैलेऽस्मिन् परितः प्रावृषः श्रियम् ।
दिवि भूमितले दिक्षु शोभमानां प्रसृत्वरीम् ॥ १ ॥

लिम्पन्ति गगनं कान्त्या नीलरत्नमनोज्ञया ।
वेल्लद्बलाकावलयो दरीद्वारविलम्बिनः ॥ २ ॥

अधित्यकासु शृङ्गेषु कटकेषु समंततः ।
बद्धा इव घनाः सान्द्रगर्जितध्वनिभीषणाः ॥ ३ ॥

सृजन्तो घोरतिमिरं विद्युतां निकषोपलाः ।
धाराभिर्धरणीं कृत्स्नां सिञ्चन्तः शाद्वलावृताम् ॥ ४ ॥

गर्जितैस्तर्जयन्तीव सततं मम मानसम् ।
वक्रेन्द्रचापभ्रूभङ्गैर्भीषयन्ति दिवानिशम् ॥ ५ ॥

विद्युन्नयनविस्फोरैरधीरं कुर्वते मनः ।
वेधयन्तीव हृदयं बिन्दुभिर्मार्गणैरिव ॥ ६ ॥

वान्ति सीकरिणो वाता धुन्वन्तः कदलीवनम् ।
शीतला अपि चात्यर्थं दीपयन्तीव पावकम् ॥ ७ ॥

प्रत्यङ्गं तापयन्तीव जानक्या विरहेऽद्य माम् ।
पयोदसुहृदां केका भिन्दन्तीव मनो मम ॥ ८ ॥

कामं कठोरहृदयो वज्रादप्यस्मि लक्ष्मण ।
कदम्बगुलिकाबाणैर्वक्षो यस्य न दीर्यते ॥ ९ ॥

पश्य केतकपत्राणि करपत्राणि साम्प्रतम् ।
परागैर्धूलयन् हस्तं प्रहरत्यद्य मन्मथः ॥ १० ॥

तमालकाननं भ्रातः सुस्निग्ध तिमिरोपमम् ।
गाढमोहमयीं मूर्छामातनोति प्रतिक्षणम् ॥ ११ ॥

शिलीन्ध्रपुष्पमासाद्य भ्रमरी भ्रमरान्विता ।
यथा क्रीडति सौमित्रे तथासूयामि संततम् ॥ १२ ॥

नवशाद्वलसंदोहैराचितं धरणीतलम् ।
इन्द्रगोपगणैर्नित्यमलङ्कृतमिवाधुना ॥ १३ ॥

चातकानां कलो नादो मेघमण्डलसंनिधौ ।
उद्वेजयति मां नित्यं प्रियाविरहविह्वलम् ॥ १४ ॥

कलमालपते नित्यं कोकिलावलिरुन्मदा ।
यशांसीव जगज्जिष्णोः स्मरसंज्ञस्य भूपतेः ॥ १५ ॥

यूथीकुसुमसौरभ्यसंजातमदविह्वलाः ।
कुर्वन्ति कलझाङ्कारनादं मधुपराजयः ॥ १६ ॥

नद्यो नवघनासारभरितस्रोतसोऽधुना ।
सजवं यान्ति कामार्त्ता इवात्मपतिमम्बुधिम् ॥ १७ ॥

गर्जितैर्घनसंघस्य तोयभारविलम्बिनः ।
गर्जतीवोग्रदर्पेण गिरिरेष गुहामुखैः ॥ १८ ॥

स्रवन्ति निर्झरा भ्रातः सोद्रेकाः परितो गिरिम् ।
मत्तः करीव समये मदधाराः समंततः ॥ १९ ॥

स्वयं जनितमूष्माणं स्वयमेव निरस्यति ।
कृपयेव नृणां मेधो धारासम्पातवर्षणः ॥ २० ॥

अभ्राणि स्पृष्टमात्राणि तडिज्ज्वलनवर्त्तिभिः ।
गर्जन्ति लोहयन्त्राणि प्रायः स्मरमहीपतेः ॥ २१ ॥

तिरोदधति मण्डूका ध्वनिभिर्धीरदूरगैः ।
शब्दान्तरं परगुणं साभ्यसूया बुधा इव ॥ २२ ॥

मध्येरजनि गर्जन्तो वारिदा व्योममण्डले ।
विलुम्पन्ति सखे निद्रां विरहोद्बोधपण्डिताः ॥ २३ ॥

पातयन्ति मुहुर्घोषैरयोघनमिवोरसि ।
घनौघा मम जानक्या विरहेऽतीव निर्घृणाः ॥ २४ ॥

सर्वं सहामि सौमित्रे सोऽहं कठिनमानसः ।
कथं भविष्यति पुनर्वैदेही विरहात्सदा ॥ २५ ॥

अये कमलपत्राक्षि शिरीषसुमकोमले ।
अभूतपूर्वं विरहं वैदेहि सहसे कथम् ॥ २६ ॥

रामः कठोरहृदय ईदृशीं विरहापदम् ।
सहतां सुदति स्थाने तव सम्प्रति का दशा ॥ २७ ॥

हा देवि धीरा भवितुमर्हासि जनकात्मजे ।
अहो अधीरहृदयो रामः किं नु करोत्वयम् ॥ २८ ॥

मद्दशां को नु कथयेद्वैदेहि तव संनिधौ ।
हा हा जनकपुत्रि त्वं कथं नु ज्ञास्यसे प्रिये ॥ २९ ॥

आत्मनो जीवितेनैव त्वं जीवसि कथंच न ।
इति मेऽनुमितं देवि किं तु कास्विद्दशा तव ॥ ३० ॥

अये मरुत्सखे तत्र गच्छ यत्रास्ति मैथिली।
स्फुटं कथय तस्यै त्वं मद्दशां निखिलामपि ॥ ३१ ॥

अथ तस्या दशां मित्र कृत्स्नां मम निवेदय।
नास्य त्वदुपकारस्य निष्कृतिर्मम विद्यते ॥ ३२ ॥

इति स्मारं स्मारं जनकतनयां प्राणदयितां
रघुश्रेष्ठः प्रावृट्समुदयसमुद्दीप्तविरहः।
स्वदुःखं सौमित्रे स्फुटमभिदधन्मुग्धहृदयो
मुमूर्च्छान्तर्लीनाखिलकरणनिश्चेष्टिततनुः ॥ ३३ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे प्रावृड्वर्णनो नामैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९१ ॥

*

द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

सम्मार्ज्य तस्य वदनं सहसा सुमित्रासूनुः पयोभिरमलैर्नगनिम्नगायाः।
ईषत्समुन्मिषितसुस्थिरनेत्रपद्मं संदृश्य रागविभवं तमथाभ्युवाच ॥ १ ॥

हा हन्त विरहेणार्तो यदाह निभृतं भवान्।
तत्तथैवास्ति किंत्वार्य धीरतामेहि सम्प्रति ॥ २ ॥

अस्य दुःखसमुद्रस्य गम्भीरस्य महीयसः।
आरुह्य धैर्यतरणीं पारं प्राप्तुं त्वमर्हसि ॥ ३ ॥

अधैर्यं दृषदं नाथ कथं वहसि चात्मना।
विरहक्लेशपाथोधिमध्यस्थोऽतिविचक्षणः ॥ ४ ॥

न वै जनकपुत्र्यास्ते सम्भाव्यो विरहः क्वचित्।
वधाय रावणस्यायं लोके सम्भावनां गतः ॥ ५ ॥

विपरीतमपि स्वामिन् जायते दैवयोगतः।
भाविनार्थेन निर्बद्धमिति मे जायते मतिः ॥ ६ ॥

सुरासुरमर्त्ये ह्यस्मिन् भवे रावणशातनः।
को भवन्तं विना नाथ तदर्थं चैतदप्यभूत् ॥ ७ ॥

मायामात्रं तु जानामि मैथिल्या विरहं तव।
ज्योत्स्नयेव शशाङ्कस्य प्रभया तरणेरिव ॥ ८ ॥

प्रमथ्य शीघ्रं लङ्केशं प्रियाविरहकैतवात् ।
भवांस्त्रैलोक्यसंतापं स्ववीर्येण हरिष्यति ॥ ९ ॥

अथोवाच रघुश्रेष्ठो दैन्यं प्रकटयन् मुहुः ।
संकोच्य नासिकाग्रं स्वं म्लानधीर्दुःखकोटिभिः ॥ १० ॥

शृणु लक्ष्मण वक्ष्यामियथाहं ग्लानमानसः ।
अलं मम मुधास्तोत्रैरित्थं ह्याजन्मदुःखिनः ॥ ११ ॥

किं मया ननु जातेन मातुः क्लेशदजन्मना ।
तोषितौ पितरौ चैव पोषिता न च बन्धवः ॥ १२ ॥

यः स्वयं दुर्भगो दीनः कोटिदुःखैकभाजनम् ।
स कथं सुखयेदन्यान् सोऽहमस्मि च तादृशः ॥ १३ ॥

[1]अनपत्यौ च पितरावभूतां खलु मे पुरा ।
तयोरहं सुसंजातो दैवप्रार्थनया सखे ॥ १४ ॥

मदर्थं प्रार्थिता विप्रा मम पित्रा धृतार्थिना ।
तैश्च सम्प्रार्थितो देवस्तेन दत्तस्ततश्चरुः ॥ १५ ॥

जातास्तेन वयं भ्रातश्चत्वारो भ्रातरः क्रमात् ।
एवं प्रयासाज्जातोऽहं शुचे पित्रोस्थतात्मनः ॥ १६ ॥

मदर्थं शोचता तेन मम पित्रा महीभृता ।
असवः सहसा त्यक्ता अनाथाश्चाभवन् प्रजाः ॥ १७ ॥

मद्धेतोर्मत्प्रसूर्दीना नितरां क्लिश्यते च सा ।
न यस्याः श्रवणे प्राप्तं परदुःखमपिकचित् ॥ १८ ॥

अहो मे बन्धवो दीना मम हेतोः शुचार्पिताः ।
अजस्रमश्रुसम्पातैर्व्याकुलीकुर्वते दृशः ॥ १९ ॥

न मया तोषितस्तातो न मातुर्निष्कृतिः कृता ।
न भ्रातरोऽनुजाः सौम्याः सम्पद्भिः सुखिताः क्वचित् ॥ २० ॥

मदर्थं त्वमपि भ्रातरात्मानं क्लेशयस्यहो ।
भरतश्च जटाधारी बल्कलाजिनवाससी ॥ २१ ॥

बिभ्राणो यतचित्तात्मा यतेन्द्रियगणश्च सः ।
कष्टेन कालं नयति त्यक्तभोगपुरःस्थितिः ॥ २२ ॥

तमनुव्रत एवास्ति शत्रुघ्नोऽप्यरिमर्दनः ।
इत्थं सर्वकुटुम्बस्य दुःखायाजनि मज्जनिः ॥ २३ ॥

पिता मे वत्सलत्वेन राज्यभाराभिषेचनम् ।
कर्त्तुमैच्छत्तदाप्यासीन्मम भाग्यविपर्ययः ॥ २४ ॥

---

१. १४ आरभ्य १७ पर्यन्ताः श्लोका मथुरापाठे निष्कासिताः ।

अन्तरायः कृतः सद्यः कैकेय्या राज्यलुब्धया ।
वनवासस्ततश्चासीत्पत्न्या सह मनोज्ञया ॥ २५ ॥

यस्याः शिरीषकुसुमकोमलौ चरणौ सखे ।
अटवीं गाहमाना सा मत्सार्थे व्यचरत्प्रिया ॥ २६ ॥

वर्षवातातपहिमैः कायक्लेशं दिवानिशम् ।
बिभ्राणा मिथिलाधीशपुत्री चरति कानने ॥ २७ ॥

पत्न्या अपि सुखं येन न जातु रचितं क्वचित् ।
सोऽहं किमन्यबन्धुभ्यः सुखं दास्यामि लक्ष्मण ॥ २८ ॥

रक्षसा हारिता सापि दुःखेऽपि सुखमानिनी ।
क्व नः कुलं सुविमलं क्व चेदं लाञ्छनं महत् ॥ २९ ॥

तस्या एव कृते सम्यगुपयुक्तवपुश्च यः ।
मृतः स मित्रं तातस्य वर्षीयान् विहगोत्तमः ॥ ३० ॥

न तस्य निष्कृतिर्लभ्या जन्मकोटिशतैरपि ।
अधर्माच्च हतो वालिर्बलवान् कपिपुङ्गवः ॥ ३१ ॥

इति जन्मत आरभ्य दुःखानि गणयन्नहम् ।
नान्तं गच्छामि सौमित्रे ततः खिद्यतेतमां मुहुः ॥ ३२ ॥

विरहविधुर इत्थं पूर्वदुःखानुदर्शी स्वमथबहु वीजानन्साम्प्रतं दुःखमग्नम् ।
यदि यदिगणयानः स्वाशुभान्यस्तहर्षो रघुपरिवृढ आसीद्दीनचेता[1] नितान्तम् ॥ ३३ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥

*

त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तमनुशयानं दृष्ट्वा सौमित्रिर्द्विगुणदुःखनिहितमनाः ।
मृदुनैव सान्त्वयिष्यन् वचसा सप्रणयमब्रवीज्ज्येष्ठम् ॥ १ ॥

किमार्य भाषसे दीनं मर्त्यानुकरणाद्भवान् ।
मनो मे वचनैरेभिरुच्चैर्मोहयसीव भोः ॥ २ ॥

कारणेनैव मर्त्यत्वमङ्गीकृत्य करोत्यलम् ।
तादृशीं विपुलां लीलां दुष्करायाखिलैरपि ॥ ३ ॥

१. ग्लान०–मथु०, अयो० ।

धर्मस्य स्थापनं लोके चिकीर्षुर्यद्भवान् प्रभो ।
करोषि भुवने लीलां तस्यास्तत्त्वं सुदुर्गमम् ॥ ४ ॥

इदानीमपि लोकस्य कण्टकोऽयं दशाननः ।
त्वयैव वध्योवीरेन्द्र तदर्थं ह्येष उद्यमः ॥ ५ ॥

जगद्विध्वंसकाः क्रूरा राक्षसा घोरदर्शनाः ।
कति नो भुवि हन्तासि भूष्णुस्त्रैलोक्यसौख्यदः ॥ ६ ॥

मैवं वादीः प्रभोदीनं जगदुत्साहवर्द्धनः ।
एवंविधेन वचसा हीयते मामकं मनः ॥ ७ ॥

युङ्क्त्वा कपिबलैर्ऋद्धां वाहिनीं दुर्जयां परैः ।
नखदन्तायुधां घोरां सर्वान् ज्येष्यामहे रिपून् ॥ ८ ॥

जित्वा रिपून् वादयित्वा सिन्धुगम्भीरदुन्दुभिम् ।
त्रैलोक्ये स्थापयतमां यशः कर्पूरनिर्मलम् ॥ ९ ॥

न जातु भवतश्चित्ते सम्भाव्यो[1] धैर्यविपर्ययः ।
न पुनः कुरु काकुत्स्थ वाक्यैरेभिः शुचं मम ॥ १० ॥

त्रैलोक्याभयदानाय भुवि कल्पतरूपमः ।
न पुनर्जनयेः स्वामिन् वाक्यैरेभिर्भयं मम ॥ ११ ॥

दुःखाकरोति यश्चार्य त्वां सर्वजगतः सुखम् ।
स खलः स्वेन पापेन यास्यति क्षयमञ्जसा ॥ १२ ॥

इत्थं स सन्त्वितो वाग्मिरनुजस्य रघूद्वहः ।
निन्येकृच्छ्रेण विरही चातुर्मास्यं भयावहम् ॥ १३ ॥

अथो जगाम वर्षर्त्तुरवसानं ततो घनाः ।
सान्द्रकर्पूरधवलाः परितो व्यचरन् दिवि ॥ १४ ॥

वितीर्णसलिलास्तेन लघीयांसो बलाहकाः ।
बभुः श्वेतपटाकारा हरितां शाटिका इव ॥ १५ ॥

विजगाल मयूराणां सहसैव मनोमदः ।
षड्जस्वरवतीः केकाः पुरावृत्ता इवाभवन् ॥ १६ ॥

अस्तं जगाम वर्षाभूर्नादकोलाहलोत्करः ।
ववृधे खञ्जनरवः परितो वनराजिषु ॥ १७ ॥

विच्छिन्नेषु पयोदेषु प्रादुरासन् रवेः कराः ।
गतेषु पातकेष्वन्तः प्रमोदनिकरा इव ॥ १८ ॥

जजागार विधुज्योत्स्ना निर्मले नभसिस्फुटम् ।
निरज्ञानतमस्यन्तःकरणे स्वात्मधीरिव ॥ १९ ॥

---

१. पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षः ।

तत्क्षणाल्लब्धरुचयः समदीप्यन्त तारकाः ।
ब्राह्मणा इव धर्मेण सम्प्राप्तब्रह्मवर्चसाः ॥ २० ॥

सप्तपर्णप्रसूनानि सौरभ्यैः समपूरयन् ।
दिशो मदनमातङ्गमदाम्भोवासिता इव ॥ २१ ॥

अशाम्यत्पूर्णपूराणां नदीनां प्रबलो जवः ।
प्राप्तपूर्णधियां यद्वद्विदुषां मोहजो रयः ॥ २२ ॥

मल्लीवनानि परितो विकासीनि वभुस्तमाम् ।
मनांसि सप्रसादानि प्राज्ञानामिव कालतः ॥ २३ ॥

पथि पङ्कभरोऽशुष्यत्सवितुः किरणाहतः ।
प्रजासु दुर्नय इव राज्ञः करगणैः क्षतः ॥ २४ ॥

असंगतेषु नादेषु मयूराणां समं ततः ।
राजहंसरवाः सद्यः समश्रूयन्त दिक्वलम् ॥ २५ ॥

तमोमयी ययौ वर्षा सुप्रकाशमयी शरत् ।
प्राकाशततमां लोके श्रीपतेर्या प्रबोधिनी ॥ २६ ॥

सप्तपर्णप्रसूनस्पृग्ववौ वायुः शनैः शनैः ।
गजाः प्रोत्फालमातेनुः प्रतिद्विरदशङ्किनः ॥ २७ ॥

कुमुदानि त्रियामासु दिनेषु नलिनानि च ।
विकासैर्व्यरुचन्नन्तःकासारसलिलेष्वलम् ॥ २८ ॥

जुगुञ्जुर्मत्तमधुपाः फुल्लपङ्कजवासिनः ।
अवाद्यद् वल्लकीवोच्चैः कामभूपसमागता ॥ २९ ॥

कलहंसकलध्वानैश्चक्रवाककुलस्वनैः ।
राजहंसावलीनादैश्चमत्कारोऽभवद्गिरौ ॥ ३० ॥

असिद्यामतमे व्योम्नि रुरुचुर्बद्धपङ्क्तयः ।
राजहंसा हरेर्वक्षःस्थले मुक्तास्रजो यथा ॥ ३१ ॥

सरांसि सरितः सर्वा विवभुर्विमलोदकाः ।
शरत्कालप्रभावेण ध्वस्ते रजसि कृत्स्नशः ॥ ३२ ॥

रजस्तमश्चाभिभूय सत्वं शुभ्रं स्वभावतः ।
प्रकाशकं भवेत्कृत्स्ने प्रादुरास समं ततः ॥ ३३ ॥

शरदममलसूर्याचन्द्रचञ्चत्प्रकाशां विकचकमलराजीकैरवश्रेणिरम्याम् ।
रघुपतिरवलोक्याभ्यस्तसुग्रीवसख्यो नतशिरसमवोचल्लक्ष्मणं वाक्यमित्थम् ॥ ३४ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे शरदागमो नाम त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥

*

चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

शरदं पश्य सौमित्रे प्रसृतां परितो भुवि।
वनेषु फुल्लमल्ली या जलेषूत्फुल्लपङ्कजा ॥ १ ॥

प्राप्तोऽभिषेणनंकर्त्तुं कालोऽयं लोकसौख्यदः।
तुल्यशीतोष्मविभवस्तुल्यरात्रिदिनोदयः ॥ २ ॥

इदानीमेव च प्रायो राजानः कुर्वतेतराम्।
दिग्जैत्रयात्राप्रस्थानं सुकरं सुखसाधनम् ॥ ३ ॥

प्राप्तश्च नेह सुग्रीवो विश्वास्य वचनेन माम्।
तत्रैव तस्थौ भुञ्जानः किष्किन्धाराज्यसम्पदम् ॥ ४ ॥

न तं विना भवेज्जातु सेनासंघटनं मम।
कथमायाति चेदानीं स दोषाद्विस्मृतो नु किम् ॥ ५ ॥

मित्रं स्वच्छतया यो वै शीलयेच्छुद्धमानसः।
तस्यायं च परो लोकः सर्वर्द्धिसुखसम्पदः ॥ ६ ॥

यदि मां वञ्चयित्वैष तिष्ठेन्निजपुरे कपिः।
तदश्य किमहं कुर्यां परदेशकृतागमः ॥ ७ ॥

पस्य लक्ष्मण विश्वासात्तस्याहं माल्यवद्गिरौ।
एतावत्कालमत्रासं चातुर्मास्यं च यापितम् ॥ ८ ॥

स च मां नोपपातोऽत्र किं कार्यमधुना मया।
न चेह मत्स्थितौ हेतुः सेनासंघटनात्परः ॥ ९ ॥

नूनं राज्यमदाविष्टः सुग्रीवः कपिपुङ्गवः।
किष्किन्धानगरीभोगसुखासक्तः क्व मां स्मरेत् ॥ १० ॥

मातरं पितरं मित्रं भ्रातरं बान्धवानपि।
विस्मरन्ति मदाविष्टा यदुक्तं पूर्वमात्मना ॥ ११ ॥

तस्य राज्यमदो भूयान्निःसपत्नां पुरीमिमाम्।
शासतो विविधान् भोगान् भुञ्जानस्य निरन्तरम् ॥ १२ ॥

तारया रूपवत्या स चिराभिलषितया तया।
कुर्वाणोऽतितरां भोगान्न मां स्मरति वानरः ॥ १३ ॥

स राजा कपिकोटीनां बलवान् दुर्गसंस्थितः।
भुङ्क्ते भोगान् सदा मत्तः किं मत्तोऽस्य प्रयोजनम् ॥ १४ ॥

अकैतवः सखा भूमौ सज्जनश्चातिदुर्लभः ।
मां वञ्चयन् स्फुटमसौ भुङ्क्तेराज्यमकण्टकम् ॥ १५ ॥

इत्यार्यस्य वचः श्रुत्वा सौमित्रिः क्रोधवान् कपौ ।
उवाच धनुरुद्यम्य तदङ्घ्रिनिहितेक्षणः ॥ १६ ॥

गत्वाहमार्य किष्किन्धां त्वत्प्रतापेन निर्भयः ।
तं बद्ध्वा सद्य आनेष्ये मित्रवञ्चनकारकम् ॥ १७ ॥

स पापो येन मित्रस्य विश्वासो घातितः प्रभो ।
क्व तस्य भाग्ये तद्राज्यं तस्मिन् वालिनि जीवति ॥ १८ ॥

स्फुटं विद्रावितो युद्धात्स तेन बलशालिना ।
त्वयैव कृपया नाथ प्रापितस्तादृशं पदम् ॥ १९ ॥

न त्वां स्मरति दुष्टश्चेद्राज्यभोगमदेन सः ।
तदद्य नूनं हन्तव्यो वद्ध्वाऽऽनेयस्त्वदन्तिकम् ॥ २० ॥

क्व तानि वचनान्यस्य क्व तद्दैन्यं क्व सा मतिः ।
सर्वं विस्मृत्य वीरेन्द्र मुग्धो राज्यमेदन सः ॥ २१ ॥

इत्युक्तवति सक्रोधं सुमित्रानन्दने स्फुटम् ।
उवाच रामः सौम्यत्वं दर्शयन् बुद्धिसागरः ॥ २२ ॥

गच्छ लक्ष्मण किष्किन्धां तमानय कृतादरः ।
साम्नैव सिध्यतो भ्रातस्तुर्योपायो न योज्यताम् ॥ २३ ॥

नूनमायास्यति मम स्नेहबद्धः कपीश्वरः ।
बोधनीयः पुनरयं यत्तेन मयि भाषितम् ॥ २४ ॥

स्मृत्वा प्रतिज्ञामात्मीयां नूनमेष महामतिः ।
समुद्बुद्धतमस्नेहो न स्थास्यति निजे पुरे ॥ २५ ॥

प्रियावियुक्तं क्लिश्यन्तं विदन् वनवासतः ।
कृतोपकारं मामेष तत्क्षणादुपयास्यति ॥ २६ ॥

न पुनर्भवता कार्यस्तस्मिन् मित्रे निरागसि ।
लेशोऽपि कोपस्य सखे यावत्साम्ना प्रसीदति ॥ २७ ॥

सहैव तेन सौमित्रे त्वमायास्यसि मामिह ।
अन्ये च ये कपिभटा अनुगास्तस्य तैरपि ॥ २८ ॥

इति रघुपतिमतमेष गृहीत्वा परिणतमनिरथ तेन विसृष्टः ।
पदसरसिजयुगमस्य च नत्वा कपिपरिवृढसविधं स जगाम ॥ २९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे लक्ष्मणकिष्किन्धागमने नाम चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥

*

पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

गते तु लक्ष्मणे वीरे किष्किन्धां नगरीं रामः ।
उद्धर्तुकामो लङ्केशं वंदीयाता मृगीदृशः ॥ १ ॥

सुवेलगिरिसुस्निग्ध गह्वरान्तरकाननम् ।
अनेककुञ्जपुञ्जाढ्यमगमद्रघुपुङ्गवः ॥ २ ॥

लङ्कायां तत्र ता रुद्धाः कन्यास्त्रिजगदोकसः ।
नरनागनगोद्भूताः सुरकिन्नरसम्भवाः ॥ ३ ॥

नानादेशमहीपानां कन्याश्च हरिणेक्षणाः ।
दिक्पतीनां पुरभवास्तथान्य हरिणीदृशः ॥ ४ ॥

अभुक्ता रावणेनापि श्रीरामनिहिताशयाः ।
रत्नभूता मृगदृशः स्त्रीणां कामकलाकुलाः ॥ ५ ॥

अभ्युद्धार ताः सर्वाः सीतया सहितो विभुः ।
आरामे राक्षसपतेः शतयोजनविस्तृते ॥ ६ ॥

तत्राशोकतरोर्मूले जानकीं विरहाकुलाम् ।
आजुहाव प्रियस्तत्र यत्र ताभिररीरमत् ॥ ७ ॥

विस्तार्य रजनीं दिव्यां पूर्णचन्द्रकरोज्ज्वलाम् ।
प्रमुद्वनश्रियं तस्यामाविर्भाव्य निजेच्छया ॥ ८ ॥

सहजानन्दिनीसीतासम्पर्कसुखिताशयः ।
मोदयामास ताः सर्वाः कन्यास्त्रिजगदोकसः ॥ ९ ॥

प्रभुः कृतार्थयामास स्वरूपानन्ददानतः ।
ततः समाययौ देवो लक्ष्मणागमनक्षणे ॥ १० ॥

रम्ये माल्यवति क्ष्मामृत्यखिलर्तुमनोहरे ।
भूतिलिप्तो जटाधारी वल्कलाजिनवाससा ॥ ११ ॥

कैलासनाथसदृशो रामः कारणमानुषः ।
तमभिप्रययौ श्रीमान् कृतकार्यश्च लक्ष्मणः ॥ १२ ॥

भुशुण्ड उवाच

कथं सुमित्रातनयः किष्किन्धानगरीमगात् ।
कथं च सत्कृतस्तत्र सुग्रीवाद्यैः कपीश्वरैः ॥ १३ ॥

ब्रह्मोवाच

आर्येणादिष्टमात्रोऽसौ लक्ष्मणः परवीरभित् ।
बद्धतूणो धनुष्पाणिः किष्किन्धानगरीमगात् ॥ १४ ॥

पालितां तेन वलिना सुग्रीवेण महौजसा ।
राजधानीं कपीन्द्राणां सर्वसौख्यसमन्विताम् ॥ १५ ॥

परिस्फुरद्गृहारामकोष्ठाट्टालकगोपुराम् ।
हट्टापथस्थितानेकसम्पद्भूरसमाकुलाम् ॥ १६ ॥

आस्फोटयद्भिर्दोर्दण्डान् सुग्रीवबलबन्धिभिः ।
वारुणीपानमत्तैश्च कपीन्द्रैः सेवितां सदा ॥ १७ ॥

विशालपरिखान्तःस्थदृढप्राकारसंवृताम् ।
महाप्रासादमौलिस्थवैजयन्तीविभूषिताम् ॥ १८ ॥

अलंकृतैः सदा हृष्टैर्नरनारीगणैर्वृताम् ।
राजद्वारसदावाद्यद्दीर्घदुन्दुभिनादिताम् ॥ १९ ॥

तत्रार्यस्य निदेशेन गत्वा द्रुततरं ततः ।
कपिराजस्य भवनं जगामं धृतकार्मुकः ॥ २० ॥

करालतोमरकरः कट्योस्तूणीयुगान्वितः ।
कपिराजसभां प्राप वृद्धैः कपिवरैर्युताम् ॥ २१ ॥

तत्रोपविष्टांस्तानुच्चै रामानुज उवाच ह ।
अहो रे वानरा ब्रूत क्व सुग्रीवः स नः सखा ॥ २२ ॥

विश्वास्य वचनैरार्यं स्त्रीवियुक्तं वनालयम् ।
योऽननुध्यातमैत्रीको विषयान् सेवते पुरे ॥ २३ ॥

क ईदृशः सुहृन्मैत्रीं विहन्याद्वचसोर्जिताम् ।
अज्ञातमित्रसंक्लेशः साधितस्वप्रयोजनः ॥ २४ ॥

प्रायोऽन्तःपुर एवास्ति स सुखी तारया सह ।
विस्मृत्य सुहृदं रामं भुङ्क्ते भोगान् यथेप्सितान् ॥ २५ ॥

तद् ब्रूत त्वरितं गत्वा मदागमनकारणम् ।
नियुक्तो राघवेन्द्रेण प्राप्तोऽहं तस्य संनिधौ ॥ २६ ॥

आकारणार्थं राज्यश्रीभोगमत्तस्य सम्प्रति ।
स चेत्त्वरितमागच्छेद् रामचन्द्रस्य सन्निधौ ॥ २७ ॥

तदा भवेच्छुभं नो चेद्जन्तासौ वालिनो गतिम् ।
विस्मृत्य तादृशं मित्रं पुरोपकृतिकारिणम् ॥ २८ ॥

ब्रह्मोवाच

अथ ते कपिपुङ्गवाः समस्तास्त्वरितं भक्तिभरेण तं प्रणम्य ।
भ्रुकुटीकुटिलाननं च भीताः कृतभूरिप्रणिपातमेतदूचुः ।। २९ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे लक्ष्मणकपिराज-समाप्रवेशो नाम पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।। १९५ ।।

*

षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः

कपय ऊचुः

स्थीयतामिह विश्रम्य श्रीरामानुज सादरम् ।
प्राप्तोऽसि स्वस्य भवनमिति चेतसि चिन्तय ।। १ ।।

यावत्स बुध्यते सुप्तः स्वामी नो भवतां सखा ।
किष्किन्धानगरीराजः सुग्रीवः कपिराट् प्रभो ।। २ ।।

श्रीराममात्मनो मित्रं कथमेषोऽतिवर्त्स्यति ।
यदाज्ञापयिता देवः कर्तासौ स्वयमेव तत् ।। ३ ।।

यस्मिन् प्रसादो विहितो भवद्भिः सिंहविक्रमैः ।
तस्मिन् कृपापराधेऽपि न क्रोधं कर्तुमर्हथ ।। ४ ।।

सर्वे वयं कपिभटा भवदीयाः स्म लक्ष्मण ।
आज्ञया रामचन्द्रस्य नापेक्षन्ते ह्यसूनपि ।। ५ ।।

कश्च युष्मासु कुर्वीत कैतवं सौहृदापहम् ।
निष्कैतवेषूपकृतिप्रमोदितसुहृत्सु च ।। ६ ।।

शीघ्रं विजित्य तं पापं रक्षसामधिपं खलम् ।
राघवेन्द्रस्त्रिभुवने यशो विस्तारयिष्यति ।। ७ ।।

इति रामानुजं कीशाः सान्त्वयित्वा महाधियः ।
तारायै कथयामासुस्तदागमनमञ्जसा ।। ८ ।।

ज्ञात्वा सा वारुणीमत्तं सुग्रीवं कपिभूपतिम् ।
कपिभिः कारयामास सौमित्रेः सत्कृतिं मुहुः ।। ९ ।।

अथ सा सुमहाप्राज्ञा पतिं शुद्धान्तसंस्थितम् ।
उपयातवती तारा वचनं चेदमब्रवीत् ।। १० ।।

सावधानो भव प्राज्ञ प्राप्तस्ते सुहृदोऽनुजः ।
सुमित्रातनयो वीरो लक्ष्मणः शुभलक्षणः ।। ११ ।।

सौमित्रिमागतं श्रुत्वा सुग्रीवः कपिराट् ततः ।
अजहात् तत्क्षणेनैव सुगाढं वारुणीमदम् ॥ १२ ॥

सहर्षोत्फुल्लनयनो लक्ष्मणस्य दिदृक्षया ।
सम्मार्ज्य सलिलैर्भूयः शीतलैर्नयने मुखम् ॥ १३ ॥

सावधानोऽथ सुग्रीवः सभामण्डपमाविशत् ।
यत्र स्थितः स वीरेन्द्रो लक्ष्मणः स्वामिकार्यकृत् ॥ १४ ॥

प्रह्वः स तच्चरणयोः प्रणनाम कृतादरः ।
बद्धाञ्जलिपुटो धीमांस्तस्थौ तस्य पुरोगतः ॥ १५ ॥

उपवेश्याथ सौमित्रिस्तं भक्तिभरसंततम् ।
सभ्रूभङ्गमिदं पश्चादुवाचार्यनिदेशतः ॥ १६ ॥

यस्य पादाम्बुजद्वन्द्वसेवनात्त्वामुपाययौ ।
किष्किन्धापुरराज्यश्रीः सति वालिनि दुर्लभा ॥ १७ ॥

तस्मिन्नार्येण निहते बलशालिनि वालिनि ।
सेवते तामविरतं राज्यश्रियमकण्टकाम् ॥ १८ ॥

भुङ्क्षे तारां च पद्माक्षीं सह राज्यश्रिया तया ।
विस्मृतश्च स वीरेन्द्रः कानने निवसंस्त्वया ॥ १९ ॥

विप्रयुक्तः स्वप्रियया त्यक्तराज्यो गुरोर्गिरा ।
जिघांसुः स्वामिनीचोरं तं पापं दशकन्धरम् ॥ २० ॥

एतत्तेऽनुचितं प्राज्ञ यत्तद्विश्वासघातनम् ।
मित्रे कैतवमालम्ब्य को नु प्राप्नोतु मङ्गलम् ॥ २१ ॥

आपद्गतः सखा यस्य दुःखैः सीदति संततम् ।
स भुङ्क्ते चेत्स्वयं भोगां स्तदधिक् तद्भोग भोजनम् ॥ २२ ॥

लक्ष्मणोदीरितमिदं वाक्यमाकर्ण्य कीशराट् ।
हसित्वा परिरेभे तं रामानुजमकैतवः ॥ २३ ॥

निनाय तमथो धीरः शुद्धान्तःपुरमात्मनः ।
तत्र योषिद्गणैः सार्द्धमुपतस्थौ तमूर्जितम् ॥ २४ ॥

तारा तारापतिमुखी हर्षोत्फुल्ल विलोचना ।
तुष्टाव भूरिविक्रान्ति सुमित्रातनयं सती ॥ २५ ॥

आनर्च विविधैर्दिव्यैरुपचारैरुदारधीः ।
तस्याः प्रीत्या सुसंतुष्ट आसीद रामानुजो यथा ॥ २६ ॥

उवाच च महाप्राज्ञा प्रसादसुमुखं ततः ।
सुस्वागतं ते सौमित्रे सुखमास्ते रघूद्वहः ॥ २७ ॥

गिरौ माल्यवति श्रीमान् भृशमानन्दयन् मुनीन् ।
प्रसाददृष्टिरस्मासु कच्चिदस्ति यथा पुरा ॥ २८ ॥

इत्थं स शुद्धान्तगतः कपीशितुस्तेनार्चितः सादरया च तारया ।
उवास तां रात्रिमभीष्टयोजनस्तत्रैव सख्येन भृशं प्रमोदितः ॥ २९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभृशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सुग्रीवान्तःपुरनिवासो नाम षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९६॥

*

सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ प्रातः समुत्थाय तावुभौ कृतमङ्गली ।
शिबिकामारुरुहतुः कपिराजरघूद्वहौ ॥ १ ॥

अग्रेसरैः कपिवरैः सार्द्धं सुविहितोत्सवैः ।
विप्राणां जयघोषैश्च दीर्घदुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ २ ॥

अन्तःपुरचरीभिस्तौ कान्ताभिस्तारया सह ।
कृतप्रस्थानतिलकौ मुक्ताक्षतयुतालिकौ ॥ ३ ॥

अन्तःपुरचरस्त्रीणां जयघोषैः कृतोत्सवौ ।
जालमार्गनिषिक्ताभि र्वीक्ष्यमाणौ च सादरम् ॥ ४ ॥

प्रचेलतुः प्रमुदितौ राजमार्गगतौ च तौ ।
विक्षितौ पुरकान्ताभिः सादरं पुरषर्षभौ ॥ ५ ॥

दधिदूर्वाक्षतंक्षेपकृतप्रस्थानमङ्गलौ ।
तूर्यस्वनकृतोत्साहौ चामरद्वयवीजितौ ॥ ६ ॥

अनुयायिकपिप्रकीरहस्तोद्धृतसत्काञ्चनमौक्तिकातपत्रौ ।
पुरवासिभिरात्तमङ्गलार्थैः शकुनावेक्षणमोदमानचित्तौ ॥ ७ ॥

ताराद्यन्तःपुरस्त्रीणामुत्तीर्णौ नयनाध्वनः ।
विदापयन्त्यवनुगान् सुस्निग्धान् पुरवासिनः ॥ ८ ॥

महता कपिसैन्येन साकं संहृष्टमानसौ ।
ततो जग्मतुरध्वानं माल्यवद्गिरियायिनम् ॥ ९ ॥

गाहमानौ पथि गिरीन् वनानि गहनानि च ।
सेनासंचारतुच्छोदा नदीश्च क्षतरोधसः ॥ १० ॥

लङ्घमानौ कृतजवौ शृण्वन्तौ पक्षिणां रुतम् ।
वीक्षमाणौ पुष्करिणीः संफुल्लाम्बुजकाननाः ॥ ११ ॥

हंससारसचक्राह्वनिनादमुदिताशयौ ।
विश्रमन्तौ क्वचित्पुण्यस्रोतसां सरितां तटे ॥ १२ ॥

क्वचिद्द्रुमतले चारुशीतलच्छायशालिनि ।
जवात्पन्थानमुत्तीर्य माल्यवन्तमुपेयतुः ॥ १३ ॥

यत्रास्ते जगदीशानः स्वयं रघुकुलेश्वरः ।
प्रतीक्षमाणः सौमित्रेर्मार्गं विनिहितेक्षणः ॥ १४ ॥

तत्र सर्वेऽप्युयाजग्मुः कपयो जातकौतुकाः ।
श्रीरामदर्शनश्रद्धापुलकाञ्चितविग्रहाः ॥ १५ ॥

स तत्र नीलोत्पलचारुविग्रहः समाश्रितः कोमलदर्भसंस्तरे ।
पर्यङ्कबद्धासन आत्मयोगभृत् स्वस्थो दधद्वल्कलचीरवाससी ॥ १६ ॥

सुफुल्लराजीवसमानलोचनो नितान्तमाजानुविशालदोर्युगः ।
अलंकृतस्तापसवेशसुश्रिया तडित्पिशङ्गाभजटाकलापभृत् ॥ १७ ॥

तुङ्गोत्तमाङ्गाहितवन्यपल्लवप्रसूनराजीमुकुटो मनोहरः ।
कैलासनाथोपमितौऽप्रमेयसद्गुणाढ्य आस्ते रघुवंशकेसरी ॥ १८ ॥

तं दृष्टवन्तः सकलाः कपीश्वराः सुग्रीवमुख्या विहिताञ्जलीपुटाः ।
सौमित्रिणा ते च सहात्मबन्धुना प्रणम्य येतुः किलदण्डवद्भुवि ।' १९ ॥

पुनः समुत्थाय पुरो जगत्पतेस्तथैव बद्धाञ्जलयः प्लवंगमाः ।
आदेशसापेक्षतया कति क्षणान् सर्वेऽपि तस्थुर्विहितादरोत्सवाः ॥ २० ॥

जवाद् रामोऽथ सुग्रीवं परिरभ्य सुहृत्तमम् ।
लक्ष्मणं च यथास्थानं कपीन् समुपवेशयन् ॥ २१ ॥

तत्र श्रीरामसुग्रीवावेकासनमधिष्ठितौ ।
अङ्गदश्चात्मनिकटं स्थापितो रघुमौलिना ॥ २२ ॥

कृतार्थं मन्यमानाः स्वं सर्वेऽपि कपिसत्तमाः ।
ददृशुश्चिरसोत्तर्षा मुखचन्द्रं जगत्प्रभोः ॥ २३ ॥

अन्योन्यसंकथाभ्याससुखितान्योन्यमानसौ ।
कपीश्वररघुश्रेष्ठौ विप्रयुक्तौ चिरेण तौ ॥ २४ ॥

सानन्दमासाञ्चक्राते वीक्षमाणौ परस्परम् ।
परस्परगुणश्लाघाप्रमोदितपरस्परौ ॥ २५ ॥

अथ लक्ष्मणमाहेदं रामः संफुल्ललोचनः ।
आनीतः साधु सौमित्रे सुग्रीवोऽयं सखा मम ॥ २६ ॥

त्वां विना क इदं कार्यं कर्त्तुं शक्तो महामते ।
आनन्दितस्त्वयास्म्यद्य मन्मित्रमुखदर्शिना ॥ २७ ॥

चक्रवर्ती पुनरयं कपीनां भूरितेजसाम् ।
विक्रमी बलवांस्त्यागी सखा मे सुमहोन्नतः ॥ २८ ॥

यस्याज्ञावशगाः कीशाः कोटिशो यूथपेश्वराः ।
किष्किन्धापुरराजोऽसौ क मां स्मरतु तापसम् ॥ २९ ॥

वनवासिनमापत्सु मग्नं घोरतरास्वयम् ।
यदि मां संस्मरेज्जातु कृतार्थः स्यामसंशयम् ॥ ३० ॥

स चेदयं स्वयं प्राप्तः कृपया मम कीशराट् ।
तर्हि जानामि सौमित्रे निकटेऽभ्युदयो मम ॥ ३१ ॥

इति वादिनमाक्षिप्य रामचन्द्रं कपीश्वरः ।
उवाच संस्मृताशेषतत्कृतोपकृतिर्बुधः ॥ ३२ ॥

अजापि दुर्लभा यस्य स ते करुणया प्रभो ।
द्वारोपान्ते घूर्णमानमत्तमातङ्गमण्डलः ॥ ३३ ॥

चिरं जयति वीरेन्द्र साम्राज्यपदभोगभुक् ।
निदर्शनं तु तत्रायमहमेव न संशयः ॥ ३४ ॥

स्पर्द्धते भवता यस्तु दैवापहृतचेतनः ।
आरात्कृतान्तमहिषघण्टाघोषं शृणोति सः ॥ ३५ ॥

निदर्शनं तु तत्राभून्मम ज्येष्ठः स दुर्मतिः ।
त्वद्दासस्य विपक्षोऽपि किं पुनस्ते रघूद्वह ॥ ३६ ॥

अयमहमिह संगतोऽस्मि दासस्तव रघुपुङ्गव साकमात्मवर्ग्यैः ।
त्रिजगति किल यच्चिकीर्षितं ते द्रुततरमादिश तन्ममाद्य कर्त्तुम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सुग्रीवसमागमो नाम सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९७ ॥

*

अष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

सुग्रीवस्य गिरं श्रुत्वा रघुवंशविभूषणः ।
मुमुदेऽतितरं चित्ते सख्येनाकैतवेन च ॥ १ ॥

अथ लङ्कापतिं दुष्टं जिघांसति रघूद्वहे ।
तदाज्ञया कपिश्रेष्ठ आजुहावकपीनिह ॥ २ ॥

ये केपिभूमिवलये स्थिता दिक्षु विदिक्षु च।
पुरग्रामगिरिद्रोणीवनोपवनवासिनः ॥
आहूताः कपिराजेन कपयः सर्व एव ते ॥ ३ ॥

नानादेशनिवासस्था नानागिरिनिवासिनः।
नानाविपिनवास्तव्यास्तत्र सर्वेऽप्युपाययुः ॥ ४ ॥

नानावर्णाः कपिभटा नानाजातिसमुद्भवाः।
नानापरिकरोपेताः कपिराजनिदेशतः ॥ ५ ॥

सर्वे ते संगतास्तत्र श्रीमद्रघुपतेः पुरः।
बद्धाञ्जलिपुटाः सौम्याः स्थिता आगत्य वानराः ॥ ६ ॥

श्वेतारक्ताः पिशंगाभा नीलवर्णाश्च मेचकाः।
श्वेताः पीताः कर्बुराश्च नानावर्णघनोपमाः ॥ ७ ॥

स्थूलाः स्थूलतराश्चैव तेभ्यः स्थूलतमा अपि।
गिरीन्द्रसदृशास्तुङ्गा गिरीन्द्रशिखरोपमाः ॥ ८ ॥

मत्तेभराजसदृशाः संग्राममखदीक्षिताः।
आस्फोटयन्तो दोर्दण्डान् विचित्रगुणविक्रमाः ॥ ९ ॥

कालास्या अरुणास्याश्च कर्बुरास्याश्च केचन।
पीतास्याः पिङ्गलाक्षाश्च नानावर्णविलोचनाः ॥ १० ॥

विचित्रवेगाः कपयो लाङ्गूलातपवारणाः।
विशाललंकेशकुलमूलोत्खननदीक्षिताः ॥ ११ ॥

आबद्धबन्धुजीवाभरक्तकच्छोटकाम्बराः।
मल्लातिमल्लाः प्रबलाः प्रतिमल्लविचूर्णनाः ॥ १२ ॥

पतङ्गा इव कार्यार्थे स्वामिनस्त्यक्तजीविताः।
त्यक्तप्राणास्त्यक्तगृहा आस्फोटितभुजोरवः ॥ १३ ॥

उच्चैः किलकिलाशब्दैर्भीषयन्तो भयानकाः।
उत्कूर्दमानाः सजवा दीर्घाहुङ्कारपूरिताः ॥ १४ ॥

संग्रामाङ्गणसम्मत्ताः प्रतिसैन्यनिरासकाः।
निर्भयाश्चण्डमतयः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ १५ ॥

देवांशाः श्रीहरांशाश्च निदेशाद्ब्रह्मणो भुवि।
श्रीरामचन्द्रं परया भक्त्या सेवितुमागताः ॥ १६ ॥

सर्वेऽपि तेजसातुल्या ज्वलन्तः पावका इव।
दिशां जैत्राः समरभूताण्डवातुल्यशक्तयः ॥ १७ ॥

घनवद्गर्जमानाश्च सिंहविक्रान्तिशालिनः।
वोढुं भूमिभृतां भारं समर्थाः सुमहाबलाः ॥ १८ ॥

हीरहारभृतो मुक्तामालाभूषितवक्षसः ।
कर्णमौक्तिकशोभाढ्या हेमहारविभूषणाः ॥ १९ ॥

सहानुगाः सहसुताः सहपौत्राः सबन्धवः ।
सकुटुम्बा निष्कपटा योद्धुमाबद्धबुद्धयः ॥ २० ॥

उत्तुङ्गतनवः स्थूला दीर्घदोर्दण्डशालिनः ।
शिलावृक्षप्रहरणा नखरायुधयोधिनः ॥ २१ ॥

दशनायुधयोद्धारो दोर्दण्डपरिघायुधाः ।
चपेटापातचतुराश्चण्डविक्रमशालिनः ॥ २२ ॥

सर्वमल्लकलायुद्धप्रवीणा घोरयोधिनः ।
राक्षसान्तकराः क्रूराः प्रहारविधिपण्डिताः ॥ २३ ॥

शिलाचूर्णननिर्घाता घोरशब्दप्रहारिणः ।
कृतनानादेशजयाः संग्रामोर्जिततेजसः ॥ २४ ॥

प्रसर्पन्तः प्रतिबलेषून्मत्ता युधि भीषणाः ।
बद्धाञ्जलिपुटाः सर्वे रामस्य पुर आययुः ॥ २५ ॥

अत्युद्दामाः समरसरसीगाहनात्युग्रवीर्याः ।
सुग्रीवस्यप्लवगनृपतेराज्ञया ते समेताः ॥
तत्राजग्मुर्वनगिरिगुहाग्रामगेहाधिवासा ।
सर्वेऽप्यष्टादशमितमहापद्मसंख्याः कपीन्द्राः ॥ २६ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे कपिसेनासमागमो नामाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९८ ॥

*

नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

कपयस्ते महाप्राज्ञा वरेण्या बलशालिनाम् ।
महाबुद्धिमतां श्रेष्ठा विक्रान्ताः सुमहौजसः ॥ १ ॥

महाघोररणोद्युक्ताः स्वामिनो हितकारिणः ।
तेषां केचित्कपिवराः सुग्रीवस्य निदेशतः ॥ २ ॥

कृत्वा प्रणामं रामस्य यत्ताः सीतावलोकने ।
मासैकमवधिं कृत्वा ययुरन्वेषणोद्यताः ॥ ३ ॥

तानाह वानरश्रेष्ठान् सभ्रूभङ्गं कपीश्वरः ।
अहो कपिवराः सम्यक् शृणुतेदं वचोमम ॥ ४ ॥

अन्विष्यतां जनकजा भवद्भिर्यत्नतत्परैः ।
एकमासोऽवधिर्दत्तो युष्माकं तत्र वै मया ॥ ५ ॥

मासात्परमुपागम्य रामं न प्रणमिष्यथ ।
तद्यूयं दण्डनीयाःस्थ वचनं मेस्मरिष्यथ ॥ ६ ॥

इत्युक्त्वा प्रेषिताः कीशाः सुग्रीवेण महात्मना ।
सीतामन्वेषयामासुर्दशदिक्षु प्रचारिणः ॥ ७ ॥

जाम्बवान्नाम ऋक्षेशो नलो नीलश्च मारुतिः ।
अन्ये चापि कपिश्रेष्ठास्तेषां मुख्यतमोऽङ्गदः ॥ ८ ॥

कपयो दशकोट्यश्च कृत्वा तेषामधीश्वरम् ।
याम्यां दिशि कपीन्द्रेण प्रेषितो जानकीकृते ॥ ९ ॥

तेऽन्वेषयन्तो जनकेन्द्रपुत्रीं सुनैपुणीदत्तदृशोऽतिविज्ञाः ।
वनेषु शैलेषु गुहासु गह्वरेष्वनेकदेशेषु चिरं विचेरुः ॥ १० ॥

लब्धा न तैः क्वापि गवेषयद्भिर्मृगाङ्कवक्त्रा जनकेन्द्रपुत्री ।
नलंङ्घिरे मासकृतावधिं ते प्राप्तास्ततस्तीरभुवं पयोधेः ॥ ११ ॥

महेन्द्रपर्वते तत्र संगताः कपयोऽखिलाः ।
सुग्रीवस्य कपीन्द्रस्य दण्डभीत्या समाकुलाः ॥ १२ ॥

त्यक्तात्मजीवितव्यास्ते आसीनाः कुशसंस्तरे ।
स्थिताः प्रायोपवेशेन मुहुश्चिन्तासमाकुलाः ॥ १३ ॥

तत्र नानाजगामाथ सम्पतिर्नाम वै खगः ।
स पृष्टस्तैः कपिवरैराचख्यौ जनकेन्द्रजाम् ॥ १४ ॥

लङ्केशोपवनेऽशोकवाटिकायां निवासिनीम् ।
राक्षसीयूथमध्यस्थां प्रियविश्लेषकातराम् ॥ १५ ॥

सम्पातिवचसा तां तु विनिश्चित्यल्पवंगमाः ।
प्रायोपवेशनं त्यक्त्वा पुनर्जीवितमागताः ॥ १६ ॥

बभूवुः स्वस्थमनसः सर्वेऽपि रहिताः शुचाः ।
तानाजगाम हनुमांस्तत्रैव कृतविक्रमः ॥ १७ ॥

दग्ध्वा लङ्कापुरीं कृत्स्नां लांगूलानलचालनात् ।
तेन व्यावर्तिताः सर्वे कपयो रामसंनिधौ ॥ १८ ॥

भुशुण्ड उवाच

कथं जगाम हनुमांल्लङ्कां वारिधिमध्यगाम् ।
कथं च तां ददाहैष गोपितां राक्षसोत्तमैः ॥ १९ ॥

ब्रह्मोवाच

भुशुण्ड शृणु वक्ष्यामि चरित्राणि हनूमतः ।
महाबलो महाकायो यथा लङ्कापुरीं गतः ॥ २० ॥

श्रीरामस्य निदेशेन हनूमान् स्वामिसेवकः ।
अवेक्षणाय जानक्या गन्तुमैच्छत् स तां पुरीम् ॥ २१ ॥

अथापश्यत्पयोराशिं दुस्तरं सर्वमानुषैः ।
अगाधं पयसां राशिमुत्तरङ्गमनारतम् ॥ २२ ॥

अनिरीक्षितपारं च प्रचण्डमरुतान्वितम् ।
गर्जमानं महादर्पं सर्वलोकभयानकम् ॥ २३ ॥

नदीनामाव्रजन्तीनां सर्वतः सजवाम्भसाम् ।
स्रोतोभिरापूर्यमाणमक्षोभितपयोभरम् ॥ २४ ॥

समंतात्पूर्णमाघूर्णल्लहरीकोटिताण्डवम् ।
प्रचण्डमारुतावेगगम्भीरध्वनिभीषणम् ॥ २५ ॥

विस्तीर्णद्वीपधरणिवसज्जनपदव्रजम् ।
मणिमाणिक्यबहुलं मुक्तास्फोटगणाकरम् ॥ २६ ॥

प्लवच्छङ्खकुलव्याप्तं यादोगणभयानकम् ।
पिबतां वारि मेघानां घटाकोटिभिरावृतम् ॥ २७ ॥

प्रवालभूरुहव्याप्तद्वीपपर्यन्त मञ्जुलम् ।
हरिद्रत्नशिलाकोटिव्याप्तद्वीपावनिं क्वचित् ॥ २८ ॥

क्वचिच्छ्रीखण्डविटपिसुगन्धिततटावनिम् ।
क्वचित्कल्पतरुच्छायाविश्रान्तसुरकिन्नरम् ॥ २९ ॥

क्वचिल्लवङ्गवल्लीभिर्व्याप्यमानतटावनिम् ।
सहस्रयोजनायामैः शतयोजनविस्तृतैः ॥ ३० ॥

अत्युग्रतनुभिर्ग्राहैर्दंष्ट्राकोटिभयानकैः ।
उत्क्षिप्तसलिलोत्तुङ्गं नानाजातीयजन्तुभिः ॥ ३१ ॥

आकुलीकृतनीरौघं निमज्जच्चन्द्रभास्करम् ।
अत्युच्छ्रितं महीपृष्ठादत्युद्भटपयोघटम् ॥ ३२ ॥

राक्षसै राक्षसीभिश्च कृतकेलिभरं क्वचित् ।
महामकरविक्षिप्तसलिलोर्मिसमाकुलम् ॥ ३३ ॥

वडवापावकज्वालाप्लुष्यमाणजलाशयम् ।
उच्चैरनेकसाहस्रयोजनायामशालिभिः ॥ ३४ ॥

महेन्द्रपाणिकुलिशाक्षतपक्षतिभिस्ततैः ।
नानामहीध्रनिवहैः सावकाशकृतस्थितिम् ॥ ३५ ॥

वेलावनावलीभीमं निःसीमसलिलाकरम् ।
अनेककौतुकागारं सुरकिन्नरराक्षसैः ॥ ३६ ॥

समंततः सेव्यमानं नानाजनपदाश्रयम् ।
उन्नम्रमेघसंघाममहोर्मिनिबहाचितम् ॥ ३७ ॥

महागम्भीरनिर्घोषतिरोभूतेतरध्वनिम् ।
गम्भीरमप्रमेयं च हरेः शयनमन्दिरम् ॥ ३८ ॥

लक्ष्म्याश्च जनकं साक्षाद्रत्नानामाकरं च तम् ।
महोत्तुङ्गं महावेगं महायामं महोद्भटम् ॥ ३९ ॥

वरुणस्यालयं घोरं महाप्रलयकारणम् ।
आज्ञया देवदेवस्य मर्यादालम्बिनं सदा ॥ ४० ॥

तं दृष्ट्वा पवनसुतो नभःस्पृशोर्मिरामाज्ञापरवशधीर्महातरस्वी ।
लङ्घित्वा गगनपथेन यातुकामो जग्राहोतलवनकृतोमहागिरीन्द्रम् ॥ ४१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे समुद्रदर्शनो नाम नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९९ ॥

*

द्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

ततो बलवतां श्रेष्ठो भृत्यो रघुपतेः स्वयम् ।
हनुमानारुरोहोच्चैस्तीरगं लवणोदधेः ॥ १ ॥

उत्तुङ्गशिखरं शैलं बद्धकच्छारुणाम्बरः ।
आस्फोटितभुजद्वन्द्वस्तलप्रहतशैलभूः ॥ २ ॥

अथ पुच्छं शिरःकृत्य प्रोच्छलद्गुच्छसंनिभम् ।
तेजोराशिर्ज्वलन्दीप्त्या हेमशैल इव त्विषा ॥ ३ ॥

उत्प्लुत्य तुङ्गशैलाग्राद्वातचक्रं सृजन् जवात् ।
हुंकारगर्भगम्भीरनिर्घोषभरभीषणः ॥ ४ ॥

महाभरोद्भूतिदशयोजनप्रस्खलद्गिरि ।
उत्पफालतरां व्योम्ना सजयं मारुतिर्बली ॥ ५ ॥

तं काचिद्राक्षसीघोरा दंष्ट्राकोटिभयानका ।
क्रीडन्ती लवणाम्भोधौ योजनायामिभिर्झषैः ॥ ६ ॥

महानना महाकाया ज्वलत्पावकलोचना ।
विकीर्णैरुच्चैः पिशङ्गाभजटापटलभीषणा ॥ ७ ॥

रुन्धतीबाहुभिस्तुङ्गा वीचीर्लवणवारिधेः ।
तरन्ती चापि गम्भीरे गाधयन्ती मुहुर्जलम् ॥ ८ ॥

अहो आः कोऽयमुघाति नभसा तेजसो निधिः ।
नूनमेष कपिः कश्चिदिति निश्चित्य चेतसा ॥ ९ ॥

छायामेवास्य जग्राह प्रतिष्टब्धश्च मारुतिः ।
विस्मितश्चापि मनसा ज्ञातुकामोऽस्य कारणम् ॥ १० ॥

ततः प्रतिष्टम्भसमिद्धमन्युः स वायुपुत्रः प्रबलो हनूमान् ।
अधो ददर्शाहितलोचनो वै तां राक्षसीं ग्रासविलोलजिह्वाम् ॥ ११ ॥

रोषावेशादथ पवनजो घोरदंष्ट्राकरालां
पीडित्वा तां कलितरभसः कौणपीं ग्रस्तुकामाम् ।
वेगोन्मुक्तः शर इव पपातोच्चकैरुत्तरोष्ठे
पादन्यासप्रहतवदनोद्देश उच्चैर्विवृद्धः ॥ १२ ॥

अधराहनुमाक्रम्य उत्तराहनुमुद्धधत् ।
ववृधे बलवान् वीरोयथा वक्त्रं व्यदीर्यत ॥ १३ ॥

कृत्स्नां विदारयामास राक्षसीं पवनात्मजः ।
मध्ये लवणपाथोधेर्महाबलपराक्रमः ॥ १४ ॥

तथैव मकरीं कांचिच्छतयोजनविस्तृताम् ।
छायाग्राहां कृतग्रासां विददार समीरजः ॥ १५ ॥

शतयोजनविस्तीर्णामुल्लङ्घ्य जलधेर्जलम् ।
लङ्कां जगाम वीरोऽसौ हनूमानात्मनो जवात् ॥ १६ ॥

सोऽदृश्यं रूपमसुरैर्विधाय कपिपुङ्गवः ।
रात्रावालोकयामास रक्षोभिर्गोपितां पुरीम् ॥ १७ ॥

विशालहेमप्राकारां परिखाप्राप्तवारिधिम् ।
प्राकारकूटविषमामग्नियन्त्रसमाकुलाम् ॥ १८ ॥

स्थाने स्थाने महाघोरै राक्षसैरावृतां पृथक् ।
विशालकनकाट्टालविन्यस्तध्वजलाञ्छिताम् ॥ १९ ॥

हेमप्रासादबहुलां हट्टापथविराजिताम् ।
प्रतिहट्टपथं रूढैश्चन्दनद्रुममण्डपैः ॥ २० ॥

शोभितां पारिजातैश्च मन्दारैः कल्पभूरुहैः ।
हरिचन्दनसुच्छायसमाश्रितपुरीजनाम् ॥ २१ ॥

स्वर्गङ्गाकमलारण्यशोभितद्गृहदीर्घिकाम् ।
दशाननगृहोपान्तन्यस्तकैलाससानुनि ॥ २२ ॥

शिवस्य भालचन्द्रांशुजातैर्वितिमिरीकृताम् ।
रक्षोजनै राक्षसीभिर्नानारूपाभिरन्विताम् ॥ २३ ॥

अगस्त्यस्य मुनेः सम्यक् तपस्तेजःप्रकाशिताम् ।
पठद्भिः साङ्गनिगमान् कुमारैर्यातुधानजैः ।
सर्वतो योषितां भूयो होमधूमसुगन्धिताम् ॥ २४ ॥

जातरूपमयैर्गेहैर्गृहस्थानां धनालिभिः ।
सर्वतोदीपितां भूरि चत्वराजिरशोभिताम् ॥ २५ ॥

नभःस्पृशगृहश्रृङ्गामुत्तुङ्गानेकगोपुरैः ।
द्वारपालैः कौणपैश्च विश्वतो भीषणां च ताम् ॥ २६ ॥

रम्योत्फुल्लगृहारामां श्रीखण्डविपिनावृताम् ।
अनेकरचनारम्यां रमणीयतमां त्विषा ॥ २७ ॥

भित्तिभी रत्नजटितविस्फुरज्जालपङ्क्तिभिः ।
रथ्यापथैश्चबहुलैः सर्वतः सुसमाकुलाम् ॥ २८ ॥

उत्तुङ्गवलभीगेहेभवनाग्रविराजिताम् ।
स्फाटिकैश्चैवभवनैर्नानावर्णमणिप्रभैः ॥ २९ ॥

सायंतनघनाकारैः सर्वतो गहनां क्वचित् ।
करालकाहलोद्भूतघोरकोलाहलान्विताम् ॥ ३० ॥

पर्वसूत्सवकृत्येषु वाद्यद्भिः पटहैः प्लुताम् ।
निःसानघोररावैश्च प्रतिशब्दितरोदसीम् ॥ ३१ ॥

सुबेलशैलशिखरैस्त्रिकूटाचलसानुभिः ।
मलयाचलश्रृङ्गैश्च गृहैरिव समाचिताम् ॥ ३२ ॥

मृदङ्गघोषमधुरैर्गृहैः किन्नररक्षसाम् ।
स्थाने स्थाने भवद्भूरिसुमहामङ्गलस्वराम् ॥ ३३ ॥

विवाहादिभवद्भूरिशुभकृत्य निनादिभिः ।
गन्धर्वपाणिप्रहतैर्वाद्यैर्नानाविधैरपि ॥ ३४ ॥

शब्दायितामजस्रं तां हेमजालकमण्डितै. ।
गवाक्षैः पौरगेहानां सर्वतः शोभितां सदा ॥ ३५ ॥

चन्द्रमण्डलवक्त्राभिस्तारामण्डलकान्तिभिः ।
दीपिकाकारतनुभिर्मायाकल्पितवर्ष्मभिः ॥ ३६ ॥

सुन्दरीभिर्मनोज्ञाभिर्मृगाक्षीभिर्दिवानिशम् ।
विषमाभिश्च भीमाभिर्विकटाभिर्जटालिभिः ।
राक्षसीभिरनेकाभिर्जात्यारूपैश्च विग्रहैः ॥ ३७ ॥

आकुलीक्रियमाणां च राक्षसैरतिभीषणैः ।
सर्वसम्पत्समुदितां दशकन्धरपालिताम् ॥ ३८ ॥

नानादिग्भ्यः समानीतैः समृद्धिनिबहैर्युताम् ।
तुङ्गानेकपुरद्वारवाद्यद्दुन्दुभिघोषिताम् ॥ ३९ ॥

स्नानपानाशनायासनानाव्यापारतत्परैः ।
रक्षोभिः सेवितां नित्यं क्रीडद्राक्षसवल्लभाम् ॥ ४० ॥

पुष्पकादिविमानाग्र्यतेजोवृन्दप्रकाशिताम् ।
प्राकारोपान्तसम्मूर्छत्तुङ्गसागरवीचिकाम् ॥ ४१ ॥

रात्रौ तां दशकन्धरस्य नगरीं कृत्स्नामसौ पर्यटन्
पाश्चात्त्येप्रहरे विभीषणगृहं दृष्ट्वा स तुष्टाशयः ।
श्रीरामार्चनपूर्णभक्तितुलसीसौरम्यमुष्टान्तरः
सम्प्राप्तो दशकन्धरस्य परमोद्याने धृतान्वेषणः ॥ ४२ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे हनुमतो लङ्कागमनो नाम द्विशततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥

*

एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

स ददर्श दशास्यस्य वनं सुविपुलं ततः ।
अन्वेषयत् जनकजां तत्र तत्र तरौ तरौ ॥ १ ॥

दृष्ट्वा वनस्य शोभां स प्रहृष्टहृदयोऽभवत् ।
जगाह च वनं कृत्स्नं गह्वरं तरुवल्लिभिः ॥ २ ॥

नानाजातिलतारूढतुङ्गवृक्षसहस्रकम् ।
पुष्पसौरभ्यभरितं वहत्त्रिविधमारुतम् ॥ ३ ॥

सुबेलाद्रिगुहागेहविरूढमलयंद्रुमैः ।
सर्वतः सौरभव्याप्तलतामण्डपगह्वरम् ॥ ४ ॥

त्रिकूटशैलनिपतन्निर्झरानिलशीतलम् ।
पुष्पाकरमिवोत्फुल्लनानाजातिलताद्रुमम् ॥ ५ ॥

चन्दनामोदमधुरं पङ्कजामोदिमारुतम् ।
हेमरत्नसमाबद्धसरोवापीमनोरमम् ॥ ६ ॥

अनेकजातिविहगनिकाणसुनिनादितम् ।
हंसश्रेणीघनरवप्रतिशब्दसमाकुलम् ॥ ७ ॥

गायद्गन्धर्वनिकरं भ्रमरौघकृतस्वनम् ।
प्रमत्तकोकिलालापकोलाहलकलस्वरम् ॥ ८ ॥

रसालमञ्जरीपुञ्जधूलीधारान्धकारितैः ।
प्रावृतैर्लवलीजालैर्माधवीवल्लिमण्डपैः ॥ ९ ॥

प्रतिस्थलं राजमानं नवपल्लवशालिभिः ।
अनोकुहैररुणितं संध्यातपमिवान्तरम् ॥ १० ॥

क्वचित्पीतं च चाम्पेयैस्तमालैर्मेचकप्रभम् ।
विचित्रवर्णकुसुमकर्बुरीकृतमन्तरा ॥ ११ ॥
नानाजातिपशुव्रातनिवासं भूरिभूरुहम् ॥ १२ ॥

तस्मिन् वने ददर्शाथ कंकेलितरुवाटिकाम् ।
वृक्षैर्मञ्जरितैर्युक्तां समंतादरुणप्रभाम् ॥ १३ ॥

हेमप्राकारकलितां लीलाभूमिं मनोभुवः ।
चित्तस्य क्षोभजनिकां दर्शनात्तत् क्षणेन च ॥ १४ ॥

सुरम्यानिलसंव्याप्तां निर्झरानिलशीतलाम् ।
सुवर्णवेदिकारत्नबद्धपद्यां मनोहराम् ॥ १५ ॥

तत्रैकतमकंकेलितरुमूलमुपाश्रिताम् ।
प्रलपन्तीं रामनाम वियोगविकलाशयाम् ॥ १६ ॥

उन्मुक्तमूर्द्धजां वक्षः सिञ्चतीमश्रुबिन्दुभिः ।
अनुतापशते मग्नां संतापग्लपिताशयाम् ॥ १७ ॥

अधोमुखीं मुद्रिताक्षीं दुष्प्रेक्ष्यदशयान्विताम् ।
विरहाख्यतमःस्पर्शादभिभूतैरिवानिशम् ॥१८॥

तनुप्रकाशसंदोहैर्भासिताशेषकाननाम् ।
अशोकवाटिकावेदिसुस्थिरां चपलामिव ॥ १९ ॥

ज्योत्स्नामिव तमोग्रस्तां घनैः सूर्यप्रभामिव ।
दीपिकामिव लोकस्य कालरात्रितमोवृताम् ॥ २० ॥

धूमसंदोहमलिनां दीप्तां वह्निशिखामिव ।
कषाणदृषदुल्लीढामिव सद्रत्नमञ्जरीम् ॥ २१ ॥

द्यामिवानुदितार्केन्दुप्रभामलिनविग्रहाम् ।
महीमिव तपस्तिग्मसूर्यदीधितितापिताम् ॥ २२ ॥

सरसीमिव चात्यर्थं ग्रीष्मार्ककरशोषिताम् ।
लतामिव परिप्लुष्टां वनपावककीलया ॥ २३ ॥

वनीमिव परिम्लानां वारिसेकविनाकृताम् ।
परिभ्रष्टतनुद्योतां परिम्लानमुखश्रियम् ॥ २४ ॥

सुरश्रेणीमिवानेकदानवौघनिपीडिताम् ।
गृहश्रियमिवापुत्रां सद्विद्यामिव शूद्रगाम् ॥ २५ ॥

त्रिजटाराक्षसीवक्त्रोत्थितरामकथामृतैः ।
शनैरीषत्सिच्यमानां सुस्थीकृतहृदं च ताम् ॥ २६ ॥

ददर्श हनुमान् सीतामार्योदन्तं च तां मुहुः ।
पृच्छन्तीं विरहव्याधिशमनं श्रवणेन वै ॥ २७ ॥

रामनामगुणाख्यानैर्निश्चिकाय मरुत्सुतः ।
जनकेन्द्रसुतां धीरामसह्यविरहां सतीम् ॥ २८ ॥

दृष्ट्वा रहःस्थां जनकेन्द्रपुत्रीमुत्तीर्यकंकेलितरोर्हनूमान् ।
कृत्वा प्रणामं शिरसा पुरोऽस्या बद्धाञ्जलिर्भक्तिभरेण तस्थौ ॥ २९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सीताहनुमत् दर्शनो नामैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०१ ॥

*

द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथाम्ब मातर्जननीति तामसौ सम्बोध्य नीचैर्हनुमानवोचत ।
प्राप्तोऽस्म्यहं देविनमस्तवान्तिकं रामस्य दूतो रघुवंशभास्वतः ॥ १ ॥

पतिस्ते लोकजननि राघवेन्द्रो जगत्पिता ।
माल्यवन्तं नाम गिरिमध्यास्ते सानुजोऽधुना ॥ २ ॥

सुग्रीवेण कपीन्द्रेण मैत्री तस्याभवद् दृढा ।
तवोदन्तं विजिज्ञासुः स आस्ते कपिभिः समम् ॥ ३ ॥

तस्यानेकमहापद्मकपिवीरवरूथिनी ।
इदानीं खलु सज्जास्ति दुष्टारिहननं प्रति ॥ ४ ॥

शब्दायन्ते कपिभटा आस्फोटितभुजद्वयाः ।
साहंकाररवाः सर्वे प्रभोराज्ञाप्रतीक्षणाः ॥ ५ ॥

एकैकः कपिवीरोऽत्र महाबलपराक्रमः ।
पर्याप्तो राक्षसानीकमथने स्वामिनो गिरा ॥ ६ ॥

राघवेन्द्रोऽपि भगवान् सानुजः सज्जकार्मुकः ।
सोत्साहः शरदा कर्तुं विपक्षेष्वभिषेणनम् ॥ ७ ॥

अलं तदतिमात्रं ते शोकेन जनकात्मजे।
अचिरेणैव जित्वारिं त्वा मितो नेष्यति प्रभुः ॥ ८॥

अङ्गुलीयकमेतत्ते प्रभुणैव समर्पितम्।
समाश्वसिहि मातस्त्वं दर्शनादस्य सम्प्रति ॥ ९॥

इत्युक्ता जानकी तेन कपीन्द्रेण महाधिया।
शनैरुन्मीलयामास चक्षुषी विरहालसे ॥ १०॥

रक्षोमायाभ्रमात्किंतु न किं चित्तमवोचत।
ततः स आह तां भूयो भृत्यो रघुपतेः कपिः ॥ ११॥

मातर्भृत्योऽस्मि नियतं साक्षाद्रघुपतेरहम्।
भृशं तच्चरणाम्भोजद्वन्द्वलाञ्छितमस्तकः ॥ १२॥

नाहमन्यद्विजानामि राघवेन्द्राज्जगत्त्रये।
एकमेव निजे मूर्ध्नि विधाय सुखितोऽस्म्यहम् ॥ १३॥

ये ते भरतसर्वस्वे पातकौघापहारके।
त्रैलोक्यमण्डने तस्य पादुके शरणं मम ॥ १४॥

जपामि रामनामाहं स्मरामि रघुपुङ्गवम्।
भजामि नित्यं काकुत्स्थं वीक्षे दशरथात्मजम् ॥ १५॥

न रामात्परतस्तत्त्वं जानामि भुवनत्रये।
राममेवाश्रये नित्यमिति मे व्रतमाहितम् ॥ १६॥

इदं गृहाण ते पत्या दत्तमप्रतिमं शुभम्।
सुवर्णमाणिक्यमयं निजाङ्गुलिविभूषणम् ॥ १७॥

अनर्घ्यदिव्यरत्नांशुजालैः सर्वतमोपहम्।
आश्वासनाय ननु ते कृच्छ्रादन्तिकमागतम् ॥ १८॥

यत्सोढो विरहोऽनेन प्रभुणा दत्तपाणिना।
तवैवार्थे जनकजे इति निश्चितु चेतसा ॥ १९॥

इत्युक्तमात्रे जनकेन्द्रपुत्री समाददौ तस्य करात् सहर्षम्।
तदङ्गुलीयं प्रियपाणिपद्मस्पर्शानुभूतिक्षममद्वितीयम् ॥ २०॥

आदाय मुद्रां पृथुलोचनाश्रुधाराजलैस्तां सुचिरं निषिच्य।
संयोज्य दृग्भ्यां शिरसोरसा च सुविस्मितभ्रूरथ तां बभाषे ॥ २१॥

मुदं रातीति मुद्रा ते यथार्थं नाम मुद्रिके।
यन्मे वियोगमग्नाया अपि त्वत्तोऽभवन्मुदः ॥ २२॥

दुःखं मुद्रयसीति त्वं मुद्रैवासि ततोऽपि मे।
क्षणं वियोगदुःखस्य मुद्रणाद्रत्नमण्डिते ॥ २३॥

बाह्यमाभ्यन्तरं चापि मुद्रे नाशयसे तमः ।
प्रकाशितं वनंकृत्स्नं चित्तं मे च प्रसादितम् ॥ २४ ॥
चक्षुषोर्निहिता वाष्पैर्लिप्यसे सान्द्रपातिभिः ।
मूर्द्धिन चक्षुःपथाद्बाह्यां न सहे त्वामतिप्रियाम् ॥ २५ ॥
अथोरसि सुसंतप्ते विरहानलरश्मिभिः ।
प्रियपाणिसुखस्पृश्यां किं नु त्वां निदधाम्यहम् ॥ २६ ॥
अतस्त्वामीशविरहं सोढापीह समागताम् ।
निदध्यां क नु हे मुद्रे मत्प्राणगणजीवनीम् ॥ २७ ॥
अपि पाणिग्रहाद्भर्तुः सपत्न्यप्यसि मे परम् ।
त्वं नाम मुद्रिके भाति सौजन्यं तदपीह ते ॥ २८ ॥
यन्मदर्थे पतिं त्यक्त्वा सिन्धो पारमुपागता ।
तन्मयापि त्वदर्थेऽयमात्मा नित्यं समर्पितः ॥ २९ ॥
अथोवाच हनूमन्तं जानकी प्रभुसेवकम् ।
अपि मन्नाथभृत्यत्वं सुखमागतवानिह ॥ ३० ॥
मध्ये लवणपाथोधे राक्षसौघसमाकुले ।
दुर्गमे विषमे देशे सर्वप्राणिभयंकरे ॥ ३१ ॥
अथो मम दशां विद्वन् प्रभोर्मे कथयिष्यसि ।
वाच्यः कथं वा संदेशस्तस्य मेऽध्यात्मसाक्षिणः ॥ ३२ ॥
अन्तरात्मगतिं कृत्स्नां यदि वेत्ति स मे प्रभुः ।
तदलं मम संदेशैस्तस्मिन् प्रियतमे मुहुः ॥ ३३ ॥
एकं तु मम संदेश्यं वचो रघुपतेस्त्वया ।
मा जातु विस्मरेर्नाथ विशाला सहजावशः ॥ ३४ ॥
भृत्यास्मि तव दास्यस्मि पादपद्मद्वये भृशम् ।
या ते निर्मञ्छनायेश तत्पराशश्वदात्मना ॥ ३५ ॥
राक्षसेन गृहीतां मां द्रुतं मोचय सम्प्रति ।
वीरेन्द्र करुणासिन्धो न विस्मर कदाचन ॥ ३६ ॥
इदं च हनुमन् ग्राह्यं मम मूर्द्ध्नविभूषणम् ।
चूडारत्नं मदीशस्य निधेयं करपङ्कजे ॥ ३७ ॥
शीघ्रं च मोचनीयास्मिन् गिरिवम्लेच्छहस्तगा ।
वन्दीकृतातिदुष्टेन वध्येन स्वामिना मम ॥ ३८ ॥
ततः समाश्वास्य चिरं विदेहजां मरुत्सुतोऽस्याश्च शिरोविभूषणम् ।
प्रगृह्य नत्वा च स तां विनिर्गतो दशानने रोषभरेण लोहितः ॥ ३९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सीतासमाश्वसनो नाम द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०२ ॥

*

त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ तद्राक्षसेन्द्रस्य वनं सान्द्रघनोग्रमम् ।
सुमनोहरमानीलतामण्डपमण्डितम् ॥ १ ॥

अनेकैरपि रक्षोभिर्गोपितं भूरिभूरुहम् ।
लङ्केशकेलिभवनं स्रवन्निर्झरशोभितम् ॥ २ ॥

आज्ञावशैः षड्ऋतुभिः सेवितं स्वस्वसम्पदा ।
फुल्लवृक्षलतावृन्द विचित्रखगनादितम् ॥ ३ ॥

स्वर्णपद्मवनाढ्याभिर्दीर्घिकाभिरलंकृतम् ।
सरोभिः क्वणितानेकराजहंसैः समन्वितम् ॥ ४ ॥

दृष्ट्वा बली मरुत्सूनुरमर्षपरिपूरितः ।
आचकांङ्क्ष प्रमथितुं रावणस्य सुखं च सः ॥ ५ ॥

अथास्फोट्यभुजं द्वन्द्वं जङ्घानिर्घातभीषणः ।
उत्पफाल वने तस्मिन् हनूमान् विक्रमोर्जितः ॥ ६ ॥

सीतयाधिष्ठितां त्यक्त्वा कंकेलितरुवाटिकाम् ।
ममाथ सकलं वीरो वनं रक्षोधिपस्य तत् ॥ ७ ॥

तरून् बभञ्ज विटपस्कन्धमूलसमन्वितान् ।
उच्चैर्नभःस्पृशो दीर्घानाधूयाधूय वेगतः ॥ ८ ॥

प्रजहार बली पद्भ्यां कांश्चिदारभ्य मूलतः ।
कांश्चिदुत्पाटयामास दोर्भ्यामाधूय भूरुहान् ॥ ९ ॥

तस्य वेगोद्भवो वातः कम्पयामास सर्वतः ।
वनं तद्घोरकल्पान्तसमीरणहतं यथा ॥ १० ॥

कांश्चिद्विदारयामास मूलादारभ्य सोऽग्रतः ।
बभञ्ज विनताः शाखा घोरपादप्रहारतः ॥ ११ ॥

तदङ्गसंभवैर्घोरैः पवनैः संततोद्धतैः ।
आरामभूरुहाः सर्वे भयेनैव चकम्पिरे ॥ १२ ॥

प्रहारैः पादतलजैर्जवेनेव व्यदीर्यत ।
आरामभूमिरखिला कम्पमाना सह द्रुमैः ॥ १३ ॥

जगाहे भूरिवेगेन वनं तदखिलं बली ।
यथ वृक्षा व्यशीर्यन्त लतामण्डपमण्डिताः ॥ १४ ॥

वृक्षान् विटपशश्चक्रे विपटान् पर्णशस्तथा ।
पर्णानि तिलशश्चक्रे प्रहारैः पाणिपादजैः ॥ १५ ॥

वापीर्विध्वंसयामास हेमरत्नविनिर्मिताः ।
अपः कलुषयामास वापीनां सरसामपि ॥ १६ ॥

पादप्रहारविध्वस्ता उड्डीयन्ते स्म भित्तयः ।
तथा रत्नशिला दीर्घाः कणशः कृतवान् वली ॥ १७ ॥

नखैर्विदारयामास वल्लरीवृन्दमण्डपान् ।
समूलमुत्पाटितवान् दीर्घशाखावतो द्रुमान् ॥ १८ ॥

तरूणां भज्यमानानां पततां च महीतले ।
समभूद्दारुणः शब्दो निर्घातरवभीषणः ॥ १९ ॥

दशदिक्षु प्रचिक्षेप भङ्क्त्वा भङ्क्त्वा महीरुहाम् ।
शाखा फलदलोपेताः कुसुमस्तवकाचिताः ॥ २० ॥

आकीर्णा सा मही पुष्पस्तवकैः पल्लवैः फलैः ।
द्यौश्च द्रुमवनोड्डीनैः पक्षिभिर्घोरनादिभिः ॥ २१ ॥

तरुभ्यो भज्यमानेभ्यः कम्पितेभ्यो हनूमता ।
उदडीयन्त विहगाः स्थानभ्रंशसुदुःखिताः ॥ २२ ॥

रटन्तः कटुनिर्घोषमपश्यन्तश्च विश्रमम् ।
छत्राकारतयोपेता बभ्रमुर्व्योम्नि संततम् ॥ २३ ॥

अथोदतिष्ठन्त ततो राक्षसा वनरक्षकाः ।
अक्षादयस्तीव्ररोषलोहिताक्षाः परः शताः ॥ २४ ॥

आः कोऽयमखिलं वेगान्मथ्नाति बिपुलं वनम् ।
अस्मासु किल जीवत्सु स्वामी येषां दशाननः ॥ २५ ॥

किं नो वक्ष्यति भग्नेऽस्मिन् वनेसुविपुले प्रभुः ।
हेलानिर्जितदिक्चक्रो बली लङ्कापुरीश्वरः ॥ २६ ॥

अहो अयं कपिः कश्चिल्लुनाति खलु नो वनम् ।
नानाजातिलताव्रातसंवीततरुपुष्कलम् ॥ २७ ॥

अहो इयमभूद्धानिर्महती स्वामि नोऽस्य नः ।
महायासेन निष्पन्नं महा द्रविणेन च ॥ २८ ॥

हीयते सर्वमेतद्वै कपिनाऽऽलोडितं वनम् ।
संतानकल्पमन्दारपारिजातद्रुमान्वितम् ॥ २९ ॥

हरिचन्दनसंशोभिस्वर्गानीतेन्द्रवैभवम् ।
रोपितं बहुकालेन नश्यतीदं किलाधुना ॥ ३० ॥

अहो रे राक्षसभटाः सर्वैः संहत्य नन्वसौ ।
वध्यतां वध्यतामाशु कपिरालोडितारविः ॥ ३१ ॥

इत्युक्त्वाक्षमुखा वीरा राक्षसास्तेऽतिरोषणाः ।
निषेतुः संहताः सर्वे वायुसूनौ महाबले ॥ ३२ ॥

आत्तातिदीर्घपरिघाः खड्गहस्तास्तथापरे ।
अन्ये मुद्गरहस्ताश्च धनुर्बाणधराः परे ॥ ३३ ॥

नानाशस्त्रप्रहरणाः समुत्तस्थुर्यथास्थिताः ।
निपेतुः कपिराजोऽस्मिन् स्वामिभीता निशाचराः ॥ ३४ ॥

आलोडितं वनं कृत्स्नं तावत्तेन बलीयसा ।
उत्प्लुत्योत्प्लुत्य विटपश्रेणीषु परिपातिना ॥ ३५ ॥

यत्रैवायान्ति रक्षांसि तत उत्प्लुत्य सत्वरम् ।
अन्यतोभूय निखिलान् बभञ्ज वनभूरुहान् ॥ ३६ ॥

श्रुत्वा वनस्य कदनं दारुणाज्ञो दशाननः ।
अक्षादिभ्यो राक्षसेभ्यश्चुकोप क्षुभितान्तरः ॥ ३७ ॥

हन्यतां हन्यतामेष हतो या तु न चाक्षतः ।
इत्यादिदेश तानक्षप्रमुखान् वनरक्षकान् ॥ ३८ ॥

ते स्वामिनादिष्टतमा निशाचरा बलोद्धता भूरितमास्त्रघातिनः ।
प्रजघ्नुरेनं परिघैश्च मुद्गरैः सतोमरैश्चापि शरैः करैरितैः ॥ ३९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे रावणवनमथनो नाम त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०३ ॥

*

चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

स तान् प्रहरतो दृष्ट्वा राक्षसान् घोरकर्मणः ।
चुकोपबलवान् वीरो वायुसूनुर्महोर्जितः ॥ १ ॥

ततो जघान तरुभिः स तानापततोऽसुरान् ।
समूलोत्पाटितैस्तुङ्गैर्दीर्घशाखाशिफान्वितैः ॥ २ ॥

महाशैलशिलाभिश्च कठिनाभिः सहस्रशः ।
तीक्ष्णाग्राभिर्महावेगपातिनीभिर्नभस्तलात् ॥ ३ ॥

कांश्चित्पाणिप्रहारेण पादघातैस्तथापरान् ।
पाणिपादनखैः कांश्चिद्दंष्ट्राभिश्चैव कांश्चन ॥ ४ ॥

उत्पत्याक्रमणैः कांश्चित्कांश्चिद्भूमिविपोथनैः ।
कांश्चिद्दृषत्प्रहारैश्च प्रजघान निशाचरान् ॥ ५ ॥

पतिताः पुनरुत्तस्थुः प्रहारैरतिदारुणैः ।
क्षरत्क्षतजसम्पृक्ता राक्षसा घोरनादिनः ॥ ६ ॥

घूर्णयन्तेस्म धरणौ पतिताः केऽपि राक्षसाः ।
वातपुत्रेण बलिना मर्मणि प्रसभं हताः ॥ ७ ॥

महाशैलशिलाघातप्रहताः कोऽपि राक्षसाः ।
वमन्तोरुधिरं वक्त्राद् घूर्णन्ति स्म धरातले ॥ ८ ॥

मूर्छामापेदिरे तेन यातुधानाः सुनिर्हताः ।
जवेरिताभिः प्रसभं चपेटाभिर्बलीयसा ॥ ९ ॥

उत्पाट्योत्या तरुभिर्जघान बलिनोऽसुरान् ।
इत्थं सर्वं वनमपि क्षपितं तेन वेगिना ॥ १० ॥

हताश्च राक्षसाः सर्वे महागर्वभराकुलाः ।
पतङ्गा इव दीपेऽस्मिन् नाशं जग्मुः समंततः ॥ ११ ॥

भक्षमुख्येषु रक्षःसु पातितेषु हनूमता ।
क्रव्यादाः शतशस्तस्मात्पलायाञ्चक्रिरेतराम् ॥ १२ ॥

पलायितेषु रक्षःसु पातितेषु च तेष्वथ ।
चुकोप लङ्काधिपतिः सर्वेभ्यः सूनुना सह ॥ १३ ॥

अथास्याभिमुखं प्राप्तो योद्धुं लङ्कापतेः सुतः ।
इन्द्रजिन्नाम बलवान् निर्जिताशेषदिक्पतिः ॥ १४ ॥

तेनासौ युयुधे धीमानप्रमेयबलः कपिः ।
शिलाभिस्तरुभिस्तुङ्गैर्निर्घातरवभीषणैः ॥ १५ ॥

युद्धयमानो युधि बली हनूमांस्तेन रक्षसा ।
ब्रह्मास्त्रेण समाबद्धः स्वेच्छाचारः सुनिर्भयः ॥ १६ ॥

ततः स्वभवनं नीतो विस्मितै राक्षसैर्वृतः ।
यूथैश्च नरनारीणां दृश्यमानो बलाधिकः ॥ १७ ॥

तमुद्दिश्य दशस्कन्ध इत्याह तनयं निजम् ।
ज्वाल्यतामेष दुश्चेष्टः कपीनामधमः खलः ॥ १८ ॥

हनुमानब्रवीत् क्रुद्धान् राक्षसान् मापिनां वरः ।
कामं प्रज्वाल्य एवास्मि पुच्छेर्वह्नि नियुज्य मे ॥ १९ ॥

तदर्थं तूलसम्भारैः कर्पटैश्चापि कोटिशः ।
पुच्छमावेष्ट्यतामाशु मम तैलैर्निषिच्य च ॥ २० ॥

अग्निर्नियुज्यतां तस्मिन्निति यास्याम्यहं क्षयम् ।
ज्वलिते किल लाङ्गूले सर्वाङ्गज्वालितः क्रमात् ॥ २१ ॥

पुच्छमेवातिविततं मम ज्वालयतासुराः ।
इत्युक्ते च तथा चक्रुः कुधियो राक्षसाः खलाः ॥ २२ ॥
अथ तैलद्रवैः सिक्ते लाङ्गूलपरिवेष्टिते ।
तूलकर्पटसम्भारे उत्पपात मरुत्सुतः ॥ २३ ॥
अध ऊर्ध्वं च गेहानां दिक्षु सर्वासु संचरन् ।
सकलां ज्वालयामास पुच्छज्वालैः स तां पुरीम् ॥ २४ ॥
यत्र यत्र जगामासौ प्रज्वलत्पुच्छपावकः ।
तत्र तत्रैव जज्वाल गृहाट्टावलिसंहतिः ॥ २५ ॥
जज्वलुर्भवनान्युच्चैर्हैमानि विपुलानि च ।
कोष्ठानि चाट्टावलयो हट्टापथगृहा अपि ॥ २६ ॥
प्रासादा वणिजां वेश्मान्यापणाः पण्यवीथिकाः ।
अमात्यभवनान्युच्चैर्देवागाराणि भूरिशः ॥ २७ ॥
अध ऊर्ध्वं तथा मध्ये दिक्षु सर्वासु च ज्वलन् ।
पावको ज्वालयामास तत्क्षणात् सकलां पुरीम् ॥ २८ ॥
आसनानि महार्हाणि सुखासनवराणि च ।
सिंहासनानि चारूणि वसनानि वराणि च ॥ २९ ॥
वासनानि विचित्राणि शयनानि शुभानि च ।
भाजनान्यन्नभाण्डानि घृतभाण्डानि भूरिशः ॥ ३० ॥
हैयंगवीनभाण्डानि तैलभाण्डानि कोटिशः ।
मुक्तादामविलम्बीनि वितानानि सहस्रशः ॥ ३१ ॥
वातायनानि हैमानि ज्वलन्ति प्रज्वलन्ति च ।
प्रससार चतुर्दिक्षु पावकः कपिपुच्छजः ॥ ३२ ॥
रामचन्द्रप्रतापेन सीताशापोपतापतः ।
जज्वलुः कनकावासास्तृणपूलकुटीरवत् ॥ ३३ ॥
आरावः समभूद्भूयान् राक्षसानां गृहे गृहे ।
अहो रे सेवकास्तूर्णं धावत प्रतिधावत ॥ ३४ ॥
निष्कासयत भाण्डानि सम्भालयत कोष्ठकान् ।
हा जलं हा जलं चेति कोलाहलरवोऽभवत् ॥ ३५ ॥
हा हा ज्वलन्ति वस्त्राणि दह्यन्ते भूषणानि च ।
किं किं निष्कासयामोऽद्य पतिताः का इहापदः ॥ ३६ ॥
अहो सर्वस्वनाशो नः कुतोऽयं समुपस्थितः ।
बालान् वृद्धांश्च दारांश्च सम्भालयत सत्वरम् ॥ ३७ ॥

हा हा निर्मोचयत गा गोष्ठे लग्नः किलानलः ।
हा हन्त वायुरप्यद्य सत्यमग्निसखोऽभवत् ॥ ३८ ॥

वायुना प्रेरितो वह्निः प्रसरत्ययमुद्भटः ।
दग्धा एव गृहाः सर्वे कोष्ठाट्टालकसंयुताः ॥ ३९ ॥

आः कोऽयं कुत आयातः कपिवेशः कृतान्तकः ।
किं वैशसममुष्यात्र त्रैलोक्येशे दशानने ॥ ४० ॥

वध्यतां बध्यतामेष कूर्दमानोऽखिले पुरे ।
अहो लङ्कापतेरद्य कोऽयं भाग्यविपर्ययः ॥ ४१ ॥

अस्तंगत इवाभाति प्रतापोस्य जगत्पतेः ।
यदियं कपिमात्रेण दह्यते निखिला पुरी ॥ ४२ ॥

इति संक्रोशतां तेषां राक्षसां प्रतिमन्दिरम् ।
जज्वाल पावको दीप्तश्चतुर्दिक्षु प्रसृत्वरः ॥ ४३ ॥

प्रताप इव रामस्य ज्वालामालातिभीषणः ।
क्रोधाग्निरिव सीतायाः परिणामसुनिष्ठुरः ॥ ४४ ॥

दग्ध्वा कृत्स्नां दशमुखपुरीं दीर्घलाङ्गूललग्नै-
र्वह्निज्वालासमुदयभरैः संगतैः प्रत्यगारम् ॥
हेलाव्यालोडितदशमुखारण्य उच्चैर्हनूमानु-
त्प्लुत्याब्धौ तनुदहननिर्वापणार्थं पपात ॥ ४५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे लङ्कादहनो नाम चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०४ ॥

*

पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

पश्यतां रक्षसां तेषां दाहव्याकुलितात्मनाम् ।
दग्ध्वा लङ्कापुरीं कृत्स्नां लाङ्गूलानलचालनात् ॥ १ ॥

व्यालूय नखरैः क्रुद्धो रावणस्य मुखं जवात् ।
पुच्छस्पृशि शुचौ तूर्णं पपाताम्भोधिपाथसि ॥ २ ॥

उदस्य पुच्छसंलग्नं तूलकर्पटपावकम् ।
क्रीडितश्चिरमम्भोधिलहरीषु सुशीतलः ॥ ३ ॥

शनैः प्राप महेन्द्राद्रिमुत्पत्य व्योमवर्त्मना ।
हरीणां पुरतः सर्वं कथयामास वृत्तकम् ॥ ४ ॥

ततस्ते हरयः सर्वे सिद्धार्था वायुसूनुना ।
व्यावर्तिता हनुमता प्रययू रामसंनिधम् ॥ ५ ॥

मार्गे मधुवनं कृत्स्नं कीशैरालोडितं हठात् ।
रम्यमापानभूमिर्या रक्षसां घोरकर्मणाम् ॥ ६ ॥

निहता वनपालाश्च राक्षसाः सुमहोद्धताः ।
कपिभिर्हनुमद्युक्तैर्नखदन्तवरायुधैः ॥ ७ ॥

अथ तैः कपिभिः साकं हनुमानुग्रकर्मकृत् ।
ददर्श श्रीरघुवरं गिरौ माल्यवति स्थितम् ॥ ८ ॥

ददौच तत्प्रयत्नेन सीतामूर्द्धविभूषणम् ।
चूड़ारत्नं महार्हंतदाददौ तत्करात् प्रभुः ॥ ९ ॥

तन्निधाय स्वहृदये चूडारत्नं मृगीदृशः ।
मुमोह भगवान् राम उद्दीप्तविरहानलः ॥ १० ॥

चिरं मूर्छामवापैष सीतासंगतचेतनः ।
ततः सम्मार्ज्य वदनं लक्ष्मणेनैव सान्त्वितः ॥ ११ ॥

अथ प्रतस्थौ भगवांल्लङ्केशजयकाङ्क्षया ।
अष्टादशमहापद्मकपिसैन्यसमन्वितः ॥ १२ ॥

सरितो गाधयन् सर्वाः समीकुर्वंश्च भूतलम् ।
भारैराकुलयञ्शेषं कपिसैन्यसमुद्भवैः ॥ १३ ॥

प्रचेलुः कपिमातङ्गाः पुरोऽस्य गिरिसम्मिताः ।
आस्फोटयन्तो दोर्दण्डान् दीर्घाहंकारसंयुताः ॥ १४ ॥

जाम्बवान् नाम ऋक्षेशो महतर्क्षबलेन सः ।
प्रचचाल प्रभोरग्रे भारैराकुलयन् भुवम् ॥ १५ ॥

मार्गशीर्षसिताष्टम्यां भास्करेशिरसि स्थिते ।
ऋक्षे चोत्तरफाल्गुन्यां मुहूर्ते विजयाभिधे ॥ १६ ॥

चक्रे प्रयाणं श्रीरामो जयाय जयिनां वरः ।
महता कपिसैन्येन चतुर्दिक्षु प्रसारिणा ॥ १७ ॥

सुग्रीवो हनुमांश्चैव नलो नीलोऽङ्गदस्तथा ।
अन्ये च कपयः शूराः प्रभूकार्यविधित्सया ॥ १८ ॥

चालयन्तो भुवं कृत्स्नां प्रचेलुः सैन्यभीषणाः ।
रामलक्ष्मणदोर्दण्डबलेनोत्साहसंयुताः ॥ १९ ॥

ते सप्तभिर्दिनैः प्राप्तास्तीरं लवणनीरधेः ।
तत्र सा महती सेना यथास्थानं निवेशिता ॥ २० ॥

तीरे नीरनिधेः श्रीशः पौषस्याद्यं दिनत्रयम् ।
निविष्टः कपिसैन्येन सार्द्धमाकुलयन् भुवम् ॥ २१ ॥

चतुर्थे दिवसे प्राप्तः शरणेऽस्य विभीषणः ।
उत्प्लुत्य व्योममार्गेण बद्धाञ्जलिपुटः पुरः ॥ २२ ॥

तं ददर्श रघुश्रेष्ठः करुणालोललोचनः ।
आगत्य भक्तिमांस्तस्य पपात पदयोश्च सः ॥ २३ ॥

सुतो विश्रवसः पौत्रः पुलस्त्यस्य रघूद्वह ।
नाम्ना विभीषणः सोऽहं नतोऽस्मि त्वां जगत्पते ॥ २४ ॥

ज्येष्ठः स मे दशमुखो येन पापं महत्कृतम् ।
ध्रुवमात्मकृतस्यैष फलं प्राप्स्यति सत्वरम् ॥ २५ ॥

इत्युक्ते रक्षसा तेन श्रीरामस्तस्य मूर्द्धनि ।
निदधौ करपद्मं स्वं विश्वाभयधृतव्रतम् ॥ २६ ॥

अथो तमुत्थापयति स्म राघवो धरानतं पादसरोरुहस्पृशम् ।
सुशीतलच्छायकरावदाननः प्रत्यङ्कजाग्रत्पुलकाङ्कुराञ्चितम् ॥ २७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सेनानिवेशविभीषणागमो नाम पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०५ ॥

*

षडधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

स तं तापसवेशाढ्यं जटामुकुटमण्डितम् ।
विभूतिधवलं श्यामं वल्कलाजितवाससम् ॥ १ ॥

कुशाजिनासनासीनं योगिनं करुणानिधिम् ।
सानुजं हनुमत्सौरिकपीन्द्रपरिवारितम् ॥ २ ॥

तीरे नीरनिधेस्तत्र निविष्टं मार्गकाङ्क्षिणम् ।
ददर्श भक्तिमान् रामं बद्धाञ्जलिपुटो भृशम् ॥ ३ ॥

स तं तदैव विदधौ लङ्कानाथं सुनिर्भयम् ।
शीर्षेऽभिषिच्य पयसा स्वयमेव रघूद्वहः ॥ ४ ॥

रामस्य करुणादृष्ट्या सुधासिक्त इवाभवत् ।
आनन्दाश्रुयुतो जाग्रत्पुलको रावणानुजः ॥ ५ ॥

पौषस्य कृष्णपञ्चम्यामथ रामः कपीश्वरैः ।
सहितोमन्त्रयामास लङ्घितुं पयसां निधिम् ॥ ६ ॥

उवाच लक्ष्मणं विद्वान् विद्वांसं चिन्तयान्वितम् ।
कपीन्द्रांश्चैव सुग्रीवनलनीलाङ्गदादिकान् ॥ ७ ॥

हे लक्ष्मण महाबुद्धे हे सुग्रीव कपीश्वरः ।
नलनीलाङ्गद श्रीमन् मरुत्सुत महाबल ॥ ८ ॥

सर्वे भवन्तः कुशलाः सर्वकर्मसु कोविदाः ।
महाबला महाकाया महाशूरा महाधियः ॥ ९ ॥

पश्यन्तु वानरानेता नेतावत्कृतविक्रमान् ।
उद्गीर्णं जलधिं दृष्ट्वा निरुत्साहा इवाभवन् ॥ १० ॥

गणयन्त इवामुष्य लहरीः पर्वतोपमाः ।
निर्निमेषाहितदृशो दृश्यन्ते मुषिता इव ॥ ११ ॥

स्थगिता इव संजाता अन्योन्यमुखदर्शिनः ।
एषां भग्न इवोत्साह इदानीं दृश्यते मया ॥ १२ ॥

किं च कुर्युरमी कीशा अगाधे पयसां निधौ ।
महोत्तुङ्गोर्मिनिबहे दुस्तरे सुरकिन्नरैः ॥ १३ ॥

नरैः पतङ्गैः पशुभिः किं पुनः स्तोकवानरैः ।
किमत्र खलु कर्त्तव्यं कथं वर्त्मेह लभ्यताम् ॥ १४ ॥

भवतां बलमाश्रित्य प्रस्थितोऽहं कृतोद्यमः ।
जगज्जैत्रस्य बलिनो रावणस्य वधं प्रति ॥ १५ ॥

यस्य पाथोधिमध्यस्था पुरी लङ्का सुदुर्गमा ।
अनेकरक्षसानीकवृत्ता सर्वभयानका ॥ १६ ॥

कथं पुनर्मया तत्र गन्तव्यं सेनयानया ।
इति मन्त्रयत प्राज्ञाः सर्व एव समन्विताः ॥ १७ ॥

अथो सुमित्रातनयः प्रत्युवाच महामतिः ।
अनुमत्य कपीन् . सर्वानार्यस्य प्रियकारकः ॥ १८ ॥

अनुपायोऽत्र जलधेः समुल्लङ्घनकर्मणि ।
अगाधस्याप्यसंख्यातयोजनायतयादसः ॥ १९ ॥

अलौकिक उपायस्तु भवेद्वस्तुन्यलौकिके ।
इति मत्ससम्मतेनैष आराध्यो वरुणालयः ॥ २० ॥

उपवासपरैस्तावद्बद्धाञ्जलिपुटैस्तथा ।
अस्माभिर्भृशमाराध्यो यावदेष प्रसीदति ॥ २१ ॥

दद्यादपि प्रसन्नोऽयं मार्गमस्माकमम्बुधिः ।
वरुणस्यालयो देवो यादसां पतिरम्बुराट् ॥ २२ ॥

सुमित्रातनयेनोक्तमनुमेने रघूद्वहः ।
ततः सौमित्रिसुग्रीवनलनीलाङ्गदादयः ॥ २३ ॥

हनूमानृक्षराजश्च राक्षसेन्द्रो विभीषणः ।
येऽन्ये कपिचमूनाथ महाधीरा महाधियः ॥ २४ ॥

अब्धिमाराधयाञ्चक्रुर्बद्धाञ्जलिपुटाः स्थिताः ।
निराहाराः स्तुतिपरा यावद्दिनचतुष्टयम् ॥ २५ ॥

त्वं ददासि पयोदेभ्यो भूरि वारिनिधे जलम् ।
ततस्ते परिपुष्णन्ति जगदेतच्चराचरम् ॥ २६ ॥

आर्द्रता द्रवता शैत्यं जगत्तर्पणकारिता ।
आप्यायनं त्रिजगतां त्वदधीना इमे गुणाः ॥ २७ ॥

पीत्वा तव पयः सिन्धो भारपूर्णाः पयोधराः ।
समीपतरमभ्येत्य सिञ्चन्ति धरणीमिमाम् ॥ २८ ॥

ततः प्रसूयते सैषा भूतधात्री महौषधीः ।
ताभिरन्नानि जायन्ते तेभ्यश्च पुरुषोह्ययम् ॥ २९ ॥

इति त्वन्मूलमखिलं जगदेतत्पयोनिधे ।
कस्त्वां स्तोतु भवे मर्त्यो वरुणस्यालयं परम् ॥ ३० ॥

शरण्यस्त्वं महीध्राणां त्रासभाजां दिवस्पतेः ।
पक्षच्छेदोद्यतात् क्रुद्धान्निर्भया वसतिर्ह्यसि ॥ ३१ ॥

त्वां प्राप्यशरणं शैलाः शक्रतुल्ये विरोधिनि ।
अजातपक्षसंछेदा अद्यापि सुखमासते ॥ ३२ ॥

त्वं देवभूरुहां तेषां पञ्चानामपि जन्मभूः ।
ये कामवरदातारो भुजैर्भूरिफलाञ्चितैः ॥ ३३ ॥

तत्ते गम्भीर्यमम्भोधे मग्नोऽभूद्यत्र मन्दरः ।
उद्धार ततः कूर्मः सावकाशकृतस्थितिः ॥ ३४ ॥

न दृष्टा तव केनापि लोकेऽस्मिन् परपारभूः ।
प्रचण्डेनापि मरुता न क्षोभ्योऽसि त्वमम्बुधे ॥ ३५ ॥

इदानीं देहि नो मार्गं जगतः कुशलाय भोः ।
जिगीषति रघुश्रेष्ठो रावणं लोकरावणम् ॥ ३६ ॥

देवतात्मा भवानब्धे सुप्रसन्नमना यदि ।
किं किं न कुर्याज्जगतोऽसम्भाव्यमपि मङ्गलम् ॥ ३७ ॥

इति स्तुतिभृतां तेषां भक्तिसुप्रह्ववर्ष्मणाम् ।
बद्धाञ्जलीनां नमतामुपोषणविधायिनाम् ॥ ३८ ॥

चत्वार ईयुर्दिवसास्ततश्च स्वैश्वर्यमेवाश्रित आत्तलीलः ।
चुकोप तस्मै मनसा नितान्तं पत्ये जलानां रघुवंशकेतुः ॥ ३९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे समुद्रसंयमनो नाम षडधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०६ ॥

*

सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

ततो भ्रूभङ्गदुर्दर्शमुखमार्तण्डदीधितिः ।
अन्तःक्रोधसमुद्रेकाद् दशनैर्दष्टदत्पटः ॥ १ ॥

आताम्रभीमवदनः संहितारुणलोचनः ।
ललाटतटनिर्बद्धकुटिलभ्रूपुटः क्षणात् ॥ २ ॥

सावेशमभ्युवाचेदं लक्ष्मणाय विशङ्किने ।
त्यक्तपाथोधिस्तुतये स्वमभिप्रह्ववर्ष्मणे ॥ ३ ॥

आनयानय सौमित्रे सत्वरं मामकं धनुः ।
अहमद्यैकवाणेन शोषये पयसां निधिम् ॥ ४ ॥

इत्युक्ते स तदानीतधनुषा श्रवणस्पृशा ।
संयोज्य तीव्रं विशिखं निर्मोक्तुमुपचक्रमे ॥ ५ ॥

ततः शराग्निसम्पर्कादन्तर्दाहोऽम्बुधेरभूत् ।
क्षणेन पयसां राशिः क्वथ्यमान इवाग्निना ॥ ६ ॥

उत्पफाल भृतोवाष्पैर्धूमैरिवविसृत्वरैः ।
उत्क्रान्तयादसां संघः परिप्लोषरुजातुरः ॥ ७ ॥

बभ्रमुर्मकरास्तत्र प्लुष्यमाणाः शराग्निना ।
मूर्छिताः परितो ग्राहमकरीमकरादयः ॥ ८ ॥

क्वथ्यमाने जलस्तोमे मीनाः पर्वतसंनिभाः ।
पाठीना रोहिताः कूर्मास्तथान्ये जलजन्तवः ॥ ९ ॥

उत्तेरुरुज्झितप्राणाः प्लुष्टा रामशराग्निना ।
आरावः सुमहानासीद्दह्यमानस्य पाथसः ॥ १० ॥

आपातालतलस्पर्शि गम्भीरमुदधेः पयः ।
क्षणेन प्लुष्टमभवद् वाडवेनेव वर्द्धता ॥ ११ ॥

सम्भ्रान्तास्तिमयः स्थूलाः शतयोजनविग्रहाः ।
सन्तश्चैव मूर्छन्तो दह्यन्ते स्म समंततः ॥ १२ ॥

नगा नागाश्च मातङ्गाः खगा अन्तर्जलेचराः ।
निर्दग्धाः सम्प्रसरता क्षणाद् रामशराग्निना ॥ १३ ॥

और्वमप्यदहद् वह्निः श्रीमद्रामशरोद्भवः ।
इति विस्मित आलोक्य निजे चेतसि सागरः ॥ १४ ॥

अश्मसारमयाः पक्षा गिरीणां जलवासिनाम् ।
दन्दह्यमानाः क्षणतो वह्निज्वालाकदम्बकैः ॥ १५ ॥

अधाक्षीद्धृदयं सिन्धोः रामवाणानलः स्पृशन् ।
वरुणस्यालयः कृत्स्नस्तत आकुलितोऽभवत् ॥ १६ ॥

अदह्यततमां सिन्धोर्नगरी बाणवह्निना ।
नक्रा ग्राहा झषाः कूर्माः समदह्यन्त तत्क्षणात् ॥ १७ ॥

मुञ्चन्ति स्म विनिःश्वासान् शतयोजनविस्तृताः ।
यादोवराः पयोराशेमूर्छन्तः शरवह्निना ॥ १८ ॥

सुहृदो वान्धवाः पत्न्यः सुताश्च पयसां निधेः ।
दन्दह्यन्ते स्म रामस्य विशिखानलकीलया ॥ १९ ॥

गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः क्षणेन जलधेः प्रियाः ।
अदह्यन्ते हृदि प्रोता राघवेन्द्रशराग्निना ॥ २० ॥

तमुवाच प्रिया तस्य दह्यमाना तनौ भृशम् ।
हा नाथ केयमापत्ते क्षणादुदयमागता ॥ २१ ॥

त्वदाश्रिता अमी जीवा ग्राहकूर्मझषादयः ।
दह्यन्ते नाथ पश्यैतानकस्मात्प्राप्तसंक्षयान् ॥ २२ ॥

एते भूमिभृतो नाथ त्वयि मग्नाः समंततः ।
दह्यन्ते स्मानलज्वालादग्धपक्षतयो भृशम् ॥ २३ ॥

मृताश्च मूर्छिताश्चैव सर्वे यादोगरणास्तव ।
हृदयं ते नदी नाथ दग्धप्रायं महाग्निना ॥ २४ ॥

दावानलो वा प्रलयानलो वा कोपोऽथवा दैवकृतस्त्वयीश ।
प्रत्यङ्गदग्धास्तव पत्न्य एता भृशं विषीदन्ति न वेत्सि किं त्वम् ॥ २५ ॥

संरक्ष मां चाग्निभरेण दग्धामत्याकुलां स्वं च नितान्तदग्धम् ।
निःसृत्य शीघ्रं बहिरम्बुपूरात्पश्येश जातोऽस्ति कुतोऽयमग्निः ॥ २६ ॥

इत्युक्तमात्रो जलधिः स्वपत्न्या तत्कारणं दिव्यदृशा ददर्श ।
आकर्णकृष्टायतवाणमीशं रामं ततश्चाग्निभरं प्रजातम् ॥ २७ ॥

ततः प्रियामाह स वारिराशिः पश्य प्रिये कारणमस्य वह्नेः ।
प्राप्तोऽयमीशो रघुवंशकेतुः परात्परः सम्प्रति रामनामा ॥ २८ ॥

स मार्गमाकाङ्क्षति रावणस्य जयाय लङ्कानगरीं यियासुः ।
नाज्ञानतोऽसौ विदितो मयायं विधक्षतेऽतो विशिखाग्निना माम् ॥ २९ ॥

अतो निबद्धाञ्जलिरेष भक्त्या प्रयाम्यहं तं शरणं शरण्यम् ।
सोपायनस्तस्य पदारविन्दे निवेद्य चात्मानमहं सुखी स्याम् ॥ ३० ॥

तस्मै पुनः सपदि सेतुविधिं प्रदर्श्य सानुग्रहस्य चरणौ शिरसा प्रणम्य ।
तत्स्वीकृतोरुमणिरत्नगणोपदश्च क्षेमान्वितः पुनरहं गृहमभ्युपैता ॥ ३१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे समुद्रान्तःशोषणो नाम सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०७ ॥

*

अष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा जलधिः पत्नीमाविरास जलाद्बहिः ।
सोपायनः सपत्नीकः ससुहृज्जनबान्धवः ॥ १ ॥

महातरङ्गदोर्दण्डः पृथुवक्षा महाशिराः ।
महामीनस्फुरच्चक्षुर्मौक्तिकाभरणश्रवाः ॥ २ ॥

आवर्तविस्फुरन्नाभिर्लहरीत्रिवलीधरः ।
महाशैलनितम्बस्पृग्नदीस्रोतःसिताम्बरः ॥ ३ ॥

मुक्ताहारलताधारी महारत्नौघभूषणः ।
प्रवालविटपभ्राजत्कराङ्गुलिमनोहरः ॥ ४ ॥

माणिक्यनखरद्योतरोचमानकराङ्घ्रिकः ।
रत्नानामाकरत्वेन रत्नान्युपनयन् भृशम् ॥ ५ ॥

महाम्बुनिबहास्तस्य बभूवाग्रेसरः सरन् ।
तमन्वगुर्महानद्यो महास्रोतस उत्वराः ॥ ६ ॥

चालयन् पयसां स्तोमं पादन्यासैर्मुहुर्मुहुः ।
महामकरसंदोहैः पुरः पश्चाच्च संयुतः ॥ ७ ॥

तमायान्तमसौ वीक्ष्य रामः कारुणिकेश्वरः ।
तत्क्षणादुपसंजह्रे बाणं शोषणमम्भसाम् ॥ ८ ॥

स दण्डवत् स्पृशन् भूमिमाययौ सरितां पतिः ।
निवारयन्ननुचरानेकाकी श्रीपतेः पुरः ॥ ९ ॥

अन्वाययुस्तं तत्पत्न्यः सरितो याः सहस्रशः ।
बद्धाञ्जलिपुटाः सौम्या दिदृक्षन्त्यो रघूद्वहम् ॥ १० ॥

पूर्वं जलघटाभारः प्रादुरासीत्समंततः ।
अभ्रंकषोर्मिसंदोहचालितानेकभूधरः ॥ ११ ॥

महानदीनां बहवो वारिपूरास्तदग्रतः ।
आयान्तीनां प्रादुरासुः कल्पान्त इव भीषणाः ॥ १२ ॥

शमं गतेषु परितः पयःपूरेषु भूरिषु ।
उदस्थात्पयसां नाथः स्वगुणैरुपलक्षितः ॥ १३ ॥

सम्भावयन् प्रणतिभिः श्रीमन्तं रघुपुङ्गवम् ।
उपाजगाम कपिभिः समुद्रोऽयमितीक्षितः ॥ १४ ॥

तमागतं नदीनाथमभ्युत्तस्थौ रघूद्वहः ।
कुलवृद्धोऽय मस्माकमिति सादरमानसः ॥ १५ ॥

स आलिलिङ्ग बाहुभ्यां शीतलं पयसां निधिम् ।
आसने स्थापयामास स्वयं चोपविवेश ह ॥ १६ ॥

सानुजं सपरीवारं नत्वा नत्वा नदीपतिः ।
ददावुपायनत्वेन रत्नभाराननेकशः ॥ १७ ॥

उवाच राघवेन्द्रं स रुष्टान्तःकरणं विभुम् ।
शोषणायोद्यतं स्वस्य शान्तिं नेतुं च सामभिः ॥ १८ ॥

क्षमस्व जगतामीश यन्न त्वं विदितो मया ।
तदज्ञानवशादेव मर्त्यलीलामुपाश्रित ॥ १९ ॥

विदितोऽस्यधुना राम साक्षात्परात्परः स्वयम् ।
भूभारहरणाय त्वं भूतले समवातरः ॥ २० ॥

अलंकृतं रघुकुलं त्वया सद्गुणराशिना ।
सुखं च जनितं भूरि श्रुतिदेवद्विजन्मनाम् ॥ २१ ॥

साक्षाद्ब्रह्मण्य देवस्त्वं धर्मो येनाभिरक्षितः ।
रक्षोभिर्नाशिता यज्ञाः पुनरेव प्रवर्तिताः ॥ २२ ॥

कस्त्वां जानातु लोकेऽस्मिन् जीवधर्ममुपाश्रितः ।
निगमत्रयसंगीतलोकातीतगुणालयम् ॥ २३ ॥

शेषाद्या अपि वागीश न त्वां सम्यग्विदन्ति यत् ।
तदहं कोऽल्पविज्ञानः स्वरूपाकलने तव ॥ २४ ॥

जय विश्वेश विश्वात्मन् विश्वसृष्ट्यन्तकारक ।
विश्वाधार गुणाधीश विश्ववन्द्याङ्घ्रिपङ्कज ॥ २५ ॥

यदि त्वं न सीतानाथ स्वरूपं गोपयेर्भुवि ।
लोकोत्तररसालेयं तर्हि लीला न सिद्ध्यति ॥ २६ ॥

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य निर्गुणास्त्रिगुणाश्रयाम् ।
विश्वसर्गविसर्गाद्येस्त्वं क्रीडसि जगद्गुरुः ।। २७ ।।

इच्छयैवाखिलं कर्तुं शक्नोषि यदपि प्रभो ।
अनुग्रहाय भक्तानां तदपि प्रकटोऽभवः ।। २८ ।।

निर्मञ्छनाय ते राम रत्नान्येतान्युपानयम् ।
गृहाण करुणासिन्धो मयि वर्ष कृपामृतम् ।। २९ ।।

निवेदितोऽयमात्मा ते मया वाणेन शुष्यता ।
स्वकीय इति विज्ञाय रक्षिष्यति यतो भवान् ।। ३० ।।

त्वत्कार्यं च त्वदीयं च सर्वमेव जगत्पते ।
त्वदीय एवार्पयिता गृह्णासि तदपीश यत् ।। ३१ ।।

तदार्जवं तवैवैतज्जगत्पत्यद्भुतं हरे ।
येन भक्त इति ख्यातिं प्रयान्ति मनुजा भवे ।। ३२ ।।

नमामि जगतां नाथ श्रुतिगोद्विजरक्षकम् ।
अप्रमेयगुणारामं राम त्वां पुरुषोत्तमम् ।। ३३ ।।

क्षामयामि मुहुः स्वामिन्नपराधमहं मम ।
निजमैश्वर्यमालम्ब्य भक्तेषु त्वं दयां कुरु ।। ३४ ।।

इति स्तुतिवचोभिः स सान्त्वितो वारिराशिना ।
ईषद्विहस्य भगवानुवाच रघुवल्लभः ।। ३५ ।।

चिरमाराधितः सिन्धो भवान् मार्गाभिलब्धये ।
मया सपरिवारेण हृदा तदपि ना द्रवः ।। ३६ ।।

ततः संक्षुब्धमनसा नान्योपायवता मया ।
शोषणाय तवाम्भोधे प्रयुक्ते विशिखानलः ।। ३७ ।।

इदानीं देहि मे मार्गं लङ्कामभियियासतः ।
उपसंहृतोऽपि बाणाग्निर्नो चेत्पुनरुदेष्यति ।। ३८ ।।

किं करोमि नदीनाथ हार्य एव मया रिपुः ।
अभिगम्यैव लङ्का च शोष्य एव त्वमन्तरा ।। ३९ ।।

इत्युक्तो रघुवीरेण कम्पितः पयसां पतिः ।
सान्त्वयन् पुनराहेदं शोषभीत्या भृशाकुलः ।। ४० ।।

अत्यर्थमनुयायोऽयं लङ्कागमनवर्त्मनः ।
यन्मां शोषयसि प्राज्ञ विशिखेनानिवर्तिना ।। ४१ ।।

यतः शुष्कोऽप्यहं स्वामिन्नापातालतलावधिः ।
अपथायैव भवतो भवितास्मि न संशयः ।। ४२ ।।

उपायान्तरमेवात्र प्रभो सम्यग्विधीयताम् ।
उत्तरेयुरनायासं कपथो येन तावकाः ।। ४३ ।।

बहुलायामिभिः शैलेर्मपि सेतुर्विरच्यताम् ।
विधिहृष्ट उपायोऽयं तव लङ्कां यियासितः ॥ ४४ ॥

आनेष्यन्ति गिरीनत्र कथयोऽमी महाभुजाः ।
सुग्रीवहनुमन्मुख्या नलनीलाङ्गदादयः ॥ ४५ ॥

अयं ते मार्ग उद्दिष्ये लङ्कामभियियासतः ।
नास्त्युपायशतेनापि सैन्यस्योत्तरणं तव ॥ ४६ ॥

सिन्धुनोदीरितं यत्नमनुमेने रघूद्वहः ।
तथैव कपयः सर्वे साधु साध्वित्यपूजयन् ॥ ४७ ॥

इति रघुपतिमब्धिः सम्प्रदृश्याभ्युपायं
दशवदननगर्याः प्राप्तये मार्गलब्धौ ।
चिरमथ कपिवर्यैर्विस्मितैवीक्षमाणो
निजभवनमगच्छत्प्राप्त भूरिप्रमोदः ॥ ४८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सेतूपायविधिप्रदर्शनो नामाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०८ ॥

*

नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ रामो हनूमन्तं सुग्रीवं च महाबलम् ।
आदिदेश महाशैलैः सेतुबन्धनकर्मणे ॥ १ ॥

महाबल मरुत्पुत्र सुग्रीव कपिनायक ।
आदिश्यन्ताममी सर्वे कपयो भूरिविक्रमाः ॥ २ ॥

आनयन्तु महाशैलान् क्षिपन्तु पयसां निधौ ।
सेतुर्विरच्यतामत्र लङ्कागमनहेतवे ॥ ३ ॥

महान्तो लघवश्चैव यावन्तो भुवि पर्वताः ।
आनीयन्ताममीभिस्ते दूरतो वासमीपतः ॥ ४ ॥

वोढुं निजबलैः शक्या यावन्तः कपिपुङ्गवैः ।
गिरयो योजनायामा योजनद्वयविस्तृताः ॥ ५ ॥

त्रिचतुःपञ्चषट्सप्तयोजना अष्टयोजनाः ।
नवयोजनविस्तीर्णादशयोजनविस्तृताः ॥ ६ ॥

एकादशद्वादशादियोजनाः शतयोजनाः ।
उत्पाद्योत्पाद्य ते शैला आनीयन्तां महोदधौ ॥ ७ ॥

अप्रमेयबलो लोकैर्वायुपुत्र महाबल ।
येऽन्यैर्न वोढुं शक्यास्तानानय त्वं महीधरान् ॥ ८ ॥

उच्चावचैस्तैर्गिरिभिः समीकृत्य विरच्यताम् ।
महासेतुः पयोराशौ यावत्सा रक्षसां पुरी ॥ ९ ॥

इत्यादेशं रघुपतेः शिरसाऽऽदाय वानराः ।
सज्जाः सर्वेऽपिशैलानां समानयनकर्मणे ॥ १० ॥

सुग्रीवेण कपीन्द्रेण समादिष्टा वनेचराः ।
अष्टदिक्षु प्रचलिताः शैलानानेतुमुत्वराः ॥ ११ ॥

तेषां वायुसुतो वीरः श्रीमान् भूरिपराक्रमः ।
आदेशाद्रघुनाथस्य गिरीनानेतुमव्रजत् ॥ १२ ॥

रक्तकक्षोटकधरो महामल्ल इवोद्धुरः ।
उत्पाट्य नानादेशेभ्य उवाह महतो गिरीन् ॥ १३ ॥

स्रवन्निर्झरधाराढ्याः शृङ्गवन्तः सगह्वराः ।
सकन्दराः सगहनाः शिलासंघविचित्रिताः ॥ १४ ॥

नानाधातुरसोपेताः सानुभिर्गगनस्पृशः ।
अनेकयोजनायामाः सवृक्षवनकाननाः ॥ १५ ॥

नानानिकुञ्जसहिता नानाधातुरसाकराः ।
समूलोत्पाटिताः शैला आनीयन्ते स्म वातिना ॥ १६ ॥

सकृन्निर्धूम बाहुभ्यां महीध्रान् गगनस्पृशः ।
आदित्यरथचक्रेण निर्धृष्टाग्राननेकशः ॥ १७ ॥

उवाह शिरसांसाभ्यां कक्षाभ्यां ककुदा तथा ।
पाणिभ्यां चापि हनुमान् महाबलपराक्रमः ॥ १८ ॥

पतन्निर्झरधाराभिः शमितोष्मपथिश्रमः ।
मूलक्षरद्धातुरसनानावर्णविचित्रितः ॥ १९ ॥

अनेकभूरुहच्छायाभिन्नसूर्यकरातपः ।
उड्डीय व्योममार्गेण त्वरितं स समाययौ ॥ २० ॥

अलौकिकं बलं तस्य परिच्छेत्तुं क ईश्वरः ।
गच्छतस्त्वरमाणस्य गीरीनुत्पाट्य बिभ्रतः ॥ २१ ॥

आगच्छतो निक्षिपतो यथास्थानं पयोनिधौ ।
अहो तस्य बलं भूरि रामकार्यविधित्सया ॥ २२ ॥

अनेकयोजनायामानवाह्यान् वानरैः परैः ।
नदीनिर्झरसंयुक्तान् कान्तारवनभूषितान् ॥ २३ ॥

नानादुर्गाचितांस्तुङ्गान् नानावर्णशिलान्वितान् ।
अनेकयोजनैर्मूलैरन्तर्मग्नान् महीतले ॥ २४ ॥

समूलोत्पाटनोद्भूत महानिःस्वनभीषणान् ।
वित्रस्तसिंहशार्दूलानान्दोलितवनद्रुमान् ॥ २५ ॥

क्षुभितानेकसत्त्वाढ्यान् दरीगह्वरदुर्गमान् ।
उड्डीनशरभोलूकगृध्रश्येनकदम्बकान् ॥ २६ ॥

महावराहमहिषतरक्षुगणसेवितान् ।
उत्थाप्यैककरेणैव महाद्रीन् सोऽवहद्बली ॥ २७ ॥

एवं तेनोह्यमानेभ्यो व्योममार्गेण गच्छता ।
शैलेभ्यो विक्षताः खण्डाः पतिता अन्तराध्वनि ॥ २८ ॥

गण्डशैला चरतास्तेभ्यः केचिद्योजनविस्तृताः ।
धरण्यां चूर्णयामासुर्नानादेशवनद्रुमान् ॥ २९ ॥

सानवः कटकाश्चैव शिलाः काश्चन विस्तृता ।
पतिताः पर्वताग्रेभ्यो भूमिभागानचूर्णयन् ॥ ३० ॥

आबद्धरक्तकक्षोटो वहन्शैलवरान् दिवि ।
शुशभेऽनेकशिखरः सांध्य मेघ इवोन्नतः ॥ ३१ ॥

अन्येऽपि कपयः शूरा महाबलपराक्रमाः ।
अन्योन्यविक्रमोत्साहा गर्जन्तः सुमहोद्धताः ॥ ३२ ॥

उन्मुखद्विविदोद्दामश्वेतनीलाङ्गदादयः ।
स्वस्वयूथ्यैः समुदिताः सर्वेऽपि सुमहाबलाः ॥ ३३ ॥

महाभुजा महाकाया महोत्साहकृतोद्यमाः ।
उत्पाट्य नानादेशेभ्य आनयन् पर्वतोत्तमान् ॥ ३४ ॥

गिरयो ये समीपस्थास्त आनीता महाबलैः ।
ततो दूरात्समानीताः सुमहाजवशालिभिः ॥ ३५ ॥

अवहन् शिरसा सर्वे गिरीनुच्चावचान् बहून् ।
रामदत्तबलोपेता जविनो वानरोत्तमाः ॥ ३६ ॥

ऋक्षेशो जाम्बवान्नाम महाकाया महाबलः ।
वृद्धोऽपि स्वामिनः कार्येयुवेव स निरीक्ष्यते ॥ ३७ ॥

प्रावृषेण्यघनाकारस्निग्धश्यामलविग्रहः ।
आत्मयूथ्यैर्महाऋक्षैः सहितोऽद्री नुपानयत् ॥ ३८ ॥

दिगन्तेभ्यः समानिन्युः पर्वतान् सुमहायतान् ।
नानासानुदरीवेश्मगह्वरेद्रुमसंकुलान् ॥ ३९ ॥

धरणीं रञ्जयामासुस्तेभ्योऽखण्डनिपातिभिः ।
गैरिकाद्यैः सुनिविडैर्महाधातुगणाद्रवैः ॥ ४० ॥

नानावर्णाः कपिवरा लिप्ताः पर्वतधातुभिः ।
सांध्या इवाभ्रनिवहाः पर्यशोभन्त वर्त्मनि ॥ ४१ ॥

प्रावृषेण्यघनश्यामा ऋक्षमल्ला महाजवाः ।
सांध्यैरिवार्ककिरणैर्लिप्ताः पर्वतधातुभिः ॥ ४२ ॥

पर्यशोभन्त गगने संचरन्तो महाबलाः ।
अनायासोद्वोढमहाशैलभाराः सहस्रशः ॥ ४३ ॥

गच्छतामागच्छतां च वहतां धरणी धरान् ।
सिन्धौ निक्षिपतां वेशात्तथैव प्रतिगच्छताम् ॥ ४४ ॥

शैलान् समुत्पाट्यतां व्याधूप पृथुदोर्बलैः ।
सम्मर्दः सुमहानासीत्कपीनामनुगर्जताम् ॥ ४५ ॥

सम्भ्रमः सुमहानासीत्तेषामथ परस्परम् ।
अहं पूर्वमहं पूर्वमिति वर्त्मनि धावताम् ॥ ४६ ॥

आमूलोत्पाट्यमानेभ्य आधूयाधूय वानरैः ।
चलायमानशृङ्गेभ्यो ध्रियमाणेभ्य उच्चकैः ॥ ४७ ॥

आकम्पितवनश्रेणिधुतवृक्षेभ्य एव च ।
पर्वतेभ्यो निपतिताः समंतादवनीतले ॥ ४८ ॥

फलानां च दलानां च पुष्पाणां दृषदामपि ।
महाधातुरसानां च वृष्टयः परितो दिशम् ॥ ४९ ॥

महौषधीनां दिव्यानां ज्वलन्तीनां निशागमे ।
मणिमाणिक्यरत्नानां सरिन्निर्झरपाथसाम् ॥ ५० ॥

आच्छादितं महीपृष्ठं ताभिर्वर्त्मनि वर्त्मनि ।
पशवः पक्षिणश्चैव भ्रममाणाः क्षतौकसः ॥ ५१ ॥

आक्रन्दं चक्रिरे भूरि सुमहारवभीषणाः ।
समूलोत्पाटितानां च पर्वतानां सहस्रशः ॥ ५२ ॥

अन्त्राणीव व्यदृश्यन्त मूललग्नानि कोटिशः ।
धातुद्रवजलान्यद्धा क्षरन्ति प्रक्षरन्ति च ॥ ५३ ॥

केचिच्च पर्वतवराः समूलोत्पाटनक्षताः ।
दरीमुखेभ्यः ससृजुर्महान्तं भीममारवम् ॥ ५४ ॥

असह्योत्पाटनोद्भूतपीडासंव्याप्तविग्रहाः ।
चकम्पिरे गिरिवराः शिरोभिरिव सानुभिः ॥ ५५ ॥

आकल्पस्थितिसंवासयमुमुक्षव आतुराः ।
क्रन्दन्तः पीडया भूरि दरीमुखकृतारवाः ॥ ५६ ॥

उत्पाटिता हठात्तेऽपि बलाढ्येन हनूमता ।
क्षरत्क्षतजसम्पृक्ता निर्यद्धातुरसद्रवाः ॥ ५७ ॥

जवादुत्पाट्यमानानां केषांचिदवनीभृताम् ।
सजीवानां समभवत्त्रैलोक्यव्यापनो रवः ॥ ५८ ॥

आनीता बलिभिः कीशैः पर्वताः कोटिसानवः ।
लिखन्तः सानुभिर्व्योम मूलैः पातालसंस्पृशः ॥ ५९ ॥

आनीतान् सुमहावेगैस्तैर्गिरीन् गगनोक्षितान् ।
आदायैककरेणैव न्यक्षिपन्नीरधौ नलः ॥ ६० ॥

यथा कारुः यदुतरो यथास्थानं शिलागणान् ।
तथैव पर्वतांस्तुङ्गान् शतयोजनविस्तृतान् ॥ ६१ ॥

यथास्थानं युनक्त्येष समादायैकपाणिना ।
परेण पाणिना कांश्चिदधिकान्निरकृन्तत ॥ ६२ ॥

यथादेशं यथास्थानं यथाभागं यथायुति ।
बबन्ध पर्वतैः सेतुं नलो नाम कपीश्वरः ॥ ६३ ॥

प्रददौ हनुमांस्तस्मै शैलान् सूर्यरथस्पृशः ।
तदीयतुरगोत्कीर्णशृङ्गाग्रान् दृषदो यथा ॥ ६४ ॥

अनायासं समुद्धृत्य करेणैकेन मारुतिः ।
स तान् युयोज जलधौ तथैवादाय पाणिना ॥ ६५ ॥

दक्षेण पाणिना चैव छित्त्वा छित्त्वाधिकांशकान् ।
चतुरस्रान् समीकृत्य निचिक्षेप पयोनिधौ ॥ ६६ ॥

पूर्वं तु कतिचित् क्षिप्ताः पर्वताः सुमहोन्नताः ।
न्यमज्जन् नीरधेर्नीरे आयातालतलस्पृशि ॥ ६७ ॥

ततश्चिन्तामवाप्यैष नलो नाम कपीश्वरः ।
हनूमन्तमुवाचाथविषण्ण इव चेतसा ॥ ६८ ॥

कियद्यावदहं शैलैः पूरयामि पयोनिधिम् ।
निक्षिप्तमात्रा लीयन्ते यदिहानेकपर्वताः ॥ ६९ ॥

कतिभिः पर्वतैरेष सिन्धुर्यास्यति पूर्णताम् ।
मन्ये भूरि गभीरोऽयमापातालतलावधिः ॥ ७० ॥

ततोऽस्य पूरणे यत्नः कथं कार्यो मरुत्सुत ।
मुहुरित्थं विषीदामि कथं सेतुश्च सेत्स्यति ॥ ७१ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा हनूमानाह सत्वरम् ।
किंचिद्विहस्य सप्रेम रामनामप्रभाववित् ॥ ७२ ॥

सत्यं गभीरः पयसां निधानभूतोऽयमब्धिर्ध्रुवमप्रमेयः ।
पाताललोकावधिसप्तलोकनिधानभूता धरणी किलास्मिन् ॥ ७३ ॥

न भूमिमाश्रित्य समुद्र एष समुद्रमाश्रित्य परिस्थिता भूः ।
अगाधमेतज्जलमप्रमेयमेकत्वमाप्तं सरयूजलेन ॥ ७४ ॥

न पर्वतैरेष हि पूरणीयो नलास्य विद्धित्व ममेयमम्भः ।
कः पूरयेत्कल्पशतेन सिन्धुं ततो भवेद्व्यर्थतमः प्रयत्नः ॥ ७५ ॥

एकं तु निश्चित्य वदाभ्युपायं शीघ्रं विरच्येत यथैव सेतुः ।
प्रयोजनं नो नहि सिन्धुपूर्तौ सेतोर्विधाने वयमात्तयत्नाः ॥ ७६ ॥

इदं सुगोप्यं भवते वदामि प्रसंगतः सेतुनिबन्धनेऽस्मिन् ।
न वाच्यमेतद्भवता परस्मै भक्त्योपसन्नाय तु वाच्यमेव ॥ ७७ ॥

रामेति मन्त्रं कवयो वदन्ति यद् द्व्यक्षरं नाम रघूद्वहस्य ।
अस्मत्प्रभोरस्य महामहिम्नो मनुष्यलिङ्गस्य परस्य पुंसः ॥ ७८ ॥

तदेव सम्यग्विलिख्योरुबुद्धे प्रत्यद्रिपाषाणशिलासु तावत् ।
भवाम्बुधिं येन जनास्तरन्ति किं तारणं दुष्करमस्य तेषाम् ॥ ७९ ॥

ग्राव्णां गणेभ्योऽपि जनस्य पापान्यतीव भारेण समाकुलानि ।
लघूक्रियन्ते मनुजा यदेतैर्भृशं विलुप्तैरिह तन्न चित्रम् ॥ ८० ॥

इदं मतं मे भृशमाददानः संतारय ग्रावगणान् पयोधौ ।
ततो विनिर्माय सुखेन सेतुं लङ्कां परिप्रापय रामसेनाम् ॥ ८१ ॥

सद्यस्तव प्रत्यय एष भूयान्नल स्वमुक्त्यै च परस्य मुक्त्यै ।
अज्ञानसंज्ञां हृदयस्य गाढां ग्रन्थिं विनिर्भिद्य सुखं प्रयाहि ॥ ८२ ॥

इति स तदुपदिष्टं वाक्यमाकर्ण्य सद्यो मनसि कपिवरेण्यो विस्मितः सम्बभूव ।
रघुपरिवृढनाम्नो भूरि जिज्ञासमानः किमपि स महिमानं भूय एनं बभाषे ॥ ८३ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सेतुबन्धनो नाम नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०९ ॥

*

दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नल उवाच

साधु भोः साधु हनुमन् भवान् यदुपदिष्टवान् ।
जगत्संतारणं नाम रामस्य करुणानिधेः ॥ १ ॥

सत्यमस्मत्प्रभुरयं नराकारो नरोत्तमः ।
कोऽस्य स्वरूपं जानीयात्त्वामृते विदुषां वर ॥ २ ॥

भूयस्त्वां परिपृच्छामि वैयात्येनैव मारुते ।
क्षमस्व तन्ममात्यन्तं बहुधा मृढचेत सः ॥ ३ ॥

भवस्याम्भोनिधेश्चापि त्वया पारं प्रदर्शितम् ।
विस्तरेण पुनर्ब्रूहि रामनाम्नोऽस्य वैभवम् ॥ ४ ॥

शृण्वन्नस्मत्प्रयोर्नाममाहात्म्यामिदमद्भुतम् ।
न तृप्यामि मरुत्सूनो कथयस्व ततो मम ॥ ५ ॥

श्रीहनुमानुवाच

श्रूयतां सावधानेन रामनामफलं त्वया ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ६ ॥

एकतः सकला मन्त्रा एकतो ज्ञानकोटयः ।
एकतो नाम रामस्य तदपि स्यान्न तैः समम् ॥ ७ ॥

देशकालक्रियाज्ञानाद्यनपेक्षं स्वरूपतः ।
अनन्तकोटिफलदं नाममन्त्रं जगत्पतेः ॥ ८ ॥

गङ्गास्नानसहस्रेण यशान्तस्नानकोटिभिः ।
या न शुद्धिर्भवेज्जातु सा रामेत्यर्णकीर्तनात् ॥ ९ ॥

अन्यदेव फलं ज्ञाने श्रवणे चान्यदेवतत् ।
कीर्तने चान्यदेवास्य अन्यदावर्तनफलम् ॥ १० ॥

ये जानन्ति जनास्तत्त्वं रामनाम्नो महीयसः ।
न ते दुष्कृतसंदोहैर्लिप्यन्ते जन्मकोटिजैः ॥ ११ ॥

शिव एवास्य जानाति सरहस्यं स्वरूपकम् ।
उपदिश्य सकृज्जीवान् यस्तारयति मोहतः ॥ १२ ॥

अन्यदाराधनशतैर्मन्त्रं फलति नाथवा ।
गृहीतमात्रं फलदं रामनामस्वरूपतः ॥ १३ ॥

न शौचनियमाद्यत्र न सिद्धारिविचारणम् ।
कल्पवृक्षस्वरूपत्वाज्जनानां रामनामकम् ॥ १४ ॥

सकृज्जप्तं धुनोत्याशु पायमाजन्मसम्भवम् ।
द्विरावृत्त्या पुनर्जप्तं कोटियज्ञफलप्रदम् ॥ १५ ॥

त्रिरावृत्त्या तु तज्जप्तं स्वरूपस्थं करोत्यमुम् ।
चतुरावृत्तिजप्तं तु ऋणीभवति राघवः ॥ १६ ॥

चिन्तामणिः कल्पतरुः कामधेनुश्च वै नृणाम् ।
अनल्पफलसंदोहभवनं रामनाम वै ॥ १७ ॥

नास्य रूपं विजानन्ति ब्रह्माद्या अपिदेवताः ।
वाग्वल्लीबीजमेतद्वै रामनाम सीतापतेः ॥ १८ ॥

अमृतस्याकरं विद्यादेतदेवमहोर्जितम् ।
सर्वलोकमहामोहतिमिरौघनिवारणम् ॥ १९ ॥

अनन्तकोटिसूर्येन्दुवह्निदीधितिदीप्तिमत् ।
बाह्याभ्यन्तरसंछन्नतमोवृन्दनिरासकम् ॥ २० ॥

ज्ञानधारामृतरसैरात्मनः स्नपनं भवेत् ।
हृत्पद्मभवने नित्यं दीप्तिकृद्दीपकोपमम् ॥ २१ ॥

सर्ववेदान्तविद्यानां सारमेतदुदीरितम् ।
रामनामाखिलाज्ञानरजनीभेदभास्करम् ॥ २२ ॥

पुरा कृतयुगे केचिज्जनाः सुकृतिनो नल ।
सरहस्यं रामनाम सकृदासाद्य सद्गुरोः ॥ २३ ॥

भित्त्वाज्ञानतमोराशिं कृत्वा स्वात्मप्रकाशनम् ।
परे ब्रह्मणि संलीनाः सिद्धिं प्राप्ता विना श्रमम् ॥ २४ ॥

ततः परं साधनानि बभूवुः कोटिशो नृणाम् ।
मुनीनां मतभेदेन येष्वायासो महान् भवेत् ॥ २५ ॥

कलावशक्यानुष्ठानात्तेषां सिद्धिर्न विद्यते ।
अतो भूयोऽपि रामस्य नामैव शरणं मतम् ॥ २६ ॥

ध्यानतो रामचन्द्रस्य रामचन्द्रस्य भक्तितः ।
रामचन्द्रस्य यजनान्नाम्ना रामस्य मुच्यते ॥ २७ ॥

नामैव यस्य बहिरान्तरपापकोटिनिर्वासनैककरणं शरणं जनानाम् ।
कस्तस्य कोसलपुराधिपराजसूनोरन्यावतारनिबहस्तुलनां प्रयातु ॥ २८ ॥

यावन्ति नामानि रघूत्तमस्य तेषामिदं मुख्यतमं प्रदिष्टम् ।
यज्ज्ञानमात्रेण विमुक्तबन्धः स्वरूपनिष्ठां लभतेऽधमोऽपि ॥ २९ ॥

प्रारब्धकर्मापहृतिप्रवीणं रामेतिनामैवबुधैर्निरुक्तम् ।
यज्ज्ञानमात्रादधमा किराती मुनीन्द्रवृन्दैरभवन्नमस्या ॥ ३० ॥

अज्ञानेन्धननिर्दाहो ज्ञानदीप प्रदीपनम् ।
एकदेव मतं नाम्नि रामेतिद्व्यक्षरात्मके ॥ ३१ ॥

जिह्वाग्रे यस्य लिखितं रामेति द्व्यक्षरं महः ।
कथं स्पृशन्ति तं दूता यमस्य क्रोधभीषणाः ॥ ३२ ॥

रामनामाङ्किता मुद्रा प्रत्यङ्गं येन वै धृता ।
आबद्धं तेन कवचं मोहशत्रुचमूजये ॥ ३३ ॥

जाग्रतिष्ठन् स्वपन् क्रीडन् विरहन्नाहरन्नपि ।
उन्मिषन्निमिषंश्चैव रामनाम सदा जपेत् ॥ ३४ ॥

पापं कृत्स्नं विधूयाशु मुक्तभारः स मानुषः ।
अनायासेन मोहाख्यं सिन्धुं तरति दुस्तरम् ॥ ३५ ॥

कस्तेन तुल्यः सुकृती भवेऽस्मिन् कस्तेन तुल्यश्च सदा प्रकाशः ।
कस्तेन तुल्यश्च विशोकमोहो यो नाम रामेति जपेदजस्रम् ॥ ३६ ॥

एतन्मया सम्परिपृच्छते ते भूयः प्रदिष्टं परमं रहस्यम् ।
हृदावधार्यं स्वयमेव विद्धि वाच्यं त्व जिज्ञासति नो परस्मिन् ॥ ३७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे श्रीरामनामस्वरूपाख्यानो नाम दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१० ॥

*

एकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

एतद्धनुमता प्रोक्तं रामनामरहस्यकम् ।
श्रुत्वा नलः प्लवंगेशस्तत्तथैव चकार सः ॥ १ ॥

लिखित्वा दृषदां मध्ये नाम सीतापतेर्मुहुः ।
निचिक्षेप पयोराशौ बहूनुच्चावचान् गिरीन् ॥ २ ॥

संतरन्ति स्मदृषदो रामनामाङ्किता जले ।
तद् दृष्ट्वा वानराः सर्वे बभूवुर्विस्मृता भृशम् ॥ ३ ॥

बबन्ध नैर्महाशैलेर्युक्त्या विनिहितैर्नलः ।
सेतुं महान्तमम्भोधौ यावत्सा रक्षसां पुरी ॥ ४ ॥

बद्ध्यमानं महासेतुं स्वस्मिन् वीक्ष्य पयोनिधिः ।
विसिस्मियेतरां चित्ते रामनामप्रभावतः ॥ ५ ॥

भारव्याकुलितं तस्य हृदयं नामवत्तदा ।
रामनामाङ्कितैः शैलैः सुखमाप भृशं यतः ॥ ६ ॥

सुग्रीवाद्याः कपिवराः सौमित्रिः पयसां निधिः ।
जाम्बवान्नाम ऋक्षेशः सर्वाण्यृक्षकुलानि च ॥ ७ ॥

श्रीरामनाममाहात्म्यं जज्ञुः सर्वेऽपि तत्तथा ।
ससुरासुरमर्त्येषु लोकेष्वास सुविस्मयः ॥ ८ ॥

अहो तरन्ति पाथोधौ महीयांसो महीधराः ।
इतिविस्मितचित्तानां जनानां विस्मयोऽभवत् ॥ ९ ॥

बद्ध्यमानं नलेनोच्चैर्दृष्ट्वा सेतुं पयोनिधौ ।
निश्चयोऽभूत्कपिकुले दशकन्धरनिर्जये ॥ १० ॥

दशकन्धर आकर्ण्य रामभ्रूभङ्गमात्रतः ।
पयोनिधिंवशीभूतं विषसाद निजे हृदि ॥ ११ ॥

मनुष्येणाल्पमात्रेण महान्नियमितोऽम्बुधिः ।
अहो दैवगतिः कापि न जाने भावि किं मम ॥ १२ ॥

किं वानेन निबद्धेन भीरुणा जलराशिना ।
मनुष्यमात्रं नो भक्ष्यं सुखमायातु राघवः ॥ १३ ॥

अहो अस्य चमूः साधुः समेता दैवयोगतः ।
हस्तचालनमात्रेण भीतिशीलैः प्लवंगमैः ॥ १४ ॥

अनायासेन यातूनां भक्ष्यमेतदुपस्थितम् ।
किं शोचित्वातिमात्रं मे रिपावस्मिंल्लघीयसि ॥ १५ ॥

इत्यनादृत्य मनसा रामस्यागमनं प्रति ।
तस्थौ विचिन्तहृदयो वीरमानी दशानन ॥ १६ ॥

निवद्ध एव सेतुस्तु नलेनाहितयुक्तिना ।
उच्चावचैः क्षितिधरैः पङ्क्त्याकारो महोदधौ ॥ १७ ॥

समान् समैः सुसंयोज्य विषमान् विषमैरपि ।
जलेबद्धो महासेतुर्नलेनातिपटीयसा ॥ १८ ॥

ददृशे सुमहाच्छायो घनसंहतिमेचकः ।
नलबद्धो महासेतुर्मध्ये वारिनिधेर्महम् ॥ १९ ॥

दशयोजनविस्तीर्णो दैर्घ्येण शतयोजनः ।
महोच्छ्रितो महासेतुर्ददृशेऽब्धौमहादृढः ॥ २० ॥

यद्येव सरसो मध्ये सेतुरन्तः पयोनिधेः ।
बद्धो नलेन कीशानां जयोत्साहविवर्द्धिनः ॥ २१ ॥

सुघट्टितमहाशैलदृषद्दृढनिबन्धनः ।
शृङ्गाग्ररूढविटपिघनच्छायसुशीतलः ॥ २२ ॥
सरिन्निर्झरसंदोहविनिबद्धैरनेकशः ।
कासारैरक्षयाम्भोभिः सर्वत्रसुगमायनः ॥ २३ ॥
उच्चैरुभयतः सिन्धुलहरीगणसंगतः ।
तुङ्गैर्जलघटाभारैरनवाप्यस्थितिर्महान् ॥ २४ ॥
शेषाहिरिव पातालादुन्मग्नो रामवर्त्मकृत् ।
स्थितः पातुमिवाम्भोऽब्धेर्महामेघघटागणः ॥ २५ ॥
स्वामिने मार्गदानाय भूमिभाग इवागतः ।
नानावर्णशिलाजालैर्भूरिचित्रविचित्रितः ॥ २६ ॥
सिन्धुमुक्तास्फोटकम्बुसमाचिततटद्वयः ।
महामकरदंष्ट्राग्रपीडनाधःशिलागणः ॥ २७ ॥
रघुवंशाधिभूकीर्तिलेखपट्ट इवा यतः ।
नलहस्तमहायुक्तिपटिम्नः परिसूचकः ॥ २८ ॥
उद्योग इव रामस्य दशवक्त्रजयं प्रति ।
महीयान् कपिसैन्यस्य प्रोत्साह इव मूर्तिमान् ॥ २९ ॥
राक्षसाधीशहृदयनिर्दार इव दारुणः ।
वेलावनावलिश्यामः सुघट्टितशिलास्थितिः ॥ ३० ॥
नीरन्ध्रोदृढबन्धश्च कपिसैन्यभरक्षमः ।
अत्यायतोऽतिदीर्घश्च महोच्छ्रायो महीतलात् ॥ ३१ ॥
अभञ्जनार्हो रक्षोभिरमानुषविनिर्मितिः ।
पौलस्त्यवंशदहनस्थिति वेदिरिवोद्गतः ॥ ३२ ॥
राक्षसानीकहृदयमहाभारप्रदायकः ।
सीतारघूद्वहमनःप्रेमसूत्रसमाकृतिः ॥ ३३ ॥
उभयत्र सुसंलग्नो मनोरथ इवोभयोः ।
राक्षसस्तोमसंहारकालदण्ड इवायतः ॥ ३४ ॥
लङ्कापुरीमहादुर्गपरिप्राप्तिपथो महान् ।
रावणस्यायुषो लक्ष्म्याश्चापसारपथोपमः ॥ ३५ ॥
अभूतपूर्वनिर्माणस्त्रैलोक्यजनविस्मयः ।
विनिर्मितो रामचन्द्रस्याज्ञया कपिपुङ्गवैः ॥ ३६ ॥
पौषस्य कृष्णदशमीदिवसे कपीन्द्रैरारब्ध एष सुमहोद्यमकारिभिस्तैः ।
सिद्धश्चतुर्भिरथ यो दिवसैः समस्तः सेतुश्चिरं विजयते स रघूद्वहस्य ॥ ३७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सेतुविनिर्माणो नामैकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २११ ॥

*

द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

दृष्ट्वा सेतुं महोच्छ्रायं पारावारविनिर्मितम् ।
मुमुदेऽतितरां रामः प्राप्तां मेने च जानकीम् ॥ १ ॥

कृत्वा सेतुविनिर्माणं सुग्रीवः कपिनायकः ।
हनूमांश्च नलो विद्वानन्ये च कपिपुङ्गवाः ॥ २ ॥

प्रणेमुः श्रीरघुश्रेष्ठं प्रसीदन्तं मुहुर्मुहुः ।
स चताननुजग्राह दृक्प्रसादेन भूयस ॥ ३ ॥

त ऊचुरञ्जलीन् बद्ध्वा विनयानतकन्धराः ।
अयं ते निर्मिता सेतुः दृश्यतां रघुपुङ्गव ॥ ४ ॥

अनेन गम्यतां नाथ सुखं शत्रुजिगीषया ।
सुखं संतारयविभो कपिसैन्यानि कोटिशः ॥ ५ ॥

तव प्रभावात्सिद्धोऽयं श्रीमद्रघुकुलाग्रणीः ।
नास्माकमस्ति सामर्थ्यमेतस्य खलु निर्मितौ ॥ ६ ॥

येन बद्धो महासेतुर्मध्ये लवणवारिधेः ।
स एव रावणानीकं क्षणात्त्वं चूर्णयिष्यसि ॥ ७ ॥

इत्युक्तो रघुशार्दूलः कपिभिर्नतकन्धरैः ।
सोत्साहहृदयो लङ्कां प्रस्थातुमुपचक्रमे ॥ ८ ॥

[1]स तत्र प्रतिष्ठापयामास देवं शिवं चन्द्रचूडं शुभं विश्ववन्द्यम् ।
सदा सन्निधानं स्वयं व्यक्तमीशं परं ज्योतिराद्यं भवानीसमेतम् ॥ ९ ॥

गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यराशिभिः ।
ईश्वरं पूजयामास लोकवृत्तमुपाश्रितः ॥ १० ॥

अघोरं वामदेवं च सद्योजातं महेश्वरम् ।
सतत् पुरुषमीशानं पूजयामास भक्तितः ॥ ११ ॥

पञ्चवक्त्रं च सम्पूज्य कालिकां समपूजयत् ।
बलिभिर्धूपदीपैश्च उपहारैरनेकशः ॥ १२ ॥

नत्वा स्तुत्वा क्षमाप्याथ स देवौ लोकमातरौ ।[1]
प्रययौ सेतुमार्गेण लङ्कानाथ जिजगीषया ॥ १३ ॥

कपीनुत्तारयामास चतुर्दश्यां कृतार्चनः ।
सर्वे त्रिभिश्च दिवसैरुत्तीर्य जलधेर्जलम् ॥ १४ ॥

१-१. नास्ति—बड़ो०

पारं प्रयाताः कपयो रामबाहुबलाश्रयाः ।
गर्जन्तो निनदैर्भूरि निशाचरपुरीं प्रति ॥ १५ ॥

मर्दनाय कृतास्फोटाः साटोपं सुमहोद्धताः ।
कृतत्वराश्च साक्षेपं रक्षोनाथविमर्दने ॥ १६ ॥

अहं पूर्वमहं पूर्वमिति संरम्भ भीषणाः ।
उच्चैः किलकिलाशब्दैर्नादयन्तोऽखिला दिशः ॥ १७ ॥

व्याप्नुवन्तो नभो भूमिं सुसंकटगतिक्रमाः ।
कुर्वन्तो वर्त्मसम्बाधं धारानुकृतियायिनः ॥ १८ ॥

निनदै राक्षसेन्द्राणां स्फोटयन्तः शिरः श्रुतिम् ।
निर्दारयन्तो हृदयं मानसोत्साहभञ्जनाः ॥ १९ ॥

उत्तार्य तन्महासैन्यं रामवीरो महाभुजः ।
कृत्स्नं निवेशयामास सुवेलगिरिमूर्द्धनि ॥ २० ॥

एवं निरुद्धय लङ्काया हृदयं वानरोद्भवैः ।
तस्थौ सुवेलशिरसि राक्षसानां यथान्तकः ॥ २१ ॥

वानरास्ते दशग्रीवपुरीप्राकारमुन्नतम् ।
आक्रम्य नितरां तस्थुर्गर्जन्तो दर्पसंयुताः ॥ २२ ॥

कोष्ठान्यट्टालकांश्चैव गोपुराणि सहस्रशः ।
शिखराणि समारुह्य स्थिताः केचिन्महोद्भटाः ॥ २३ ॥

संचूर्णयन्तो हृदयं रावणस्य रवैर्मुहुः ।
एकैकः कपिवीरस्तेष्वेकैकस्माद्बलाधिकः ॥ २४ ॥

सर्वे जगर्जुगम्भीरं कृतास्फोटाश्चुकूर्दिरे ।
महाबाहुबलोत्सिक्ताः कृतदोर्जङ्घताडनाः ॥ २५ ॥

निर्दारयन्तो लङ्काया हृदयं सुमहोद्भटाः ।
गिरीन्द्रा इव कायैस्ते रक्षसामतिभीषणाः ॥ २६ ॥

सोज्जृम्भवदनाः सर्वे लङ्काया ग्रासहेतवे ।
रामदत्तबलोन्मत्ता आज्ञामात्रप्रतीक्षणाः ॥ २७ ॥

आमोटयन्तः स्वाङ्गानि सोद्रेका रणहेतवे ।
बाहुकण्डूप्रहाणेच्छाः प्रोद्धुरा रणवाञ्छकाः ॥ २८ ॥

बलात्पिपतिषन्तश्च राक्षसानां बलोपरि ।
अन्योन्यमनपेक्षन्तः सर्वे भूरिबलाधिकाः ॥ २९ ॥

तेऽष्टभिर्दिवसैस्तत्र संवेष्ट्य परितः पुरीम् ।
स्थापिता रघुनाथेन यथास्थानं कपीश्वराः ॥ ३० ॥

रामस्य तद्बलममेयमसंख्यसंख्य संवीक्षितुं दशमुखेन ततो नियुक्तौ ।
प्राप्तौ मदाद्धरिदिने शुकसारणाह्वौ चारौ निरीक्ष्य निखिलं च विमोहितौ च ॥३१॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सेनासन्निवेशो नाम द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१२ ॥

*

त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

उवाच सारणं वीक्ष्य शुको रघुपतेर्बलम् ।
इह सारण पश्यैतान् महाबाहुबलान् कपीन् ॥ १ ॥

मनुष्यमात्रादपि येविभीयुर्वानराः किल ।
ते गर्जन्त्यद्य लङ्केशपुरीमथनकांक्षिणः ॥ २ ॥

रामस्य दोर्बलोद्रिक्ता अमी वानर कुञ्जराः ।
रक्षोगणांस्तृणीकृत्य गर्जन्त्येते महोद्धताः ॥ ३ ॥

एतैर्वारिनिधौ बद्धः सेतुः शैलगणैर्महान् ।
अमानुषमिदं कृत्यं हरते नः प्रभोर्मदम् ॥ ४ ॥

अपि भ्रूभङ्गमात्रेण बद्धो रामेण वारिधिः ।
इदमप्यस्य सुमहत्कर्मज्ञेयतमं मुहुः ॥ ५ ॥

छन्ना एव दिशः पश्य परितो मर्कटव्रजैः ।
को नाम शक्नुयादेतान् संख्यातुं सुमहोद्धतान् ॥ ६ ॥

अमीभिः कनकच्छायैरसंख्यैः कपिकुञ्जरैः ।
द्वितीय इव लङ्कायाः प्राकारो निर्ममेतराम् ॥ ७ ॥

मुहुर्गर्जन्ति कूर्दन्ते माद्यन्ति सुमहाबलाः ।
आस्फोटयन्ति दोर्दण्डान् कथ्यन्ते चात्मपौरुषम् ॥ ८ ॥

तृणीकुर्वन्ति दर्पान्धास्त्रिजगद्वर्तिनो भटान् ।
निर्दारयन्ति निनदैर्हृदयानि च रक्षसाम् ॥ ९ ॥

उत्क्षिप्तुमवनीमेतामुत्सहन्ते बलोन्नताः ।
नखदन्तायुधैर्योद्धुं शिलाभिर्भूरुहैस्तथा ॥ १० ॥

सज्जन्ते राक्षसैरेते समरेष्वनिर्वर्तिनः ।
जिता येन दिशः सर्वाः सकुलं तं दशाननम् ॥ ११ ॥

एषां ग्रसितुकामानामयमाटोप ईक्ष्यते ।
मन्येऽसौ कोऽपि सम्प्राप्ताः कालस्यैव विपर्ययः ॥ १२ ॥

अभूततममेवाद्य भवतीति विनिश्चिनु ।
तन्न जानाति लङ्केशो मन्ये भाग्यविपर्ययात् ॥ १३ ॥

नो चेत्तरेयुः सलिले कथं नाम शिलोच्चयाः ।
मनुष्यश्च कथं हन्यांद्राक्षसान् निजभक्षकान् ॥ १४ ॥

कपयश्च कथं कुर्युराटोपं रक्षसां जये ।
सोदरश्च कथं नाम त्यजेत्काल उपस्थिते ॥ १५ ॥

इह रामो रघुपतिर्मुहुरालोकयन् धनुः ।
आस्तेऽसावुत्तरद्वारि लङ्काया विजयोद्यतः ॥ १६ ॥

असौ सौमित्रिरनुजस्तस्यैवाहितलक्षणः ।
संधाय बाणं धनुषिमोक्तुकामोऽस्ति लक्ष्यदृक् ॥ १७ ॥

अमी कपिमहावीरास्तेषां सुग्रीव ईश्वरः ।
बली वालिकपेर्भ्राता जल्पन्नास्ते रणोद्यमम् ॥ १८ ॥

अयं स मारुति वीरो हनूमानतिकोपनः ।
आस्ते युद्धकृतोत्साहो नगरीं यो ददाह च ॥ १९ ॥

अस्यां दिशि करालोऽसौ जाम्बवान्नाम ऋक्षराट् ।
आस्ते बाहुयुगं पश्यन् वृद्धो युद्धविशारदः ॥ २० ॥

अमी च कपयः शूरा नलनीलाङ्गदादयः ।
परामृशन्तः संग्रामं जल्पन्ति स्वस्वपौरुषम् ॥ २१ ॥

अमीषां कर्तुं संख्यानं पारयामि न सारण ।
स्वस्वयूथाधिपतये एते सन्ति महाबलाः ॥ २२ ॥

यतो यतः प्रसार्येते दृशौ दिशि ततस्ततः ।
दृश्यन्ते कपिसैन्यानि बलोन्नद्धानि कोटिशः ॥ २३ ॥

अमीभिर्वेष्टिता लङ्का ग्रस्तप्रायैव दृश्यते ।
इतोऽपि किल नो वेत्ति स्वामी नो भाविनो वशात् ॥ २४ ॥

इति संकथयन् वार्ता शुकाख्यः सारणं प्रति ।
विचचार रघुश्रेष्ठसैन्ये छन्नचतुर्दिशि ॥ २५ ॥

विचेरतुस्तौ कुटिलौ चारौ लङ्कापुरेशितुः ।
तस्मिन् कपिबले सर्वैर्विदितौ राक्षसाविति ॥ २६ ॥

अथ तौ कपिभिर्बद्ध्वाऽऽनीतौ श्रीरामसंनिधौ ।
लङ्कातः किल सम्प्राप्तौ राक्षसौ शत्रुपक्षगौ ॥ २७ ॥

तानादिदेश भगवान् रघुवंशमणिः कपीन् ।
त्वरितं प्रतिमुच्येतां दशाननचराविमौ ॥ २८ ॥

एताभ्यामिव बद्धाभ्यां मारिताभ्यामथापि वा ।
नहि नोऽभीष्टसंसिद्धिर्दशास्यं विजिगीषताम् ॥ २९ ॥

इति रामकृतादेशान्मुक्तौ तौ कपिभिः खलौ ।
ईयतुः प्राणानादाय त्वरितं शुकसारणौ ॥ ३० ॥

श्री मानथ द्वादशिकादिने पुरद्वारेषु सर्वेषु महाबलान् कपीन् ।
आदिश्य सेनापतिभिः पृथक् पृथग् द्वारे स्वयं च प्रभुरुत्तरे स्थितः ॥ ३१ ॥

इति श्री मदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे शुकसारणमोक्षणो नाम त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१३ ॥

*

चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ रामचमूं द्रष्टुं चतुर्दिक्षु निवेशिताम् ।
आगतोऽट्टालकशिरस्यधिरूढो दशाननः ॥ १ ॥

दशभिः शिखरैर्युक्तो महानद्रिरिवोन्नतः ।
विंशत्या बाहुभिर्दीर्घैश्छादयन् हरितोऽखिलाः ॥ २ ॥

पाण्डुरेणातपत्रेण व्यक्तं समुपलक्षितः ।
अनुगै राक्षसवरैः स्थितैः सविनयं वृतः ॥ ३ ॥

बद्धाञ्जलिपुटैः कैश्चिद् दूरात्समुपवीक्षितः ।
बीज्यमानश्चोभयतश्चामराभ्यां प्रतिक्षणम् ॥ ४ ॥

ददर्श तं रघुश्रेष्ठो दूरादरुणलोचनः ।
एष वैरी ममेत्युच्चैः सामर्षहृदयो भृशम् ॥ ५ ॥

ततः संधाय धनुषा सोऽर्द्धचन्द्रमितं शरम् ।
आकर्णाकृष्टसुदृढज्यागुणो बलवत्तरः ॥ ६ ॥

चिच्छेद तस्यशिरसि स्थितं शतशलाककम् ।
मुक्ताजालयुतं छत्रं पूर्णचन्द्रमहोज्ज्वलम् ॥ ७ ॥

छिन्नमात्रे तु तच्छत्रे रक्षोवीराः शशङ्किरे ।
अहो रामस्य बाणेन छिन्नं लङ्काधिपस्य तत् ॥ ८ ॥

त्रैलोक्यवर्तिवीरेन्द्रमाननीयं महोज्ज्वलम् ।
समस्तराक्षसैर्वन्द्यं मुक्तामालिमनोहरम् ॥ ९ ॥

छत्रं स्वर्णमयं लङ्काराजधान्या विभूषणम् ।
छिन्नप्रायं त्वस्यं शिरा दैवेनैव सुरक्षितम् ॥ १० ॥

अधुनापि न जानाति प्रभावं राघवस्य चेत् ।
अहो कालेन धीरस्य विपरीतं बभूव तत् ॥ ११ ॥

इति प्रजल्पतां तेषां राक्षसानां वचांसि सः ।
आकर्ण्य रावणः क्रुद्धः साक्षेपमयमूचिवान् ॥ १२ ॥

अलं भयेन वो भीता राक्षसा इयतैव किम् ।
अतः परं न सोढव्यस्तापसस्यास्य दुर्नयः ॥ १३ ॥

अयं पतङ्गवत्प्राप्तो मयि दीपे मुमूर्षुकः ।
द्रक्ष्यथ श्वो मम बलं दुर्नयस्यास्य निग्रहे ॥ १४ ॥

यदसौ भीषयति मां छत्रच्छेदेन मानुषः ।
लप्स्यते तत्फलं शीघ्रं मयि याते रणाङ्गणम् ॥ १५ ॥

अथवालं प्रयातेन मयास्य दमनाय वै ।
पर्याप्ता एव मे वीराः क्रीडादत्तारिनिग्रहाः ॥ १६ ॥

यदसौ मां न जानाति हेलादत्तेन्द्रनिग्रहम् ।
तदात्मनाशस्योपायं संचिनोत्पल्यवैभवः ॥ १७ ॥

किं छत्रेण निकृन्तेन हेमदण्डेन मेऽमुना ।
ज्ञास्यतेऽसौ मम बलं राक्षसैरेव मद्भटैः ॥ १८ ॥

भक्ष्यं चोपस्थितमिह ह्यनायासेन रक्षसाम् ।
एतैः कपिपलग्रासैस्तृप्तिं यास्यन्ति मामकाः ॥ १९ ॥

इमौ च तापसौ मर्त्यौ भक्षणार्थं न आगतौ ।
अनायासेन तुष्टेन दैवेनैवोपसादितौ ॥ २० ॥

इत्थं विकत्थमानेऽसौ राक्षसेन्द्रो महामदः ।
न हृदा गणयामास छत्रभङ्गादमङ्गलम् ॥ २१ ॥

तावत्तत्संनिधिं प्राप्तौ मुक्तौ रामेण बन्धनात् ।
दृष्टकृत्स्नकपिस्तोमबलौ तौ शुकसारणौ ॥ २२ ॥

ताववर्णयतां तस्य सविधे विहिताञ्जली ।
बलं श्रीरामचन्द्रस्य यथा दृष्टं तथैव तत् ॥ २३ ॥

दृष्टं रक्षःपतेऽस्माभिर्बलमेतदशेषतः ।
इह वीरा असंख्याताः कपीन्द्राः पर्वतोपमाः ॥ २४ ॥

जृम्भयन्ति मुखैरेतै लङ्काग्रासार्थमुद्धुराः ।
एकैकशो तुल्यबला गर्जन्ति मुहुरुन्मदाः ॥ २५ ॥

स उन्मुखो नाम कपिर्महाबलपराक्रमः ।
त्वामीक्षतेऽति संक्रुद्ध इतः पश्य शनैः प्रभो ॥ २६ ॥

दृश्यतामेष संक्रुद्धो द्विविदो नाम वानरः ।
ग्रसन्निव पुरीमेनां विदीर्णमुखकन्दरः ॥ २७ ॥

अयं नीलाह्वयः पश्य कपीन्द्रोऽमितविक्रमः ।
[1]प्रहस्तमवृणोद्धन्तुं हरीणां पुरतो रणे ॥ २८ ॥

अयं कपिर्नलो नाम महाबलपराक्रमः ।[1]
बद्धः पयोनिधौ येन महासेतुर्महीधरैः ॥ २९ ॥

अयमङ्गदनामात्र कपीन्द्र इत ऊर्ध्वदृक् ।
स्वपित्रा वलिना तुल्यबलः शौर्येण भूषितः ॥ ३० ॥

आरुरुक्षुरिवोत्तुङ्गं प्राकाराग्रं विलोक्य नः ।
अस्ते बाहुबलोन्नद्धो मथितुं नः कृतोद्यमः ॥ ३१ ॥

अयमृक्षेश्वरो वीरः स्वयूथमधितिष्ठति ।
बलवान् बुद्धिमांश्चैव वृद्धो युद्धविशारदः ॥ ३२ ॥

जाम्बवान्नाम सुमहानद्रिकूटसमुच्छ्रितः ।
निजदोर्दण्डयुगलं पश्यन्नास्ते बलोद्धतः ॥ ३३ ॥

एकैकोऽप्रतिमश्चात्र दोर्बलेन कपीश्वरः ।
पर्याप्त उर्वीमुद्धर्तुं का लङ्का तृणपुञ्जवत् ॥ ३४ ॥

मर्कटा इति ते बुद्धिर्मा भूच्च दशकन्धर ।
सर्वे ह्येतेऽतुलबलाः सर्वे देवपराक्रमाः ॥ ३५ ॥

सर्वे रघुपतेराज्ञामाकाङ्क्षन्ति कपीश्वराः ।
लङ्कापुरीप्रमथनं कर्तुमुद्यतबाहवः ॥ ३६ ॥

इतो निरीक्ष्यतां देव रामोऽयं रघुपुङ्गवः ।
सुग्रीवोत्संगनिहितमस्तको धरणीशयः ॥ ३७ ॥

योऽक्षहा हनुमान् वीरस्तदङ्कनिहिताङ्घ्रिकः ।
त्वत्सोदरोक्तिनिचयदत्तश्रुतिरमेयधीः ॥ ३८ ॥

आस्ते हेममृगस्याधश्चर्माध्यासितवांश्च यः ।
भ्रात्रा सौमित्रिणाऽऽनीतं धनुरालोकयन् मुहुः ॥ ३९ ॥

१-१ नास्ति-बड़ो०

तब वंशविनाशाय किंचिदारक्तलोचनः ।
दृष्ट्वा तस्यबलं कृत्स्नमावां शीघ्रमिहागतौ ॥ ४० ॥

दातुं तवोचितां बुद्धिमिदानीमपि चेतया ।
भवान् विहितान् गर्ह्यं कर्मेदं रक्षसां पते ।। ४१ ॥

पीतमात्मविनाशाय ध्रुवं हालाहलं विषम् ।
सम्प्रति त्यज्यतां लङ्का जानकी च पराङ्गना ॥ ४२ ॥

यदि ते जीवितुं वाञ्छा सकुटुम्बस्य विद्यते ।
उदितोऽयं धूमकेतुर्नाशाय तव रक्षसाम् ॥ ४३ ॥

पश्य पश्यान्धहृद्दृग्भ्यां रक्षैतान् सर्वराक्षसान् ।
रामबाणाग्निनादग्धान् नो चेद्यास्यन्ति संक्षयम् ॥ ४४ ॥

तस्माच्छीघ्रतरं याहि सार्द्धं खलुनिजाङ्गजैः ।
प्रसादत्वेन दत्ता ते भ्रातुर्लङ्काभिधा पुरी ॥ ४५ ॥

रामेणवीरवर्येण शरणागतरक्षिणा ।
येन कैशौरवयसि हता स्त्री ताडकाभिधा ॥ ४६ ॥

विनिकृत्तघ्राणकर्णा तथा तेऽवरजा कृता ।
ह्रिया तव पितुस्त्यक्ता स्त्रीत्वेन निहता न सा ॥ ४७ ॥

कृत्वा तस्यापराधं को जीवेत दशकन्धर ।
एते रामशरप्लुष्टाः क्षयं मास्यन्ति राक्षसाः ॥ ४८ ॥

इत्येवं शुकसारणोक्तवचनैर्हेलापरो रावणः
प्रोन्मत्तो दशभिर्मुखैः प्रहसितो दिक्चक्रमारावयन् ।
आहूयाथ समस्तराक्षसचमूनाथान् प्रसंख्यापर-
स्तत्तत्स्थानदिशामुखेषु निखिलानाज्ञात आरोपयत् ॥ ४९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे छत्रभङ्गादिकथनो नाम चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१४ ॥

*

पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

आरभ्य राक्षसाधीशः पौषकृष्णत्रयोदशीम् ।
यावत्कुहूदिनं सर्वान् राक्षसांश्च चमूपतीन् ॥
तत्तत्स्थानेषु युद्धार्थं संख्यां कृत्वाध्यरोपयत् ॥ १ ॥

प्राच्यवाचीप्रतीचीषु तथोदीच्यां च राक्षसाः ।
रोपितास्तेन बलिना युद्धार्थं कपिसैनिकैः ॥ २ ॥

तस्य चार्द्धाङ्गिनी साध्वी नाम्ना मन्दोदरी तु या ।
अब्रवीत्सा सविनयमागत्य विहिताञ्जलिः ॥ ३ ॥

पश्यपश्य चमूमेनां रामस्य प्राणवल्लभ ।
यावत्प्रकाशो हरितां तावद् दृष्टीः प्रसारय ॥ ४ ॥

पश्यावकाशमाकाशे क्वापि पश्यन्ति नो जनाः ।
पुरीनिवासिनः सर्वेसाश्चर्या एव सम्प्रति ॥ ५ ॥

मज्जन्ति ये मज्जयन्ति तेऽपि प्रस्तरराशयः ।
पयःपृष्ठस्थिताः कान्त तरन्ति खलु सम्प्रति ॥ ६ ॥

करप्रचालनेनापि ये त्रस्यन्ति भृशं नृणाम् ।
तैरियं वेष्टिता कृत्स्ना ग्रासाय कपिभिः पुरी ॥ ७ ॥

यद्भूद्वयं राक्षसानां स्यात्तौ मर्त्याविह संगतौ ।
क्षयाय राक्षसेन्द्राणां हेलाजितचतुर्दिशाम् ॥ ८ ॥

यत्सीमापि न गीर्वाणैर्लङ्घिता साद्य वानरैः ।
लङ्घ्यते नगरी लङ्का जातः कालविपर्ययः ॥ ९ ॥

रिपोरन्त्यं गतो नाथ सोदरोऽपि तवाहितः ।
अद्य दैवविपर्यासाद्विपर्यस्तमिवाखिलम् ॥ १० ॥

शत्रुश्च तेऽतिप्रबलो न कथं शङ्क्यते मुहुः ।
येनैकेन हताः सम्यग्वीर्यवन्तः खरादयः ॥ ११ ॥

त्वत्तोऽप्यधिकवीर्यास्ते तस्य हृत्वा प्रियां भवान् ।
आगतः कृतवानेतदनर्हं कर्म तद्भृशम् ॥ १२ ॥

दुर्गान्तःस्थापिता सापि दग्धा शोकाग्निना भृशम् ।
शपति त्वामविरतं विनाशाय सहात्मजैः ॥ १३ ॥

विधाय स महासेतुं जलधौ धरणीधरैः ।
प्राप्तस्त्रिकूटमचलं कथं नाथ न पश्यसि ॥ १४ ॥

कथमन्धायसे श्रीमन् विंशत्यापि विलोचनैः ।
तव शीर्षावलीं मुक्त्वा विच्छेद छत्रमण्डलम् ॥ १५ ॥

रामः पुलस्त्यवंशे तदाऽऽविश्वके दयां पराम् ।
कृतं निरवशेषं यदेद्यैव खलु नामुना ॥ १६ ॥

सम्प्रत्य वसरोऽस्त्येक कर्तुं संधिं तव प्रभो ।
समर्पय श्रीरामस्य प्रियां जीवन्तु राक्षसाः ॥ १७ ॥

जानासि वालिनो बाह्वोर्बलं च त्वमशेषतः ।
अलं प्रकथ्य तद्वार्तामनुभूय स्थितो ह्यसि ॥ १८ ॥

सोऽपि श्री रामभुक्तेन मार्गेण निहतः क्षणात् ।
तस्य प्रियतमां हृत्वा कुबुद्ध्यैव महात्मनः ॥ १९ ॥

भवान् कथं सुखं शेते नूनमन्धापितो विभो ।
आत्मनः कुलनाशाय जाने कृत्या त्वयार्जिता ॥ २० ॥

इति मन्दोदरीवाक्यमाकर्ण्य दशकन्धरः ।
उवाच भीरुरित्यन्तरवज्ञान परो भृशम् ॥ २१ ॥

अलं भयेन ते तन्वि न जानासि बलाधिकान् ।
लङ्काधिवासिनो वीरान् रक्षोवर्यान् परः शतान् ॥ २२ ॥

किमेतैः कपिभिः प्राप्तैः संछन्नैः परितो दिशम् ।
भक्ष्या एव किलास्माभिरेते दैवोपसादिताः ॥ २३ ॥

अमीभिर्हृष्टपुष्टाङ्गैः कोटिसंख्यैः कपीश्वरैः ।
सम्यक् पुष्टिं प्रयास्यन्ति क्षुधिता मम राक्षसाः ॥ २४ ॥

प्रसारयाम्यहं यावद् दृशस्तावद्विलोकये ।
मांसभारांश्चतुर्दिक्षु भक्ष्यान् दैवोपसादितान् ॥ २५ ॥

नाशायात्मन एवैतैर्वद्धः सेतुः पयोनिधौ ।
पलायिता अपि रणान्नामो मोच्या निशाचरैः ॥ २६ ॥

वेष्टयन्तु पुरीमेतां सुखेन खलु मर्कटाः ।
यावन्नावतरन्त्येते मम वीरा रणांगणम् ॥ २७ ॥

ये ग्रस्तुकामा नगरीं मम मर्कटयूथपाः ।
ग्रसनीयास्त एवामी क्षुधितैर्मम राक्षसैः ॥ २८ ॥

एषां दैवं विपर्यस्तं स्वयमेवागता यतः ।
मर्तुकामा राक्षसानामङ्केषु विपुलक्षुधाम् ॥ २९ ॥

यदेतैर्मशकप्रायैर्लङ्घिता नगरी मम ।
तत्किं भिया सुनयने दुर्जयाः किल राक्षसा ॥ ३० ॥

यच्छत्रोरन्तिकं यातो भीरूरेष विभीषणः ।
तत्फलं यास्यति ध्वस्तसपत्ने मयि भामिनि ॥ ३१ ॥

किमस्य बलमाश्रित्य जितवानहमाजिषु ।
नानाशस्त्रप्रहरणान् दिक्पतीन् वासवादिकान् ॥ ३२ ॥

संगच्छतामयं द्वेष्यैर्भयशीलो विभीषणः ।
निद्रातु कुम्भकर्णोऽपि क्रीडन्त्विन्द्रजिदादयः ॥ ३३ ॥

शक्तोऽहमात्मनैवैकस्तापसंस्यास्यदुर्धियः ।
प्रसभं सम्प्रमथने भ्रूभङ्गनियताम्बुधेः ॥ ३४ ॥

वानराणां प्रमथने शक्ताश्च मम राक्षसाः ।
अलं भयेन ते कान्ते पश्य तावत्कुतूहलम् ॥ ३५ ॥

किं शङ्कनीयः खल्वेश मानुषः सोऽपि तापसः ।
किं दैवान्निहतैश्चापि शापदग्धैः खरादिभिः ॥ ३६ ॥

किमहं कृतवान् गर्ह्यं जानकीं यदिहानयम् ।
येन बन्दीकृताः कान्ते देवनार्यः परः शताः ॥ ३७ ॥

यद्यं तापसो मोहाच्चिच्छेद मम मूर्द्धगम् ।
छत्रं त्रैलोक्यराज्यश्रीविश्रामस्थानमुद्यतम् ॥ ३८ ॥

तदात्मनो विनाशाय नियतं विद्धि सुन्दरि ।
पतङ्ग इव पक्षाभ्यामाक्षिपन् दीपगां शिखाम् ॥ ३९ ॥

अयमन्धायते कामं मानुषः सोऽपि तापसः ।
आत्मानं पातयन्नङ्के रक्षसां घोरकर्मणाम् ॥ ४० ॥

नियतं नार्पयिष्यामि जानकीमस्य भामिनि ।
ध्रुवमङ्केऽर्पयिष्यामि [1]हत्वा रामं महाहवे ॥ ४१ ॥

दैवेन निहतो वालिर्वृद्धः संजीर्णविग्रहः ।
किमहं तेन भेष्यामि जगज्जेता दशाननः ॥ ४२ ॥

स्वप्स्यामि सुखमेवाहं यावन्मे राक्षसोत्तमाः ।
महाबला महाकाया जेष्यन्ति समरे रिपून् ॥ ४३ ॥

नाहं विभीषणो भीरुर्यः कुर्यात्समरं विना ।
संधिर्विपक्षैः संगम्य नन्वहं दशकन्धरः ॥ ४४ ॥

शिरांसि येन गिरिशस्यांघ्रिपद्मद्वये प्रभोः ।
उपहारीकृत्य लब्धास्त्रैलोक्यविजयश्रियः ॥ ४५ ॥

कान्ते ननु मयाऽऽज्ञाता महावीर्या निशाचराः ।
भक्षयिष्यन्ति सपदि यूथशो मर्कटानमून् ॥ ४६ ॥

---

१. मथित्वामुम्—मथु० ।

प्रिये किं मां न जानासि हेलयैव जिगाय यः ।
त्रैलोक्यवर्त्तिनो वीरान् सस्त्रीसुतधनश्रियः ॥ ४७ ॥

किमात्मतनयं वीरं मेघनादं न वेत्सि च ।
येन लब्धेन्द्रजित्ख्यातिः संख्ये जित्वा पुरन्दरम् ॥ ४८ ॥

किं बिभेषि मुहुः कान्ते दृष्ट्वेमाः कपिवाहिनीः ।
भक्ष्या राक्षसवीराणामेकैककवलक्रमात् ॥ ४९ ॥

इति समधिकदर्पोद्दामधीर्यत्तचेतास्त्रिभुवनजयकारी सम्पदा मुह्यमानः ।
दिनकरकुलकेतावासुरीं बुद्धिमात्तो मृगदृशमभिधाया तिष्ठदालिङ्ग्य दोर्भिः ॥५०॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे मन्दोदरीसमाश्वासनो नाम पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१५ ॥

*

षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथादिदेश भगवान् रामो वालिकपीशितुः ।
अङ्गजं वदतां श्रेष्ठमङ्गद नाम वानरम् ॥ १ ॥

गच्छाङ्गसभ्य तस्यान्ते रक्षोराजस्य सत्वरम् ।
मद्वाक्यं ब्रूहि तत्रैत्य यदिदं कथयाम्यहम् ॥ २ ॥

भवान् रहसि मद्भार्यां जहार रभसेन यत् ।
तदिदं कृतवान् गर्हमात्मनाशाय रावण ॥ ३ ॥

सोऽयं ते दुर्नयो भूपान् मया क्षान्ततमो भृशम् ।
धर्मद्वारपथो दत्तस्तव [1]निर्गमनाय च ॥ ४ ॥

गच्छं तेन पथा शीघ्रं सबान्धव सुहृत्पशुः ।
लङ्काधिपत्ये तु मया स्थापितोऽयं विभीषणः ॥ ५ ॥

यो मे शरणमायातः पूर्वमेव महामतिः ।
सोऽभिषिक्तो मयाप्येष लङ्काराज्येऽनुजस्तव ॥ ६ ॥

तवायमेव समयो यथोक्तं कर्त्तुमस्ति वै ।
नो चेन्मद्बाणवह्नेस्त्वं गमिष्यसि पतंगताम् ॥ ७ ॥

---

१. राक्षसनायक–मथु० ।

मा देहि राक्षसश्रेष्ठ ब्रह्महत्यामिमां मम ।
आततायिवधे दोषो नास्तीति मुनिभिर्मतम् ॥ ८ ॥

पुलस्त्यस्य मुनेर्वंशे जागर्ति करुणा मम ।
मा विलोपयतासि तां मदन्तःकरणेस्थिताम् ॥ ९ ॥

जीवन्तु राक्षसाश्चापि तवैते कोटियूथपा ।
नो चेत्सर्वेऽपि निधनं गमिष्यन्ति ममेषुभिः ॥ १० ॥

इत्यादिष्टः स रामेण वालिनस्तनयोऽङ्गदः ।
माघशुक्लप्रतिपदि ययौ रक्षःपतेः सभाम् ॥ ११ ॥

महास्तम्भ शतोपेतां दीव्यन्तीं सर्वतस्त्विषा ।
तलशब्दनिनादेन प्रतिशब्दायितां मुहुः ॥ १२ ॥

मणिरत्नमहास्तम्भ प्रतिबिम्बितमूर्तिभिः ।
रक्षोधिपैर्महाकायैः सर्वतः समलंकृताम् ॥ १३ ॥

नानावर्णैर्मणिगणैर्विचित्रविपुलाजिराम् ।
सुवर्णभित्तिप्रत्युप्तरत्नमाणिक्यदीपिताम् ॥ १४ ॥

सर्वतो विपुलादर्शजटितायतभित्तिकाम् ।
हेमरत्नसुनिर्बद्धगवाक्षशतभूषिताम् ॥ १५ ॥

नानावर्णैर्मणिशिलाजालैर्निर्मिततोरणाम् ।
गगनस्पृङ्महास्तम्भरचिता यततोरणाम् ॥ १६ ॥

देहलीबद्धरत्नांशुच्छादितद्वारशोभिताम् ।
समंतादास्तृतानेकविपुलास्तरणान्विताम् ॥ १७ ॥

विचित्रकम्बलास्तीर्णगृहभित्तिमनोरमाम् ।
ऊर्ध्वं चित्रपटच्छन्नां समंताच्च विचित्रिताम् ॥ १८ ॥

रत्नस्तम्भसुनिर्बद्धमुक्तादामबिलम्बिभिः ।
सांध्यमेकसमाकारैर्बहुवर्णविचित्रितैः ॥ १९ ॥

गमनोच्छ्रायिभिर्भूरिवितानैः समलंकृताम् ।
कृत्रिमैः पटवृक्षैश्च विचित्रकुसुमान्वितैः ॥ २० ॥

समंताच्छोभितां तद्वद्धस्त्यश्वपुरुषव्रजैः ।
करालैः सुमहोद्दण्डैर्महाकायैर्महाभुजैः ॥ २१ ॥

साभिमानै रणोत्साहरोमांञ्चितसुविग्रहैः ।
नानावर्णैर्महाभीमैः कौणपेन्द्रैः समन्विताम् ॥ २२ ॥

राक्षसेन्द्राधिष्ठितोच्चरत्नसिंहासनोर्जिताम् ।
महाशब्दप्रतीहारनिवेदितसमागमैः ॥ २३ ॥

अनेकराक्षसाधीशविनयार्जवशोभिताम् ।
हेलावश्यनमन्मौलिनाकपालादिसेविताम् ॥ २४ ॥
सीतावियोगसंक्लिष्टदशास्यभयमौनितैः ।
रक्षोगणैः समंताच्च चित्रलेखायितामिव ॥ २५ ॥
त्रैलोक्यवैभवश्रीभिः कृतस्थानां महोर्जिताम् ।
तां विवेश स निःशङ्कं कौतुकी वालिनः सुतः ॥ २६ ॥
स तत्र रक्षोधिपतेः पुरस्तान्महार्हसिंहासनमास्थितस्य ।
समेत्य निःशङ्कमना यदुक्तं रामेण तत्सर्वमुवाच तस्मै ॥ २७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभूशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डेऽङ्गदरावणसभाप्रवेशो नाम षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१६ ॥

*

सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

श्रुत्व लङ्काधिपः क्रुद्धस्ताः कर्णकटुका गिरः ।
महामानी महावीर्यो राक्षसानिदमादिशत् ॥ १ ॥
अहो रे राक्षसश्रेष्ठास्तनयो मम विद्विषः ।
मत्सपत्नस्य दूतश्च वध्यतां वध्यतामसौ ॥ २ ॥
भाषते दुर्विनीतोऽयं यत्किंचिदयथातथम् ।
क्षन्तव्यो नैव दुर्बुद्धिरसमाजोचितं वदः ॥ ३ ॥
इत्युक्तास्तेन बलिना बलिनो राक्षसोत्तमाः ।
निग्रहीतुं तमुद्दण्डं प्रयत्नमतिचक्रिरे ॥ ४ ॥
स तान् रक्षःसभामुख्यान् प्रसभं निग्रहोद्यतान् ।
अङ्घ्रिप्रहारैर्बलवानाजघान समंततः ॥ ५ ॥
ते तस्याङ्घ्रिप्रहारोत्थसुनिर्घातसमाहताः ।
निपेतू राक्षसाः सर्वे राक्षसाधिपतेः पुरः ॥ ६ ॥
चुक्रोधं तेभ्यो लङ्केशः प्रहतेभ्यस्तथामुना ।
आदिदेश मुहुर्वक्त्रैर्वध्यतांवध्यतामिति ॥ ७ ॥
तूर्णं स तानधिक्षिप्य पादोत्क्षेपसुनिर्हतान् ।
आलूय राक्षसपतेर्नखरैः कर्णनासिकम् ॥ ८ ॥

भित्वा राजशिरोवेश्म गर्जन् गगनवर्त्मना ।
निर्गत्यशनकैर्वीरः प्राप्तोरघुपतेः पुरः ॥ ९ ॥

तस्मै निवेदयामास यथावृत्तं कपीश्वरः ।
दुर्नयं राक्षसपतेर्बलाच्च स्वविनिर्गमम् ॥ १० ॥

[[1]अथ रावणवाक्येन राक्षस्यो घोरचेतसः ।
जानकीं वञ्चयामासू गवणाभीष्टसिद्धये ॥ ११ ॥

सीते राक्षसराजस्य भृत्येन घोरकर्मणा ।
अन्तर्हितेन ते पत्युः शिरश्छित्त्वा समागतः ॥ १२ ॥

इति घोरतरं वाक्यं वज्रादपि सुनिष्ठुरम् ।
श्रुत्वा मुमूर्छ सा देवी वित्रस्तहृदयेक्षणा ॥ १३ ॥]

ततश्च प्राप्य चैतन्यं विललाप सुदुःखिता ।
किं जातमद्य नन्वेतद्विपरीतमभाग्यतः[1] ॥ ११ ॥

धिङ्मे प्राणान् दृशौ चापि धिक् च माँ गर्हजीविताम् ।
पतितोऽथं मदुपरि को नाम सुमहाशनिः ॥ १२ ॥२०

दग्धे मम दृशौ सम्प्रत्याशाबन्धगते चिरात् ।
न लब्धं दर्शनं किं वा वाञ्छाफल विधायिनोः ॥ १३ ॥२१

[वज्रदंष्ट्रं समाहूय राक्षसं घोरमायिनम् ।
जानकीं मोहनार्थाय चाज्ञापयत रावणः ॥ ११ ॥

अहो रक्षोवर भवान् राक्षस्या घोरमायया ।
सीतापुरः प्रक्षिपत रामलक्ष्मणयोरुभे ॥ १२ ॥

शिरसी सम्प्रति यथा वस्त्रालङ्कारसंयुते ।
तद्दर्शनादियं मोहं यास्यति ध्रुवमञ्जसा ॥ १३ ॥

इत्यादिष्टः स तेनोग्रः कौणपस्तत्तथाकरोत् ।
दृष्ट्वा च जानकी देवी शिरसी रघुनाथयोः ॥ १४ ॥

हा हतामीति बहुशश्चक्रन्द मनसाहता ।
हा नाथ हा रघुपते हा वीरवर हा पते ॥ १५ ॥

अनाथां मां वने त्यक्त्वा क्व गतोऽसि महामते ।
हा लक्ष्मण महावीर हा सुमित्राङ्कभूषण ॥ १६ ॥

हा देवर गुणागार कथं जातोऽसि सम्प्रति ।
शृण्वन्ती वां समुत्कर्षं किमहं विधिना हता ॥ १७ ॥

१–१ नास्ति–बड़ो० ।

[1]त्रैलोक्यजेता वीरेन्द्र सर्वलोकैकशासक ।
कथं मां त्यक्षते वीर भ्रातुः पत्नीं गरीयसीम् ॥ १८ ॥

सम्बोधय रघुश्रेष्ठं विद्यया गारुडाख्यया ।
जहि शीघ्रमिमं वीर रावणं लोककण्टकम्[1] ॥ १९ ॥

निराशैवाद्य किमहं ध्रुवं यास्यामि पञ्चताम् ।
दीर्घायुषोवां किमयमायुर्नाशोमया कलिः ॥ २० ॥

हा देवता हा मुनयः काशिषो॥ भवतां गताः ।]

हा वीरेन्द्र हतोवालिः सुग्रीवश्च कृतः सखा ।
बद्धश्च वारिधौ सेतुः समुत्पाद्य महीधरैः ॥ १४ ॥

रुद्धं च लंकाहृदयमित्याद्यान् भवतोर्गुणान् ।
शृण्वन्त्येवाद्य किहहं दग्धा शोकेन भूयसा ॥ १५ ॥

त्रायस्व मां रघुपते पतितां शोकसागरे ।
मा चूर्णय मनः शोकमहाशनिनिपातनात् ॥ १६ ॥

हा हा दशरथात्तुच्छतपः सिद्धिफलं प्रभो ।
किमियं राक्षसी माया स्वप्नो वा सम्प्रदृश्यते ॥ १७ ॥२५

किमसम्भाव्यमेतन्मे दृश्यते पुरतः प्रभो ।
कथं जीवेयमद्येश पश्यन्तीदृग्विधां तव ॥ १८ ॥

कस्ते मारयिता वीर भवेऽस्मिन् सचराचरे ।
किमकस्मादिदं जातं विपरीततमं प्रभो ॥ १९ ॥

इत्यादि विलपन्तीं तां रावणस्याथ चेटिकाः ।
राक्षस्यो वीतकरुणा वोधयन्ति स्म जानकीम् ॥ २० ॥

किं विलप्यातिमात्रं ते भूतं तु ननु भावि यत ।
वृथा शोकेन किं चेतः खेदयस्यब्जलोचने ॥ २१ ॥

निवारयतमां तन्वि वाष्पाणि परितो मुखम् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरं ह्येतद् ग्लपयन्ति निरर्थकम् ॥ २२ ॥

प्रसीद लङ्कानाथस्य नूनमूर्द्धाङ्गिनी भव ।
प्रणिपातपरोऽयं ते त्रैलोक्येशो दशाननः ॥ २३ ॥

स्वर्गादुत्पाड्य वीरेण रोपितानां निजाङ्गणे ।
कल्पद्रुमाणां छायासु विहरानेन भामिनि ॥ २४ ॥

नमदिन्द्रादिदेवौघ शिखामणिमरीचिभिः ।
नीराजिताङ्घ्रिपद्मस्य तस्य त्वं महिषी भव ॥ २५ ॥

१-१ नास्ति-बड़ो० ।

नित्यं परिचरन्तु त्वां शयनासनभुक्तिषु ।
बन्दीकृत्य समानीता वीरेन्द्रेण सुराङ्गनाः ॥ २६ ॥

त्वादृशी रूपसर्वस्वशालिनी मधुरस्मिता ।
किमेदं खिद्यते तन्वि स्वल्पेनानेन हेतुना ॥ २७ ॥

मर्त्यः सोऽपि तयोदग्धस्तमेनमनुशोचसि ।
हेलाजितयमो भोगी हृदि नानीयते कथम् ॥ २८ ॥

त्रैलोक्यवर्तिवीरेन्द्रः स्वर्लक्ष्मीभोगभाजनम् ।
वाञ्छति त्वां दशमुखः किं सौभाग्यमतः परम् ॥ २९ ॥

पश्येमे शिरसी कृत्ते पतिदेवरयोस्तव ।
अधुनापि पतित्वेन वृणुष्वैनं दशाननम् ॥ ३० ॥

निवारयैनं नि[illegible] वितथक्लेशदायिनम् ।
भजस्वाम्भोजनयने प्रेम्णा दशमुखं पतिम् ॥ ३१ ॥

अथ न स्वेच्छया चेत्त्वं वरमेनमुपैष्यसि ।
बलान्नेयासि तत्पार्श्वं भग्नमाना निशाचरैः ॥ ३२ ॥

यावत्प्रसीदेद्भवती स्वयमेवास्य भुक्तये ।
केशेष्वाकृष्य गृह्णाति न तावन्मानदः प्रभुः ॥ ३३ ॥

अपि त्वद्विरहेणैष चिरात् सीदति भामिनि ।
त्रैलोक्यराज्येऽप्यलसः शय्यामालिङ्ग्य संस्थितः ॥ ३४ ॥

नयते यमिनीः कृच्छ्रादतनुज्वरपीडितः ।
तवाधरसुधापानसोत्कण्ठो दशकन्धरः ॥ ३५ ॥

प्रेम्णा समुपसन्नास्ताः स्वर्लोकवरयोषितः ।
नेक्षते त्वद्वियोगार्तिभग्नचेता दशाननः ॥ ३६ ॥

निवेदितान् प्रतीहारैर्नमतो राक्षसेश्वरान् ।
दृक्प्रसादैर्न गृह्णाति त्वद्गृहीतमना असौ ॥ ३७ ॥

नान्यां पश्यति नो वक्ति न शृणोति न गच्छति ।
न प्रशंसति लङ्केशस्त्वन्मात्रनिहिताशयः ॥ ३८ ॥

हरिचन्दनच्छायासु संस्थितश्चन्दनानिलैः ।
वीज्यमानोऽपि नो शैत्यं याति त्वद्विरहानले ॥ ३९ ॥

स्वर्गाङ्गनागणस्थोऽपि रमते न तरामसौ ।
सीते त्वन्नयनालोकसाभिलाषतमान्तरः ॥ ४० ॥

वर्तनावर्तनैरेष शय्याः पद्मदलास्तृताः ।
मृद्नाति शतशो रात्रौ महासंतापशोषितः ॥ ४१ ॥

त्रैलोक्यराज्यलक्ष्मीस्तं न मोदयति सम्प्रति ।
त्वां विना पद्मपत्राक्षि भजमानाप्यनादृता ॥ ४२ ॥

इति दशमुखपक्षस्थायिरात्रिचरीणां वचनरचनयासौ संततं बोध्यमाना ।
सरुषमरुणनेत्राधोमुखीभूय तस्थौ प्रतिवचनमलब्धानादृतास्ताश्च जग्मुः ॥ ४३ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे राक्षसीजनकृत सीताप्रबोधनो नाम सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१७ ॥

*

अष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ तां त्रिजटा नाम राक्षसी करुणाशया ।
शोकादसून्मुमुक्षन्तीमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

त्रिजटोवाच

अये विदेहतनये रामपत्नि सतीवरे ।
त्यज मोहमिमं सीते राक्षस्या घोरमायया ॥ २ ॥

लङ्काधिपतिनाऽऽज्ञप्तो मायावी कोऽपि राक्षसः ।
इदं ते दर्शयामास त्रासार्थं मस्तकद्वयम् ॥ ३ ॥

न मोहेन त्यज प्राणान् सुखेन किल जीवतः ।
दीर्घायुषौ धृतक्षेमौ चिरं ते पतिदेवरौ ॥ ४ ॥

कपिकुञ्जरसेनाभिर्महतीभिः समायुतः ।
लङ्काया हृदयं रुद्ध्वा स्थितस्ते पतिरूर्जितः ॥ ५ ॥

तस्यानुजः स सौमित्रिः क्रोधादरुणलोचनः ।
आस्ते रावणवंशस्य छेदाय विहितोद्यमः ॥ ६ ॥

स्वल्पैरेव दिनै स्तौ तु सकुटुम्बं दशाननम् ।
यमलोकातिथिं कृत्वा यास्यतस्तव दृक्पथम् ॥ ७ ॥

मा शुचः संनतापाङ्गि सुखं प्राप्स्यसि नो चिरात् ।
आयातस्ते पतिः साध्वि रावणान्तकरोऽधुना ॥ ८ ॥

इति त्रिजटया देवी शान्तिनीता वचोऽमृतैः ।
उवाच तामथो रामवियोगानलतापिता ॥ ९ ॥

सीदामि त्रिजटे दृग्भ्यां पश्यन्ती वृत्तमीदृशम् ।
दह्यन्ते मे त्वचोऽङ्गानि विगलन्तीव सम्प्रति ॥ १० ॥

सत्यं किमाह भवती मत्प्राणपरिरक्षिका ।
निर्मञ्छयामि ते वाचि स्वात्मानं त्रिजटेऽधुना ॥ ११ ॥

राक्षसानां कुले धन्या सम्प्रजाता भवादृशी ।
या मां रक्षति वर्षन्ती वचःपीयूषमाननात् ॥ १२ ॥

ददामि किमहं तेऽद्य मातर्मत्प्राणरक्षिके ।
ध्रुवं तव करिष्यामि प्रशंसां प्रियसन्निधौ ॥ १३ ॥

दास्यति त्वेष वीरेन्द्रस्तवाभीष्टानि भूरिशः ।
यैरुपेता भवे मातर्भवती भास्यतेतराम् ॥ १४ ॥

भूयः सौख्यं शुभं पुण्यं स्वर्गं मोक्षं तथेप्सितम् ।
सम्पादयिष्यतितरां रघुवंशशिरोमणिः ॥ १५ ॥

अद्य मे राक्षसीं मायां पश्यन्त्यास्त्रिजटेऽधुना ।
असवो निर्गतप्राया भवत्या परिरक्षिताः ।। १६ ॥

इयति राक्षसबर्बुरकानने त्वमभवास्त्रिदशद्रुमवल्लरी ।
मदसुरक्षणकर्मविचक्षणा विजयसे निरुपाधिकृपानिधिः ॥ १७ ॥

इति प्रसादपीयूषैः संसिच्य त्रिजटां सती ।
तूष्णीमास तथा भूयो विमोहीकृतमानसा ॥ १८ ॥

अथाश्रौषीन्महारावं रक्षोवानरसैन्ययोः ।
दोर्दण्डचण्डनिर्घातमन्योन्यं युद्धयमानयोः ॥ १९ ॥

तमाकर्ण्याब्रवीद्भूयस्त्रिजटामेव जानकी ।
क एष श्रूयते शब्दः कल्पान्तघनघर्घरः ॥ २० ॥

मथ्यमानस्य पाथोधेरिव तूर्णमुदित्वरः ।
अनेन त्रिजटे घोरसंरावेण बिभेम्यहम् ॥ २१ ॥

तामुवाचाथ त्रिजटा बिभ्यतीं जनकात्मजाम् ।
कपिराक्षससैन्यानामेष संयुध्यतां रवः ॥ २२ ॥
निर्दिष्टानि दशास्येन रक्षांसि कपिकुञ्जरैः ।
यूथशो मुष्टिनिर्घातैर्युध्यन्ते देवि सम्प्रति ॥ २३ ॥

सीतोवाच

प्रवृत्त एव त्रिजटे कलहः कपिरक्षसाम् ।
दशाननस्य दुर्बुद्ध्या बहुवीरक्षयंकरः ॥ २४ ॥

त्रिजटोवाच

नूनं प्रवृत्तः कलहः कपीनां निशाचराणां च महान् स एषः ।
अन्योन्यदोर्दण्डबलाभिमानाद् घ्नतामिहान्योन्यचमूभटौघान् ।। २५ ।।

सीतोवाच

एतद्युद्धमपूर्वकौतुककरं पत्या रघूणां मम
प्राणेशेन सहान्वितस्य बलिनो दुष्टस्य लङ्केशि तुः ।
त्वं ब्रूहि त्रिजटे ममान्तिकगता दिव्यां दृशं ते ददे
साक्षात्कृत्यतयोपवर्णय मम श्रोतुं स्पृहा वर्त्तते ।। २६ ।।

भर्तुर्यच्चरितं रणाङ्गणगतस्यामानुषं धन्विनः
सौमित्रेरपि यद्भवेद्धनुमतः पत्युः कपीनामपि ।
यन्नीलस्य नलस्य वालितनयस्यर्क्षेशितुश्चापि यत्
तत्सर्वं सह राक्षसै रणमुखे मह्यं सखि श्रावयः ।। २७ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे कपिरक्ष संग्रामोपक्रमो नामाष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।। २१८ ।

*

एकोनविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

इत्थं सीतासमापृष्टा राक्षसी त्रिजटाह्वया ।
साक्षात्कृत्याब्रवीत् सर्वं रामरावणसंयुगम् ।। १ ।।

त्रिजटोवाच

माघशुक्लतृतीयातो रक्षोराघवसैन्ययोः ।
वैशाखकृष्णभूतान्तमेतद्युद्धं भविष्यति ।। २ ।।

तत्तेऽहं कथयिष्यामि जानकि श्रूयतां त्वया ।
यद्यस्य यत्र चरितं तत्र तत्तस्य वर्ण्यते ।। ३ ।।

रामबाहुबलोत्सिक्ताः कपिवीरा महोद्भटाः ।
लङ्केशदोर्बलोत्सिक्तैर्युध्यते पश्य राक्षसैः ।। ४ ।।

अमी मदोद्धता वीराः कपयः प्रहरन्त्यमून् ।
शिलाभिर्भूरुहैश्चापि राक्षसान् प्रहृतान् पुरा ।। ५ ।।

वृष्टिः कपिकरोन्मुक्ता ग्रावरवृक्षमयी घना ।
पतत्यस्रपदेहेषु मेघवृष्टिरिवाद्रिषु ।। ६ ।।

छन्ना एव कपिव्राते राक्षसाग्रावभूरुहैः ।
दृष्ट्वा दृष्ट्वातिशोकार्ता राक्षस्योऽप्यरुदन्ति हि ॥ ७ ॥

अहो बलं कपीन्द्राणां येषां करचपेटया ।
पतन्ति राक्षसा युद्धे महापर्वतसम्मिताः ॥ ८ ॥

एकैको वानरो वीर एकैकं रजनीचरम् ।
अयोधयद्रणे घोरे कुर्वाणो भूरिविक्रमम् ॥ ९ ॥

सेनाधिपतयः सर्वे रामस्यातिबलोर्जिताः ।
कपियूथान् प्रेरयन्तो गर्जन्ति बहुशो रणे ॥ १० ॥

मुष्टीमुष्टियुताः केचिद् वृक्षावृक्षि परे युताः ।
शिलाशिलियुताश्चान्ये राक्षसैः सह वानराः ॥ ११ ॥

हस्ताहस्ति परे युक्ताः पादापादि तथा परे ।
दन्तादन्ति युताश्चान्ये नखानखि परे युताः ॥ १२ ॥

राक्षसैः सह युद्धयन्ते वानराः सुमहोद्धताः ।
गर्जन्तश्चैव धावन्तः कुर्वन्तो घोरविक्रमान् ॥ १३ ॥

आबद्धभ्रुकुटीतरङ्गविकटा विस्फारभीमानना
रक्ताक्षाः करपाददन्तनखरक्रूरप्रहारोद्धुराः ।
गर्जन्तः समराङ्गणे किलकिलाशब्दैर्भृशं दारुणै-
र्युध्यन्ते रजनीचरैः कपिभटा आबद्धकक्षोटकाः ॥ १४ ॥

पेतुर्भुवि कपीन्द्राणां प्रहारैरतिदारुणैः ।
वमन्तो रौधिरां धारां मुखेभ्यो रजनीचराः ॥ १५ ॥

मुष्टि प्रहारैः कठिनै रक्षसां घोरकर्मणाम् ।
पतन्ति कपयोऽप्याजौ युद्धयन्ते पुनरुत्थिताः ॥ १६ ॥

निपोथयन्ति रक्षांसि समरे कपिसैनिकान् ।
तद् दृष्ट्वा चापरे कोरा न क्षमन्ते कपीश्वराः ॥ १७ ॥

प्रेरितस्वस्वयूथाश्च युध्यन्ते कपियूथपाः ।
नानाविधैः प्रहरणैः शिलावृक्षनखादिभिः ॥ १८ ॥

राक्षसैर्युध्यमानानां कपीनां सम्प्रहारजः ।
सुमहानारवो युद्धं व्याप्नोति धरणीं नभः ॥ १९ ॥

मृगेन्द्राः किं नु गर्जन्ति गह्वरेषु महीभृताम् ।
प्रलयाम्भोधरघटा घोषयन्त्यथ वा दिशः ॥ २० ॥

देवदानवयुद्धोत्थः सुमहानारवः किमु ।
अन्योन्यं किं नु संघट्टो गिरीणां घर्घरायते ॥ २१ ॥

किं वा देवासुरैर्युक्तैर्मथ्यते जलधिः पुनः।
दीर्यंते वाथ धरणिर्नृसिंहो वापिगर्जति ॥ २२ ॥

इत्थमाशङ्कमानानां जगतां विस्मयोऽभवत्।
कपीन्द्रेषु च रक्षःसु प्रहरत्सु परस्परम् ॥ २३ ॥

रक्षसां विक्रमं दृष्ट्वा सुग्रीवः कपिसैन्यराट्।
शिलावृक्षप्रहारौघैर्युध्यते घोरविक्रमः ॥ २४ ॥

हनूमान् घनवद्गर्जन् रक्षोयूथेषु रोषणः।
पपात वज्रसम्पातचपेटापातभीषणः ॥ २५ ॥

प्रहरत्यद्रिभिस्तुङ्गैरद्रितुल्यान् निशाचरान्।
ते तत्प्रहारविध्वस्ता निपेतुः शतशो रणे ॥ २६ ॥

हनूमतः प्रहारेण विक्षताङ्गा निशाचराः।
क्षरन्तो रौधिरीर्धाराः सांध्यमेघा इवारुणाः ॥ २७ ॥

बभ्रमुः समरे भूयः सृजन्तो घोरमारवम्।
केचिन्मूर्छायिताः पेतुर्धरण्यां पर्वतोपमाः ॥ २८ ॥

राक्षसाः केऽपिनिहता नलेन बलशालिना।
छादयन्तो महीपृष्ठं निपेतुर्निद्रिता इव ॥ २९ ॥

नीलदोर्वेगचलितशिलावृक्षप्रहारजैः।
आघातैः पतिताः केचिदपुनर्जागरा रणे ॥ ३० ॥

करप्रहारैर्बलिनो वालिपुत्रस्य राक्षसाः।
वमन्तो रुधिरं युद्धे निपेतुर्धरणीतले ॥ ३१ ॥

प्रहारैरुन्मुखकपे राक्षसाः पर्वतोपमाः।
शिश्यिरे धरणीपृष्ठमालिङ्ग्य गतजीविताः। ३२ ॥

द्विविदस्य कपीशस्य पाणिपादनिपोथनैः।
संत्यक्तजीविताः केचित्स्वपन्ति धरणीतले ॥ ३३ ॥

ऋक्षेशोबलवांस्तत्र वृद्धो युद्धविशारदः।
राक्षसान् सुबहून् युद्धे पातयामास विक्रमी ॥ ३४ ॥

स्वयूथ्यान् बलिनः शूरान् प्रेरयन्नृक्षपुङ्गवान्।
समरे शुशुभेचासौ कालमेघ इवोन्नतः ॥ ३५ ॥

पाणिपादप्रहारैश्च जाम्बवान् सम्मुखागतान्।
अपुनर्योधिनश्चक्रे बलिनो रजनीचरान् ॥ ३६ ॥

एवं सप्तदिनान्यासीद्रक्षोवानरसैन्ययोः।
अतीव संकुलं युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम् ॥ ३७ ॥

तस्मिन् रणेऽतितुमुले त्रिजगद्विस्मयावहे ।
रक्षोभिर्वानरैश्चैव भूमिरातस्तरेतराम् ।। ३८ ।।

संत्यक्त मृत्युभव भूरिभियो गृहीतस्वामिव्रताः कपिभटा युधि गर्जमाना ।
चक्रुर्निशाचरचमूकदनं समंतात्ते पाणिपादनखदन्तभवैः प्रहारैः ।। ३९ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे रक्षोवानरसैन्य-संग्रामो नामैकोनविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।। २१९ ।।

*

विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

वर्णितं त्रिजटयैतदाहवं राक्षसौघकपिसंघयोर्मिथः ।
संनिशम्य जनकात्मजा मुहुस्तामथो वचनमेतदब्रवीत् ।। १ ।।

सीतोवाच

अस्मिन् घोरतमे युद्धे वीरेन्द्रः प्राणवल्लभः ।
चकार सानुजो यत्तन्मह्यं समुपवर्णय ।। २ ।।

त्रिजटोवाच

वीक्ष्य विक्रमतो युद्धे कपिवीरान् महोत्कटान् ।
आस्फाल्य धनुषी तत्र वीरेन्द्रावभितस्थतुः ।। ३ ।।

पश्य रामधनुर्मुक्तैर्वाणैः सान्द्रनिपातिभिः ।
भिद्यन्ते रक्षसां यूथाः शलभा इव कण्टकैः ।। ४ ।।

एकैको विशिखस्तस्य शतशः शतशो रणे ।
निर्भिद्यराक्षसानीकं निपातयति भूतले ।। ५ ।।

रामवाणबलोद्रिक्ताः कपयो रजनीचरैः ।
युध्यन्ते समरे धीरं भक्ष्येरन्नन्यथा न किम् ।। ६ ।।

भ्रातरौ रघुकुलाद्रि भास्करौ प्रावृषेण्यघनसुन्दराबुभौ ।
आत्तघोरतरकार्मुकौ रणे राक्षसान् क्षपयत शरोत्करैः ।। ७ ।।

प्रेषिता दशवक्त्रेण येऽसंख्याता निशाचराः ।
ते रामवाणनिर्दग्धाः शेरते धरणीतले ।। ८ ।।

रघुवीरवरेण्याभ्यां विशिखानलकीलया ।
रक्षसां कदनं चक्ते तदालोक्य दशाननः ।। ९ ।।

चुक्रुधे तनयं स्वं च मेघनादं समादिशत् ।
पश्येन्द्रजिदनेनाद्य हन्यन्ते मम राक्षसाः ॥ १० ॥

भवता क्षम्यते किं नु मर्त्यः सोऽप्येष तापसः ।
गच्छाशु धनुरादाय विक्रमं स्वं प्रदर्शय ॥ ११ ॥

त्वयि जाग्रति रे पुत्र वरिष्ठेऽखिलधन्विनाम् ।
किमेष कुरुते मर्त्यो वैयात्यं नामदुर्नयम् ॥ १२ ॥

तदेनं जहि युद्धेऽस्मिन् सुघोरैर्निजमार्गणैः ।
यैस्त्वया समरे पुत्र वासवोऽपि विनिर्जिताः ॥ १३ ॥

जानामि नितरां पुत्र भवांल्लज्जायते न किम् ।
अस्मिन् वानरसंदोहबहुले संयुगेऽधमे ॥ १४ ॥

तथाप्ययं मर्त्यमात्रो लघीयान् रिपुरूर्जितः ।
मूढो मामपि लोकेऽस्मिन्नजानन्नतिवर्त्तते ॥ १५ ॥

अतस्त्वमेनं दर्पान्धं कपिराजबलोर्जितम् ।
निजदोर्दण्डवीर्येण जहि शक्रबलार्दन ॥ १६ ॥

अल्पवीर्यानिमान् कीशान् दर्पात्प्रोच्छलतो लघून् ।
महता शरजालेन रुन्धि भोः शफरानिव ॥ १७ ॥

यावन्न तापसावेतौ रक्षसां कदनोद्यतौ ।
भवता न निवार्येते तावच्छाम्यन्ति नो इमे ॥ १८ ॥

कपयो बद्धकक्षोटामल्ला इव मदोद्धताः ।
निशाचरैर्युध्यमाना दुर्विनीताः सहस्रशः ॥ १९ ॥

इति पितुर्वचनेन स नोदितस्त्रिदशराज जयोर्जितमानसः ।
सपदि पाणिगृहीत धनुर्धरः कटिनिबद्धनिषंगयुगोययौ ॥ २० ॥

तमनुप्रययुः क्रुद्धा नानाशास्त्रास्त्रपाणयः ।
राक्षसाः कलिताटोपा गर्जमानाः सहस्रशः ॥ २१ ॥

योद्धुं युधि क्षपितराक्षसयूथपेन रामेण निर्गतवतीन्द्रजिति प्रसह्य ।
रात्रिचरा मदविघूर्णितलोहिताक्षाः सर्वे जितं जितमिति प्रसभं जगर्जुः ॥ २२ ॥

अथ राक्षसयूथेषु पणवानकगोमुखाः ।
भेरीदुन्दुभिढकाद्या अवाद्यन्त समंततः ॥ २३ ॥

तूर्यत्रिकभवो घोषः कल्पान्तघनघर्घरः ।
व्यानशे रक्षसां सैन्ये धरणीगगनान्तरम् ॥ २४ ॥

पुरोगास्तस्य बलिनो राक्षसाः सुमहोद्धताः ।
शस्त्राण्यस्त्राणि चात्यन्तं वर्षन्तः सुसमाययुः ॥ २५ ॥

गदाभिमुशलैः शूलैः शक्तिभिश्चपरश्वधैः ।
भुशुण्डीभिश्च परिघैर्मुद्‌गरैरसिपट्टिशैः ॥ २६ ॥

समंताच्छादयामासुर्विक्रमाढ्या निशाचराः ।
तान्यस्त्राणि च शस्त्राणि राक्षसानां प्रगर्जताम् ॥ २७ ॥

समंतात्पतमानानि वीक्ष्य वानरसैनिकाः ।
तत्रसुर्हृदयैराशु तुमुले रणदुर्दिने ॥ २८ ॥

लीलयैव तु चिच्छेद रामो निजशरोत्करैः ।
ततः क्रुद्धाः खड्‌गहस्ता निपेतुः कौणपव्रजाः ॥ २९ ॥

स तानायततो वीक्ष्य खड्‌गहस्तान् निशाचरान् ।
चिच्छेद रामो विशिखैर्वज्रसम्पातदारुणैः ॥ ३० ॥

शायिताः कोटिशस्तेन प्रोत्पतन्ती निशाचराः ।
रामेणैकैकवाणेन छित्त्वा छित्त्वा रणाङ्‌गणे ॥ ३१ ॥

अथ चुक्रोध बलवान् मेघनादो धनुर्धरः ।
रामबाहुबलेनोच्चैर्वीक्ष्य विक्रमतः कपीन् ॥ ३२ ॥

रणाङ्‌गणगतो वीरो मेघगम्भीरगर्जनः ।
अधिज्यं धनुरादाय लक्ष्य दृक् संहिताशुगः ॥ ३३ ॥

इदमूचे महादर्पः क्रोधेन प्रज्वलन्निव ।
शृण्वत्सु वीरयूथेषु मध्यस्थः सेनयोर्द्वयोः ॥ ३४ ॥

रे रे नितान्तचपलाः कपयो लघुविग्रहाः ।
सुखं विक्रमता वध्या यूयं ननु मया रणे ॥ ३५ ॥

क्षुद्रास्त्यजत संत्रासं सुखं प्रोच्छलतोच्चकैः ।
न मच्छरेभ्यस्तीक्ष्णेभ्यो युष्माकं भयमण्वपि ॥ ३६ ॥

अमीषां कपिदेहेषु पततां महती त्रपा ।
येषां प्रमत्तशक्रेभकुम्भनिर्दारणं लघु ॥ ३७ ॥

ससुरासुरमर्त्येषु जगत्सु ननु रेऽल्पकाः ।
को मद्बाणप्रहरणं सोढुं शक्तो भवेत्पुमान् ॥ ३८ ॥

अमीभिर्वज्रसम्पातभीषणैर्मम मार्गणैः ।
विबुधाधिपतेर्वीर्यं मया प्रमथितं रणे ॥ ३९ ॥

अलं तवापि सौमित्रे भिया मम शरोत्करैः ।
भवानापि न मद्बाहुदण्डविक्रमभाजनम् ॥ ४० ॥

अत्यर्थमभ्युपेतोऽस्मि योद्धुं रामेण तन्वहम् ।
भ्रूभङ्गलीलया येन निबद्धः पयसां निधिः ॥ ४१ ॥

अथवा किं निबद्धेन सिन्धुना जलरूपिणा ।
तीक्ष्णाः खलु ममोद्दण्डदोर्दण्डविशिखानलाः ॥ ४२ ॥

इत्युक्त्वा युधि कर्णान्तकुण्डलीकृतकार्मुकः ।
राघवेन्द्रमभिक्रुद्धो मुमोच विशिखान् दश ॥ ४३ ॥

तानापतत एवाशु रामो निजमहेषुणा ।
चकर्त्त ते च नभसि द्विधाभूता परराययुः ॥ ४४ ॥

ततस्तयोस्तिग्मतरप्रहारिणोः परस्परं [1]घोरतरैरणाजिरे ।
महेन्द्रजिद्राघवयोः शरोत्करैर्बभूवयुद्धं तुमुलं जयैषिणोः ॥ ४५ ॥

रामस्य विशिखान् यावन्मेघनादो निकृन्तति ।
तावत्सौमित्रिराकर्णाकृष्टात्यायतकार्मुकः ॥ ४६ ॥

अताडययमुं घोरैर्मार्गणैस्तनुमर्मसु ।
ततोऽसौ चुक्रुधे वीरो लक्ष्मणायात्तधन्वने ॥ ४७ ॥

द्वाभ्यां द्वाभ्यां शराभ्यां तौ ताडयामास मर्मणि ।
रामस्तावपि चिच्छेद लक्ष्मणश्चैतदन्तरे ॥ ४८ ॥

अताडयत्तं विशिखैः सुघोरैर्मर्मपातिभिः ।
ततः स आह संक्रुद्धो युद्धि क्रूरतरं वचः ॥ ४९ ॥

हे राम हे लक्ष्मणो नैवमेतद्युक्तं रेणऽस्मिन् युवयोर्नयोद्रितम् ।
यदेक एवाहमिषुप्रयोगैर्युध्यामि चान्योन्यबलाश्रयौ युवाम् ॥ ५० ॥

नैतद्वीरस्य संश्लाघ्यं युवाभ्यां क्रियते रणम् ।
इति श्रुत्वा रघुश्रेष्ठः सौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥ ५१ ॥

अन्यतो युध्यतां वीर भवानहमिहामुना ।
एक एव करिष्यामि युद्धं वीरवरोचितम् ॥ ५२ ॥

ततश्च लक्ष्मणो वीर आज्ञप्तः स्वामिना तथा ।
अन्यानेव प्रचिच्छेद शरैः कौणपयूथपान् ॥ ५३ ॥

आर्यस्य पार्श्वगः क्रूरान् बलादापततोऽस्त्रपान् ।
चिच्छेदैकैकबाणेन शतशः शतशो रणे ॥ ५४ ॥

सम्पूर्णं नवमीदिनं समभवद् युद्धं महासंकुलं
वीरेणेन्द्रजिता रघुप्रवरयोस्तत्पृष्ठगैश्चास्त्रपैः ।
तत्राधिज्यधनुर्धरेण बलिना सौमित्रिणा कोटिशो
बाणैरेव हता निशाचरवराः क्षोणीतले शिश्यिरे ॥ ५५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे रामलक्ष्मणेन्द्रजित्संग्रामो नाम विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२० ॥

---

१. घोरतरं प्रगर्जतोः—मथु० ।

एकविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथास्तमगमद् भानुस्तयोः समिति राक्षसैः ।
युध्यतोर्वर्षतोर्बाणान् रामलक्ष्मणवीरयोः ॥ १ ॥

ततो रात्रिरमूच्छुक्लनवमी चन्द्ररश्मिभिः ।
प्रकाशमाना तौ तस्यां युयुधाते निशाचरैः ॥ २ ॥

भ्रातरौ सज्यधनुषौ भूरिसंरम्भभीषणौ ।
प्रहरन्तौ [1]शरैस्तीक्ष्णैः पातयन्तौ च राक्षसान् ॥ ३ ॥

रामस्य धनुरुन्मुक्तैः सायकैरतिदारुणैः ।
इन्द्रजिच्छिन्नभिन्नाङ्गो विरराम न संयुगात् ॥ ४ ॥

सौमित्रिणा शरव्रातैः पतितान् युधि कोटिशः ।
संवीक्ष्य राक्षसान् भूमौ मेघनादश्चुकोप ह ॥ ५ ॥

क्षरद्रुधिरदिग्धाङ्गैराक्रोशद्भिः समंततः ।
उत्पतद्भिः पतद्भिश्च भ्रमद्भिः क्षतवेदनैः ॥ ६ ॥

जवनिर्यत्सरिद्वारिनादिप्रवहदस्रकैः ।
भूरेणुभूरिदिग्धाङ्गैः कण्ठोद्यच्छ्वासनिःस्वनैः ॥ ७ ॥

एकबाह्वक्षिचरणैर्द्विधाभूतैः क्षतार्दितैः ।
अधोनिपतितैः कैश्चिदुद्बाहुभिरुदङ्घ्रिभिः ॥ ८ ॥

आघूर्णमानतनुभिर्विपर्यस्तैश्च कैश्चन ।
उड्डीनपाददोःशीर्षैर्मध्यमात्रावशेषितैः ॥ ९ ॥

विदीर्णमस्तकैः कैश्चिद्विदीर्णहृदयैरपि ।
विदीर्णोदरकोष्ठैश्च निर्गतान्त्रकदम्बकैः ॥ १० ॥

कैश्चिद्द्विधाभूतभालैः शरप्रोतैश्च कैश्चन ।
कैश्चिद्ध्वस्त कपालैश्च रणतल्पावलम्बिभिः ॥ ११ ॥

भांकारराविकण्ठैश्च कैश्चिदस्वस्थशायिभिः ।
शिवागणोत्कृत्तमांसैर्विचेष्ट[2]द्भिरितस्ततः ॥ १२ ॥

विकीर्णचिकुरैः कैश्चिद् घूर्णमानविलोचनैः ।
आतस्तरे मही कृत्स्ना सौमित्रिशरताडितैः ॥ १३ ॥

दशकन्धरपुत्रस्य पुरोगैः पार्ष्णिगैरपि ।
रक्षोभिः समरोत्साहसमायातैः सहस्रशः ॥ १४ ॥

---

१. घोरैः—मथु० । २. स्तरद्भिः शोणिताम्भसि—मथु० ।

चन्द्रज्योत्स्नावलक्षायां निशि प्रेतनिशाचरान् ।
विचिन्वन्तः पिवन्तश्च शोणितं पिशिताशनाः ॥ १५ ॥

जत्कुर्वन्तश्च संतृप्ताः शोणितार्द्रैः शिरोगणैः ।
गुंफन्तोऽत्रगुणोतैर्मुण्डमालाः सहस्रशः ॥ १६ ॥

चण्डीरुद्रगणास्तत्र विचेरुर्घोरनिःस्वनाः ।
रामलक्ष्मणयोः श्रेय आशिषाना समंततः ॥ १७ ॥

चर्वयन्त्यो मृदून्यस्थीन्यश्नन्त्यः पिशितानि च ।
पिबन्त्यो रौधिरीर्धाराः कण्ठेभ्यो रात्रिचारिणाम् ॥ १८ ॥

सद्यः सौमित्रिविशिखैर्निकृत्तेभ्यः कवोष्णिकाः ।
उद्गारयन्त्योऽसृक् शेषं विचेरुः शतशः शिवाः ॥ १९ ॥

एवं घोरे रणे वृत्ते राक्षसौघक्षयंकरे ।
कपिसैन्योत्साहकरे रामलक्ष्मणदोर्बलात् ॥ २० ॥

क्रोधाक्तरक्तनयनः शक्रजिन्निशि विक्रमन् ।
हृतदर्पोययौ लङ्कां मोहितो रामविक्रमैः ॥ २१ ॥

[1]पुनरागत्य दुर्वृत्तः समरे क्रोधमूर्छितः ।
चकार सुमहत्कर्म वीरविस्मयकारकम्[1] ॥ २२ ॥

नागपाशैर्बबन्धाजौ सुदृढं मन्त्रवित्तमः ।
कपीन्द्रांश्चापि सुग्रीवनलनीलाङ्गदादिकान् ॥ २३ ॥

तस्यमन्त्रप्रभावेण महामायाविनो रणे ।
बद्धौ तौ भ्रातरौ घोरैर्नागपाशैः समन्ततः ॥ २४ ॥

बद्धानि कपि सैन्यानि युद्ध्यमानानि राक्षसैः ।
बभूवुस्तत्क्षणादेव निश्चेष्टानि महानिशि ॥ २५ ॥

सुप्तप्रायं तु तत्सैन्यं रामस्य परितोऽखिलम् ।
विलोक्य राक्षसाः सर्वे हृदा मुमुदिरेतराम् ॥ २६ ॥

तैस्तैर्महाविषज्वाला विषमैर्घोरफूत्कृतैः ।
फणिभिः कालमेघाभैरुत्फणैरतिभीषणैः ॥ २७ ॥

विषाग्निविष्फुलिङ्गौघान् मुञ्चद्भिर्लोचनाध्वना ।
प्रचण्डपवनाटोपं सृजद्भिः सुमहाजवैः ॥ २८ ॥

बल्लिभिः कालसूत्राभैः क्रूरदंष्ट्राङ्कुरोद्भटैः ।
ललत्सुघोररसनैर्वमद्भिर्गरलोत्करान् ॥ २९ ॥

सहस्रधा च शतधा वेष्टितैर्भीमचेष्टितैः ।
कालाञ्जनचयप्रख्यैः शिरोमणिविभूषणैः ॥ ३० ॥

१-१ नास्ति-बड़ो० ।

तस्यमन्त्रबलाहूतैर्मेघनादस्य मायिनः ।
नागैर्नानाविधैः स्थूलैः फणामण्डलराजिभिः ॥ ३१ ॥

नागपाशवताबद्धा राम लक्ष्मणसैनिकाः ।
निपेतुर्धरणीपृष्ठे निश्चेष्टा मूर्च्छिता इव ॥ ३२ ॥
स्वयं च सुमहावीरौ युद्धन्तावेव तत्क्षणात् ।
नागपाशैः समाबद्धौ पेततुर्धरणीतले ॥ ३३ ॥
अथेन्द्रजिन्मुदायुक्तो वीक्ष्य तादृग्विषधांश्चतान् ।
उवाचोद्धतया वाचा राक्षसान् पार्श्ववर्तिनः ॥३४॥
अहो रे राक्षसास्त्रस्तानेतान् परिपश्यत ।
हस्तग्राह्यशिरोवेष्टान् निश्चेष्टान् पतितान् रणे ॥ ३५ ॥

पश्यतामु रघुपतिं रामं भुवि सहानुजम् ।
पतितं नागपाशौघैर्निबद्धं दृढबन्धनैः ॥ ३६ ॥
अशक्तं चेष्टितुमपि हस्तात्स्खलितकार्मुकम् ।
बहवो मे हता आभ्यां राक्षसा समराङ्गणे ॥ ३७ ॥
इदानीं क्वानयोर्वीर्यं दोर्बलं क्व च विक्रमः ।
मर्त्यो भूत्वा मया साकं स्पद्र्धमान इमां दशाम् ॥ ३८ ॥
प्राप्तोऽसौ पश्यतरणे पतितं गतचेष्टितम् ।
अमी कपिभटाः सर्वे पतिता धरणीतले ॥ ३९ ॥
मूर्छिता इव निश्चेष्टा नागपाशैर्दृढं सिताः ।
विक्रमं पश्यतामीषामिदानीं दोर्बलं च तत् ॥ ४० ॥
मया सह धृतस्पद्र्धाः प्राप्नुवन्तीदृशीं दशाम् ।
किमत्रचित्रं त्रैलोक्ये एकवीरोऽस्म्यहं यतः ॥ ४१ ॥

को मे प्रतिभटो लोके कृत्स्नेऽस्मिन् सचराचरे ।
अवस्थां पश्यतामीषां पतितानां रणाङ्गणे ॥ ४२ ॥

एवं वदति सोत्साहं मेघनादे मुदान्विते ।
उदस्थाज्जयनिर्घोषो निशाचरचमूगतः ॥ ४३ ॥

भेरीदुन्दुभिनिःसानपटहानकगोमुखैः ।
शङ्खतूर्यमृदंगाद्यैर्निशाचरकराहतै ॥ ४४ ॥

समभूद्भूरिनिर्घोषो जयवादित्रसम्भवः ।
जितं जितमिति स्वैरं राक्षसाः समवादिषुः ॥ ४५ ॥

ततो जयोत्साहविवृद्धमानसः समुत्क्षिपन् बाहुयुगं मदेन सः ।
सुरेन्द्रजिद्रात्रिचरैः [1]सुहर्षितैर्विवेश लङ्काधिपतेर्निकेतनम् ॥ ४६ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे नागपाशबन्धनो नामैकविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२१ ॥

---

१. रभिष्टुतो—मथु० ।

द्वाविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ सस्मार भगवान् नरलीलाकुतूहली ।
नागान्तकरणं तार्क्ष्यं बलिनं निजवाहनम् ।। १ ।।

तस्मिन्नेवान्तरे धाता नागारिमिदमादिशत् ।
गच्छे नागान्तकेदानीं तूर्णं मद्वचसेरितः ।। २ ।।

रामरावणयोर्युद्धं यत्र रामो रघूद्वहः ।
नागपाशैः समाबद्धो मेघनादेन संयुगे ।। ३ ।।

सानुजो धरणौ शेते नरलीलाकुतूहली ।
कपिसैन्यं च निखिलं निश्चेष्टं मूर्छितोपमम् ।। ४ ।।

नागपाशैर्दृढं बद्धं शेतेऽद्य धरणीतले ।
तद्वीक्ष्य राक्षसाः सर्वे गर्जन्ति मुदिताशयाः ।। ५ ।।

कत्थ ते विक्रमं स्वस्य शक्रजित्सुरतापनः ।
हाहाभूतं च भुवनं रामस्यालोक्य तां दशाम् ।। ६ ।।

जयाशा सकलैस्त्यक्ता ये के च सुरपक्षगाः ।
व्यामोह इव संजातः सर्वेषां त्रिदिवौकसाम् ।। ७ ।।

रामे रघुकुलाधीशे श्रुतिगोद्विजरक्षके ।
मूर्छिते पतिते भूमौ नागपाशौघवेष्टिते ।। ८ ।।

जयाशा यत्र देवानां दशास्यापहृतश्रियाम् ।
एकबाणजितानेकसहस्रबलराक्षसे ।। ९ ।।

स चेत्तादृग् दशां प्राप्तः कोऽन्यो जेष्यति रावणम् ।
त्रैलोक्यकण्टकं दुष्टं श्रुतिगोद्विजतापिनम् ।। १० ।।

अस्वस्थमिव मन्येऽद्य त्रैलोक्यमतिखिद्यते ।
भवानपि प्रभुं तादृग्दर्शनैव सहिष्यति ।। ११ ।।

अतः प्रयाहि त्वरितं यत्र रामो जगत्पतिः ।
तत्क्षणाद् दृष्टिमात्रेण नागपाशान्निवारय ।। १२ ।।

तव पक्षोद्भवं वातमाकर्ण्य भुजगाः किल ।
तत्क्षणात्तूर्णमुड्डीय गमिष्यन्ति न संशयः ।। १३ ।।

इति स ब्रह्मणोवाक्यमाकर्ण्य पतगाधिपः ।
आययौ त्वरितं तत्र यत्र रामो रणाङ्गणे ।। १४ ।।

आयातमात्रे गरुडे नागान्तकरणोद्धते ।
चण्डपक्षयुगोद्भूतमरुदावर्त्तभीषणे ॥ १५ ॥

तत्क्षणाद् दुःसहा नागाः पाशवत्परिवेष्ठिताः ।
प्रोड्डीय प्रसभं जग्मुरुत्तस्थौ च रघूद्वहः ॥ १६ ॥

सानुजः सहसैन्यश्च धूतनिद्र इवोत्स्थितः ।
ततः किलकिलाशब्दं कृत्वा कपिमहाभटाः ॥ १७ ॥

उत्तस्थुः शत्रुसैन्यानां वितन्वन्तो महाभयम् ।
रामस्तार्क्ष्यं पुरो वीक्ष्य भक्तिप्रह्वशिरोधरम् ॥ १८ ॥

प्रसादपरमो देवो दृष्ट्या समनुतोषयन् ।
इदमाह स विश्वात्मा विनिबद्धाञ्जलीपुटम् ॥ १९ ॥

साधु भोः पतगोत्तंस स्वस्त्यस्तु तव संततम् ।
मुक्ताःस्म नागपाशेभ्यस्त्वदागमनमात्रतः ॥ २० ॥

कृतं च वीर भवता देवकार्यमिदं महत् ।
कृतं साधुतमं ह्यद्य स्मृतमात्रो यदागतः ॥ २१ ॥

इति लब्धप्रसादोऽसौ तमाह जगदीश्वरम् ।
जानामि त्वां जगन्नाथ साक्षात्पुरुषमव्ययम् ॥
नारायणं रमाकान्तं भूभारहृतिहेतवे ॥ २२ ॥

अवतीर्णं रघोर्वंशे नरलीलानुकारिणम् ।
या याः करोषि भगवन् लीला इह मनोहराः ॥ २३ ॥

तासां तत्त्वं प्रविज्ञातुं कः शक्नोति पुमान् भुवि ।
स्वस्वरूपं स्वलीलाश्च वेत्तुमेको भवान् प्रभो ॥ २४ ॥

आद्याचित्प्रकृतिर्यास्ति स्वरूपानन्दविग्रहा ।
सैव ते जानकी सीता माया त्रैलोक्यकारिणी ॥ २५ ॥

तया त्वं भगवन्नित्यं स्वप्नेऽपि न वियुज्यसे ।
लीलामात्रं तु भवतो भूभारहरणाय तत् ॥ २६ ॥

जहि त्वरितमेवामुं दुष्टं त्रैलोक्यकण्टकम् ।
श्रुतिगोद्विजधर्मघ्ननिधानं दशकन्धरम् ॥ २७ ॥

उपसंहर विश्वेश राक्षसान् प्रबलानिमान् ।
भूभारभूतान् दुःसत्त्वान् धनुर्मुक्तैर्महेषुभिः ॥ २८ ॥

हर वीरेन्द्र साधूनां भक्तानां च महद्भयम् ।
स्वीयां प्रकृतिमास्थाय रमस्व करुणानिधे ॥ २९ ॥

रक्ष धर्मपथं वीर यत्र देवाः प्रतिष्ठिताः ।
अविलम्बितमेवैतत्समापय महद्रणम् ॥ ३० ॥

उच्चैरभिष्टूय स इत्थमेनं मुहुः प्रणम्य प्रणतां सयुग्मः ।
बद्धाञ्जलिस्तेन पुनर्विसृष्टो जगामधामस्वमथो खगेन्द्रः ।। ३१ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे मेघनादपराजयो नाम द्वाविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।। २२२ ।।

*

त्रयोविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

हृतदर्पो मेघनादो जगाम दशमीदिने ।
वासस्थानमगद्रामो मुदितो वानरैः सह ।। १ ।।

कुर्वन् किलकिलारावं शत्रूणां हृद्विभेदनम् ।
आस्फोटयंश्च दोर्दण्डान् सोत्साहमुखपङ्कजः ।। २ ।।

अग्रतः कपिसैन्यस्य हनुमान् सुमहाबलः ।
सुग्रीवश्च नलो नीलस्तथा वालिसुतो बली ।। ३ ।।

आजग्मुः कपयः सर्वे स्वस्वावासस्थलीं प्रति ।
निर्मुक्तकवचो राम उपसंहृतकार्मुकः ।। ४ ।।

स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा देवर्षिपितृतर्पणम् ।
विधाय श्रद्धया युक्तो धर्मसीमाभिरक्षकः ।। ५ ।।

ददौ दानानि विप्रेभ्यो गोभूमिकनकादिकम् ।
इत्थं युद्धावहारोऽभूदेकादश्यां द्वयोरपि ।। ६ ।।

सर्वे हरेर्व्रतं चक्रुर्वैष्णवाः कपिसैनिकाः ।
जाम्बवांश्चापि धर्मात्मा भक्तिमांश्च विभीषणः ।। ७ ।।

सीतारामचन्द्रौदेवौ सम्पूज्य सुसमाहिताः ।
तुलसीं चापि सम्पूज्य तत्पत्रैश्च सीतापतिम् ।। ८ ।।

शङ्खघण्टादिनिर्घोषैरारात्रिकपुरःसरम् ।
कथयन्तो रामकथां जन्मकर्मादि निर्मलम् ।। ९ ।।

रात्रौ जागरणं चक्रुः समवेताः परस्परम् ।
तदोपसृत्य सुग्रीवो रामं त्रिभुवनेश्वरम् ।। १० ।।

इदमूचे विनीतात्मा कपीनां शृण्वतां सुधीः ।
रघुदेव सुराराध्यचरणद्वन्द्वपादुक ।। ११ ।।

अमीषां स्वस्वसैन्येषु पृथगाज्ञारवं जनाः ।
घोषयन्ति जयादौ वा शपथे वा नयादिषु ॥ १२ ॥

नैतद्युक्तं जगन्नाथ भवानेकोयदीश्वरः ।
सर्वेषामपि सैन्यानां तदेते सर्वदा जनाः ॥ १३ ॥

तवाज्ञां घोषयन्त्वद्धा दण्ड्या इतरथा यदि ।
श्रृण्वन्त्वेतेऽखिलानाथ यूथपालाः समंततः ॥ १४ ॥

वदन्त्वेते जनान् स्वान् स्वान् हितमेतदृतः परम् ।
सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा न्याय्यमेतन्मनोरमम् ॥ १५ ॥

सर्वेऽपिकपिसामन्ताः साधु साध्वित्यपूजयन् ।
अनुमत्य तथोवाच राक्षसेन्द्रो विभीषणः ॥ १६ ॥

साधूक्तं कपिशार्दूल सर्वेषां नो हितावहम् ।
कस्याज्ञा घोष्यतां सैन्ये रघुनाथं प्रभुं विना ॥ १७ ॥

सर्वे पृथक् पृथगिह सामन्ताः सन्ति कोटिशः ।
तेषामेकः प्रभुरसौ रामो यो जगतः प्रभुः ॥ १८ ॥

मह्यं लङ्कामुना दत्ता वदान्य गणमौलिना ।
किमहं घोषयिष्यामि स्वाज्ञां तत्र विमूढधीः ॥ १९ ॥

मत्प्रभोरेव रामस्य नित्यमाज्ञा भविष्यति ।
जगत्त्रयेऽपि यस्याज्ञा तस्याज्ञात्रापि मे शुभा ॥ २० ॥

इत्युक्त्वा राक्षसेन्द्रे तु तूष्णीं भूते कपीश्वरः ।
सुग्रीवः परिपप्रच्छ कौतुकान् संशयं त्विमम् ॥ २१ ॥

राम राम महाबाहो वदान्यानां सुरद्रुम ।
निजपाणितलच्छाया रक्षिताशेषविष्टपः ॥ २२ ॥

विभीषणाय वीरेन्द्र लङ्का दत्ता त्वया ध्रुवम् ।
न तत्र मम संदेहो यद्भवान् सर्वशक्तिभृत् ॥ २३ ॥

एकस्तु मम सन्देहस्तं भवान् छेत्तुमर्हति ।
यदि जातु विनीतात्मा लङ्केशो दशकन्धरः ॥ २४ ॥

यायात्ते शरणं देव शरणागतरक्षिणः ।
तत् किमस्मै भवान् दद्यादस्य मे कथयोत्तरम् ॥ २५ ॥

इत्युक्तः कपिराजेन रघुदेव उवाच तम् ।
अविचार्यैव सपदि स्मितद्योतितदिङ्मुखः ॥ २६ ॥

यदि मां शरणं यायात्सुग्रीव दशकन्धरः ।
अस्ति मे तर्हि साकेतपुरी याप्रतिमा भुवि ॥ २७ ॥

तामहं सहसा दद्यां तस्मै शरणमीयुषे ।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य वदान्यानां शिरोमणेः ॥ २८ ॥

सर्वेऽपि विस्मिताः सन्तो धन्यं धन्यमुदब्रुवन् ।
इत्थं तेस्तैर्वाग्विनोदैस्तद्दिनं तैः समापितम् ॥ २९ ॥

अपरेद्युः समुत्थाय सर्वे कृत्वा यथोचितम् ।
आजग्मुः समरोद्युक्ताः सुघोरां रणभूमिकाम् ॥ ३० ॥

पटहान् गोमुखांश्चैव वादयन्तो रणोन्मुखाः ।
युक्ताः सर्वे कपिभटा राक्षसैः सह संयुगे ॥ ३१ ॥

सानुजो राघवेन्द्रः स्वमास्फाल्य कठिनं धनुः ।
बाणैर्वह्निशिखाकारै रक्षो वलमदाह्वयत् ॥ ३२ ॥

पुरस्तात्कपिसैन्यस्य हनुमान् रक्तलोचनः ।
सिंहनादं विधायोच्चैर्युक्तवान् युधि राक्षसैः ॥ ३३ ॥

तस्य नादेन वित्रस्ताः केचिद्राक्षससैनिकाः ।
पलायाञ्चक्रिरेतूर्णं संत्यज्य समराङ्गणम् ॥ ३४ ॥

केचिच्च रक्षसां मुख्या वीर्यवन्तो दुरासदाः ।
आययुः सम्मुखे तस्य कपिवीरस्य गर्जतः ॥ ३५ ॥

गदापाणय आकृष्ट धनुर्ज्यामुक्तमार्गणाः ।
आकृष्टखड्गाः परशुहस्ताः शूलकराः परे ॥ ३६ ॥

नानाविधप्रहरणा नानाविक्रमशालिनः ।
लङ्केशस्याज्ञया वीराः प्राणान् हुत्वा युधि स्थिताः ॥ ३७ ॥

दर्शयन्तो विक्रमं स्वं परस्परमसूयया ।
निपेतुः कपिसैन्येषु वायुपुत्रो रुरोध तान् ॥ ३८ ॥

वेलेव यवनोदीर्णान् जलधेः पयसां भरान् ।
समेत्य तेऽतिबलिनो मारुतिं समवेष्टयन् ॥ ३९ ॥

स तान् पादप्रहारेण पाणिक्षेपैर्विपोथनैः ।
प्रसह्याक्रमणैश्चैव ममर्द रजनीचरान् ॥ ४० ॥

तेषां मुख्यः कोऽपि धूम्राक्षनामा घोराकारो राक्षसः क्रूरकर्मा ।
आकृष्टासिर्वेगवान् धावमानो युद्धायागाद्धनुमन्तं बलाढ्यः ॥ ४१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे धूम्राक्षागमनो नाम त्रयोविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२३ ॥

*

चतुर्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

आजुहाव हनूमन्तं युद्धे धूम्राक्षराक्षसः ।
अरे रे कपिपोत त्वं मदेनोदीर्णमानसः ॥ १ ॥

उत्प्लुत्योत्प्लुत्य समरे कदर्थयसि राक्षसान् ।
न मे प्रतिबलो योद्धुं लघीयान् विक्रमोद्यतः ॥ २ ॥

तथापि स्वामिना तेन लङ्केशेन महौजसा ।
योद्धुं नियुक्तो लघुभिर्भवद्भिः कपिसैनिकैः ॥ ३ ॥

सोऽहं त्वाद्य हनिष्यामि दर्पोद्धतमनारतम् ।
उत्प्लुवन्तं रणभुवि भुजङ्ग इव दर्दुरम् ॥ ४ ॥

अस्थाने संनियुक्ताः स्मो वयं वीरा निशाचराः ।
किं कुर्मः सम्प्रति कपे भर्तुराज्ञा गरीयसी ॥ ५ ॥

वयं जयेम युष्मांश्चेत् का नः श्लाघा महीयसाम् ।
यैः समुत्पाटिता दन्ताः क्रोधाद्दिग्दन्तिनामपि ॥ ६ ॥

पराजीयेमहि पुनर्युष्माभिर्लघुमात्रकैः ।
तदा त्वतीव नो हानिर्वीर्यस्य यशसस्तथा ॥ ७ ॥

तथाप्यागच्छ युद्धेय त्वयाहं भर्त्तुराज्ञया ।
प्रसह्य च नयामि त्वामचिराद्यमशासनम् ॥ ८ ॥

इत्युदीर्य स धावित्वा प्रजहारासिना दृढम् ।
हनूमन्तं हृदि रणे वज्रेणेव गिरिं वृषा ॥ ९ ॥

पुष्पप्रहारवच्चास्य स प्रहारोऽतिदारुणः ।
अभवद्राक्षसकरप्रेरितासिसमुद्भवः ॥ १० ॥

ततश्च चुक्षुभे रोषाद् धूम्राक्षो नाम राक्षसः ।
पुनरुत्तोल्य तं खड्गं प्रहर्त्तुं तमधावत ॥ ११ ॥

स च पाणितलोत्क्षेप सम्भवाद् दृढघाततः ।
तमसिं पातयामास हनूमान् रक्षसः करात् ॥ १२ ॥

पपात बज्रवन्मेघादवनीं कम्पयन्नसिः ।
राक्षसः पतितेखड्गे लज्जमानमना अभूत् ॥ १३ ॥

ततस्त्रिशूलमादाय तं प्रहर्तुमधावत ।
बलादाच्छिदय तद्धस्ताद्धनुमान् दूरमक्षिपत् ॥ १४ ॥

ततः स क्रोधताम्राक्षो मुष्टिमुद्यम्यमारुतिम् ।
वक्षसि प्रजहारोच्चैर्जगर्ज च यदोद्धुरः ।। १५ ।।

अभून्मुष्टिप्रहारोत्थो वज्रनिर्घोषदारुणः ।
त्रुट्यन्महीध्रशिखरस्येवातिविषमोरवः ।। १६ ।।

न विव्यथे च हनुमान् स तेनाण्वपि मुष्टिना ।
पुनरुद्यम्य दोर्दण्डं धूम्राक्षो रोषसंयुतः ।। १७ ।।

यावत्तं प्रहरेदुच्चैर्वज्रतुल्येन मुष्टिना ।
तावत्स्वयं मरुत्सूनुर्मुष्टिमावध्य सत्वरम् ।। १८ ।।

प्रजहारास्य शिरसि गिरिकूटसमुन्नते ।
तेनास्य शतधा शीर्षं छिन्नभिन्नमिवाभवत् ।। १९ ।।

मुष्टिप्रहारविध्वस्तशिरा रुधिरमुद्वमन् ।
स पपात महीपृष्ठे धूम्राक्षो नाम राक्षसः ।। २० ।।

चालयन्नवनीं कृत्स्नां साब्धिद्वीपां सपर्वताम् ।
तस्मिन्निपतिते भूमौ राक्षसास्तस्य पृष्ठगाः ।। २१ ।।

शस्त्राण्यादाय शतशो हनूमन्तमभिद्रुताः ।
तानेष बलवान् वीरो मरुत्पुत्रो रणे स्थिरः ।। २२ ।।

कांश्चिन्मुष्टिप्रहारेण कांश्चित्पादप्रहारतः ।
कांश्चित् परस्परशिरोघट्टनस्फोटनक्रमात् ।। २३ ।।

कांश्चिद्विपोथनैः पद्भ्यां कांश्चिदाक्रमणेन च ।
कांश्चित्पदा समाक्रम्य गाढं तच्चरणौ बली ।। २४ ।।

हस्तेन मत्तगजवद्द्विधा कृत्वा व्यपाटयत् ।
निनाय कालनगरीं राक्षसानखिलानपि ।। २५ ।।

अथ तेन त्रयोदश्यां चक्रनामा निशाचरः ।
योद्धुं बाहुबलोत्क्षिप्तो रणाङ्गणमुपाययौ ।। २६ ।।

घ्रुवं तमप्येष बली हनूमांश्चिरेण वीरं युधि योधयित्वा ।
एकं समाक्रम्य पदा द्वितीयं विपाटयामास पदं कराभ्याम् ।। २७ ।।

तत्पृष्ठगा ये च मदाभिनद्धाः पतङ्गवत्तं प्रसभं समीयुः ।
तानप्यसौ मल्ल इवातिवीर्यो निपातयामास वियोध्य भूमौ ।। २८ ।।

ये शस्त्र हस्तास्तमभिप्रयाता रणाङ्गणे रात्रिचराः सहस्रम् ।
तानेष कृत्वा प्रसभं विशस्त्रान्निपातयामास चपेटपातैः ।। २९ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे धूम्राक्षचक्रवधो नाम चतुर्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।। २२४ ।।

पञ्चविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ भूतादिनान्नीलः प्रहस्तं वासरैस्त्रिभिः ।
विक्रमन्तं रणो घोरमवधीन्मल्लयुद्धकृत् ॥ १ ॥

इत्थं विक्रमतो वीक्ष्य कपीन् रक्षःक्षयंकरान् ।
महाबलो दशमुखः स्वयं योद्धुमुपागमत् ॥ २ ॥

तस्मिन् विनिःसृते योद्धुं लङ्कातो भूरिराक्षसैः ।
पुरोगैः पृष्ठगैश्चापि सार्द्धं बहुमदोद्धते ॥ ३ ॥

जयनिःसानपटहभेरीदुन्दुभिगोमुखैः ।
समभूत् काहलः शब्दो व्याप्नुवन् रोदसी दिशः ॥ ४ ॥

स दधद्विंशतिं दोष्णां महाधन्वा महाबलः ।
पङ्क्त्या शिरोभिः शैलस्य कूटैरिव भयानकः ॥ ५ ॥

क्रोधादग्निकणान् मुञ्चन् विंशत्यालोचनैरपि ।
कम्पयन् धरणीं कृत्स्नां पादन्यासैर्मदोद्धतः ॥ ६ ॥

शस्त्रास्त्रमन्त्रनिपुणो हेलानिर्जितवासवः ।
मेघनिर्घोषया वाचा तत्तत्स्थानेषु राक्षसान् ॥ ७ ॥

आज्ञया स्थापयन् क्रुद्धः सामन्तांश्च च भूपतीन् ।
प्रसभं निर्दिशन् युद्धे स्थेमानमपलायनम् ॥ ८ ॥

इदमूचे महावीर्यो नगरान्निःसृतो बहिः ।
अहो रे राक्षसभटा अद्याहं योद्धुमुद्यतः ॥ ९ ॥

ममाप्रतिबलेनापि रामेण युधितिष्ठता ।
अहो मेघातिता येन बहवो राक्षसा भटाः ॥ १० ॥

अतो द्रष्टव्य एवायं मया समिति राघवः ।
बद्धो येन च पाथोधिर्दृशा कोपकषायया ॥ ११ ॥

तमहं विशिखैरद्य मम बाहुबलेरितैः ।
सर्वथा छिन्नभिन्नाङ्गं दर्शयिष्यामि रक्षसाम् ॥ १२ ॥

अद्य पश्यत मे बाहुबलं तस्मिन् विघातके ।
अथवा किं बलेनास्मिन् मर्त्यमात्रे लघीयसि ॥ १३ ॥

आनेष्यामि जवाद्बद्ध्वा तमहं शरजालगम् ।
इत्थं विकत्थमानोऽसौ निश्चक्राम पुराद्बहिः ॥ १४ ॥

सहैव रक्षसां यूथैर्नानाशस्त्रास्त्रपाणिभिः ।
जयनिर्घोषसहितो नानाशस्त्रास्त्रसंयुतः ॥ १५ ॥

स आगत्य रणेऽतिष्ठत् कपिसैन्यैर्निरीक्षितः ।
दशभिः शिखरैर्युक्तो महानद्रिरिवोन्नतः ॥ १६ ॥

दोर्दण्डनिबहोद्भूतसरलद्रुमदण्डभृत् ।
विभ्रद्दृष्टीस्त्विषा दीप्ता ज्वलन्तीरोषधीरिव ॥ १७ ॥

उत्तुङ्गस्कन्धकूटोच्चः पादशैलभयानकः ।
उरःपृथुशिलाशाली पृष्ठाधित्यकयाञ्चितः ॥ १८ ॥

मुखनासाश्रुतिदरीगह्वरद्वारभीषणः ।
अदृश्यत रणे साक्षाद्भीमकर्मा दशाननः ॥ १९ ॥

तं वीक्ष्य केचित् कपयो वित्रस्ता इव तत्क्षणात् ।
विस्मिताश्चाभवन् केचिदहो एष स रावणः ॥ २० ॥

भीताः केचिच्चापरितो दिङ्मुखेषु पलायितुम् ।
समादधौ तानाश्वास्य भगवान् रघुपुङ्गवः ॥ २१ ॥

अहो अस्मान्न भेतव्यं दुःसत्त्वान्मे महाभटाः ।
मयि तिष्ठति संग्रामे का वो भीतिरितो भवेत् ॥ २२ ॥

पश्यतैनं रणमुखाद् द्रावयामि शरैरहम् ।
बाणैर्वह्निशिखादीप्तैर्नासौ स्थास्यति मत्पुरः ॥ २३ ॥

इत्युक्ताः कपयो रामवीरेण धृतधन्वना ।
समाहितान्तराः सर्वे तस्थुर्युधि रिपोः पुरः ॥ २४ ॥

सोऽभिवीक्ष्य रणे रामं तिष्ठन्तं सज्यकार्मुकम् ।
मुमोच वीरः पञ्चभ्यो धनुर्भ्यः पञ्चसायकान् ॥ २५ ॥

सतानापततो घोरान् पञ्चभिः सायकैर्निजैः ।
चकर्त्त मध्येगगनं तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २६ ॥

भूयो मुमोच रघुपेसायकान् दशकन्धरः ।
तानप्यसौ द्विधा चक्रे मध्येमार्गं निजैः शरैः ॥ २७ ॥

इत्थं स तेन बलिना विनि[1]र्मुक्ताञ्छरोत्करान् ।
बिभेद सायकैस्तीक्ष्णैस्ततश्चुक्रोध रावणः ॥ २८ ॥

---

१. मुक्तान् मुक्तान्–मथु० ।

राक्षस्या मायया भूत्वा शतधा च सहस्रधा ।
आवृणोत् परितो रामं मायावी राक्षसेश्वरः ॥ २९ ॥

ववर्ष च शरव्रातान् सानुजे रघुपुङ्गवे ।
महानीलगिरौ वारिवृष्टीरिव पुरन्दरः ॥ ३० ॥

जवेन शरवृष्टिं तां रामो निर्धूय सायकैः ।
उदस्थाद्भानुमालीव रश्मिवृन्दैः कुहेलिकाम् ॥ ३१ ॥

स शरैस्ताडयामास यावत्प्रतिकृतिद्विषम् ।
रावणस्तं चाभ्यवर्षच्छतधा च सहस्रधा ॥ ३२ ॥

ततस्तयोरभूद् युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ।
पश्यद्विबुधगन्धर्वनरविस्मयवर्धनम् ॥ ३३ ॥

यावद्दिनत्रयं निर्यन्निरन्तरशरोत्करम् ।
शिञ्जमानधनुर्जीवारवपूरितदिङ्मुखम् ॥ ३४ ॥

आच्छादितनभोभूमिपथं घोरतरारवम् ।
अन्योन्यजयवाञ्छाढ्यं मेघयोरिव गर्जतोः ॥ ३५ ॥

उभयोर्धनुषी ते तु मण्डलाकारतां गते ।
सृजन्ती इव दृश्येते निरन्तरशरोत्करान् ॥ ३६ ॥

तूणात् समभ्युद्धरणं रोपणं चापि धन्वनि ।
क्षेपणं लक्ष्यहननं पुनरुद्धरणं तथा ॥ ३७ ॥

बह्वीरपि क्रिया राम एकरूपा व्यदर्शयत् ।
रक्षोधिपोऽपि समरे तद्वद्विक्रममातनोत् ॥ ३८ ॥

चतुर्थीदिवसे रामो रावणस्य निजेषुणा ।
धनुर्मौर्वीं बभञ्जाजौ सोऽन्यांधनुषि संदधे ॥ ३९ ॥

ततो मौर्वीं धनुश्चापि तस्य रामो व्यखण्डयत् ।
शरेणैकेन चान्येन मध्यशीर्षावतंसकम् ॥ ४० ॥

ततः स क्षुब्धहृदयो धनुरन्यदुपाददे ।
ततः करान् सधनुषः समाहत्य दृढैः शरैः ॥ ४१ ॥

धनूंषि पातयामास करेभ्यस्तस्य राघवः ।
एकेन चातिगाढेन शरेणोरस्यताडयत् ॥ ४२ ॥

स शरस्तस्य हृदयं प्रविवेश जवेरितः ।
अपसारयितुं तस्मान्मोहमानमदानिवः ॥ ४३ ॥

पपौ च रुधिरं तत्र ततो मूर्छामवापसः ।
पुनश्चैतन्यमासाद्य घूर्णमानः स संयुगे ।। ४४ ।।

भुशुण्डीं प्राहिणोद् रामे ज्वलन्तीं तडिदुज्ज्वलाम् ।
तामप्यर्धपथप्राप्तां चकर्त्त रघुपुङ्गवः ।। ४५ ।।

शतधा निजबाणेन ततः शक्तिं मुमोच सः ।
तामप्यस्य द्विधा मध्येव्योमाभिमुखपातुकीम् ।। ४६ ।।

ततः खड्गांश्च मुशलान् मुद्गरप्रासतोमरान् ।
शक्तीः परश्वधाञ्छूलान् परिघान् कुन्तपट्टिशान् ।। ४७ ।।

मुमोच घोरमायावी परितो रघुपुङ्गवे ।
अप्राप्तानेव तान् रामः शस्त्रपूगान् सहस्रशः ।। ४८ ।।

सहमध्यधनुर्मुक्तैर्निजबाणैरखण्डयत् ।
रामस्य मार्गणैरित्थं शस्त्रास्त्राणि च विद्विषः ।। ४९ ।।

परायेतुर्निकृन्तानि तमेव समताडयन् ।
ततो वह्निशिखादीप्तैर्बाणैर्बाहुजवेरितैः ।। ५० ।।

जघान रावणं रामस्तेषु चैकेन वक्षसि ।
दशभिश्च भ्रुवोर्मध्ये दशभिश्चिबुकेषु च ।। ५१ ।।

दशभिश्चास्य दीप्तानि चूडारत्नान्यपाहरत् ।
शराणां विंशतिं चास्य दोर्मूलेषु सवर्मसु ।। ५२ ।।

निचखान रघुश्रेष्ठस्तत्क्षणात् करलाघवात् ।
प्रक्षरद्रुधिरौघोऽसौ प्रत्यङ्गक्षतविक्षतः ।। ५३ ।।

महेन्द्रवज्रप्रहतस्खलद्धातुरिवाचलः ।
आघूर्णमानो भूयस्या शरवेदनया खलः ।। ५४ ।।

न स्थातुमशकत्तत्र पुरो रामस्य संयुगे ।
ताड्यमानस्ततश्चासून् समादाय त्वरान्वितः ।। ५५ ।।

स्रवद्रुधिरदिग्धाङ्गः पलायत रणाङ्गणात् ।
ततो जयजयेत्युच्चैः कपयो राममब्रुवन् ।। ५६ ।।

इत्थं खलु त्रिभिरहोभिरुदग्रदर्पो लङ्केश्वरः समिति वीरवरेण तेन ।
रामेण दीप्ततरवह्निशिखोयमानैर्विद्रावितो निजशरैः समरात्सलज्जम् ।। ५७ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे रावणविद्रावणो नाम पञ्चविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।। २२५ ।।

षड्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

आरभ्य पञ्चमीं कृत्स्नां चतुर्भिर्दिवसैस्ततः ।
बोधितस्तेन निद्राणः कुम्भकर्णो निजानुजः ॥ १ ॥

तावद्युद्धावहारोऽभूद् रामरावणसेनयोः ।
यावत्प्रबोधितः कृच्छ्रात्कुम्भकर्णो महाबलः ॥ २ ॥

विद्रावितस्तु रामेण संग्रामाद् दशकन्धरः ।
व्रीडाकलङ्कितमुख इदमाह स्वसेवकान् ॥ ३ ॥

अरे रे राक्षसाः कोऽयं कालस्यैव विपर्ययः ।
उपस्थितो ममेदानीं यन्मर्त्योऽपि स तापसः ॥ ४ ॥

कपिसेनापरीवारो भ्रात्रैकैन द्वितीयवान् ।
धनुर्मात्रसहायश्च हिनस्तीहैव राक्षसान् ॥ ५ ॥

धिङ्मे बलं च वीर्यं च प्रतापोन्नतिमेव च ।
कपिभिर्वेष्टिता यस्य त्रैलोक्यजयितः पुरी ॥ ६ ॥

किमिदानीं च कर्तव्यं मम लब्धजयोन्नतेः ।
त्रैलोक्येऽप्येकवीरस्य क्व नु सम्भाव्यते रिपुः ॥ ७ ॥

सोऽपि मर्त्यः स चाप्येकः सोऽपि तापस वेशभृत् ।
सोऽप्यत्रैव स्थितो हन्ति पुरीपरिसरे मम ॥ ८ ॥

रक्षोयूथपतीन् वीरानसंख्यातान् दिने दिने ।
हन्ति स्वयं घातयति रक्षोवीरान् स मामकान् ॥ ९ ॥

इति चिन्तापरं नित्यं निद्रा संत्यज्य मां गता ।
अहो शेते कुम्भकर्ण इदानीमपि निद्रया ॥ १० ॥

जितः स्त्रिया चतुरया कामीव स ममानुजः ।
शेते विमूढहृदयो बाह्यं वेद न चान्तरम् ॥ ११ ॥

बोधनीयो द्रुतं यत्नैर्यथा जागर्विसोऽधुना ।
क्षयं नीताः किलानेन तापसेन निशाचराः ॥ १२ ॥

तानेष दृष्ट्वा सपदि रुषाविष्टो भविष्यति ।
भक्षयिष्यति चा[1]प्येतौ भ्रातरौ मम विद्विषौ ॥ १३ ॥

---

१. किं नैतौ–मधु० ।

अतः प्रबोध्यतां भृत्याः कुम्भकर्णो ममानुजः ।
सुस्निग्धश्च मयि प्रेम्णा हितं मेऽद्य करिष्यति ॥ १४ ॥

धिग् धिग्विभीषणसमं भ्रातृरूपं विरोधिनम् ।
यस्त्यजेत्संकटे प्राप्ते सम्पत्सु सह भुक्तवान् ॥ १५ ॥

नेदृशः कुम्भकर्णोऽस्ति भ्राता मेऽतिप्रियो हि सः ।
सुप्तः किल चिरेणासौ व्यप्यह्नीश्चतुर्युगीः ॥ १६ ॥

बोधनावसरे चास्मिन् बोधनीयः स राक्षसाः ।
किं त्वस्य चिरसुप्तस्य क्षुधा बह्वी भविष्यति ॥ १७ ॥

अतो भोजनसामग्री पूर्वं तस्य विधीयताम् ।
कार्यानानाविधैर्मांसै राशयः पर्वतोपमाः ॥ १८ ॥

भ्रियन्तां रुधिरौघैश्च कासारास्तस्य तुष्टये ।
कार्या नानाविधैरन्नैरामैः पक्वैश्च राशयः ॥ १९ ॥

पूर्यन्तां वापिकाः कूपाः सरस्यो विविधै रसैः ।
घृतैरिक्षुरसैः प्राज्यैर्माक्षिकैर्मधुभिस्तथा ॥ २० ॥

दधिदुग्धसुराद्यैश्च मांसाक्तैश्च तथा रसैः ।
कुण्डानि परिपूर्यन्तां तस्य वीरस्य तुष्टये ॥ २१ ॥

नानाविधा चोत्कटा च तस्य कादम्बरी सुरा ।
प्रवाह्यतां नदीरूपा यां पीत्वा स सुखी भवेत् ॥ २२ ॥

दृष्ट्वा स तत्क्षणादेतद् बालभोगं करिष्यति ।
ततो माध्याह्निकीं बेलां प्राप्यान्यद्भोक्ष्यते बहु ॥ २३ ॥

इदं सद्यो हिमद्वाक्यात्पूर्वमेव विधीयताम् ।
अन्यथा सोऽतिक्षुधिताश्चिरेण परिनिद्रितः ॥ २४ ॥

अदृष्टभक्ष्यसम्भारः क्षुब्धचित्तो भविष्यति ।
भक्षणं हि वृतं तेन त्रैलोक्यस्य विधेः पुरा ॥ २५ ॥

ततो विरञ्चिर्भगवांश्चिन्तयाह सरस्वतीम् ।
वरकालेऽस्य वदनं त्वं देवि प्रविश ध्रुवम् ॥ २६ ॥

नो चेन्मत्तो लब्धवरस्त्रैलोक्यं भक्षयेदयम् ।
सरस्वती विधेर्वाक्याद्विवेशास्य मुखं तदा ॥ २७ ॥

भक्षयिष्यामीति न स स्वप्स्यामीत्यवृणोद्द्विषिः ।
तदारभ्य स्वपित्येष मत्तोऽप्यधिकविक्रमः ॥ २८ ॥

इति रक्षसामधिपतेर्गिरा ततो रजनीचरा विविधभोज्यसंविधाः ।
प्रविधाय पूर्वममुना यथोदिताः प्रणताः पुरोऽस्य निखिलं न्यवेदयन् ॥ २९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे कुम्भकर्णप्रबोधनाज्ञायनो नाम षड्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२६ ॥

सप्तविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

राक्षसा ऊचुः

यथैव भवतादिष्टं तथास्माभिः कृतं प्रभो ।
विहिता भोज्यसम्भाराः कुम्भकर्णस्य भुक्तये ॥ १ ॥

आमैः पक्वैश्च पललैः कृता दशमहीधराः ।
अन्नैर्नानाविधैः पक्वैरामैश्च विहिता दश ॥ २ ॥

तिलैर्मुद्गैस्तण्डुलैश्च कृताः कूटाः पृथक् पृथक् ।
पत्रैः शाकैः फलैश्चैव विहिता राशयो दश ॥ ३ ॥

रसालजम्बूपनस वदरामलकेङ्गुदैः ।
फलैःर्नाना विधैः स्निग्धैर्मधुरै राशयः कृताः ॥ ४ ॥

रोटिकापूपद्विदलशष्कुलीतण्डुलादिभिः ।
पृथक् पृथक्कृतास्तत्र राशयो रक्षसां पतेः ॥ ५ ॥

घृताक्तैः शर्करापूर्णैर्दधिदक्षीरमधूक्षितैः ।
पायसैराज्यसंयुक्तैः शर्करापूरपूरितैः ॥ ६ ॥

असंख्यातानि कुण्डानि पूर्णानि सुमहांति च ।
दधिमध्वाज्यपूर्णानि कुण्डानि च पृथक् पृथक् ॥ ७ ॥

तद्वदिक्षुरसैर्गाढमावर्त्तितपयोभरैः ।
पूर्णानि दश कुण्डानि कर्पूरैलादिवासितैः ॥ ८ ॥

माहेयैः स्वादुभिर्गाढैर्विहितानि तवाज्ञया ।
अत्युत्कटसुरास्रोतोवाहिनी च कृता सरित् ॥ ९ ॥

वाप्यश्च पशुसंदोहरुधिरैः सम्भृता भृशम् ।
गाढैः स्निग्धमयैर्हृद्यैः कृता मांसाद्रिसंनिधौ ॥ १० ॥

नानाविधाश्च सम्भारा भोज्यवस्तूपकल्पिताः ।
आमोदवन्तः स्वादिष्टा निर्मलाः सुखदाः कृताः ॥ ११ ॥

दृष्टिप्रसाददानेन तान् गृह्णातु भवान् प्रभो ।
सुखमेष्यति तान् दृष्ट्वा कुम्भकर्णस्तवानुजः ॥ १२ ॥

आदायादाय हस्तेन भोक्ष्यते च यथारुचि ।
पात्रमात्रावशिष्टांश्च करिष्यति स तत्क्षणात् ॥ १३ ॥

इति श्रुत्वा वचस्तेषां राक्षसेन्द्रो दशाननः ।
उवाच राक्षसानन्यान् सोत्साहं दशकन्धरः ॥ १४ ॥

अतः परं कुम्भकर्णं बोधयन्तु निशाचराः ।
नयन्तु तत्र करिणो महतः पर्वतोपमान् ॥ १५ ॥

स्यन्दनान् वाहनैराढ्यांस्तुरगान् वृषभानपि ।
अन्यानपि महासत्त्वांस्तैर्मर्दयत तद्वपुः ॥ १६ ॥

यथा निद्रां विहायाशु चिरात्सुप्तः स बुध्यते ।
तथा कुरुत हे प्राज्ञाः पादसंवाहनामिव ॥ १७ ॥

हृदये जानुनोर्बाह्वोरंसयोस्तस्य पीनयोः ।
मर्दनं कुरुतेतुङ्गगजेन्द्रचरणक्रमैः ॥ १८ ॥

शिलाभिः स्थूलमूलाभिर्दृढं ताडयतोरसि ।
तस्यातिपीवरे यद्वत्कन्दुकैस्तूलपूरितैः ॥ १९ ॥

इत्यादाय प्रभोराज्ञां तथा चक्रुः समेत्य ते ।
तथाप्येष्य महानिद्रश्चिरसुप्तो न बुध्यते ॥ २० ॥

प्रत्युताधिकमस्वाप्सीत्पादसंवाहनाद्यथा ।
मर्द्दनं तैः कृतं तस्य सुखसुप्त्यै बभूव तत् ॥ २१ ॥

आरण्यमहिषैः शृङ्गैर्दन्तिनां दन्तपातनैः ।
खुरक्षेपैस्तथाश्वानां सुखनिद्रानुकूल्यतः ॥ २२ ॥

मेने कण्डूयनमिव स किञ्चित्कोमलैर्नखैः ।
घोरघण्टानिनादेन मिश्रितः करिणां तथा ॥ २३ ॥

अश्वानां च रथानां च गच्छतां प्रतिगच्छताम् ।
नृणामालयतां चैव गम्भीरध्वनिकारिणाम् ॥ २४ ॥

स तादृक्काहलः शब्दः कोलाहलरवोद्धुरः ।
नास्य निद्राविनाशाय पर्याप्तोऽण्वपिसोऽभवत् ॥ २५ ॥

ततो लङ्केश्वराज्ञप्ता राक्षसास्तस्य कर्णयोः ।
घ्राणयोश्चापि बहुशः सत्त्वानुच्चावचानपि ॥ २६ ॥

सहस्रशो गा महिषीर्गवयाञ्छूकरान् मृगान् ।
छागीश्छागाश्च मेषाविशशमार्जारकुक्कुरान् ॥ २७ ॥

बलीमुखान् गौरखराजन्यांश्च विविधान् पशून् ।
पक्षिणः श्येनगृध्रादींश्चाषतित्तिरिवायसान् ॥ २८ ॥

विविधान् पर्वतगुहाप्रतिमेन बिलाध्वना ।
अन्तः प्रवेशयामासुः प्रविशंस्ते च सत्वरम् ॥ २९ ॥

अन्तर्यथा ब्रह्मरन्ध्रं परिप्रायुस्ततश्च ते ।
क्षुतिं संजनयामासुस्तस्य सुप्तस्य रक्षसः ॥ ३० ॥

अन्तःक्षुतिसमुद्भूतिमरुद्वेगसमाहताः ।
सर्वे ते बहिराजग्मुः पशवः पक्षिणोऽपि च ॥ ३१ ॥

तथापि न स संसुप्तः प्राबुध्यतमनागपि ।
ततस्तस्यैव वचनं सस्मार दशकन्धरः ॥ ३२ ॥

उक्तं ह्यनेनयत्पूर्वं स्वापस्यादौ महीयसः ।
अहं स्वपिमि लङ्केश लब्धनिद्रावरो विधेः ॥ ३३ ॥

नाचिरेण प्रबोधो मे भविष्यति दशाननः ।
नानाचतुर्युगीर्व्याप्य स्वप्स्यामि रहितः शुचा ॥ ३४ ॥

यदि त्वावश्यके कार्ये परिप्राप्ते तवार्यक ।
अवश्यं बोधनीयः स्यां तर्ह्ययत्नोऽयमुच्यते ॥ ३५ ॥

दिव्याङ्गनाजनोद्गीतैः सरसैः सप्तभिः स्वरैः ।
मूर्छनाग्रामसंयुक्तैः सतालैर्नर्तनक्रमैः ॥ ३६ ॥

पादमञ्जीरमधुरझणत्कारैः सुखावहैः ।
मेखलादामझङ्कारैर्बलयानां च निक्वणैः ॥ ३७ ॥

करतालैः कांस्यतालैः क्वणन्मड्डुकझर्झरैः ।
मृदङ्गमुरजोद्घोषैर्वीणापणवमर्दलैः ॥ ३८ ॥

ध्वनद्भिः परितो नाट्यगाननृत्यमहारवैः ।
तत्क्षणान्मुक्तनिद्रः स्यां तौर्य्यत्रिकभवै रवैः ॥ ३९ ॥

शङ्खदुन्दुभिभेर्याद्यैर्वाद्यद्भिः सुमहारवैः ।
मन्द्रैस्तारैश्च निर्घोषैर्मधुरैः श्रोत्रपूरकैः ॥ ४० ॥

निद्रात्ययो मे भ्रातःस्यान्नान्यथा यत्नकोटिभिः ।
विधिनामे वरो दत्तो निद्रैव च वृता मया ॥ ४१ ॥

सुखं स्वप्स्यामि सततं शयनीये मनोरमे ।
उक्तस्ते बोधने यत्नोत्पाहिते कार्ये आगते ॥ ४२ ॥

त्रैलोक्यं त्वं तु निर्जित्य विधाय स्ववशे भृशम् ।
सदेवासुरगन्धर्वयक्षराक्षसमानुषम् ॥ ४३ ॥

कुरुष्व राज्यमव्यग्रः स्थितो लङ्कापुरीमधि ।
परिखायितपाथोधि हेमप्राकारदुर्गमाम् ॥ ४४ ॥

भुङ्क्ष्व भोगान् यथाकामं लभमानो महत्सुखम् ।
मां च भो अनुजानीहि चिराय सुखसुप्तये ॥ ४५ ॥

इत्युक्तं मह्यमेतेन स्मरामि प्रयतोऽधुना ।
तं करिष्यामि वै यत्नं स्वयमेवामुनोदितम् ॥ ४६ ॥

इति संचिन्त्य मनसा राक्षसान् स तथादिशत् ।
ते तदादेशमादाय तथा चक्रुर्निशाचराः ॥ ४७ ॥

गायकान्नर्तकीश्चैव वादकान् लासकानपि ।
मार्दङ्गिकान्-मौरजिकान् दुन्दुभीवादने पटून् ॥ ४८ ॥

अन्यांश्च वाद्यनिपुणान् नानाविद्याधरानपि ।
जवादाहूय तत्पार्श्वेमहोद्घोषमकारिषुः ॥ ४९ ॥

ततानां विततानां च सुषिराणां तथैव च ।
घनानां भूरिभेदानां वाद्यानां परिवाद्यताम् ॥ ५० ॥

अभूद्घोषो महास्तत्र यत्र शेते स राक्षसः ।
निद्राणो महतः कालात्त्रयोदश चतुर्युगीः ॥ ५१ ॥

कृच्छ्रान्निद्रां विनिर्धूय प्रोन्मीलितविलोचनः ।
जजागार क्षणो नैष कुम्भकर्णो महाबलः ॥ ५२ ॥

तमाह रावणो भूयो निमीलन्नयनालसम् ।
भ्रातर्जागृहि नो स्वापकालः सम्प्रति वर्त्तते ॥ ५३ ॥

प्राप्तोऽयं तापसः कश्चिदिह भूरिचमूवृतः ।
अहर्निशं क्षपयति राक्षसान् वाणवह्निना ॥ ५४ ॥

बहवो मे हता वीरा अनेन परिपन्थिना ।
शून्यप्रायमभूत् पश्य परितो नगरं त्विदम् ॥ ५५ ॥

कृच्छ्रेण बोधितस्त्वं तु स्मृतत्वद्वच सा मया।
किं निमीलयसे नेत्रे भूयोऽप्यलसयद्दमणी ॥ ५६ ॥

तस्मिन् प्रबुद्धमात्रे तु राक्षसानां कदम्बकाः।
जितं जितं रावणेनेत्यवोचन् वीक्ष्य शात्रवान् ॥ ५७ ॥

स रक्तनिद्रालसतुन्दिलेक्षणो विकीर्णकेशौघभयानकाननः ।
स जृम्भमामोटितदीर्घविग्रहो गिरिर्यथा तुङ्गतयोदतिष्ठत ॥ ५८ ॥

अथ क्षणेनोत्थितमात्र एष विलोक्य वीरः पुरतो दशास्यम्।
सुप्तश्चिराद्भोक्तुमना बभाषे क्षुधाकुलोऽस्मीति गभीरघोषः ॥ ५९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे कुम्भकर्णप्रबोधो नाम सप्तविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२७ ॥

अष्टाविंशाधिकाद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

स तद्वाक्यं समाकर्ण्य कृतयत्नो दशाननः।
उवाच तं क्षुधात्यार्तं कुम्भकर्णं निजानुजम् ॥ १ ॥

चतुर्भिर्दिवसैर्वीर यत्नेन त्वं प्रबोधितः।
भक्षयैतान् भोज्यभारान् नानान्नाव्यञ्जनान्वितान् ॥ २ ॥

पश्य मांसौघकूटानि क्लृप्तानि तव तृप्तये।
अन्नराशीनिमान् पश्य पृथक्[1] सम्यग्रसान्वितान् ॥ ३ ॥

भक्ष्यचोष्यान् लेह्यपेयान् पश्य स्वादूंश्चतुर्विधान्।
इह नानाविधा भक्ष्याः शष्कुलीरोटिकादयः ॥ ४ ॥

रसा नानाविधाश्चापि दधि दुग्धं सुरामधु।
तैर्भृताः कूपिका वाप्यः सरस्योऽथापि दीर्घिकाः ॥ ५ ॥

सुखेन भक्षय भ्रातस्त्वमिमा भोज्यसंविधाः।
आपीय मदिरां घोरां मांसभारानशेषय ॥ ६ ॥

पिब रक्तमयान् कुण्डानि क्षुद्रवमयांस्तथा।
सर्वांश्च भोज्यसम्भारान् भुङ्क्ष्व भूरिमदान्वितः ॥ ७ ॥

---

१. पृथग्व्यञ्जनसंयुतान्-मधु० ।

इत्थं विनीय त्वं वीर क्षुधां सुचिरसम्भवाम् ।
जहि शत्रुन् रणे वीर स्वानां प्रमुदमावहन् ॥ ८ ॥

रणाङ्गणं त्वयि गते नूनं भक्ष्याश्च वानराः ।
[¹तापसावपि तौ मर्त्यौं चूर्णनीयौ मदाज्ञया¹ ॥]

यौ रामलक्ष्मणावेताविति लोके श्रुतिं गतौ ॥ ९ ॥

न जानाति भवान् वीर संजातौ स्वपिति त्वयि ।
ततश्च कुम्भकर्णोऽसौ निर्दिष्टास्तेन ताः किल ॥ १० ॥

अन्नव्यञ्जनमांसादिसंविधाः सकला अपि ।
बभक्ष क्षुधायान्तःस्थपावकज्वालमालया ॥ ११ ॥

अचर्वयत मांसास्थीन्यामांसास्थीनि सर्वतः ।
सस्वदे च सुपक्कानि मांसानि विविधान्यपि ॥ १२ ॥

अन्नकूटांश्च खादोच्चैर्भूरिव्यञ्जनसंयुतान् ।
भर्जितानि च धान्यानि बहूनि समचर्वयत् ।
पीत्वा कादम्बरीं रस्यां मत्तो राक्षससत्तमः ॥ १३ ॥

सर्वं निपातयामास यत्किञ्चिदिह कल्पितम् ।
भक्ष्यलेह्यादि विविधं रावणेन प्रयत्नतः ॥ १४ ॥

पपौ रसभृतान् कूपान् सरसीर्वापिकास्तथा ।
क्रमेण विपुलाहार आदायादाप पाणिना ॥ १५ ॥

भुक्त्वा निरवशेषं तत् सर्वमाहारसंचयम् ।
जगर्ज मदिरायत्तः किंचितृप्तिमुपागतः ॥ १६ ॥

तस्य गर्जारवो घोरो रोदसी पर्यघोषयत् ।
तं श्रुत्वा कपयस्त्रस्ता मुदिताश्चापि राक्षसाः ॥ १७ ॥

भुक्त्वा सोऽथ स्वस्थमनाः पर्यपृच्छत रावणम् ।
क एष ते रणोद्योगः किमर्थं वा दशाननः ॥ १८ ॥

केन वा सह जातस्ते विरोधो भुवनेष्वलम् ।
किमर्थं रक्षसां यूथान् रणेक्षपयसि स्वयम् ॥ १९ ॥

आज्ञावशंवदास्तेऽमी निपतन्ति पतङ्गवत् ।
समरेषु महावेगा रक्षोवीरास्तवोद्भटाः ॥ २० ॥

इति पृष्टः प्रबुद्धेन कुम्भकर्णेन रावणः ।
उवाच तं यथावृत्तं जानकीहरणादिकम् ॥ २१ ॥

१–१–नास्ति–रीवां ।

ततश्च रामगमनं सेतुबन्धपुरःसरम् ।
कारणं सर्वमेवैतत्तेन युद्धस्य सोऽवदत् ।। २२ ।।

इत्थं प्रबोध्य लङ्केशः कुम्भकर्णं महाजवम् ।
जगाम स्वगृहं तूर्णं यत्र मन्दोदरी स्थिता ।। २३ ।।

तमन्तःपुरस्थाः स्त्रियः कुम्भकर्णप्रबोधोत्सवं ज्ञापन्त्यः सहर्षाः ।
जयाशंसनाद्दत्तदृष्टिप्रसादं वचोगुंफनैर्मोदयामासुरुच्चैः ।। २४ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे कुम्भकर्णभोजनो नामाष्टाविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।। २२८ ।।

एकोनत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथायुक्तं मन्यमानः कर्म तद्भ्रातुरात्मनः ।
पुनः पुनर्विचार्यासौ कुम्भकर्णो महाबलः ।। १ ।।

व्यषीददात्मनो मृत्युं मन्यमानो रणाङ्गणे ।
तथा सपुत्रपौत्रस्य रावणस्यापि राघवात् ।। २ ।।

आजगाम ततो वीरो विषण्ण इव चेतसा ।
सभामण्डपमध्यस्थं भ्रातरं दशकन्धरम् ।। ३ ।।

तमायान्तमसौ दूराज्जग्राह परमादृतः ।
महाबल इति ज्ञात्वा न्यस्तयुद्धभरं हितम् ।। ४ ।।

महासभामण्डपान्तस्तावेकासनसंस्थितौ ।
सप्रश्रयेक्षणप्रश्नप्रतिवाक्यादिभिर्मुदा ।। ५ ।।

मिथः प्रेमकथालापैः सुप्रीतौ तौ बभूवतुः ।
ततो बली कुम्भकर्णो रावणं प्राणसम्मितम् ।। ६ ।।

आभाष्य चापि सम्बोध्यप्रियभ्रातरमात्मनः ।
एतदूचे वचो न्याय्यं निश्चित्य विदुषां गिरा ।। ७ ।।

हन्त भ्रातस्त्वया किं नु कृतमेतज्जुगुप्सितम् ।
तद्धि सन्तः प्रकुर्वन्ति यन्न्यायाद नपोदितम् ।। ८ ।।

सत्यं वयं क्रूरतमा राक्षसाः सत्ववर्जिताः ।
तमोमात्रलयाः क्वापि विरले रजसि स्थिताः ।। ९ ।।

तथापि भ्रातर्जानीहि पुलस्त्यस्य मुनेः कुलम् ।
यस्मिन् वयं सुसंजाता अनुरूपा भवेम चेत् ॥ १० ॥

तदा नो भुवने श्लाघा नो चेन्निन्दैव सत्सु नः ।
साम्प्रतं भवता वीर परजाया रहोगता ॥ ११ ॥

हृता बलेन तत्कर्म न युक्तमिति मन्महे ।
को नाजनि वली लोके को न शक्तश्च सर्वथा ॥ १२ ॥

न्याय्यामेवाचरन् सर्वे दुर्नयान्नश्यते यतः ।
इति ज्ञात्वा नयं भ्रातरिदानीमपि विद्धि भोः ॥ १३ ॥

पराङ्गनामिमां दूराद्विषवल्लीमिव त्यज ।
यां स्पृशन् म्रियते जन्तुः परत्रेह च निन्दिताम् ॥ १४ ॥

इति नीतिमुपादाय यदि वर्त्स्यति वै भवान् ।
भविष्यति चिरञ्जीवी पुत्रपौत्रादिभिः सह ॥ १५ ॥

नो चेत्समेतः सर्वैस्त्वं नाचिराद्यास्यशि क्षयम् ।
विचार्येत्थं मुहुर्भ्रातरिदानीमपि चेतय ॥ १६ ॥

त्रैलोक्यश्रीमदाविष्टं चेतोनिजमतन्द्रितः ।
जीवन्तु चापि समराच्छेषा अपि निशाचराः ॥ १७ ॥

प्रतिकूलगिरस्तस्य गिरमित्थं निशम्य सः ।
दर्पोत्क्षिप्तभुजोद्दण्डः प्रत्युवाच विहस्य तम् ॥ १८ ॥

अहो कृच्छ्रेण यद्भ्रातर्मया त्वं सम्प्रबोधितः ।
तत्साधु समरे शत्रुं कुम्भकर्ण जिगाय भोः ॥१९ ॥

अपि मे मानसोत्साहमित्थं वाग्भिर्विलोपयन् ।
प्रतिकूलवृत्तिः समये सुप्त एव भवान् वरम् ॥ २० ॥

यः क्षिणोति मनोवृत्तिं कार्यकाल उपस्थिते ।
न स भ्राता च बन्धुश्च सुहृन्मित्रं सखापि वा ॥ २१ ॥

स शत्रुरेव विज्ञेयः शत्रोरीप्सितमाचरन् ।
तमिमं यूथवृत्तघ्नं दूरतः परिवर्जयेत् ॥ २२ ॥

तस्माद्भ्रातरहं मन्ये भावानपि बलीमुखैः ।
वित्रासित इवात्यन्तं दृश्यतेऽद्य विना रणम् ॥ २३ ॥

कामं भक्षय मांसानामन्नानां च महीधरान् ।
किं ते रणेन सोत्साहं मपि तिष्ठति सम्प्रति ॥ २४ ॥

कामं स्वपिहि भुक्त्वा च यथेच्छं भूरिवत्सरान् ।
अपि मैवं पुनर्वादीर्मानसोत्साहतक्षणम् ॥ २५ ॥

कृतवानहमेतावत्त्रयोदश चतुर्युगीः ।
एतल्लङ्कापुरीराज्यं तव बाहुबलेन किम् ॥ २६ ॥

अहं शक्रपुरीं भ्रातर्विजेतुमधिरूढवान् ।
आत्मनैव तदापि त्वं साहाय्यं कृतवान्नु किम् ॥ २७ ॥

अपि मे भवता भ्रातः कदा किमपि यत्कृतम् ।
स्मर तत्सुमहानिद्रानीताखिलजनुःफलम् ॥ २८ ॥

जीवन्तु मे महावीरा महोत्साहा निशाचराः ।
ये प्राणनैरपेक्ष्येण पुरोगा मम संयुगे ॥ २९ ॥

येषां बाहुबलोद्भूताः सुग्रीवाद्याः प्लवंगमाः ।
त्यक्तुमिच्छन्ति सपदि संग्रामाङ्गणमातुराः ॥ ३० ॥

तेषां मदर्थे बहवस्त्यक्तप्राणा दिवं गताः ।
बहवश्च विलोक्यन्ते बद्धकक्षाः परान् प्रति ॥ ३१ ॥

अमी नरान्तकमुखास्त्रैलोक्यविजयोद्धुराः ।
येषां बाहुबलेनाहं कुम्भकर्ण सुखं स्वपे ॥ ३२ ॥

इमौ कुम्भो निकुम्भश्चाप्युभौ राक्षससत्तमौ ।
याभ्यां बलात्समानीता बन्दीकृत्य सुरश्रियः ॥ ३३ ॥

उत्पाटिताश्च रदना दिग्गजानामपि ध्रुवम् ॥ ३४ ॥

अमेयवीर्यौ मनुजै राक्षसानां यशस्करौ ।
ताविमौ जीवतो वीरौ किं भ्रातः खिद्यसे वृथा ॥ ३५ ॥

एषोऽतिकायो बलवान् रक्षोवीरः प्रतापवान् ।
यद्बलं विबुधैर्दृष्टं विद्रुतैर्युधि तत्क्षणात् ॥ ३६ ॥

द्वीपेषु जलधेर्यस्य गिरिदुर्गेषु चातुलः ।
जागर्ति चण्डदोर्दण्डप्रतापः सुरतापनः ॥ ३७ ॥

मकराक्षो नाम महानेष रक्षोगणेश्वरः ।
यस्य गीर्वाणगेहेषु विमानाबलिशालिषु ॥ ३८ ॥

सर्वस्वलुण्ठनोद्रिक्तः प्रतापाग्निस्तपत्यहो ।
हेमाद्रिशिखरद्रावसूचितो यस्य तेजिमा ॥ ३९ ॥

अलमेषां बाहुबलं कथयन्नाम रक्षसाम् ।
मम संततिरेवोग्रा जीवताच्छरदां शतम् ॥ ४० ॥

यस्यामेकैक उद्दामो हेलाध्वस्तेन्द्रवैभवः ।
त्रैलोक्यमथने शक्तः सुखं स्वपिहि कुत्रचित् ॥ ४१ ॥

अयमिन्द्रजिदुद्दामो महाबाहुर्महाबलः ।
गीर्वाणगणनिग्राही परदाही रणेषु यः ॥ ४२ ॥

कार्या मद्विषये चिन्ता त्वया भ्रातर्न जातुचित् ।
कुम्भकर्ण सुखं भुङ्क्ष्व भोज्यभारराननेकशः ॥ ४३ ॥

सुखं स्वपिहि कल्पान्तं विधिना तेऽर्पितो वरः ।
मा पुनर्मन्मनोधैर्यं निकृन्तेथा महामते ॥ ४४ ॥

इति नयभाषितेन सरुषोऽभिहिताधिकरूक्षवादिनो,
दशवदनस्य तानि परूषाणि वचांसि निशम्य सोदरः ।
घन इव कुम्भकर्ण इदमाह नितान्तगभीरभाषणो,
विहसितदीर्यमाणमुखगह्वरदृष्टसुदीर्घदंष्ट्रकः ॥ ४५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे रावणकुम्भकर्ण-संवादो नामैकोनत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः । २२९ ॥

त्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

कुम्भकर्ण उवाच

नाहं करोमिते ज्येष्ठ मानसोत्साहभञ्जनम् ।
प्रबुद्धोऽहं रणे भ्रातर्मथितुं तव शात्रवान् ॥ १ ॥

न वा योद्धुं ममालस्यं सम्प्रबुद्धस्य सम्प्रति ।
निर्दारयेयं धरणीं भञ्जयेयं गिरीनपि ॥ २ ॥

त्वं मे प्राणप्रियो भ्राता न चाहं तेऽरिपक्षगः ।
न चापि मम वित्रासो वानरेभ्यः कदाचन ॥ ३ ॥

अमी हि मे सदा भक्ष्या एकैककवलोपमाः ।
भविष्यन्ति विनाऽऽयासं तृप्त्यै मम सहस्रशः ॥ ४ ॥

यथा तवान्ये सुभटा राक्षसाः कोटिशो रणे ।
अयं तथाहमप्येकः कृपां कुरु सदा मपि ॥ ५ ॥

अनुजे स्वस्य नितरामाज्ञापालनतत्परे ।
नाहं विभीषणो ज्ञेयो यः शत्रुमधितिष्ठति ॥ ६ ॥

धिक्तं कातरचित्तत्वाद्वीर्येण परिवर्जितम् ।
येषां मनः सदा धीरं सम्पत्सु च विपत्सु च ॥ ७ ॥

एकरूपं त एवाशु जयन्ति लोकमीप्सितम् ।
अव्यवस्थित चित्तास्तु पतन्त्युभयलोकतः ॥ ८ ॥

अपियेऽङ्गीकृतं सन्तः शुभं वा यदि वाशुभम् ।
न त्यजन्त्यात्मनो धैर्यंस्तेषां लोकः सनातनः ॥ ९ ॥

जय एव सदास्माकं त्वत्पक्षमधितिष्ठताम् ।
रणेऽपि त्यक्तप्राणानामुभौ लोकौ यशोज्ज्वलौ ॥ १० ॥

अथो जयेम यच्छत्रून् पुरःस्थानाततायिनः ।
तदापि नः सदा क्षेममुभौ लोकौ यशोऽमलौ ॥ ११ ॥

अथास्मिन् यर्हि विपुलकार्यकाल उपस्थिते ।
भिद्येम यर्हिवाज्ञां ते नानुतिष्ठाम तर्हि नः ॥ १२ ॥

अयं चैवापरो लोक उभावपि गतौ द्रुतम् ।
जनुश्चाकीर्तिमलिनं जातमेव जुगुप्सितम् ॥ १३ ॥

नीतियुक्तं तु ते पूर्वं मया किंचिन्निवेदितम् ।
तद्भवान् यदि नागृह्णात्किं तर्हि क्रियतां मया ॥ १४ ॥

यदभावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा ।
इति मत्वा स्थितोऽस्म्येष त्वदाज्ञातत्परो मुहुः ॥ १५ ॥

श्रुतं ह्येतन्मया पूर्वं प्राक्तनेभ्यो दशानन ।
सर्वज्ञेभ्यो मुनीन्द्रेभ्यो न भावि च तदन्यथा ॥ १६ ॥

इदमेव निमित्तंनो नाशस्याकलितं मया ।
पुरा सर्वज्ञकल्पेभ्यो महर्षिभ्यो यथातथम् ॥ १७ ॥

कोऽन्यथा नाशयेदस्मान् कृतान्तस्यापि भीषकान् ।
दर्पोत्पाटिततद्वाहमहिषोग्रविषाणकान् ॥ १८ ॥

यद्येवं न निमित्तं स्यात्तदार्य भुवनत्रये ।
कस्त्वां नाशयितुं शक्तो यक्षो रक्षोऽमरो नरः ॥ १९ ॥

अपि नाम परः साक्षात् पुरुषोऽयं सनातनः ।
आद्यन्तमध्यशून्यश्च प्राप्तस्ते नगरान्तिकम् ॥ २० ॥

रामो रघुपतिः श्रीमान् न यत्तत्त्वं विजानते ।
ब्रह्मविष्णुशिवा देवाः कोऽन्यः शक्नोतु वेदितुम् ॥ २१ ॥

अहं जानामि पूर्वेभ्यो मुनिभ्यः श्रुततद्गुणः ।
भवान् परं न जानाति काले भाग्यविपर्ययात् ॥ २२ ॥

जानाम्यहं तथाप्यस्मिन् द्वेष्यबुद्धिः सदैव मे ।
इति तस्यैव मायेयं यथा सम्मोहितं जगत् ॥ २३ ॥

त्यक्त्वा लोकं सुप्रकाशं सुखं यत्र निरन्तरम् ।
लीयामहे च तमसि बुद्धिमोहो न ईदृशः ॥ २४ ॥

स्वर्गापवर्गलोकेशः साक्षादेष परः पुमान् ।
ते द्विष्मो मनसा रामं स्वार्थे मूढा अहो वयम् ॥ २५ ॥

इत्याकर्ण्णस्य वाक्यं समितिः कृतमतेः कुम्भकर्णस्य भूयः,
प्रेम्णा युक्तो दशास्यः शिरसि भृशमुपाघ्राय चालिङ्ग्यदोर्भ्याम् ।
पुंसु भ्रान्तिं प्रदर्श्य क्षपितमुनिवचो मानईशं विनिन्द्य,
प्रोच्याहोभिश्चतुर्भिर्विरतिमथ युधे प्राहिणोत्तं महोग्रम् ॥ २६ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे कुम्भकर्णविसर्जनो नाम त्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३० ॥

एकत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ नानाविधैः शस्त्रैरस्त्रपूगैश्च दारुणैः ।
असज्जत महावीर्यो योद्धुं रामेण संयुगे ॥ १ ॥

महोग्रपर्वताकारः कुम्भकर्णो महाबलः ।
प्रणम्य भ्रातरं ज्येष्ठं प्रययौ कृतमङ्गलः ॥ २ ॥

तमाहमुदितस्तत्र लङ्केशो लोकभीषणः ।
स्वस्त्यस्तु ते रणे शीघ्रं सपत्नं जहि राघवम् ॥ ३ ॥

जयोऽस्तु ते कुम्भकर्ण पुनरायाहि वीतभीः ।
हर्षयन् सुहृदो बन्धून् विश लङ्कापुरीं पुनः ॥ ४ ॥

गच्छाधुना महावीर्य हन्तुं शत्रूमदोद्धतान् ।
तव बाहुबलायत्त इदानीं विजयो मम ॥ ५ ॥

इत्युक्त्वा विससर्जासौ भ्रातरं प्राणसम्मितम् ।
तं प्रयान्तं रणे योद्धुमनुजग्मुर्निशाचराः ॥ ६ ॥

सर्वे गृहीतनिस्त्रिंशा आबद्धकवचा भटाः ।
महाजवा महाकायाः प्रावृषेण्या घना इव ॥ ७ ॥

गर्जन्तो मदसम्पन्ना आस्फोटितभुजद्वयाः ।
निर्ययुस्तमनुक्रुद्धाः कोटिशो बद्धवैशसाः ॥ ८ ॥

स तेषां पुरतो गच्छन् कुम्भकर्णो महोद्धतः ।
स्तूयमानो यातुधानैर्महासंरम्भभीषणः ॥ ९ ॥

गदापाणिर्महोद्दण्ड आशंसितजयो निजैः ।
शुशुभे बद्धकवचस्तडित्वानिव वारिदः ॥ १० ॥

अतिष्ठत् पर्वताकारः प्रविश्य समराङ्गणे ।
तंवीक्ष्य वानरभटा वित्रस्ताः परितोऽभवन् ॥ ११ ॥

स पपातमहाभीमो वानराणां कदम्बके ।
आदायादाय हस्ताभ्यां मुखे चिक्षेप वानरान् ॥ १२ ॥

दंष्ट्राभ्यां चूर्णयामास भक्षयामास तान् बहून् ।
सहस्रशो मुखे न्यस्ताश्चर्व्यन्ते कपयोऽमुना ॥ १३ ॥

तेषां द्वित्रा मुखाद्भ्रष्टाः कूर्दित्वा यान्ति हस्ततः ।
तेऽपि क्रुद्धाः कपिभटाः परितो वेष्टयन्ति तम् ॥ १४ ॥

नखदन्तायुधैरुग्रैर्लूयन्तेऽङ्गानि तैर्भृशम् ।
आदायादाय सोऽत्युग्रस्तान् बभक्ष सहस्रशः ॥ १५ ॥

केचित्तस्य नखैर्दन्तैर्मुखमामोटयन्ति च ।
केचिद्घ्राणद्वयं केचित्कर्णौ केऽपि विलोचने ॥ १६ ॥

केऽपि दोर्मूलयुगलं केऽपि वक्षस्थलं पुनः ।
तानधिक्षिपते चायं लुवतः परितो वपुः ॥ १७ ॥

हस्ताभ्यां चैव पादाभ्यां विध्वंसयति वानरान् ।
ते ध्वंस्यमाना अपि तं न त्यजन्ति महोद्भटाः ॥ १८ ॥

महाद्रिकन्दराकारं दीर्णं तस्य मुखं रणे ।
महोग्रदंष्ट्राविकटं वीक्ष्य भीताः प्लवंगमाः ॥ १९ ॥

कपीनां चर्व्यमाणानां कुम्भकर्णेन रक्षसा ।
आसीत्कटकटाशब्दश्चूर्ण्यमानास्थिसम्भवः ॥ २० ॥

लग्नास्तद्दशनान्तरेषु कतिचित् संचूर्णितैर्मस्तकैः
केचिच्छिन्नविभिन्नसर्ववपुषस्तद्दीर्घदंष्ट्राङ्कुरैः ।
चर्व्यन्ते कतिचिच्चपर्पणनिभास्तेन प्लवंगा रणे
नीयन्ते यमसादनं कवलवज्जग्धाः सहस्रं शतम् ॥ २१ ॥

विदार्णघोराननकन्दरोदरः परिस्रुतासृग्रसरञ्जिताधरः ।
सुदीर्घदंष्ट्रो भ्रुकुटीभयानको रणे स तिष्ठन् ददृशेऽन्तकोपमः ॥ २२ ॥

कल्पान्तमेघौघकरालविग्रहो गर्जन् मुहुः शोणितबिन्दुरञ्जितः ।
धातुद्रवैः शैलद्रवातिचित्रितस्तस्थौ रणेसौ भुजवीर्यदर्पितः ॥ २३ ॥

दर्पोद्धतान् कोटिसंख्यान् प्लवंगान् हस्तभ्यां स प्रक्षिपन् वक्ररन्ध्रे ।
आरक्तौष्ठो वहमानैस्सृग्भिर्गर्जन् दृष्टः कालमेघोपमानः ॥ २४ ॥

महाशैलोत्तुङ्गकायेन तेन क्षयं नीताः कोटिसंख्या प्लवंगाः ।
विलोक्यैतत्कदनं युद्धभूमौ प्राहोच्चकैर्लक्ष्मणो रामचन्द्रम् ॥ २५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे कुम्भकर्णविक्रमो नामैकत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३१ ॥

द्वात्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

लक्ष्मण उवाच

पश्य पश्याद्य समरे रक्षसानेन कोटिशः ।
भक्षिता वानरभटाः कृतं शून्यं रणाङ्गणम् ॥ १ ॥

जह्येनं राक्षसश्रेष्ठं रावणावरजं रणे ।
भक्षयन्तं कपिभटान् मुखे निक्षिप्य कोटिशः ॥ २ ॥

विशिखैः शीघ्रगमनैर्दारुणैर्वज्रपातिभिः ।
छित्त्वावयवशः कृत्स्नं पातयैनं रणाङ्गणे ॥ ३ ॥

अनेन बहुविक्रान्तं घोरकायेन रक्षसा ।
इदानीं नैव सोढव्य एषोऽस्मानतिवर्त्तते ॥ ४ ॥

कपीन् भक्षयते घोरो गर्जत्येष भयानकः ।
दृष्ट्वा दृष्ट्वा रणोत्साहः सर्वेषां परिहीयते ॥ ५ ॥

इति यावदसौ प्राह रामं युधि धनुर्धरम् ।
तावत्कक्षेङ्गदंन्यस्य कुम्भकर्णोऽव्रजद्रणात् ॥ ६ ॥

स तस्य निहितः कक्षे वालिसूनुर्महाबलः।
विमोच्य तरसाऽऽत्मानं विलूय श्रुतिनासिकम् ॥ ७ ॥

ययौ जवात् समुत्पत्य ततश्चुक्रोध राक्षसः।
अहोऽस्य कपिडिम्भस्य बलं यन्मम कक्षतः ॥ ८ ॥

मोचयित्वा तनुं स्वीयां प्रययौ वेगसंयुतः।
विरूपं चापि मां चक्रे विलूय श्रुतिनासिकम् ॥ ९ ॥

इदानीं किमहं यामि विलूनश्रुतिनासिकः।
हासाय लङ्कावास्तूनां भविष्यामि न खल्वहम् ॥ १० ॥

इति निश्चित्य मनसा स परावबृते रणे।
ददर्श तं रघुश्रेष्ठः परावृत्ततमं तदा ॥ ११ ॥

आनुहाव ततो रामं योद्धुं राक्षसपुङ्गवः।
अन्तकं स्वस्य मन्वानो जन्मान्तरकृतस्मृतिः ॥ १२ ॥

एह्येहि मां रघुश्रेष्ठ युद्धं मे देहि सम्प्रति।
कण्डूयेते मम भुजौ सुप्तस्य सुचिरं हरे ॥ १३ ॥

कोऽन्यो वीरस्त्वादृशो राघवेन्द्र बद्धः सेतुर्येन सिन्धौ स्वशक्त्या।
श्लाघ्योऽहं स्यां यदि तु त्वां जयेयं त्वं चेन्मां वै विजेथास्तथापि ॥ १४ ॥

इत्युक्त्वा प्राहिणोतस्मिन् गदां स्वां तडिदायताम्।
हुंकारेणैव तां रामः पातयामास भूतले ॥ १५ ॥

रामस्य हुंकाररवेण तस्यां पराहतायां प्रसभं गदायाम्।
चुक्षोभ चित्तेन स कुम्भकर्णो महाबलस्तं प्रजिघाय खड्गम् ॥ १६ ॥

रामः खड्गं विधा चक्रे तीक्ष्णेन स्वमहेषुण।
ततोऽस्त्रपूगान् विविधान् प्राक्षिपद् रघुपुङ्गवे ॥ १७ ॥

खड्गशूलगदाचक्रभुशुण्डीप्रासतोमरैः।
शक्तिमुद्गरकुन्ताद्यैः पर्शुपरिघपट्टिशैः ॥ १८ ॥

बाणैश्च धनुरुन्मुक्तैः सानुजं तमवाकिरत्।
वर्षासु धारासम्पातैस्तडित्वानिव पर्वतम् ॥ १९ ॥

शस्त्रास्त्रपूगैर्विविधैः कुम्भकर्णस्य रक्षसः।
अन्येषां रक्षसां चैतत्तत्पृष्ठे परितिष्ठताम् ॥ २० ॥

आच्छन्नं रघुशार्दूलं सानुजं वीक्ष्य वानराः।
वित्रस्ताः स्वेन मनसा चिन्तामापुः क्षणं रणे ॥ २१ ॥

ततो रामो धनुर्मुक्तैः सायकैरतिदारुणैः ।
नानाशस्त्रास्त्रपूगानि कुम्भकर्णस्य गर्जतः ॥ २२ ॥

अच्छिनत्तान् क्षणेनैव भास्वानिव हिमोच्चयम् ।
आविरास ततश्चैष सानुजोधृतकार्मुकः ॥ २३ ॥

ततस्तयोरभूद्घोरं तुमुलं रोमहर्षणम् ।
परस्परविनिर्मुक्तसायकच्छन्नदिक्तटम् ॥ २४ ॥

रामबाणप्रहारेण कुम्भकर्णस्य विग्रहात् ।
महाद्रिकूटकठिनादुदतिष्ठन्महारवः ॥ २५ ॥

व्याप्तास्तेन रवेणात्र घोरेण सकला दिशः ।
यद्वदिन्द्रकरोन्मुक्तवज्रेण त्रुटितो गिरेः ॥ २६ ।

एवं पञ्च दिनान्याजौ सुस्थिरोपमसंयुगे ।
युयुधे कुम्भकर्णाख्यो रावणावरजोऽस्त्रपः ॥ २७ ॥

षष्ठे दिने चतुर्दश्यां कृष्णायां रघुपुङ्गवः ।
अवधीत्तं महाघोरं मार्गणैः शीघ्रगामिभिः ॥ २८ ॥

आकर्णाकृष्टचापं प्रचलदिषुगणैर्घोरनिर्घातघोषै-
र्वेगादगच्छद्भिरिन्द्रप्रबलतरविनिर्मुक्तवज्रप्रपातैः ।
छित्त्वा छित्त्वा रघूणांपतिरवयवशःकुम्भकर्णस्य गात्रं
संग्रामे तुङ्गभूमीधरशिखरनिभं पातयामास भूमौ ॥ २९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे कुम्भकर्णबधो नाम द्वात्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३२ ॥

त्रयस्त्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तस्मिन्निपतिते वीरे भ्रातरि प्राणसम्मिते ।
शोकार्दितो दशमुखः सुभृशं विललाप ह ॥ १ ॥

हा भ्रातः प्राणदयित हा वीर परभीषण ।
हा बन्धुजनसर्वस्व प्राप्तस्त्वमपि पञ्चताम् ॥ २ ॥

यस्मिंल्लघुरुषाविष्टे त्यक्त्वा सद्मानि निर्जराः ।
पलायन्ते स्मृतिभूतं लीयन्ते गिरिकुक्षिषु ॥ ३ ॥

न यत्प्रतिबलो लोके दृष्टो वाप्यथवा श्रुतः ।
सुरकिन्नरमार्गेषु कुतो मर्त्येषु दृश्यताम् ॥ ४ ॥

स त्वमद्य खलु भ्रातर्मदर्थे: त्यक्तजीवितः ।
सुप्तो रणाङ्गणगतो न पुनर्बोधमेष्यसि ॥ ५ ॥

हा रणाङ्गणदुर्वार हा शत्रुबलकम्पन ।
हा प्रतापोदयगिरे केन त्वं युधि पातितः ॥ ६ ॥

स महावीरविख्यातस्त्रैलोक्यविजयोर्जित ।
यमोऽपि त्वां कथं नाम करिष्यति गृहातिथिम् ॥ ७ ॥

यस्त्वां युधि समालोक्य पुरा वासवपक्षगः ।
तूर्णं महिषमारुह्य पलायत दिशो दश ॥ ८ ॥

हा भ्रातर्मे जयोत्साहो नूनं त्वदवधि स्थितः ।
इदानीं शत्रुविजयः कृतोऽपि खलु मे वृथा ॥ ९ ॥

हा भ्रातः कुम्भकर्णाद्य त्वां विना रक्षसां कुलात् ।
प्रोषिताः श्रीयशोवीर्यजयोत्साहमदादयः ॥ १० ॥

हा वीर त्वां रणमुखे घातयित्वाद्य दुर्भगः ।
अहं जीवामि लोकेऽस्मिन् धिङ् मामनुचितायुषम् ॥ ११ ॥

इत्यादि बहुशो वाग्भिर्विलपन् दशकन्धरः ।
अरोदीद्विवशस्वान्तो दिशो मुखरयन् दश ॥ १२ ॥

तमन्वरोदिषुः सर्वे राक्षसानां वधूजनाः ।
अन्तःपुरनिवासिन्यः स्त्रियो मन्दोदरी मुखाः ॥ १३ ॥

सुमहान् पतितः शोको राक्षसानां गृहे गृहे ।
कुम्भकर्णे हते तेषां जयाशापि हताभवत् ॥ १४ ॥

अमायां फाल्गुने मासि कुम्भकर्णविलापिनम् ।
रक्षसां रावणादीनां जगदासीत्तमोमयम् ॥ १५ ॥

युद्धावहारः समभूत्तस्मिञ्छोकभये दिने ।
न क्वापि श्रूयते घोषो जयोत्साहविवर्द्धनः ॥ १६ ॥

सुप्तेवासीत् पुरी कृत्स्ना सर्वैःशोकपरायणैः ।
मूकगोमुखनिःसानदुन्दुभीपटहा रवाः ॥ १७ ॥

लुप्तध्वजपताकश्रीर्विलुप्तजयनिःस्वना ।
कृतमौननिराटोपैर्निरास्फोटैश्च राक्षसैः ॥ १८ ॥

अथ लङ्केश्वरः शोकात् प्रविश्यान्तःपुरं रुदन् ।
बन्धुस्त्रीजनमध्यस्थो विललाप चिरं बहु ॥ १९ ॥

ततः समादधौ वाग्भिः स्वयमेव स पण्डितः ।
रुदन्तीः शोकनिर्मग्नाः कुम्भकर्णस्य योषितः ॥ २० ॥

येनासौ निहतो युद्धे भ्राता मे प्राणसम्मितः ।
तमहं निहनिष्यामि नचिरात् संख्यमूर्द्धनि ॥ २१ ॥

किं करोमि न शोकान्तं पश्यामि विलपन्मुहुः ।
सोदरं तादृशं वीरं कुम्भकर्णं प्रियं मम ॥ २२ ॥

किंतु दैवं श्रिये यद्धि सर्वेभ्यो वलवत्तरम् ।
दैवं सर्वं प्रविन्यस्य पुनर्योत्स्यामि संयुगे ॥ २३ ॥

जानामि रामं नाशाय सर्वेषां नः समागतम् ।
जानाम्यधर्मं तत्पत्न्या हरणं लोकगर्हितम् ॥ २४ ॥

तथापि दैववशगः सर्वमेव करोम्यहम् ।
सर्वमेतज्जगद्येन चक्रवद्भ्राम्यते यतः ॥ २५ ॥

इति मत्वातिशोकं मा कुरुतान्तःपुरावलाः ।
चिकीर्षतोऽग्रिमं कार्यमुत्साहं मे न कृन्तत ॥ २६ ॥

अहं जीवामि चेल्लोके सर्वशत्रुवधोद्यतः ।
तदेतदुत्खनिष्यामि शल्यं वः शत्रुनिर्मितम् ॥ २७ ॥

इति विविधवचोभिर्बन्धुमातृस्नुषास्त्री
प्रमुखमखिललोकं किंचिदाश्वास्य धीरः ॥
बहिरगमदनेकान् राक्षसेषु प्रधानान्
गमयितुमभियोद्धुं राघवेन्द्रेण युद्धे ॥ २८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्ड रावणविलापो नाम त्रयस्त्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३३ ॥

चतुस्त्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

ततश्च फाल्गुने शुक्लप्रतिपद्दिवसादनु ।
यावच्चतुर्थीदिवसं विख्याता भुवनत्रये ॥ १ ॥

नरान्तकमुखाः पञ्चराक्षसा घोरविक्रमाः ।
नानाशस्त्रप्रहरणा नानायुद्धविशारदाः ॥ २ ॥

आज्ञया स्वामिनस्तस्य लङ्केशस्य महाबलाः ।
गर्जन्तो मध्यसमरे युद्धवन्तोऽतिकर्कशाः ॥ ३ ॥

हताश्च विभुना सर्वलोककण्टकनाशिना ।
रामेण निशितैर्बाणैर्वज्रनिर्घातराविभिः ॥ ४ ॥

पतिता भुवि पश्चापि महाद्रिशिखरोपमाः ।
छित्त्वा छित्त्वा वयवशो दत्ताश्च बलयोदिशम् ॥ ५ ॥

पश्चम्यामथ सम्प्राप्तो रावणस्य महाभटः ।
अतिकायो नाम महान् राक्षसो घोरविक्रमः ॥ ६ ॥

नाना शस्त्राणि चास्त्राणि वर्षन् युद्धे महाभुजः ।
त्रासनः कपिसैन्यानां भ्रुकुटीभङ्गभीषणः ॥ ७ ॥

दंष्ट्राविकटघोरास्यो रोषविस्फुरिताधरः ।
युयुधे रघुवीरेण दिनानि त्रीणि कर्कशः ॥ ८ ॥

सोऽपि छित्त्वा शरैर्घोरैर्वज्रसम्पातभीषणैः ।
पातितो मेदिनीं कृतस्नां कम्पयन्नङ्गगौरवात् ॥ ९ ॥

अष्टम्यामथ सम्प्राप्तौ राक्षसौ रणदारुणौ ।
उभौ कुम्भनिकुम्भाख्यौ भ्रातरौ सहयोधिनौ ॥ १० ॥

वीरौ लङ्कापतेर्घोरौ त्रैलोक्यमथनक्षमौ ।
नानाशस्त्रास्त्रसंदोहप्रहारविधिपण्डितौ ॥ ११ ॥

दर्शयन्तौ रणमुखे सुघोरं स्वं पराक्रमम् ।
त्रासयन्तौ कपिभटान् महावीर्यौ दुरासदौ ॥ १२ ॥

कृत्वा पञ्च दिनान्युच्चैः संग्रामं रोमहर्षणम् ।
निहतौ रामवीरेण मार्गणैर्जववत्तरैः ॥ १३ ॥

छिन्नभिन्नाखिलतनू निर्भिन्नकवचौ च तौ ।
पातितौ शत्रू वज्रेण छिन्नपक्षाविवाचलौ ॥ १४ ॥

मकराक्ष इति ख्यातस्ततश्च रजनीचरः ।
सुघोरं विक्रमं कुर्वन् नानाशस्त्रास्त्रवर्षणः ॥ १५ ॥

चतुर्भिर्दिवसैर्युद्धे हतो वानरपुङ्गवैः ।
इत्थं राक्षसमुख्येषु हतेषु बहुषु क्रमात् ॥ १६ ॥

जगर्जुर्वानरभटाः सूचयन्तो रणे जयम् ।
गोमुखान् वादयामासुर्दुन्दुभीन् पटहानपि ॥ १७ ॥

श्रुत्वैषां जयनिर्घोषं तदा लङ्कापतेरुरः।
निर्ददार द्विषत्पक्षं जयशल्यगणाहतम् ॥ १८ ॥

ततश्चेन्द्रजितं वीरं सस्मार प्रहितुं रणे।
अहो रे राक्षसा ब्रूत क्व सम्प्रति स शक्रजित् ॥ १९ ॥

किं करोति गृहे तिष्ठन् यातु योद्धुं महाबलः।
गर्जन्त्येते कपिभटा लघवः क्षुल्लका अपि ॥ २० ॥

आस्फोटयन्ति दोर्दण्डान् महोत्साहपरायणाः।
इदं सोढुं कथं शक्यं मयामर्षणचेतसा ॥ २१ ॥

एतेऽद्य बिभ्रति मदं निहतेषु तेषु वीरेषु पञ्चसु नरान्तकसम्मुखेषु।
रक्षोऽनिकायमुखकुम्भनिकुम्भमुख्येष्वत्युद्भटेषु मकराक्षमुखेषु चाजौ ॥ २२ ॥

नास्त्यद्य कुम्भकर्णश्च य एतान् भक्षयेत्क्षणात्।
एषां भाग्यान् स मद्भाग्यविपर्यासाच्च सम्प्रति ॥ २३ ॥

पूर्वमेव गतः स्वर्गं कृत्वा युद्धं सुदारुणम्।
गृहीत्वा विजयाशां मे महावीरो महाभुजः ॥ २४ ॥

योद्धव्यमिति योद्धव्यं तथापि खलु शत्रुभिः।
इति शक्रजितं गत्वा ब्रूत मद्वचसेरिताः ॥ २५ ॥

किं करोषि महाबाहो ताडयैतान् मदोद्धतान्।
वानरान् गर्जतो हर्षाज्जहि रामं च लक्ष्मणम् ॥ २६ ॥

इति तस्याज्ञया केचिद्राक्षसा प्रययुस्तदा।
यत्रेन्द्रजिन्महामन्त्रं साधयित्वा जयोर्जितः ॥ २७ ॥

सोऽग्निं संतर्प्यमन्त्राहुतिभिरविरतं देवतोयास्तिशीलो
लब्ध्वा दिव्यं च तस्माद्रथमतुलतरं दिव्यशस्त्रास्त्रयुक्तम्।
ज्वालामालापरीतं गगनचरमथो वर्म दिव्यं च वीरः
सज्जो युद्धाय गर्जन् निगदितविजयाशीर्द्विजेन्द्रैः प्रतस्थौ ॥ २८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे इन्द्रजिदुद्यमो नाम चतुस्त्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३४ ॥

पञ्चत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ कृष्ण द्वितीयायामिन्द्रजिद्घोरनिःस्वनः ।
प्राप्तो रथस्थितो योद्धुं महावीर्यमदोद्धतः ॥ १ ॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य रामः शस्त्रभृतां वरः ।
इदमाहानुजं वीरस्तस्य विक्रमसारवित् ॥ २ ॥

पश्य लक्ष्मण साटोपमयमेति महेन्द्रजित् ।
रथस्थो घोषयन्नाशाः शास्त्रपूगप्रवर्षणः ॥ ३ ॥

अनेन खलु सौमित्रे देवतोपास्तिशालिना ।
लब्धो रथोऽयं शस्त्रास्त्रदिव्यवर्मविभूषितः ॥ ४ ॥

अशक्योऽयं रणे जेतुमद्यवानरकोटिभिः ।
पश्याद्य कौतुकं युद्धे युक्तैर्हनुमदादिभिः ॥ ५ ॥

अथ त्वयैव वध्योऽयं समरे रावणाङ्गजः ।
सुलोचना यस्य वधूः शेषनागसुता सती ॥ ६ ॥

अथैनं दीर्घनिर्घोषस्यन्दनोपस्थमास्थितम् ।
सुग्रीवहनुमत्प्रमुखाः कोटिशः कपियूथपाः ॥ ७ ॥

आवेष्टयन् शैलतरुनखदन्तायुधोद्यताः ।
सुरेन्द्रजिच्छरैर्दिव्यैश्चकार वितथोद्यमान् ॥ ८ ॥

कपिवीरकरोन्मुक्तांस्तुङ्गपर्वतपादपान् ।
अपातयद्द्विधा कृत्वा ततस्ते परिचुक्रुधुः ॥ ९ ॥

निपेतुर्युगपत्कोशा अभिशक्रजितं रणे ।
तानेष निशितैर्बाणैराजघान समंततः ॥ १० ॥

तस्य वज्राधिकरयैः शरैर्वह्निशिखोपमैः ।
भिद्यन्ते स्म कपीन्द्राणामङ्गानि प्रसभं रणे ॥ ११ ॥

रथादविरलस्रोतोविनिपातिभिरुद्धतैः ।
शरवर्षैः शक्रजितो विद्रुताः कपयोऽखिलाः ॥ १२ ॥

कुर्वन्तोऽपि महाघोरं विक्रमं कपिपुङ्गवाः ।
रणाङ्गणे पदं किंचिन्नारोपयितुमीशते ॥ १३ ॥

विद्राविताः शरैराशु भग्नयानाः कपीश्वराः ।
आवासस्थानमाजग्मुर्यत्र रामोऽनुजान्वितः ॥ १४ ॥

आगच्छतः कपिकुलप्रवरान् समंताद्भग्नोद्यमान्मलिनवक्त्ररुचीन् विषण्णान् ।
सम्भग्नदर्पनिवहानधिकं विवर्णान् भूरिक्षरत्क्षतजदिग्धतनून् ददर्श ॥ १५ ॥

अथाह लक्ष्मणं रामः पश्य लक्ष्मण सम्प्रति ।
आगच्छतां कपीन्द्राणामवस्थां विषमामिमाम् ॥ १६ ॥

नास्फोटयन्ति दोर्दण्डान् नाटोपं कुर्वते मुहुः ।
न बिभ्रति प्रसन्नानि मुखानि च यथा पुरा ॥ १७ ॥

अधोमुखा भग्नमानास्तूष्णींभूय स्थिता अपि ।
न गर्जन्ति न वल्लन्ते नोत्क्षियन्ति शिरोधरान् ॥ १८ ॥

क्षरत्क्षतजदिग्धाङ्गाः स्तब्धा इव सवेदनाः ।
सशोका इव लक्ष्यन्ते कपयोऽद्य महाबलाः ॥ १९ ॥

तत्किमेषामभूदद्य भग्नं शीलं नु केनचित् ।
भग्नव्रता वा नितरां किं वा भग्नपराक्रमाः ॥ २० ॥

न पूर्ववदहंकारं कपयो हृदि बिभ्रति ।
न संरम्भं च नोत्साहं न वा जयमहारवम् ॥ २१ ॥

रुदन्त इव चक्षुर्भिः स्खलन्त इव विग्रहैः ।
विचलन्त इवात्यन्तं स्वान्तेऽतुच्छशुचार्पिते ॥ २२ ॥

जिज्ञासस्व किलामीषामवस्थामद्य लक्ष्मण ।
कथं नु मम वीराणामियं कश्मलताभवत् ॥ २३ ॥

इति वदति रघूद्वहे कपीन्द्राः सरभसमेत्य ततः प्रभुं प्रणेमुः ।
अवनतवदनाः प्रभूतलज्जावशविवशार्त्तहृदश्चिराय तस्थुः ॥ २४ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे कपिसैन्यपराजयेन्द्रजिदपराजयो नाम पञ्चत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३५ ॥

षट्त्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

ततस्तान् रघुशार्दूलः सुग्रीवहनुमन्मुखान् ।
कपीन् शालीननयनानुवाचोदीर्णसंशयम् ॥ १ ॥

कथमद्य विलोक्यन्ते भवन्तो विमनायिताः ।
किं नु प्रतिज्ञाहीनाः स्थ कस्मिंश्चिन्महति स्थले ॥ २ ॥

किं वाधिः कोऽपि संजातः सर्वेषां वो महौजसाम् ।
किं वा व्याधिः सुसंजातो युगपद् दुर्निवारणः ॥ ३ ॥

किं वा पराजिता यूयं केनापि समराङ्गणे ।
किं वा किमप्यनिष्टं वः समुत्पन्नं महत्तरम् ॥ ४ ॥

किं वा दूरेस्थितः कोऽपि सुहृत् पञ्चत्वमागतः ।
शोकस्य कारणं युष्मान् पृच्छामि कपिपुङ्गवाः ॥ ५ ॥

न गर्जथ कृतास्फोटाः पुरेव कथमद्य वै ।
निर्जित्य राक्षसानीकं स्वस्वावासान् यदापुरा ॥ ६ ॥

भवन्त उपगच्छन्ति गर्जनं कुर्वते तदा ।
आस्फोटयन्ति दोर्दण्डान् महाटोपं च तन्वते ॥ ७ ॥

वर्द्धयन्ति च मच्चित्ते महोत्साहं महाभटाः ।
तदद्य लक्षणं सर्वं युष्माकं प्रोषितं क्व नु ॥ ८ ॥

महाशोकाब्धिनिर्मग्ना नूनं व्याकुलयन्ति माम् ।
तस्य कारणमापृच्छे ब्रुवन्तु सकला मम ॥ ९ ॥

इति रामेण सम्पृष्टास्ते सर्वे कपियूथपाः ।
ऊचुः परस्परमुखं संप्रेक्ष्य कलितत्रपाः ॥ १० ॥

अद्य वीरेन्द्र सर्वेऽपि वयं समरमध्यगाः ।
जिताः शक्रजिता तेन लङ्काधिपतिसूनुना ॥ ११ ॥

शरैः सुतीक्ष्णैर्वज्राभैर्हत्वा विद्राविता निशि ।
ततो विषण्णवदनाः सर्वेऽपि वयमागताः ॥ १२ ॥

अग्निं संतर्प्य सुचिरं मन्त्राहुतिभिरूर्जितः ।
दिव्यं रथं परिप्राप्य शस्त्रास्त्ररणसंकुलम् ॥ १३ ॥

आबद्धकवचो वीरः समरे योद्धुमाययौ ।
वयं पराजितास्तेन नानाशस्त्रास्त्रवर्षिणा ॥ १४ ॥

अजेयः सर्वदेवानां यक्षकिंनररक्षसाम् ।
सोऽद्य संदृश्यते वीरस्ततश्चिन्तातुरा वयम् ॥ १५ ॥

इति श्रुत्वा वचस्तेषां कपीन्द्राणां स दैन्यवित् ।
सौमित्रिमुखमालोक्य जगाद रघुपुङ्गवः ॥ १६ ॥

सत्यमिन्द्रजितो वीर्यमीदृगेव न संशयः ।
देवोऽसुरो मनुष्यो वा न तं योधयितुं क्षमः ॥ १७ ॥

अखण्डितं तपस्तस्य वीर्यमप्रतिमं तथा ।
तेन प्रतिबलो लोके द्वितीयो नावलोक्यते ॥ १८ ॥

येन द्वादश वर्षाणि कृतं व्रतमखण्डितम् ।
ब्रह्मचर्येण नियतं स तं जेष्यति संयुगे ॥ १९ ॥

[1]येन द्वादशवर्षाणि जितानिद्रा निरन्तरम् ।
कृतश्च निर्जने वासः स तं जेष्यति संयुगे ॥ २० ॥

न सामान्यजनेनायं विजेयो बलवत्तरः ।
लङ्केशस्य सुतोवीरो धीरः परविमर्दनः ॥ २१ ॥

तादृशोऽयं मम भ्राता सुमित्राङ्कविभूषणः ।
साधुलक्षणसम्पन्नो लक्ष्मणः सत्यभाषणः ॥ २२ ॥

एतस्याप्रतिमं मन्ये तपो वीर्यं बलं यशः ।
अयमेव क्षमो जेतुं रणे शक्रजितं रिपुम् ॥ २३ ॥

पुरैव विधिना चैतल्लिखितं भालपट्टयोः ।
उभयोरपि सौमित्रिवीरलङ्केशपुत्रयोः ॥ २४ ॥

एष इन्द्रजितो जेता स वध्योऽनेन निश्चितम् ।
इतिमत्वा कपिश्रेष्ठाश्चिन्तां त्यजत तज्जये ॥ २५ ॥

इति रामः कपीनुक्त्वा सुमित्रासूनुमादिशत् ।
जहि लक्ष्मण तं दुष्टं नाम्ना शक्रजितं रिपुम् ॥ २६ ॥

त्रैलोक्ये वीरवर्यत्वं लभस्व विपुलं यशः ।
इन्द्रजित्सूदनो भूयाः सुखयेन्द्रादिकान् सुरान् ॥ २७ ॥

स तदाज्ञां समादाय प्रणनाम महामनाः ।
आर्यं सत्यगिरं भूयः प्रसादसुमुखं च तम् ॥ २८ ॥

युद्धावहारः समभूत्ततश्च दिनानि पञ्चैव तयोश्चमूषु ।
इतः कपीन्द्रा बलिनस्ततस्ते रक्षोवराः स्थैर्यमवाप्य तस्थुः ॥ २९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे कपिसैन्यपराभवो नाम षट्त्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३६॥

---

१. मपि दत्तम्—रीवाँ ।

सप्तत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथाष्टमीदिने वीरो मेघनादः सुरेन्द्रजित् ।
देवीं निकुम्भ[भि]लां नाम वरदामारराध ह ॥ १ ॥

तस्या आराधनादेष लप्स्यते वरमुत्तमम् ।
ससुरासुरमर्त्येषु लोकेषु न हि केनचित् ॥ २ ॥

शक्यो जेतुमिति ज्ञात्वा रामभक्तो विभीषणः ।
बोधयामास तं वृत्तं बद्धाञ्जलिपुटः पुरः ॥ ३ ॥

अद्य प्रभो स दुष्टात्मा मेघनादोऽतिदारुणः ।
आराधयति लङ्कायाः पूर्वद्वारान्तिके रहः ॥ ४ ॥

महाघोरे वनोद्देशे नानादुःसत्त्वसंकुले ।
निकुम्भ[भि]लां नाम देवीं वरदां सुप्रसादिनीम् ॥ ५ ॥

शीघ्रसाध्यवरां चैव ततो लब्ध्वा महावरम् ।
दुर्जेय एव भविता त्रैलोक्येऽपि सुरासुरैः ॥ ६ ॥

इति ज्ञात्वा रिपोस्तस्य देव्याराधनकर्मणि ।
हनुमत्प्रमुखैर्वीरैर्विघ्न एव विधीयताम् ॥ ७ ॥

वध्यश्चैष सुघोरात्मा त्वरितं लोककण्टकः ।
इति रक्षःपतेर्वाक्यं श्रुत्वा रामो महामतिः ॥ ८ ॥

हनुमत्प्रमुखान् वीरानादिदेश च लक्ष्मणम् ।
रे रे कपिवरा अद्य देवीं नाम्ना निकुम्भ[भि]लाम् ॥ ९ ॥

आराधयत्यसौ दुष्टो घोरकर्मा सुरेन्द्रजित् ।
मन्त्राहुतिभिरत्यर्थं संतर्प्याग्निं स मन्त्रवित् ॥ १० ॥

दत्त्वा पूर्णाहुतिं यावल्लभते न महावरम् ।
तावत्तयाखिला यूयं गत्वा कुरुत विघ्नकम् ॥ ११ ॥

नो चेल्लब्धवरो भूयः स्यादजेयः सुरासुरैः ।
त्वं च तत्र द्रुतं गत्वा सौमित्रे जहि तं रिपुम् ॥ १२ ॥

बाणैर्वज्रनिभैस्तीक्ष्णैरर्द्धचन्द्रसमैर्भृशम् ।
निकृत्य समरेऽङ्गानि भुवि पातय विद्विषम् ॥ १३ ॥

इत्यादाय प्रभोराज्ञां कपीन्द्रा बलवत्तराः ।
हनुमत्प्रमुखाः सर्वे प्रचेलुर्बद्धकक्षकाः ॥ १४ ॥

रामस्यामृतसंस्रावैः करस्पर्शनलालनैः ।
पूर्वक्षतानि सर्वेषां प्रत्यङ्गं प्रथमं ययुः ॥ १५ ॥

तेषां पुरश्च सौमित्रिः प्रणम्य रघुवल्लभम् ।
लब्धप्रसादस्तस्याशु विजेतुं शत्रुमाहवे ॥ १६ ॥

सद्यः पर्यचलद्वीर आबद्धकवचो बली ।
धनुर्धरः कटिद्वन्द्वबद्धतूणीर उद्धतः ॥ १७ ॥

तेषां निर्गच्छतां घोरघनवत्प्रतिगर्जताम् ।
संरम्भः सुमहानासीन्मेघनादवधोचितः ॥ १८ ॥

अथ सुग्रीवहनुमन्नलनीलाङ्गदादयः ।
कपीन्द्राः सुमहावीराः कोटिकोटिबलैर्युताः ॥ १९ ॥

सह लक्ष्मणवीरेण सोत्साहा धावनोद्धताः ।
सर्वे तत्र परिप्रापुर्वनोद्देशेऽतिदारुणे ॥ २० ॥

यत्राराधयते देवीं घोरकर्मा सुरेन्द्रजित् ।
जपैर्होमैः स्तुतिगणैर्बलिदानैः सहस्रश ॥ २१ ॥

धूपदीपादिविधिभिः पृथङ्नैवेद्यराशिभिः ।
यावत्पूर्णाहुतिं दत्त्वा लभते न महावरम् ॥ २२ ॥

प्रत्यक्षीकृत्य तां देवीमाशुतोषां कुम्भ[भि]लाम् ।
तावदेते महोद्दामवीर्याः सर्वे कपीश्वराः ॥ २३ ॥

सौमित्रिणा सह प्राप्ताः कर्मविध्वंसनोद्धुराः ।
ते द्वारपालान् प्रसभं राक्षसानतिदारुणान् ॥ २४ ॥

निजघ्नुर्घोरनिर्घोषान् नानाशस्त्रप्रहारिणः ।
शिलावृक्षादिभिः सर्वे युगपत्कृतसम्मताः ॥ २५ ॥

ते राक्षसाः सुसंक्रुद्धा यथास्थानं मनीषिणा ।
स्थापितास्तेन बलिना मेघनादेन निर्भयाः ॥ २६ ॥

प्राप्तान् वीक्ष्य कपीन्द्रांस्तान् बलात्प्रहरतोऽखिलान् ।
उच्चैः संचुक्रुशुर्घोराः परित्रस्ताः समंततः ॥ २७ ॥

तेषामाक्रोशतां भूयो द्वारेषु द्वाररक्षिणाम् ।
शुश्राव निनदं घोरं मेघनादोऽन्तरस्थितः ॥ २८ ॥

किमेतदित्यादिदेश पार्श्वं स्थान राक्षसोत्तमान् ।
ते धावमानाः परितो द्वारदेशं समाययुः ॥ २९ ॥

यत्र वानरसैन्यौघैर्हन्यन्ते द्वाररक्षकाः ।
राक्षसाः कोटिसंख्याता गृहीतविविधायुधाः ॥ ३० ॥

अथ तूर्णं समागत्य केचिदिन्द्रजितोऽन्तिकम् ।
ऊचिरे राक्षसास्त्रस्ताः सौमित्रिविशिखोत्करैः ॥ ३१ ॥

महाराजकुमार त्वं निश्चिन्तो वर्तसे किमु ।
हन्यन्ते द्वारदेशे ते राक्षसाः कोटिशः परैः ॥ ३२ ॥

सर्वेऽप्येते द्वारपाला यथास्थानं निवेशिताः ।
सप्तव्यूहान् विनिर्भिद्य प्राप्तप्राया इहापि ते ॥ ३३ ॥

तेषां पुरः स सौमित्रिर्धृतधन्वा यथान्तकः ।
वर्षञ्छरोत्करान् भूयो भिनत्ति रजनीचरान् ॥ ३४ ॥

तत इन्द्रजिताऽऽज्ञप्ताः केचिद्राक्षसयूथपाः ।
अहो वीरा बलीमुख्या इमान् स्तम्भयत द्विषः ॥ ३५ ॥

मुहूर्तं युध्यमानांस्तान् विलम्बयत यात भोः ।
यावत्कर्म समाप्याहमुत्तिष्ठेयं धृतायुधः ॥ ३६ ॥

इत्यादिष्टा निशिचरा घोरा रावणसूनुना ।
समेत्य तैर्युयुधिरे सौमित्रिबलवानरैः ॥ ३७ ॥

शस्त्राण्यस्त्राणि घोराणि वर्षन्तो वानरान् प्रति ।
ते लक्ष्मणेन निशितैः शरैर्विद्राविताः क्षणात् ॥ ३८ ॥

हनूमान् बद्धकक्षोटः क्रोधताम्रविलोचनः ।
आक्रम्य पोथयामास राक्षसान् धरणीतले ॥ ३९ ॥

केचिद् द्विधा कृता भूमौ राक्षसास्तेन पातिताः ।
सुग्रीवबाहुनिर्मुक्तशिलाभूरुहकोटिभिः ॥ ४० ॥

चूर्णिताः शेरते भूम्यां यातुधानाः सहस्रशः ।
भ्रामयित्वा परे दिक्षु बालिपुत्रेण पातिताः ॥ ४१ ॥

नलनीलादिभिः केचिद्गदापातैर्विचूर्णिताः ।
दुर्मुखोद्विविदो मैन्दः कुमुदः कपिकुञ्जरः ॥ ४२ ॥

राक्षसांश्चिक्षिपुः सर्वे कपयः शीघ्रकारिणः ।
लक्ष्मणस्य शितैर्बाणैर्वज्रनिर्घातराविभिः ॥ ४३ ॥

सहस्रशो हता भूमौ निपेतुः कौणपोत्कराः ।
इत्थं संहृत्यबलिनो रक्षोव्यूहाननेकशः ॥ ४४ ॥

अन्तः प्रविविशुर्यत्र मेघनादः क्रियाकुलः ।
पूर्णाहुतावदत्तायां कीशास्तं पर्यवेष्टयन् ॥ ४५ ॥

बभञ्जुः केऽपि पात्राणि केचिन्मण्डपमक्षिपन् ।
केऽप्यग्निं शमयामासुः केऽप्यघ्नन् कर्म ऋत्विजः ॥ ४६ ॥

ततः स कुपितो वीरो ध्वस्तकर्मा सुरेन्द्रजित् ।
दृष्ट्वा सौमित्रिमुत्तस्थौ संहितेषुर्धनुर्धरः ॥ ४७ ॥

ततस्तयोरभूद्युद्धं सौमित्रिबलभिज्जितोः ।
परस्परं प्रहरतोर्विशिखानतिदारुणान् ॥ ४८ ॥

गर्जतोः संतर्जयतोरन्योन्य विजयैषिणोः ।
अन्योन्यस्य शरव्रातानन्योन्यं विनिकृन्ततोः ॥ ४९ ॥

अन्योन्यमर्मंतुदतोर्विचित्ररणदक्षयोः ।
अन्योन्यमारावयतोः प्रहारैः सकला दिशः ॥ ५० ॥

गिरीनिवोज्जासयतोर्वज्रैरिवशरोत्करैः ।
यावद्दीनानि यद्घोरं युद्धं समभवत्तयोः ॥ ५१ ॥

षष्ठेऽह्नि सम्प्रहरतस्तस्य घोरैः शिलीमुखैः ।
अर्द्धचन्द्रेषुणाकृन्तत् सौमित्रिर्भुजमुद्धतम् ॥ ५२ ॥

जविना तस्य बाणेन कृतः शक्रजितो भुजः ।
उड्डीय व्योममार्गेण ययो यत्र सुलोचना ॥ ५३ ॥

सखीनिबहमध्यस्था कीर्तयन्ती गुणोत्करम् ।
रक्षोराजकुमारस्य भर्त्तरर्द्धाङ्गगामिनी ॥ ५४ ॥

महासती महाचारा महासौन्दर्यशालिनी ।
तस्याः पाणितलं बाहुः पपात विपुलाङ्गदी ॥ ५५ ॥

अथ सा निजपल्यङ्कादुत्तीर्य विपुलेक्षणा ।
विललाप भुजं पत्युरालिङ्ग्य प्रेमकातरा ॥ ५६ ॥

हा वीर हा गुणागार हा मत्प्राणैकजीवन ।
हा परानीकमथन कृत्तः केन भुजस्तव ॥ ५७ ॥

अयं विकर्षन् मम मेखलागुणं दधत्सुपीनस्तनकुड्मलार्द्दनम् ।
मिलन् सुनाभीजघनोरुवर्ष्मभिर्बलेन नीवीं श्लथयन् करस्तव ॥ ५८ ॥

कदा नु मां वीरवराग्रभोक्ष्यते गतश्च सद्यः किमिवेदृशीं दशाम् ।
कङ्कदा नु नाकेशपुरीकपाटयोः प्रभञ्जनं कौतुकतः करिष्यते ॥ ५९ ॥

कदा नु नाकप्रमदाः कचोत्करे प्रगृह्य कर्पिष्यति वीर कौतुकात् ।
कदा पलायत्सुरकिंनरश्रियो जवाच्च वेणीमिव तां कृपाणिकाम् ॥ ६० ॥

इत्थं विलप्य सा बाला रुदन्ती करुणस्वरम् ।
मूर्छितां न्यपतद्भूमौ सखीसंदोहमध्यगा ॥ ६१ ॥

अथ तस्य रणे क्रुद्धो लक्ष्मणः परदर्पहा ।
द्वितीयमपि चिच्छेद भुजमत्यर्थकर्कशम् ॥ ६२ ॥

कृत्ते भुजद्वये तस्य कार्मुकं न्यपतद्भुवि ।
द्रुतं सहैव लङ्केशराज्यश्रीभोगमङ्गलैः ॥ ६३ ॥

अथ तस्य शिरः कूटमहाद्रिग्रावकर्कशम् ।
अर्द्धचन्द्रमितैर्भल्लैर्निरकृन्तत लक्ष्मणः ॥ ६४ ॥

तथापि नापतद्भूमौ कृतालीढपदस्थितिः ।
रुण्ड एव बलेनास्थान्महासत्त्वो निशाचरः ॥ ६५ ॥

तस्य प्राणानिलाः कण्ठान्निर्यान्तो वेगवत्तराः ।
भांकारभूरिनिर्घोषैः पूरयाञ्चक्रिरे नभः ॥ ६६ ॥

छिन्नमूर्द्धाप्यसौ भीम उपगन्तुं न शक्यते ।
करिष्यत इवात्यर्थं पुनरप्युग्रविक्रमम् ॥ ६७ ॥

ततो जयजयेत्युच्चैर्दिवि देवाः सवासवाः ।
कल्पवृक्षप्रसूनौघै रामानुजमवाकिरन् ॥ ६८ ॥

त्रैलोक्यकण्टको ह्येष यथा क्षिप्तः शरैस्तव ।
तथास्य जनकोऽप्युच्चै रामेण क्षिप्यतां रणे ॥ ६९ ॥

देवदुन्दुभिजो घोषः परितो व्यानशे दिवि ।
हर्षिताश्च सुराः सर्वे तस्मिन् दुष्टे क्षयं गते ॥ ७० ॥

दिशां प्रसादः समभूत् स्वयमेव समंततः ।
हृष्टाश्च कपयः सर्वे नलनीलाङ्गदादयः ॥ ७१ ॥

हनुमत्सुग्रीवमुखास्तुष्टुवुस्तं धनुर्धरम् ।
राघवेन्द्रानुजं वीरं शक्रजिद्विनिषूदनम् ॥ ७२ ॥

तत आदाय तच्छीर्षं देवीं तां च निकुम्भ[भि]लाम् ।
सोपहारामिव प्रीतामाजग्मुर्विजयोर्जिताः ॥ ७३ ॥

सर्वे कपिवरास्तुष्टाः कृत्वा रामानुजं पुरः ।
सप्रावृषेण्यजलदा उदीच्याः पवना इव ॥ ७४ ॥

रामावासस्थलीं प्राप्ताः साटोपाः सोत्सवाननाः ।
गर्जन्तो जयनिर्घोषैः केचित्पूरितगोमुखाः ॥ ७५ ॥

तेषां मध्यस्थः सुमित्रातनूजो रामस्योच्चैर्घोषयन् जैत्रनादम् ।
बिभ्रद्दोष्णोः कार्मुकज्याकिणाङ्कान् [1]हृष्टो दराद्रामचन्द्रेण वीरः ॥ ७६ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे इन्द्रजिद्वधो नाम सप्तत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३७ ॥

अष्टात्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वेन्द्रजिद्वधं कृष्णचतुर्दश्यां दशाननः ।
गाढशोकभरेणाशु संरुद्धहृदयो भृशम् ॥ १ ॥

मुमोह मूर्छितो भूमौ निपपात सुविह्वलः ।
निकृत्तमूलो विपुलः क्षोणीरुह इवोन्नतः ॥ २ ॥

चिरेण चेतनां लब्ध्वा रुरोदोच्चैस्तरामसौ ।
दरीमिव प्रतिध्वानैर्दिशो मुखरयन् रवैः ॥ ३ ॥

करुणस्वरसंजातसुहृद्बन्धुदयोदयः ।
विललाप चिरं तस्य स्मारं स्मारं गुणोत्करम् ॥ ४ ॥

हा पुत्र हा महावीर हा वत्स गुणमन्दिर ।
हा बन्धुजनसर्वस्व किमभूत्किमभूदिदम् ॥ ५ ॥

हा पुत्र तद्दिनं यत्र जित्वा स्वर्गपुरीपतिम् ।
भवान् लब्धेन्द्रजित्ख्यातिरागतोऽभूदिमां पुरीम् ॥ ६ ॥

वीर त्वं लीलया जैषीः सुरसद्मानि कोटिशः ।
बन्दीकृत्य सुरश्रेणीः कशाघातैरताडयत् ॥ ७ ॥

वत्स त्वं समरे शत्रून् जित्वा जित्वा जगत्त्रये ।
चक्रे मम समुत्कर्षं लङ्कांराज्यपदस्थितौ ॥ ८ ॥

त्वयाहं राजराजत्वं गमितो भुवनत्रये ।
प्रतिभूपशिखारत्नरोचिर्नीराजिताङ्घ्रिकम् ॥ ९ ॥

स त्वमद्य विपर्यासान्मम भाग्यस्य पुत्रक ।
शेषे संग्रामधरणौ पुनर्जागरणोज्झितः ॥ १० ॥

---

1. दृष्टो—इति पाठः समीचीनः ।

विमाय यस्य विशिखैर्यमोऽपि समराङ्गणे ।
सम्भ्रान्तो दिक्षु वित्रस्तोऽविशन्मेरुगुहागृहान् ॥ ११ ॥

स त्वां कथं नु जग्राह दण्डभृद् हृष्टचेतनः ।
गृहागतिकृपाशीलं नावैत्कि वा भयानकम् ॥ १२ ॥

हा हाद्य दुर्नयः कोऽयं कामं जीवति रावणः ।
मृतश्चेवेन्द्रजित्पुत्र इत्युपश्रुत्य उत्कटाः ॥ १३ ॥

दुःश्रवा धद्दयन्ते स्वान्तं मामकीनं मुहुर्मुहुः ।
इह ते बान्धवाः पुत्र त्वां विना सर्वसौख्यद ॥ १४ ॥

जीविष्यन्ति कथं नाम येषां शय्यासनादिषु ।
त्वमेकः प्राणवर्गस्य मानदः स्थितिसाधनम् ॥ १५ ॥

इत्यादि विलपञ्छोकशल्यविक्षतमानसः ।
हा हेति चूर्णितमनाश्चक्रन्द सुचिरं हतः ॥ १६ ॥

युद्धावहारमकरोत्तद्दिने भृशदुःखितः ।
बहिरन्तश्चतुर्दिक्षु पश्यन् विश्वं तमोमयम् ॥ १७ ॥

विविशान्तःपुरमथ क्लान्तपद्मवनाननः ।
यत्र मन्दोदरीमुख्या रुदन्त्यः सुभृशं हताः ॥ १८ ॥

अन्योन्यबन्धवो बन्धूनालिङ्ग्या लिङ्ग्य दुःखिताः ।
उत्पतन्त्यः पतन्त्यश्च राक्षस्यो गतचेतनाः ॥ १९ ॥

लोचनाम्बुपरीवाहैः सृजन्त्योऽनेकवाहिनीः ।
दृष्टैवनं भूरिसंतप्ता महिषी व्यलपत्तराम् ॥ २० ॥

हा मत्तंस्तव निबन्धाज्जातो रामेण संगरः ।
ईदृग्विधानि रत्नानि हूयन्ते यत्र वै त्वया ॥ २१ ॥

त्वदर्थे त्यक्तजीवोऽयं मदङ्कमणिरुत्तमः ।
यमस्य शासनं यातः क्व पुनर्दृश्यतां मया ॥ २२ ॥

हितं त्वदीयं लङ्केशः कृतिधा नोदितं मया ।
नाविशत्ते मनो नाथ भाविनार्थेन हीदृशा ॥ २३ ॥

अवशिष्टमिदानीं मे मानसौभाग्यभूतिषु ।
न किंचिद्राक्षसाधीश गते शक्रजिति क्षयम् ॥ २४ ॥

इत्यादिभिर्विलपनैर्मन्दोदर्याः सहस्रशः ।
अर्पितानीव शल्यानि दशवक्त्रस्य चेतसि ॥ २५ ॥

तस्मिन् मुहूर्ते सोत्साहं नाम्ना देवी सुलोचना।
भर्त्तारमनुयास्यन्ती श्वशुरौ सा व्यजिज्ञपत्॥ २६।

आज्ञां मे कुरुतं सत्यमनुयास्यामि वां सुतम्।
भर्त्तारं प्राणदयितमागो मे क्षन्तुमर्हथः॥ २७॥

यन्मयाभिहितं किंचित्कृतं वा सदसच्च वा।
तत्सर्वं बान्धवजनैः साकं मे क्षन्तुमर्हथः॥ २८॥

याति मे समयः कश्चिदविलम्बार्हं उत्तरः।
तदाज्ञामेव दत्तं मे श्वशुरौ दैवतौ मम॥ २९॥

नमामि चरणौ मातर्मन्दोदरि महासति।
अनुज्ञां देहि मे सत्यं न विलम्बक्षणो ह्ययम्॥ ३०॥

नमस्ते रक्षसां पत्ये लङ्कानाथाय धीमते।
महामानैकविधये महोग्राय महीयसे॥ ३१॥

इत्युक्त्वा साचलद्देवी शेषकन्या महामनाः।
रूदतीस्ताः स्त्रियः सर्वा मुहूर्तं संन्यवारयत्॥ ३२॥

तस्याः सत्वं समालोक्य सर्वं अन्तः पुरस्त्रियः।
अस्तम्भुः शोकवाष्पाणि यावत्सा संनिधौ स्थिता॥ ३३॥

सा गत्वा रणभूमिमातुरमना दृष्ट्वा विशीर्षं पतिं
शोकार्त्तास्य शिरोऽर्थिनी रघुपतेः सैन्यं प्रसह्याव्रजत्।
प्रत्यङ्गद्युतिचन्द्रिकासमुदयैरच्छप्रकाशं दिशां
कुर्वन्ती शतपूर्णिमामयमधात्तत्कृष्णभूतादिनम्॥ ३४॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे रावणविलापादिवर्णनो नामाष्टात्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २३८॥

एकोनचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तामायान्तीं तडित्कान्ति पूर्णचन्द्रनिभाननाम्।
परितः संदिदिहिरे कपिसैन्यानि चेतसि॥ १॥

नूनं किमेषा जनकेन्द्रपुत्री मुक्ता दशास्येन हिमांशुवक्त्रा।
अशोकवाटीं सहसा विहाय पर्येतिशीघ्रं रमणं रमेव॥ २॥

विहाय नाकं त्रिदशाङ्गना वा काचित्प्रभुंराघवं सार्वभौमम् ।
द्रष्टुं समेतीयमखण्डलक्ष्मीस्तनुप्रकाशैः परितः स्फुरन्ती ॥ ३ ॥

साक्षादयं भानुकुलेऽवतीर्णो रामः परः पूरुष एक आद्यः ।
तमीक्षितुं वा कमला समुद्रादियं समागच्छति कान्तियुक्ता ॥ ४ ॥

तारापथाद्वा समुपैति तारा पूर्णेन्दुबिम्बादपि चन्द्रिका वा ।
प्रभा रवेवापि रविं विहाय जवादहो कास्विदितः समेति ॥ ५ ॥

केचित्तां वीक्ष्य कपयः सीताबुद्ध्यामहाप्रभाम् ।
अवाङ्मुखदृशस्तस्थुश्चित्रेषु लिखिता इव ॥ ६ ॥

केचित्सकृत्समालोक्य कान्तिपूरेण भूयसा ।
आच्छन्ननयनाः कीशा न पुनर्वीक्षितुं क्षमाः ॥ ७ ॥

केचित्सौन्दर्यमालोक्य विपुलं तदलौकिकम् ।
शिरांसि कम्पयामासुः कपयो जातविस्मयाः ॥ ८ ॥

केऽपिश्लाघां वितन्वानाः कपयः शुद्धबुद्धयः ।
न वै वर्णयितुं शक्ता अभवन् जातकौतुकाः ॥ ९ ॥

इत्थमाच्छिद्य सर्वेषां नेत्राणि च मनांसि सा ।
श्रीरामसविधं प्राप यत्र भर्तुः शिरोधृतम् ॥ १० ॥

श्लाघते यत्र सौमित्रि हस्तस्पर्शनलालनैः ।
आमृशन् परितोङ्गानि रामो नित्वानिमागतम् ॥ ११ ॥

आस्फोटितभुजा यत्र हनुमत्प्रमुखा भटाः ।
सोत्साहवदनाः कामं वीक्ष्यन्ते रघुभानुना ॥ १२ ॥

यत्र श्लाघापरस्तेषां रामो वीक्ष्य महच्छिरः ।
लक्ष्मणस्य शरान् स्तौति गिरिनिर्दलनक्षमान् ॥ १३ ॥

तत्र प्रविश्य सा बाला पूर्णेन्दुवदनोज्ज्वला ।
अस्तौत् प्रणम्य श्रीमन्तं राघवेन्द्रं सुलोचना ॥ १४ ॥

नमस्ते पुरुषश्रेष्ठ ऋग्यजुसामसंस्तुत ।
समस्तत्रिदशाधीश पूर्णसर्वकलानिधे ॥ १५ ॥

जानामि त्वामवतीर्णं धरायां भारापनोदाय परं पुमांसम् ।
विरञ्चिना प्रार्थितः सूर्यवंशे आविष्कृतानन्तपूर्णस्वरूपम् ॥ १६ ॥

विपर्यासाद्भागधेयस्य रक्षो नाज्ञासीत्त्वां श्वशुरो मे दशास्यः ।
स तत्फलं प्राप साक्षात्त्वयेश क्रोधादीषत्संहृतं तत्कुलं यत् ॥ १७ ॥

स मत्पिता नागराट् शेषसंज्ञो गृणाति दिव्यैर्नामभिस्त्वामजस्रम् ।
तत्राश्रौष्ठं नाम धाम स्वरूपं तव श्रीमन् विश्वतोऽनन्तकीर्त्ते: ॥ १८ ॥

त्वमेव राम प्रमुदाटवीस्थ: करोषि लीला: सहजानन्दिनीश ।
श्रीमति सरय्वा: पुलिने त्वमेव नित्यं विहरस्यप्रमेयप्रभाव ॥ १९ ॥

त्वां गोपिका: श्रुतिदेवर्षिरूपा भजन्तेऽन्त: कामतत्त्वेन पूर्णा: ।
प्राप्ताहं त्वं शरणं तद्वदेव त्रायस्व मां न त्यज प्राणनाथ ॥ २० ॥

एतद्धुत्वा पञ्चभूतप्रभूतं शरीरं मे ह्यासुरं भावमाप्तम् ।
चितानले दीप्तशिखे क्षणेन प्राप्तास्मि त्वामात्मन: प्रेष्ठमीशम् ॥ २१ ॥

न जातु मे त्वत्पदाम्भोजभक्तिविच्छेद: स्यादिति सम्प्रार्थयामि ।
अमोघसेवाभजनप्रकारं त्वामीश को नाम भजेन्न विद्वान् ॥ २२ ॥

अयं च मे देहसम्बन्धनिष्ठ: पतिस्तवैवास्तु जन सदेश: ।
मत्संगतोऽस्यासुरभावनाशे भावस्त्वदीय: प्रकटोऽस्त्वस्य चित्ते ॥ २३ ॥

इत्यनेन शरीरेण सहयुक्तामुना प्रभो ।
ज्वलिष्यामि समिद्धेऽग्नौ भविष्यामि सहैव च ॥ २४ ॥

आवामुभौ करिष्यास्तव दास्यं रघूद्वह ।
जन्मान्तरं परिप्राप्य निवृत्तासुरभावनौ ॥ २५ ॥

देहि शीर्षमिदं नाथ येनाहं सहितानले ।
दहेयं देहमेतं वै लब्धुं दिव्यतरं वपु: ॥ २६ ॥

इवि तस्या स्तवैरेभि: प्रससाद रघूद्वह: ।
पुनर्जीवयितुं तस्या भर्तारकमकरोन्मतिम् ॥ २७ ॥

तावद्धनूमानुत्थाय बद्धाञ्जलिपुट: सुधी: ।
पुरो विज्ञापयामास सुप्रसन्नं रघूद्वहम् ॥ २८ ॥

अयं प्रभो महावीर: समरे संचरन्मुहु: ।
कृच्छ्रेण लक्ष्मणेनैव दिनै: षड्भिर्नियातित: ॥ २९ ॥

तदलं सम्प्रसादेन पुनर्जीवय मा रिपुम् ।
जन्मान्तरे तु देह्यस्यै यदसौ याचते सती ॥ ३० ॥

इति श्रुत्वा हनुमतो वच: शत्रुनिषूदन: ।
शिरोऽस्यै प्रददौ भर्तुर्गृहीत्वा सा प्रणम्य तम् ॥ ३१ ॥

जगाम पावके दीप्ते मलयैधाकदम्बकै: ।
आज्योक्षितैश्चितामध्ये आरुरोह सुलोचना ॥ ३२ ॥

शेषपुत्र्याः प्रभावेण स पुनर्भविता किल ।
प्रयुद्धने तया सार्द्धं सुमुखो नाम गोपतिः ॥ ३३ ॥

तद्वधूस्तत्र सुलोचनैव नाम्ना प्रसिद्धा प्रमुदाटवीस्था ।
श्रीरामवंशीरवमाकलय्य तदन्तिकं प्राप्स्यति सा विलासे ॥ ३४ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सुलोचना-सहगमनो नामैकोनचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३९ ॥

चत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाचः

अथ चैत्रस्य कृष्णायां पञ्चदश्यां दशाननः ।
युद्धाय राक्षसैः सार्धं प्राप्तो रोषसमन्वितः ॥ १ ॥

कोटिशो राक्षसास्तस्य पुरोगाः पृष्ठगास्तथा ।
गृहीतनानाशस्त्रास्त्रा मृत्यवे हुतजीविताः ॥ २ ॥

तेषां समरसं रम्भं वीक्ष्य रामस्य सैनिकाः ।
कोटिशः कपयो वीराः संयुक्ताः सहसा युधे ॥ ३ ॥

तेषामन्योन्यमभवत् सुमहद्युद्धताण्डवम् ।
शिलावृक्षप्रहरणैः करदन्तनखायुधैः ॥ ४ ॥

बलिनो बलिभिः साकं संयुताः संप्रहारिणः ।
वानराः शौर्यसम्पूर्णाश्चक्रिरे घोरमाहवम् ॥ ५ ॥

अथ रावण आधूय तडिद्दीप्ताः कृपाणिकाः ।
कुपितो निजघानाजौ वानरान् सोऽतिनिर्दयः ॥ ६ ॥

यूथशो वानरान् खड्गैर्वज्रनिष्पातभीषणैः ।
द्विधाकृत्य तनुं युद्धे जघान दशकन्धरः ॥ ७ ॥

हतैस्तेन रुषान्धेन कपिभिस्तैः सहस्रशः ।
नितान्तपीनतनुभिर्भूमिरातस्तरेतराम् ॥ ८ ॥

कपीनां कदनं वीक्ष्य चुक्रोध रघुपुङ्गवः ।
चैत्रशुक्लाद्यदिवसादारभ्य पञ्चभिर्दिनैः ॥ ९ ॥

आस्फाल्य धनुरुद्दीप्तबाणपूगैः सहस्रशः ।
क्षयं निनाय निखिलान् रक्षोयूथपतीन् रणे ॥ १० ॥

उद्धताः कृतसंरम्भाः प्राप्य रामं निशाचराः ।
पतङ्गा इव दीपार्चिं क्षयं याता मदाविलाः ॥ ११ ॥

तैरद्रिकूटसंकाशैः पतितैर्बाणताडितैः ।
उच्चावचाभवद्भूमिरगम्या सकलैरपि ॥ १२ ॥

आस्तृता परितो घोरं युद्धं कृत्वा प्रदारुणैः ।
निर्बाणैः कौणपवरैर्भीमा संग्राममेदिनी ॥ १३ ॥

शोणितौघवहास्वन्तर्नदीषु गिरिकूलवत् ।
पतिता रक्षसां कायाः स्यन्दमानाः समंततः ॥ १४ ॥

रामबाणाविदीर्णानां राक्षसानां द्विधा वपुः ।
चलितं रोषवेगेन चेष्टते स्म भुजङ्गवत् ॥ १५ ॥

रक्षोधिपेषु सर्वेषु क्षयं नीतेषु संयुगे ।
महा पार्श्वादयो वीरा युध्यन्ते स्म सुविक्रमैः ॥ १६ ॥

तेऽपि षष्ठीं समारभ्य यावत् स्यादष्टमीदिनम् ।
युद्धं कृत्वा महत्संख्ये घातिताः शेरते भुवि ॥ १७ ॥

अथ रावणनिर्मुक्तशक्त्या वज्रनिपातया ।
लक्ष्मणो हृदि निर्भिन्नः पपात सहसा भुवि ॥ १८ ॥

ततो हाहाकृतमभूद् रामसैन्यं विषादतः ।
राघवेन्द्रोऽपि भगवान् नरलीलानुकारकः ॥ १९ ॥

मुमोचाश्रूणि नेत्राभ्यां विषण्णहृदयो भृशम् ।
लक्ष्मणे शक्तिनिर्भिन्नं वीक्ष्य चिन्तासमन्वितः ॥ २० ॥

अथोवाच हनूमन्तं त्वरितं गच्छ मारुते ।
अस्ति द्रोणाचले दिव्या विशल्यकरणौषधिः ॥ २१ ॥

तामानय बलात्सद्यो यस्याः स्पर्शनमात्रतः ।
विशल्यः स्यान्मम भ्राता मूर्छितः पतितो भुवि ॥ २२ ॥

इत्यादिष्टो मरुत्सूनुर्जगाम द्रोणपर्वतम् ।
तावन्नवम्यां रामेण संताड्य निशितैः शरैः ॥ २३ ॥

रोषाद्विद्रावितो युद्धात्प्राणानादाय रावणः ।
जगाम लङ्कानगरीं महामानी ज्वलन् रुषा ॥ २४ ॥

अथ प्राप मरुत्सूनुर्दिव्यं द्रोणमहीधरम् ।
तत्रापश्यद्दीप्यमानाः सर्वा एव महौषधीः ॥ २५ ॥

ततो बलात्समुत्पाट्य द्रोणाद्रिं व्योमवर्त्मना ।
आजगाम त्वरायुक्तो यत्र रामो विषण्णधीः ॥ २६ ॥

समागतं हनूमन्तमालोक्य रघुपुङ्गवः ।
प्रससाद भृशं तस्मिन्नसंख्यातोपकारिणि ॥ २७ ॥

द्रोणाद्रेः सहसाऽऽदाय विशल्यकरणौषधिम् ।
स्पर्शयामास सौमित्रेर्विशल्यः सोऽभवत्तथा ॥ २८ ॥

उत्तस्थौ तत्क्षणादेव सुहृदां हर्षमावहन् ।
युद्धावहारः समभूद्दशमी दिवसे तदा ॥ २९ ॥

अथ रात्रौ कपिभटाः कृतास्फोटाः सगर्जनाः ।
प्रविश्य लङ्कानगरीं ज्वालयामासुरुत्कटाः ॥ ३० ॥

तत्राभवद्युद्धमतीव तेषां शाखामृगाणां बलिभिः सपत्नैः ।
अवीवधन् दन्तनखप्रहारैः शिलाद्रुमाद्यैश्च रिपून् हरीन्द्राः ॥ ३१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे द्रोणाद्रिनयनो नाम चत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४० ॥

एकचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथेन्द्रः प्रेषयामास रथं मातलिसारथिम् ।
पद्भ्यां चरन्तं विज्ञाय रामं त्रिभुवनेश्वरम् ॥ १ ॥

रावणं च रथोपस्थमास्थितं मदशालिनम् ।
ततो मातलिरागच्छदेकादश्यां महारथम् ॥ २ ॥

नीत्वा श्रीरामचन्द्राय चण्डविक्रमशालिने ।
द्वादश्यां रथमास्थाय काकुत्स्थः सज्यकार्मुकः ॥ ३ ॥

ययौ दशमुखं हन्तुं क्रूरं त्रैलोक्यकण्टकम् ।
तयोः प्रतिदिनं युद्धं द्वादशीदिवसादभूत् ॥ ४ ॥

यावद्वैशाखमासस्य भवेत्कृष्णचतुर्दशी ।
सुरकिन्नरसिद्धानां पश्यतां विस्मयावहम् ॥ ५ ॥

स रथः पवनोत्तालवाजिवाहनसंयुतः ।
स्वर्गङ्गावीचिपवनव्याधूतविपुलध्वजः ॥ ६ ॥

मातुलेः करचातुर्यान्नीयमानो जयावहः ।
गम्भीरघननिर्घोषः शुशुभे समराङ्गणे ॥ ७ ॥

तमारूढश्च शुशुभे साक्षाद्भूमिपुरन्दरः ।
रामः शस्त्रभृतां श्रेष्ठः सज्यकार्मुकमण्डलः ॥ ८ ॥

देवसूतसमानीतं माहेन्द्रकवचं महत् ।
बिभ्राणः पुष्पवद्यत्र भवन्त्यसुरमार्गणाः ॥ ९ ॥

तावन्योन्यं संगतौ तत्रयुद्धे जयैषिणौ सुमहोत्साहयुक्तौ ।
चिरात्परिप्राप्तपराक्रमक्षणौ श्रीराघवेन्द्रक्षणदाचरेन्द्रौ ॥ १० ॥

दोष्णां विंशतिसंख्यानां दशानां शिरसामपि ।
रावणो गैरवं विभ्रद्ददृशे मदसंवृतः ॥ ११ ॥

हेलाजितमहेन्द्रादिसुरलक्ष्म्येकभोगिनम् ।
बलान्निकृत्तशीर्षौघपूजितेशाङ्घ्रिपङ्कजम् ॥ १२ ॥

स्वदोर्दण्डमदोत्क्षिप्तकैलासगिरिगौरवम् ।
रामो रावणमालोक्य योग्यं रिपुममन्यत ॥ १३ ॥

अथास्फाल्य धनुः क्रोधाद्भ्रुकुटीभङ्गभीषणः ।
रामस्य दक्षिणे दोर्ष्णि रावणो बाणमाक्षिपत् ॥ १४ ॥

स बाणस्तस्य दोर्मूलमप्रविश्यापतद्भुवि ।
न विवेद क्षणं रामः सीतासोत्कण्ठमानसः ॥ १५ ॥

रामेण वेगनिर्मुक्तो बाणः कुलिशदारुणः ।
रावणस्याशु हृदयं विवेश भृशकर्कशम् ॥ १६ ॥

अन्योन्यबाणभल्लाग्रनिकृत्तान्योन्यमार्गणौ ।
तौ मुहूर्तमयुध्येतामक्षतावेव संगरे ॥ १७ ॥

अन्योन्यं लक्ष्यनिर्मग्नसुतीक्ष्णान्योन्यसायकौ ।
युयुधाते मुहूर्तं तावनिर्मुक्तशराविव ॥ १८ ॥

रामस्य बाणापूगेन समच्छन्नोऽथ रावणः ।
रावणस्य च रामोऽपि ततोऽसूयाभवत्तयोः ॥ १९ ॥

आविरास्तामथो बाणैरुत्क्षिप्य शरजालकम् ।
विनिरस्तहिमानीकौ द्वौ भास्वन्मण्डलाविव ॥ २० ॥

अन्योन्यरणसंरम्भस्तयोस्तुल्यो व्यदृश्यत ।
परस्परस्य सादृश्याद्युध्यतो वै परस्परम् ॥ २१ ॥

परस्परजयाकाङ्क्षानिर्मुक्तशरसंघयोः ।
तयोरुपरि निस्तुल्यविक्रमप्रीतमानसाः ॥ २२ ॥

सुराश्चैवासुराश्चक्रुः पुष्पवृष्टीरनुक्षणम् ।
शुशुभाते भृशं ताभिस्तौ नितान्तप्रपूजितौ ॥ २३ ॥

अथ रावण आक्षिप्य रामं दुर्वचसां भरैः ।
दक्षेण पाणिनोत्तोल्य शतघ्नीं वेगवत्तराम् ॥ २४ ॥

लोहशंकुशतव्याप्तां वज्रसम्पातभीषणाम् ।
प्राक्षिपत्तरसा वीरो जितमित्यसुरा जगुः ॥ २५ ॥

सा यावत्स्यन्दनोपान्तमप्राप्ता विद्युदुज्ज्वला ।
तावत्तां रघुशार्दूलः सोऽर्धचन्द्रमुखैः शरैः ॥ २६ ॥

चिच्छेद शतधा व्योम्नि रम्भामिव सुकोमलाम् ।
भूत्वा च खण्डशो भूमौ पपात वितथैव सा ॥ २७ ॥

अथ रामः समादाय शरमेकं महोर्जितम् ।
ब्रह्मास्त्रमन्त्रितं कृत्वा वीरो धनुषि संदधे ॥ २८ ॥

अमोघः स तडिद्वृन्ददीप्तिर्दीपितदिग्गणः ।
दशधा ददृशे व्योम्नि पश्यद्भिः सुरकिन्नरैः ॥ २९ ॥

फणादशकविस्फारवदनो भोगिवानिव ।
युयुजे दशकण्ठस्य कण्ठेषु सहसैव सः ॥ ३० ॥

अज्ञातक्षतपीडस्य रावणस्य शिरांसि सः ।
दशापि पातयामास दशास्यो राममार्गणः ॥ ३१ ॥

छिन्नेषु तस्य कण्ठेषु दशस्वपि स तत्क्षणात् ।
पपात राक्षसपतिः कम्पयन् धरणीतलम् ॥ ३२ ॥

अथ जय जय राम श्रीपते राघवेन्द्र त्रिभुवनजनचेतःकण्टकोज्जासशील ।
इति विरचितभूयःसंस्तुतीनां सुराणां तदुपरि करवृन्दात्पुष्पवृष्टिः पपात ॥ ३३ ॥

एवं स वैशाखचतुर्दशीदिने कृष्णे त्रिलोकीजनचित्तकण्टकः ।
पपात रामस्य शरैर्विनिर्हतः कीशावली भूरिजयेत्यवोचत् ॥ ३४ ॥

स्वर्लोकानकदुन्दुभि ध्वनिरभूदुच्चैर्जगर्जुस्तरां
सुग्रीवप्रमुखाः कपीन्द्रकरिणस्त्रैलोक्यमासीत्तदा ।
रामोत्कर्षभवप्रमोदविसरव्याप्तं हते कण्टके
तस्मिन् दुःखकरे दुरात्मनि दशग्रीवाभिधे राक्षसे ॥ ३५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे रावणवधो नामैकचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४१ ॥

द्विचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथाभवदमावास्यादिने युधि निपातिनाम् ।
दहनं रावणादीनां काष्ठैर्मलयसम्भवैः ॥ १ ॥

ये ये रामशरैर्हताः सुबलिनो युद्धोद्धता राक्षसा-
स्तेषां तद्दिनदह्यमानविपुलाङ्गेभ्यो महत्सौरभम् ।
श्रीखण्डाधिकमुच्चचार परितो घ्राणेन्द्रियातर्पिणा
येनाहूतमदोत्यतन्मधुलिप्तो व्याप्तास्ततोऽष्टौ दिशः ॥ २ ॥

अथ रामे रणभुवः सार्द्धं वानरपुङ्गवैः ।
अपसृत्य शनैः किंचित्सुवेलाचलमव्रजत् ॥ ३ ॥

वन्द्यमानः सुरस्तोमैर्गीयमानश्च किन्नरैः ।
स्तूयमानः कृतोत्साहैः सिद्धगन्धर्वचारणैः ॥ ४ ॥

वाद्यद्भिर्जयवादित्रैर्दुन्दुभीमुरजानकैः ।
तौर्यत्रिवैर्दीर्घघोषैर्मोदमानमनाः प्रभुः ॥ ५ ॥

मङ्गलध्वनिभिर्गीतैर्वादित्रोत्सवनिःस्वनैः ।
देवानां विविधैः स्तोत्रै सुवेलमचलं ययौ ॥ ६ ॥

ततश्च प्रेषयामास जानक्यानयनेऽनुजम् ।
विभीषणं च रक्षोभिः सार्द्धं राज्याभिषिक्तये ॥ ७ ॥

अथाह प्रणिपत्यामुं बद्धाञ्जलि पुटद्वयः ।
विभीषणो रामचन्द्रं नतिस्तुतिपुरःसरम् ॥ ८ ॥

विद्यमाने त्वयिविभो त्रैलोक्यजनताधिपे ।
कोऽहं राज्याभिषेकाय लघीयान् पादसेवकः ॥ ९ ॥

नित्यं परिचरिष्यामि पादपद्मद्वयं तव ।
प्रसादतुलसीपत्रं भोक्ष्यामि रघुपुङ्गव ॥ १० ॥

न मे राज्यस्पृहा नाथ सेवां देहि दयानिधे ।
वाञ्छन्ति यामविरतं श्रीशेषसनकादयः ॥ ११ ॥

यस्मै कृपयसे नाथ तस्मै सेवां ददासि च ।
अतस्तां दुर्लभां लोके वाञ्छामि करुणानिधे ॥ १२ ॥

कामक्रोधमदासूयामोहमात्सर्यवर्द्धनम् ।
कथं काङ्क्षेय राजेन्द्र राज्यं नाम निरर्थकम् ॥ १३ ॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्य भक्तस्य रघुपुङ्गवः ।
उवाच करुणासिन्धुः स्मितमञ्जु मुखाम्बुजः ॥ १४ ॥

कुरु मद्वचनाद्राज्यं रक्षसामिदमुन्नतम् ।
न ते कामादिविकृतिर्भविष्यति मदाज्ञया ॥ १५ ॥

मां स्मरन्नतिभावेन कुर्वन् राज्यमपि ध्रुवम् ।
विभीषण न कश्चित्त्वं मोहमेष्यसि जन्मनि ॥ १६ ॥

भविष्यसि चिरंजीवी मार्कण्डेयो यथा मुनिः ।
यथा द्रोणिवलिव्यासहनुमत्कृपभार्गवा ॥ १८ ॥

तेषां त्वमष्टमो भूयाश्चिरंजीवी दृढव्रतः ।
कुर्वन् रक्षः पुरीराज्यं मां स्मरन् मोहवर्जितः ॥ १८ ॥

इत्युक्त्वा विससर्जामुं शुक्ले स द्वितये दिने ।
कृताभिषेका विधिवद्राज्यं पर्यगृहीन्मुदा ॥ १९ ॥

अशोकवाटिकां गत्वा लक्ष्मणो भक्तिसंनतः ।
सीतां दृष्ट्वा नमश्चक्रे रामविश्लेषदुर्बलाम् ॥ २० ॥

सादरं तामुपानिन्ये रामस्यान्तिकमञ्जसा ।
तृतीयायां च सा देवी पश्यतां स्वर्गवासिनाम् ॥ २१ ॥

पुरोऽग्नौ प्राविशद्यत्र स्थिता सीताधिदैविकी ।
अथ सा स्वयमापन्ना स्वरूपं लोकमङ्गलम् ॥ २२ ॥

उद्बभौ तेजसा तस्या वह्निश्च प्रशमं गतः ।
अङ्गारनिचयोऽथासीत्फुल्लपद्ममयस्तदा ॥ २३ ॥

स्वर्गस्था देवतावृन्दास्त्रयस्त्रिंशतिकोटयः ।
यक्षाः किंपुरुषा नागाः सिद्धगन्धर्वचारणाः ॥ २४ ॥

नागा नगाः खगा नद्यो मूर्तियुक्ताश्च सिन्धवः ।
राजा दशरथश्चापि साक्षाद्भूत्वा दिवि स्थितः ॥ २५ ॥

ते सर्वे दिव्यया वाचा विमानस्थाः समब्रुवन् ।
सीता शुद्धा मुहुः शुद्धा शुद्धा देवी शुचाविति ॥ २६ ॥

स तया सहितो रघुप्रवीरः शुशुभे वासवरत्ननीलकान्तिः ।
तडितेव समन्वितस्तडित्वानिति सर्वेऽपि जनाः प्रहर्षमापुः ॥ २७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे सीतासमागमो नाम द्विचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४२ ॥

त्रिचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ रामो रमायुक्तो हनुमत्प्रमुखैर्वृतः ।
शुशुभे चन्द्रिकापूर्णः शशीवोडुगणैर्वृतः ॥ १ ॥

दृष्ट्या चामृतवर्षिण्या जीवयामास तान् कपीन् ।
ये ये मृता महाघोरे राक्षसैः सह संगरे ॥ २ ॥

ते पुरो राममालोक्य सीतया संगतं तदा ।
ववन्दिरे मुदा युक्ता निद्रां हित्वोत्थिता इव ॥ ३ ॥

अथो विसर्जयामास नानादेशागतांश्च तान् ।
कपीनमरसंकाशान् रक्षःपतिजयोर्जितान् ॥ ४ ॥

हनूमांश्चैव सुग्रीवो नलनीलाङ्गदादयः ।
एतैः कपिवरैः सार्द्धं सीतालक्ष्मणसंयुतः ॥ ५ ॥

अयोध्यां स प्रतिष्ठासुर्देव्या स इदमीरितः ।
एषा मे त्रिजटा नाम राक्षसी हितकारिणी ॥ ६ ॥

दशग्रीवस्य विपिने वसन्तीं मां सुदुःखिताम् ।
त्वद्विश्लेषभरां नाथ नितान्तकृशविग्रहाम् ॥ ७ ॥

साधु पर्यचरद्यत्र राक्षस्यो विकटाननाः ।
नानामायाविनश्चैव राक्षसाः पर्यखेदयन् ॥ ८ ॥

कापि मां हलसंकाशै रदनैः पर्यभीषयत् ।
कापि मां कटुभिर्वाक्यैरतुदत् कण्टकैरिव ॥ ९ ॥

काचिद्भ्रूकुटिघोरास्या दृग्भ्यां रोषारुणानना ।
अभीषयत्तरां घोरा राक्षसी दुष्टमानसा ॥ १० ॥

कापि तस्यातिदुष्टस्य नियुक्ता भृशमाज्ञया ।
लोभयन्ती मनो वाक्यैर्नितरामुदवेजयत् ॥ ११ ॥

एवं ते राक्षसा घोरास्तुतुदुर्नितरां मनः ।
राक्षस्या माययानर्थं दर्शयन्तो भयावहम् ॥ १२ ॥

एकदा तु भयात्प्राणांस्तितिक्षन्तीं जवेन माम् ।
इयां तां राक्षसीं मायां बोधयामास बन्धुवत् ॥ १३ ॥

ततोऽहं जीविता नाथ सख्या त्रिजटयानया ।
अतः प्रत्युपकारोऽस्यास्त्वरितं प्रविधीयताम् ॥ १४ ॥

इति श्रुत्वा तु सा वाक्यं जानक्या जातिराक्षसी ।
उवाच त्रिजटा नाम रामं रघुकुलेश्वरम् ॥ १५ ॥

नाहं वाञ्छामि सततं बाह्यं पदमपि स्फुटम् ।
नैहिकं भोगमत्यल्पमपवर्गमपि प्रभो ॥ १६ ॥

त्वत्स्वरूपैकनिष्ठां तु वाञ्छामि रघुपुङ्गव ।
त्वयि च प्रेमदास्यं तद् यत्रानन्दोऽतिगह्वरः ॥ १७ ॥

धर्मार्थकाममोक्षाद्याः सर्वेऽपि लघुवत्ततः ।
अतस्तां देहि राजेन्द्र भक्तिं ते वीतकल्मषाम् ॥ १८ ॥

तयैवं प्रार्थितो रामः प्रियया सह तत्क्षणे ।
दृष्ट्या स्वानन्दवर्षिण्या कृतार्थीकुरुते स्म ताम् ॥ १९ ॥

अथ पुष्पकमास्थाय विमानवरमीश्वरः ।
चतुर्थीदिवसे सीतालक्ष्मणाभ्यां समन्वितः ॥ २० ॥

अग्रेसरैः कपिवरैरुदीर्णजयमङ्गलः ।
विभीषणेन भक्तेन सानुरागेण संयुतः ॥ २१ ॥

ऋक्षेश्वरेण बलिना वृद्धेन च समन्वितः ।
अयोध्यां व्योममार्गेण प्रतस्थौ रघुपुङ्गवः ॥ २२ ॥

चतुर्दश समा वासं वने कृत्वा गुरोर्गिरा ।
निस्तीर्य विपदं कृत्स्नां लोकानुकृतिलीलया ॥ २३ ॥

दण्डकारण्यमत्येत्य प्रियायै दर्शयन् शुभाः ।
नित्यलीलास्थलीस्तास्ताः पुष्पकाग्रमधिश्रितः ॥ २४ ॥

क्वचिज्जलदराजीषु मिलन्मरकतद्युतिः ।
दामिन्या प्रियया युक्तो द्वितीय इव वारिदः ॥ २५ ॥

महायशा महातेजा महादातृशिरोमणिः ।
कपिसैन्यैः समायुक्तो जयद्विगुणमानसैः ॥ २६ ॥

स्तूयमानः सुरगणैर्गीयमानश्च किंनरैः ।
आकाशगङ्गालहरीमरुल्लहरिवीजितः ॥ २७ ॥

क्वचित्तडिल्लतासूत्रैर्विमानान्तःप्रसृत्वरैः ।
क्षणे क्षणे व्योमपथि चमत्कृतविलोचनः ॥ २८ ॥

विमानस्थैः सुरवरैर्नभोविपुलवीथिषु ।
वन्द्यमानः प्रतिपदं जयघोषपुरःसरम् ॥ २९ ॥

महान्तं नभसो मार्गमतिक्रम्य महायशाः ।
भरद्वाजाश्रमं प्राप पञ्चम्यां रघुपुङ्गवः ॥ ३० ॥

विमानाग्रात्समुत्तीर्य कपिभिर्जयशब्दितः ।
ददर्श मुनिशार्दूलं सीतासौमित्रिसंयुतः ॥ ३१ ॥

नमस्कृत्य स्थितो वीरो बभाषे मुनिना ततः ।
चिरं वर्धस्व वीरेन्द्र निरस्ताखिलकण्टक ॥ ३२ ॥

श्रुतिगोद्विजधर्माणां पालनेऽतिविचक्षण ।
आनन्दय निजान् नित्यं काकुत्स्थकुलभूषण ॥ ३३ ॥

इत्याद्याशीर्गिरा तेन तोषितो रघुनन्दनः ।
आतिथ्यविधिना भूयः सत्कृतः सपरिच्छदः ॥ ३४ ॥

अथ तं भरतः श्रुत्वा भरद्वाजाश्रमागतम् ।
संयोज्य महतीं सेनामाययौ दर्शनोत्सुकः ॥ ३५ ॥

नन्दिग्रामस्थितो गोपः सुखितेन्द्रस्तमागतम् ।
उपश्रुत्य सगोपौघः परमानन्दवानभूत् ॥ ३६ ॥

षष्ठीदिने स भरतेन जटाकलाप वल्काजिनाम्बरधरेण तपःकृशेन ।
भस्माङ्गरागधवलेन सुसंगतोऽभूत् तं सस्वजे च मुदितो गुरुवन्दनान्ते ॥ ३७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्ड संवादे दक्षिणखण्डे भरद्वाजाश्रमभरत-संगमो नाम त्रिचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

प्रवृद्धश्मश्रुसंदोहसंजातमुखविक्रियान् ।
मन्त्रिवृद्धान् जटायुक्तान् निजविश्लेषदुःखितान् ॥ १ ॥

अनुजग्राह वीरेन्द्रो दृष्ट्या सामृतवर्षया ।
मधुराक्षरया वाचा पादप्रणतितत्परान् ॥ २ ॥

सुग्रीवं च हनूमन्तं भरताय महाशयः ।
दर्शयामास नितरां प्रशंसावाक्यपूर्वकम् ॥ ३ ॥

ऋक्षेश्वरं च बलिनं सोपकारं रणाङ्गणे ।
विभीषणं च भक्तेन्द्रं गुणश्लाघापुरःसरम् ॥ ४ ॥

दुःखैकबान्धवानेतान् विद्धि मे कार्यसाधकान् ।
अहं पूर्वमहं पूर्वमिति यैः प्रहृतं रणे ॥ ५ ॥

आर्योक्त्या तानसौ नत्वा परिरम्भणपूर्वकम् ।
प्रणानाम ततः पश्चाल्लक्ष्मणं जयिनां वरम् ॥ ६ ॥

मेघनादप्रहरणव्रणकर्कशमक्षतम् ।
वक्षःस्थलं लक्ष्मणस्य परिरेभे शनैश्च सः ॥ ७ ॥

ततो मैथिलराजस्य तनयां भक्तिसंनतः ।
कृच्छ्रादभ्युद्धृतां सीतामार्येण प्रणमनाम सः ॥ ८ ॥

अथाज्ञया प्रभोः सर्वे कपिसेनाधिनायकाः ।
मानुषं रूपमास्थाय तुङ्गजारुरुहुर्गजान् ॥ ९ ॥

निदेशाद् राघवेन्द्रस्य भक्तिदृष्टो विभीषणः ।
रथमध्यास्त विपुलं पताका चित्रिताम्बरम् ॥ १० ॥

रामः सौमित्रिभरतमण्डितोभयपार्श्वकः ।
मध्ये सीतासमायुक्तो विमानवरमास्थितः ॥ ११ ॥

प्रजाजनानुबन्धेन मन्दं मन्दमवाहयत् ।
विमानं बहुभूमिस्पृग्लघुव्योमपथेऽचरत् ॥ १२ ॥

ततः शत्रुघ्नविहितविचित्रानेकसंविधम् ।
अयोध्योपवनं रामो वीक्ष्य तस्मादवातरत् ॥ १३ ॥

तत्र भातृव्ययात्पुत्रविश्लेषाच्चातिदुःखिते ।
अपश्यतां जनन्यौ स्वे गत्वा श्रीरामलक्ष्मणौ ॥ १४ ॥

प्रणेमतुस्तौ कौसल्यासुमित्रे निजमातरौ ।
आशीर्भिर्नन्दितौ ताभ्यां ध्वस्तत्रैलोक्यकण्टकौ ॥ १५ ॥

पुत्रौ ददृशतुर्दृग्भ्यां नते आनन्दजाश्रुभिः ।
स्पर्शसौख्योपलम्भेन परं मुमुदतुर्भृशम् ॥ १६ ॥

रावणेन्द्रजिदाद्यस्त्रैरार्द्रक्षतवती तयोः ।
अङ्गे स्पृशन्त्यौ प्रस्रवाद्रभूतां सदये भृशम् ॥ १७ ॥

भर्तुर्दुःखावहास्मीति शालीननयना वधूः ।
जानकी प्राणमच्छ्वश्वावेकभक्तितया ह्यूभे ॥ १८ ॥

सुचिरं सुभगा भूया इत्याशिषमुदीर्य ते ।
वत्से तवैव वृत्तेन तीर्णः कृच्छ्राणि मे सुतः ॥ १९ ॥

इत्थं प्रशस्य सुचिरं सुवृत्तां तां निजस्नुषाम् ।
स्थापयामासतुः पार्श्वे उत्थाप्य चरणद्वयात् ॥ २० ॥

अथर्क्षरक्षःकीशेन्द्रैराहृतैस्तीर्थकोटितः ।
अभिषिच्य जलैर्मूर्ध्नि मन्त्रिणाः सप्तमोदिने ॥ २१ ॥

महिष्या सीतया सार्द्धं चक्रुस्तं राज्यदीक्षितम् ।
आनर्चुर्ब्राह्मणश्रेष्ठा मन्त्राशीर्निबहाक्षतैः ॥ २२ ॥

सोऽदाद् दानानि भूरीणि तेभ्यो भूधेनुकाञ्चनैः ।
राजतैर्मणिभिर्वस्त्रैरलङ्कारैरनेकशः ॥ २३ ॥

तपस्विवेषतोऽप्यासीज्जटावल्काजिनादिभिः ।
अत्यन्तरमणीयो यस्तस्य राजेन्द्रभूषणैः ॥ २४ ॥

द्विरुक्तेवाभवल्लक्ष्मीर्लक्ष्मीरमणशालिनः ।
राज्याभिषेकसमये सम्प्रसाधितवर्ष्मणः ॥ २५ ॥

अथ तूर्यस्वनैर्गीतनृत्यवादित्रनिःस्वनैः ।
नानामङ्गलनिर्घोषैर्विप्रमन्त्राशिषां गणैः ॥ २६ ॥

बृंहितैश्च गजेन्द्राणां हेषाभिर्वरवाजिनाम् ।
रथानां चैव निर्घोषैः पुरोगानां जयस्वनैः ॥ २७ ॥

अष्टम्यां प्राविशद्वीरो नगरीं स्वामलंकृताम् ।
चिरोत्कण्ठावशोत्सिक्तनरनारीगणाकुलाम् ॥ २८ ॥

मौलर्क्षरक्षःकपिभिर्विमिश्रां तां चतुर्विधाम् ।
तस्य सेनां जना वीक्ष्य प्रशशंसुः सुविस्मिताः ॥ २९ ॥

तस्यादृतौ जगृहतुर्बालव्यजनयुग्मकम् ।
उभौ सौमित्रिशत्रुघ्नौ भरतश्चातपत्रकम् ॥ ३० ॥

रथस्थः शुशुभे रामः सीतया सह संयुतः ।
पुरुहूत इवेन्द्राण्या प्रावृषेण्यघनस्थितः ॥ ३१ ॥

श्वश्रुजनैरतिस्निग्धैः शृङ्गारितसुविग्रहाम् ।
रघुनाथप्रियां सीतां पश्यन्त्यो जालमार्गतः ॥ ३२ ॥

रथस्थां प्रणमन्ति स्म साकेतपुरयोषितः ।
वह्नितोऽप्यतिशुद्धायै सीतायै नो नमोऽस्त्विति ॥ ३३ ॥

अनसूयावितीर्णं तं प्रभामण्डलमण्डितम् ।
बिभ्रती शाश्वतं भव्यमङ्गरागं रराज सा ॥ ३४ ॥

स्यन्दनादवतीर्याथ सुहृद्भिः सह राघवः ।
विवेश राजभवनं यत्र सिंहासनं पितुः ॥ ३५ ॥

दत्त्वा सपारिबर्हाणि सुहृद्भ्यो भवनानि सः ।
पश्चात्स्वयं विवेशान्तः पितुः श्रीमति वेश्मनि ॥ ३६ ॥

पितुश्चरणमालोक्य सवाष्पनयनो विभुः ।
ववन्दे हि प्रेम्णा रामः श्रीमान् रघुकुलोद्वहः ॥ ३७ ॥

तमुवाच रघुश्रेष्ठो वाष्पगद्गदया गिरा ।
तवाङ्कं पितरास्थाय किं नास्माभिः कृतं सुखम् ॥ ३८ ॥

लाल्यमानाः पोष्यमाणास्तातेन करुणावता ।
प्रापिता यां च सम्प्रीतिं साधुना प्राप्यते त्वया ॥ ३९ ॥

क्रीडमानानङ्कगतान् मूर्द्धन्युपाघ्राय नः सदा ।
यथा लालित वांस्तात तथान्यो लालयेत कः ॥ ४० ॥

इति ब्रुवाणं वीरेन्द्रं जननी भरतस्य सा ।
लज्जायमाननयना न सम्मुखदृगाययौ ॥ ४१ ॥

तामुवाचैषधर्मात्मा कृत्वा पादाभिवन्दनम् ।
तवैव सुकृतान्मातः पिता नः सत्यतोऽच्युतः ॥ ४२ ॥

कृतवान् दुष्करं कर्म हीति का तेऽस्तु संस्तुतिः ।
यतो भर्तृहिता एव साध्व्यो रघुकुलस्त्रियः ॥ ४३ ॥

इत्युक्त्या रघुवीरस्य केकयी भरतप्रसूः ।
अभ्युद्धृता त्रपा सिन्धोः सम्मुखीभूयतस्थुषी ॥ ४४ ॥

राज्यस्थानं विलोक्याथ प्रभोस्त्रिभुवनेशितुः ।
ऋक्षरक्षः कपिवराः सर्वे मुदमवाप्नुवन् ॥ ४५ ॥

उपाचरत् स तान् रामः संविधाभिरनेकशः ।
वस्त्रभोज्यप्रसादादिददानः प्रीतिवर्द्धनम् ॥ ४६ ॥

मुनींश्च पूजयामास वदान्यसुरपादपः ।
तेऽस्मैहतारिवर्गाय सफला ददुराशिषः ॥ ४७ ॥

विप्रा धनानि भूरीणि गोभूस्वर्णाम्बराणि च ।
आदाय चाशिषो दत्त्वा संतुष्टाः स्वगृहान् ययुः ॥ ४८ ॥

सोऽर्द्धमासं महासौख्यादज्ञातरजनीदिनान् ।
स्थापयित्वा कपीन्द्रांस्तान् विससर्ज ततो विभुः ॥ ४९ ॥

पुष्पकाख्यं विमानं तत्कुबेरस्य महात्मनः ।
अनुमेने प्रभुर्गन्तुं यथास्थानं यथागतम् ।। ५० ।।

वनवासापदं तीर्त्वा प्राप्तराज्य इति प्रभुः ।
पालयानस्त्रिवर्गं स समं भ्रातृष्ववर्त्तत ।। ५१ ।।

रामः सर्वासु मातृष्वविरतमवृतन्निर्विशेषं प्रजासु
त्रीनप्यर्थान् दधानो भृशमनुपहतो येषु तुर्यः पुमर्थः ।
भोगान् भुञ्जन् विदेहाधिपदुहितृयुतो वेदगोविप्ररक्षा-
दक्षः श्रीमानयोध्याभिधमधुरपुरोमीश्वरोऽध्यास्त नित्यम् ।। ५२ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे अयोध्यागमनो नाम चतुश्चत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।। २४४ ।।

पञ्चचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

[राज्यावाप्तिदिने देवो द्विचत्वारिंशवार्षिकः ।
देवी विदेहतनया त्रयस्त्रिंशतिवार्षिकी ।। १ ।।

अथास्यास्तद् दिनादासीन्मासि भाद्रपदे तिथौ ।
नवम्यां जानकीदेव्या गर्भं कुलविवर्द्धनम् ।। २ ।।

अतीते सप्तमे मासि चैत्रे द्वादशिकादिने ।
आदेशतो रघुपतेर्जानकीं लक्ष्मणो रथम् ।। ३ ।।

आरोप्य राजभवनाद् वाल्मीकीयतपोवने ।
नीत्वा सत्वरमत्याक्षीत्सा रुरोद भृशं···· ।। ४ ।।

दर्शित्वा मुनिशार्दूलं समाधाय चिरं वने ।
निनाय स्वाश्रमं सार्द्धं तापसगणैः···· ।। ५ ।।

आवात्सीत् सुचिरं तत्र पुण्यचारित्रशालिनी ।
कालेनासूत तनयौ विशुद्धौ समतेजसौ ।। ६ ।।

जन्मसंस्कारमकरोत्तयोरतुलतेजसोः ।
वाल्मीकिर्मुनिशार्दूल आद्यं कविपदं दधत् ।। ७ ।।

तावपश्यल्लवणहा वाल्मीकेराश्रमं गतः ।
नाचख्यौ रघुनाथस्य वाल्मीकेरेव शासनात् ।। ८ ।।

सुवर्णतनुमाधाय सीतामेव स्ववामतः।
रघुनाथः समकरोदश्वमेधान् महामखान् ॥ ९ ॥

शतानि नव वर्षाणि षट् च माससुतानि सा।
वाल्मीकेराश्रमेऽवात्सीत्सपुत्रा तापसीयुता ॥ १० ॥

समर्प्य तनयौ भर्त्रे सीता नित्याङ्गसंगिनी।
पश्यतामेव लोकानां प्रविष्टा धरणीतलम् ॥ ११ ॥

भूमौ विनिर्गतायां तु तस्यामात्मसमाकृतौ।
वर्षाणामयुतं रामो बुभुजे भुवमेव सः ॥ १२ ॥

आदावन्ते तथा मध्ये न चास्य विरहं प्रभोः।
अन्यैव तस्य सा लीला लोकोत्तरमुपैधिताः ॥ १३ ॥

ततः स्वतनयौ रामो राज्ये संस्थाप्य बन्धुभिः।
सहितः स्वप्रकृतिभिः पौरैश्च पुरुषोत्तमः ॥ १४ ॥

[1]लीलामानवमुत्सृज्य पुनर्नित्ये समाविशत्।
अन्तः प्रमोदविपिने सीतया सहितः स्वराट्[1] ॥ १५ ॥]

रमते सखिभिः सार्द्धं रामो नित्यं प्रमुद्वने।
शक्तिश्च सहजानन्दा माङ्गल्यासुखितावपि ॥ १६ ॥

नित्या गोपाश्च गोप्यश्च नित्या गावः खगा मृगाः।
लीला रासविलासाद्या बाल्यकैशोरयोः क्रमात् ॥ १७ ॥

यत्र दिव्या च सरयूः केलिकल्लोलमालिनी।
वनान्युपवनान्युच्चैर्गुञ्जन्मधुकराणि च ॥ १८ ॥

कुञ्जानि च निकुञ्जानि यत्र नित्यानि सर्वदा।
सर्वशक्तिमयीं तत्र सहजानन्दिनीं प्रियाम् ॥ १९ ॥

आदाय चिन्मयानन्दस्वरूपः सर्वशक्तिभृत्।
रमते स्वात्मरमणो रामो रासादिकेलिभिः ॥ २० ॥

रत्नाद्रेः परितो निकुञ्जभवने भूयोऽपि रामस्ततः
कृत्वा स्वेच्छतरं मुहुर्विहरणं कर्माणि दिव्यानि सः ॥
यान्युद्‌गीय जनो विधूतकलुषः स्वं रूपमासादयेद्
भूयो नैव च कल्पते भवभयप्राप्त्यै विमुक्तश्चिरम् ॥ २१ ॥

---

१. १ नास्ति—बड़ो० ।

इत्येतत्प्रमुदाटवीविहरणस्वच्छन्दसौख्यात्मनो
रामस्यामितसद्गुणौघजलधेर्जन्मामलं कर्म च ॥
भक्त्या संशृणुते स मानववरो जीवन् विमुक्तश्चरेत्
स्वानन्दामृतलाभपुष्टहृदयो भूयो भवे नोद्भवेत् ॥ २२ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे प्रमोदवनलीलाकथनं नाम पञ्चचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४५ ॥[1]

शुभम्

✲

---

१. समाप्तश्चाय दक्षिणखण्डः ।

संवत् १७७९ लिषतं लालदास मथुरामद्धे, श्रीकृष्णाय नमः, श्रीसहजासुखितनन्दनो विजयेतेतराम्—बड़ो० ।